



( निर्णयसागर प्रेस, बम्बई के पूर्व संस्करण से पुनर्मुद्रित )

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महर्षिपतञ्जलिविनिर्मितम्

# व्याकरणमहाभाष्यम्

श्रीमदुपाध्यायकैयटप्रणीतेन

भाष्यप्रदीपेन

श्रीमन्नागेशभट्टविरचित-

भाष्यप्रदीपोद्घोतोद्भासितेन

समुल्लसितेन

तत्रेदम्

तृतीयाध्यायात्मकम्

विधिप्रकरणरूपम्

तृतीयं खण्डम्

तच्च

महामहोपाध्याय-पण्डित-शिवदत्तशर्मणा

पण्डित-रघुनाथशास्त्रिणा च

वेद्यानाथप्रणीत-भाष्यप्रदीपोद्घोतच्छायासारम्

पदमञ्जरी-शब्दकौस्तुभादिकं समवलम्ब्य टिप्पणी-पाठ-

भेदादिसंयोजनपुरस्सरं संशोधितम्



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७



प्रकाशक

**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**

( प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक )

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

**मूल्य : ३३०.०० (२ से ६ भाग)**

मुद्रक

**धोजी मुद्रणालय**

वाराणसी

# VYĀKARANAMAHĀBHĀṢYA

OF

**PATAÑJALI**

*With*

THE COMMENTARY BHĀṢYAPRADĪPA

OF

**KAIYATA UPĀDHYĀYA**

&

THE SUPER COMMENTARY BHĀṢYA-

PRADĪPODDYOTA

OF

**NĀGESHA BHATTA**

*Volume III*

**VIDHIPRAKARANARŪPAM**

( *Entire Chapter III of Ashtadhayi* )

*Edited with*

Notes and Variants

*by*

**M. M. Pandit Shivdatta Sharma**

&

**Pandit Raghunath Kashinath Shastri**



**CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN**

38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road

DELHI 1110007

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN  
(*Oriental Publishers & Distributors*)

38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road

Post Box No. 2113

DELHI 110007

*Telephone : 236391*

Reprint Edition

1988

This Publication has been brought out with the  
financial assistance from Ministry of  
Education & Culture, Govt. of India.

If any defect is found in this book, please  
return the copy by V. P. P. for the cost of  
postage to the publisher for free exchange.

Printed in India

## ॥ तृतीयाध्यायस्यविषयानुक्रमणिका ॥

| विषयाः                                                    | पृष्ठसंख्या | विषयाः                                                | पृष्ठसंख्या |
|-----------------------------------------------------------|-------------|-------------------------------------------------------|-------------|
| प्रत्ययसूत्रस्याधिकारत्वाक्षेपः ... ..                    | १           | कष्टायेत्यस्य क्यङ्प्रत्ययान्तत्वचतुर्थ्यन्तत्वविचारः | ४७-४८       |
| समाधानम् ... ..                                           | ३           | रोमन्थादिभ्यः क्यङ्विधिः ... ..                       | ४८-४९       |
| विकारागमानां प्रत्ययसंज्ञापानम् ... ..                    | ४           | कर्तृवेदनाग्रहणप्रयोजनप्रदर्शनम् ... ..               | ४९          |
| तन्निराकरणम् ... ..                                       | ५           | नमसः क्यचि द्वितीयोपपादनम् ... ..                     | ५०          |
| परश्चेतिसूत्राक्षेपसमाधानभाष्ये ... ..                    | ७           | क्यजादिषु, अर्थादेशावश्यकत्वानावश्यकत्वविचारः,        | ५१          |
| सूत्रप्रत्याख्यानवार्तिकम् ... ..                         | ८           | हलिकल्योरत्वनिपातनसमर्थनम् ... ..                     | ५१-५२       |
| सूत्रावश्यकतासमर्थकवार्तिकम् ... ..                       | ९           | यङ्विधायके समभिहारशब्दार्थविचारः ... ..               | ५३          |
| सूत्रस्य प्रयोगनियमार्थत्वसमर्थनम् ... ..                 | १०          | धातुग्रहणैकाग्र्यलादिग्रहणप्रयोजनप्रदर्शनम्,          | ५४          |
| प्रकृतिप्रत्यययोरेकतरनियमार्थत्वमाशङ्को-                  |             | क्रियासमभिहारे यङो लोटा सह विप्रतिषेधवि-              |             |
| भयनियमार्थत्वसंसाधनम् ... ..                              | १२          | चारः । नित्यं कौटिल्ये-इति सूत्रे ... ..              | ५५          |
| आद्युदात्तश्चेतिसूत्रस्य प्रयोजनाक्षेपतदुपपादन-           |             | नित्यग्रहणप्रत्याख्यानं च सत्यापेतिनिपातन-            |             |
| भाष्ये । ... ..                                           | १३          | विचारः ... ..                                         | ५६-५७       |
| स्वरप्रकरणं विनाप्यत्र प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेन स्वरविधान-  |             | हेतुमतीत्यस्य प्रत्ययार्थविशेषणत्वप्रकृत्यर्थविशे-    |             |
| प्रयोजनाक्षेपसमाधानभाष्यवार्तिकानि । ... ..               | १४          | षणत्वविचारः ... ..                                    | ५७-६१       |
| गुणादिष्वनुबन्धकरणाक्षेपसमाधानभाष्ये                      | २०          | हेतुशब्दार्थविचारः ... ..                             | ६२          |
| मानवधेति सूत्रेऽभ्यासरूपसाधनम् ... ..                     | २१          | लोङ्विषये णिजापत्तिवारणम् ... ..                      | ६३          |
| धातोः कर्मण इति सूत्रे धातुग्रहणाक्षेपसमाधान-             |             | कृष्यादिषु णिचो वारणम् ... ..                         | ६३-६४       |
| भाष्यवार्तिकानि ... ..                                    | २३          | यट्यादिषु तत्समर्थनं च ... ..                         | ६४          |
| कर्मसमानकर्तृकग्रहणानर्थक्यसाधकबाधकभाष्यवा-               |             | णिच्प्रत्ययविधायकवार्तिकद्वयम् ... ..                 | ६५          |
| र्तिकानि ... ..                                           | २५          | णिच्प्रतिषेधवार्तिकम् ... ..                          | ६६          |
| बाधचनप्रत्याख्यानम्, प्रयोगविशेषेषु सन् साधक-             |             | णिज्जविधायकवार्तिकानि तत्प्रत्याख्यानं च              | ६७-६९       |
| वार्तिकानि तत्प्रत्याख्यानभाष्यं च ... ..                 | २८-२९       | कण्डादिभ्यो यकि ककारप्रयोजनविचारः वाग्रहणाव-          |             |
| सन्नन्तात्सन् साधकबाधकभाष्याणि ... ..                     | ३०-३१       | श्यकत्वानावश्यकत्वविचारश्च णिङि णकारप्रयो-            |             |
| क्यचि चित्त्वप्रयोजनाक्षेपसमाधानभाष्याणि ... ..           | ३१-३२       | जननिरूपणम् ... ..                                     | ७०-७२       |
| आत्मग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् ... ..                           | ३२          | वृद्धिप्रतिषेधाभावात्पक्षस्य                          |             |
| सुब्धग्रहणप्रयोजनविचारः ... ..                            | ३३          | मित्प्रतिषेधस्य सार्थक्यानर्थक्यविचारभाष्यम्          | ७३-७४       |
| वाक्यात्क्यजुत्पत्तिशङ्कासमाधानभाष्याणि ... ..            | ३४-३५       | आयादय आर्धधातुके वा इति सूत्रं किमायादीनां नि-        |             |
| क्यजन्तकारकनिर्णयाधिकरणम् ... ..                          | ३५          | वर्तकमुत तेषां विधायकमिति विचारः ... ..               | ७४-७७       |
| उक्ते कर्मणि क्यचो विचारः ... ..                          | ३८          | सनाद्यन्ता इति सूत्रप्रत्याख्यानभाष्यम् ... ..        | ७७-७८       |
| क्यचि मान्ताव्ययप्रतिषेधः, परिगणनवार्तिकं च               | ३९          | विकरणानामुत्सर्गपवादलविचारः, । ... ..                 | ७९          |
| काम्यचि चित्त्वप्रयोजनसंप्रधारणम् ... ..                  | ४०          | सिपो विकरणस्य सनादिप्रकृतिप्रकृतिकलनिरासः             |             |
| क्यङ्संलोपयोः संनियोगशिष्टत्वान्वाचयशिष्टत्व-             |             | पकारेकारानुबन्धप्रयोजनप्रदर्शनं च ... ..              | ८०-८१       |
| विचारः, अवगल्भादिभ्यः क्तिव्विधायक-                       |             | कास्प्रत्ययादित्यत्र कास्त्वनेकाच इति न्यासस्थापनम्   | ८२          |
| वार्तिकम्-सर्वेप्रातिपदिकेभ्यः क्तिव्विधिवार्तिकं च ४१-४२ |             | इजादेशश्च गुरुमत इत्यत्रौपदेशिकं गुरुमत्त्वं सामा-    |             |
| मृशादिभ्यः क्यङो हलोलोपसन्निभयोगशिष्टत्वा-                |             | न्यतो वेति विचारः, उणोतेराम् प्रतिषेधार्थ-            |             |
| न्वाचयशिष्टत्वविचारः, चित्त्वप्रतिषेधग्रहणाग्रहण-         |             | प्रयत्नश्च ... ..                                     | ८३-८६       |
| विचारः मृशादिषूपसर्गाणां प्रत्ययार्थविशेषण-               |             | विदेराम् संनियोगेनादन्तत्वव्यवस्थापनम् ... ..         | ८७          |
| त्वं प्रकृत्यर्थविशेषणत्वं चेतिविचारश्च                   | ४२-४५       | कृद्वातुप्रयुज्यते लिटीति सूत्रस्य प्रयोजन-           |             |
| लोहितादिभ्यः क्यचि ककारषकारयोः प्रयोजननिरूप-              |             | प्रदर्शनम् ... ..                                     | ८७-९०       |
| णम्-आदिग्रहणप्रत्याख्यानं च ... ..                        | ४५-४७       | च्छेदसर्गत्वसमर्थनम्, इदित्वधित्वव्यव-                |             |
|                                                           |             | स्थापनं च ... ..                                      | ९१-९४       |

| विषयः                                                                                                                                                    | पृष्ठसंख्या |
|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------|
| सिचिश्चित्वेदित्वसार्थक्यनिरूपणम्, ... ..                                                                                                                | ९४-९५       |
| स्पृशादिभ्यो वैकल्पिकसिजिविधिवार्तिकं, तद्व्याख्याभाष्यं च ... ..                                                                                        | ९६-९७       |
| इगुपधत्वानिद्वत्त्वोपपादनम् । ... ..                                                                                                                     | ९८          |
| श्लिष आलिङ्गने इति सूत्रस्य नियमार्थत्ववर्णनम्                                                                                                           | ९९-१००      |
| णिश्रिद्रुसुभ्य इति सूत्रे न्यूनतापूरकवार्तिकम्, तत्खण्डनवार्तिकम्, अङ्गविधायकम् अस्यतीत्यादिसूत्रं, जृस्तम्भवादिसूत्रं च ... ..                         | १००-१०१     |
| चिणदेशविधिसूत्रद्वयम्, कर्मणि लकारे द्विवचनबहुवचनानां भावे तु नियतैकवचनत्वस्योपपादनम्, ... ..                                                            | १०२-१०४     |
| भावकर्मकर्तृणां सार्वधातुकार्थत्वं विकरणार्थत्वं वेति विचारः ... ..                                                                                      | १०५-१०७     |
| कर्मकर्तरि यग्विधिवार्तिकं तत्प्रत्याख्यानभाष्यं च ... ..                                                                                                | १०८-१०९     |
| यसोऽनुपसर्गादित्यत्रानुपसर्गग्रहणप्रत्याख्यानभाष्यम्-श्रमि शकारप्रयोजनप्रदर्शनम् ... ..                                                                  | ११०-१११     |
| तनादिसूत्रे पृथक् कृज्ग्रहणप्रयोजनम् धिन्विक्-ण्वोरित्यत्राकारफलोपपादनं च ... ..                                                                         | ११२         |
| तत्रैव नुमग्रहणप्रयोजनम्-भ्राप्रत्यये शित्वफलवर्णनं च, ... ..                                                                                            | ११३-११४     |
| व्यत्ययो बहुलमित्यत्र योगविभागप्रदर्शनम्, अङ्कप्रत्ययविधायकसूत्रवार्तिकानि च, ... ..                                                                     | ११५         |
| कर्मवत्कर्मणेति सूत्रस्य पदकृत्यप्रदर्शनम्, ... ..                                                                                                       | ११६-११७     |
| परिसंख्यावार्तिकत्रयं, तत्प्रत्याख्यानभाष्यं च कर्मवद्भावफलविचारश्च-सूत्रप्रयोजनविचारश्च ... ..                                                          | ११७-१२०     |
| सूत्रधैर्यवार्तिकं तत्प्रत्याख्यानभाष्यं च, ... ..                                                                                                       | १२१         |
| सकर्मकाणां कर्मवद्भावप्रतिषेधाय वार्तिकद्वयम्, ... ..                                                                                                    | १२२         |
| कर्मवद्भावविकल्पवार्तिकं इयन्विधिवार्तिकं च, ... ..                                                                                                      | १२३         |
| करणेन तुल्यक्रिये कर्तरि कर्मवद्भावविधिवार्तिकं, सवत्यादिषु कर्मवद्भावप्रतिषेधवार्तिकं, भूषादिषु यकृच्चिण्प्रतिषेधवार्तिकं च, ... ..                     | १२४         |
| हुहादिहेतुमण्यादिषु यकृच्चिण्प्रतिषेधसूत्रवार्तिकानि, कुष्यादिषु कर्मवद्भावे इयन् परस्मैपदविधिसूत्रं परिसंख्यानवार्तिकं च तत्प्रत्याख्यानभाष्यं च ... .. | १२५-१२६     |
| धातोरित्यस्याधिकारावधिनिर्णयः, सूत्रप्रयोजनोपदर्शनं च ... ..                                                                                             | १२७-१२८     |
| तत्रोपपदं सप्तमीस्थमिति सूत्रस्य पदकृत्यप्रदर्शनम् उपपदसंज्ञोपयोगिसामर्थ्यविचारश्च ... ..                                                                | १२९-१३३     |
| कृदतिङित्यत्रातिङ्ग्रहणप्रयोजनम् ... ..                                                                                                                  | १३४-१३५     |
| वाऽसंख्योऽस्त्रियाम् इत्यत्र स्त्रीपदार्थनिर्णयसूत्र-                                                                                                    |             |

| विषयः                                                                                                                                     | पृष्ठसंख्या |
|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------|
| फलप्रदर्शनम् वाशब्देनोत्पत्तिविकल्पो वाधकत्वविकल्पो वेति विवेचनम्, ... ..                                                                 | १३६-१३९     |
| वाऽसंख्योऽस्त्रियामित्यस्य परिभाषात्वाधिकारत्वविचारः, ... ..                                                                              | १४०         |
| कृत्या इत्यस्याधिकारावधिनिर्णयः, तद्व्यादिविधायकसूत्रवार्तिकानि, अचो यदित्यत्राज्ग्रहणप्रयोजनवर्णनम्, यत्प्रत्ययविधायकवार्तिकानि, १४१-१४२ |             |
| यत्प्रत्ययविधायकसूत्राणि, अजर्यपदे कर्तरि यद्व्यवस्थापनम्, ... ..                                                                         | १४३         |
| क्यवृविधायकसूत्राणि-भुवोभावे इत्यत्र भावग्रहणफलप्रदर्शनम् क्यवृविधायकसूत्रवार्तिकानि, १४४-१४५                                             |             |
| भृभोऽसंज्ञायामित्यत्रासंज्ञायामित्यस्य सार्थक्यप्रदर्शनम् ... ..                                                                          | १४६-१४७     |
| क्यपि प्यति च निपातनीयरूपाणि, ... ..                                                                                                      | १४८-१४९     |
| ओरावदयके इत्यत्रावश्यक इत्यस्योपपदत्वद्योत्यत्वविचारः, ... ..                                                                             | १५०         |
| प्यति तत्तदर्थेषु निपातनीयरूपाणि, ... ..                                                                                                  | १५१         |
| तृचश्चित्वप्रयोजनं, परिसंख्यावार्तिकद्वयं तत्प्रत्याख्यानवार्तिकद्वयं, पचादिपाठप्रयोजनं च, इगुपधेभ्यः के उपपदविचारश्च, ... ..             | १५२-१५३     |
| श-ण-ध्वन्-धुन् प्रत्ययविधायकसूत्रवार्तिकानि, १५४-१५५                                                                                      |             |
| परिसंख्यावार्तिकपरिगणनवार्तिकानि तत्प्रत्याख्यानवार्तिकं च अनुपपदकर्मोपपदयोरकारयोर्बाध्यबाधकभावविचारः ... ..                              | १५६-१५८     |
| आतोऽनुपसर्गे क इत्यत्र संप्रसारणिभ्यो ङविधायकवार्तिकं तत्प्रत्याख्यानभाष्यं च ... ..                                                      | १५९-१६१     |
| कटगच्प्रत्ययविधायकसूत्रवार्तिकानि, ... ..                                                                                                 | १६२-१६३     |
| ट-ठ-अच्-इन्प्रत्ययविधायकसूत्रवार्तिकानि, तत्र निपातनानि च, ... ..                                                                         | १६४-१६५     |
| खक्ष-खच्डटक्प्रत्ययविधिसूत्रवार्तिकानि, लक्षणे जायापत्योरित्यत्र कर्तृविशेषणस्य लक्षणपदाथस्य विचारश्च, ... ..                             | १६६-१६७     |
| आव्यसुभगादिसूत्रे च्विप्रतिषेधसार्थक्यसमर्थनम्                                                                                            | १६८         |
| खिण्णुच इकारादित्वव्यवस्थापनम्, किन्कम्कि-वृविधायकसूत्रवार्तिकानि निपातनानि च ... ..                                                      | १६९-१७१     |
| विट्ण्विन्कप्रत्ययविधिसूत्रवार्तिकानि, ... ..                                                                                             | १७२-१७३     |
| सुप्यजातावित्यत्र सुपीत्यस्य फलप्रदर्शनम्, तत्रे इत्यस्योदाहरणप्रदर्शनं च, ... ..                                                         | १७४         |
| आत्ममाने इत्यत्र समासे षष्ठ्यर्थनिर्णयः ... ..                                                                                            | १७५         |
| भूतपदार्थविशेष्यनिर्णयः ... ..                                                                                                            | १७६         |
| इतरेतराश्रयशङ्कासमाधानभाष्यवार्तिकानि ... ..                                                                                              | १७७         |
| भूताधिकारप्रयोजनवर्णनम् ... ..                                                                                                            | १७८         |
| ब्रह्मभूतेतिसूत्रस्य नियमार्थत्वोपपादनम्, ... ..                                                                                          | १७९         |
| इतिङविधिसूत्रे-निष्ठायामितरेतराश्रयशङ्कासमाधानभाष्यवार्तिकानि, ... ..                                                                     | १८०         |

| विषयः                                                                                                                                                                                      | पृष्ठसंख्या |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------|
| आदिकर्मणि निष्ठाविधानवार्तिकं तत्प्रत्याख्यान-<br>वार्तिकं भाष्यं च ... .. १८१-१८२                                                                                                         |             |
| कानचकस्त्रोर्वाचनकिंकरणप्रयोजनवर्णनम् ... १८३                                                                                                                                              |             |
| भाषायां सदवसश्च इति सूत्रे वाग्रहणस्यापरोक्षे<br>नित्यमित्यस्य चोपसंख्यानतत्प्रत्याख्यानवार्ति-<br>कभाष्याणि ... .. १८४                                                                    |             |
| उपेयिवानित्येतन्निपातनप्रयोजनोपपादनम् ... १८५-१८६                                                                                                                                          |             |
| लङ्लोटोर्लङ्लुङ्भ्यां सह बाध्यबाधकभावविचारः,<br>अनद्यतने लङित्यत्रानद्यतनपदार्थविचारश्च १८७                                                                                                |             |
| विभाषासाकाङ्क्षे इत्यस्योदाहरणप्रदर्शनम् ... १८८                                                                                                                                           |             |
| परोक्षे लिङ् इत्यत्र परोक्षपदार्थनिर्णयः, परोक्षपद-<br>निपातनं च ... .. १८९                                                                                                                |             |
| परोक्षपदार्थविशेष्यविचारः ... .. १९०                                                                                                                                                       |             |
| परोक्षकालनिर्णयः, उत्तमपुरुषोपपादनम्, अत्य-<br>न्तापह्नवे लिङ्गविधिवार्तिकं च ... .. १९१                                                                                                   |             |
| लङ्गस्मे इत्यारभ्य पञ्चसूत्र्यां कालविभागप्रतिपाद-<br>नाय वार्तिकद्वयम्, तत्प्रत्याख्यानाय श्लोक-<br>वार्तिकानि च... .. १९२-१९३                                                            |             |
| ननौ पृष्ठप्रतिवचने इत्येतत्प्रत्याख्यानवार्तिकम्,<br>पुरिलङ्घासे, इत्यत्र विप्रतिषेधवार्तिकद्वयम्, १९४                                                                                     |             |
| प्रवृत्तस्याविरामे नित्यप्रवृत्ते च लङ्गविधायकं वार्ति-<br>कद्वयम्, तत्प्रत्याख्यानवार्तिकानि तदुपोद्बल-<br>कभाष्याणि च, ... .. १९५-१९७                                                    |             |
| लस्याप्रथमासमानाधिकरणेन योगायोगविचारः, १९८-१९९                                                                                                                                             |             |
| अप्रथमासमानाधिकरणपदे पर्युदासः प्रसज्यप्र-<br>तिषेधो वेति विचारः, प्रसज्यप्रतिषेधाङ्गीकारश्च २००-२०१                                                                                       |             |
| लटः शतृ शानचावित्यत्र विभाषाग्रहणानुवृत्तिप्रद-<br>र्शनम्, अप्रथमासमानाधिकरणे इत्यस्य सार्थ-<br>व्यसमर्थनं च ... .. २०२                                                                    |             |
| लक्षणहेत्वोरितिसूत्रे वार्तिकानि सूत्रेणैवगतार्थत्वा-<br>त्तत्प्रत्याख्यानं च, ... .. २०३                                                                                                  |             |
| तौ सदित्यत्र तौग्रहणस्य प्रयोजननिरूपणम्,<br>सूत्रस्य नियमार्थत्वोपपादनं च, इङ्गधार्योरिति,<br>पूङ्ग्यजोरिति, ताच्छील्यवय इति विहितानां शत्रानां ला-<br>देशत्वालादेशलविचारः, ... .. २०४-२०६ |             |
| तृत्तिसूत्रे निपातनवार्तिकानि, ग्लजिस्थश्च क्लु-<br>रित्यत्र चत्वेन गकारप्रश्लेषसमर्थनम् घितुणि-<br>ङकारानुबन्धे दोषमापाद्य पुनरुद्धारश्च, ... २०६-२०८                                     |             |
| निन्दादिभ्यो वुञ्विधानस्य ज्ञापकत्वप्रदर्शनम्<br>जुचङ्गम्येतिसूत्रे पदिग्रहणस्य च, ... .. २०९                                                                                              |             |
| स्पृह्यादिभ्यो लुङ्गविधानशङ्का तत्समाधानं च, ... २१०                                                                                                                                       |             |
| किं किन् कुक्कुक् कुक्कुक् प्रत्ययविधिसूत्रवार्तिकानि, २११                                                                                                                                 |             |

| विषयः                                                                                                                                                                                                                                                | पृष्ठसंख्या |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------|
| अन्येभ्योऽपि दृश्यते इति किंप्रत्ययविधिसूत्रम्,<br>तत्रैव वार्तिकानि च, ... .. २१२                                                                                                                                                                   |             |
| दुप्रत्ययविधिसूत्रम्, मत्याद्यर्थेभ्यः कविधायक-<br>सूत्रं च, ... .. २१३                                                                                                                                                                              |             |
| उणादयो बहुलमित्यत्र बहुलपदप्रयोजनवर्णनम् २१५                                                                                                                                                                                                         |             |
| भविष्यतिगम्यादय इत्यत्र दूषणवार्तिकसमाधा-<br>नवार्तिकानि ... .. २१६                                                                                                                                                                                  |             |
| यावत्पुरेतिसूत्रे पूर्वविप्रतिषेधवार्तिकं, तत्प्रत्या-<br>ख्यानभाष्यं च लिप्यमानसिद्धौ चेति सूत्रप्र-<br>योजनप्रदर्शनम्, ... .. २१७                                                                                                                  |             |
| तुमुन्णुलाविति सूत्रे णुलविधानप्रयोजननिरूप-<br>णम्, भाववचनाश्चेति सूत्रफलोपदर्शनं च... २१८-२१९                                                                                                                                                       |             |
| अण् कर्मणि चेति सूत्रफलोपपादनम्, ... .. २२०                                                                                                                                                                                                          |             |
| लट्प्रशेषे चेति सूत्रे शेषग्रहणसार्थक्यसमर्थनं चकार-<br>प्रत्याख्यानं च ... .. २२१                                                                                                                                                                   |             |
| लटः सदादेशविधिषु इविधिष्वविधिसूत्रवा-<br>र्तिकानि ... .. २२२                                                                                                                                                                                         |             |
| भावे इत्यत्रैकवचनपुंलिङ्गनिर्देशे दूषणमापाद्यतदु-<br>द्धारः, ... .. २२३-२२४                                                                                                                                                                          |             |
| अकर्तरि च कारके इत्यत्र कारकग्रहणसंज्ञाग्रहणफल-<br>प्रदर्शनम्, परिमाणाख्यायामिति सूत्रे सर्वपद-<br>फलप्रदर्शनं च ... .. २२५-२२६                                                                                                                      |             |
| घञोऽजवविषयकत्वव्यवस्थापनवार्तिकम् अर्थ-<br>विशेषनिर्देशवार्तिकद्वयं च ... .. २२७                                                                                                                                                                     |             |
| इङ्गश्चेतिष्वविधायकसूत्रम्, इङ्गश्चेत्यपादान इत्या-<br>दि श्वायुवर्णननिवृत्तेष्विति च वार्तिकद्वयम्,<br>समिमुष्टावितिष्वविधायकसूत्रं, समिमुष्टावि-<br>त्यनर्थकमित्यादि, अपरिमाणार्थं त्विति, उद्गाभ-<br>निप्राभौ चेत्यादि, इति वार्तिकानि ... .. २२८ |             |
| कर्मव्यतिहार इतिसूत्रे स्त्रीग्रहणपृथगग्रहणयोः<br>अभिविधावित्यत्र भावग्रहणस्य च फलप्रदर्श-<br>नम् ... .. २२९                                                                                                                                         |             |
| अज्विधिसूत्रवार्तिकानि, ग्रहवृत्तिनिश्चिगम्येतिसूत्रे<br>निश्चिग्रहणस्य प्रयोजनसमर्थनम्, वशिर्ण्योर-<br>वविधिष्वर्थकविधिवार्तिके स्तम्बेकचेल्यत्र क-<br>प्रत्ययप्रकृतिनिर्णयः ... .. २३०-२३१                                                         |             |
| यजयाचेतिसूत्रे नङो ङित्वे दूषणाशङ्कासमाधाने,<br>स्त्रियां क्तिञितिसूत्रे स्त्रियां क्तिञावादिभ्यश्चेति<br>निष्ठायां चेत्यादि च वार्तिकद्वयम्, ... २३२                                                                                                |             |
| स्यादिभ्यः क्तिनः सर्वापवादत्वमाशङ्क्य पुरस्ताद-<br>पवादन्यायेन समाधानम्, क्यविविधविधि-<br>सूत्रे श्रुयजीति, ग्लाम्लेत्यादि, क्यविविधिरिति,<br>कृजः शचेतीत्यादिवार्तिकचतुष्टयम्, ... २३३                                                             |             |

| विषयः                                                                                                                                                                                                                                                                        | पृष्ठसंख्या |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------|
| इच्छादीनां निपातनम्, विद्भिदादिभ्योऽङ्विधा-<br>नम्, तत्तदर्थनिर्देशश्च युचि चकारप्रयोजन-<br>निरूपणं च, ... २३४                                                                                                                                                               | २३४         |
| युच्प्रत्ययविधायकं वार्तिकत्रयम्, धात्वर्थनिर्देशे<br>इति, इक्षितपाविति, वर्णात्कार इति, रादिफ<br>इति, मत्वर्थाच्छ इति, इणजादिभ्य इति, इच्-<br>वपादिभ्य इति, इक् कृष्यादिभ्य इति, संपदा-<br>दिभ्यः क्विविति कृतो बहुलमिति च वार्ति-<br>कानि गोचरादीनां निपातनं च ... २३५-२३६ | २३५-२३६     |
| हल्श्चेति सूत्रेऽवहारादिसाधकवार्तिकम्, उदङ्कोऽ-<br>नुदके इति सूत्रप्रयोजननिरूपणम्, घखल्<br>विधायकसूत्राणि, खनो ङादिप्रत्ययविधायकवा-<br>र्तिकम्, ... २३७                                                                                                                      | २३७         |
| शास्त्रादिभ्यो मृषेश्च युज्विधायकं वार्तिकद्वयम्-<br>वर्तमानसामीप्य इत्यत्र वत्करणफलप्रदर्शनम्,<br>वा लङ् भवतीत्यनुक्त्वा वर्तमानवद्वेत्युक्तेः शत्रा-<br>दिसिद्धिरूपप्रयोजनोपपादनम् ... २३८-२३९                                                                             | २३८-२३९     |
| आशंसायां भूतवच्चेति सूत्रे लङ्लटोः प्रतिषेधवार्ति-<br>कम्, तत्प्रत्याख्यानवार्तिकं च, आशंसासंभा-<br>वनयोरैक्यमाशङ्क्य भेदप्रदर्शनम् ... २४०                                                                                                                                  | २४०         |
| क्षिप्रवचने लटः आशंसावचने लिङा सह विप्रतिषेध-<br>वर्णनम्, अनिष्पन्ने निष्पन्नशब्दसाधनम् ... २४१                                                                                                                                                                              | २४१         |
| अस्त्यर्थानां धातूनां सर्वविभक्त्युपपादनम् ... २४२                                                                                                                                                                                                                           | २४२         |
| नान्यतनवदिति सूत्रे प्रतिषेधद्वयविचारः ... २४३                                                                                                                                                                                                                               | २४३         |
| भविष्यतिमर्यादिति सूत्रस्य फलोपपादनम्, काल-<br>विभागे चेति सूत्रे वार्तिकद्वयम् ... २४४                                                                                                                                                                                      | २४४         |
| परास्मिन्निति लिङ्निमित्त इति भूते चेति वोताप्यो-<br>रिति सूत्राणि तद्व्याख्याभाव्याणि च ... २४५                                                                                                                                                                             | २४५         |
| गर्हायां लङ्गिति सूत्रस्य प्रत्याख्यानवार्तिकम् तत्स-<br>मर्थकभाष्यं च अनवकृत्यमर्षयोरिति सूत्रेऽकि-<br>वृत्तप्रहणानर्थक्यवार्तिकं तदुपपादकभाष्यं च,<br>यदायद्योर्लिङ्गविधिवार्तिकम्, ... २४६                                                                                | २४६         |
| अयदिप्रहणानर्थक्यवार्तिकम्, हेतुहेतुमतोरिति<br>सूत्रे वाचचनं, भविष्यदधिकारवचनं च इच्छा-<br>र्थेष्विति सूत्रे कामप्रवेदने इत्यस्य कर्तव्यताबो-<br>धकवार्तिकम्, विध्यधीष्टयोर्विशेषजिज्ञासा-<br>भाष्यम्, ... २४७                                                               | २४७         |
| विध्यधीष्टपदार्थनिरूपणम्, निमन्त्रणामन्त्रणपदा-<br>र्थनिर्णयः किं विध्यादीनां प्रत्ययार्थत्वसुत वि-<br>षयत्वमिति विचारः, ... २४८-२५०                                                                                                                                         | २४८-२५०     |
| प्रेषातिसर्गेति सूत्रप्रयोजननिरूपणम् ... २५१                                                                                                                                                                                                                                 | २५१         |
| कालसमयेति सूत्रव्याख्याभाष्यम् ... २५२                                                                                                                                                                                                                                       | २५२         |
| धातुसंबन्धे प्रत्यया इति सूत्रे प्रत्ययग्रहणफलनि-<br>रूपणम्, उपपदस्य कालान्यत्वव्यवस्थापनं च २५३-२५४                                                                                                                                                                         | २५३-२५४     |
| क्रियासमभिहार इति सूत्रे परस्मैपदात्मनेपद-                                                                                                                                                                                                                                   |             |

| विषयः                                                                                                                                                                                                                             | पृष्ठसंख्या |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------------|
| ग्रहणस्य कर्तव्यत्वाकर्तव्यत्वविचारः यथा<br>विध्यनुप्रयोग इति सूत्रखण्डनं च ... २५५-२५७                                                                                                                                           | २५५-२५७     |
| समुच्चये सामान्यवचनस्येति सूत्रस्य प्रत्याख्या-<br>नम्, उपसंवादाशङ्कयोश्चेत्यस्यापि तुमर्थ इ-<br>त्यादिसूत्रे तुमर्थनिरूपणम्, उरीचाम्माळीत्यत्र<br>नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वपरिभाषा ज्ञापनञ्च ... २५८-२५९                             | २५८-२५९     |
| समानकर्तृकयोरिति सूत्रे पौर्वकल्पस्य द्योत्यत्वा-<br>च्यत्वविचारः समानकर्तृकयोरिति वचननिर्दे-<br>शस्य तन्त्रत्वातन्त्रत्वविचारः, बह्वीषु क्रिया-<br>सु क्त्वाप्रत्ययानामुपपादनम् व्यादाय स्वपिती-<br>त्यस्योपपादनञ्च, ... २६०-२६१ | २६०-२६१     |
| विभाषाग्र इति सूत्रस्याप्राप्तविभाषात्वव्यवस्था-<br>पनम् ... २६२                                                                                                                                                                  | २६२         |
| खादुमीति सूत्रे मान्तनिपातनफलप्रदर्शनम्, णमुलः<br>तुमर्थकत्वव्यवस्थापनेन सर्वेष्टसाधनम् ... २६३-२६५                                                                                                                               | २६३-२६५     |
| वर्षप्रमाण इति सूत्रे ऊलोपस्थास्यान्यतरस्यां ग्रह-<br>णप्रत्याख्यानम्, करणे हन इति सूत्रसार्थ-<br>क्योपपादनं च, ... २६६                                                                                                           | २६६         |
| अधिकरणे बन्ध इत्यत्र संज्ञायामित्यस्य निवेशः,<br>तिर्यचीति निर्देशस्य सौत्रत्वोपपादनम्, ना-<br>थार्थप्रत्यय इति सूत्रेऽर्थग्रहणप्रत्ययग्रहणप्र-<br>योजननिरूपणम् ... २६७                                                           | २६७         |
| अन्वचीति निर्देशस्य सौत्रत्वोपपादनम्, कर्तरि<br>कृदिति सूत्रस्य फलप्रदर्शनम्, कर्तरि कृदिति<br>सूत्रसत्त्वे दूषणमाशङ्क्य तदुद्धारः ... २६८-२६९                                                                                    | २६८-२६९     |
| कृत्यसंज्ञा कृत्संज्ञयोरसमावेशसाधनम्,<br>कर्तरि कृदिति सूत्रं प्रत्ययनियमः संज्ञानिय-<br>मो वेति विचारः, ... २७०-२७३                                                                                                              | २७०-२७३     |
| लः कर्मणीति सूत्रस्य पदकृत्यप्रदर्शनम्, ... २७४                                                                                                                                                                                   | २७४         |
| प्रसङ्गतोऽनुदात्तञ्जित इत्यादीनां विध्यर्थत्वनिय-<br>मार्थत्वविचारः ... २७५                                                                                                                                                       | २७५         |
| लस्येत्यत्र केवलस्य विशिष्टस्य वा स्थानित्वमिति<br>विचारः ... २७६-२७७                                                                                                                                                             | २७६-२७७     |
| टित आत्मनेपदानामिति सूत्रे आनस्यैत्ववारण-<br>परं भाष्यम्, ... २७८-२७९                                                                                                                                                             | २७८-२७९     |
| णलः क्षित्करणतत्प्रत्याख्यानभाष्यम् ... २८०-२८१                                                                                                                                                                                   | २८०-२८१     |
| लङ्गदतिदेशे जुस्भाववारणोपायपरं वार्तिकं भा-<br>ष्यं च हिन्योरुत्त्वप्रतिषेधप्रतिपादनम्, ... २८२                                                                                                                                   | २८२         |
| पचावेदमित्यत्रैत्ववारणपरं भाष्यम्, याहुडादेः<br>सीयुदप्रतिषेधपरं भाष्यं वार्तिकानि च ... २८३                                                                                                                                      | २८३         |
| याहुटो ङित्वप्रयोजननिरूपणम्-आत इत्यस्य<br>विध्यर्थत्वनियमार्थत्वविचारश्च, ... २८४-२८५                                                                                                                                             | २८४-२८५     |
| आर्धधातुकं शेष इत्यत्र धातुग्रहणस्य कर्तव्यत्वा-<br>कर्तव्यत्वविचारः ... २८६                                                                                                                                                      | २८६         |

॥ श्रीदधिमथी जयति ॥  
श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचितम्  
महाभाष्यम् ।

तद्याख्यानभूतः कैयटविरचितः प्रदीपः  
तद्याख्यानभूतो नागेशभट्टविरचित उद्ध्योतश्च प्रारब्धः ।  
तत्र तृतीयाध्याये प्रथमपादे प्रथममाह्निकम् ।  
[विधिप्रकरणे प्रत्ययप्रकरणमारभ्यते ।]

( ३८० अधिकारसूत्रम् ॥ ३ । १ । १ आ. १ सूत्रम् )

६१७ प्रत्ययः ॥ ३ । १ । १ ॥

( अधिकारत्वस्थापनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अधिकारेण्यं प्रत्ययसंज्ञा क्रियते । सा प्रकृत्युप-  
पदोपाधीनामपि प्राप्नोति । तस्याः प्रतिषेधो वक्त-  
व्यः । प्रकृति गुप्तिङ्कितः । उपपद स्तम्बकर्णयोः ।  
उपाधि हरतेर्द्वितीयाधयोः पशौ । एतेषां प्रतिषेधो  
वक्तव्यः ॥

( प्रदीपः ) श्रीगणेशाय नमः ॥ प्रत्ययः ॥ १ ॥ अधि-  
कारिणेति । यदि तु प्रकारान्तरेण संज्ञिस्वरूपनिर्देशादिना  
संज्ञा क्रियते ततो न स्यादतिप्रसङ्गः । यदा तु गौरवादिप्रसङ्ग-  
परिहारायाधिकारेण क्रियते ततोतिप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥ तत्र यदि  
सर्वे संज्ञिनः स्वरूपेण निर्दिश्येरन् ततो गौरवं स्यात् ॥ अथ  
'सप् प्रत्यय' इति सनः सकारादारभ्य कपः पकारेण  
प्रत्याहाराश्रयणेन संज्ञा विधीयेत तदानेकस्य पकारस्य संभ-  
वात् संदेहः स्यात् ॥ ननु प्रतियोगमुपस्थानेपि वाक्यभेद-  
प्रसङ्गात् प्रकृत्यादीनां प्रत्ययसंज्ञा न भविष्यति । तथा हि—  
हरतेर्धातोर्द्वितीयाधयोः कर्मणोरुपपदयोः पशौ  
कर्तरीन्प्रत्ययो भवतीत्येकं वाक्यम्, ते च हरतिह-  
तिनाथपशवः प्रत्ययसंज्ञा इति द्वितीयं वाक्यम् । न  
चैकवाक्यतायां संभवन्त्यां वाक्यभेदो युक्तः ॥ नैतदस्ति ।  
सनादीनामपि वाक्यभेदेनैव संज्ञा विधेया । नह्यसतः संज्ञि-  
नस्संज्ञाविधानमुपपद्यते । तत्रैकेन वाक्येन सनादीनां विधिः ।  
अपरेण तेषामेव संज्ञाविधिः । ततश्च यथा सनादीनां वाक्य-  
भेदेन संज्ञाविधिः, एवं प्रकृत्यादीनामपि प्रतिसंज्ञि प्रत्ययसं-

ज्ञोपस्थानसामर्थ्यात् संज्ञासंज्ञिसंबन्धप्रतिपत्तियोग्यविभक्त्यन्त-  
राध्याहारेण प्राप्नोति । सनाद्युत्पत्तिवाक्य एव प्रथममेतेषां  
पारार्थ्यमवगतम् । द्वितीये तु संज्ञासंज्ञिसंबन्धप्रतिपादनवाक्ये  
संज्ञासंबन्धप्रतिपत्तौ स्वार्थता स्यात् । यथा च सप्तमीनिर्दिष्टस्य  
वाक्यभेदेनोपपदसंज्ञाऽधिकाराद्भवति तथा प्रत्ययसंज्ञापि प्रा-  
प्नोति ॥ उपाधिशब्देन चेह तुल्यन्यायत्वाद्विशेषणमप्यु-  
च्यते । क्वचित्तु, तयोर्भेदेन व्यवहारो दृश्यते । यथा 'नोपाधि-  
रुपाधिर्भवति विशेषणस्य वा विशेषणमिति ॥

'अर्थविशेष उपाधिस्तदन्तवाच्यः समानशब्दो यः ।  
अनुपाधिरतोऽन्यः स्याच्छ्लाघादि विशेषणं यद्वत् ॥'  
इति ॥

( उद्ध्योतः ) श्रीगणेशाय नमः ॥ प्रत्ययः ॥ १ ॥ अधिकारे-  
ण्यस्य प्रयोजनमाह—यदि त्विति ॥ अनेकस्येति । प्रत्यासत्त्या-  
श्रये तिपः पकारेण, व्याख्याश्रये तष्टतनसनथनाश्चेति तनपः पका-  
रेणेत्यर्थः ॥ एवं च गौरवातिव्याख्यादिदोषपरिहारायाधिकार एव  
कर्तव्यः ॥ तथा च प्रकृत्यादिष्वतिप्रसङ्ग इति भावः ॥ तमाक्षिपति—  
नन्विति । विधीयमानस्य सनादेः प्रथमान्ततया प्रत्यय इत्यनेनैव  
सामानाधिकरण्यादेकवाक्यतया संज्ञासंबन्धः ॥ अन्येषां तु विविभ-  
क्तित्वाद्वाक्यभेदेनैव संज्ञासंबन्ध इति भावः ॥ संबन्धेकवाक्यत्व  
एव वाक्यभेदो दोषो, नत्वसंभव इति समाधत्ते—नैतदिति । ननु  
विविभक्तित्वात् कथं प्रत्यय इत्यनेन तेषां संबन्ध इत्यत आह—  
विभक्त्यन्तरेति । ननु सनादिविधानार्थत्वात्प्रकृत्यादेरप्रधानतया  
संज्ञा न भविष्यतीत्यत आह—सनादीति । अन्यत्राप्रधानत्वेपि  
अन्यत्र संस्कार्यत्वलक्षणस्वार्थत्वेऽविरोध इति भावः ॥ ननु प्रकृतीनां  
प्रत्ययविधानादुद्देश्यतया तातामेव संज्ञायामप्युद्देश्यत्वं न्याय्यं न तु  
प्रत्ययानामिति चेन्न समानविभक्तिकत्वेन प्रत्ययानां कृतोद्देश्यतया  
विभक्त्यन्तराध्याहारेण प्रकृत्यादीनामपि तत्संभवादित्यभिमानः ॥

१ अर्थविशेषत्वमेव विवृणोति तदन्तेत्यादिना । ( र. ना. )

२ विरुद्धा विभक्त्यस्य तत्त्वादिति बहुव्रीहिः । ( र. ना. )

३ अभिमानोक्तिवीजं तु समानविभक्तिकत्वेन सनादिभिरेव प्रत्ययसंज्ञाया  
उद्देश्यकाङ्क्षाशान्तौ विभक्त्यन्तराध्याहारेण प्रकृत्यादीनामुद्देश्यत्वे मानाभाव  
इति । ( र. ना. )



श्रद्धादिविशेषणस्य प्रत्ययसंज्ञा कुतो नोद्भावितेत्यत आह—उपाधि-  
शब्देनेति ॥ तुल्यन्यायत्वादिति । प्रत्ययनिमित्तत्वेन प्रकृत्या  
तुल्यन्यायत्वमित्यर्थः । एवं चोपाधिषु तदुद्भावेनैव विशेषणेषु उद्भा-  
वितेति भावः ॥ तदन्तर्वाच्यः प्रत्ययान्तवाच्य इत्यर्थः ॥ समान-  
शब्द इति प्रयोगे भिन्नशब्दबोध्यतादशायां समानाधिकरणशब्द-  
बोध्यो योऽसौ प्रत्ययान्तशब्दवाच्यः स उपाधिरुच्यत इत्यर्थः ॥  
यथा पञ्चालानां विषयः पाञ्चाल इत्यत्र देशो, वृत्तिहरिरित्यादौ च  
श्रद्धादिः पशुः ॥ नानार्थत्वात्संदेहवारणाय वृत्तिहरिः श्रद्धादौ विशेष-  
नियमार्थाय स्पष्टप्रतिपत्तये वा क्वचित्समानाधिकरणशब्दप्रयोगोऽपि ॥  
आभ्यामपत्यकर्त्रादीनामुपाधित्वव्यावृत्तिः श्रद्धादिव्यावृत्तिश्च ॥  
श्रद्धादीति आदिना 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादित्यादि ॥  
अत एव तदेसमानाधिकरणमेव गार्गिकया श्लाघते' इति पदान्तराभि-  
धेयं च । तदेप्रयोगे च बुजोऽसाधुत्वमेव अर्थविशेष उपाधिरित्यादि  
कात्यायनवचनमिति न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः ॥

( तृतीयस्य प्रत्याक्षेपप्रश्नभाष्यम् )

किं च स्यात् यद्येतेषामपि प्रत्ययसंज्ञा स्यात् ? ॥

( प्रदीपः ) किञ्च स्यादिति । नहि संज्ञाप्रवृत्तिमात्रादेव  
दोषो भवति । किन्तु तन्निमित्तकार्यप्रवर्तनात् । न च प्रकृत्या-  
दीनां किञ्चित्तन्निमित्तं कार्यं संभवति । परत्वं तावदवधिविशेषो-  
पादानेन सनादिभिरेव प्रतिपन्नम् । न च गुणादीनां सनादीनां  
च परस्परपक्षे परत्वं युज्यते, विरोधात् । उपपदस्यापि समाधे-  
सति पूर्वनिपातेन भवितव्यमिति परत्वाभावः । उपाधेरपि  
पौर्वापर्यस्य लौकिके प्रयोगे नियमाभावात् स्थितस्यैव च परत्वस्य  
शास्त्रेणानुवादाच्छास्त्रस्य विधायकत्वाभावादनुवादकत्वाद् अ-  
र्थस्य चोपाधित्वात्तस्य च परत्वासंभवात्परत्वाभावः ॥ आद्यु-  
दात्तत्वमपि न भविष्यति । यथाखं लक्षणेन तेषां स्वरस्य  
विहितत्वात् । अङ्गसंज्ञा च विधानप्रतिबद्धा । न च प्रकृत्या-  
दयः कुतश्चिद्विहिता इति तेषु परतः सा नान्यस्य भविष्य-  
तीति प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) प्रकृत्यादीनामिति । न च प्रातिपदिकत्वाभावः  
फलम्, ड्याप्प्रातिपदिकादित्यादौ उद्देश्यतावच्छेदकत्वेन तैरेव-  
ज्ञापनात् ॥ ननु प्रतिसंज्ञिपरश्चेत्युपस्थानात् प्रकृत्यादयोऽवधिविशे-  
षानुपादानेपि संनिधानात् सनादेरेव परे भवन्वित्यत आह—  
नचेति । युगपदिति शेषः ॥ समासे इति नित्यसमास इत्यर्थः ॥  
लौकिके प्रयोगे पौर्वापर्यस्य नियमाभावादुपाधेरपि परत्वाभाव इत्य-

न्वयः ॥ तत्र हेतुमाह—स्थितस्यैवेति । तदनूय साधुत्वस्यैव विधे-  
यत्वमिति भावः ॥ विधायकत्वाभावादिति । परत्वादिविधायक-  
त्वाभावादित्यर्थः ॥ तद्विधायकत्वेऽप्याह—अर्थस्य चेति ॥ यथा-  
स्वमिति । तेषामनवकाशत्वेन बाधकत्वमिति भावः ॥

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

परत्वमाद्युदात्तत्वमङ्गसंज्ञेत्येते विधयः प्रसज्येरन् ॥

( प्रदीपः ) परत्वमिति । प्रकृति प्रत्यययोः पर्यायेण  
परस्परपक्षे परत्वं स्यात् । शब्दान्तरापेक्षं वा प्रकृतेः, प्रकृत्य-  
पेक्षं तु प्रत्ययस्य । उपपदस्यापि परत्वादुपसर्जनं पूर्वमित्ये-  
तद्वाजपुरुषादिषु सावकाशं बाधित्वा परत्वं स्यात् । भोक्तुं व्रज-  
तीत्येव च नित्यं स्याद् न तु व्रजति भोक्तुमिति । उपाधि-  
वाचिनोपि प्रयोगैर्नियमे प्राप्ते परश्चेति नियमः स्यात् । यः  
प्रत्ययः स पर इति परिभाषणात् ॥ आद्युदात्तत्वमपि स्वरांतरं  
बाधित्वा स्यात् ॥ अङ्गसंज्ञेति । ननु विधानप्रतिबद्धाङ्गसंज्ञा,  
न चेह प्रकृत्यादयो विधीयन्ते । नैष दोषः । सिद्धशब्दान्वा-  
ख्यानय तेषामपि शास्त्रेण विधानात् । परत्वेन च पूर्वस्या-  
वधेराक्षेपात् ॥ ननु पूर्वोपेक्षेपि परत्वे तस्माद्विधिर्नास्तीत्यङ्ग-  
संज्ञा न भविष्यतीति चिन्त्यमेतत् ॥

( उद्ध्योतः ) पर्यायेणेति । यौगपधे हि विरोध इति भावः ॥  
सन्नादीनां परत्वबोधनेनैव सूत्रोपपत्तौ सनित्यादेर्विभक्तिविपरिणा-  
मादिनाऽर्थान्तरवर्णनमनुपपन्नमित्यत आह—शब्दान्तरापेक्षमि-  
ति ॥ प्रकृत्यपेक्षं त्विति । तासां पञ्चम्यन्तत्वादिति भावः ॥ ननु  
राजादीनामपि प्रातिपदिकादिति निर्दिष्टत्वात् प्रत्ययसंज्ञायां परश्चेत्यस्य  
प्राप्तौ कथमुपसर्जनं पूर्वमित्येतत्सावकाशमत आह—भोक्तुं व्रज-  
तीति । अत्र समासाभावेन उपपदस्य परत्वं स्यादिति भावः ॥ अर्थे  
परत्वासंभवस्योक्तत्वादाह—उपाधिवाचिन इति ॥ स्वरान्तर-  
मिति । योनवकाशस्तद्विषये मा भूत् सावकाशविषये तु स्यादिति  
तात्पर्यम् ॥ न च प्रातिपदिकाद्वातोरित्यनेन सर्वप्रकृतिनिर्देशात्तदंशे  
सावकाशविषयो दुर्लभ इति वाच्यम्, स्वरान्तरगतं नित्यत्वं बाधित्वा  
पर्यायः स्यादित्यत्र तात्पर्यात् ॥ सिद्धेति । 'ढकि लोपः' इत्यनुवा-  
देन ढको विध्यनुमानवदिहाप्यनुवादेनैव प्रकृतिविधानानुमानमिति  
भावः ॥ ननु कुतश्चित्पूर्वसाद्विधिर्नास्तीति कथमङ्गत्वमत आह—  
आक्षेपादिति । तथा च पूर्वोद्देशेन परत्वेन तेषां विधानमिति भावः ॥  
पूर्वोपेक्षेति परत्वे इति । अनुमितो विधिः सामान्यत एव, पूर्वो-  
द्देशेन तु परत्वमात्रविधानम् वस्तुतो ढगादेर्मानान्तरेणासिद्ध्या भवतु

- १ अपत्यकर्त्रादीनां प्रत्ययवाच्यत्वं न तु तदन्तर्वाच्यत्वमिति भावः । ( र. ना. )
- २ गार्गिकया श्लाघते इत्यादौ श्रद्धादीनां समानाधिकरणशब्दबोध्यत्वं  
नास्तीति भावः । ( र. ना. )
- ३ विशेषणत्वादेवेत्यर्थः । ( र. ना. )
- ४ तदिति व्यसं पदम् । श्रद्धादिकमित्यर्थः । असमानाधिकरणमित्यस्य  
असमानाधिकरणपदमतिपाद्यमित्यर्थः । ( र. ना. )
- ५ पदान्तराप्रयोगे इत्यर्थः । ( र. ना. )
- ६ 'यद्येतेषामपि' ॥
- ७ लोकोक्तमित्यर्थः । ( र. ना. )

८ उपाध्यविधायकपशुशब्दादेरपीत्यर्थः । ( र. ना. )

९ विधिसंबन्धेत्यर्थः । ( र. ना. )

१० प्रत्ययपूर्वोदासेनेति शेषः । ( र. ना. )

११ प्रातिपदिकत्वज्ञापनादित्यर्थः । ( र. ना. )

१२ प्रतिपदोक्तप्रकृत्यादित्स्वरविधीनामित्यर्थः । ( र. ना. )

१३ अस्य 'बाधित्वे'त्यत्र संबन्धः । ( र. ना. )

१४ लोकोक्तः—इत्यादिः । ( र. ना. )

१५ सावकाशमित्यादिः । ( र. ना. )

१६ 'पूर्वोपेक्षेपि परत्वेन' ।

तद्विध्यनुमानम्, प्रकृत्यादीनां तु मानान्तरेण सिद्धतया तद्विध्यनुमानमेव दुर्लभमिति भावः ॥ चिन्त्यमेतदिति । इत्यादयः प्रत्ययसंज्ञा भवन्ति, ते च प्रत्ययेभ्यः शब्दान्तरेभ्यो वा परे भवन्तीत्यत्र परशब्दस्य धर्मिप्रधानतया परत्वविशिष्टानां तेषामेव विधानं शाब्दम् ॥ प्राप्ताप्राप्तविवेकन्यायेन तु देशमात्रविधानम् ॥ अत एव सर्वेऽपि विशिष्टविधिरेव । प्राप्ताप्राप्तविवेकन्यायेन तु कस्यचिद्गुणविधित्वमिति मीमांसकाः ॥ नहि यस्मात्प्रत्ययाविधिरित्यत्र प्राप्ताप्राप्तविवेकन्यायलब्धविधेयत्वमेव गृह्यते इत्यत्र मानमस्तीत्यज्ञसंज्ञा प्रयोजनमेव ॥ ननु विधिग्रहणसामर्थ्यान्त्रयायलब्धविधेयत्वस्य ग्रहः, स्त्री इयती इत्यादौ इदम् निरूपिताज्ञत्वस्य दुर्वारत्वेन व्याख्याभावादिति चेन्न, भनन्तीत्यादौ दीर्घवारणाय विधिग्रहणस्यावश्यकत्वादित्याशयात् ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १६८१ अधिकारत्वे दूषणनिराकरणवार्तिकप्रथमखण्डम् )

॥ \* ॥ प्रत्ययाधिकारे प्रकृत्युपपदोपाधीनामप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अधिकारेणापि प्रत्ययसंज्ञायां सत्यां प्रकृत्युपपदोपाधीनामप्रतिषेधः । अनर्थकः प्रतिषेधोऽप्रतिषेधः ॥

प्रत्ययसंज्ञा कस्मान्न भवति ?

( वार्तिकद्वितीयखण्डम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ निमित्तस्य निमित्तिकार्यार्थत्वाद-  
न्यत्रापि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निमित्तानि हि निमित्तिकार्यार्थानि भवन्ति ।

किं पुनर्निमित्तम् । को वा निमित्ती ? ॥

प्रकृत्युपपदोपाधयो निमित्तम्, प्रत्ययो निमित्ती ॥ अन्यत्रापि चैव न्यायो दृष्टः नावश्यमिहैव । कान्यत्र ? ॥

लोके । तद्यथा—बहुष्वासीनेषु कश्चित्कचित्पृच्छति—कतरो देवदत्तः, [ कर्तमो यज्ञदत्त ] इति । स आह—‘योश्चे, यः पीठे’ इति । योश्चे यः पीठ इत्युक्ते निमित्तस्य निमित्तिकार्यार्थत्वादध्यवस्यति

१ यथा दध्ना जुहोतीत्यादौ दधिविशिष्टहोमविधानेऽपि पर्ववसने दधिरूपगुणविधानमेवेति । ( र. ना. )

२ अन्यथेत्यादिः । ( र. ना. )

३ स्त्रीशब्दे इत्यादिः । ( र. ना. )

४ विधिग्रहणेत्यादिः । ( र. ना. )

५ नहि भाकारावधिकपरत्वविशिष्टस्य श्रमो विधानमतो भाकारस्य न तत्राज्ञत्वमिति भावः । ( र. ना. )

अयं देवदत्तोऽयं यज्ञदत्त इति । नेदानीमश्वस्य पीठस्य वा ‘देवदत्त’ इति संज्ञा भवति ॥

किं पुनर्निमित्तम्, को वा निमित्ती ? ॥

निर्ज्ञातोऽर्थो निमित्तम् । अनिर्ज्ञातोऽर्थो निमित्ती । इह च प्रत्ययोऽनिर्ज्ञातः, प्रकृत्युपपदोपाधयो निर्ज्ञाताः ॥

कं ।

धातूपदेशे प्रातिपदिकोपदेशे च ॥ ते निर्ज्ञाता निमित्तत्वेनाश्रीयन्ते ॥

( प्रदीपः ) निमित्तस्येति । प्रकृत्यादीनां भूतविभक्त्या निर्देशात् सनाद्युत्पत्तौ निमित्तभावेनोपादानात् पाराध्यात् स्वसंस्कारं प्रति प्रयोजकत्वाभावादित्यर्थः । तत्र वाक्यभेदेनापि विधीयमाना प्रत्ययसंज्ञा सनादिभिरेव संबद्ध्यते, तेषामेव निमित्तिलात्तां प्रति प्रयोजकत्वात् । संज्ञासंबन्धप्रतिपत्तियोग्यविभक्तिनिर्देशाद् । द्वयोश्च परस्पराकाङ्क्षायां संबन्धः, न त्वन्यतराकाङ्क्षायां सीतारावणयोरिवेति सत्यामपि संज्ञाया आकाङ्क्षायां प्रकृत्यादीनां विशेषणत्वादानाकाङ्क्षत्वात् संज्ञासंबन्धाभाव इत्युक्तं भवति ॥ किं पुनरिति । निमित्तत्वाच्छब्दानां निमित्तनिमित्तिभावो नोपपद्यत इति प्रश्नः ॥ प्रकृतीति । प्रतिपादकानां शब्दानामुपायभावेन शास्त्रेण व्यवस्थापनात्तदनुगुणविभक्तिनिर्देशादस्ति निमित्तनिमित्तिभावः ॥ कतर इति । किं यत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य उतरच वा बहूनां जातिपरिग्रहे उतमजिति सूत्रद्वय उपाधिप्रत्याख्यानाद् बहूनामप्येकस्य निर्धारणे कतरशब्दः प्रयुक्तः ॥

( उद्घोतः ) भूतविभक्त्या सिद्धत्वबोधकविभक्त्या ॥ ननु भिन्ने वाक्ये स्वसंस्कारं प्रति प्रयोजकता स्यादेवेत्यत आह—वाक्यभेदेनापीति । द्वितीयवाक्यस्यापि ‘गुप्-तिज्-किङ्गयो यः सन्स प्रत्ययः’ इत्येवंरूपस्यैव स्वीकारेण तत्रापि भूतविभक्त्या निर्देशात्पारार्थ्यमेव प्रकृत्यादीनामिति भावः ॥ तेषामेव तां प्रति प्रयोजकत्वे हेतुमाह—संज्ञासम्बन्धेति । न च द्वितीयवाक्ये योग्यविभक्त्या विपरिणामः ॥ योग्यविभक्तिनिर्दिष्टेषु सनादिषु चारितार्थ्यादिति भावः ॥ युक्त्यन्तरमप्याह—द्वयोश्चेति । प्रत्ययसंज्ञायाः संज्ञित्वेन प्रत्ययापेक्षावत् प्रकृत्याद्यपेक्षायामपि प्रकृत्यादीनां प्रत्ययविधौ निमित्तभावेनोपक्षीणानां संज्ञां प्रत्यपेक्षाभावात्प्रत्ययसंज्ञा नेत्यर्थो निमित्तिकार्यार्थत्वादित्यनेन प्रतिपादित इत्यर्थः । उभयाकाङ्क्षया सम्बन्धस्य न्याय्यतरत्वादित्यभिमानः ॥ वस्तुतस्तु गुणादिभ्यः सन्प्रत्ययः परोभवतीत्येवं विशिष्टस्य संज्ञिन एकवाक्यतया विधिसम्भवात् भिन्न-

६ प्राचीनतरपुस्तके नोपलभ्यते ॥

७ निमित्तस्य, ज्ञापककारणस्याश्वस्य पीठस्य वा, देवदत्तरूपस्य निमित्तानः कार्यार्थत्वाद् ज्ञानार्थत्वादित्यर्थः । ( र. ना. )

८ तस्मिन्प्राचीनतरपुस्तके नास्ति ॥

९ ‘कुत्र’ ॥

१० ‘न इह निमित्तत्वेन’ ॥

११ भूतार्थान्वययोऽर्थबोधकविभक्त्येत्यर्थः । ( र. ना. )

वाक्यत्वे मानाभावात् प्रकृत्यादीनां संज्ञा ॥ न ह्युद्भिदा यजेते-  
त्यादौ नामधेयसम्बन्धलाभाय वाक्यभेदं मन्वते न्यायविदः । तत्रो-  
द्भिदसंज्ञाविशिष्टस्यैव यागस्य विधानात् । शब्दार्थयोरभेदाच्च नान्व-  
यायोग्यता, नापि लक्षणा, अन्यथाऽतः संज्ञानुपपत्तिवत् आद्युदा-  
त्तस्यापि विधानासम्भवात् 'प्रत्ययस्वरश्च तासेवृत्तिसंनिर्योग-  
शिष्टः' इति लुटः प्रथमस्येति सूत्रशेषस्य भाष्यविरोधः ॥ 'यदैव  
तासिः प्रवर्तते तदैवोदात्तत्वयुक्तः' इति कैयटैः ॥ किञ्च संज्ञि-  
मुद्दिश्य संज्ञाविधाने पूर्वं बुद्धिविषयस्य संबन्धस्य 'पूर्वोच्चारितः  
संज्ञी, परोच्चारिता संज्ञा, सतो मांसपिण्डस्य देवदत्त इति  
संज्ञा क्रियते । सतो हि कार्यिणः कार्येण भवितव्यम्' इत्यादि  
भाष्यसम्मतत्वेपि प्रकृते 'अस्य सूत्रस्य शाटकं वयं' इत्यादिदेव  
संज्ञाविशिष्टविधाने बाधकाभावात् । अयमेव निमित्तिकार्यार्थत्वात्  
इति भाष्यस्यार्थः । अयं भावः—निमित्तिनोऽनिर्ज्ञातत्वाच्चेनैकवाक्य-  
तया विशिष्टविधिसम्भवः । निमित्तिष्वन्वये तु वाक्यभेद आपत्तीति  
वाक्यभेदभिया न तैस्तैः सम्बन्ध इति ॥ प्रतिपादकानामिति—  
अर्थप्रतिपादकत्वेन लोके सिद्धानामित्यर्थः ॥ उपायभावेनेति ।  
कार्त्तिकप्रकृतिप्रत्ययविभागमुपायत्वेनाश्रित्यान्वाख्यानादित्यर्थः ॥  
तदनुगुणेति । तत्र निमित्तत्वानुगुणा प्रथमा अन्याः प्रायेण नि-  
मित्तत्वानुगुणा इत्याहुः ॥ बहुषु निर्धारणे डतरोनुपपन्न इत्यत आह—  
किं यदिति ॥

( १६८२ समाधानान्तरवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥\*॥ प्रधाने कार्यसंप्रत्ययाद्वा सिद्धम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) अथ वा प्रधाने कार्यसंप्रत्ययो भवति ॥

किं च प्रधानम् ? ।

प्रत्ययः । तद्यथा—बहुषु यात्सु कश्चित्कंचित्  
पृच्छति को यातीति । स आह—राजेति । राजेत्युक्ते  
प्रधाने कार्यसंप्रत्ययाद्यः पृच्छति, यश्च कथयति,  
उभयोः संप्रत्ययो भवति ॥

किं कृतं पुनः प्राधान्यम् ? ॥

अर्थकृतम् । यथा पुनर्लोकेऽर्थकृतं प्राधान्यम् ॥

शब्दस्येदानीं किं कृतं प्राधान्यम् ? । शब्दस्या-  
पूर्वोपदेशः प्राधान्यम् । यस्यापूर्वोपदेशः स प्रधा-  
नम् ॥ प्रकृत्युपपदोपाधयश्च निर्दिष्टाः ॥ क ? । धातू-  
पदेशे प्रातिपदिकोपदेशे च ॥

( प्रदीपः ) प्रधान इति । प्रत्ययसंज्ञा स्वविषयप्रकृतस्ये  
प्रधानमपेक्षते न तु पारतन्त्र्यादप्रधानमित्यर्थः ॥ किंकृत-

मिति । भवतु राज्ञः प्राधान्यं तदधीनस्थितित्वादन्वेषाम् ।  
इह तु कथमिति प्रश्नः ॥ अर्थकृतमिति । प्रयोजनकृतमि-  
त्यर्थः । यस्यापूर्वं इति । तदर्थत्वादन्वेषां तस्यैव प्राधान्य-  
मित्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) प्रधाने कार्यसंप्रत्ययादित्यस्य निमित्तिकार्या-  
र्थत्वादित्यनेन पौनरुक्त्यमाशङ्क्याह—प्रत्ययसंज्ञेति । पूर्वं प्रत्य-  
यसंज्ञाया आकाङ्क्षामङ्गीकृत्य प्रकृत्यादीनां निरपेक्षत्वात्संज्ञाऽभाव  
इत्युक्तम् । इदानीं तु प्रत्ययसंज्ञाया अपि गुणभूतेषु आकाङ्क्षा ना-  
स्तीति प्रतिपाद्यत इति विशेष इति भावः ॥ वाक्यभेदभिया तैस्तस्या  
असम्बन्ध इति प्रागुक्तम् । अनेन तु तत्रान्वयप्रसक्त्यभाव एवोच्यते  
इति विशेष इति तत्त्वम् ॥ भाष्ये को यातीति डतरस्य वैकल्पिक-  
त्वात् तदप्रयोगः ॥ उभयोः संप्रत्ययो भवतीति तत्र कथयितुः  
संप्रत्ययः तन्मूलकप्रयोगः तथात्रापि आचार्यस्तेनैव तात्पर्येण प्रत्यु-  
क्तवान् शिष्याणां च तथैव बोध इति भावः ॥ प्रयोजनकृतमिति ।  
प्रयोजकत्वकृतप्रेरणाकृतमित्यर्थः ॥ भाष्ये यथापुनरित्यव्ययमस्तु  
पुनरित्यर्थः ॥ किं कृतमिति । प्रेरकत्वाभावादिति भावः ॥ अपूर्वो-  
पदेशमात्रेण कथं प्राधान्यमत आह—तदर्थत्वादिति । तन्निष्पाद-  
कत्वादित्यर्थः ॥

( विकारागमानां प्रत्ययसंज्ञापादनभाष्यम् )

यद्येव निमित्तस्य निमित्तिकार्यार्थत्वात् यद्वा  
प्रधाने कार्यसंप्रत्ययात्प्रकृत्युपपदोपाधीनां न भव-  
ति । विकारागमानां तु प्राप्नोति 'हनस्त च' 'त्रपु-  
जतुनोः धुक' एतेषां ह्यपूर्वोपदेशात्प्राधान्यम्,  
निमित्तिनश्चैवेति ॥

( प्रदीपः ) यद्येवेति । ननु ये तावत् प्रकृतेर्विकारा-  
गमास्ते प्रकृत्युपपदेवात् प्रकृतिवत् संज्ञया न संभन्त्यन्ते ।  
ये तु प्रत्ययस्य ते तदग्रहणेन गृह्यन्ते एवेति नास्त्यनिष्टप्र-  
सङ्गः । नैतदस्ति । प्रकृतिविकारागमानां तत्संबन्धित्वेपि  
प्रयोजकत्वात् प्रधानत्वाच्च स्यादेव प्रत्ययसंज्ञा । प्रत्ययसंब-  
न्धिनामपि तदवयवत्वे सिद्धे पृथक् प्रत्ययसंज्ञा स्यादेव योग्य-  
तासंभवात् ॥

( उद्धोतः ) प्रयोजकत्वादिति । प्रयुज्यते इति प्रयोजकः  
प्रयोज्यस्तत्त्वात् निमित्तित्वादित्यर्थः ॥ प्रधानत्वाच्चेति । अपूर्वोप-  
देशादित्यर्थः ॥ योग्यतासंभवादिति । समानविभक्तिकत्वरूप-  
योग्यतासंभवादित्यर्थः ॥

१ अथ वृत्तिलस्य प्रवृत्तिलर्थ इति 'यदैव तासिः प्रवर्तते' इति कैयटप्रती-  
यते । ( र. ना. )

२ अस्मात्कैयटो विशिष्टस्यैव विधानमिति लभ्यतेऽतः प्रकृतेऽपि विशिष्टस्यैव  
संज्ञिनो विधानमिति भावः । ( र. ना. )

३ यथा तत्र संज्ञाविशिष्टस्य धानं तथाऽत्र संज्ञाविशिष्टस्य विधानमिति

भावः । ( र. ना. )

४ संज्ञाया इत्यर्थः । ( र. ना. )

५ प्रत्ययरूपस्य शब्दस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

६ 'श्रोतृदिष्टाः' ॥

७ बाहुलकात्कर्मणि ण्वुल् । ( र. ना. )

( १६८३ विकारागमानां प्रत्ययत्वापत्तिनिराकरण-  
वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥\*॥ विकारागमेषु च परविज्ञानात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) विकारागमेषु च परविज्ञानात् प्रत्य-  
यसंज्ञा न भविष्यति । प्रत्ययः परो भवतीत्युच्यते ।  
न च विकारागमाः परे [ संभवन्ति ] ॥

( प्रदीपः ) विकारागमेष्विति । यः परः स प्रत्ययः,  
न च विकारागमाः परे । तेन ते प्रत्ययसंज्ञा न भविष्यन्ती-  
त्येवं न व्याख्येयम् । नहि परत्वनिमित्ता प्रत्ययसंज्ञा ॥ अपि  
तु प्रत्ययसंज्ञानिमित्तं परत्वम् । तथा च परत्वाभावेऽपि श्रम्  
बहुजकचां प्रत्ययसंज्ञा भवति ॥ तस्मादेवं व्याख्यायते—  
प्रयोजनाभावाद्विकारागमानां प्रत्ययसंज्ञा न भवति । तथा  
हि । परविज्ञानं प्रत्ययसंज्ञाफलम् । तत् तेषां न संभवति । षष्ठा  
स्थानसंबन्धस्यावयवसंबन्धस्य च प्रतिपादनादागमानां चातु-  
दात्तत्वेन भवितव्यमित्याद्युदात्तत्वाभावः ॥ विकारा अपि  
येऽनच्चास्ते न स्वरभाजः ये तु साच्चास्ते प्रवृत्तिकाल एवा-  
न्तरङ्गत्वात् स्थानिस्वरयुक्ताः । अङ्गसंज्ञापि तन्निमित्ताऽन्यस्य  
न प्राप्नोति । सा हि प्रत्ययविधौ न परत्वनिबद्धा । प्रयोजनाऽभावे  
तु श्रम आगमत्वेऽपि शकारस्येत्संज्ञार्थं प्रत्ययसंज्ञा प्रवर्तत  
एव ॥ परविज्ञानादिति । विभाषा गुण इति हेतौ  
पञ्चमी । फलमपि प्रयोजकत्वाद्धेतुरित्युच्यते । यथाध्ययनेन  
वसतीति । ततश्चायमर्थः । प्रत्ययसंज्ञायां परत्वं फलम् । तच्चात्र  
न संभवतीति प्रत्ययसंज्ञा प्रयोजनाभावान्न भविष्यति ॥

( उद्घोतः ) नहि परत्वनिमित्तेति । तद्व्याप्येत्यर्थः । तथा  
हि सति व्यापकाभावेन व्याप्याभावः सिध्येदिति भावः ॥ अपि तु  
प्रत्ययसंज्ञानिमित्तं परत्वमिति । इदं चिन्त्यम् । राजपुरुष इत्यादौ  
प्रत्ययत्वाभावेपि पुरुषपदस्य परत्वदर्शनात् ॥ अकचामिति । अक-  
चः प्रत्ययत्वफलं प्रत्ययस्थादित्वम् ॥ परविज्ञानमिति । पर-  
श्चेतिपरिभाषा प्रत्ययसंज्ञा चास्याः लिङ्गम् प्रत्ययसंज्ञकः परोभवती-  
त्यर्थ इति भावः ॥ अन्तरङ्गत्वात्स्थानीति । आन्तरतम्येनेत्यर्थः ॥  
आद्युदात्तत्वं तु तद्व्यादौ चरितार्थमिति भावः ॥ साहीति । प्रत्यय-  
विधानेन परत्वेन च प्रतिबद्धेत्यर्थः ॥ शकारस्येत्संज्ञार्थमिति ।

१ विकारागमेषु च प्रत्ययसंज्ञा न भविष्यति परविज्ञानादिति योजना । ( र. ना. )

२ प्राचीनतरपुस्तकद्वये नैवोपलभ्यते ॥ गुस्वरशिवरामशर्मणां पुस्तके  
'सन्ति' इत्युपलभ्यते ॥

३ प्रत्ययविधानपरत्वाभ्यां प्रयुक्तत्वार्थः । ( र. ना. )

४ प्रत्ययसंज्ञायाः फलं परविज्ञानमित्यर्थः । ( र. ना. )

५ निमित्तपदस्य ज्ञापकनिमित्तपरत्वेन व्याप्यार्थलभः । ( र. ना. )

६ यदि 'प्रत्यय एव परः प्रयोक्तव्यः' इति नियमो दर्शितो भवेत् तदा  
भवदुक्तं चिन्त्यत्वं संगतं भवेत् । किं तु 'असति विशेषविधौ प्रत्ययः पर एव  
प्रयोक्तव्यः' इत्येवं नियमे नैव समासघटकपदयोरिहोक्ता व्यवस्थेति राजपुरुषा-  
दिपदानामत्र विचारस्यैवाप्राप्तेर्भूयैव खण्डनप्रभूतिरिति । 'नवीनेभ्योऽप्युत्तमत्वं  
स्वस्य रूपापथितुं नवः । तदाशयमबुद्धयैव खण्डने यतते मृषा ॥' इत्युक्तिः  
फलता भवतीति दाधिमथाः ॥

'अत एव तृणह' इत्यादिनिर्देशाः सङ्गच्छन्ते ॥ श्रमः शकारस्तु श्रान्न-  
लोप इति अत्र विशेषणार्थः इति भावः ॥ नन्वेवं परविज्ञानादिति  
पञ्चमी अनुपपन्ना हेतुत्वाभावादत आह—फलमपीति । भाष्ये  
न च विकारागमाः परे इत्येव पाठः ॥ तदुत्तरं संभवन्तीत्यपाठ  
इत्याशयः ॥ अत्राहुः—प्रत्यय इत्यादीनां त्रयीणामप्यधिकारत्वेन  
प्रतिसूत्रमुपस्थितौ एकवाक्यतया युगपदेव त्रयाणां विधानस्य न्याय्य-  
त्वेन नान्योन्यं प्रत्यन्योन्यस्योद्देश्यता न्यायेति कथं प्रत्ययसंज्ञायाः  
परत्वं फलं, कथं बाधुदात्तत्वमिति ॥ अत एव लुटः प्रथमस्येत्यादि-  
सूत्रस्थभाष्याविरोधः ॥ तस्मादयमर्थः—स्थानषष्ठ्यादिभिर्देशाका-  
ङ्क्षाया विर्योरादीनामभावेन पर इत्यस्यासंबन्धे सन्नियोगशिष्टन्या-  
येन प्रत्यय इत्यादीनामप्यसम्बन्ध इति । परविज्ञानादित्यस्य तत्स-  
न्नियोगशिष्टत्वादित्यर्थः ॥ क्वचित्तु तृणह इमित्यादिनिर्देशाच्चयास-  
योरिति ज्ञापकौच संनियोगशिष्टन्यायानित्यत्वेन प्रवर्तत एव  
संशेति दिक् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं पुनः कारणं समाने अपूर्वोपदेशे प्रत्ययः परो,  
न विकारागमाः परे ॥

( प्रदीपः ) किं पुनरिति । परत्वमेव भवतु प्रत्ययसंज्ञा-  
प्रयोजनमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) पतदेव ध्वनयन्विकारागमेषु परश्चेत्यस्याप्रवृत्तिं  
प्रश्नमुखेनोपपादयति—भाष्ये—किं पुनरिति ॥

( १६८४ विकारागमानां प्रत्ययत्वनिराकरणवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥\*॥ षष्ठीनिर्दिष्टस्य च तद्युक्तत्वात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) षष्ठीनिर्दिष्टं विकारागमयुक्तं भवति ।  
पञ्चमीनिर्दिष्टाच्च प्रत्ययो विधीयते ॥

( प्रदीपः ) षष्ठीनिर्दिष्टस्येति । षष्ठा च पूर्वोदितस्य  
संबन्धस्य प्रतिपादनाद्विरोधात् परत्वाभाव इत्यर्थः ॥ पञ्च-  
मीनिर्दिष्टाच्चेति । पञ्चमीनिर्देशे पर्यायेण पूर्वपरत्वयोः  
प्राप्तयोः परश्चेत्यनेन परत्वं नियम्यत इति नास्ति कश्चिद्वि-  
रोध इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) पूर्वोदितस्येति । स्थानसम्बन्धस्यावयवसम्ब-  
न्धस्य चेत्यर्थः ॥

७ अर्थप्रयुक्तान्तरतम्येनेत्यर्थः । ( र. ना. )

८ संबद्धेत्यर्थः । संबन्धश्च प्रयोग्यप्रयोजकभाव इति भावः । ( र. ना. )

९ प्रत्ययसंज्ञायां परत्वं फलम् । तच्चात्र न संभवतीति कैटयदर्शनेन प्रकृत-  
भाष्ये 'संभवन्ती'ति पाठः प्रतीयते, नागेशस्तु कुतोऽयुक्तत्वं वदतीति स एव  
प्रष्टव्यः । ( र. ना. )

१० प्रत्ययः, परश्च, आद्युदात्तश्च, इत्येतेषां त्रयाणामित्यर्थः । ( र. ना. )

११ विकारादीनां देशाकाङ्क्षाया अभावेन स्थानषष्ठ्यादिभिः पर इत्यस्या-  
संबन्धे इत्यर्थः । ( र. ना. )

१२ अयं भावः । अकचः परत्वाभावेन तत्सन्नियोगशिष्ट प्रत्ययसंज्ञाऽप्रवृत्तौ  
प्रत्ययत्वादित्वमाप्तौ न यासयोरिति निषेधो व्यर्थ एव स्यादिति । ( र. ना. )

१३ 'परा' इति प्राचीनतरपुस्तके

( १६८५ बाधकवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ प्रत्ययविधानानुपपत्तिस्तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रत्ययविधिस्तु नोपपद्यते ॥ क ? । यत्र विकारागमाः शिष्यन्ते 'हनस्त च' 'त्रपुजतुनोः पुक्' इति ॥

( प्रदीपः ) प्रत्ययेति । षष्ठीनिर्देशेति भावः ॥ केति । गापोऽष्टमिन्नादावाजन्तसंबन्धे षष्ठीविज्ञानानुपपद्यत एव प्रत्ययविधिरिति प्रश्नः ॥ हनस्त चेति । श्रुतयोरेव स्थान्या-देशयोरागमागमिनोश्च संबन्धप्रतिपादने वाक्यस्योपयोगा-द्वाक्यान्तराभावाच्च प्रत्ययविधिर्न प्रकल्पत इत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) आनन्तर्यसम्बन्ध इति । धातोरिति पञ्चमी-निर्देशेन परविधानमुपपद्यत इति भावः ॥ ननु धातोरित्यनुवृत्त्या क्यमेतुवृत्त्या च वाक्यभेदेन प्रत्ययस्यापि विधानं स्यादत आह—श्रुतयोरेवेति ॥

( अनुपपत्तिकारणप्रश्नभाष्यम् )

किं पुनः कारणं न सिध्यति ।

( अनुपपत्तिकारणकथनभाष्यम् )

विकारागमयुक्तत्वात् । अपञ्चमीनिर्दिष्टत्वाच्च ॥

( १६८६ पञ्चमीकरणवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ तस्मात्तत्र पञ्चमीनिर्देशात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्मात्तत्र पञ्चमीनिर्देशः कर्तव्यः ॥

( सुप्रवृत्त्यसंकरणप्रश्नभाष्यम् )

[ स तर्हि पञ्चमीनिर्देशः कर्तव्यः ॥ ]

( यथान्यासस्थापनभाष्यम् )

न कर्तव्यः । इह तावद् "हनस्त च" इति धातो-रिति वर्तते । "त्रपुजतुनोः पुक्" इति प्रातिपदिका-दिति वर्तते ॥

( प्रदीपः ) इह तावदिति । प्रकृतिप्रत्ययानुवृत्तिसाम-र्थ्यात् प्रत्ययोपि विधास्यते विकारागमा अपीत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) नन्वनुवृत्तप्रकृतेरपि विभक्तिविपरिणामेन पठ्य-न्तविशेषणनया कथं प्रत्ययविधिरत आह—प्रकृति प्रत्ययेति ॥

( आपत्तिभाष्यम् )

यद्येवं 'हनस्त च' 'धातोः क्यप् भवती'ति धातु-मात्रात् क्यप् प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) यद्येवमिति । हन्तेरादेशविधाधुपयोगा-द्विविभक्तिवाच्च धातोर्विशेषितत्वादिति भावः ॥

( उद्धोतः ) ननु हन्तिना धातुविशेषणात्कथं धातुमात्रात्प्रस-ङ्गोत आह—हन्तेरिति ॥

( आपत्तिवारकभाष्यम् )

नैष दोषः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'न धातु-

मात्रात् क्यप् भवति' इति, यद्यपि 'एतिस्तुशा-स्त्वृजुपः क्यप्' इति परिगणनं करोति ॥

अथ वा हन्तिरेवात्र धातुग्रहणेनाभिसंभन्स्यते 'हन्तेस्तो भवति' धातोः क्यप् भवतीति, कस्माद्? हन्तेरिति ॥

( प्रदीपः ) अथ वेति । पूर्वं लिङ्गेन धातुश्रुतिर्हन्ताबु-पसंहता । इदानीं वाक्यभेदेन सन्निधानाद्वन्तिस्तकारसंबन्धं च प्रतिपद्यते, धातुं च विशिनष्टीत्युच्यते ॥

( १६८७ समाधानान्तरवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थाश्रयत्वाद्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा अर्थाश्रयः प्रत्ययविधिः, यः स्वमर्थं प्रत्याययति स प्रत्ययः ॥

किं वक्तव्यमेतत् ? ।

न हि ॥

कथमनुच्यमानं गंस्यते ? ।

प्रत्यय इति महती संज्ञा क्रियते । संज्ञा च नाम यतो न लघीयः । कुत एतत् ? । लघ्वर्थे हि संज्ञा-करणम् । तत्र महत्याः संज्ञायाः करण एतत्प्रयो-जनम् अन्वर्थसंज्ञा यथा विज्ञायेत प्रत्याययतीति प्रत्ययः ॥

( प्रदीपः ) अर्थाश्रयत्वादेति । अन्वर्थसंज्ञाश्रयेणार्थ-वतः संज्ञाविधानाद्विकारागमानां चानर्थकत्वात् प्रत्ययसंज्ञा न भवतीत्यर्थः ॥ किं वक्तव्यमिति । पूर्वोपात्तार्थपरित्यागेन स्वरूपेणैव संज्ञात्वं संज्ञाशब्दा अनुभवन्तीति प्रत्यायकः प्रत्यय इत्येवं वक्तव्यमिति मत्वा प्रश्नः ॥ महतीति । महत्त्वात् प्रत्ययशब्दस्यावृत्तिरनुमीयते । तेन यः प्रत्यायकः स प्रत्ययः । महत्त्वसूचितं प्रकारान्तरमपि यद्भवति तत्सर्वादिसूत्रे व्याख्यातं तत एवावधारणीयम् ॥

( उद्धोतः ) भाष्ये यः स्वमर्थमिति । प्रत्यायकत्वं च शब्दस्य स्वार्थविषयमेव गृह्यते योग्यत्वादित्यर्थः । पूर्वोपात्तेति यौगिकार्थस्य शब्दस्य संज्ञात्वेन विनियोगकाले शब्दस्यैव प्रवृत्तिनिमित्तत्वाङ्गी-कारेण पूर्वोपात्तयौगिकार्थत्यागादित्यर्थः ॥ संज्ञानां कृत्रिमत्वात्तस्य पूर्वोपात्तत्वं बोध्यम् । प्रकारान्तरम् अन्यत्र शब्दस्य प्रवृत्तिनिमि-त्तत्वेऽपि महासंज्ञा विषये तादृशाश्वेच्छब्दस्यैव तत्त्वमित्यादि ॥

( अन्वर्थसंज्ञाङ्गीकारदूषणभाष्यम् )

यदि प्रत्याययतीति प्रत्ययः, अविकृतीनां प्रत्यय-संज्ञा न प्राप्नोति । न हि ते किञ्चित्प्रत्याययन्ति ॥

( प्रदीपः ) नहि त इति । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कावीनां वाच्योर्थो नावधार्यते । तदभावेपि केवलाया एव प्रकृतेस्तद-र्थवगमात् । नापि तरवादिवत्कश्चिद् द्योत्यर्थ इति भावः ॥

यदप्युच्यते—‘अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थं भवन्तीति प्रकृत्यर्थे एव तेषामर्थ इति ॥ तदपि कल्पनामात्रम् । सत्यर्थवत्त्वे प्रत्ययसंज्ञा भाव्यमिति अभिहिते तदभावे स्वार्थावगमोदर्थवत्त्वं कादीनां नोपपद्यत इत्युक्तस्य दुरुत्तरत्वात् ॥

( उद्घोतः ) दुरुत्तरत्वादित्यादि । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वाच्यद्योत्वार्थाभावनिश्चयेन तेषामर्थवत्त्वाभावे शङ्किते प्रकृत्यर्थे एवासाधे इत्यसदुत्तरमित्यर्थः ॥ स्वार्थे इत्यस्य चार्थराहित्ये तात्पर्यमिति भावः ॥

( कर्मसाधनताङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्हि—प्रत्याययत इति प्रत्ययः ॥

( प्रदीपः ) प्रत्याययत इति । अभिधेयधर्मस्याभिधान उपचारादेवमुक्तम् ॥ अयमत्रार्थः—यस्यार्थः प्रकृत्या प्रत्याययते स प्रत्याय्यमानार्थत्वात् प्रत्याय्यमानः स्वार्थिकः प्रत्ययसंज्ञो भवति ॥

( उद्घोतः ) कादीनां केनापि प्रत्याय्यमानत्वाभावात् कर्मव्युत्पत्तावपि कथं तेषां प्रत्ययत्वम् । अर्थस्यैव तु तत्प्राप्तोतीत्यत आह—अभिधेयेति ॥ अभिधानं शब्दः ॥

( कर्मसाधनतायां दृषणभाष्यम् )

एवमपि सत्तादीनां न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) एवमपीति । नहीच्छादावर्थे विधीयमानाः सनादयः प्रकृत्या प्रत्याय्यमानार्था इति भावः । यो गुणादिसन् स प्रकृत्याप्रत्याय्यमानार्थ इतीच्छासनेवात्राभिप्रेतः ॥

( उभयसाधनाङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्ह्युभयसाधनोयम् कर्तृसाधनः कर्मसाधनश्च ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । एक एव शब्दोनेकशक्तियोगादङ्गीकृतप्रवृत्तिनिमित्तद्वयोऽधिक्रियते । तत्र यथासंभवं निमित्तौश्रयणेन सत्तादीनां कादीनां च प्रत्ययसंज्ञा प्रवर्तते ॥ प्यन्तस्य निपातनादपि णेरुक्तम् ।

( उद्घोतः ) एकस्य शब्दस्य कथमुभयसाधनत्वमित्यत आह—एक एवेति । निपातनादिति वस्तुतोन्तर्भावितव्यार्थाप्रत्यय इति वक्तुमुचितम् ॥

( अर्थप्रत्यायनहेतुप्रभभाष्यम् )

एवमपि कुत एतत् समाने अपूर्वोपदेशे त्रापुपं जातुपमित्यत्राकारस्तमर्थं प्रत्याययति, न पुनः पकार इति ॥

( प्रदीपः ) एवमपीति । आगमस्यार्थवत्तां निराकर्तुमुपन्यासः ॥

( अर्थप्रत्यायनहेतुप्रतिपादनभाष्यम् )

अन्यत्राप्यकारेण तस्यार्थस्य प्रत्यायनान्मन्यामहे—अकारस्तमर्थं प्रत्याययति, न पुनः पकार इति ॥ कान्यत्र ? । ‘विश्वादिभ्योऽण्’ । वैत्वः ॥ प्रत्ययः ॥ १ ॥

( प्रदीपः ) अन्यत्रापीति । प्रत्ययस्यागममन्तरेणापि प्रयोगादर्थवत्तावगतिः । आगमस्य तु प्रत्ययमन्तरेण प्रयोगाभावादन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थवत्त्वं जावधार्यत इत्यर्थः ॥ १ ॥

( उद्घोतः ) प्रत्ययस्येति । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रत्ययस्यैवाधेवत्वं नागमानामिति भावः ॥ वैधनभविरज्ञावादेशानापि न स्वीयार्थप्रत्यायकता । किन्तु स्वान्यर्थप्रत्यायकत्वैव ॥ अत एव कोशादेशं तेषां पृथगर्थनिर्देशः ॥ अत एव च नभ्यशब्दादपि नाभिशब्दप्रकारकस्तदर्थबोधो ‘नाभिहितः’ इति, न तु कदाचिदपि ‘नभहितः’ इति ॥ येऽपि शास्त्रानभिमतोऽपि वृद्धव्यवहारात् तथैव प्रतीयन्ति ॥ एतदर्थमेव भाष्ये स्वमर्थमित्यत्र स्वमिति पदोपादानम् । स्थानिनो नष्टत्वादन्वयेन प्रत्याय्यमानार्थकोपि नेति दिक् ॥ १ ॥

( ३८१ अधिकारसूत्रम् ॥ ३।१।१।२ आ. सूत्रम् )

६१९ परश्च ॥ ३।१।२ ॥

( सूत्रप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ? ॥

( प्रदीपः ) परश्च ॥ २ ॥ किमर्थमिति । पञ्चमीनिर्देशे परशब्दाध्याहारेण पञ्चमीविधानात् परत्वं सिद्धम् । षष्ठीनिर्देशेपि गापोष्टमित्यादावानन्तर्त्यसंबन्धे षष्ठीविज्ञानादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) परश्च ॥ २ ॥ पञ्चमीति । परशब्दाध्याहार एव व्याख्यास्यते न तु पूर्वशब्दाध्याहारः गापोष्टमित्यादावपि षष्ठ्या आनन्तर्यान्त्येन धातोरेति पञ्चम्या पूर्ववदेव परशब्दाध्याहार इति भावः ॥ परशब्दाध्याहारेणेति । तदर्थघटितवाक्यायंऽस्य एकदेशस्य वृत्तिस्वीकारेणेत्यर्थः ॥ एवं पूर्वशब्दाध्याहारेणेत्यपि व्याख्येयम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

परो यथा स्यात्, पूर्वं मा भूदिति ॥

( प्रदीपः ) पर इति । पूर्वशब्दाध्याहारेणापि पञ्चमीविधानात् पूर्वत्वमपि स्यादिति नियमार्थं परवचनम् । तथा नन्तर्त्यस्य पूर्वत्वेऽपि भावात् षष्ठीनिर्देशेपि नियमार्थमित्यर्थः ॥

१ ‘ऽप्यर्थो’ ॥

२ प्रकृत्या इत्यादिः । ( र. ना. )

३ प्रकृत्यर्थे एवासाधे इत्यर्थः । दुरुत्तरत्वादित्यस्य असदुत्तरत्वादित्यर्थः । ( र. ना. )

४ अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थं भवन्तीति भावः । ( र. ना. )

५ प्रवृत्तिनिमित्ताश्रयणेनेत्यर्थः । ( र. ना. )

६ लुकि प्रत्ययलक्षणाभावेन वृद्ध्यादिकं नेत्यर्थः । ( र. ना. )

७ ‘हनो वा यद् वधश्च’ इति धातिका । ‘नानि नभं च’ इति गणभूतम् ( पा१।२ ) ‘विराग विरक्त च’ इति गणभूतम् ( पा१।६४ )

८ आदेश इति शेषः । ( र. ना. )

( उद्ध्योतः ) पूर्वशब्देति । व्याख्यानं दुर्ज्ञेयमिति भावः ॥  
आनन्तर्यस्येति । ह्योनन्तरा इत्यादौ तस्या व्यवहितपर्यायत्वा-  
दित्यर्थः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । यमिच्छति पूर्वम्, आह  
नं 'विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्' इति ॥

( प्रदीपः ) यमिच्छतीति । बहुजेव पुरस्ताद्भवति  
नान्यः प्रत्यय इति बहुचि पूर्वदेशस्य नियतत्वादन्त्यः प्रत्ययः  
पर एव भविष्यतीत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) प्रत्ययनियमेष्वन्येषां परदेशनियमस्याभावादिभि-  
रनं देशनियमं दर्शयति—बहुजेवेति ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

मध्ये तर्हि मा भूदिति ।

( प्रदीपः ) मध्ये तर्हीति । षष्ठीनिर्देशेषु मध्यशब्दा-  
ध्याहारेणापि षष्ठीविधानं स्यादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) पञ्चमीनिर्देशे मध्यशब्दाध्याहारासम्भवादाह—  
षष्ठीति ॥ ग्रीहिशाख्योर्द्विग्यादौ ॥

( समाधानान्तरबाधकभाष्यम् )

मध्येपि यमिच्छति, आह तम्—'अव्ययसर्वना-  
म्नामकच् प्राक् टे'रिति ॥ य इदानीमतोन्यः प्रत्ययः  
शेषः सोन्तरेण वचनं पर एव भविष्यतीति नार्थः  
परवचनेन ।

( प्रदीपः ) मध्येपीति । अव्ययसर्वनाम्नामिति म-  
ध्यशब्दाध्याहारेण षष्ठीविधानादकच् प्राक् टेः सिद्ध एवेति  
प्राक्टेरिति नियमार्थम् 'अकजेव प्रकृतिमध्ये भवति, नान्यः'  
इति मध्यमात्रपरिग्रहेण च नियमो विज्ञायते, न तु 'अकजेव  
प्राक् टेः' इत्येवं मध्यविशेषाश्रयेण । अन्यथा मध्यान्तरे प्रत्य-  
यान्तरं स्यात् । मध्यविशेषे तु यन्मध्यसामान्यमस्ति तदा-  
श्रयेण नियमे विज्ञायमाने नास्ति दोषः ॥

( उद्ध्योतः ) अव्ययसर्वनाम्नामित्यादौ प्राक्टेरित्युपादानं  
विनाटेः प्राक् विधेरसिद्धेः कथं नियमोत आह—अव्ययेति । मध्यश्च  
तत्र टिप्राग्रूप एव ग्राह्यो व्याख्यानान्तित्यभिर्मानः ॥ केचित्तु प्राक्टे-  
रित्यावर्त्य नियमो व्याख्येय इत्याहुः—प्राक्टेरित्युपादानात्कथं  
मध्यमात्रापेक्षेनियमोत आह—मध्यमात्रेति ॥ मध्यान्तरे इति  
ग्रीहिशब्दे रेफेकारयोरीकारहकारयोर्मध्ये च स्यादिति भावः ॥ सामा-  
न्यनियमाश्रयेण तदुपस्थितिबीजमाह—यन्मध्यसामान्यमिति ॥

१ ननु व्याख्यानत एव पूर्वत्वव्यावृत्तिर्भविष्यतीति नार्थो नियमेनेत्यत  
आह—व्याख्यानमिति ॥

२ बहुच् पुरस्तादेवेति रूपे इति भावः । ( र. ना. )

३ मध्यसामान्यानुपस्थितिरूप इति भावः । ( र. ना. )

४ अभिमानोक्तिबीजं तु तादृशभाष्यकारादिव्याख्यानस्यानुपलब्ध्याऽमूल-  
कत्वमिति । ( र. ना. )

५ एतन्मतेऽपि मध्यमात्रपरिग्रहेणैव नियमो विज्ञायते, अकजेव प्रकृतिमध्ये  
भवति नान्य इत्याकारकः । ( र. ना. )

( समाधानभाष्यम् )

एवमपि येषामेव प्रत्ययानां देशो नियम्यते, त  
एव नियतदेशाः स्युः । य इदानीमनियतदेशः स  
कदाचित्परः कदाचित्पूर्वः कदाचिन्मध्ये स्यात् ।  
तद्यथा—मातुर्वत्सः कदान्निदग्रतः, कदाचित्पृष्ठतः,  
कदाचित्पार्श्वतो भवति । पर एव यथा स्यादित्येव-  
मर्थं परवचनम् ॥

( प्रदीपः ) एवमपीति । बहुजकचोर्विधेयतया प्राधान्या-  
त्तावेव देशविशेषे नियम्येयाताम् । पुरस्तादेव बहुच् प्राक् टेरे-  
वाकजित्येवमिति भावः ॥ देशो नियम्यत इति । प्रत्यय-  
नियमेष्वनियतदेशप्रसङ्गे विशिष्टदेशप्रतिपादनमेव देशनियम  
इत्यभिप्रेत्यैतदुक्तम् ॥ मातुर्वत्स इति । अनेन प्रकृतेः कार्य-  
शब्ददर्शने मातृस्थानीयत्वमुच्यते ॥

( उद्ध्योतः ) नन्वत्र देशनियमे बहुवादीनां नियतदेशत्वं न  
स्यात् । किं देशनियमासम्भवः प्राधान्येन प्रत्ययनियमस्यैव युक्त-  
त्वादित्यभिप्रेत्य भाष्ये एवमपीति ॥ तदशयमाह—बहुजकचो-  
रिति ॥ नन्वेवं देशो नियम्यत इति भाष्यमनुपपन्नमत आह—  
प्रत्ययनियमेपीति ॥ ननु देशनियमेऽप्रधानसंकोचः, प्रत्ययनियमे  
प्रधानसंकोचस्तत्र प्रधानसंकोचापेक्षयाऽप्रधानसंकोचस्य न्याय्य-  
त्वेन देशनियम एवोचित इति चेन्न । आगन्तूनामन्ते निवेश इति  
न्यायेन तदत्र एवैवकारनिवेशीत् । कर्मणि द्वितीयेत्यादौ सूत्रकारस्य  
प्रधानसंकोचकप्रत्ययनियम एव तात्पर्याच्च । किञ्च लोकेपि प्रधानस्य  
राजादेरेव स्थाननियमादि दृश्यते राजानैव स्थेयमित्यादिप्रकारेणेति  
दिक् ॥ भाष्ये—स कदाचित्पूर्वः कदाचित्पर इति प्रतिलक्ष्यं  
लक्षणमेदादिनिगमनाविरहदा ॥

( १६८८ सूत्रप्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ परवचनमनर्थकं पञ्चमीनिर्दिष्टाद्धि  
परस्य [ कार्यम् ] ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) परग्रहणमनर्थकम् । किं कारणम् ? ।  
पञ्चमीनिर्दिष्टाद्धि परस्य कार्यमुच्यते । तद्यथा—  
'द्यन्तरूपसर्गेभ्योऽप ईदि'ति ।

( प्रदीपः ) परवचनमिति । तस्मादित्युत्तरस्येव-  
नेनैव नियमस्य सिद्धत्वादिति भावः ।

( उद्ध्योतः ) तस्मादिति । ते प्राग्धातोर्त्यादौ उत्तरांश-  
विकलाया इव परश्चेति कृतेपि व्यवहितप्रयोगवारणाय प्रकृते एवो-

६ ढक् प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । ( र. ना. )

७ 'मर्थमिदं वचनम्' ॥

८ कार्यः शब्द इति मते प्रकृतेः प्रत्ययहेतुत्वेन मातृत्वत्वमिति भावः ।  
( र. ना. )

९ बहुजेव पुरस्ताद्, अकजेव प्राक्टेः इत्येवंरूपे इति भावः । ( र. ना. )

१० प्रधानस्य सर्वान् स्थितत्वात्तदग्रे एवैवकारस्यागन्तोर्निवेशोचित्यादिति  
भावः । ( र. ना. )

११ 'परस्य कार्यम्' इति सर्वत्र नोपलभ्यते । बहुत्र तु 'परस्य' इत्येतावदेवो-  
पलभ्यते ॥

त्तरांशविकलाया इव च, सूत्राभावे षष्ठ्यंशविकलायाः प्रवृत्तिरिति गूढोभिप्रायः ॥

( प्रत्याख्यानानुपपत्तिभाष्यम् )

विषम उपन्यासः । सतस्तत्र परस्य कार्यमुच्यते । इहेदानीं कस्य सतः परस्य कार्यं भवितुमर्हति ॥

( प्रदीपः ) सतस्तत्रेति । यत्र विद्यमानमेव कार्यान्तर-विधानार्थं कार्यित्वेन निर्दिश्यते तत्र तस्मादिति परिभाषा नियमार्थावतिष्ठते । अत्र तु सनादयोऽपूर्वा एवोत्पद्यन्त इति न तस्याः परिभाषायाः प्रवृत्तिरिति भावः ॥ कस्य सत इति । असत्त्वे सनादिर्भाव्यत इति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) उक्तमभिप्रायमजानानः शङ्कते—भाष्ये सत-स्तत्रेति । कार्यशब्ददर्शनाश्रयेण वैषम्यमित्याह—यत्रेति । उत्तर-स्येति षष्ठीनिर्देशादिति भावः ॥

( प्रत्याख्यानोपपादकभाष्यम् )

इहापि सत एव । कथम् ? । स्वाभाविकं परत्वम् ।

( प्रदीपः ) इहापीति । नित्याः शब्दाः प्रयोगस्थास्तत्र स्वभावत एव गुणादिभ्यः परस्य सनादेः साधुत्वमात्रं प्रति-पाद्यत इत्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) स्वाभाविके परत्वे किं तस्मादित्युत्तरस्येत्यनेन-लत आह—नित्या इति ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

अथ वाचनिके परत्वे सति परग्रहणेनार्थः स्यात् ।

( उत्तरभाष्यम् )

वाचनिके च नार्थः । एतद्धि परस्य कार्यम्—यदसौ परतः स्यात् ॥

अथ वा—यदस्य परस्य सतः संज्ञा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) एतद्धीति । तस्मादित्युत्तरस्येत्येतस्य प्रदेशेषु अर्थाभिप्रायिर्भवति । ततश्च यत्र सदेव कार्यित्वेनो-पादीयते तत्रोत्तरस्य कार्यं भवतीति कार्यापेक्षा संवन्धे षष्ठी । यत्र त्वसत एवोत्पत्तिः क्रियते तत्रोत्तरस्य भावो भवतीति भावापेक्षया कर्तुः षष्ठी विज्ञायत इत्यर्थः ॥ परस्य कार्य-मिति । उत्पत्तिरिव कार्यमित्यर्थः ॥ नन्वेवं सति सन्नित्या-दिप्रथमानिर्देशः षष्ठीप्रकल्पने सति निरर्थकोऽकृतार्थत्वात् स्यात् । नैष दोषः । निर्देशमात्रार्था प्रथमा स्यात् । उत्तरकालं तु षष्ठी प्रकल्पते । यत्त्वन्त्यत्रोच्यते न च प्रत्ययविधौ पञ्चम्यः प्रकल्पिका इति, तदस्मिन् सूत्रे स्थित इति द्रष्टव्यम् ॥

अथ वेति । अयमर्थः—उत्पत्तिः सनादेरनियतदेशा

भवतु । पश्चात्तु सत एव परस्य यत् कृतकृत्यप्रत्ययादिसंज्ञा-शास्त्रकार्यं विधीयते तन्नान्यदेशस्य । यद्देशस्य च शास्त्रीयं कार्यं तद्देशस्यैव साधुत्वात् प्रयोगो भविष्यतीत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) नन्वेकस्याः षष्ठ्या अर्थद्वयपरत्वं कथमित्यत आह—प्रदेशेष्विति । तत्रतत्रोपस्थितं भिन्नभिन्नमेवेत्यर्थः ॥ उत्त-रस्य भावो भवतीति । भाष्ये परतः स्यादित्यनेन सूचितम् ॥ प्रत्ययः परो भवतीत्यनेनास्य समानार्थत्वादिति भावः ॥ निर्देशेति । लघुनिर्देशेत्यर्थः । ननु प्रत्ययस्यानियतदेशत्वे पूर्वमपि प्रत्ययप्रयोगे साधुत्वं स्यादत आह—अयमर्थ इति । एवं च परस्य सतः प्रत्यय-संज्ञाविधानसामर्थ्यात्परशब्दाध्याहारे आवश्यकं अन्याध्याहारे मानाभावान्नान्यदेशस्यस्य साधुत्वमिति भावः ॥ अनियतदेशा-भवत्वित्यभ्युपगमवादेनोक्तम् । भवत्वित्यस्य प्रसज्यतामिति वार्धः । परश्चेति सूत्राकरणलाघवानुरोधात्प्रत्ययसंज्ञा संभवत्यप्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदेन विधेयेति तात्पर्यम् ॥

( सूत्रावश्यकताभाष्यम् )

यत्र तर्हि पञ्चमी नास्ति तदर्थमयं योगो वक्तव्यः ॥

क [च] पञ्चमी नास्ति ? ।

यत्र विकारागमाः शिष्यन्ते ॥

क च विकारागमाः शिष्यन्ते ? । 'हनस्त च' 'त्रपु-जतुनोः पुक्' इति ॥

( १६८९ सूत्रप्रत्याख्यानसाधकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ विकारागमेषु चोक्तम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विकारागमेषु चोक्तम् ॥

किमुक्तम् ? ।

प्रत्ययविधानानुपपत्तिस्तु तस्मात्तत्र पञ्चमीनि-र्देशात्सिद्धम् ॥ इति ।

( प्रदीपः ) विकारागमेष्विति । तदेवेहाप्यनुगन्तव्य-मित्यर्थः । गापोष्टगित्यादौ धातोरित्यधिकाराद् धातोः पर-ष्टम् भवति । गापोस्त्वनन्तर इति व्याख्येयम् ।

( उद्ध्योतः ) तदेवेति । धातोः प्रातिपदिकादित्याद्यनुवृत्ते-स्ततः पर एव भविष्यति ततः परस्यैव वा संज्ञेत्यादीत्यर्थः ॥

( १६९० सूत्रावश्यकतावार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अत्यन्तापरदृष्टानां वा परभूत-लोपार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अत्यन्तापरदृष्टानां तर्हि परभूतलो-पार्थं परग्रहणं कर्तव्यम् । य एतेऽत्यन्तापरदृष्टाः किवादयो लुप्यन्ते तेषां परभूतानां लोपो यथा स्यात् । अपरभूतानां मा भूदिति ॥

१ कार्यः शब्द इति मताश्रयेणेत्यर्थः । ( र. ना. )

२ 'परः' ॥

३ सन्नित्यादौ साधुत्वार्थं यया कयाऽपि विभक्त्या निर्देशस्यायदयकत्वे प्रथमा-विभक्त्यैव प्रातिपदिकार्थमात्रे विहित्या प्रथमोपस्थितया च निर्देशो लाघवाद्, औचित्याच्चेति भावः । ( र. ना. )

४ परश्चेति सूत्रे इत्यर्थः । ( र. ना. )

५ तस्मादित्युत्तरस्येति षष्ठ्या इत्यर्थः । ( र. ना. )

६ अर्थद्वयविषयकतात्पर्यवत्त्वमित्यर्थः । सङ्क्रुचरित इति न्यायादिति भावः । ( र. ना. )

७ परभूतानां लोपार्थेत्यर्थः । ( र. ना. )

८ 'एतेषाम्' ॥



किं पुनरत्यन्तापरदृष्टानां परभूतलोपवचने प्रयोजनम् ? ।

कितिणितीति कार्याणि यथा स्युरिति ॥

( प्रदीपः ) अत्यन्तापरदृष्टानां वेति । वाशब्दस्तर्ह्यर्थे परेण प्रधानेन प्रमाणेन प्रत्यक्षेण न केचिद्दृष्टा ये किवादयः तेषां नित्यशब्ददर्शने कार्यदर्शने वा सत्ताया अभावात्तस्मादित्युत्तरस्येत्यस्योपस्थानाभावादनित्यतदेशो लोपः स्यादिति परभूतलोपार्थमेतद्वचनम् अस्मिन् हि सति किवादयः परभूता लुप्यन्त इति बुद्धिरुपजायते । तत्रामिच्छित्यादौ प्रत्ययलक्षणेन परभूतप्रत्ययाश्रयास्तुगादयः सिद्ध्यन्ति न तु पूर्वभूतकिवादिलोपे इति भावः ॥ ननु कार्यदर्शने उत्तरस्य भाव इत्येव व्याख्यातत्वात्परभूताः किवादयो भविष्यन्ति ॥ नैतदस्ति । न हि तेषु भावबुद्धिरस्ति । लोपविधानेनाभावबुद्धेरुत्पादात् स्वरूपलाभो हि भावः । नैते कदाचित्स्वरूपं लभन्ते, शशविषाणतुल्यत्वात् । अत एवात्यन्तापरदृष्टानामित्युक्तम् । केवलं प्रत्ययलोपवचनेन कार्यमात्रं तेषामत्यन्तासत्त्वेऽपि विधीयते ॥

( उद्ध्योतः ) पूर्वं प्रयोजनानुक्तेर्वाशब्दं भाष्यकृतार्थे व्याचष्टे इत्याह—वेति । शास्त्रेण दृष्टानामेव लोपविधानात्कथमत्यन्तापरदृष्टैरेत्यत आह—परेणेति ॥ ननु परत्रोत्पन्नस्यैव प्रत्ययत्वेनापृक्तत्वप्रयुक्त लोप इति पूर्वभूतानां न लोपो नापि साधुत्वमत आह—तेषामिति ॥ तर्तेश्च 'परस्य सतः प्रत्ययसंज्ञा' इति नियमाप्राप्त्या पूर्वोत्पन्नस्यापि लोपादि सिध्यतीत्यर्थः ॥ अपृक्तसंज्ञा कदाचित्प्रत्ययत्वक्तोऽपीति भावः ॥ न तु पूर्वभूतेति । तथा चाभिचीत्यपि कदाचित्स्यादिति भावः ॥ नहि तेष्विति । एवं चोत्तरस्येत्यस्य तत्रासम्बन्ध इति भावः ॥ परश्वेत्यस्य करणे तु तत्सामर्थ्यात् परत्वबुद्धिविशिष्टो बौद्धः किमित्यर्थः इति तात्पर्यम् । नन्वत्यन्तासतामुत्पत्तिलोपो वा किमिति विधीयत इत्यत आह—केवलमिति ॥ प्रसक्तादर्शनस्यैव लोपत्वेन प्रसक्तत्वबुद्धये उत्पत्तिबोधनमिति भावः ॥

( सूत्रावश्यकता निराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'अत्यन्तापरदृष्टाः परभूता एव लुप्यन्ते' इति, यदयं तेषु कादीननुबन्धानासजति ॥

कथं कृत्वा ज्ञापकम् ? ।

अनुबन्धासञ्जन एतत्प्रयोजनम्—कितिणितीति कार्याणि यथा स्युरिति । यदि चात्यन्तापरदृष्टाः परभूता लुप्यन्ते ततोनुबन्धासञ्जनमर्थवद् भवति ॥

( प्रदीपः ) यद्यमिति । यदि पूर्वभूता लुप्येरन्

तदानुबन्धासञ्जोऽनर्थकः स्यात् । सर्वस्यानुबन्धकार्यस्य परभूतप्रत्ययाश्रयत्वात् ॥ नन्वनित्यतदेशत्वेऽपि यदा परभूतलोपस्तदानुबन्धासञ्जस्य चरितार्थत्वात्कथं लिङ्गत्वमिति केचिदाहुः । तदयुक्तम् । एवं पक्षेऽनुबन्धासञ्जस्यानर्थक्यमभ्युपगतं स्यात् । स्पृशोनुदक इत्यादौ च सकृत्पञ्चमी श्रुता सा किं पूर्वशब्दाध्याहारेण भवत्यथ परशब्दाध्याहारेणेति संदेहे पूर्वशब्दाध्याहारेण पञ्चम्यां सत्यामानर्थक्यमेवानुबन्धासञ्जस्येति कथं परभूतलोपेऽनुबन्धासञ्जो न लिङ्गं स्यादिति भाष्यविद आहुः ॥

( उद्ध्योतः ) णित्कार्यं ण्वौ ॥ परभूतेति । कितिणितीपिति-कृतीत्यादीनां परसप्तमीत्वादिति भावः ॥ यदेति । यद्विषये इत्यर्थः । एकविषये आधृत्या नानादेशविधाने मानाभावात्, युगपत्तु दिग्वाचकद्वयेनान्वयासम्भवः । पूर्वं पक्षे इत्यस्यापि विषयविशेष इत्यर्थः । अन्यथाऽसङ्गतिः स्पष्टैव ॥ अत एव स्पृश इत्यग्रिमग्रन्थसङ्गतिः ॥ प्रकारान्तरेण व्याख्याने तदसङ्गतिः ॥ विषयविशेषमेवाह—स्पृश इति । अत्रैकस्य स्पृश एव लक्ष्यत्वात् लक्ष्यभेदो नापि लक्षणावृत्तिः ॥ एवं च कित्वसामर्थ्येनोत्तरस्य बौद्धो भावो भवतीत्यर्थो वक्तुं शक्यः परग्रहणाभावेपीत्याशयः ॥

( १६९१ सूत्रावश्यकतावार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ प्रयोगनियमार्थं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रयोगनियमार्थं तर्हि परग्रहणं कर्तव्यम् । परभूतानां प्रयोगो यथा स्यात् । अपरभूतानां मा भूदिति ॥

( प्रदीपः ) प्रयोगनियमार्थं वेति । पूर्वं प्रयोजनं स्थितमिति वार्तिककारेण विकल्पार्थो वाशब्दः पठितः । भाष्यकारेण तु लिङ्गेन पूर्वप्रयोजनस्य निराकरणात्तर्ह्यर्थे व्याख्यातः ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये अपरभूतानामिति । न परभूता अपरभूता इति न विद्यन्ते परभूता येषामिति चार्थः । तेन केवलप्रत्ययानां केवलप्रकृतीनां चेत्यर्थः । तदेतदुक्तमप्रत्ययिकेत्यादिना ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

अस्ति पुनः किञ्चिदनिष्टं दृश्यते यदर्थो नियमः स्यात् ॥

( समाधानभाष्यम् )

अस्तीत्याह ॥

( १६९२ अप्रत्ययप्रकृतिदर्शिवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ प्रकृतेरर्थाभिधानेऽप्रत्ययदर्शनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रकृतिरर्थाभिधाने अप्रत्ययिका दृ-

१ पूर्वतः परतो वेत्यर्थः । ( र. ना. )

२ समुच्चयार्थकत्वासंभवादिति शेषः । ( र. ना. )

३ किवादीनामिति शेषः । ( र. ना. )

४ सत्ताया अभावादित्यर्थः । ( र. ना. )

५ न तु सर्वदा सत एव प्रत्ययस्येति भावः । ( र. ना. )

६ अपीति शेषः । ( र. ना. )

७ सूत्रावृत्तिरित्यर्थः । ( र. ना. )

८ अनुपपदवक्ष्यमाणवार्तिके भाष्यकृता इति बोध्यम् ॥

९ किञ्चिदनिष्टं दृश्यतेऽस्ति पुनरिति संबन्धः । पुनरिति भ्रमार्थः । दृशिभिः याऽस्ति क्रियायाः कर्त्री । किञ्चिदनिष्टकर्मकं दर्शनमस्ति किमित्यर्थः ।

१० प्रत्यया भावदर्शनादित्यर्थः । ( र. ना. )

इत्ये—‘क स देवदत्तः क स यज्ञदत्तः बभ्रुः, मण्डुः, लमक’ इति । बाभ्रव्यो माण्डव्यो लामकायन इति प्रयोक्तव्ये बभ्रुर्मण्डुर्लमक इति प्रयुज्यते ॥

( प्रदीपः ) क स देवदत्त इति । देवदत्तादयस्तर्दपलेषु वर्तमाना दृश्यन्ते तेषामनेन नियमेनासाधुत्वं प्रतिपाद्यते— न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलः प्रत्ययः प्रयोक्तव्य इति ॥ ननु सोयमित्यभिसंबन्धादभेदोपचारादपले प्रयोगात् कथमसाधुत्वम् ॥ नैतदस्ति । भृत्यादेरपि साहचर्यादिनिमित्ताभेदाध्यारोपदर्शनादपत्त्यर्थो नियमेन न प्रतीयेत । तदुक्तं हरिणा—

सोऽयमित्यभिसंबन्धात्तद्धितेन विना यदि ।

बभ्वादयः प्रयुज्येरन्नपले नियमो भवेदिति ॥

तस्मादभेदोपचाराद्विनाऽपत्यविवक्षायां गर्गा इति बहुवचनान्तवदेकवचनान्ता बभ्वादयो मा प्रयुक्षतेति नियमार्थं वचनम् ॥ क स देवदत्त इत्यत्र केचिदाहुः—क स इति यथा सुपो लुगलोपयोः कृतयोः केवला प्रकृतिः प्रयुज्यमाना दृश्यते । तथा बभ्वादयोपीति दृष्टान्तोपन्यासः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये प्रकृतिरर्थाभिधानेऽप्रत्ययिकेति । प्रकृतिरर्थाभिधानेऽप्रत्ययिकापि प्रयुज्यमाना दृश्यत इत्यर्थः ॥ तथा च तेषां लोके दृश्यमानानामसाधुत्वप्रतिपादनाय परश्चेति सूत्रमिति भावः ॥ भाष्ये यो बभ्रुर्मण्डुर्लमकः स देवदत्तः क्लेशार्थः ॥ देवदत्तस्तु नोदाहरणम्, अन्यथा ‘बाभ्रव्यादिषु प्रयोक्तव्येषु बभ्रुरित्यादि प्रयुज्यते’ इति कथनवत् ‘दैवदत्तिरिति प्रयोक्तव्ये देवदत्त इति’ इत्यपि भाष्ये वक्तव्यं स्यात् ॥ कचित्तथा पाठे दृष्ट्वा न्याचष्टे देवदत्तादय इति । बभ्रुरित्यादौ प्रकृतिमुपलब्धयोर्द्वयोरपि प्रयोगात्कस्यासाधुत्वमुच्यते इत्यत आह—तदपत्ये इति । नन्वेभेदोपचाररूपलक्षणया प्रयोगे साधुत्वनिश्चयात् कथमस्यासाधुत्वमिति शङ्कते—नन्विति । नायमभेदोपचारेण प्रयोगः भृत्यादेरपि प्रतिपत्त्यापत्तेरित्युत्तराशयः ॥ अभेदोपचारं विनोपसम्बन्धपत्यमित्यर्थं प्रतिपिपादयिषया प्रयुक्ता केवला प्रकृतिस्तथा प्रयुक्तः केवलः प्रत्ययश्चासाधुरित्याह—तस्मादिति ॥ बहुवचनान्तवदित्यनेन तत्र बभ्रुसंबन्धपत्यमित्यर्थेविषयलक्षणां दर्शयति—वभ्रमण्डु गर्गादीति । लमकोनडादिरुपकादिश्च ॥

१ उपहासाक्रोशाद्यवसरे इति भावः । ( र. ना. )

२ ‘प्रमाणे द्वयसद्वन्मात्रचः’ इति सूत्रेण द्वयसादीनां प्रत्ययानां प्रमाणेऽर्थे विधानादिति भावः ॥

३ ‘तस्य पूरणे ङङ्’ इति विहिते ङङि ‘बहुपूराणसंबन्धस्य तिथुक्’ इति तिथुगामे टित्वाङ्गीति बहुतिथीति सिध्यतीति भावः ॥

४ ‘सर्वतोऽक्रियार्थात्’ इत्यनेन । ‘जीपि’ इति पाठे जीविवधायकमन्वेपणीयम् । ‘कुदिकारात्’ इति तु तिथिशब्दस्यौणादिकत्वे अभ्युपगम्यते कथं संगच्छेतेति दाधिमथाः ॥

५ द्वयसादयः प्रयोग उपलभ्यमाना निरनुबन्धाः प्रत्यया एवेति मत्वा पूर्वपक्षिणा प्रकृतिरहितानां प्रत्ययानां प्रयोगो दर्शितः । ‘प्रकृतिपर एव प्रत्यय’ इति नियमे व्यभिचारायेति भावः ॥

६ केवलस्य द्वयसच इत्यर्थः । ( र. ना. )

७ कैयटे ‘द्वयसजादय’ इति प्रतीकोपन्यासेन काचित्कः तथा पाठोऽपि

( १६९३ अप्रकृतिकप्रत्ययदर्शिवातिकम् ॥ ६ ॥ )

॥\*॥ द्वयसादीनां च केवलदृष्टत्वात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) द्वयसादीनां च केवलानां प्रयोगो दृश्यते—किमस्य द्वयसम्, किमस्य मात्रम्, काद्यतिथीति ॥

( प्रदीपः ) किमस्य द्वयसमिति । किमस्य प्रमाणमित्यत्रार्थेऽयं प्रयोगो दृश्यते । तत्र गाव्यादिवदेवमादीनामनेनासाधुत्वं प्रतिपाद्यते । काद्यतिथीति । काद्य व्यादिसंख्यायाः पूरणीत्यर्थः । बहुतिथीत्यादौ च तिथीशब्दमुपलभ्य भ्रान्त्या केवलमपि प्रयुज्यते । यस्तु तिथिशब्दान्धीर्षि कृते तिथीशब्दः स साधुरेव ॥

( उद्घोतः ) अनेनासाधुत्वमिति । उक्तरीत्याऽपत्त्यर्थबोधविवक्षायां बभ्रुरित्यस्य, प्रमाणामित्यर्थं द्वयसंज्ञात्रस्येत्यर्थः ॥ अयं भावः—समानेऽर्थेऽन्वाख्यातो नन्वाख्यातस्य निवर्तक इत्युक्तेः तत्रार्थे प्रत्ययपरस्य साधुत्वकथनात् केवलप्रकृत्यादेरसाधुत्वमिति ॥ रघूणामित्यादौ तु तदपत्ये रघुत्वारोपेण रघुत्वेनैव रूपेण तेषां बोधान्नासाधुत्वम् ॥ तत्संबन्धपत्यमित्यर्थं हि अण् समासयोरेव साधुत्वमिति सूत्रार्थात् ॥ प्रागुक्त्युक्तिभिः परत्वे सिद्धे परश्चेत्येतत् प्रत्ययः परो भवत्येव इति नियमार्थम् । तेन केवलप्रकृतेर्न प्रयोगो नापि केवलप्रत्ययस्येति सिद्धम् ॥

( द्वयसादीनां प्रातिपदिकत्वदर्शिभाष्यम् )

द्वयसादयो वृत्तिजसदृशाः अवृत्तिजाः यथा बहुस्तथा ।

( प्रदीपः ) द्वयसजादय इति । अवृत्तिजा अपि भ्रान्त्या केवला लोके प्रयुज्यमाना दृश्यन्त इत्यर्थः ॥ यथा बहुरिति । ईषदसमाप्तौ यो बहुचप्रत्ययस्तत्सदृशो बहुशब्दः संख्यावैपुल्यवाची यथा लोके प्रयुज्यते, तथा द्वयसजादयोपीति केचिद्व्याचक्षते ॥

अन्ये त्वाहुः—केवल एवेषदसमाप्तौ यो बहुशब्दो लोके प्रयुज्यते स दृष्टान्तोऽसाधुत्वे द्वयसजादीनामुपात्तः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—असाधुत्वोपपादकं, परश्चेत्यस्योदाहरणत्वोपपादकं च अवृत्तिजा इति । एकार्थभावरूपवृत्तिविषयाभावेऽपि जाता उच्चारिता वृत्तिर्जद्वयसादिसदृशाः प्रमाणार्थका बहुचसदृश-

प्रतीयन्ते किन्तु संख्यादिवाचिबहुशब्दव्यञ्जकिकस्य द्वयसादेरपि चित्त्वे मानाभावादयुक्त इति बोध्यम् । ( र. ना. )

८ वृत्तिजाः एकार्थभावजाता ‘गोष्ठजादयः स्थानादिषु’ ‘संघाते कटक्’ ‘विस्तारे पटक्’ ‘द्वित्वे गोष्ठगक्’ ‘पदत्वे पङ्गवक्’ ‘स्नेहे तैलक्’ इत्यादि वार्तिकविहिताः प्रत्ययाः तत्सदृशाः स्वतन्त्रप्रातिपदिकशब्दा अपि तिलोक्यन्ते । तेषामेवं यदि प्रयोगः क्रियते तदा नैवासाधुत्वं प्रत्ययत्वाभावात् ‘परश्च’ इत्येतद्विषयत्वाभावात् ॥ यदि तत्सादृश्येन स्वतन्त्रप्रातिपदिकत्वभ्रान्त्या प्रत्यया एव प्रयुज्यन्ते तदा ‘परश्च’ इत्येतन्नियमेनासाधुत्वं भवतु । प्रातिपदिकत्वे तथा प्रयोगे दोषाभाव एवेति भाष्यस्यास्य तात्पर्यम् । द्वयसादीनां स्वतन्त्रप्रातिपदिकत्वं तु ‘आदन्ना सः’ इत्येतद्व्याख्याने ‘आस्यदन्नाः’ इति पदनिर्वचने आस्यपदं निर्वचनोत्तरं ‘द्वयं दृश्यतेः स्ववृत्तिकर्मणः’ इति निर्वचनं यास्केन दध्वातोर्न प्रत्ययसूचनेन कृतेर्भवति तदुपलक्षणमेव द्वयसादीनामपीति सूचितमिति दाधिमथाः ॥

संवादिवाचि बहुशब्दवत् द्वयसादयोऽपि साधवः स्युरिति तद्वारणार्थं परश्चेति भाष्यार्थः ॥ बहुजपेक्षया भिन्नार्थत्वादस्तु बहुशब्दस्य साधुत्वम् । एषां त्वर्थान्तरवृत्तित्वाभावादसाधुत्वमेवेति भावस्तदाह—अवृत्तिजा अपि आन्त्येति । तत्सदृशानुपूर्वीकत्वात्तदर्थत्वान्तराल्यर्थः ॥ 'प्रत्ययः पर एवे'ति नियमे 'अर्थतः शब्दतश्च यः प्रत्ययजातीयः स पर एव' इत्यर्थेनासाधुत्वं बोध्यम् ॥ अन्यथास्य प्रत्ययत्वाभावेन कथं नियमेनासाधुत्वं बोध्येत ॥ एतेन प्रकृत्युद्देशेनैव प्रत्ययानां विधानात्केवलप्रत्ययस्यासाधुत्वे सिद्धे कथमिदं परश्चेत्यस्य प्रयोजनमित्यपास्तम् ॥

अन्येत्विति । अत्र पक्षे बहोरपि द्वयसादितुल्यत्वेन दृष्टान्तत्वानुपपत्तिरित्युच्यते ॥

( १६९४ सूत्रावश्यकतादर्शिवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ वावचने चानुत्पत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वावचने चानुत्पत्त्यर्थं परग्रहणं कर्तव्यम् । वावचने चानुत्पत्तिर्यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) वावचने चेति । तस्मादित्युत्तरस्येत्येव प्रत्ययस्य सिद्धे परत्वे, पुनः परवचनं वावचनेन प्रत्ययस्य पक्षेऽनुत्पत्तिं प्रतिपादयति—वा परः सन् भवति 'परत्वोपलक्षितः सन् पक्षे भवति । पक्षे तु नैवोत्पद्यत' इत्यर्थः । न त्वत्र परत्वं विकल्प्यते—पक्षे पूर्वं भवतीति । परत्वस्य प्रयोगे नियतत्वात् तस्मादिति वचनाद्वा नियतत्वात् ॥

( उद्घोतः ) 'धातोर्निष्ठायां वा सन् प्रत्ययसंज्ञो भवतीत्यर्थे प्रधानवाक्यस्यान्याय्यत्वेनाप्रधानसंज्ञाया एव विकल्पः स्यात् । न च स इष्टः ॥ परग्रहणे तु तत्सामर्थ्यात्प्रधानन्यायवाचेन सन् एव विकल्प इति वावचने चेत्यादिभाष्यस्य तात्पर्यार्थः ॥ तमुपपादयति—तस्मादित्युत्तरेति । परश्चेत्यस्य सत्त्वेऽपि अप्रधानत्वात्परत्वस्यैव विकल्पः । स्यादिति दूषयति—न त्वत्रेति ॥ नियतत्वादिति । तथा च तद्विकल्पो नेष्ट इति भावः ॥ तस्मादिति वचनाद्वेति । तेन सूत्रेण उत्तरस्येत्यस्याप्युपस्थितावेकार्थकशब्दद्वयेन नित्यं परत्वस्य बोधनेन पश्चात्तद्विरुद्धो विकल्पस्तस्य बोधयितुमशक्य इत्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ क्रियमाणेपि वै परग्रहणे कथमिव वावचनेनानुत्पत्तिर्लभ्या ? ॥

( समाधानभाष्यम् )

क्रियमाणे परग्रहणे वावचने 'वा पर' इत्येतदभिसंबध्यते । अक्रियमाणे परग्रहणे वावचनेन किमन्यच्छब्दमभिसंबन्धुमन्यदतः संज्ञायाः । न च संज्ञाया भावाभावाविष्येते ॥

( प्रदीपः ) अक्रियमाण इति । प्रतियोगं प्रत्ययसंज्ञोपस्थानात्तस्या एव विकल्पः स्यात् । कृते त्वस्मिन् पराधिकारे प्रतियोगमुपस्थिते परो वा भवति परत्वोपलक्षितः पक्षे भवति पक्षे नैव भवतीत्यर्थः संपद्यते ।

( उद्घोतः ) भाष्ये—वा पर इत्येतदभिसंबध्यते इति । यः परः स वा भवतीत्यर्थः ॥ तस्या एवेति । प्रधानत्वेन प्रत्ययविकल्पस्यान्याय्यत्वादिति भावः ॥

( १६९५ सूत्रावश्यकतावार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ वावचने चोक्तम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [वावचने चोक्तम् ।] किमुक्तम् ।

वावचनानर्थक्यं च तत्र नित्यत्वात्सन । इति ॥

( प्रदीपः ) नित्यत्वात्सन इति । वृत्तिपक्षे नित्य एव सन्निष्यते । कर्तुमिच्छतीत्यवृत्तिपक्षे नैव सन् उत्पत्तिः प्राप्नोतीति ॥

( सिंहावलोकनभाष्यम् )

प्रयोगनियमार्थमेव तर्हि परग्रहणं कर्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) प्रत्याख्याते वावचने प्रयोगनियमार्थमिदम् ॥

( उद्घोतः ) प्रत्याख्यात इति । सत्त्वेपि न संज्ञाया विशेषणं तद्विकल्पानिष्टे ॥ परश्चेति सत्त्वेपि परत्वविकल्पाभाववत् तत्र सामर्थ्यात् वृत्त्या वाक्यबाधभ्रमनिवृत्त्यर्थं सन् एव विशेषणं वा ग्रहणम् ॥ ध्वनितश्चेदं समर्थानां प्रथमादिति । सूत्रे भाष्ये इत्यपि बोध्यम् ॥ प्रयोगार्थमिति । प्रयोगनियमार्थमेवेदमित्यर्थः ॥ कश्चित्तु तथैव पाठः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथैतस्मिन् प्रयोगनियमार्थं किमयं प्रत्ययनियमः—प्रकृतिपर एव प्रत्ययः प्रयोक्तव्यः, अप्रकृतिपरो नेति । आहोस्वित्प्रकृतिनियमः—प्रत्ययपरैव प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, अप्रत्ययपरा नेति । कश्चात्र विशेषः ? ॥

( १६९६ प्रत्ययनियमदूषणवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र प्रत्ययनियमे प्रकृतिनियमभावः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र प्रत्ययनियमे सति प्रकृतेर्नियमो न प्राप्नोति । अप्रत्ययिकायाः प्रकृतेः प्रयोगः प्राप्नोति । क स देवदत्तः क स यज्ञदत्तः, बभ्रुः, मण्डुर्लमक इति ॥

( प्रकृतिनियमाङ्गीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि प्रकृतिनियमः ॥

( १६९७ प्रकृतिनियमदूषणवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ प्रकृतिनियमे प्रत्ययानियमः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रकृतिनियमे सति प्रत्ययनियमो न प्राप्नोति । किमस्य द्वयसन्, किमस्य मात्रम्, काद्यतिथीति । अप्रकृतिकस्य प्रत्ययस्य प्रयोगः प्राप्नोति ॥

( १६९८ उभयनियमाङ्गीकारसिद्धान्तवार्तिकम् ॥ ११ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तूभयनियमात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् ॥ कथम् ? । उभयनियमात् । उभयनियमोयम्—प्रकृतिपर एव प्रत्ययः प्रयोक्तव्यः, प्रत्ययपरैव च प्रकृतिरिति ॥

किं वक्तव्यमेतत् ?

न हि ।

कथमनुच्यमानं गंस्यते ? ।

परग्रहणसामर्थ्याद् अन्तरेणापि परग्रहणं स्यादेवायं परः । पर एव स्यादित्येवमर्थं परग्रहणम् ॥ परश्च ॥ २ ॥

( प्रदीपः ) सिद्धे तस्मादिति वचनात् परत्वे, नित्यं परः प्रत्ययो यथा स्याद् मा कदाचित्परो न प्रयोजि इत्येवं सामर्थ्यादुभयनियमलाभः ॥ २ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये प्रत्ययपरैवेति । सामर्थ्यात्प्रत्ययो नित्यं सदा परः प्रयोक्तव्य इत्यर्थेनैतन्नियमसिद्धिरित्यर्थः ॥ ननु पर एव स्यादिति नियमे बभ्रुरित्यादेरपि साधुत्वं स्यादिति चेत्, न परः स्यादेवेत्यर्थात् तदध्वनयन्व्याचष्टे—नित्यं पर इति ॥ मा कदाचित्परो न प्रयोजीति । तेनोभयनियमफल लाभ इति भावः ॥ २ ॥

( ३८२ अधिकारसूत्रम् ॥ ३ । १ । १ आ. ३ सूत्रम् )

६१९ आद्युदात्तश्च ॥ ३ । १ । ३ ॥

( उद्घोतः ) आद्युदात्तश्च ॥ ३ ॥ एते त्रयोप्यधिकाराः ॥ यत्तु 'परश्च' 'आद्युदात्तश्च' इत्यनयोः परिभाषात्वमुक्तम् तत्र, लिङ्गाभावात्; न च प्रत्ययसंज्ञैव लिङ्गम् एकवाक्यतया त्रयाणामपि विधानेनान्यतरस्यान्यतरलिङ्गत्वोपात्तात् ॥ सहविधानं चात्रैव सूत्रे भाष्येऽपि स्फुटतरम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ? ।

( प्रदीपः ) आद्युदात्तश्च ॥ ३ ॥ अस्वरकस्याच उच्चारणाभावात् स्वरान्तरस्य प्रत्ययान्तरेषु नियतत्वापरिशेष्यादाद्युदात्त एव प्रत्ययो भविष्यतीति मत्वा प्रश्नः—किमर्थमिति ।

( समाधानभाष्यम् )

आद्युदात्तो यथा स्यात् । अन्तोदात्तो मा भूदिति ।

( उद्घोतः ) भाष्ये—अन्तोदात्तो मा भूदिति । अस्वरका च उच्चारणाभावेऽपि आद्युदात्तत्वनियमो न स्यादित्यर्थः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । यमिच्छत्यन्तोदात्तम्, करोति तत्र चकारमनुबन्धम् । आह च—'चितो-न्तउदात्तः' इति ॥

( उद्घोतः ) नैतदिति । अस्वरकोच्चारणाभावादनियतान्तो-दात्तत्वादौ प्राप्ते चित इत्यादि चित एवेत्यादि नियमार्थमित्यर्थः ॥ प्रत्ययविषयैर्नियमैरन्येषु स्वरेषु प्रतिबद्धेषु अस्वरकोच्चारणासम्भवादाद्युदात्त एव भविष्यतीति किमनेन सूत्रेणेति भावः ॥ ननु लोके त्रैस्वर्यनियमाभावेनास्वरकस्याप्यच उच्चारणमस्त्येव उदात्तादीनामभावस्यैकश्रुतित्वात् । एकश्रुतेरतिरिक्तत्वे तु सापि स्यादिति कथमाद्युदात्तत्वसिद्धिः । न च दूरात्सम्बुद्धावेव सापि नियता, विभाषा छन्दसीत्यादेर्वैयर्थ्यापत्तेः । तेनात्रापि पाक्षिक्यास्तस्या दुर्वारत्वमिति चेत् न लोके त्रैस्वर्यपक्षे, वेदे चाद्युदात्तार्थमिदं सूत्रं नियमैः सिद्धत्वाद् व्यर्थमिति भाष्याशयात् । पक्षे लोके एकश्रुतिरिष्टैवेत्याहुः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

मध्योदात्तस्तर्हि मा भूदिति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

मध्योदात्तमपि यमिच्छति, तत्र रेफमनुबन्धं करोति । आह च—“उपोत्तमं रिति” इति ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

अनुदात्तस्तर्हि मा भूदिति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

अनुदात्तमपि यमिच्छति, तत्र पकारमनुबन्धं करोति । आह च—“अनुदात्तौ सुप्पितौ” इति ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

स्वरितस्तर्हि मा भूदिति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

स्वरितमपि यमिच्छति, करोति तत्र तकारमनुबन्धम् । आह च तित्स्वरितम्” इति ॥

( प्रयोजननिराकरणोपसंहारभाष्यम् )

य इदानीमतोन्यः प्रत्ययः शेषः सोन्तरेणापि वचनमाद्युदात्त एव भविष्यतीति नार्थ आद्युदात्तवचनेन ।

( प्रयोजनोपसंहारभाष्यम् )

एवमपि येषामेव प्रत्ययानां स्वरो नियम्यते त एव नियतस्वराः स्युः य इदानीमनियतस्वरः स कदाचिदाद्युदात्तः कदाचिदन्तोदात्तः कदाचिन्मध्योदात्तः कदाचिदनुदात्तः कदाचित्स्वरितः स्यात् । आद्युदात्त एव यथा स्यादित्येवमर्थमिदमुच्यते ॥

( प्रदीपः ) येषामेवेति । चिदादीनामनियतैस्वरप्राप्ता-वन्तोदात्त एव चिदित्येवं नियमात्तेषामेव नियतस्वरत्वं स्यात् । अन्येषां त्वनियतस्वरप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) अनियतस्वरेति पूर्वनियमे तु चितोन्यस्वराव्यावृत्त्या नियतशास्त्रार्थानापत्त्या दृष्टानुरोधादावृत्योभयविधिनियमे मानाभावाच्चान्तोदात्त एव चिदित्येव नियमः स्यादित्यन्यत्रानियमः स्यादित्यर्थः ॥

(स्वरप्रकरणं विनाप्यत्र प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेन स्वरविधि-  
प्रयोजनाधिकरणम् )

(आक्षेपभाष्यम्)

अथ किमर्थं प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदात्तत्वम-  
नुदात्तत्वं चोच्यते, न यत्रैवान्यः स्वरः, तत्रैवाय-  
मप्युच्येत—“जिनित्यादिर्नित्यम्”—“प्रत्ययस्य च”—  
“अदुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तम्”—“सुप्पितौ  
च” इति । तत्रायमप्यर्थः—द्विराद्युदात्तग्रहणं द्वि-  
श्चानुदात्तग्रहणं न कर्तव्यं भवति । प्रकृतमनुवर्तते ॥

(उद्ध्योतः) भाष्ये संज्ञासन्नियोगेनेति । अत्र करणे त्रया-  
णामप्यधिकारत्वादेकवाक्यतया त्रितयविशिष्टतयादेर्विधानात्, अ-  
न्यत्र करणे तु प्रत्ययानुवादेन विधानान्न सन्नियोग इति भावः ॥  
भाष्ये द्विराद्युदात्तग्रहणमिति । प्रत्ययस्य चेति । करणेऽपि तस्या-  
द्युदात्तग्रहणाद्भुत्वमिति भावेनेदम् ॥

(समाधानभाष्यम्)

अत उत्तरं पठति—

(१६९९ समाधानवार्तिकप्रथमखण्डम्)

॥ \* ॥ आद्युदात्तस्य प्रत्ययसंज्ञासन्नि-  
योगे प्रयोजनं यस्य संज्ञाकरणं  
तस्याद्युदात्तार्थम् ॥ \* ॥

(भाष्यम्) आद्युदात्तस्य प्रत्ययसंज्ञासंनियोगक-  
रण एतत् प्रयोजनम्—यस्य संज्ञा क्रियते तस्याद्यु-  
दात्तत्वं यथा स्यात् ॥

(समाधानवार्तिकद्वितीयखण्डम् ॥ १ ॥)

॥ \* ॥ असन्नियोगे हि यस्मात्स विहित-  
स्तदादेराद्युदात्तत्वं तदन्तस्य चानु-  
दात्तत्वम् ॥ \* ॥

(भाष्यम्) अक्रियमाणे हि प्रत्ययसंज्ञासन्नियो-  
गेनाद्युदात्तत्वे ‘प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदा-  
देस्तदन्तस्य ग्रहणं भवति’ इति तदादेरेवाद्युदात्तत्वं  
प्रसज्येत, तदन्तस्य चानुदात्तत्वम् ॥

(उद्ध्योतः) तदादेराद्युदात्तत्वमिति । तदादेरिति तदु-  
रुधः । तदन्तस्येति बहुव्रीहिः ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

अथ क्रियमाणेपि प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदा-  
त्तत्वे अनुदात्तत्वे च कस्मादेव तदादेराद्युदात्तत्वं  
न भवति तदन्तस्य चानुदात्तत्वम् ॥

(समाधानभाष्यम्)

उत्पन्नः प्रत्ययः प्रत्ययाश्रयाणां कार्याणां निमित्तं  
भवति नोत्पद्यमानः । तद्यथा—कृतो घटो घटाश्र-  
याणां कार्याणां निमित्तं भवति, न क्रियमाणः ॥

(प्रदीपः) प्रत्ययाश्रयाणामिति । तदन्तग्रहणादीना-

मित्यर्थः । आद्युदात्तश्चेत्यस्य तु प्रतियोगमुपस्थाने सत्युत्प-  
द्यमान एव तद्व्यादिराद्युदात्तो भवति । एवं तिबादिरनुदात्त इति  
दोषाभावः ॥ घटाश्रयाणामिति । उदकाहरणादीनामि-  
त्यर्थः ॥

(उद्ध्योतः) उत्पन्नः प्रत्यय इति । प्रत्ययग्रहणे यस्मा-  
दिति परिभाषाया अनुवादविषयत्वादिति भावः ॥ तद्व्यवयवन् व्या-  
चष्टे—उत्पद्यमान एवेति । तथा चेह करणे प्रत्ययस्यानुवाद्यत्वा-  
भावात् परिभाषोपस्थितिरिति भावः ॥

(१७०० समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥)

॥ \* ॥ न वा प्रकृतेराद्युदात्तवचनं ज्ञापकं  
तदादेरग्रहणस्य ॥ \* ॥

(भाष्यम्) न वैष दोषः । किं कारणम् ? । यदयं  
“जिनित्यादिर्नित्यम्” इति प्रकृतेराद्युदात्तत्वं शास्ति ।  
तज्ज्ञापयत्याचार्यः—‘न तदादेराद्युदात्तत्वं भव-  
तीति’ ॥

(प्रदीपः) यदयमिति । ‘प्रत्ययस्य’ इत्यनेनाद्युदा-  
त्तत्वे सिद्धे जिनित्यादिर्नित्यमित्यानारम्भणीयं स्याद् यदि  
तदादेरग्रहणं स्यादित्यर्थः ॥

(उद्ध्योतः) जिनित्यादिरिति । जिनित्यस्य, जिनिति परे पूर्वस्य  
वाऽऽद्युदात्तविधायकम् ॥ ननु प्रत्ययस्येत्यनेन सिद्धे जिनित्यादिरिति  
सूत्रं स्वसिद्धेव तदादितदन्तग्रहणाभावस्य ज्ञापकं किं न स्यादिति  
चेन्न । प्रथमे जिनित्यादिरिति सूत्रे विरोधोपस्थित्यभावेनौत्तरकालिके  
प्रत्ययस्येत्यस्य बोध एव तदुपस्थित्या तत्रैव तदभावकल्पनेत्याशयात् ॥

(आपत्तिभाष्यम्)

तदन्तस्य तर्ह्यनुदात्तत्वं प्राप्नोति ॥

(१७०१ आपत्तिवारणवार्तिकम् ॥ ३ ॥)

॥ \* ॥ प्रकृतिस्वरविधानसामर्थ्यात्  
प्रत्ययस्वराभावः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) यदयं धातोरन्तः प्रातिपदिकस्य  
चान्त इति प्रकृतेरन्तोदात्तत्वं शास्ति, तज्ज्ञापय-  
त्याचार्यः—‘न तदन्तस्यानुदात्तत्वं भवतीति’ ॥

कथं कृत्वा ज्ञापकम् ? ।

यत्र ह्यनुदात्तः प्रत्ययः, प्रकृतिस्वरस्तत्र प्रयो-  
जयति ।

(प्रदीपः) यत्र हीति । यातीत्यादौ पिति प्रत्यये धा-  
तोर्नुदात्तत्वं भवति । यातो यान्तीत्यादौ तु प्रत्ययाद्युदात्तत्वेन  
सति शिष्टत्वाद् बाध्यते । कृष्णतर इत्यादौ च प्रातिपदिकान्तो-  
दात्तत्वं श्रूयते । यदि च प्रत्ययान्तस्यानुदात्तत्वं स्याद् निर्विषयं  
धातुप्रातिपदिकान्तोदात्तत्वं स्यादित्यर्थः । आस्ते शेत् इत्यादौ  
लसार्वधातुकानुदात्तत्वे सति धातुस्वरस्य सविषयत्वाद्ज्ञापक-  
त्वमिति चेत् । तत्रापि तदन्तविधिप्रसङ्गाद् ज्ञापकत्वमेव ॥

( उद्घोतः ) प्रातिपदिकान्तोदात्तत्वमिति । स्वरविधौ सं-  
घातः कार्योत्पत्तये षष्ठे वक्ष्यमाणत्वादनुदात्तत्वं सर्वस्येति तात्पर्यम् ॥

( १७०२ अत्रसूत्रप्रयोजनवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ आगमानुदात्तार्थं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आगमानुदात्तार्थं तर्हि प्रत्ययसंज्ञा-  
सन्नियोगेनाद्युदात्तत्वमुच्यते । प्रत्ययसंज्ञासंनियोगे  
नाद्युदात्तत्वे कृते आगमा अनुदात्ता यथा स्युरिति ॥

( प्रदीपः ) आगमानुदात्तार्थं वेति । वाशब्दस्त-  
र्ह्यर्थः । लवितव्यमित्यादौ तव्यस्योत्पत्तिकाल एवाद्युदात्तत्वे कृते  
पश्चादिडागमः क्रियमाणः शेषनिघातेनानुदात्तो भवति ।  
अन्यथा परत्वादिडागमे कृते तस्य तद्वक्तृत्वात् प्रत्ययग्रहणेन  
ग्रहणादाद्युदात्तत्वं क्रियमाणमिदं एव प्रसज्येतेत्यर्थः ।

( उद्घोतः ) पूर्वप्रयोजनस्य ज्ञापकेन खण्डनादाह—तर्ह्यर्थ  
इति । अन्यथेति ॥ षष्ठे सूत्रकरणे इत्यर्थः । तस्मादागमानुदात्त-  
त्वसिद्धये इह वचनमिति भावः ॥ एतदुत्तरं भाष्यमेकदेशयुक्तिः ॥

( १७०३ आगमानुदात्तत्वप्रयोजननिराकरणवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ न वागमानुदात्तवचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा एतदपि प्रयोजनमस्ति ॥ किं  
कारणम् ? आगमानुदात्तवचनात् । आगमा अ-  
नुदात्ता भवन्तीति वक्ष्यामि ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये वक्ष्यामीति । व्याख्यास्यामि ज्ञापका-  
दित्यर्थः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

के पुनरागमा अनुदात्तत्वं प्रयोजयन्ति ? ।

( प्रदीपः ) के पुनरिति । अन्योत्र प्रष्टा द्रष्टव्यः, न तु  
येन भवेत्युक्तं स एव पृच्छति विरोधात् ॥

( उद्घोतः ) अन्यत्रेति । शेषनिघातेनागमानुदात्तत्ववादी ॥  
के पुनरित्यस्य शेषनिघातेन यत्र न सिध्यति ते के इत्यर्थः ॥

( उत्तरभाष्यम् )

इद्—लविता ।

( प्रदीपः ) लवितेति । छद् । तिप् । डा । तासिः । इद् ।  
अत्र यदीदोऽनुदात्तत्वं न स्यात् तदा तासिभक्तत्वादित्थुदात्तः  
स्यात् । शेषनिघातेन च तास्याकारोनुदात्त इत्युदात्तलोभाभा-  
वाद्युदात्तनिवृत्तिस्वर आकारस्य न स्यात् । इदस्त्वनुदात्तत्वे सति  
तास्याकार एवोदात्त इत्युदात्तनिवृत्तिस्वरः सिध्यति ॥

( उद्घोतः ) तुनृतुजन्तत्वे भिन्तीति चित इति चोदात्तत्वे  
शेषनिघातेन सिद्धेराह—लुङिति ॥ षष्ठाध्याये प्रत्ययस्य चेति  
सूत्रकरणवादी उत्तरयति भाष्ये इद् लवितेति ॥ तद् ध्वनयन्  
व्याचष्टे—तासि भक्तत्वादिदुदात्त इति ॥ एवं च लवितेत्यादौ  
उदात्तनिवृत्तिस्वरेणान्तोदात्तत्वसिद्धिरागमानुदात्तवचनस्य षाष्ठसूत्र-  
वादिमते फलमित्यर्थः ॥

( इडागमानुदात्तत्वस्य प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

इद् तावन्न प्रयोजयति ॥

( उद्घोतः ) अपरः फलं नास्तीत्याह—भाष्ये इद् तावन्न  
प्रयोजयतीति । षष्ठतृतीययोरन्यतरत्र पाठेऽपि अन्तरङ्गत्वात्पूर्वमे-  
वाद्युदात्तत्वप्रवृत्त्या ततः शेषनिघातेनेत्युदात्तत्वे उदात्तनिवृत्तिस्व-  
रसिद्धेरित्यर्थः ॥

( इडागमे प्रयोजनोपपादकभाष्यम् )

इदमिह संप्रधार्यम्—इद् क्रियतामाद्युदात्तत्व-  
मिति ॥ किमत्र कर्तव्यम् ? । परत्वादिद् ॥

नित्यमाद्युदात्तत्वम् । कृते पीटि प्राप्नोति अकृतेपि  
प्राप्नोति ॥

इडपि नित्यः । कृतेप्याद्युदात्तत्वे प्राप्नोति अकृ-  
तेपि ॥

अनित्य इद् । अन्यथास्वरस्य कृते आद्युदात्तत्वे  
प्राप्नोति । अन्यथास्वरस्याकृते प्राप्नोति । स्वरभि-  
न्नस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥

आद्युदात्तत्वमपि अनित्यम् । अन्यस्य कृते इडि  
प्राप्नोति । अन्यस्याकृते । शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्वि-  
धिरनित्यो भवति ॥ उभयोरनित्ययोः परत्वादि-  
डागमः ॥

( प्रदीपः ) स्वरभिन्नस्येति । रूपवत् स्वरपि श्रुतिमे-  
दहेतुत्वात् शब्दान्तरत्वमेव करोतीति भावः ।

( उद्घोतः ) परोन्तरङ्गत्वमपदयम् स्वमते परत्वेन पूर्वमिडागमं  
स्यापयितुमाह—इदमिहेत्यादिना परत्वादिडागम इत्यन्तेन ॥

( इडागमे प्रयोजननिराकरणोपपादनभाष्यम् )

अन्तरङ्गं तर्हि आद्युदात्तत्वम् ॥ काऽन्तरङ्गता ? ।  
उत्पत्तिसन्नियोगेनाद्युदात्तत्वमुच्यते । उत्पत्ते प्र-  
त्यये प्रकृतिप्रत्ययावाश्रित्याङ्गस्येडागमः ॥

आद्युदात्तत्वमपि नान्तरङ्गम् । यावता प्रत्यय  
आश्रिते प्रकृतिरप्याश्रिता भवति ॥

अन्तरङ्गमेवाद्युदात्तत्वम् ॥ कथम् ? । इदानीमेव  
युक्तं—न प्रत्ययस्वरविधौ तदादिविधिर्भवतीति ॥

( प्रदीपः ) प्रकृतिरप्याश्रितेति । प्रत्ययग्रहणपरिभा-  
षयेति भावः ॥ अन्तरङ्गमेवेति । तत इण् न प्रयोजयती-  
त्यर्थः ।

( उद्घोतः ) अपरः स्वाशयं प्रकटयति—अन्तरङ्गं तर्हीति ।

षष्ठे सूत्रकरणेपि ज्ञापकात्तदादिविध्यभावेनान्तरङ्गत्वात्पूर्वं स्वरे पश्चा-  
दिडि उदात्तनिवृत्तिस्वरे शेषनिघातसिद्धेरागमानुदात्तत्वं निष्फलमिति  
भावः ॥ उत्पत्तिसन्नियोगेनेति । उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वेनेत्यर्थः ॥  
नेदं भाष्यं तृतीये सूत्रमिति पक्षे, उपक्रमोपसंहारविरोधात् ॥ अत  
एव लवितव्यमित्यपि न फलम् । अन्तरङ्गत्वात्पूर्वं स्वरवृत्तेः ॥ इद्-  
विधौ प्रकृतिप्रत्ययोभयाभयणे बीजमाह—अङ्गस्येति । अङ्गसंज्ञा-  
निमित्तस्येत्यर्थः ॥ एवं च तस्या उभयाश्रितत्वादस्यामिति तत्त्व-  
मिति भावः ॥

(सीयुडागमे प्रयोजनभाष्यम्)

सीयुद् तर्हि प्रयोजयति ।

(१७०४ सीयुडागमे प्रयोजनोपपादनवार्तिकम् ॥ ६ ॥)

॥ \* ॥ अवचने हि सीयुडादेराद्यु-  
दात्तत्वम् ॥ \* ॥(भाष्यम्) अक्रियमाणे हि आगमानुदात्तत्वे क्रियमाणेऽपि प्रत्ययसंज्ञासन्नियोगेनाद्युदात्तत्वे सी-  
युडादेर्लिङ् आद्युदात्तत्वं प्रसज्येत । लविषीय  
पविषीय ॥(प्रदीपः) लविषीयेति । आशिषि लिङ् । अत्र विशेष-  
विहितत्वाद्वा परत्वाद्वा पूर्वं सीयुद् क्रियते पश्चाद्भाष्यः । तत्र  
प्रत्ययाद्युदात्तत्वं क्रियमाणं सीयुद् एव स्यात् । आगमा  
अनुदात्ता इति तु वचनात्सीयुटोनुदात्तत्वे सति इटोदित्य-  
कारस्योदात्तत्वं सिध्यतीत्यर्थः ॥(उद्द्योतः) एवं शेषनिघातेन आगमानुदात्तत्वमिति वादिना  
पष्ठे सूत्रारम्भवादिनं प्रति आगमानुदात्तत्ववचनस्यैतः प्रयोजनत्वा-  
भावे उक्ते प्रयोजनान्तरमैह—सीयुद् तर्हि ॥ अनवकाशत्वे  
सत्येव विशेषविहितत्वस्य बलवत्त्वप्रयोजकत्वादाह—परत्वाद्देति ॥  
लादेशनिमित्तानुदात्तत्वस्य यात इत्यादिरवकाशः ॥ शशिषीष्टेत्यादौ  
लसार्वधानुकानुदात्तत्वात्सीयुद् सावकाशः ॥ प्रकृते उभयप्रसङ्गे  
परत्वात्सीयुडित्यर्थः ॥ लावस्यायां तु न स्वरस्तस्यानृचकत्वात् । न च  
पूर्वं सीयुटि अनिर्दिश्यमानत्वात् समुदायस्य व्यवहितत्वान्न निर्दि-  
श्यमानस्येलादेशप्रवृत्तिरवस्यादिति वाच्यम् । धातोरित्यस्य विहित-  
विशेषणत्वाङ्गीकारेण व्यवहितेति प्रवृत्तेः ॥ एवं च तृतीये एतत्सूत्र-  
पाठेऽपि आगमानुदात्तत्ववचनमावश्यकमित्याह—भाष्ये—क्रिय-  
माणेपीति । यद्यपि तिवादीनां प्रत्ययत्वं स्थानिवचनेन सिद्धं तथापि  
अधिकृतस्यासंबन्धे मानाभाव इति प्रत्ययसंज्ञासन्नियोगेनेत्युक्तम् ॥  
परश्चैत्यस्याप्यत्र संबन्धे बाधकाभावः, धातोः परत्वस्यापि सत्त्वात् ॥  
न च तृतीये सूत्रे लस्य स्थाने इडुदात्तो भवतीति उत्पत्तिकाल  
एव स्वरविधानादनुवादविषयाया यदागमा इति परिभाषाया अप्र-  
वृत्तरागमविशिष्टस्योदात्तत्वाप्राप्त्योच्चार्यमाणस्यैत एवाद्युदात्तत्वे सी-  
युटः शेषनिघातेन सिद्धिरिति वाच्यम् । आगमैस्त्रिधाने विधीय-  
मानस्यापि तस्य प्रत्ययसंज्ञा विशिष्टे एव, आद्युदात्तत्वं च तत्सन्नि-  
योगेन विशिष्टे एवेत्यभिमानात् ॥ अन्यथा तावत् एव पृथक् प्रत्य-  
यत्वे सीयुडन्तस्याङ्गत्वं स्यात् । तथा च तदन्तस्यापि लविषीध्वमि-  
त्यादौ गुणः स्यात् ॥ इटोदित्यकारस्येति । अत्र स्वरितत्वं नाश-  
ङ्गम् । औपदेशिक प्रत्ययत्वाभावात्, दिवाच्च ॥१ प्रत्ययसंज्ञा संनियोगेनाद्युदात्तत्वे क्रियमाणेऽपीति संबन्धः । तृतीये एत-  
त्सूत्रपाठेऽपीति भावः । (र. ना.)

२ तृतीये एतत्सूत्रपाठसमर्थक इति शेषः । (र. ना.)

३ सीयुटस्तु लादेशोत्तरमपि प्रवृत्त्या सावकाशत्वादिति भावः । (र. ना.)

४ आगमसंनिधाने प्रत्ययसंज्ञा विशिष्टे एवेति योजना । (र. ना.)

(वार्तिककरणानुयोगभाष्यम्)

तत्तर्हि वक्तव्यम्—आगमा अनुदात्ता भवन्तीति ॥

(तद्वार्तिकस्य ज्ञापकसिद्धत्वरूपभाष्यम्)

न वक्तव्यम् । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—“आगमा  
अनुदात्ता भवन्ति” इति, यदयं ‘यासुद् परस्यैपदे-  
षूदात्तो ङिच्चे’त्याह ॥(उद्द्योतः) भाष्ये—यदयं यासुडिति । न च परस्यैपद-  
निमित्तकत्वादस्यादेशोत्तरं प्रवृत्त्या पूर्वमेव अन्तरङ्गत्वात्परत्वाद्वा प्रत्य-  
याद्युदात्तत्वे ततो यासुडस्वरको वा स्यात् शेषनिघातेनानुदात्तो वेति  
चरितार्थमुदात्तग्रहणं कथं ज्ञापकमिति वाच्यम् । परस्यैपदेऽप्यित्यस्य  
विषयसप्तमीत्वमाश्रित्य लावस्यायामेव यासुडि ततो लादेशे तन्नि-  
मित्तकाद्युदात्तत्वे यासुटः सिद्धे उदात्तग्रहणं ज्ञापकमित्याशयात् ॥

(ज्ञापकत्वानुपपत्तिभाष्यम्)

नैतदस्ति ज्ञापकम् । वक्ष्येत्येतत्—\*यासुटो ङि-  
द्वचनं पिदर्थमुदात्तवचनं च ।\* इति ॥(प्रदीपः) पिदर्थमिति । चिनुयादित्यादौ पिदभक्तला-  
यासुटोनुदात्तत्वप्रसङ्गे उदात्तवचनमित्यज्ञापकमित्यर्थः ॥

(ज्ञापकतोपपादकभाष्यम्)

शक्यमनेनैवं वक्तुं यासुद् परस्यैपदेषु भवति,  
अपिच लिङ् भवतीति । सोयमेवं लघीयसा न्यासेन  
सिद्धे सति यद् गरीयांसं यत्नमारभते । तज् ज्ञाप-  
यत्याचार्यः—“आगमा अनुदात्ता भवन्ति” इति ॥  
शक्यमेवं लब्धुम् ॥(उद्द्योतः) भाष्ये शक्यमेवं लब्धुमिति ॥ एवं रीत्येदं लब्धुं  
शक्यं नत्वपूर्ववचनमेवेत्यर्थः ॥

(आद्युदात्तत्वानुपपत्तिभाष्यम्)

यद्येव वचनाद्, अथापि ज्ञापकाद् ‘आगमा  
अनुदात्ता भवन्तीति । आगमैस्तु व्यवहितत्वादा-  
द्युदात्तत्वं न प्राप्नोति ॥(प्रदीपः) आगमैरिति । विच्छिन्नलादादित्वस्य लवि-  
षीयेत्यादौ प्रत्ययस्याद्युदात्तत्वं न प्राप्नोतीत्यर्थः । आरब्धे तु सूत्रे  
प्रत्ययसंज्ञासन्नियोगेन कृते आद्युदात्तत्वे भवन्त्यागमा इति न  
दोषः ॥(उद्द्योतः) यद्येववचनादिति ॥ तस्मिन्निति परिभाषा-  
स्वेन विषयसप्तम्यनुचितेति भावः । अथापीति उक्त आशयः ॥  
आगमैस्त्वित्ययं दोषः पाठवादिमते इत्याह—आरब्धेत्विति तृतीये  
आरब्धे त्वित्यर्थः ॥ प्रत्ययसंज्ञेति ॥ लावस्यायां सीयुडादावप्या-५ अभिमानोक्तिर्बीजं तु आगमसंनिधाने विशिष्टस्य प्रत्ययसंज्ञाया विधा-  
यकशब्दाभावः । यदागमपरिभाषायास्तु अनुवादविषयकत्वेन प्रकृते प्रवृत्त्य-  
भाव इति । (र. ना.)

६ लादेशोत्तरं यासुडागमात्पूर्वमेव चेत्यर्थः । (र. ना.)

७ स्वीक्रियते इति शेषः । (र. ना.)



द्युदात्तत्वं केवलस्यैवेति पूर्वं जाता अपि शेषनिघातेनानुदात्ता भवन्तीत्यर्थः ॥ एवं च तस्यानुदात्तायागमानुदात्तत्ववचनमनावश्यकमिति तात्पर्यम् ॥ अङ्गसंज्ञा तु न, तस्यां यदागमा इतिन्यायेन विशिष्टस्यैव प्रत्ययग्रहणेन ग्रहणात् । एवं च यासुटोऽपि शेषनिघातेनानुदात्तत्वे प्राप्ते उदात्तग्रहणस्य चारितार्थ्येन ज्ञापकासम्भवोऽपि ध्वनितः । एवं च लविषीयेत्युदाहरणविषया क्रियमाणोऽपि प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदात्तत्वे इत्यादिरेकदेशयुक्तिरसङ्गतेति बोध्यम् ॥ ननु तृतीये सूत्रमतेऽपि अनुदात्तं पदमित्यस्य परिभाषात्वात्तैकवाक्यतायामाद्युदात्तत्वविधिकाले संनिहितानामेव तेन निघातविधानात्पश्चात्सन्निहितस्येदो निघाताप्राप्तेरागमानुदात्तत्ववचनमावश्यकमिति चेन्न । त्विनुत इत्यादौ श्रौतनुदात्तत्वसिद्धयेऽसंनिहितस्यापि तेन निघातावश्यकभावेन पदग्रहणं परिमाणार्थमिति वक्ष्यमाणया रीत्या न्यायसिद्धत्वेन च तन्मते वचनस्यानावश्यकत्वात् ॥ न चैकपदे विशेषविधिं विना द्वयोर्दत्तयोरभावात् उदात्तस्वरितयोरभावाच्चास्वरकस्याच उच्चारणाभावादनुदात्तत्वमेवेति वाच्यम्, एकश्रुतिविषये उक्तस्वररहितस्याप्युच्चारणसत्त्वात्, एकश्रुतिशास्त्रस्य विध्यर्थत्वे संभवति नियमार्थत्वासंभवाच्च ॥ अत एव अनुदात्तं पदमित्यस्य चारितार्थ्यम् ॥ त्विनु—इत्यत्र शेषनिघाता प्रवृत्तिस्तु हेरपित्वस्याक्षुणीत्यादौ चारितार्थ्येन प्रकृतेन्तरङ्गानपीति न्यायेन स्वरत्पूर्व लुक्ः प्रवृत्त्या स्वरैकवाक्यतापत्रस्यानुदात्तं पदमित्यस्याप्रवृत्तेरिति बोध्यम् ॥

( आद्युदात्तत्वसाधनत्वोपपादनभाष्यम् )

‘आगमा अविद्यमानवद्भवन्ति’ इति वक्ष्यामि ।

( उद्घोतः ) ‘आगमा अनुदात्ता’ इति न कर्तव्यं किं तु ते अविद्यमानवदित्येव कार्यमित्याह—षाष्ठ्यादी भाष्ये आगमा इति ॥

( अविद्यमानवकरणे दूषणभाष्यम् )

यद्यागमा अविद्यमानवद्भवन्तीत्युच्यते, लविता अवादेशो न प्राप्नोति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

स्वरविधाविति वक्ष्यामि ॥

( पुनर्दूषणभाष्यम् )

एवमपि लविता—‘उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः’ इति स्वरितत्वं न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) एवमपि लवितेति । वृश्चन्तत्वादाद्युदात्तमेतत् ॥

( उद्घोतः ) लवितेत्यस्य लुङन्तत्वे वृश्चन्तत्वे वाऽन्तोदात्तत्वे न स्वरित प्राप्तिभावादाह—वृश्चन्तत्वादिति ॥

१ लविषीयेत्यादौ सीयुडन्तस्याङ्गसंज्ञेत्यर्थः । ( र. ना. )

२ अङ्गसंज्ञायां प्रत्ययस्यानुदात्तत्वेनेति भावः । ( र. ना. )

३ आरब्धे तु सूत्रे इत्यादि कैयटोक्तरीतिस्वीकारे अनुपदोक्तरीत्या वा शेषनिघातेनानुदात्तत्वस्वीकारे इत्यर्थः । ( र. ना. )

४ लविषीयेत्यादाविडगमस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

५ आगमा अनुदात्ता इत्यस्य प्रयोजनाभाव इति शेषः । ( र. ना. )

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

‘षाष्टिके स्वरे’ इति वक्ष्यामि ॥

( पुनर्दूषणभाष्यम् )

एवमपि चिन्तितः “निष्ठा च ह्यजनाद्” इत्येष स्वरः प्राप्नोति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

प्रत्ययस्वरविधाविति वक्ष्यामि ॥

( अविद्यमानवद्भावस्य वाचनिकत्वे प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि आगमा अविद्यमानवद्भवन्तीति वक्तव्यम् ।

( ज्ञापकसिद्धत्वोपपादकभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—आगमा अविद्यमानवद्भवन्तीति, यदयं ‘यासुट् परस्मैपदेषु दात्तो ङिञ्’ इत्याह ॥

( प्रदीपः ) यदयमिति । यदि प्रत्ययाद्युदात्तत्वे कर्तव्ये आदित्वमागमा विहन्युः तदा त्विनुयातामित्यादौ यासुटः प्रत्ययादित्वासिद्धमुदात्तत्वमिति तत्र कुर्यात् । कृतं तु प्रत्ययाद्युदात्तत्वे कर्तव्ये आगमानामविद्यमानत्वं ज्ञापयतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) कृतं त्विति । सत्यविद्यमानवत्त्वे तद्रहितप्रत्ययस्यैवाद्युदात्तत्वे शेषनिघातेनागमानामनुदात्तत्वं सिद्धमिति भावः ॥ शेषनिघातप्राप्तानुदात्तव्यावृत्त्ये उदात्तग्रहणं चरितार्थमिति दिक् ॥

( ज्ञापकत्वखण्डनभाष्यम् )

नैतदस्ति ज्ञापकम् । वक्ष्येत्येतत् \*यासुटो ङिञ्चनं पिदर्थमुदात्तवचनं च\* इति ।

( ज्ञापकत्वखण्डनभाष्यम् )

शक्यमनेन वक्तुम्—‘यासुट् परस्मैपदेषु भवति, अपिञ्च लिङ्’ भवतीति । सोऽयमेवं लघीयसा न्यासेन सिद्धे सति यद्वरीयांसं यत्नमारभते तज्ज्ञापयत्याचार्यः—“आगमा अविद्यमानवद्भवन्ति” इति ।

( १७०५ प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनस्वरविधिप्रयोजनवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ आद्युदात्तस्य वा लोपार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आद्युदात्तस्य तर्हि लोपार्थं प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदात्तत्वमुच्यते । प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदात्तत्वे कृते लोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरः सिद्धो भवति । सौगम्भी । माथुरी । अत्र हि परत्वाल्लोपः स्वरं बाधेत ॥

( प्रदीपः ) सौगम्भीति । विभर्ज्यान्वाख्याने सौगम्भी

६ अस्वरकस्याच उच्चारणाभावादनुदात्तत्वमेवेति पूर्वपक्षयुक्तीतिरभावदेवेत्यर्थः । ( र. ना. )

७ षाष्टिके स्वरे कर्तव्ये आगमस्येदोऽविद्यमानवत्त्वेन ङिञ्कत्वादिति भावः ॥

८ ‘निष्ठान्तस्य ङिञ्च आकारमित्र आदिरुदात्तः संज्ञायाम्’ इति सूत्रार्थः ॥

९ अस्य षाष्टत्वेपि प्रातिपदिकस्वरविधित्वेन प्रत्ययस्वरविधित्वाभावः ॥

१० पदस्येति शेषः । ( र. ना. )



अ ई इति स्थिते प्रत्ययस्य चेलाद्युदात्तत्वात्परत्वाद्यस्येति लोपे कृते उदात्तनिवृत्त्यभावादुदात्तनिवृत्तिस्वरईकारस्य न स्यात् । प्रत्ययसंज्ञासन्नियोगेन त्वाद्युदात्तविधाने न दोषः ॥

( उद्घोतः ) एवं चागमानुदात्तत्वं न तार्तीयसूत्रफलम्, षाष्टेऽपि ज्ञापकेन सिद्धत्वादित्यभिमानेनैकदेशी उत्तरवार्तिकस्य वा शब्दं तर्ह्ये व्याचष्टे—आद्युदात्तस्य तर्हीति ॥ प्रार्थुकैयटध्व-  
नितरीत्या ज्ञापकासम्भवे तु आगमानुदात्तत्वरूपं प्रयोजनं स्थित-  
मेव ॥ ननु डीवृत्पत्तेः प्रागेवाण आद्युदात्तत्वे कृते उदात्तनिवृत्ति-  
स्वरः सिद्धस्तत्राह—विभज्येति ॥

( १७०६ प्रयोजननिराकरणवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वैतदपि प्रयोजनमस्ति । किं कार-  
णम् ? बहिरङ्गलक्षणत्वात् । बहिरङ्गलक्षणो लोपः ।  
अन्तरङ्गः स्वरः । असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ अवश्यं  
चैषा परिभाषा आश्रयितव्या ।

( १७०७ परिभाषाभावे दूषणवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ अवचने हि जिनित्कित्स्वतिप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( व्याख्यानभाष्यम् )

अक्रियमाणायां ह्यस्यां परिभाषायां क्रियमाणेऽपि  
प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदात्तत्वे जिनित्कित्सु अति-  
प्रसङ्गः स्यात् । औत्सी कंसिकी आत्रेयीति । अत्र  
हि परत्वाल्लोपो जिन्नित्कित्स्वरान् बाधेत ॥

( प्रदीपः ) बहिरङ्गलक्षण इति । स्वार्थादीनां क्रमेण  
प्रतीतिरिति स्वीत्वनिमित्त ईकारो बहिरङ्ग इति तन्निमित्तो लोपो  
बहिरङ्गः । अथ वाङ्मस्य भस्वेत्यौषपेक्षणाऽलोपो बहिरङ्गः ॥  
औत्सीति । उत्से जाता । उत्सादिभ्योऽञ् जीप् ।  
यद्यचपरत्वाल्लोप आद्युदात्तत्वं निरुद्धं बाधेत तदा प्रत्यय-  
स्याद्युदात्तत्वादुदात्तनिवृत्तिस्वर ईकारस्य स्यादेव ॥ कंसि-  
कीति । कंसेन कीता । कंसाट्टिठनिति टिठनि जीपि च  
ठकारस्याकृत इकादेशे उदात्तत्वं मन्यते ॥ आत्रेयीति ।  
अत्रेरपत्यं श्री । इतश्चानिञ् इति ङक् । आयन्नादिषु  
उपदेशिवद्वचनं स्वरसिद्ध्यर्थमिति पूर्वमेयादेशः जीप् ।

१ अभिमानोक्तिर्बीजं स्वयमेवाह प्रागुक्तेत्यादिना । ( र. ना. )

२ अनुदात्तस्य यमोदात्तलोप इति सूत्रेण “यसिन्ननुदात्ते परे उदात्तो लुभ्यते त-  
स्योदात्तः स्यात्” इत्यर्थकानुदात्ते जीपि परे उदात्तस्याणो लोपस्य जातत्वादिति भावः ।

३ बहिरङ्गप्रत्ययपेक्षस्याङ्गत्वमत्वादेरपेक्षणादित्यर्थः । ( र. ना. )

४ आद्युदात्तत्वमित्यर्थः । मन्यते इत्यस्मिन्बीजं तु कंसिक्यां भूयान् परिहार  
इत्यादिना मूले एव स्फुटीभवित्यति । ( र. ना. )

५ वस्तुवस्तु भाष्याशयानुसारी कैयटाशयो मयोक्त इति कैयटाशयानवबो-  
धमूलिका नागेशोक्तिरेव चिन्त्या । ( र. ना. )

६ गोत्रस्य नातित्वाज्जातिलक्षण इति भावः । ( र. ना. )

अत्रोदात्तनिवृत्तिस्वरो न स्यात् । अन्तरङ्गत्वे तु स्वरस्याश्रीय-  
माणे दोषाभावः ॥

( उद्घोतः ) बहिरङ्ग इति ॥ तेन विभज्यान्वाख्यानेऽपि न  
दोष इति भावः ॥ अथवाङ्मस्येत्यादि चिन्त्यम्, संज्ञाकृतबहिरङ्ग-  
त्वस्य शास्त्रेणाश्रयणादिस्तुक्तम् ॥ पूर्वमेयादेशो डीबिति योपध-  
त्वान्न डीषिति भावः ॥

( अन्तरङ्गपरिभाषानङ्गीकारेपि दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । जिन्नित्कित्स्वराः प्रत्ययस्वरस्याप-  
वादाः । न चापवादविषये उत्सर्गोभिनिविशते ।  
'पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः' ।  
प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गोभिनिविशते' ।  
न तावदत्र कदाचित्प्रत्ययस्वरो भवति, अपवादान्  
जिनित्कित्स्वरान् प्रतीक्षते ॥

कंसिक्यां भूयान् परिहारः—अन्यस्यात्र उदात्त-  
त्वम्, अन्यस्य लोपः । आदेरुदात्तत्वम् अन्यस्य  
लोपः ॥

( प्रदीपः ) कंसिक्यामिति । ठचश्चित्करणात् पूर्व-  
मिकादेशः ततः प्रत्ययाद्युदात्तत्वमिति नास्त्युदात्तलोप इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये न चापवादेति । जित्स्वरमिव प्रत्यय-  
स्वरमपि बाधित्वा परत्वादस्वरकस्यैव लोपे औत्सी कंसिकीत्यत्रोदात्त-  
निवृत्तिस्वरो न प्राप्नोतीति भावः ॥ प्रतीक्षते इति । लोपोत्तरमपि  
प्रत्ययलक्षणेन तत्प्रवृत्तेरिति भावः ॥ ठच इति । अत्रेदं चिन्त्यम् ।  
अकारविशिष्टस्य प्रत्ययत्वे तस्यान्तरतम्यादिकादेशे आद्युदात्ते प्राप्तेऽ-  
न्तोदात्तार्थं तत्सार्थक्यम् ॥ व्यञ्जनमात्रस्य प्रत्ययत्वे तत्राद्युदात्त-  
त्वाप्राप्त्या तद्विषयस्याद्युदात्तश्चैत्यस्य सामर्थ्यात्तदादेशे प्रवृत्त्यापत्तौ  
तद्वाधाय तत्सार्थक्यं स्पष्टमेवेति कथमस्य ज्ञापकत्वम् ॥ प्रत्यया अका-  
रविशिष्टाः तत्र व्यञ्जनमात्रस्य व्यञ्जनान्त इकाद्यादेश इति पक्षस्तु  
ठस्येक इति सूत्रस्य भाष्यस्वग्रन्थविरुद्धः ॥ नैषादकर्षुक इत्यत्र  
हस्तासिद्ध्याऽसंगतश्च गौरवप्रसङ्गश्च । किंचात्रापि व्यञ्जनस्य प्रत्ययत्वे  
तदेकवाक्यतापन्नस्य तत्र फलाभावादादेशोत्तरं तत्रैव स्वरप्रवृत्ति-  
रुचिता । अकारविशिष्टस्यापि प्रत्ययत्वे तस्याद्युदात्तत्वे तत्स्थाने  
आन्तरतम्यादाद्युदात्त एवैकादेश इति ज्ञापकोपन्यासे फलं चिन्त्य-  
मिति दिक् ।

७ अन्यथेकादेशात्पूर्वं ठाकारस्य प्रत्ययाद्युदात्तत्वे कृते व्यञ्जनमात्रस्य व्यञ्जनान्ते  
इकादेशेऽन्तोदात्तत्वं लभ्यमेवेति चित्करणं व्यर्थमेव स्यादिति भावः । ( र. ना. )

८ प्रतिलक्ष्यं लक्षणोपपन्न इति सिद्धान्तादिति भावः । ( र. ना. )

९ व्यञ्जनमात्रस्य कादेशेऽस्य कस्य लाक्षणिकत्वेन नैषादकर्षुक इत्यत्र केऽण  
इति ह्रस्वा प्रवृत्तिरेव स्यादिति भावः । ( र. ना. )

१० ह्रस्वस्याकारान्ते आदेशत्वस्य बाधोऽद्युदात्तस्य च व्यञ्जनान्ते आदेशत्वस्य कल्प-  
नम्, इत्येवंरूपगौरवेत्यर्थः, नैषादकर्षुक इत्यादि लक्ष्यानुरोधेन लक्षणमति-  
पदोक्त्यापामप्रवृत्तिकल्पने च गौरवमित्यर्थः । ( र. ना. )

११ आद्युदात्तमेत्यस्येति शेषः । ( र. ना. )

(परिभाषास्वीकारस्यावश्यकत्वेन प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्यु-  
दात्तत्वस्वरविधेरनावश्यकत्वभाष्यम् )

इदं तर्हि आत्रेयी<sup>१</sup> परत्वालोपः कित्स्वरं बाधेत ।  
तस्मादेषां परिभाषाश्रयितव्या । एतस्यां च सत्यां  
शक्यं प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदात्तत्वमवकुम् ।

( प्रदीपः ) कित्स्वरमिति । तत उदात्तनिवृत्तिस्वरो  
न स्यादित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) तत इति । कित्स्वरस्य यस्येति लोपेन बाधे  
एतस्य प्रत्ययस्वरप्रवृत्ताप्रवृत्तौ च दोष इति भावः ॥ भाष्ये एतस्यां  
च सत्यामिति । एवं च आद्युदात्तस्य वा लोपार्थमिति खण्डितम् ॥

( १७०८ संनियोगस्वरविधौ प्रयोजनान्तरवार्तिकम् ॥ १०॥ )

॥ \* ॥ प्रत्ययाद्युदात्तत्वाद् धातोरन्तः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रत्ययाद्युदात्तत्वाद् धातोरन्त इत्ये-  
तद्भवति विप्रतिषेधेन । प्रत्ययाद्युदात्तत्वस्यावका-  
शः—यत्रानुदात्ता प्रकृतिः—समत्वम् सिमत्वम् ।  
धातोरन्त इत्येतस्यावकाशः—यत्रानुदात्तः प्रत्ययः  
—पचति पठतीति । इहोभयं प्राप्नोति—गोपायति  
धूपायति । धातोरन्त इत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन ॥

( प्रदीपः ) इदानीं प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेन स्वरविधौ  
प्रयोजनमाह—प्रत्ययाद्युदात्तत्वादिति । यदा जिनित्या-  
दिर्नित्यमित्यस्यानन्तरं प्रत्ययस्य चेत्युच्यते तदा परत्वाद्वा-  
तुस्वरं प्रत्ययस्वरो बाधेत ॥ यथा न्यासे तु प्रत्ययस्वरं धातुस्वरो  
बाधते ॥

( उद्ध्योतः ) इदानीं प्रत्ययसंज्ञेति । अनेन हि पूर्वप्रयोज-  
नानां खण्डितत्वान्मुख्यं प्रयोजनमिदानीमाहेत्यर्थो लभ्यते स तु  
न युक्त एषामप्यग्रे भगवता खण्डनात् ॥ यथा न्यासे त्विति ।  
अत्र पाठे हि विप्रतिषेधो न्यायो भवति । षाष्ठपाठे हि धातोरित्यस्य  
पूर्वत्वात्पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः स्यादिति भावः ॥ भाष्ये यत्रानु-  
दात्ताप्रकृतिः समत्वमिति । ननु प्रातिपदिकप्रत्यये सर्वत्र चारि-  
तार्थ्याद्यत्रानुदात्तेत्यादि व्यर्थमिति चेन्न, प्रकृतेरुदात्तस्वरितवच्चे-  
प्रत्ययोत्पत्त्यनन्तरं प्रकृतिस्वरनिमित्तकशेषनिघातप्राप्त्या तदपवाद-  
त्वमस्य वाच्यम् ॥ एवं च बाध्यसामान्यञ्जितया धातोरित्यस्या-  
प्यपवादः स्यादिति शङ्कावारणाय तदुक्तेः ॥

( १७०९ प्रासङ्गिकं प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनस्वरान्तरविधि-  
प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ११ ॥ )

॥ \* ॥ पित्स्वरान्तिस्वरश्चापि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पित्स्वरान्तिस्वरश्चापि भवति विप्र-  
तिषेधेन । पित्स्वरस्यावकाशः—पचति पठति ।  
तित्स्वरस्यावकाशः—कार्यं हार्यम् । इहोभयं प्रा-

प्नोति—कार्या हार्या । तित्स्वरो भवति विप्रति-  
षेधेन ॥

( प्रदीपः ) पित्स्वरान्तिस्वरश्चापि भवति विप्र-  
तिषेधेन । पित्स्वरस्यावकाशः—चलनः कम्पनः ।  
पित्स्वरस्य—स एव । इहोभयं प्राप्नोति आम्बुध्या  
सौवीर्या । चित्स्वरो भवति विप्रतिषेधेन ॥

( उद्ध्योतः ) नान्यत्रेति । तथा च तित्स्वरान्तिस्वर एव परः  
स्यादिति भावः ॥ कार्येत्यत्रोभयप्राप्तिं दर्शयति—तत्रैकादेशस्येति ॥

( १७१० प्रत्ययसंज्ञासंनियोगशिष्टस्वरविधिप्रयोजन-  
वार्तिकम् ॥ १२ ॥ )

॥ \* ॥ चित्स्वरश्चापि पित्स्वरात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पित्स्वरान्तिस्वरश्चापि भवति विप्र-  
तिषेधेन । चित्स्वरस्यावकाशः—चलनः कम्पनः ।  
पित्स्वरस्य—स एव । इहोभयं प्राप्नोति आम्बुध्या  
सौवीर्या । चित्स्वरो भवति विप्रतिषेधेन ॥

( १७११ विप्रतिषेधरूपप्रयोजननिराकरणवार्तिकम् ॥ १३ ॥ )

॥ \* ॥ न वाद्युदात्तत्वस्य प्रत्ययसंज्ञा-  
संनियोगात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वार्थो विप्रतिषेधेन ॥ किं कार-  
णम् ? । आद्युदात्तत्वस्य प्रत्ययसंज्ञासंनियोगात् ।  
प्रत्ययसंज्ञासंनियोगेनाद्युदात्तत्वे कृते सति शिष्ट-  
त्वाद्धातुस्वरो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) नवेति । प्रत्ययसंज्ञासंनियुक्तस्वरस्यान्तरङ्ग-  
त्वान्नास्ति विप्रतिषेध इति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) प्रत्ययसंज्ञासंनियुक्तेति ॥ ननु षाष्ठन्यासेऽपि  
आये कृतं धातुसंज्ञातः परत्वात्पूर्वं विषयभेदात्तत्समकालमेव वा  
प्रत्ययस्वरप्रवृत्तौ पश्चात्प्रवर्तमानस्य धातुस्वरस्य सति शिष्टत्वमस्त्येवेति  
चेत्तस्यम् । संज्ञास्वरयोर्विषयभेदेन विरोधाभावात्परत्वात्प्रवृत्तेः ॥  
यौगपैधमपि न । ज्ञानयौगपद्यासंभवात् ॥

( विप्रतिषेधस्यायुक्तत्ववर्णनभाष्यम् )

अयं चाप्ययुक्तो विप्रतिषेधः पित्स्वरस्य तित्स्व-  
रस्य च । किं कारणम् ? ।

( १७१२ विप्रतिषेधायुक्तत्वहेतुवार्तिकम् ॥ १४ ॥ )

॥ \* ॥ टापि स्वरितेनैकादेशः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) टाप्यपि स्वरितेनैकादेशो भविष्यति ॥  
इदमिह संप्रधार्यम्—स्वरितत्वं क्रियताम्, एका-  
देश इति । किमत्र कर्तव्यम् ? । परत्वात्स्वरितत्वम् ॥  
नित्य एकादेशः । कृते स्वरितत्वे प्राप्नोति अकृ-  
तेपि ॥

१ 'आत्रेयी' ॥

२ तृतीयाध्याये इत्यर्थः ।

३ षष्ठाध्याये इत्यर्थः ॥

४ 'पित्स्वरान्तिस्वरश्चापि' । प्राचीनतरपुस्तकपाठः ॥

५ पचति पठतीत्येवमर्थः । ( र. ना. )

६ यश्चास्ति चाप् । उभयत्रापि—अणिजोरिति प्यङ् । ( र. ना. )

७ धातुसंज्ञा प्रत्ययस्वरयोरिति शेषः । ( र. ना. )

स्वरितत्वमपि नित्यम् । कृतेप्येकादेशे प्राप्नोति अकृतेपि ॥

अनित्यं स्वरितत्वम् । अन्यस्य कृते एकादेशे प्राप्नोति अन्यस्याकृते 'शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥'

एकादेशोऽप्यनित्यः । अन्यथास्वरस्य कृते स्वरितत्वे प्राप्नोति अन्यथास्वरस्याकृते 'स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति ॥ [ उभयोरनित्ययोः परत्वात् स्वरितत्वम् ] ॥

अन्तरङ्गस्तर्हि एकादेशः । कान्तरङ्गता ? । वर्णाच्चाश्रित्यैकादेशः, पदस्य स्वरितत्वम् ॥

स्वरितत्वमप्यन्तरङ्गम् ॥ कथम् ? । वक्ष्यत्येतत् — \*पदग्रहणं, परिमाणार्थम् \*इति । उभयोरन्तरङ्गयोः परत्वात् स्वरितत्वम् । स्वरितत्वे कृते आन्तर्यतः स्वरितानुदात्तयोरेकादेशः स्वरितो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) परत्वात्स्वरितत्वमिति । अन्तरङ्गत्वं स्वरितत्वस्यानपेक्ष्यैतदुक्तम् । स्त्रीत्वापेक्षया निमित्तो हेकादेशो बहिरङ्गः ॥ आन्तर्यत इति । स्वरिते त्वनुदात्तोपि विद्यत इति स्वरितानुदात्तयोः स्वरितोन्तरतमः ॥

( उद्ध्योतः ) स्त्रीत्वापेक्षेति । वस्तुतः शब्दशास्त्रत्वात् अर्थाधिक्यापेक्षाकृतं बहिरङ्गत्वमप्रयोजकमिति भाष्याशयः ॥ कार्येत्यस्य विभज्यान्वाख्यानं इदम् ॥ भाष्ये पदस्य स्वरितत्वमिति अनुदात्तं पदमित्यनेनैकवाक्यत्वादिति भावः ॥ एवं च वर्णसमूह रूपपदसापेक्षत्वात्स्वरितत्वं बहिरङ्गमित्यभिमानः ॥ परिमाणार्थमिति । पदत्वं यावद्भवति यावत्तश्च भवति तावत्तावति च सन्निहितमेकवर्जं सर्वमनुदात्तं भवतीत्यर्थः इति भावः ॥ तेन पदसमुदायस्य न स्वरप्रवृत्तिकालेऽसंनिहितस्य च सिध्यतीति बोध्यम् ॥ अत एव धातो-रित्यादिनाऽस्यैकवाक्यतेति दिक् ॥

( पितृस्वरचित्स्वरविप्रतिषेधायुक्तत्वभाष्यम् )

अयं चाप्ययुक्तो विप्रतिषेधः पितृस्वरस्य चित्स्वरस्य च ॥ किं कारणम् ? ।

( १७१३ हेतुवार्तिकम् ॥ १४ ॥ )

॥ \* ॥ चापि चित्करणत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चापि चित्करणसामर्थ्यादन्तोदात्तत्वं भविष्यति ॥ आद्युदात्तश्च ॥ ३ ॥

( प्रदीपः ) चापीति । यदि सामान्यग्रहणाविधातार्थत्वमेव चकारस्याभविष्यत् टाप्प्रत्ययप्रकरण एव यद्व्याप् व्यधास्यतेति भावः ॥ ३ ॥

१ न सर्वत्रोपलभ्यतेऽयं कोष्ठकान्तर्गतः पाठः ॥

२ अभिमानोक्तिबीजं तु अनुदात्तं पदमित्यत्र पदत्वस्य निमित्तत्वेनाभाष्यरूपम् । ( र. ना. )

३ अनुदात्तं पदमित्यस्य पूर्वोक्तायस्त्रीकारादेवेत्यर्थः । अन्यथा धातोः पदत्वाभावाद् धातोरित्यनेन सह तस्यैकवाक्यता न स्यादिति भावः । ( र. ना. )

( उद्ध्योतः ) सामान्यग्रहणेति । बन्धुबन्धकत्वसम्पादनद्वारेति भावः ॥ एवं च शेषनिघातद्वारागमानुदात्तत्वसिद्धये एवात्रास्य सूत्रस्य पाठः ॥ आगमानुदात्तार्थं वेत्येवोपक्रमोक्ता सिद्धान्त्युक्तिः, वचनान्तरकरणे गौरवम् । ज्ञापकं तु नास्तीति पूर्वमेव निरूपितम् ॥ ३ ॥

( ६८३ सन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । १ आ. ४ )

६२२ गुप्तिर्जुकिद्भ्यः सन् ॥ ३ । १ । ५ ॥

( उद्ध्योतः ) गुप्तिर्जुकिद्भ्यः सन् ॥ ५ ॥ परस्मै चि-कित्स्य इति व्याधिप्रतिकारादावेव व्यवहाराद् जुगुप्सादेर्निन्दादावेव व्यवहारात् 'गुप गोपने' 'कित निकेतने' इति प्रयोगाच्च । विचिकित्सा तु संशय इत्यादिकोशबलाच्चाध्वविशेषोपहितेभ्यः एव सन्निति बोध्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

गुप्तिर्जुकितामाना अनुदात्ततः । गुपादिष्वनुबन्धकरणं किमर्थम् ? ॥

( प्रदीपः ) गुप्तिर्जुकि ॥ ५ ॥ गुपेति । अनुक्रमप्रदर्शनाय कितिः पठितो न लयमनुदात्तत्वं ॥ गुपादिष्विति । नित्यसन्निधयत्वात्केवलेभ्यो लङाद्यनुत्पादात् प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) वेदे चिकित्सतीति परस्मैपदप्रयोगदर्शनादाह—अनुक्रमेति । अत्राग्रहणे सूत्रे एव तदभाव आशङ्क्यतेति तन्निवारणायेत्यर्थः ॥ भाष्ये—अनुदात्तत्करणं किमर्थमिति वक्तव्येऽनुबन्धकरणमित्युक्तिर्दानशानोर्वृत्त्युक्तस्वरितत्वेवबोधनाय ॥ यत्तु वृत्त्यादौ बधेरप्यनुदात्तत्वेमुक्तम्, तत्र मानं चिन्त्यम् । भाष्यविरोधश्च ॥ एवं कितेः परस्मैपदत्वेपि भाष्यानुग्रहश्चिन्त्यः ॥ वैदिकपरस्मैपदिप्रयोगास्तु छान्दसत्वादपि सुसाधाः ॥ लोके त्वात्मनेपदमेवोचितम् ॥ एवं च बधेरपि स्वरितत्वं परस्मैपदित्वमेव बोधितमिति वदन्ति ॥ केवलेभ्य इति । सन्नन्ते प्रतीयमानार्थवृत्तिभ्य इत्यर्थः ॥ तदर्थे-वृत्तीनामेवानुदात्तत्वादिति भावः ॥ अत एवार्थान्तरे नानुबन्धकत्वमिति वृत्त्यादायुक्तम् ॥

( १७१४ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ गुपादिष्वनुबन्धकरणमात्मनेपदार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गुपादिष्वनुबन्धाः क्रियन्ते । आत्मनेपदं यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) आत्मनेपदार्थमिति । सन्नन्तेभ्य इति भावः ॥

४ आगमा अनुदात्ता इति वचनान्तरेत्यर्थः । ( र. ना. )

५ अविकृतस्वरूपप्रत्यायनाय 'इनहन् प्रथम्यम्' इत्यत्र नलोप इव 'झलं जश्' इत्यत्र जश्त्वमिव चत्वं न कृतं स्वतन्त्रत्वादाचार्यस्येति बोध्यम् ॥

६ सन् रहितेत्यादिः । ( र. ना. )

७ नाबुबन्धवत्त्वमिति पाठो भाति । ( र. ना. )

( अनुबन्धवैयर्थ्यभाष्यम् )

अथ क्रियमाणेष्वप्यनुबन्धेषु आत्मनेपदं न प्राप्नोति । किं कारणम् ? । सना व्यवहितत्वात् ॥

( आत्मनेपदार्थमनुबन्धसार्थक्यभाष्यम् )

“पूर्ववत्सनः” इत्येवं भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) पूर्ववदिति । लिङ्गातिदेशादिति भावः ॥

( आत्मनेपदानुपपत्तिभाष्यम् )

“पूर्ववत्सनः” इत्युच्यते । न चैतेभ्यः प्राक् सन आत्मनेपदम्, नापि परस्मैपदं पश्यामः ॥

( प्रदीपः ) न चैतेभ्य इति । कार्यातिदेशोऽसौ । लिङ्गातिदेशे तु अनुचिकीर्षतीत्यादावप्यात्मनेपदप्रसङ्ग इति भावः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये न चैतेभ्य इति सन्नन्ते प्रतीयमानार्थवृत्तिभ्यः इत्यर्थः ॥ नापि परस्मैपदमिति बधदानुशानभिप्रायेणेदम् ॥

( आत्मनेपदोपपादनभाष्यम् )

एवं तदनुबन्धकरणसामर्थ्याद्भविष्यति ॥

अथ वा अवयवे कृतं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं भवति । तद्यथा—गोः सक्थनि कर्णे वा कृतं लिङ्गं गोर्विशेषकं भवति ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । सना व्यवधानेऽपीति भावः ॥ अथ वेति । यत्रावयवे लिङ्गासङ्गस्य प्रयोजनं नास्ति तत्र समुदायार्थ एवासाविति भावः । शिष्टं भाष्यं पूर्ववत्सन इत्यत्र विस्तरेण व्याख्यातं तत एवावधार्यम् ॥ ५ ॥

( उद्घोतः ) यत्रावयवे इति । भाष्ये अवयवे कृतमित्यस्य निष्फलं चेदिति शेषो बोध्यः ॥ ५ ॥

( अवयवलिङ्गस्य समुदायविशेषकत्वे दूषणभाष्यम् )

यदि अवयवे कृतं लिङ्गं समुदायस्य विशेषकं भवति । तदा जुगुप्सयति मीमांसयतीत्यत्रापि प्राप्नोति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

अवयवे कृतं लिङ्गं तस्य समुदायस्य विशेषकं भवति यं समुदायं योऽवयवो न व्यभिचरति । सन्नन्तमेव च न व्यभिचरति । णिजन्तं पुनर्व्यभिचरति । तद्यथा । गोः सक्थनि कर्णे वा कृतं लिङ्गं गोरेव विशेषकं भवति, न गोमण्डलस्य ॥ गुप्तिज् किद्भ्यः सन् ॥ ५ ॥

( ३८४ सन्विधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । १ आ. ५ सूत्रम् )

६२३ मान्वधदान् शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ ३ । १ । ६ ॥

( अभ्यासरूपसाधनाधिकरणम् )

( १७१५ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अभ्यासदीर्घेऽवर्णस्य दीर्घप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अभ्यासदीर्घत्वे ऽवर्णस्य दीर्घत्वं प्राप्नोति—मीमांसते

( प्रदीपः ) मान्वध ॥ ६ ॥ सामान्यविधेर्विशेषविधिर्बाधक इत्याह—अभ्यासदीर्घ इति ॥

( उद्घोतः ) मान् वध ॥ ६ ॥ ननु परत्वादित्त्वे दीर्घं प्राप्ते कथमवर्णस्य दीर्घोत आह—सामान्येति ॥

( अभ्यासरूपसाधनाधिकरणम् )

ननु च इत्वे कृते दीर्घत्वं भविष्यति ॥

( अभ्यासरूपसाधनानुपपत्तिभाष्यम् )

कथं पुनरुत्पत्तिसन्नियोगेन दीर्घत्वमुच्यमानमित्वं प्रतीक्षते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये उत्पत्तिसन्नियोगेनेति । ननु धातुमात्रोद्देशेन सन्, सन्नमित्त्वाभ्यासोद्देश्यकश्च दीर्घ इति कथं तयोः संनियोग—इति चेन्न बोधसंनियोगेन तदुत्पत्तिसंनियोगोपीत्यभिमानात् ॥

( प्रतिबन्दीभाष्यम् )

अथ कथमभ्यासं प्रतीक्षते ॥

अथ कथमिति । यथाभ्यासस्येति वचनादीर्घत्वमभ्यासमपेक्षते तथा वचनान्तरविहितमित्यमपीति भावः ॥

( प्रतिबन्धुत्तरभाष्यम् )

वचनादभ्यासं प्रतीक्षते । अभ्यासस्य दीर्घत्वविधानात् । इत्वं पुनर्न प्रतीक्षते ॥

( उद्घोतः ) वचनादभ्यासमिति । एवं च संनियोग एवासिद्ध इति भावः ॥ अत एव पूर्वं विशेषविधित्वेनैव बाधकत्वमुक्तं कैयटेनेति केचित् ॥ परे तु तद्वोधसंनियोगेनानैमित्तिकत्वरूपमन्तरङ्गत्वं बोध्यत इति वदन्ति ॥ न प्रतीक्षते इति । किन्तु विशेषविधित्वादनन्तरङ्गत्वाद्वा बाधत एवेति भावः ॥

( १७१६ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वाभ्यासविकारेषु अपवादस्योत्सर्गाबाधकत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वैष दोषः । किं कारणम् ? । अभ्यासविकारेषु अपवादस्योत्सर्गाबाधकत्वात् ।

अभ्यासविकारेषु अपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते इत्येवं दीर्घत्वमुच्यमानमित्त्वं न बाधियते ॥

( प्रदीपः ) अभ्यासविकारिष्विति । एतच्च दीर्घोऽकित-  
इत्यत्राकिदग्रहणेन ज्ञापयिष्यते ॥

( उद्द्योतः ) नवाभ्यासविकारेष्वपवादेति । अपवादपदं  
बाधकोपलक्षणम् ॥ एतेन यत्रान्यतरप्रवृत्त्युत्तरमन्यतरस्य प्रवृत्त्य-  
योग्यत्वाभावः । तत्रैवेदमिति परास्तम् ॥ एतच्चेति । यं यन्यत  
इत्यादौ नुक्तिः अजन्तत्वाभावाद् दीर्घाप्राप्तौ चरिक्तीत्यादौ रिक्तौ  
रीग्विधिसामर्थ्येन तदप्राप्तौ व्यर्थमिति इति प्रकृतार्थज्ञापक-  
मित्यर्थः ॥ तेन यथायोगं पूर्वमुत्सर्गप्रवृत्तावपवादप्रवृत्तिः ॥ अप-  
वादप्रवृत्तावपि वा पुनः उत्सर्गप्रवृत्तिरिति बोध्यम् ॥

( न्यासान्तरभाष्यम् )

अथ वा “मान्बधदान्शान्भ्य ई चाभ्यासस्य”  
इति वक्ष्यामि ॥

( न्यासान्तरदूषकभाष्यम् )

एवमपि हलादिः शेषापवाद ईकारः प्राप्नोति ॥

( न्यासान्तरेण समाधानभाष्यम् )

“ई चाच” इति वक्ष्यामि ॥

( प्रदीपः ) ई चाच इति । अजन्तस्येत्यर्थः । न च कुते  
हलादिदेशेषोऽजन्तत्वं भवति ।

( उद्द्योतः ) यद्यपि ईचा च इत्यत्रा च इत्यस्य वैयधिकर-  
येनान्वयेऽपि न क्षतिः, तथापि सामान्याधिकरणस्य न्याय्यत्वा-  
दाह—अजन्तस्येति ॥

( न्यासान्तरेण समाधानभाष्यम् )

अथ वा “मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चेतोभ्या-  
सस्य” इति वक्ष्यामि ॥

( न्यासान्तरदूषकभाष्यम् )

सिद्ध्यति । सूत्रं तर्हि भिद्यते ।

( उद्द्योतः ) “ईचाचोभ्यासस्य” “दीर्घश्चेतोभ्यासस्येति” ।  
पञ्चद्वयेपि सूत्रभेदो दूषणम् ॥

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ।

( आक्षेपसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—\*अभ्यासदीर्घत्वे अवर्णस्य दीर्घ-  
त्वप्रसङ्गः\* इति ॥

( परिहारसारणभाष्यम् )

परिहृतमेतत्—न वाभ्यासविकारेषु अपवादा-  
स्योत्सर्गाबाधकत्वाद्\* इति ॥

( परिहारान्तरभाष्यम् )

अथ वानैवं विज्ञायते—“दीर्घश्च अभ्यासस्येति” ॥  
कथं तर्हि ? ।

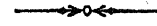
दीर्घश्च आभ्यासस्येति ।

किमदमाभ्यासस्येति ? ।

अभ्यासस्य विकार आभ्यासः तस्येति ॥ मान-  
बधदान् ॥ ६ ॥

( प्रदीपः ) अभ्यासस्य विकार इति । सचेत्त्वमेव ।  
तथा हि—लोपस्य तावदादेशो विधातुमशक्यः, तस्याभाव-  
रूपत्वात् । यदि च ह्रस्वस्य दीर्घत्वं स्यात् तद्विनिर्देशोऽनर्थकः  
स्यात् । दीर्घश्रुत्याच्परिभाषोपस्थानादजन्तस्य दीर्घविधानात्  
दीर्घस्य ह्रस्वस्य वा दीर्घविधाने विशेषाभावात् । तस्मादित्वमेव  
तद्वितेन प्रत्याख्यते । अथवाहृत्य सनि यो विहितो विकारः  
सन्त्यत इति तस्यैव ग्रहणं विज्ञायते । ह्रस्वश्च मानादीनामिव  
वधेरपि पर्जन्यवृत्त्यप्रवृत्त्या भवति ॥ ६ ॥

( उद्द्योतः ) ननु तद्वितेन ह्रस्वग्रहणे वधिर्व्यावर्त्यः तत्र  
फलाभावेन ह्रस्वाभावाद् अह—ह्रस्वश्चेति । अत्र ‘न वा-  
भ्यासविकारेष्वित्येव समाधानं युक्तम् ॥ ६ ॥



( ३८५ सन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । १ आ. ६ सूत्रम् )

६२४ धातोः कर्मणः समानकर्तृका-  
दिच्छायां वा ॥ ३ । १ । ७ ॥

( धातुग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

धातोरिति किमर्थम् ? ॥

( प्रदीपः ) धातोः कर्मणः ॥ १ ॥ धातोरर्थद्वारे  
कर्मत्वसमानकर्तृकत्वे । ते चेच्छायाः प्रत्ययार्थत्वेऽपि सज्जि-  
धानात्तदपेक्षे एव गृह्यते । एवं च प्रकृत्यर्थोपसर्जनः प्रत्ययार्थो  
भवति । अन्यथा प्रकृतिप्रत्ययार्थयोरसंबन्धः स्यात् । वार्ति-  
कावतारणाय प्रश्नं करोति—धातोरिति किमर्थमिति ॥  
अयं भावः—धातुरेव क्रियावाची । उपसर्गस्तु विशेषकः ।  
ततश्चार्थद्वारे कर्मत्वसमानकर्तृकत्वे धातोरेव संभवत इति ॥

( उद्द्योतः ) धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा  
॥ ७ ॥ शब्दस्य धातोः कर्मत्वसमानकर्तृकत्वासंभवात्सूत्रे सामा-  
नाधिकरण्यानुपपत्तिः तर्हि वार्तिकोक्तधातुग्रहणप्रत्याख्यानानु-  
पपत्तिश्चेत्यत आह—अर्थद्वारेति । नन्विच्छायामिति सप्तम्यन्त-

१ अनेवंविधेषु बाधके एतन्न्यायप्रवृत्तेरिष्टत्वादिति भावः । ( र. ना. )

२ रिक्तस्य प्राप्त्याविति संबन्धः । दीर्घाप्राप्त्याविति तदर्थः । ( र. ना. )

३ आहृत्य विहितः, असाधारणधर्मपुरस्कारेण विहित इत्यर्थः । ( र. ना. )

४ अजीगणदचीकरदित्यादिशिक्षणार्थम् ‘अभ्यासविकारेष्विति’ परिभाषा-

श्रवणीयैव । तथैव प्रकृतेऽपि निर्वाहे आभ्यासस्येति निर्देशकत्पनाया समाधानं  
न युक्तम्—तत्र तथा निर्देशस्य संदिग्धत्वात् । कैयटोक्तरीत्याऽऽभ्यासपदेनेत्त्व-  
साधस्य परिग्रहे प्रतिपत्तिगौरवाच्चेति भावः । ( र. ना. )

५ धात्वन्तरार्थनिरूपितकर्मत्वसमानकर्तृकत्वयोः परिग्रहे इत्यर्थः । ( र. ना. )

६ ताभ्यामिति प्रत्याख्यानावधि हेतुबोधकम् । ( र. ना. )

त्वात् कर्मण इत्यादिनाऽन्वयायोग्यमितीच्छारूपेण धात्वन्तरार्थकर्म-  
णस्तेन समानकर्तृकादपि सन् स्यादत आह—ते चेति । संनि-  
धानादिभक्तिविप्रणिगमेन तयोरपि सा विशेषणमिति भावः ॥ न  
केवलं संनिधानादेव तयोरिच्छापेक्षत्वम्, किं तु प्रकृतिप्रत्ययार्थ-  
तयोः सामर्थ्यानुपपत्त्याऽपीत्याह—एवं हीति ॥ वार्तिकावता-  
रणायेति । धातुपदस्य प्रयोजने दर्शिते तैत्तिस्त्रिस्तदन्तरेणापि भव-  
तीति वार्तिकेन दर्शयितुं शक्यत इति भावः ॥ सोपसर्गव्यावृत्तिर्न  
फलमित्यत आह—धातुरेवेति । प्रकृत्येच्छाविषयत्वप्रतीतिविपर्य-  
सामानाधिकरण्यात्, कटसामानाधिकरण्यात् भीष्मादेः कर्मत्व-  
मिवेति भावः ॥

( आक्षेपवारणभाष्यम् )

प्रकर्तुमैच्छत् प्राचिकीर्षत् । सोपसर्गादुत्पत्तिर्मा  
भूदिति ॥

( प्रदीपः ) सोपसर्गादिति । संघातेन विशिष्टा क्रिया  
प्रतिपाद्यत इति तत एव सनुत्पत्तिप्रसङ्गः । ततश्च संघातादेरेव  
द्विवचनादिप्रसङ्ग इति भावः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये प्राचिकीर्षदिति । यद्यपि लब्धपि द्विव-  
चने दोषः, तथाप्यदकृतमधिके दोषं वक्तुं लज्जुदाहृतः ॥ संघाते-  
नेति, धातुपदाभावे विशिष्टस्यैव इच्छाविषयत्वेन कर्मत्वात्तद्वाच-  
कादेव सन् प्रसङ्ग इति भावः ॥

( १७१७ धातुग्रहणानर्थक्यवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मग्रहणात्सन्विधौ धातुग्रहणा-  
नर्थक्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मग्रहणात्सन्विधौ धातुग्रहणम-  
नर्थकम् । 'कर्मणा समानकर्तृकादिच्छायां वा सन्  
भवतीत्येव धातोस्तत्पत्तिर्भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) कर्मग्रहणादिति । एतदुपलक्षणम् । तेन  
समानकर्तृकग्रहणादित्यपि बोद्धव्यम् ॥

( उद्घोतः ) सुबन्तार्थस्यापि कर्मत्वात्ततः सन् स्यादत  
आह—एतदिति । तद्ध्वनयन्नाह—भाष्ये कर्मणः समान-  
कर्तृकादिति ॥

( १७१८ आनर्थक्यसाधकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सोपसर्ग वै कर्म ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सोपसर्गकमिह वै कर्म । तत उत्पत्तिः  
प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) सोपसर्गमिति । संघातस्य क्रियाविशेषाभि-  
धायित्वादिति भावः ॥

( १७१९ आनर्थक्यसाधकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सोपसर्ग कर्मेति चेत् कर्मविशेष-  
कत्वात् उपसर्गस्यानुपसर्गं कर्म ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सोपसर्गं कर्मेति चेत् कर्मविशेषक  
उपसर्गः अनुपसर्गमेव हि कर्म ॥

अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् ।

( १७२० अनुपसर्गस्य कर्मत्वसाधकवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सोपसर्गस्य हि कर्मत्वे धात्वधि-  
कारेपि सनोऽविधानमकर्मत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यो हि मन्यते सोपसर्गं कर्मेति क्रि-  
यमाणेऽपि तस्य धातुग्रहणे सनोऽविधिः स्यात् ।  
किं कारणम् ? । अकर्मत्वात् ॥

( प्रदीपः ) कर्मविशेषक इति । अत एव वचनात्  
पृष्ठीसमासप्रतिषेधोऽनित्यः । अयमर्थः—धातुरेव क्रियावाचीति  
तदर्थस्यैव कर्मत्वम् । न तूपसर्गार्थस्यापि । यथोक्तम्—कट  
एव कर्म तत्सामानाधिकरण्यात् भीष्मादिभ्यो  
द्वितीया भविष्यतीति । अथापि विशेषणस्य पृथक्कर्मत्वम् ।  
यथोक्तम्—कटोऽपि कर्म भीष्मादयोपीति । तथापि  
कर्मसमुदायस्याकर्मत्वात्समुदायादुत्पत्तिर्न भविष्यति ॥

सोपसर्गस्य हीति । यदि संघातस्यार्थद्वारकं कर्मत्वं  
स्यात् तदा अवयवस्याकर्मत्वात्ततः सन्प्रत्ययो न स्यात् ।  
कर्मण इत्येषा हि पञ्चमी । पृष्ठां तु सत्यां कर्मणोऽवयवाद्धातोः  
सञ्जित्याश्रीयमाणेऽनुपसर्गाच्च स्यात् । तस्मात्—

अडादीनां व्यवस्थायै पृथक्त्वेन प्रकल्पनात् ।

धातूपसर्गयोर्धातुः क्रियावाचीति निर्णयः ॥

( उद्घोतः ) प्रतिषेध इति ॥ तुजकाभ्यामित्यादिः ॥ या-  
जकादिवात्समास इत्यन्ये ॥ धातुरेवेति संघातेन विशिष्टक्रियाव-  
गतावपि विशेष्यस्यैव कर्मत्वं प्राधान्यादिति भावः ॥ तत्र दृष्टान्त-  
माह—यथोक्तमिति । प्रधानस्यैव कर्मत्वमित्यत्रार्थे दृष्टान्तोऽयम् ॥  
यद्यपि तत्र तद्विशेषणेऽपि सा शक्तिरिति तात्पर्यम्, तथापि समा-  
नाधिकरणविशेषण एव तथा उपसर्गार्थस्तु व्यधिकरण इति दिक् ॥  
अथापि विशेषस्येति पाठः धात्वधंगतविशेषरूपस्योपसर्गार्थस्येत्यर्थः ॥  
क्वचित्तु विशेषणस्येति पाठः, तत्राप्ययमेवार्थः ॥ समुदायस्याकर्म-

पक्षभूत इति वदन्ति ॥ अन्ये तु सूत्रघटकप्रत्याख्यानवार्तिकाभ्यां तत्र निर्दि-  
ष्टानीति नास्य वार्तिकत्वं तद्विरुद्धमिति मन्यन्ते ॥ वार्तिकापाठपुस्तकं तु नैवोप-  
लभ्यते येन निर्णयः स्यात् ॥ वस्तुतस्तु वार्तिकमेवेदम् । वार्तिकस्यैव वार्तिकपूर्व-  
पक्षरूपत्वौचित्यादिति तु वयम् । ( र. ना. )

८ तथा च पिपठिपतीत्यादि न सिद्ध्येदिति भावः । ( र. ना. )

९ प्राचिकीर्षदित्यादौ अडादीनां व्यवस्थायै धातूपसर्गयोः पृथक्त्वेन स्वरूप-  
स्यास्यैव प्रकल्पनाद् धातुरेव क्रियावाची—उपसर्गस्तु तदर्थविशेषक इति  
निर्णय इति योजना । ( र. ना. )

१ इच्छारूपेऽप्ये सन् स्यादिति संबन्धः । ( र. ना. )

२ प्रकृतिप्रत्ययार्थयोरिति पाठः साधुः । प्रकृत्यर्थप्रत्ययार्थयोर्यद्व्यपेक्षा-  
लक्षणं सामर्थ्यं परस्परान्वयोपपादकं तदनुपपत्त्याऽपीत्यर्थः । ( र. ना. )

३ तत्तिस्त्रिस्तदन्तरेणापि । उत्तरत्र तत्पदं धातुपदपरम् । ( र. ना. )

४ इत्याहेति पाठः साधुः । ( र. ना. )

५ उपसर्गार्थस्येति शेषः । ( र. ना. )

६ प्रकृत्यर्थस्येत्यादि । ( र. ना. )

७ अग्रे 'यच्चाप्येतदुक्तम्'—इत्युत्तरं वार्तिकानामुपपत्त्यासेऽस्योपपत्त्यासो न  
इत्यतस्ततोऽयं भाष्यकारस्यैव ग्रन्थः 'सोपसर्गं कर्मेति चेत्' इति वार्तिकस्य पूर्व-

त्वादिति । ननु प्रतिष्ठासत इत्यादौ प्रसमभिख्याहारे गतेरेव प्रती-  
यमानत्वात् सैव कर्मेति धातुग्रहणाभावे तत्प्रतिपादकात्सोपसर्गादेव  
स्यादिति चेन्न । तत्रापि आदिकर्मद्योतकतायाः प्रशब्दे भूवादिसूत्रे  
भाष्ये उक्तेः ॥

भाष्ये धात्वधिकारेपीति । नन्वस्या स्वरितत्वादधिकारपद-  
प्रयोगोऽयुक्त इति चेन्न; नेदमधिकारपदं स्वरितपरम्, किंतु करणं  
कारः अधिकः कारः अधिकारः धातोरित्यस्याधिकस्य करणेऽपीत्यर्थः ॥  
अवयवस्याकर्मत्वादिति । कर्मत्वपर्याप्त्यनधिकरणत्वादित्यर्थः ॥  
अवयवषष्ठ्यां समुदायस्य कर्मत्वेपि न दोष इत्यत आह—षष्ठ्यां  
त्विति ॥ अनुपसर्गाच्चेति । न च व्यपदेशिवद्भावः, अग्रे भाष्ये  
वक्ष्यमाणत्वादित्याहुः ॥ तस्मादिति । तेनाचार्येण तयोः पृथ-  
क्त्वेन कल्पनात् क्रियावाचिनां च धातुत्वादुपसर्गरहित एव क्रिया-  
वाचीति निर्णयः इत्यर्थः ॥ पार्थक्यकल्पनाफलं चाडादिव्यवस्था ॥  
समानकर्तृकादित्यनेन क्रियावाचकादेव सनो विधानमिति न तद्वि-  
शिष्टात्सन्निति भावः ॥

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । सुबन्तादुत्पत्तिर्मा भूत् ॥

( प्रदीपः ) सुबन्तादिति । विकल्पितत्वात्सनः पक्षे  
सावकाशाः क्यजादय इति भावः । प्रातिपदिकादिति तु  
नोक्तम् । कर्मण इति वचनात्कर्मत्वे च सति सुबन्तताया  
अवश्यंभावात् ॥

( उद्द्योतः ) कर्मत्वे च सतीति । कर्मत्वादुद्द्योतकत्वाद्वि-  
भक्तेरिति भावः ॥

( १७२१ आनर्थक्यसाधकवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ सुबन्ताच्चाप्रसङ्गः क्यजादीनाम-  
पवादत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुबन्ताच्च सनोऽप्रसङ्गः । किं कार-  
णम् ? क्यजादीनामपवादत्वात् । सुबन्तात्क्यजा-  
दयो विधीयन्ते । ते अपवादत्वात् बाधका भवि-  
ष्यन्ति ॥

( प्रदीपः ) क्यजादीनामिति । कर्ममात्रात्सन्विधिः ।  
कर्मविशेषात्सुबन्तात् क्यजादय इति भावः । यत्र चोत्सर्गा-  
पवादौ विभाषा तत्रापवादेन मुक्त उत्सर्गो न भवति । अपि  
तु वाक्यमेव ॥

( उद्द्योतः ) कर्मविशेषादिति । क्यजादीनामप्येकार्थीभावे एव  
प्रवृत्तेः सनभावे तदभावाच्च क्यजादीनां सावकाशतेति भावः ॥ एतेन  
क्यजादभावे सन् स्यादित्यपास्तम् ॥ तदध्वनयन्नाह—यत्र चेति ॥

( १७२२ आनर्थक्यसाधकवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ अनभिधानाद्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा अनभिधानात्सुबन्तादुत्प-

त्तिर्न भविष्यति । नहि सुबन्तादुत्पद्यमानेन सना  
इच्छाभिधानमस्ति ॥

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

इयं तावदगतिका गतिः—यदुच्यते—‘अनभिधा-  
नादिति ॥

( प्रदीपः ) इयं तावदिति । लक्षणाश्रया लक्ष्यस्य व्य-  
वस्था न्याय्या लक्ष्याश्रयेण तु लक्षणव्यवस्थापनं गत्यन्तराभा-  
वादिति भावः ॥

( उद्द्योतः ) लक्षणाश्रयेति । बोद्धृणां लक्षणैकचक्षुष्कत्वा-  
दिति भावः ॥

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

यदप्युच्यते \*सुबन्ताच्चाप्रसङ्गः क्यजादीनामप-  
वादत्वाद्\* इति, भवेत्कस्माच्चिदप्रसङ्गः स्यादिति  
आत्मेच्छायां । परेच्छायां तु प्राप्नोति राज्ञः पुत्रमि-  
च्छतीति ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये आत्मेच्छायामिति । कर्मीभूतादिति  
शेषः ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

एवं तर्हि इदमिह व्यपदेश्यं सदाचार्यो न व्यप-  
दिशति । किम् ? । “समानकर्तृकादिच्छायां वा”  
इत्युच्यते । न च सुबन्तस्य समानः कर्तास्ति ॥

( प्रदीपः ) व्यपदेश्यं सदिति । सच्छोभनं यद्यपदे-  
शाहं तत्र व्यपदिशति ॥ न च सुबन्तस्येति । पुत्रादेः  
सत्त्वभूतार्थोभिधायित्वात्साध्यस्यैव साधनसंबन्धयोग्यत्वादिति  
भावः ॥ कटं करोतीत्यादावपि सुबन्तेन सिद्धरूपोऽर्थोऽभिधीयते,  
शब्दान्तरसन्निधानात् साध्यता प्रतीयते । यथोक्तं हरिणा—  
“निर्वर्त्यो वा विकार्यो वा प्राप्यो वा साधनाश्रयः ।  
क्रियाणामेव साध्यत्वात्सिद्धरूपोऽभिधीयते” इति ॥

( उद्द्योतः ) साध्यस्यैवेति । साध्यत्वेन प्रतीयमानस्यैव-  
त्यर्थः ॥ साध्यता प्रतीयत इति । सा च न कारकान्वयिताव-  
च्छेदिकेति भावः ॥ साधनाश्रय इति । कर्मत्वलक्षणशक्त्याश्रय  
इत्यर्थः ॥ क्रियाणामेव साध्यत्वात् । साध्यत्वेन प्रतीयमान-  
त्वात् ॥ सिद्धरूपः । सिद्धत्वेनैव स प्रतीयत इत्यर्थः ॥

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

एवमपि भवेत् कस्माच्चिदप्रसङ्गः स्यात्, यस्य  
कर्ता नास्ति । इह तु प्राप्नोति—आसितुमिच्छति  
शयितुमिच्छतीति ॥

( प्रदीपः ) आसितुमिच्छतीति । तुमुनन्तस्य साध्य-  
रूपाभिधायित्वादस्ति कर्त्रा योग इति भावः ॥ क्यचि मा-  
न्ताव्ययप्रतिषेध इति क्यजत्र प्रतिषिद्धः ॥

१ एकार्थीभावाभावादित्यर्थः । ( र. ना. )

२ आत्मेच्छायां कर्मीभूतात्—कस्माच्चिसुबन्तात्क्यचोऽप्रसङ्गः स्यादिति भवे-  
दिति संबन्धः । स्यादित्यन्तवाक्यार्थस्य भवनक्रियाकर्तृत्वम् । ( र. ना. )

३ इहेत्यस्य सुबन्तात्सनोऽप्रसङ्गे इत्यर्थः । आचार्यो वार्तिककारः । न व्यप-  
दिशति, अप्रसङ्गसाधकतया नोपन्यस्यतीत्यर्थः । ( र. ना. )

( उद्घोतः ) तुमनन्तयेति ॥ अव्ययकृत । इति वचना-  
न्तस्य साध्यरूपभावाभिधायित्वर्थः ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

इच्छायामर्थे सन् विधीयते इच्छार्थेषु च तुमुन् ।  
तत्र तुमुनोक्तत्वात्सार्थस्य सन् न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) तुमुनोक्तत्वादिति । तुमुन्निमित्तेनेच्छ-  
तीत्यनेनेत्यर्थः । न चेच्छतीत्यस्य प्रयोगं बाधित्वा सन् भवतीति  
युज्यते वक्तुम् । उपपत्तिमित्तत्वात्तुमुनस्तदभावे अभावप्र-  
सङ्गात् ॥

( उद्घोतः ) तुमुन् इच्छावाचकत्वाभावादाह—तुमुन्निमि-  
त्तेनेति । समानकर्तृकेषु तुमुन् इत्यत्रेच्छार्थेऽप्यित्युक्तस्तस्य  
तन्निमित्तत्वम् ॥ तदभावे इति । सनस्तु नोपपदत्वं, महासंज्ञा-  
विरोधात् ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

एवमपीह प्राप्नोति—आसनमिच्छति शयनमि-  
च्छतीति ॥

( प्रदीपः ) आसनमिच्छतीति । ल्युट् भावमात्रे  
विधीयते, न त्विच्छार्थेषूपपदध्विति, भावः । धातुवाच्यक्रिया-  
पेक्षं च समानकर्तृकत्वमस्ति ॥

( उद्घोतः ) नन्वनस्य सिद्धरूपभावाभिधायित्वेन कथं कर्तृ-  
सम्बन्ध इत्यत आह—धातुवाच्येति ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

इह यो विशेष उपादीयते उपाधिर्वा द्योत्ये त-  
स्मिन्नेन भवितव्यम् । यश्चेद्धार्यो गम्यते—आसि-  
तुमिच्छति शयितुमिच्छतीति—स्वयं तां क्रियां क-  
र्तुमिच्छतीति । नासाविह गम्यते—आसनमिच्छति  
शयनमिच्छतीति=अन्यस्याप्यासनमिच्छतीत्येषो-  
ऽर्थो गम्यते ॥

अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् । यो हि मन्यते—अ-  
द्योत्ये तस्मिन्नेन भवितव्यमिति । क्रियमाणेऽपि हि  
तस्य धातुग्रहण इह प्रसज्येत—संगतमिच्छति यज्ञ-  
दत्तो देवदत्तेनेति ॥

( प्रदीपः ) इह यो विशेष इति । समानशब्दस्तद-  
न्तवाच्योऽर्थ उपाधिः अन्यस्तु विशेष इति भावः ॥ कश्चित्त्व-  
भेदेन व्यवहारः । आसितुमिच्छतीति । वृत्तिसमानार्थेन  
वाक्येन भवितव्यम् । आसिषित्तइत्यस्य चासितुमिच्छतीति  
समानार्थं भवतीति भवत्यासेः सन्प्रत्ययः । आसनमिच्छ-  
तीत्यत्र तु किमात्मन आसनमिच्छति अथ परस्येति संदेहात्स-

मानकर्तृकत्वाप्रतिपत्तिरित्यासन्शब्दात्सन्प्रत्ययो न भविष्यति ।  
नह्यतः सन्नुत्पद्यमानः समानकर्तृकत्वलक्षणं विशेषमन्तर्भावयितुं  
शक्नोतीति भावः ॥ संगतमिच्छतीति । केवलस्य धातोः  
प्रयोगाभावात् क्तप्रत्ययोपादानं, धातोरेव तु सन्प्रसङ्ग इत्यु-  
च्यते । अत्र च किमात्मकर्तृकं संगतमिच्छति अथ परकर्तृ-  
कमिति संदेहाद्यदा समानकर्तृकत्वं नावधार्यते तदा न भा-  
व्यम् । यदा तु समानकर्तृकत्वं प्रतिपिपादयिषितं तदा भवि-  
तव्यमेव सना संजिगंसते वत्सो मात्रेति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—द्योत्ये तस्मिन्निति । वृत्त्या शब्द-  
जन्यबोधविषये इत्यर्थः ॥ वृत्तीति; तुमुन्नेन विग्रहवाक्ये समान-  
कर्तृकत्वे तुमुनो विधानात् समानकर्तृकत्वप्रतीतेराद्युक्तं समान-  
कर्तृकत्वविषयसन्तो विग्रहवाक्यम्, भावविषयव्युत्पन्ने तु तदतिश्र-  
यात्र तत्सन्तो विग्रहवाक्यमिति नासनशब्दात्सन्नुत्पत्तिरिति भावः ॥  
न ह्यत इति । विग्रहे तदप्रतीतेः । नह्यासन्शब्दगर्भं समानकर्तृ-  
कत्वप्रतीतियोग्यं विग्रहवाक्यमस्तीति तदभावात्ततः सन्नुत्पत्ति-  
रेवानुमीयत इति भावः ॥ पक्ष्यामीच्छति देवदत्तः इत्यादौ तिङन्ता-  
त्स्यादिति तु नापाद्यम् ॥ कर्ममात्रबोधकत्वाभावात् अतिरिक्तस्य  
कर्त्रादेरपि भावादित्याहुः ॥ अनान्तात् कान्तेऽविशेषं दृष्ट्वाह—  
केवलस्येति । यदात्विति । संगन्तुमिच्छतीति विग्रहवाक्यस्य  
सन्प्रकृतिधातुगर्भस्य संभवादिति भावः ॥

( कर्म—समानकर्तृकप्रयोजनाधिकरणम् )

( १७२३ कर्म—समानकर्तृकग्रहणानर्थक्यवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मसमानकर्तृकग्रहणानर्थक्य-  
मिच्छाभिधाने प्रत्ययविधानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मसमानकर्तृकग्रहणमनर्थकम् ।  
किं कारणम् ? । इच्छाभिधाने प्रत्ययविधानात् ।  
इच्छायामभिधेयायां सन्विधीयते ॥

( १७२४ आनर्थक्यसाधकवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ अकर्मणो ह्यसमानकर्तृकाद्भान-  
भिधानात् ॥ \* ॥

इच्छायामभिधेयायां सन्विधीयते । न चाकर्म-  
णोऽसमानकर्तृकाद्भा उत्पद्यमानेन सना इच्छाया  
अभिधानं स्यात् । अनभिधानात् तत् उत्पत्तिर्न  
भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) कर्मेति । इच्छायाः कर्मणावश्यं भाव्यमिति  
प्रत्यासत्त्या प्रकृत्यर्थ एव कर्मत्वेनाश्रयिष्यते न तु तद्यतिरि-  
क्तमिति गमनेनेच्छतीति सन्न भविष्यति । प्रत्यासत्त्यैव च

१ 'इच्छार्थेषु लिङ् लोटौ' । ३।३।१५७ 'समानकर्तृकेषु तुमुन्' ३।६।१५८  
इति सूत्रपाठक्रमा दति भावः ॥

२ ल्युट् प्रकृतिभूतेत्यादिः । ( र. ना. )

३ वृत्तिसमानार्थकः शब्दो विग्रहवाक्यं यस्येति फलितार्थः । अन्यस्त्विति—  
तदन्तावाच्योऽपि सम्प्रियाहाररूपाकाङ्क्षावशात्तदन्ते प्रतीयमानः । प्रकृते तु  
समानकर्तृकत्वं विशेष एव न तूपाधिः । अतएव वक्ष्यत्युपपदमेव 'समानकर्तृकत्व-

लक्षणं विशेषमिति—भाष्ये विशेष उपादीयते उपाधिर्वेत्युक्तिस्तु तयोरभेदव्यव-  
हारमाश्रित्य । ( र. ना. )

४ इदं प्रतीत्यन्वयि । ( र. ना. )

५ इदं विग्रहवाक्यविशेषणम्—तदभावादिति—समानकर्तृकत्वप्रतीतियोग्यत्वं  
तत्पदार्थः । ( र. ना. )



समानकर्तृकत्वमाश्रयिष्यत इति देवदत्तस्य भोजनमिच्छतीत्यत्रापि न भविष्यतीत्येतद्व्यायमूलमनभिधानम् ॥ इह नित्यानां शब्दानां संकीर्णप्रयोगदर्शने सति साध्वसाधुविभागाय शास्त्रारम्भः न च गमनेनेच्छति, देवदत्तस्य भोजनमिच्छतीत्यत्रार्थे जिगमिषति बुभुक्षत इत्यादिप्रयोगोऽस्तीति किं तन्निवृत्त्यर्थेन विशेषणोपादानेनेत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) नन्वनभिधानादिति भाष्यमनुपपन्नं समानकर्तृकत्वादेर्बोध्यत्वाङ्गीकारेण तैदभावे तस्य बोध्यत्वे प्रमाणालाभात् तस्यागतिकगतिवाच्यत्वे त आह—इच्छाया इति । सविषयत्वादित्यर्थः ॥ करणाकाङ्क्षा तु न नियतेति भावः ॥ व्याप्तिन्यायाश्रयेणोपि समाधत्ते—इह नित्यानामिति । तत्र समानकर्तृकत्वादिप्रकारकबोधो लोकव्युत्पत्तेरेव न हि सर्वत्र व्याकरणमेव शक्तिग्राहकमस्तीति भावः ॥

( १७२५ धातुग्रहणानर्थक्यबाधकवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ अङ्गपरिमाणार्थं तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अङ्गपरिमाणार्थं तद्व्यन्यतरत्कर्तव्यं धातुग्रहणं कर्मग्रहणं वा । अङ्गपरिमाणं ज्ञास्यामीति ॥

किं पुनरत्र ज्यायः ? ।

धातुग्रहणमेव ज्यायः । अङ्गपरिमाणं चैव विज्ञातं भवति । अपि च धातोर्विहितः प्रत्ययः शेष आर्धधातुकसंज्ञो भवतीति सन आर्धधातुकसंज्ञापि सिद्धा भवति ॥

( प्रदीपः ) अङ्गपरिमाणार्थं त्विति । इच्छायां वेत्येतावत्सुच्यमाने यद्यपि प्रत्ययपरत्वेन पूर्वा प्रकृतिराक्षिप्यते तथापि प्राचिकीर्षदिलादौ सोपसर्गस्याङ्गत्वं स्यात् । यदा तु साक्षात् प्रकृतिर्विशिष्टा निर्दिश्यते तदाङ्गपरिमाणं ज्ञायते ॥ अन्यतरदिति । त्रितये प्रत्यारूपाते अन्यतममिति वक्तव्ये समानकर्तृग्रहणं न कर्तव्यमेव गौरवप्रसङ्गादिति मत्वान्यतरदित्युक्तम् ॥ धातुग्रहणमेवेति । कार्यान्तरस्यापि संपादनादित्यर्थः । धातुशब्दोच्चारणेन धातोर्विहितस्यार्धधातुकसंज्ञोक्ता । तथा च पूर्वसूत्रद्वयविहितस्य सनस्तदभावाज्जुगुप्सत इत्यादाविडभावः । एतत् सूत्रविहितस्य तु सन आर्धधातुकत्वाच्छिष्यत इत्यादाविडगुणो भवतः । नन्विबोद्धव्यमिति किन्त्वमार्धधातुकनिमित्तगुणनिषेधार्थं सन आर्धधातुकसंज्ञाज्ञापकं भविष्यति ॥ नैतदस्ति । सामान्येन ज्ञापके व्याख्यायमाने सर्वत्र सनः प्रसङ्गः । विशेषविषये त्विगन्तप्रकृतेरेव स्यादिति धातुग्रहणं कर्तव्यम् ॥

( उद्ध्योतः ) ननु प्रत्यासत्त्या कर्मबोधकात्प्रत्ययेऽङ्गपरिमाणं

ज्ञातमेवेत्यत आह—इच्छायां वेति । न कर्तव्यमेवेति । उत्तरसूत्रकर्तव्यम् आत्मन इति अत्रैव कार्यं, तत्रेच्छायामात्मन इत्यस्य कर्तृत्वेनान्वयस्य कृत्स्नादन्तरङ्गत्वाच्च धातावपि तेनैव सम्बन्धेनान्वयः ॥ एवं च प्रत्यासत्त्योभयकत्रोरैकत्वं एव प्रवृत्तिरिति भावः ॥ धातुशब्दोच्चारणेनेत्यस्य फलमाह—तथा चेति ॥

( सिद्धान्तिकर्तृकमुपालम्भभाष्यम् )

यच्चाप्येतदुक्तम्—कर्मग्रहणात् सन्विधौ धातुग्रहणानर्थक्यं सोपसर्गं कर्मेति चेत् कर्मविशेषकत्वादुपसर्गस्यानुपसर्गं कर्म सोपसर्गस्य हि कर्मत्वे धात्वधिकारेऽपि सनोऽविधानमकर्मत्वाद्—इति ॥ स्वपक्षोऽनेन वर्णितः । युक्तमिह द्रष्टव्यम्—किं न्याय्यं कर्मेति ॥

( प्रदीपः ) स्वपक्ष इति । यद्यपि सर्व एव स्वपक्षं वर्णयन्ति । तथापि परपक्षदूषणाभिनिवेशादयुक्तोऽपि स्वपक्षो वर्णित इत्युक्तं भवति ॥ युक्तमिति । यदेव न्याय्यं तदेव ग्राह्यम् । न तु दुरभिनिवेशः कार्य इत्यर्थः ॥

( सिद्धान्तभाष्यम् )

एतच्चात्र युक्तम्—यत्सोपसर्गकं कर्म स्यात् ॥

( प्रदीपः ) यत्सोपसर्गकमिति । धातूपसर्गसंघातेन हि क्रियाविशेषस्य प्रक्रमादर्थद्वारकं तस्यैव कर्मत्वमित्यर्थः । विशिष्टैव च क्रियासाधनेन निर्वर्त्यते, न तूत्पन्ना सती विशेषणान्यत उत्पन्नेनाभिसंबध्यते । तत्र यद्यपि धातुर्वाचक उपसर्गस्तु द्योतकः तथाप्यसति धातुग्रहणे वाचकद्योतकविभागस्य शब्देनेहानङ्गीकृतत्वात् संघातादेवोत्पत्तिः स्यादिति भावः । उपपदमतिष्ठित्यत्र च साधनं हि क्रियां निर्वर्तयति तामुपसर्गो विशिनष्टि इत्युत्पत्तिविशिष्टाया एव क्रियाया आश्रित्योक्तमित्यविरोधः । अथ वा सत्यपि धातोः पूर्वं साधनयोगे इधिकर्मत्वमिह विशिष्टाया एव क्रियायाः प्रतिपाद्यमिति पूर्वमुपसर्गेण संबन्धे धातुग्रहणेऽसति सोपसर्गात्सन उत्पत्तिप्रसङ्ग एव ॥

( उद्ध्योतः ) क्रियाविशेषस्य विशिष्टक्रियायाः ॥ प्रक्रमात् बोधनात् ॥ विशिष्टैवेति । उपसर्गद्योत्यार्थविशिष्टैवेत्यर्थः ॥ साधनेन तत्तत्प्रयुक्तकार्येण । निर्वर्त्यते उत्पन्नबोधविषयीक्रियते ॥ उत्पन्ना उत्पन्नबोधा ॥ अन्यत उत्पन्नेन, अन्यत उत्पन्नबोधेन ॥ तथाप्यसतीति । कर्मण इत्यस्य कर्मबोधकादित्यर्थः स्यादिति भावः ॥ उत्पत्तिविशिष्टाया एव क्रियाया इति । विशिष्टाया एव क्रियाया धातुमात्राद्बोध्योत्पत्तिमाश्रित्येत्यर्थः ॥ एवं च पक्षान्तरत्वादविरोध इति भावः ॥ अथवेति । साधनसम्बन्धोत्तरमपि उपसर्गसम्बन्धे—इच्छत्यर्थकसन् सम्बन्धापेक्षयान्तरङ्गत्वात्पूर्वमुपसर्गसम्बन्धः ॥ अत एव न विशेष्यांशलाभेनेच्छाया निवृत्तिरित्यभिर्मानः ॥

१ साध्वसाधुनामित्यादिः । ( र. ना. )

२ 'विशेषोपादाने' ॥

३ सूत्रे कर्मसमानकर्तृकग्रहणाभावे इत्यर्थः । तस्य—समानकर्तृकत्वादेः । तस्य—अनभिधानस्य । ( र. ना. )

४ व्याप्तिन्यायाश्रयेण करणादेरपि सन आपादनेऽपि इत्यर्थः । ( र. ना. )

१ सनः पूर्वमित्यर्थः । ( र. ना. )

२ अभिमानोक्तिबीजस्तु विशिष्टा क्रिया धातुमात्रवाच्यैव इति सिद्धान्तः । किञ्च प्रकृते सन् संबन्धोत्तरमेव तदन्तस्य धातुत्वे साधनसंबन्धस्तदुत्तरसोपसर्गसंबन्ध इत्येव प्रक्रियान्याय्य इति । ( र. ना. )

( पूर्वदत्तदूषणोद्धारभाष्यमेकदेशिनः )

ननु चोक्तम्—सोपसर्गस्य कर्मत्वे धात्वधिकारे-  
ऽपि सनो ऽविधानमकर्मत्वाद्—इति ॥ नैष दोषः ।  
कर्मण इति नैषा धातुसमानाधिकरणा पञ्चमी  
कर्मणो धातोरिति । किं तर्हि ? अवयवयोगे<sup>१</sup> एषा  
षष्ठी—कर्मणो यो धातुरवयव इति ॥

( प्रदीपः ) किं तर्हीति । व्याप्तिग्रहणाय षष्ठीपक्ष आ-  
श्रीयते पञ्चम्यां हि सत्यामनुपसर्गादेवोत्पत्तिः स्यान्न तु सोप-  
सर्गात् । षष्ठीपक्षे तु सोपसर्गादपि सिध्यति ॥

( उद्घोतः ) व्याप्तिग्रहणयेति । व्याप्तिरभावेत्यर्थः ॥  
बहुलक्ष्यसम्बन्धलाभायेति यावत् ॥

परेतु गतिर्गताविति सूत्रे वक्ष्यमाणभाष्यकैयटरीत्योपपदमतिङि  
सूत्रोक्तरीत्या च पिपठिषतीति सिञ्चुत्तरमुपसर्गयोगेन सर्वसिद्धेः  
धातुग्रहणानर्थक्यमेव । युक्तं यत्सोपसर्गं कर्मैति एव सिद्धान्त्यु-  
क्तिः । तस्य चोपसर्गार्थविशिष्टधात्वर्थः कर्मैत्यर्थः । समानकर्तृकादि-  
त्युक्त्या सन्नन्तकारकेणास्य संबन्धे साध्यत्वप्रतीतानुपसर्गसम्बन्धात् ॥  
अत एव न विशेष्यांशलाभेनेच्छानिवृत्तिः ॥

इतर इदमबुद्ध्वा शङ्कितवान्—सोपसर्गस्य कर्मत्वे इत्यादि ॥  
तत्र एकदेशिनः कर्मण इत्यवयवषष्ठीत्युत्तरम् ॥ यदि कैयटरीत्या  
सनुत्पत्तेः पूर्वमुपसर्गसंबन्धः स्यात्तदात्रैव धातुपसर्गयोः समासो  
द्वारं इति उपपदमतिङिति सूत्रस्याभाष्यविरोध इत्याहुः ॥

( अवयवयोगषष्ठीभूषणभाष्यम् )

यद्यवयवयोगा षष्ठी । केवलादुत्पत्तिर्न प्राप्नोति  
चिकीर्षति जिहीर्षतीति ॥

( अवयवयोगषष्ठीसमर्थनभाष्यम् )

एषोऽपि व्यपदेशिवद्भावेन कर्मणो धातुरवयवो  
भवति ॥

( प्रदीपः ) एषोऽपीति । प्रयोगमेदाज्ञानारूपस्य कर्मा-  
भिधायिनोऽवयवः सन्प्रकृतित्वे नाश्रीयमाणो धातुरित्यर्थः ॥

( व्यपदेशिवद्भावदूषणभाष्यम् )

कामं तर्ह्यनेनैव हेतुना क्यजपि कर्तव्यः—महान्तं  
पुत्रमिच्छतीति 'कर्मणो यत्सुबन्तमवयवः' इति ॥

( प्रदीपः ) काममिति । इच्छयेत्यर्थः । इच्छाया व्या-  
घाताभावादित्यर्थः ।

( उद्घोतः ) व्याघाताभावादिति । व्याघातः प्रतिबन्धः ॥

( व्यपदेशिवद्भावभूषणभाष्यम् )

न कर्तव्यः । असामर्थ्यान्न भविष्यति ॥

कथमसामर्थ्यम् ? ।

सापेक्षमसमर्थं भवतीति ॥

( प्रदीपः ) असामर्थ्यादिति । सुबन्तात् क्यज्विधा-  
नात्पदविधित्वासमर्थपरिमाणोपस्थानादिति भावः । सन्निधौ

तु तदनुपस्थानात्सापेक्षादपि सन् उत्पत्तिः ॥ अथवा धातु-  
रेव विशिष्टां क्रियामाह उपसर्गस्तु द्योतक इति सापेक्षत्वाभावः ॥

( उद्घोतः ) सन्निधावपि वावचनानर्थक्यं चेलनेन तदु-  
पस्थितेर्वक्ष्यमाणत्वादाह—अथवा धातुरेवेति ॥ पृथगुपस्थितस्य  
यत्रेतरापेक्षा स सापेक्ष इति भावः ॥ एवं चानुपसर्गस्य कर्मत्वमि-  
त्यन्तमसङ्गतमिति भावः ।

( १७२६ वावचनानर्थक्यवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥\*॥ वा वचनाऽऽनर्थक्यं च तत्र नित्यत्वा-  
त्सनः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वा वचनं चाऽनर्थकम् । किं कारणम् ? ।  
तत्र नित्यत्वात्सनः । इह द्वौ पक्षौ वृत्तिपक्षश्चावृ-  
त्तिपक्षश्च । स्वभावतश्चैतद्भवति वाक्यं च प्रत्य-  
यश्च । तत्र स्वाभाविके वृत्तिविषये नित्ये प्रत्यये  
प्राप्ते वावचनेन किमन्यच्छक्यमभिसंबन्धुमन्यदतः  
संज्ञायाः । न च संज्ञाया भावाभावाविष्येते । त-  
स्मान्नार्थो वावचनेन ॥

( प्रदीपः ) वा वचनानर्थक्यं चेति । वृत्तेरकार्थीभा-  
वविषयत्वाद् व्यपेक्षाविषयत्वाच्च वाक्यस्य भिन्नार्थत्वाद् बाध्य-  
बाधकभावाप्रसङ्गादिति भावः ॥ न च संज्ञाया इति । अ-  
नर्थः प्रत्युत वाग्रहणाद्भवति प्रत्ययसंज्ञाया विकल्पे सति तन्नि-  
बन्धनकार्यविकल्पप्रसङ्गात् ॥

( उद्घोतः ) वृत्तेरिति । नन्वस्य पदविधित्वाभावात्समर्थ-  
परिभाषानुपस्थितौ कथमस्यैकार्थीभावविषयत्वमिति चेन्न; भाष्य-  
प्रामाण्यादस्याप्येकार्थीभाव एव प्रवृत्तेरिति भावात् ॥ प्रत्ययसं-  
ज्ञाया इति । परस्वस्यापीदमुपलक्षणम् ॥ आशुदातश्चेत्यस्य त्वेत-  
द्विषये न सम्बन्धः<sup>२</sup> नित्त्वादिति बोध्यम् ॥

( १७२७ लघुन्यासप्रदर्शकपूर्तिवार्तिकम् ॥ ११ ॥ )

॥ \* ॥ तुमुनन्ताद्वा तस्य च लृग्व-  
चनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तुमुनन्ताद्वा सन् वक्तव्यः तस्य च  
तुमुनो लृग्वक्तव्यः । कर्तुमिच्छति चिकीर्षतीति ॥

( प्रदीपः ) तुमुनन्तादिति लृग्वेवं लक्षणं भवतीति  
भावः ॥ वचनसामर्थ्याच्चोपपदश्रवणं बाधित्वा पक्षे तदीयेऽर्थे  
सन्प्रत्ययो भवति । इच्छाग्रहणं प्रत्ययार्थनिर्देशायावश्यं कर्त-  
व्यम् ॥ अत्र चोदयन्ति—तुमुनन्तस्य पदत्वानुमुनो लृकि  
कृते जिघांसीत्यादौ नलोपादीनि प्राप्नुवन्तीति ॥ नैष दोषः ।  
तुमुनो लृको बहिरङ्गत्वादसिद्धत्वाच्चलोपादीनि न भविष्यन्तीति ।  
एतस्मिन्सु सूत्रन्यासे धातोरिति सनो विधानाभावादार्द्धधातुक-  
संज्ञा न प्राप्नोतीति इको झलिति कित्त्वविधानं ज्ञापकमाश्र-  
यणीयमिष्टसिद्धये ॥

( उद्ध्योतः ) अत्रापि समर्थपरिभाषोपतिष्ठते इत्यर्थे वार्तिकसम्मतिं दर्शयन्तामुदाहरति—भाष्ये तुमुनन्ताद्वेति ॥ वचन-सामर्थ्याच्चेति । अत एव चोपपदाभावेपि तुमुन् वृत्तिविषये इति बोध्यम् ॥ बहिरङ्गत्वादिति ॥ सन्सन्निधौ न विधानात् बहिरङ्गत्वं लुक् इति भावः ॥ वस्तुतस्तु तुमुनोर्लुकि पदत्वे नैकदेशविकृत-न्यायावतारः तत्त्वप्रत्यभिज्ञाभावात् अर्थविकारात् । नापि स्थानि-वद्भावः तुमुनन्तस्य षष्ठीनिर्दिष्टत्वाभावात् ॥ इष्टसिद्धये इति ॥ अनेन सर्वे शङ्काभासा निरस्ता इत्याहुः ॥

( १७२८ लघुन्यासप्रदर्शकपूर्तिवार्तिकम् ॥ १२ ॥ )

॥ \* ॥ लिङुत्तमाद्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लिङुत्तमाद्वा सन्वक्तव्यः । तस्य च लिङो लुक् धक्तव्यः । कुर्यामितीच्छति चिकीर्षति ॥

( १७२९ न्यूनतापूर्तिवार्तिकम् ॥ १३ ॥ )

॥ \* ॥ आशङ्कायामचेतनेषूपसंख्यान-  
नम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आशङ्कायामचेतनेषूपसंख्यानं कर्त-  
व्यम् । अस्मा लुलुठिषते । कूलं पिपतिषति ॥

किं पुनः कारणं न सिध्यति ॥

एवं मन्यते चेतनावत एतद्भवतीच्छेति । कूलं  
चाचेतनम् ॥

( प्रदीपः ) आशङ्कासंभावना तद्विशिष्टार्थाभिधायिनो  
धातोः स्वार्थे प्रत्ययः ॥ लुलुठिषत इति । रुठ लुठ प्रती-  
घात इति द्युतादिषु पठ्यते । वर्तमानसामीप्य इति लट्-  
प्रत्ययः ॥

( उद्ध्योतः ) आशङ्केति सा च प्रयोक्तृधर्मः 'शङ्के कूलं पति-  
ष्यतीति अर्थावगमात् ॥ तद्विशिष्टेति । तद्विषयत्वविशिष्टेत्यर्थः ॥  
आत्मनेपदप्रयोगे बीजमाह—द्युतादिष्विति । रलोन्पधादिति  
किन्त्वाहुणाभावः ॥ संभावनाविषयलोठने भविष्यत्वप्रतीतेराह—  
वर्तमानसामीप्य इति । भाष्ये एवं मन्यते चेतनावत इति  
वक्ष्यमाणेनाभिप्रायेण मन्यत इत्युक्तिः ॥

( अचेतनग्रहणखण्डनभाष्यम् )

अचेतनग्रहणेन नार्थः, 'आशङ्कायाम्' इत्येव ।  
इदमपि सिद्धं भवति—श्वा मुमूर्षतीति ॥

( प्रदीपः ) श्वा मुमूर्षतीति । शुनश्चैतन्येऽपि जीवि-  
तस्य प्रियत्वाद्याभ्याद्यभिभवोऽपि तिर्थेकत्वान्मर्तुमिच्छा नास्ति ॥  
( १७३० आशङ्कायामिति वार्तिकप्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ १४ ॥ )

१ इच्छेतेतचेतनावतो भवतीति संबन्धः । इच्छापदप्रतिपाद्यं वस्त्विति  
तदर्थः । ( र. ना. )

२ 'देशोद्देशान्तर' ॥

३ एकान्तदेशाध्ययनं शीलं येषां ते तथेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ अनपेक्षान्तं व्यवहारविशेषणं तदाशङ्कीभूतकार्येत्यादिरर्थः । ( र. ना. )

॥ \* ॥ न वा तुल्यकारणत्वादिच्छाया  
हि प्रवृत्तिरुपलब्धिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यम् । किं कारणम् ? ।  
तुल्यकारणत्वात् । तुल्यं हि कारणं चेतनावति  
देवदत्ते कूले चाचेतने ॥ किं कारणम् ? ।

इच्छाया हि प्रवृत्तिरुपलब्धिर्भवति । योऽप्यसौ  
कटं चिकीर्षुर्भवति नासावाधोषयति कटं करिष्या-  
मीति । किं तर्हि ? सन्नद्धं रज्जुकीलपूलपाणिं दृष्ट्वा  
तत इच्छा गम्यते ॥ कूलस्यापि पिपतिषतो लोष्टाः  
शीर्यन्ते, भिदा उपजायते देशान्तरमुपसंक्रामति ॥  
श्वानः खल्वपि मुमूर्षवः एकान्तशीलाः शूना-  
क्षाश्च भवन्ति ॥

( प्रदीपः ) न चेति । कार्येणेच्छानुमीयत इतीच्छानु-  
मानकारणं कार्यं लिङ्गं तुल्यमिति वास्तवसदसत्त्वानपेक्षलोक-  
व्यवहाराश्रयकार्यानुमेयेच्छाश्रयेण सन् प्रयुज्यते इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) कार्येणेति इच्छानुमितिजनकं कार्यरूपं लिङ्गं  
तुल्यमित्यर्थः ॥ नन्विच्छाया अचेतने बाधात् कथं बाधितविषयानु-  
मितिरित्यत आह—वास्तवेति ॥ वास्तवं सद्ब्रह्म । अवास्तव-  
मसत्प्रपञ्चः, तदनपेक्ष्यव्यवहारमात्रेण सत इतरस्यवास्या अपि  
तेन सत्यकार्येणानुमानमिति भावः । बालकादेरयुक्तवृक्षाधारोद्धरणं  
कुर्वतो 'मर्तुमिच्छत्ययम्' इति व्यवहरति लोक इति तात्पर्यम् ॥  
भाष्ये शूनाक्षा इति । प्रसृताक्षा इत्यर्थः ॥ शून्याक्षा इति पाठे  
विषयाम्राहिचक्षुष इत्यर्थः ॥

( १७३१ आशङ्कावार्तिकवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ १५ ॥ )

॥ \* ॥ उपमानाद्वा सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपमानाद्वासिद्धमेतत् । लुलुठिषत  
इव लुलुठिषते । पिपतिषति इव पिपतिषति ॥

( प्रदीपः ) उपमानाद्वेति । यदिच्छानिमित्तं कार्यं  
तदचेतनेषु नास्ति । यच्चास्ति, न तदिच्छायाः कार्यमिति र्मला  
परिहारान्तरपन्यासः ॥

( उद्ध्योतः ) यदिच्छानिमित्तकमिति । बुद्धिपूर्वकप्रवृत्त्या-  
दिकमित्यर्थः ॥

( आशङ्कावार्तिकसार्थक्यभाष्यम् )

न वै तिङन्तेनोपमानमस्ति ॥

( प्रदीपः ) न वै तिङन्तेनेति । तिङन्तार्थेनेत्यर्थः ।  
क्रियायाः साध्यैकस्वभावत्वादनिष्पन्नरूपत्वादिदं तदिति परा-  
मर्शविषयवस्तुगोचरत्वादुपमानोपमेयभावस्येदं तदिति पराम-  
र्शाभावादिति भावः । इवशब्दप्रयोगे तु अध्यारोपस्तु विद्यते ।  
रोदितिव गार्यति नृत्यतीव गच्छति देवदत्त इति । परिपूर्णं

५ असत्या अपीति पाठो भाति । ( र. ना. )

६ 'कृत्वा' ॥

७ उपमानोपमेयभावस्येदं तदिति परामर्शविषयवस्तुगोचरत्वात् क्रियायाः  
साध्यैकस्वभावत्वादन्यपन्नरूपत्वादिदं तदिति परामर्शाभावादिति योजना ।  
( र. ना. ) ८ 'गायतीयम्' ॥

च न्यूनस्योपमानं भवति । क्रिया च सर्वा स्वाश्रये समाप्तेति न्यूनत्वासंभवस्तस्याम् । तदुक्तम्—

येनैव हेतुना हंसः पततीत्यभिधीयते ।

आतौ तस्य समाप्तत्वादुपमार्थो न विद्यत इति ॥

भिन्नजातीयानां च क्रियाणां सादृश्यं नास्ति भुङ्क्त इव गच्छतीति ॥

( उद्ध्योतः ) तिङन्तार्थेनेति । क्रियेत्यर्थः ॥ भाष्यस्योपमानशब्दस्य सादृश्यमित्यर्थ इति भावः ॥ केचित्तु तिङन्तेनोपमानबोधो नास्तीति भाष्यार्थमाहुः ॥ तदुपपादयति—क्रियाया इति ॥ सिद्धरूपतया प्रतीयमानस्य वस्तुनः 'इदंतद्' इति परामर्शविषयत्वादुपमानत्वं भवति नान्येत्यर्थः ॥ इदं तदिति परामर्शाभावादित्यस्योपमानत्वाभावः इति शेषेण संबन्धः ॥ तथापरामर्शाभावे हेतुमाह—साध्यैकेत्यादिना ॥ तथापरामर्शाभावे कुतो न स इत्यत आह—इदंतदिति—अत्र शब्दशक्तित्वभावो वस्तुशक्तिस्वभाव एव वा बीजम् ॥ अत्रोपमानोपमेयभावस्येति । उपमेयग्रहणं चिन्त्यम् । क्षत्रियवदधीते इत्यादौ क्रियाया उपमेयत्वस्येष्टत्वादिति बोध्यम् ॥ कथं तर्हि रोदितीव गायतीत्यादिप्रयोगोऽत आह—इवशब्देति । अत्र वाक्ये तु शब्दद्वये फलं चिन्त्यम् ॥ अध्यारोप उत्प्रेक्षा ॥ तिङन्तार्थस्योपमानत्वाभावे युक्त्यन्तरमप्याह—परिपूर्णनेति ॥ समाप्तत्वादिति । पातस्य सम्पूर्णत्वादित्यर्थः ॥ आतिः पक्षविशेषः ॥ एवं चैकस्यां क्रियायां भेदासम्भवात् नोपमानोपमेयभावः ॥ भिन्नजातीयास्तु तु साधारणधर्मरूपसादृश्यासम्भवात्तदोपमानत्वम् ॥ तदाह—भिन्नेति । समानजातीयास्वपि यथा न तथोक्तम् ॥ यथा वै श्येनो निपत्या दत्ते एवमयं आनृत्यं निपत्यादत्त इत्यादौ यद्धर्मवच्छेदनकर्तृकमानं तद्धर्मवदेतत्कर्तृकमादानमिति वाक्यार्थेऽवगते यत्तन्मात्रमैक्यमापन्नं तं धर्मं निमित्तीकृत्य श्येनयागयोः पश्चात्सादृश्यबोध इति न तत्र क्रिययोरुपमानोपमेयभाव इति बोध्यम् ॥

( आशङ्क्यवार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

एवं तर्हि इच्छेवेच्छा ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । इच्छाशब्दस्य सत्त्वभूतार्थमिधाधित्वादस्ति तदर्थस्योपमानत्वं ततश्चेच्छासदृशेऽपि व्यापारे सन् भवति । गौणमुख्यन्यायश्च क्वचिलक्ष्यापेक्षया नाङ्गीक्रियते ॥

( उद्ध्योतः ) इच्छासदृशेऽपीति । पूर्वं व्यवहारादिच्छां तत्राप्यङ्गीकृत्यै प्रत्यय इत्युक्तम्, इदानींतु इच्छासदृशे प्रत्यय इति भेदः ॥

१ स इत्यस्योपमानोपमेयभाव इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ क्रियायाः साध्यैक्यभावत्वादित्यादिना कैयटेनोक्तमित्यर्थः । ( र. ना. )

३ अनुमायेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ कंसकाः, कंस इव प्रतिकृत्य इत्यर्थः । अनेन पाषाणादिप्रतिमानां चेतनत्वं दर्शितम् । शिरीषवृक्षो यदा स्नानपूर्णे मुकुलितपुष्पो भवति तदेदमुच्यते । अनेन वृक्षाणां तत्त्वं बोधितम् । सुवर्चलाऽऽदित्यपनी अन्वेति पर्येतीति वा । अनेमादित्यस्य तेजोमयपिण्डस्य चेतनत्वं ज्ञापितम् । कपिलकः कपिलवर्णो गोबलः । अनेन पशुषु तत्त्वं सिद्धम् । ( र. ना. )

( १७३२ आशङ्क्यवार्तिकवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ १६ ॥ )

॥ \* ॥ सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा सर्वं चेतनावत् ॥ एवं ह्याह—कंसकाः सर्पन्ति, शिरीषोयं स्वपिति, सुवर्चला आदित्यमनुपर्येति । आस्कन्द कपिलकेत्युक्ते तृणमास्कन्दति । अयस्कान्तमयः संक्रामति ॥ ऋषिः पठति—शृणोत प्रावाणः ॥

( प्रदीपः ) सर्वस्य वेति । आत्माद्वैतदर्शनेनेति भावः ॥ ऋषिरिति । वेदः सर्वभावाणां चैतन्यं प्रातिपादयतीत्यर्थः । वैचित्र्येण च पदार्थानामुपलम्भात्सर्वचेतनधर्मप्रसङ्गः सर्वत्र नोद्भावनीयः ॥

( उद्ध्योतः ) वैचित्र्येणेति । चेतनेषु मनुष्येष्वपि नानाजातीयव्यवहारदर्शनादिति भावः ॥ सर्वत्र परिणामदर्शनेन चेतनाधिष्ठानं विना च तदसम्भवात्सर्वस्य तदधिष्ठितत्वं ज्ञायत इति तात्पर्यम् ॥

( इष्टधातुनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

इमे इषयो बहवः पठ्यन्ते । तत्र न ज्ञायते—'कस्यायमर्थे सन् विधीयते' इति ? ॥

( प्रदीपः ) इम इति । शश्राश्यन्विकरणाख्य इत्यर्थः ॥ तत्रेति । इच्छेति निपातनं त्रयाणामपि संभवतीति मन्यते ॥

( उद्ध्योतः ) मन्यत इति । छत्वमपि निपातनादिति तद्भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

इषेच्छत्वभाविनः ॥

( प्रदीपः ) छत्वभाविन इति । इच्छेति शप्रत्ययो यगभावश्च निपात्यते । छत्वं लक्षणेनैव सिद्धम् । तच्च शविकरणस्यैव विहितमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) यगभावश्चेति । भावे शस्य सत्त्वाद्यकः प्राप्तिरिति भावः ॥ शविकरणस्यैवेति । गमियमिहाहचर्येणाकारविकरणस्यैवेवेमेहादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्येवं कर्तुमन्विच्छति कर्तुमन्वेषणा अत्रापि प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) यद्येवमिति । अन्विच्छतीति तौदादिकस्यैवरूपमिति भावः ॥

( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि यस्य स्त्रियामिच्छेतद्रूपं निर्णायते ॥

५ 'ऋषिः पठति' इत्यपि उदाहरणमेव सर्वसंमतप्रयोगदर्शनात् । वेदस्य शब्दरूपस्यार्थरूपस्य वा चेतनमिच्छेति पाठकर्तृत्वबोधनाय सर्वसंमतप्रयोगात् । अन्ये तु 'शृणोत प्रावाणः' इत्युदाहरणं वैदिकमिति दर्शयितुमेव—ऋषिः पठति इत्युक्तमिति वदन्ति ॥

६ परिणामासंभवादित्यर्थः । ( र. ना. )

७ सन्निति शेषः । ( र. ना. )

८ तदर्थं सन्निति शेषः । ( र. ना. )

कस्य चैतन्निपात्यते ? ।

कान्तिकर्मणः ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । अर्थविशेषे निपातनमाश्रितमिति भावः ॥ कान्तिकर्मण इति । कान्तिः कामनाऽभिलाषस्तत्क्रियेत्यर्थः ॥ अन्विच्छतीत्यस्य गवेषयतीत्यर्थः, न तु कामयत इति सन्न भवति ॥

( उद्द्योतः ) तौदादिकस्यैव क्रियामिच्छति निपातनात् कथं यस्येत्यादिना समाधानमत आह—अथेतिरोष इति ॥ यस्येति भाष्यस्य यदर्थकस्येत्यर्थः ॥ लोके कान्तिशब्दस्य शोभायां प्रसिद्धत्वादाह—कान्तिः कामनेति ॥

( क्रियाप्राधान्याधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथेह ग्रामे गन्तुमिच्छतीति कस्य किं कर्म ? ।

( प्रदीपः ) अथेहेति । क्रियाद्वयसन्निधानाच्चङ्क्रमणादिकामस्य गमनमात्रेऽसांसंभवदन्यास्य बोधयेत्सांसंभवात् प्रश्नः ॥

( उद्द्योतः ) ग्रामस्य गतिकर्मत्वं गमेरधिकर्मत्वं च स्पष्टमेवेति कथं सन्देहस्तत्राह—क्रियाद्वयेति ॥ चङ्क्रमणादिकामस्य अनुदेश्यकगमनादिकामस्य ॥ अन्यस्य ग्रामप्राप्तिकामस्य ॥

( समाधानभाष्यम् )

इषेरुमे कर्मणी ।

( प्रदीपः ) इषेरुमे इति । यो हि ग्रामगमनमिच्छति तस्येष्टक्रिययोभयमीप्सितं न केवलो ग्रामो नापि केवलं गमनमित्यर्थः ।

( उभयोरिषिकर्मत्वबाधकभाष्यम् )

यद्येवं ग्रामं गन्तुमिच्छति ग्रामाय गन्तुमिच्छतीति । गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ न प्राप्नुतः ॥

( प्रदीपः ) यद्येवमिति । इषिकर्मत्वे ग्रामस्य गतिकर्मत्वाभावादिति भावः ।

( उद्द्योतः ) इषिकर्मत्व इति । उभयोरिषिकर्मत्वे ग्रामस्य गतिकर्मत्वाभावं मन्यमानस्य चोद्यमिति भावः ॥

( ग्रामस्य गमिकर्मत्वाङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्हि गमेर्ग्रामः कर्म । इषेर्गमिः कर्म ।

( ग्रामस्य गमिकर्मत्वे दूषणभाष्यम् )

एवमपीष्यते ग्रामो गन्तुमिति । परसाधन उत्पद्यमानेन लेन ग्रामस्याभिधानं न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) परसाधन इति । परस्पर्शेः साधनं यत्कर्म तत्र लकार उत्पद्यते । तच्च गमनमेव न तु ग्राम इत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) परस्येति । गम्यपेक्षेत्यर्थः ॥ यदर्थक्रियानिरूपितं यत्कर्म तस्मिन्नेव कर्मणि ततो धातोर्लाघुत्पत्तिर्यायेत्यर्थः ॥

( ग्रामे उभयक्रियाकर्मत्वाङ्गीकारसिद्धान्तिभाष्यम् )

एवं तर्हि गमेर्ग्रामः कर्म, इषेरुमे कर्मणी ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । इष्यते ग्रामो गन्तुमित्यत्र गमनस्य ग्रामार्थत्वादप्राधान्याद्विन्नकक्षयोः कर्मणोरेकेन शब्देनाभिधानासंभवात् प्रधाने कार्यसंप्रत्ययाद् ग्रामस्यैवामिधानं लकारेण भवति । इषिक्रियायाश्चाख्यातवाच्यत्वात् प्राधान्यमिति प्रधानक्रियाशक्त्यभिधाने गुणक्रियाशक्तेरभिहितवच्चकासनाद् गमिक्रियापेक्षे द्वितीयाचतुर्थ्यौ न भवतः ॥

( उद्द्योतः ) नन्विषेरुभयकर्मत्वे कदाचिद्गमनरूपे कर्मणि प्रत्यये 'इष्यते ग्रामं गन्तुमित्यपि स्यादत आह—इष्यते ग्राम इति ॥ ग्रामार्थत्वादिति । ग्रामप्राप्त्युद्देश्यकत्वादित्यर्थः ॥ अत एव गमनस्य स्वतोऽनुद्देश्यत्वादप्राधान्यं तदाह—अप्राधान्यादिति ॥

एतेन युगपदुभयोरभिधानं स्यादिति परास्तम् ॥ भिन्नकक्षयोरिति । प्रधानाप्रधानयोरित्यर्थः ॥ नन्वेवं कदाचिदप्रधाने एवस्यादत आह—प्रधाने इति ॥ नन्वेवमपि गमिनिरूपितकर्मत्वस्यानभिधानात्ततो द्वितीया स्यादेवेति पूर्वोक्तप्रयोगापत्तिर्दुर्वारेत्यत आह—इषिक्रियाया इति ॥ एतेन युगपदुभयत्र ग्रामस्य शाब्दान्वयासंभवात् कदाचिदिषौ कदाचिद्गमौ शाब्दान्वयः तत्र यदा यत्र शाब्दोऽन्वयः तदा तत्र विभक्तिरिति 'इष्यते ग्रामो गन्तुम्' 'इष्यते ग्रामं गन्तुमित्युभयमपीष्यते' इति परास्तम् ॥ एवं तर्हि गमेर्ग्रामः कर्म, इषेरुमे कर्मणी इति भाष्यविरोधात् ॥ कस्य किं कर्मैत्याद्युपक्रमभाष्यपर्यालोचनयाऽस्यापि भाष्यस्य एकप्रयोगे उभयत्र ग्रामस्यावृत्त्या शाब्दान्वयपरत्वलभात् ॥ तथासति कदाचिद्गमेर्ग्रामः कदाचिदुभाविषेरित्येव स्पष्टत्वाय वदेदिति दिक् ॥

( सन्नन्तात्सन्वारणाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ सन्नन्तात्सना भवितव्यम्—चिकीर्षितुमिच्छति जिहीर्षितुमिच्छतीति ॥

( प्रदीपः ) अथेति । प्रयोगादर्शनाल्लक्षणसद्भावाच्च पृच्छति ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

न भवितव्यम् । किं कारणम् ? । अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः अर्थं प्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रयुज्यते । तत्रैकेनोक्तत्वात्तस्यार्थस्याऽपरस्य प्रयोगेण न भवितव्यम् । 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इति ॥

( प्रदीपः ) न भवितव्यमिति । एकत्वादित्युक्तायाः तस्याश्च पूर्वोत्पत्तेनाभिहितत्वाद् परः सन्न भवतीत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) नन्वेकस्या इच्छाया उक्तावपि इच्छान्तराभिधानाय द्वितीयः सन्न भविष्यतीत्यत आह—इच्छाया एकत्वादिति ॥

१ इच्छागमनरूपेत्यादिः । उभयेऽसांसंभवात्, ग्रामगमनरूपोभयेऽसांसंभवदित्यर्थः । ( र. ना. )

२ 'प्रधानविषया शक्तिः प्रत्ययेनाभिधीयते ।

यदा, तदा गुणे तद्वद् अनुक्तापि प्रतीयते ॥'

'प्रधानेतरयोर्ध्वं द्रव्यस्य क्रिययोः पृथक् ।

शक्तिर्गुणाश्रया तत्र प्रधानमनुह्रियते ॥'

इति हरिवाक्येन स्पष्टं तस्यार्थस्य प्रतीतिः ॥

तत्तद्भावार्थविषयेच्छास्त्रेनैक्यादिति भावः ॥ इच्छाविषयेच्छायां तु न प्रत्ययः । इच्छाविषयेच्छाभावादित्यभिमानः ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

न तर्हीदानीमिदं भवति—एषितुमिच्छति एषिषिषतीति ॥

( प्रदीपः ) न तर्हीति । इषिणैव धातुनेच्छाया अभिधानात् सन्न प्राप्नोतीति भावः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

अस्त्यत्र विशेषः—एकस्यात्र इषेरिषिः साधनं वर्तमानकालश्च प्रत्ययः । अपरस्य—बाह्यं साधनं सर्वकालश्च प्रत्ययः ॥

( प्रदीपः ) एकस्येति । इच्छतीत्यत्र य इषिस्तस्यैषितुमित्येतत्पदवाच्य इषिः कर्मैत्यर्थः । तथा हि । कश्चिदालस्याद्युपहतोऽध्ययनादिविषयामिच्छामेवेच्छति ॥ सर्वकाल इति । समानकर्तृकेषु तुमुनित्यनेन तुमुनः कालसामान्ये विधानात् ॥

( उद्ध्योतः ) नन्विच्छाविषयेच्छाभावात्कथमत्र सन्नित्यत आह—कश्चिदालस्यादीति । तुमुन्बुलाविति तुमुनो भविष्यति विधानात् कथं सर्वकालः प्रत्ययस्तादाह—समानेति ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

इहापि तर्ह्येकस्येपेः करोतिविशिष्ट इषिः साधनं वर्तमानकालश्च प्रत्ययः । अपरस्य बाह्यं साधनं सर्वकालश्च प्रत्ययः । येनैव खल्वपि हेतुना एतद्वाक्यं भवति—चिकीर्षितुमिच्छतीति, तेनैव हेतुना वृत्तिरपि प्राप्नोति । तस्मात्सन्नन्तात्सनः प्रतिषेधो वक्तव्यः । तं चापि ब्रुवता इषि सन इति वक्तव्यम् । भवति हि जुगुप्सिषत् मीमांसिषते इति ॥

( समाधानभूतेष्टिभाष्यम् )

‘शैषिकान्मतुवर्थीयाच्छैषिको मतुवर्थिकः ।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते’ इति ॥ धातोः कर्मणः ॥ ७ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते महाभाष्ये

तृतीयाध्यायस्य प्रथमे पादे प्रथमाह्निकम् ॥

( प्रदीपः ) शैषिकादिति । सन्प्रसङ्गेनान्योऽप्यनिष्टप्रत्ययो निर्वर्धते । प्रतिव्यक्ति लक्षणाप्रवृत्तौ वाचनिको निषेधः । आकृतिपक्षे तु सकृलक्षणप्रवृत्तौ तत्प्रवृत्तेः प्राक्तत्प्रत्ययान्तप्रकृत्यसंभवात्तन्तात् प्रत्ययोत्पत्तिर्न भवतीति न्यायानुवादोऽयं संपद्यते ॥ तत्र शैषिकाच्छैषिकः सरूपो न भवति । शालायां भवः

शालीयो घटः तत्र भवमुदकमिति पुनरुद्धो न भवति । विरूपस्तु भवति—अहिच्छत्रे भव आहिच्छत्रः तत्र भव आहिच्छत्रीयः ॥ तथा दण्डोऽस्यास्तीति दण्डिकः सोऽस्यास्तीति पुनरुद्ध भवति । विरूपस्तु भवति—दण्डिमती सेनेति ॥ सन्नन्तान्न सनिष्यत इति । सरूप इत्यपेक्ष्यते सारूप्येण चात्र सादृश्यं लक्ष्यते तच्चार्यद्वारकमिति इच्छासन्नन्तादित्यर्थो लभ्यते ॥ ७ ॥

इति जैयटपुत्रकैयटकृते भाष्यप्रदीपे तृतीयस्या-

ध्यायस्य प्रथमपादे प्रथममाह्निकम् ॥

( उद्ध्योतः ) तत्प्रवृत्तेः । तत्तल्लक्षणप्रवृत्तेः ॥ तत्प्रत्ययान्तेति । सनादिप्रत्ययान्तेत्यर्थः ॥ न्यायानुवादोऽयमिति । अनुवादफलं चान्यत्र व्यक्तिपक्षाश्रयणेन त्वादिसिद्धिः घटत्वत्वमित्यादौ अनुवादेनात्रैव तदाश्रयणबोधनादित्याहुः ॥ परेतु आर्धधातुक इतिसन्नभाष्योक्तरीत्या जातौ परत्वाश्रयत्वाभाववत् तदवधित्वाभावात् वृद्धादित्वादि जातिपक्ष आश्रयितुं न शक्यते इति वचनमेवेदम् अत एव त्वान्तात् त्वसिद्धिरित्याहुः ॥ शब्दकृतसादृश्यग्रहणे व्यावर्त्यासंभवादाह—तच्चार्थेति ॥ ७ ॥

इति शिवभट्टसुतसतीगर्भजनागोजीभट्टकृते प्रदीपोद्ध्योते

तृतीयस्य प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम् ॥

( ३८६ क्यजुविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. १ सूत्रम् )

६२५ सुप आत्मनः क्यच् ॥ ३।१।८ ॥

( चकारानुबन्धप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थश्चकारः ॥

( प्रदीपः ) सुप आत्मनः ॥ ८ ॥ किमर्थ इति । वक्ष्यमाणोऽभिप्रायः ॥

( उद्ध्योतः ) सुप आत्मनः क्यच् ॥ ५ ॥ वक्ष्यमाण इति । केषां चित्प्रयोजनानामन्यथासिद्धिरूप इत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

स्वरार्थः । चितोऽन्त उदात्तो भवतीत्यन्तोदात्तत्वं यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) विध्यबुद्धिपरिहारार्थं परिहाराभासमाह—चित इति ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । एकाजयम् तत्र नार्थः स्वरार्थेन चकारेणानुबन्धेन । प्रत्ययस्वरैणैव सिद्धम् ॥

१ ‘विचार्यते’ ॥

२ शैषिकादिप्रत्ययेष्वेवैतन्मयायाश्रयणबोधनादित्यर्थः । ( र. ना. )

३ एवं च नागेशस्य ‘हलन्ताच्च’ इति सूत्रस्थभाष्यविरोधवत्त्वोक्तिविरोधोपि दुष्परिहरति आर्धधातुक इति सूत्रेऽस्युक्तिर्न विस्मरणीया ॥ ‘नन्माकृतिपदार्थस्य द्रव्यं न पदार्थः । द्रव्यपदार्थस्य बाऽऽकृतिर्न पदार्थः ॥’ इति

सिद्धान्तानुसारेण जातिव्यक्तिपक्षयोरैकफलत्वे सिद्धे फलभेदकथनमेव कैयटस्य न युक्तिसहमिति दाधिमथाः ॥ वस्तुतस्तु कचिद् आकृतिपदार्थवादिनोऽपि लक्ष्यानुरोधेन कचिद् द्रव्यं पदार्थः । तथा कचिद् द्रव्यपदार्थवादिनोऽपि लक्ष्यवशादेव कचिदाकृतिः पदार्थ इत्यत्रैव पूर्वोक्तभाष्यतात्पर्यात् पक्षभेदेन फलभेदकथनं कैयटस्य युक्तमेवेति वयम् । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) प्रत्ययस्वरैवेति । यद्यप्यत्र धातुखरेण भाष्यं तथापि पूर्वं प्रत्ययस्वरो भवति । पश्चात्सतिषिष्ठो धातुस्वर इति क्रमः ॥

( उद्ध्योतः ) पश्चादिति । एवं चान्तरङ्गत्वात्प्रत्ययस्वरकृतैवान्यथासिद्धिरुक्त्यर्थः ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

विशेषणार्थस्तर्हि ।

क विशेषणार्थेनार्थः ? ।

‘अस्य च्वौ’ ‘क्यच्चि च’ इति । क्य इति ह्युच्यमाने अपि काकः श्येनायते अत्रापि प्रसज्येत ॥

( समाधानान्तरबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति । ‘तदनुबन्धकग्रहणे अतदनुबन्धकस्य ग्रहणं न’ इत्येवमेतस्य न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) तदनुबन्धकेति । स एव यस्यानुबन्धः तस्य ग्रहणम् । यस्य तु स चान्यश्च तस्य न ग्रहणमित्येवमेतद्वचनसामर्थ्यादाश्रीयते ॥

( उद्ध्योतः ) ननु यत्किञ्चिदनुबन्धयुक्तस्य ग्रहणे तद्विरहितस्य ग्रहणाभावो वचनमन्तरापि सिध्यतीत्यत आह—स एवेति ॥ उच्चारित एवेत्यर्थः ॥ वचनसामर्थ्यात् सावधारणो बहुव्रीहिराश्रीयते ॥ अतदित्यादावपि शब्दघटितश्च स आश्रीयत इति भावः ॥ क्यञो ह्यनुबन्धकत्वात् क्यग्रहणेन ग्रहणमिति तात्पर्यम् ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

सामान्यग्रहणाविघातार्थस्तर्हि ।

क च सामान्यग्रहणाविघातार्थेनार्थः ? ।

नः क्य इति ॥

( आत्मग्रहणप्रयोजनकथनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथात्मग्रहणं किमर्थम् ।

( उद्ध्योतः ) अथात्मग्रहणं किमिति । इच्छापेक्षया कर्तृरिष्यतीतिप्रश्नः ॥

( समाधानभाष्यम् )

आत्मेच्छायां यथा स्यात् परेच्छायां मा भूत्—राज्ञः पुत्रमिच्छतीति ॥

( प्रदीपः ) आत्मेच्छायामिति । आत्मन इच्छेति शेष-षष्ठ्या समासः, न तु कर्तृषष्ठ्या । सुबन्तद्वारकश्चात्मन इच्छया संबन्धः, न तु साक्षात् तेनायमर्थः—आत्मनः सुबन्तार्थं यदेच्छति तदा यथा स्यादिति । एवं परेच्छायामिति व्याख्येयम् ॥

( उद्ध्योतः ) न तु कर्त्रिति । तथा सति राज्ञः पुत्रमिच्छती-

त्यादावपि प्रसङ्ग इति भावः ॥ शेषषष्ठ्यामपि साक्षात्सम्बन्धेनान्वये दोषस्तदवस्य इत्यत आह—सुबन्तेति ॥ आत्मशब्दः स्वपर्याय एषितुपरः । आत्मनः पुत्रं परस्य दासमिच्छतीत्यादौ तु न दोषः इष्यमाणरूपस्यात्मसम्बन्धित्वाभावात् ॥ परेच्छेति । परसम्बन्धि-सुबन्तार्थेच्छायामित्यर्थः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

क्रियमाणेऽपि वै आत्मग्रहणे परेच्छायां प्राप्नोति । किं कारणम् ? । आत्मन ईतीयं कर्तरि षष्ठी । इच्छेत्यकारो भावे । स यद्येवात्मन इच्छति । अथापि परस्य । आत्मन एवेच्छासौ भवति ।

( प्रदीपः ) आत्मन इतीयमिति । क्रियाकारकसंबन्धस्यान्तरङ्गत्वादिति भावः ।

( उद्ध्योतः ) कर्तरीयं षष्ठीति । अनेनैव सम्बन्धेनेच्छायां तदन्वयात् ॥ परम्परसम्बन्धस्तु न षष्ठ्यर्थस्तदाह—क्रियाकारकसम्बन्धस्येति ॥ अन्तरङ्गत्वं साक्षात्सम्बन्धत्वम् । अत एव सुबन्तविशेषणत्वेन परिहारः ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

नैष दोषः । नात्मग्रहणेनेच्छाभिसंबन्ध्यते ॥ किं तर्हि ? । सुबन्तमभिसंबन्ध्यते—‘आत्मनो यत्सुबन्तम्’ इति ॥

( प्रदीपः ) नात्मग्रहणेनेति । आत्मग्रहणोपादानसामर्थ्यात् । न ह्येषितारमन्तरेणेच्छा भवतीति व्यभिचाराभावादित्येच्छाया विशेषणस्य निष्फलत्वात् ॥

( उद्ध्योतः ) एषितारमिति । स एवात्मपदार्थः इति भावः ॥

( अल्पग्रहणप्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

यद्यात्मग्रहणं क्रियते, छन्दसि परेच्छायां न प्राप्नोति—‘मा त्वा वृका अघायवो विदन्’ । तस्मान्नार्थ आत्मग्रहणेन ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

‘कस्मान्न भवति राज्ञः पुत्रमिच्छतीति ।

( समाधानभाष्यम् )

असामर्थ्यात् ।

कथमसामर्थ्यम् ? । सापेक्षमसमर्थं भवतीति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

छन्दस्यपि तर्हि न प्राप्नोति—‘मात्वा वृका अघायवो विदन्’ ॥

( समाधानभाष्यम् )

अस्यत्र विशेषः । अन्तरेणाप्यत्र तृतीयस्य पदस्य प्रयोगं परेच्छा गम्यते ॥

१ असोऽप्यनुबन्धो यस्येति विग्रहः । ( र. ना. )

२ एतदन्तरं ‘मत्वे’ति शेषः । उपस्थितत्वादात्मकर्तृकेच्छायामेव भविष्यतीति भावः । ( र. ना. )

३ अत्राप्यात्मकर्तृकेच्छास्येवेति भावः । ( र. ना. )

४ ‘इति कर्तरीयं षष्ठी’ इति पाठो नगेशद्वय उद्ध्योते तथा प्रतीकलेखनात् ॥

५ ‘इतीयं कर्तरि षष्ठी’ इत्याहुनिकभाष्यपुस्तकेषूपलभ्यते ॥ वस्तुतस्तु ‘आत्मन इतीयमिति’ इति कैयटे प्रतीकदर्शनेन परमप्राचीनोऽयं पाठः । ( र. ना. )

६ परम्परसम्बन्धस्य षष्ठ्यर्थत्वाभावादित्येवार्थः । ( र. ना. )

कथं पुनरन्तरेणाप्यत्र तृतीयस्य पदस्य प्रयोगं परेच्छा गम्यते ? ।

( प्रदीपः ) कश्चात्मन इति । अयं व्यसनं दुःखमुच्यते । तच्चात्मनो न कश्चिदिच्छतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये एवमात्मका हिंसा इति । एवंस्वभावा हि परस्वैव दुःखमिच्छन्तीत्यर्थः ॥ दुःखमिति । पापवाचिनाध-  
शब्देन तत्फलं दुःखं लक्ष्यते इति भावः 'दुःखीयति सुखहेतोः'  
इत्यादिप्रयोगस्तु वास्तवदुःखस्य सुखत्वभ्रमेणेच्छायां बोध्यः ॥

( भात्मग्रहणप्रयोजनसाधकभाष्यम् )

ते चैव हि वृका एवमात्मका हिंसाः । कश्चा-  
त्मनोऽधमेषितुमर्हति । अतोन्तरेणापि तृतीयस्य  
पदस्य प्रयोगं परेच्छा गम्यते ॥

यथैव तर्हि च्छन्दस्यघशब्दात् परेच्छायां क्यञ्  
भवति । एवं भाषायामपि प्राप्नोति अधमिच्छ-  
तीति । तस्मादात्मग्रहणं कर्तव्यम् ॥

छन्दसि कथम् ? ।

आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—भवत्यघशब्दात् छन्द-  
सि परेच्छायां क्यजिति । यद्यमाह "अश्वाघस्यात्"  
इति, क्यञ्चि प्रकृते ईत्वबाधनार्थमाकारं शास्ति ॥

( प्रदीपः ) यद्यमिति । न च तदाचारक्यजर्थम् ।  
छन्दस्यघशब्दादाचारे क्यञ्चः प्रयोगाभावादिति भावः ॥

( सुब्रह्मणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ सुब्रह्मणं किमर्थम् ? ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

सुबन्तादुत्पत्तिर्यथा स्यात् प्रातिपदिकान्मा भू-  
दिति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । नास्त्यत्र विशेषः सुबन्ता-  
दुत्पत्तौ सत्यां प्रातिपदिकाद्वा ॥

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

अयमस्ति विशेषः । सुबन्तादुत्पत्तौ सत्यां पद-  
संज्ञा सिद्धा भवति । प्रातिपदिकात्पुनरुत्पत्तौ सत्यां  
पदसंज्ञा न प्राप्नोति ॥

( प्रयोजनबाधकभाष्यम् )

ननु च प्रातिपदिकादुत्पत्तौ सत्यां पदसंज्ञा  
सिद्धा । कथम् । आरभ्यते "नः क्ये" इति । तच्चा-  
घस्य वक्तव्यं सुबन्तादुत्पत्तौ सत्यां नियमार्थम् ।  
तदेव प्रातिपदिकादुत्पत्तौ सत्यां विध्यर्थं भवि-  
ष्यति ॥

१ काको किम् न कोऽपीत्यर्थः ।

२ 'सुप इत्यस्य' इत्येवोचितम् ॥

३ प्रातिपदिकादुत्पत्तिपक्षे नान्तेभ्यः कश्चि नलोपो न स्यादिति योजना ।

( उद्घोतः ) भाष्ये विध्यर्थं भविष्यतीति । ननु सुवित्य-  
स्याभावे प्रातिपदिकात्सुबन्ताच्चोत्पत्तव्यमविशेषात् तत्र 'नः क्ये'  
इत्यस्य नियमार्थत्वे नान्तेभ्यः प्रातिपदिकादुत्पत्तौ नलोपो न स्यात् ॥  
विध्यर्थत्वे तु वाच्यतीत्यादौ सुबन्तादुत्पत्तिपक्षे अश्वादिपदकार्यं  
स्यादिति चेन्न, 'धातोः कर्मणः' इत्यतः कर्मग्रहणमनुवर्त्तते । तत्र  
च धातुरूपं कर्म परिनिष्ठितत्वप्रयोजकप्रत्ययान्तत्वानाकान्तम् ।  
अतस्तत्साहचर्यात्तादृशस्यैव कर्मणो ग्रहणात् सुबन्तेऽप्राप्तेरिति  
भाष्याशयात् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—सुबन्तादुत्पत्तिर्यथा स्याद्,  
धातोर्मा भूदिति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये धातोर्मा भूदिति । तिङन्तात् न शङ्कितः,  
तस्य कर्ममात्रप्रतिपादकत्वाभावात् ॥

( प्रयोजनबाधकभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । धातोः सन्विधीयते,  
स बाधको भविष्यति ॥

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

अनवकाशा हि विध्यो बाधका भवन्ति न सा-  
वकाशाः । सावकाशाश्च सन् ॥ कोऽवकाशः ? ।  
परेच्छा ॥

( प्रयोजनबाधकभाष्यम् )

न परेच्छायां सना भवितव्यम् ॥

किं कारणम् ? ।

समानकर्तृकादित्युच्यते । यावच्चेहात्मग्रहणम्,  
तावच्च तत्र समानकर्तृकग्रहणम् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । सुबन्तादुत्पत्तिर्यथा स्याद् ।  
वाक्यान्मा भूदिति—महान्तं पुत्रमिच्छति ॥

( प्रदीपः ) महान्तं पुत्रमिच्छतीति । यद्यत्र सुब-  
न्तसमुदायात् परः क्यञ्चप्रत्ययः स्यात् तदा प्रत्ययार्थाभिधाने  
पदद्वयस्य प्रवर्तनात्परस्परस्य समासाभावादुत्तरपदनिबन्धन-  
मौत्वं न स्यात् ॥

( उद्घोतः ) ननु महान्तं पुत्रमिति विग्रहेऽपि क्यञ्चि सन्मह-  
दिति समासे आत्वे च महापुत्रीयतीत्येव भाव्यमिति तदा न  
भवितव्यमिति कथमत आह—यद्यत्रेति ॥ परस्परस्येति । अन्य-  
त्रैकार्थीभावमापन्नयोर्निष्कृष्य परस्परस्य सामर्थ्याभावादिति भावः ॥  
वस्तुतस्तु विशिष्टैकार्थीभावाभावेऽप्येकार्थीभावमात्रेण समासस्य सम-  
र्थस्यैव भाष्यसम्मततया आत्वं भवत्येव । स्वरे तु भेदः सति-  
शिष्टतया समासस्वरेण पुत्रीतीकारोदात्तत्वरूप इति भाष्याशयः ॥

( र. ना. )

४ प्रत्ययार्थविशिष्टस्यैकार्थ्याभिधाने इत्यर्थः । ( र. ना. )

५ 'आन् महतः' इत्यनेनेति भावः ॥



( इष्टापत्तिभिप्रायेण प्रश्नभाष्यम् )

न वा भवति-महापुत्रीयतीति ॥

( इष्टापत्तिनिरासाभिप्रायेण समाधानभाष्यम् )

भवति, यदैतद्वाक्यं भवति,—महान् पुत्रो महापुत्रः, महापुत्रमिच्छति महापुत्रीयतीति ॥ यदा त्वेतद्वाक्यं भवति-महान्तं पुत्रमिच्छतीति, तदा न भवितव्यम् ॥ तदा च प्राप्नोति । तदा मा भूदिति ॥

( उद्ध्योतः ) तदा न भवितव्यमिति । भाष्ये क्यचेति शेषः । तथा च स्वरेऽतिष्ठमिति भावः ॥ तदा च प्राप्नोतीति क्य-जिति शेषः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ क्रियमाणेऽपि सुवग्रहणे कस्मादेवात्र न भवति । सुबन्तं ह्येतद् भवति वाक्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

नैतत् सुबन्तम् । कथम् ? । 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेर्ग्रहणं भवति' इति ॥

( उद्ध्योतः ) नैतत्सुबन्तमिति । समुदायः कर्मेति भावः । प्रत्येकं कर्मेत्वे कर्मेसमुदायस्याकर्मत्वादेवाप्रसङ्ग इति बोध्यम् ।

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ यदत्र सुबन्तं तस्मादुत्पत्तिः कस्माच्च भवति ? ।

( १७३३ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ समानाधिकरणानां सर्वत्रावृत्तिर-  
योगादेकेन ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) समानाधिकरणानां सर्वत्र वृत्तिर्न भवति ॥ क्व सर्वत्र ? । समासविधौ प्रत्ययविधौ च । समासविधौ तावत्—ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः, महत् कष्टं श्रित इति । प्रत्ययविधौ—ऋद्धस्योपगोरपत्यम्, महान्तं पुत्रमिच्छतीति ॥ किं पुनः कारणं समानाधिकरणानां सर्वत्र वृत्तिर्न भवतीति ? । अयोगादेकेन । न ह्यत्र एकेन पदेन योगो भवति । इह तावत् 'ऋद्धस्य राज्ञः पुरुष' इति, षष्ठ्यन्तस्य सुबन्तेन सामर्थ्ये सति समासो विधीयते । यच्चात्र षष्ठ्यन्तम् न तस्य सुबन्तेन सामर्थ्यम् । यस्य च सामर्थ्यम् न तत् षष्ठ्यन्तम्, वाक्यं तत् । ऋद्धस्योपगोरपत्यमिति षष्ठीसमर्थादपत्येन योगे प्रत्ययो

विधीयते यच्चात्र षष्ठ्यन्तं, न तस्यापत्येन योगः, यस्य चापत्येन योगो, न तत् षष्ठीसमर्थम्, वाक्यं तत् ॥

( प्रदीपः ) समानाधिकरणानामिति । समानाधिकरणानां पदानां मध्ये एकेन पदेनायोगात्समुदायेनैव योगाद् वृत्तिर्न भवतीत्यर्थः । सर्गुणस्य हि पुत्रस्येति संबन्धो न केवलस्येति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) समानाधिकरणानामेकेन संबन्धनाऽयोगादिति नार्थः । ऋद्धत्वविशिष्टराज्ञः पुरुषेण संबन्धात् अत आह—मध्य इति । निर्धारणे षष्ठीति भावः ॥ अयोगादिति । इच्छत्यादीनामिति शेषः ॥ न केवलस्येतीति । सविशेषणप्रयोगविषये इति भावः ॥ यस्य च सामर्थ्यमिति । वाक्ये व्यपेक्षारूपमित्यर्थः । तदभावादेव तन्मूलक एकाकीभावो नेति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

समानाधिकरणानामित्युच्यते । अथ कथं व्यधिकरणानाम्—राज्ञः पुत्रमिच्छतीति ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि इदं पठितव्यम् 'सविशेषणानां सर्वत्रावृत्तिरयोगादेकेन'—इति ॥

( १७३४ वाक्यकर्मत्वे दूषणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ द्वितीयानुपपत्तिस्तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्वितीया तु नोपपद्यते महान्तं पुत्रमिच्छतीति । किं कारणम् ? । न पुत्र इषिकर्म । यदि पुत्रो नेषिकर्म, न चावश्यं द्वितीयैव, किं तर्हि ? , सर्वा अत्र द्वितीयादयो विभक्तयो न स्युः, महता पुत्रेण कृतं, महते पुत्राय देहि, महतः पुत्रात् आनय, महतः पुत्रस्य स्वं, महति पुत्रे निधेहीति । तस्मान्नैतच्छक्यं वक्तुं न पुत्र इषिकर्मेति । पुत्र एवेषिकर्म । तत्सामानाधिकरण्यान्महतोऽपि द्वितीयादयो भविष्यन्ति ॥

( प्रदीपः ) द्वितीयानुपपत्तिस्त्विति । यदि केवलस्य प्रातिपदिकार्थस्येति संबन्धो नेष्यते तदा कर्मत्वाभावात् केवलात् प्रातिपदिकाद् द्वितीया न प्राप्नोति, नापि समुदायात्, तस्याप्रातिपदिकत्वाद् गुणे च संख्याया विवक्षितत्वात् ॥ पुत्र एवेति । तस्यैवेप्सिततमत्वाद् गुणानां चेप्साप्रकर्षाभावात् ॥ स्वयमकर्मत्वेऽपि तत्सामानाधिकरण्यनिबन्धना विभक्तिरित्यर्थः ॥

१ वाशब्द एवकारार्थः । काका च प्रश्नः । ( र. ना. )

२ राज्ञ इतीति भावः । ( र. ना. )

३ ऋद्धस्य राज्ञ इति समुदायस्येति भावः । ( र. ना. )

४ तदादि नियमेन षष्ठ्यन्तत्वाभावादिति भावः । ( र. ना. )

५ सविशेषणस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

६ न तस्य सुबन्तेन सामर्थ्यमिति प्रतीकोल्लेखो युक्तः । तदभावादेवेत्यादि

वक्ष्यमाणग्रन्थानुरोधात् । ( र. ना. )

७ कर्मणि द्वितीयेत्यत्र कर्मगतमेकत्वं विवक्षितमिति न समुदायाद् द्वितीया प्राप्तिः न च विधेयगतैव संख्या विवक्षिता न गुणगतेति वाच्यम् । एतन्नियमस्य वैयाकरणैरनादृतत्वात् । अत एवोक्तं भूषणे । लक्ष्यानुरोधात्संख्यायास्तत्रातत्रे मते यत इत्यादिना । तस्माद् 'इदं चिन्त्य'मिति नगोशोक्तिरेव चिन्त्या । ( र. ना. )

८ विशेषणानामित्यर्थः । ( र. ना. )

( उद्ध्योतः ) गुणे चेति । इदं चिन्त्यम् । तस्मात्प्रातिपदिक-समुदायस्याप्रातिपदिकत्वेन समुदायान्न स्यात् । किं च महान्तं पुत्रमित्युक्तमत्रेद्वितीयानुपपत्तिरेवेति तत्त्वम् ॥ भाष्ये यदि पुत्रो नेषिकमेति यतः पुत्रो नेषिकमेत्यर्थः ॥ ननूभयं कर्मेति वाच्ये पुत्र एवेत्यनुपपन्नमत आह—तस्यैवेति । प्रधानत्वादिति वक्तुं युक्तम् ॥ सामानाधिकरण्यनिबन्धनेति । समानाधिकरणविशेषणस्य विशेष्यसमानशक्तिकत्वादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

वृत्तिस्तर्हि कस्मान्न भवति ? ।

( समाधानभाष्यम् )

सविशेषणानां वृत्तिर्न, वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यते इति वक्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) सविशेषणानामिति । एकस्यैकदा व्यपेक्षकार्थीभावविरोधादिति भावः ।

( उद्ध्योतः ) एकस्येति । सुब्रह्मणेन पदविविधित्वात्समर्थ-परिभाषोपस्थितेति भावः ॥ व्यपेक्षेति । विशेषणेन व्यपेक्षा, विशेष्येणैकार्थीभाव इत्यर्थः । ईदमेव सुब्रह्मणस्य फलमिति बोध्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि तर्हि 'सविशेषणानां वृत्तिर्न, वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यते' इति उच्यते, 'मुण्डयति माणवकम्' अत्र वृत्तिर्न प्राप्नोति ॥

( उद्ध्योतः ) सविशेषणानामिति सापेक्षोपलक्षणम् । अत एव 'ऋद्धस्य राशः पुरुष' इत्यत्र ऋद्धपदेनापि न समास इत्याशयेन शङ्कते—भाष्ये मुण्डयति माणवकमिति । एतेन 'मुण्डस्य गुण-शब्दत्वान्माणवकस्य द्रव्यशब्दत्वात्तस्यैव विशेष्यताया न्याय्यत्वेन मुण्डस्य कथं सविशेषणत्वमित्यपास्तम् ॥

( प्रतिप्रसवेन समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि 'अमुण्डादीनामि'ति वक्तव्यम् ॥

( तृतीयस्याक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम्—'सविशेषणानां वृत्तिर्न, वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यते, अमुण्डादीनामि'ति ॥

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

न वक्तव्यम् ।

( पूर्वपक्षिभाष्यम् )

वृत्तिस्तर्हि कस्मान्न भवति—महान्तं पुत्रमिच्छ-तीति ॥

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

अगमकत्वात् । इह समानार्थेन वाक्येन भवि-तव्यं प्रत्ययान्तेन च । यश्चेद्वाक्येन वाक्येन गम्यते—

महान्तं पुत्रमिच्छतीति । नासौ जातुचित्प्रत्यया-न्तेन गम्यते—महान्तं पुत्रीयतीति । एतस्माद्धेतोर्ब्रूमः अगमकत्वादिति । न ब्रूमः—अपशब्दः स्यादिति । यत्र च गमकं भवति, तत्र वृत्तिः, तद्यथा—मुण्ड-यति माणवकमिति ॥

( प्रदीपः ) अगमकत्वादिति । लौकिके प्रयोगेऽनुमा-नादपि गाव्यादिभ्यो गवाद्यर्थप्रतिपत्तिवद् महान्तं पुत्रमिच्छ-तीत्यादिवाक्यार्थस्य महान्तं पुत्रीयतीत्यादेः प्रतीतिर्नास्तीत्यर्थः । सिद्धानां च शब्दानां संकरनिरासाय अन्वाख्यानं क्रियते, न त्वप्रयुक्तापूर्वशब्दव्युत्पादनाय ॥ न ब्रूम इति । अपशब्दो हि लोके प्रयुज्यते साधुशब्दसमानार्थश्च, अयं त्वप्रयुक्तत्वाद-पशब्दव्यपदेशस्यापि न भाजनमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) अनुमानादपीति । साध्वनुमानादित्यर्थः । अपिना साधुसरणसंग्रहः । वस्तुतोऽपभ्रंशानामपि वाचकत्वमपिना ग्राह्यम् ॥ भाष्ये—एतस्माद्धेतोरिति । अपशब्दः स्यादिति हेतोर्वृत्तिर्निति न ब्रूमः, किं तर्हि अगमकत्वादिति हेतोरित्यन्वयः, तदेवाह—सिद्धानामिति । अर्थप्रत्यायनायासाधुनामिवास्य प्रयोगा-भावात् । किं तन्निवृत्त्यर्थेन वचनेनेत्यर्थः ॥ भाष्ये यत्र च गमक-मिति । मुण्डयतीति प्रयोगे मौण्ड्यस्य क्रियारूपत्वेन कारकांशे नित्यसापेक्षतया गमकत्वमिति भावः ॥

( कयजन्तकारकनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथास्य कयजन्तस्य कानि साधनानि भवन्ति ॥

( समाधानभाष्यम् )

भावः कर्ता च ॥

( प्रदीपः ) भावः कर्ता चेति । कर्माभावप्रतिपादनपरमे-तत् । अधिकरणादौ हि ल्युडादयो यथायोगं भवन्त्येव । भावस्य च लकाराद्युत्पत्तिनिमित्ततया साधनव्यपदेशः ॥

( उद्ध्योतः ) कर्माभावेति । लकारवाच्यसाधनानामेव प्रश्लादिति भावः ॥ नन्वेवं 'कानि साधनानि' इति प्रश्ने 'भावः' इत्युत्तरमसंगतम्, तस्य क्रियारूपस्य साध्यत्वेन साधनत्वाभावादत आह—भावस्य चेति । लकारनिमित्तमेव साधनशब्देनोच्यत इति भावः ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

अथ कर्म ।

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

नास्ति कर्म ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

ननु चायमिषिः सकर्मकः, यस्यायमर्थं कयजि-धीयते ॥

१ केवलदेव सुब्रह्माद् यथा स्यात् सविशेषणत्वे सा भूदित्येतदेवेत्यर्थः । ( र. ना. )

२ अवोचकत्वादित्यर्थः । ( र. ना. )

३ 'गमकत्वं' ॥

४ 'समानायामार्वागतौ शब्देन चापशब्देन च' इति भाष्योक्तेः 'वा-

चकत्वाविशेषेपि नियमः पुण्यपापयोः' इति हर्षुक्तेश्च ॥

५ 'कयजन्तधातोः कर्माभावात् कथं कर्मणि प्रत्ययः संभवेत् ॥

६ कयज्वाच्येच्छावाचकस्य इषेः सकर्मकत्वेन कयजन्तस्यापि सकर्मकत्वमेति शङ्काशयः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

अभिहितं तत्कर्मान्तर्भूतं धात्वर्थः संपन्नः, न चेदानीमन्यत्कर्मास्ति येन सकर्मकः स्यात् ॥

( प्रदीपः ) अभिहितमिति । ततश्च जीवतीत्यादिव-  
दिच्छाक्यजन्तस्याकर्मकत्वात्कर्मणि लाघवात् । न चेदानी-  
मिति । नियतविषयाया इच्छाया क्यजन्तेन प्रतिपादनात्-  
स्याश्च वस्त्वन्तरविषयीकरणाभावादिति भावः ॥

( उद्धोतः ) नियतविषयाया इति । कर्मविशेषणैकार्थी-  
भावादित्यर्थः । अत एव कर्मान्तरेणानन्वयः । राजपुरुषो भार्याया  
इतिवदिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं तर्ह्ययं सकर्मको भवति—अपुत्रं पुत्रमिवा-  
चरति पुत्रीयति माणवकमिति ।

( प्रदीपः ) कथं तर्हीति । अत्रापि पुत्रैकर्मणोऽस्त्यन्त-  
र्भाव इति प्रश्नः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

अस्त्यत्र विशेषः—द्वे ह्यत्र कर्मणी—उपमानक-  
र्मोपमेयकर्म च, उपमानकर्मान्तर्भूतम्, उपमेयेन  
कर्मणा सकर्मको भवति । तद्यथा—‘अपि काकः  
इयेनायते’ इति । अत्र द्वौ कर्तारौ । उपमानकर्ता  
उपमेयकर्ता च । उपमानकर्तान्तर्भूतः, उपमेयकर्त्रा  
सकर्तृको भवति ॥

( प्रदीपः ) द्वे इति । वाक्य एव कर्मद्वयमाकाङ्क्षित-  
मित्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) वाक्ये एवेति । क्यजथाचारस्य नियमेनोप-  
मानविषयत्वेऽपि उपमानस्योपमेयसापेक्षत्वात्कर्मद्वयसद्भाव इति  
भावः ॥ तत्र मुख्यं कर्मोपमेयमेव, उपमाने तु उपमेयसमानशक्ति-  
कत्वात्कर्मत्वव्यवहार इति तस्यान्तर्भूतत्वेऽपि न क्षतिरिति तात्पर्यम् ।  
उपमानपुत्रकर्मक उपमेयमाणवककर्मक इति बोधः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अयं तर्हि कथं सकर्मको भवति—मुण्डयति  
माणवकमिति ? ॥

( प्रदीपः ) मुण्डयतीति । मुण्डगुणविशिष्टद्रव्यकर्मणो  
धात्वर्थेऽन्तर्भावदिति भावः ॥

( उद्धोतः ) ननु मुण्डयतीत्यत्रापि द्वयोः कर्मत्वं मुण्डं  
करोति माणवकमिति विग्रहदर्शनादिति कथमत्र प्रश्न इत्यत आह—  
मुण्डगुणेति । मौण्ड्यस्य कर्मत्वे सति तस्याश्रयसापेक्षत्वेनासाम-  
र्थ्यप्रसङ्गार्थं, मुण्डगुणविशिष्टद्रव्यस्यैव कर्मत्वमभ्युपेयम्, तस्य च  
धात्वर्थेऽन्तर्भाव इति भावः ॥

१ यथा पुरुषस्यैकेन संबन्धिना राज्ञाऽन्येनैकार्थीभावे भाष्येऽपि स न  
भवतीति भावः । ( र. ना. )

२ ‘पुत्रादिकर्मणो’ ॥

३ आचार इति शेषः । ( र. ना. )

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

अत्रापि द्वे कर्मणी सामान्यं कर्म, विशेषकर्म  
च । सामान्यं कर्मान्तर्भूतम्, विशेषकर्मणा सक-  
र्मको भवति ॥

( प्रदीपः ) अत्रापीति । ण्यन्तो धातुर्द्रव्यमात्रमन्त-  
र्भावयितुं शक्नोति, न तु विशेषं माणवकादिकमिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

ननु च वृत्त्यैवात्र न भवितव्यम् । किं कारणम् ? ।  
असामर्थ्यात् ॥ कथमसामर्थ्यम् ? । सापेक्षमस-  
मर्थं भवतीति ॥

( प्रदीपः ) ननु चेति । यद्यप्येतच्चोदितं च परिहृतं  
च, तथापि गमकत्वागमकत्वविषयविभागप्रदर्शनाय पुनरुप-  
न्यासः ।

( उद्धोतः ) विशेषस्यापि कर्मत्वस्वीकारेऽसामर्थ्यमिति शङ्कते  
भाष्ये—ननु चेति ॥ विषयविभागेति । मुण्डशब्दादेर्गन्वि  
गमकत्वम्, क्यज्यगमकत्वमिति—विषयविभागेत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

नैष दोषः । नात्रोभौ करोतियुक्तौ मुण्डो माण-  
वकश्च । नहि माणवकत्वं क्रियते ॥ यदा चोभौ क-  
रोतियुक्तौ भवतः, न भवति तदा वृत्तिः । तद्यथा ।  
बलीवर्द्धं करोति मुण्डं चैनं करोतीति ॥

( प्रदीपः ) नात्रोभाविति । मौण्ड्यमेव करोतियुक्त-  
मिति मौण्ड्यं करोतीत्यत्रैवायं मुण्डयतीति णिजुत्पद्यत इत्यर्थः ।  
मुण्डं करोति माणवकमित्यत्र तु वाक्ये कर्मत्वमेकस्यैव तत्सा-  
मानाधिकरण्यात् द्वितीयस्माद् द्वितीयोत्पत्तिः । गुणप्रधानभा-  
वश्च विवक्षावशादनियत इति माणवकादयो मौण्ड्याधारविशे-  
षप्रतिपत्त्यर्थमुपादीयमानाः करोतियुक्ता न भवन्तीत्यर्थः ।  
मुण्डयतेश्च क्रियाविशेषवाचिस्तात्पदेषां माणवकादेः कर्मत्व-  
मिति माणवकं मुण्डयतीत्यादिप्रयोगोपपत्तिः ॥ तद्यथेति ।  
बलीवर्द्धमेवात्मसंबन्धित्वेन करोति तं च मुण्डं करोतीति  
युगपदुभयोः करोतिकर्मत्वे विवक्षिते मुण्डयति बलीवर्द्धमिति  
प्रयोगो न भवतीत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) मौण्ड्यमेवेति । वृत्तौ मुण्डशब्दो भावप्रधानः ।  
अत एव भाष्ये न हि माणवकत्वं क्रियते इत्युक्तम्, नैस्य च  
वृत्तौ साध्यावस्यस्यैव भानाद् क्रियारूपत्वेन कारकांशे नित्यसापेक्ष-  
त्वाद् गमकत्वमित्यदोषः । धर्मिपरत्वे हि गुणविशिष्टद्रव्यस्योत्पाद-  
नेनासामर्थ्याद्वृत्तिर्न स्यादिति भावः ॥ वस्तुतो नित्यसापेक्षत्वाभावेऽपि  
गमकत्वे वृत्तिर्भवत्येवेति बोध्यम् ॥ एकस्यैवेति, मुण्डस्यैवेत्यर्थः ।  
मौण्ड्यरूपतदर्थस्यैवोत्पत्त्यमानत्वादिति भावः ॥ माणवकपदार्थस्य

४ णिज् न स्यादिति शेषः । ( र. ना. )

५ मौण्ड्यस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

६ उत्पादनेन करोत्यर्थेन सह सामर्थ्याभावादित्यर्थः । ( र. ना. )

सर्वथा करोत्यन्वयायोरयत्नमेवेति बोध्यम् ॥ द्वितीयस्मात् । माण-  
वकशब्दात् ॥ ननु माणवको विशेष्यस्तत्सामानाधिकरण्यान्मुण्डाद्  
द्वितीयेति युक्तम्, न तु विपरीतमत आह—गुणप्रधानेति । परि-  
च्छेदपरिच्छेदकभाव इत्यर्थः । परिच्छेदसमानशक्तिकत्वं परिच्छेद-  
कस्येति भावः ॥ एवं च वाक्येऽपि मुण्डस्यैव करोतियोग इति भावः ।  
तदाह—माणवकादय इति । यद्यपि वाक्ये मुण्डशब्दो धर्मि-  
परस्तथापि तस्य सामान्यशब्दत्वात्तद्विशेषाकाङ्क्षायां तदन्वयेऽपि  
माणवकस्य न साक्षात्करोति युक्तत्वमिति बोध्यम् । एवं चान्न वृत्तौ  
'कटोऽपि कर्म, भीष्मादयोऽपीति न्यायो नास्त्येवेति तात्पर्यम् ॥  
ननु तस्य करोति योगाभावे कथं वृत्तौ माणवकस्य कर्मत्वं कथं च  
द्वितीयान्तत्वमत आह—मुण्डयतेति । मौण्ड्यरूपक्रियाश्रयत्वा-  
त्कर्मत्वमिति भावः । एवं च कृतपूर्वा कटमिति वदुस्तिरिति तत्त्वम् ।  
ननु बलीवर्दत्वस्य क्रियमाणत्वासंभवादाह—बलीवर्दमेवात्मसंब-  
न्धित्वेनेति । बलीवर्दशब्दस्य चित्रादिपरत्वे तु न शङ्कापि ॥  
प्रयोगो न भवतीति । राजपुरुषो देवदत्तस्येत्यादाविवासामर्थ्या-  
दिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कामं तर्ह्यनेनैव हेतुना क्यजपि कर्तव्यः—माण-  
वकं मुण्डमिच्छतीति । नोभाविषियुक्ताविति ॥

( प्रदीपः ) कामन्तर्हीति । अत्रापि मौण्ड्यमेवेत्येते  
माणवकस्तु तदाधारविशेषप्रतिपादनायोपात्त इति भावः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

न कर्तव्यः । उभावप्रेषियुक्तौ मुण्डो माणवकश्च ।  
कथम् ? । न ह्यसौ मौण्ड्यमात्रेण संतोषं करोति  
माणवकस्यमसौ मौण्ड्यमिच्छति ।

( प्रदीपः ) उभावप्रेति । माणवकस्य मौण्ड्यकरणेन  
संस्कार्यत्वादुभयोः कर्मत्वे सापेक्षत्वादेकतरस्मात्प्रत्ययोत्पत्तिर्न  
भवतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) उभयोः कर्मत्वे इति । इषि निरूपिते इति  
शेषः ॥ सापेक्षत्वादिति । मुण्डस्य माणवकः समानाधिकरणं  
विशेषणमिति सृष्टित्वमिति भावः ॥ एतावताप्यन्ते गमकत्वं क्य-  
च्यगमकत्वमिति दर्शितम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इहापि तर्हि न प्राप्नोति मुण्डयति माणवक-  
मिति । अत्रापि ह्युभौ करोतियुक्तौ मुण्डो माणव-  
कश्च । न ह्यसौ मौण्ड्यमात्रेण संतोषं करोति । किं  
तर्हि ? । माणवकस्यमसौ मौण्ड्यं निर्वर्तयति ॥

१ यथाऽत्राविवक्षितकर्मत्वरूपाकर्मत्वमाश्रित्य पूर्वं भावे क्तप्रत्यये तद्धित-  
वृत्तुत्तरं कटस्य संबन्धस्तस्य चातुक्त्वाद् द्वितीया तथा पूर्वं मुण्डयतीति वृत्तौ  
सत्यां पश्चात्तौ मौण्ड्यरूपक्रियाश्रयत्वेन माणवकस्य कर्मत्वमिति भावः । ( र. ना. )

२ मौण्ड्यविशिष्टरूपतया माणवकस्यापि करोतिफलोत्पत्त्याश्रयत्वमित्यर्थः ।  
( र. ना. )

३ अभिमनोक्तस्तु माणवकस्य वस्तुत उत्पत्त्याश्रयत्वाभावादिति । ( र. ना. )

४ 'मुण्डमिच्छ' इति सूत्रे मुण्डग्रहणसामर्थ्यादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये माणवकस्यमसाविति । एवं च तद्-  
द्वारा माणवकस्येच्छाविषयत्ववत्करोत्यर्थविषयत्वमपीत्यभिमानः ।  
यद्यपि फलेच्छाश्रयत्वं तस्य वक्तुं युक्तम्, न तु करोतिफलोत्पत्त्या-  
श्रयत्वं तस्येति उभयोः करोति युक्तत्वाभावस्तथापि विशिष्टवेवेण  
तस्यापि तदाश्रयत्वमित्यभिमानेनैकदेशिनः शङ्क्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि मुण्डादयो गुणवचनाः । गुणवचनाश्च  
सापेक्षाः । तत्र वचनात्सापेक्षाणां वृत्तिर्भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) गुणवचनाश्चेति । वचनेसामर्थ्यात्सापेक्षे-  
भ्योऽपि मुण्डादिभ्यः प्रत्ययो भवति, क्यच्प्रत्ययस्तु निरपेक्षेभ्यः  
पुत्रादिभ्यः सावकाश इति माणवकं मुण्डमिच्छतीत्यादौ सा-  
पेक्षेभ्यो न भवति ॥ नन्वयमपि णिञ् गुणमात्रविवक्षायां  
सावकाशो मुण्डयत्ययं नापितः प्रवीणो मौण्ड्यकरण इत्यर्थाव-  
गमात् । ततश्च द्रव्यविशेषापेक्षायां प्रत्ययो न प्राप्नोति ॥ नैष  
दोषः । तत्करोतीति सिद्धे णिञि पुनर्विधानमिदं सापेक्षे-  
भ्योऽपि मुण्डादिभ्यो यथा स्यादित्येवमर्थमेव ॥

( उद्घोतः ) एवं च मुण्डपदार्थस्य विशेषापेक्षत्वेनासाम-  
र्थ्यम् ॥ वृताहुभयत्रापि मुण्डशब्दो धर्मिपर इति तद्भावात्सामर्थ्येण  
परिहरति—एवं तर्हीति । गुणवचना इत्यस्य गुणप्रवृत्तिनिमित्तका  
इत्यर्थः । सापेक्षा इत्यस्य परिच्छेदविशेषसापेक्षा इत्यर्थः ॥ ननु  
मुण्डो नित्यसापेक्षोऽन्यथा वा । नायः । राजपुरुषादौ सावकाशस्यापि  
समासस्य गुरुकुलादौ प्रवृत्तिवदत्रापि क्यजापतेः । नान्त्यः, णिञो-  
ऽप्यनापत्तेः असापेक्षे चारितार्थ्यादिति शङ्कते—नन्विति ॥ नैष  
दोष इति । वचनादिति भाष्यस्य तत्करोतीति सिद्धे वचनसाम-  
र्थ्यादित्यर्थः । इति भावः । न च तत्करोतीत्यनेन प्रातिप-  
दिकादुत्पत्तेः सुबन्तादुत्पत्त्यर्थमिदमावश्यकम्, विशेषाभावात्  
णिञि भवत्वाच्च ॥

( समाधानभाष्यम् )

अथ वा धातव एव मुण्डादयः ॥

न चैव ह्यर्था आदिभ्यन्ते क्रियावचनता च  
गम्यते ॥

( प्रदीपः ) धातव इति । सौत्रा धातवो मुण्डादयस्ते-  
भ्यश्चुरादिवरस्वार्थिको णिजित्यर्थः ॥

न चैवेति । यद्यपि क्रियाविशेषाभिधायित्वं मुण्डादीनां  
नैवोपात्तं तथापि स्वाभाविकत्वादर्थभिधानस्य प्रयोगादेव तद-  
वसीयत इत्यर्थः । यथा कण्ड्वादयो द्विविधास्तथा मुण्डादय इति  
भावः ॥

( उद्घोतः ) सौत्रा इति । उत्तरसूत्रस्य धातुग्रहणस्य पूर्वम-

५ प्रातिपदिकादुत्पत्तावपीत्यादिः । तथा च प्रातिपदिकादुत्पत्तौ सुबन्तादु-  
त्पत्तौ वा न फले विशेष इति भावः । ( र. ना. )

६ यद्यपि न चैव हि मुण्डादीनामर्थ आदिदयन्ते साक्षादुपादीयन्ते तथापि  
च क्रियावचनता प्रयोगादेव गम्यते इति शेषपूर्तिपूर्वकं संबन्धः । ( र. ना. )

७ 'यथा च' ॥

८ 'धातारेकभिः' इत्युत्तरसूत्रस्येत्यर्थः ॥

पक्षादिति भावः ॥ भाष्ये न चैवेति शङ्का । क्रियावचनतेत्युत्तर-  
मिति व्याचष्टे—यद्यपि<sup>१</sup> इति । यथा कण्डादय इति । तथा च  
धातुभ्यो णिच् प्रातिपदिकेन वाक्यमिति भावः ॥

(समाधानभाष्यम्)

अथ वा नेदमुभयं युगपद्भवति वाक्यं च प्रत्य-  
यश्च । यदा वाक्यम्, न तदा प्रत्ययः । यदा प्रत्ययः,  
सामान्येन तदा वृत्तिर्भवति । तत्रावश्यं विशेषा-  
र्थिना विशेषोऽनुप्रयोक्तव्यः । मुण्डयति कम्, माण-  
वकमिति ॥

मुण्डविशिष्टेन वा करोतिना तमामुमिच्छति ॥

(प्रदीपः) मुण्डविशिष्टेनेति । पूर्वस्मिन्परिहारे कर्म-  
विशेषानपेक्षायां प्रत्ययोत्पत्तिरित्युक्तम् । अस्मिन् यथा गां  
दोग्धि पय इति शुद्धस्य दुहेर्गवा पूर्वं संबन्धः पश्चात् गोदु-  
हिना पयसः । एवं शुद्धः करोति मौण्ड्येन संबध्यते मौण्ड्यवि-  
शिष्टन्तु माणवकेनेत्युच्यते ॥

(उद्द्योतः) भाष्ये परिहारान्तरमाह—मुण्डविशिष्टेन  
वेति ॥ ननु पक्षद्वयेऽपि ‘पूर्वं करोतेमुण्डसंबन्धः, पश्चान्माणव-  
कस्य संबन्धः’ इति प्रतीतेः को विशेषोऽत आह—पूर्वस्मिन्निति ॥  
अथवा नेदमुभयमिति परिहारे इत्यर्थः । तत्र पूर्वं कर्मविशेषस्या-  
नपेक्षणात् असंबन्धः । उत्तरत्र त्वपेक्षायामपि बहिरङ्गत्वात् पूर्वं  
संबन्ध इत्युच्यते इति विशेष इत्यर्थः ॥ गवा पूर्वमिति । प्रधान-  
व्यापारेणाप्यमानत्वादिति भावः ॥ पश्चाद्विवर्ति । विशेषणव्यापारे-  
णाप्यमानत्वादिति भावः ॥ अन्तस्थितवस्तुविभागानुकूल[व्यापारानु-  
कूल]व्यापारो हि दुहेरर्थः ॥ मौण्ड्यविशिष्टस्तु माणवकेनेति ।  
मौण्ड्यद्वारेत्यर्थः ॥

(समाधानभाष्यम्)

अथ वोक्तमेतत्—नात्र व्यापारोऽनुगन्तव्यः ।  
गमकत्वादिव वृत्तिर्भविष्यति मुण्डयति माणव-  
कमिति ॥

(प्रदीपः) अनेनैव न्यायेन माणवकं मुण्डमिच्छतीति  
कथञ्च प्राप्नोतीत्याशङ्काह—अथ वेति । व्यापारो नात्र-

१ ‘न चैव द्वार्था आदिश्यन्ते’ इत्यस्यादौ ‘यद्यपि’ इति, अन्ते ‘तथापि’  
इति शेषपूर्णे न ग्रन्थो लपनीय इति प्रदीपतोऽपि प्रतीयते ॥ यद्यपि सम्भवाद-  
योऽपि दृष्टान्तत्वेनोपन्यसनीयाः तथापि मुण्डादीनां स्वतन्त्रप्रातिपदिकानामपि  
दर्शनात् कण्डादय एव दृष्टान्तयोग्या इति प्रदीपाशय इति भावः ॥

२ गोपव्यापारेणेत्यर्थः । (र. ना.)

३ गोव्यापारेणेत्यर्थः । (र. ना.)

४ कोष्ठकान्तर्गतपाठो यद्यपि पुस्तकेषु नोपलभ्यते तथापि प्रधानव्यापार-  
विशेषणव्यापारेति व्यापारद्वयदर्शनेनास्माभिर्वर्धितः ॥

५ अथवोक्तमेतत्, गमकत्वादिव वृत्तिर्भविष्यति मुण्डयति माणवकमिति  
नात्र व्यापारोऽनुगन्तव्य इति योजना । (र. ना.)

६ ‘नारम्भणीयः’ ॥

७ ‘कथञ्च त्वगमक’ ॥

८ सापेक्षत्वेनेत्यादिः । (र. ना.)

यणीयः प्रयत्नमन्तरेणापीष्टस्य सिद्धत्वादित्यर्थः । कथञ्चागम-  
कत्वाच्च भवति । तदुक्तं हरिणा—

सदपीच्छाकथ्यचः कर्म तदाचारक्यचा हृतम् ।

वाक्यवाच्यमतोऽव्यक्तैर्याभ्यासः क्रमादिष्विति ॥

(उद्द्योतः) व्यापार इति । ‘सापेक्षेभ्योऽपि मुण्डादिघृत्ना-  
रम्भसामर्थ्यादित्येवंरूपो, ‘धातवः’ इत्येवंरूपो वा, ‘नेदमुभयम्’  
इत्यादिरूपो वेत्यर्थः ॥ अगमकत्वादिति । अयं भावः—  
प्यन्तवृत्तौ मुण्डशब्दो भावप्रधान इत्युक्तन्यायेन भवति वृत्तिः ।  
कथञ्चतवृत्तौ तु धर्मिपर एवातस्तत्र नेच्छाकथ्यञ्च, असामर्थ्यात् । अत  
एव कथञ्चान्तात्तसादाचारार्थप्रतीतिरेव तदाह—सदपीति । न्यायतः  
संभवदपीत्यर्थः ॥ आचार कथञ्चाहृतं निरवकाशीकृतं, निरुद्धतया  
तदर्थस्यैव प्रतीतेरिति भावः । अतस्तद् वाक्यवाच्यमेव माणवकं  
मुण्डमिच्छति इत्यनेनैव बोधनीयम्, न तु कथञ्चनेन ॥ तत्र हेतु-  
माह—अत इति । कथञ्चान्तादव्यक्तैरित्यर्थः । यथा क्रमादिधातुषु  
अभ्यासः पौनःपुन्यं वाक्येनैव गम्यते न तु यदा, तत्प्रकृतिकस्य  
तस्य कौटिल्ये निरुद्धेति भावः ॥ अन्यत्रोक्तं हरिणा—

“सदपीच्छाकथ्यचः कर्म वाक्य एव प्रयुज्यते ।

प्रसिद्धेन हतः शब्दो भावगर्हाभिधायिना ।

अभ्यासे तुल्यरूपोऽपि न यद्धन्तः प्रवर्तते ॥” इति ॥

एतेन ‘वेदादिविषयोऽभ्यासो यथा क्रमादिषु व्यज्यते इत्यर्थः ।  
यद्वा विसर्गहितपाठेनाभ्यासेन वर्णक्रमादिविषयाभिव्यक्तैरित्यर्थो  
विवरणकारोक्तोऽपास्तः ॥ एतदेवात्र मुख्यं समाधानमिति ध्वन-  
यितुमस्य पुनरुद्धेः । एवं च मुण्डादिसूत्रं प्रपञ्चार्थमेवेति बोध्यम् ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

अथेह कथञ्च भवितव्यम्—इष्टः पुत्रः, इष्यते  
पुत्रः ? ॥

अथेहेति । इच्छाकथञ्चान्तात्कर्मणि प्रत्ययोत्पत्तिः प्रका-  
रान्तरेणाशङ्कते । तथा हि—यद्यत्र कथञ्च भवति तदे-  
च्छामात्रस्य कथञ्चाभिधानादवश्यं कर्मणोऽभिधानाय तद्व्याचिना  
प्रत्ययेनोत्पत्तव्यम् । यथा पुत्रीयतीति कर्त्रभिधानाय तिपा ॥

(उद्द्योतः) नन्वकर्मकत्वाकथञ्चान्तात्कर्मणि प्रत्ययो नेति

९ अस्योदाहरणं माणवकं मुण्डमिच्छतीति । भावगर्हाभिधायिना प्रसिद्धेन  
लोड्यते इत्यादिना अभ्यासार्थको लोड्यते इत्यादि शब्दो हत इत्यर्थः ।  
कौटिल्यार्थको तुल्यरूपोऽपि चक्रम्यते इत्यादि यद्धन्तोऽभ्यासे न प्रवर्तते  
इत्यर्थः । (र. ना.)

१० क्रमपाठादिष्वित्यर्थः । (र. ना.)

११ एतेन पुनरुक्त एव विषयो अपुनरुक्तविषयात्प्रामाणिक इति ध्वनयति ॥  
एवं च बहुत्राङ्गीकृतायां बहिरङ्गपरिभाषयास्त्रिपाद्यां प्रवृत्तयेव भाष्यकारसं-  
तत्वम् न तु एकत्रोक्ते—‘अनुक्तोऽयं परिहारः—‘न वा बहिरङ्गलक्षण-  
त्वात्’ इति द्रौढिवादे’ इति स्पष्टमेव नागेशस्याप्यभिमतम् ॥ तथा च नागेश-  
स्यापि त्रिपाद्यां बहिरङ्गपरिभाषया अप्रवृत्तिकथने नैवाभिनिवेश इति बोध्यम् ॥  
इति दाधिमथाः ॥ वस्तुतस्तु अयं दाधिमथविचारोऽसंगतः । एकस्मिन् विषये  
एकस्य समाधानस्य पुनरुक्तौ प्रामाणिकत्वमिति सूत्रकारेण त्रिपाद्यां बहिरङ्गपरि-  
भाषयाः प्रवृत्त्या समाधानस्य एकस्मिन् विषये पुनरुक्तत्वाभावादिति । (र. ना.)

प्रागुक्तमेव तत्किमर्थेहेत्यनेनोच्यते इत्यत आह—इच्छा क्यज-  
न्तादिति ॥ कर्मणोभिधानायेति । पुत्र इति प्रथमान्तस्येष्टशब्द-  
सामानाधिकरण्यात्कर्मत्वसङ्गावेऽपि तस्य तद्वाचकत्वाभावात्ततः  
क्यचि तेन कर्मणोऽनभिधानादिति भावः । एवं सर्वत्राभिधान-  
विषये बोध्यम् ॥

( समाधाने मतान्तरभाष्यम् )

केनचित्तावदाहुः—न भवितव्यमिति ॥ किं कार-  
णम् ? । स्वशब्देनोक्तत्वात् ॥

( प्रदीपः ) स्वशब्देनेति । इष्टशब्दसामानाधिकरण्या-  
त्पुत्र इत्यनेन निर्मुक्तैषिक्रियापेक्षकर्मभावस्यार्थस्य प्रतिपादना-  
दित्यर्थः । अयमर्थः—यदा क्रियाफलस्य कर्मणः प्राधान्यं प्रति-  
पिपादयिषितं तदा वाक्यमेव प्रयुज्यते 'पुत्र इष्ट' इत्यादि ।  
न तु क्यजन्तः । तस्याकर्मकत्वात् कर्मणि प्रत्ययानुत्पादात् ॥

( उद्घोतः ) इष्टशब्देति । एवं च तत्सामानाधिकरण्या-  
त्तदर्थगतकर्मत्वस्य साक्षात्कर्मवाचिना केनाभिधानात् प्रातिपदिकार्थ-  
मात्रपरत्वेन पुत्र इति सुबन्तस्य कर्मत्ववाचित्वाभावान्न ततः क्य-  
जितिभावः ॥ निर्मुक्तेति । इतरसामानाधिकरण्याज्जातकर्मभावस्य  
सत इत्यर्थः । निर्मुक्तेति पाठे स्ववाच्यतया त्यक्तकर्मभावस्येत्यर्थः ॥  
स्वशब्देनोक्तत्वादिति भाष्यस्य स्वं कर्मत्वं तद्वाचकशब्देन केन  
कर्मत्वोक्तेः । पुत्र इत्यस्य सुबन्तस्य कर्मत्ववाचकत्वाभावान्न भवि-  
तव्यं तदर्थं क्यचेत्यर्थः ॥ यदा क्रियाफलस्येति । तथा च विग्रहे  
फलस्य विशेष्यतया, पुत्रीयतीत्यादौ व्यापारस्य विशेष्यतया भिन्नार्थ-  
त्वान्न तदर्थेऽयं क्यच् किं तु पुत्रमिच्छतीत्यत्रार्थ एव । कर्मणि च  
फलस्य विशेष्यत्वम् 'इष्टः पुत्रः' इत्यादौ सामानाधिकरण्यानुरोधे-  
नावश्यमङ्गीकार्यमिति भावः ॥ कर्मण इति । कर्मसंज्ञाप्रयोज-  
कस्येत्यर्थः । वस्तुत इयं व्याख्या इति इह भवन्त इति मते उचिता ।  
कर्मण इत्यस्य कर्मत्वविशिष्टबोधकस्येत्यर्थः । इत्येवैतद्व्याख्योचिता,  
अग्रिममतद्वये तु वस्तुतः कर्मत्वविशिष्टो यस्तद्वाचकादिति सूत्रार्थः  
इत्याशयः ॥

( मतान्तरेण समाधानभाष्यम् )

अपर आहुः—भवितव्यमिति ॥ किं कारणम् ? ।  
धात्वर्थेयं क्यजिबधीयते । स च धात्वर्थः केनचि-  
देव शब्देन निर्देष्टव्य इति ।

( प्रदीपः ) स च धात्वर्थ इति । इच्छायाः प्रत्यया-  
र्थत्वं दर्शयितुं वाक्यमुपादेयम् । तत्र वाक्ये कर्तृप्रत्ययः प्रयु-  
ज्यतां कर्मप्रत्ययो वा । प्रत्यये तूपपन्नेऽकर्मकत्वात्कर्मप्रत्ययो न  
भवति ॥

( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

इह भवन्तस्तावदाहुः—न भवितव्यमिति । किं का-

रणम् ? । समानार्थेन वाक्येन भवितव्यं प्रत्ययान्तेन  
च । यश्चेद्वार्थो वाक्येन गम्यते—इष्टः पुत्रः इष्यते  
पुत्र इति । नासौ जानुचिप्रत्ययान्तेन गम्यते ॥

( प्रदीपः ) नासौ जानुचिदिति । प्रत्ययान्तस्या-  
कर्मकत्वात्कर्मणि प्रत्ययोत्पत्त्यसंभवादित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये इह भवन्त इति । सर्वत्र वृत्तिवाक्ययोः  
समानार्थत्वमेव । चित्रगुरित्यादि विग्रहेऽपि विशेष्यविशेषणभाव-  
व्यत्यासात्तत्त्वमिति तदाशयः ॥

( १७३५ आपत्तिनिवारणवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ क्यचिमान्ताव्ययप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्यचि मान्ताव्ययानां प्रतिषेधो  
वक्तव्यः । इह मा भूत्—इदमिच्छति । किमिच्छति ।  
उच्चैरिच्छति । नीचैरिच्छतीति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये मान्ताव्ययानामिति । मान्तत्वं न  
सुबन्तविशेषणम् पुत्रीयतीत्यादेरसङ्गत्यापत्तेः । किं तु मान्तप्रकृति-  
केत्यर्थः । तेन कैमिच्छतीत्यादावपि नेति बोध्यम् ॥

( परिगणनेनापत्तिवारणवार्तिकम् )

॥ \* ॥ गोसमानाक्षरनान्तात् ॥ \* ॥

“इत्येके वक्तव्यमित्याहुः । [गो-] गामिच्छति  
गव्यति । समानाक्षर—घटीयति दधीयति मधूयति  
कुर्वीयति । नान्तात्—राजीयति तक्षीयति ॥ सुप  
आत्मनः ॥ ८ ॥

( प्रदीपः ) गोसमानाक्षरेति । अकारौदयो दश स-  
मानाः । तत्र लृवर्णान्तस्य प्रातिपदिकस्यासंभवात्कारान्तस्य  
च सप्तानां ग्रहणम् । आस्मिस्तु न्यासेऽन्यासिः । वाच्यतीत्या-  
यसिद्धिप्रसङ्गात् । भाष्यकारेण तु मतभेदप्रदर्शनायोप-  
न्यासि ॥ ८ ॥

( उद्घोतः ) तत्र लृवर्णेति । यद्यप्यनुकरणे लृकारान्तं  
लृङ्कारान्तं ऋकारान्तं च संभवति, तथापि तत्र क्यचः प्रयोगद-  
र्शनाभाव इत्यर्थः । ऋकारान्तस्य चेति । असंभवादित्यप-  
कर्षः ॥ वस्तुत स्तादृशानुकरणस्यैव लोके प्रयुज्यमानस्याभाव इति  
तात्पर्यम् ॥ मतभेदेति । तथा चेदं मतमरुन्विष्टमिति भावः ॥  
अन्ये तु अजन्तेभ्यो गोसमानाक्षरेभ्य एव अनुनासिकान्तेभ्यस्तु  
नान्तेभ्य एवेत्यर्थः । अत एव रैशब्दात्क्यच् छान्दस इत्युक्तं  
स्थानेऽन्तरतमसूत्रे भाष्ये ॥ वाच्यतीत्यादौ च न दोषः । वाच्यति  
सुच्यतीति च, नः क्ये इति सूत्रे भाष्ये प्रयुक्तमित्याहुः ॥ ८ ॥

१ पुत्रादिविषयकेच्छारूपक्रियायाः क्यजन्तवाच्यायाः फलस्य इषि क्रिया-  
कर्मणः पुत्रादेरित्यर्थः । ( र. ना. )

२ 'किमः कः' इत्यनेन कादेशे मान्तत्वविघातेऽपि प्रत्ययप्रकृतौ मान्तत्वेन  
न क्यजापत्तिरिति भावः ॥

३ अ आ इ ई उ ऊ ऋ लृ इति दशेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ लृकारान्तस्य लृङ्कारान्तस्य चेत्यर्थः । एवं हि वक्ष्यमाणसतत्वोपपत्तिः ।  
( र. ना. )

( ३८७ काम्यच्च प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. २ सूत्रम् )

६२६ काम्यच्च ॥ ३।१।९ ॥

( काम्यचश्चित्करणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थश्चकारः ? ।

( परिहारभाष्यम् )

स्वरार्थः । चितोन्त उदात्तो भवतीत्यन्तोदात्तत्वं यथा स्यात् ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । धातुस्वरेणाप्येतत्सिद्धम् ॥

( परिहारान्तरशङ्काभाष्यम् )

ककारस्य तर्हीत्संज्ञापरित्राणार्थ आदितश्चकारः कर्तव्यः ।

( प्रदीपः ) काम्यच्च ॥ ९ ॥ आदित इति । अन्तेऽपि कृत आदिकृतफलसंपादनादादितः संपद्यते । तथा हि । यदादौ क्रियते तदा ककारस्यानादित्वादित्संज्ञा न भवति । एवमन्तेऽपि कृतश्चित्कार्येऽन्तोदात्तत्वे सिद्धे नियमार्थः संपद्यते—चिदेवायं व्यपदेष्टव्यः,—न त्वनुबन्धान्तरेण किदिति ।

( उद्ध्योतः ) काम्यच्च ॥ ८ ॥ ननु च स्यादितः पाठे ध्रुवभेदः स्यादत आह—अन्तेऽपीति । नियमार्थतयादिपाठफलं संपन्नमित्यर्थः ॥

अत उत्तरं पठति ।

( १७३६ चकारप्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ काम्यचश्चित्करणानर्थक्यं

कस्येदृथाभावात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) काम्यचश्चित्करणमनर्थकम् ककारस्येत्संज्ञा कस्यान्न भवति ? । इदृथाभावात् । इत्कार्याभावादत्रेत्संज्ञा न भविष्यति ॥

( हेत्वसिद्धिप्रदर्शकभाष्यम् )

ननु च लोप एवेत्कार्यम् ॥

( हेतूपपत्तिभाष्यम् )

अकार्यं लोपः । इह हि शब्दस्य कार्यार्थो वा स्यादुपदेशः श्रवणार्थो वा । कार्यं चेह नास्ति । असति कार्ये यदि श्रवणमपि न स्यात् । उपदेशोऽनर्थकः स्यात् ।

१ 'सुप आत्मनः क्यञ्च काम्यचेति संहिता पाठेपि 'अनचि च' इति चकारस्य द्वित्वेन द्विचकार निर्देशं ज्ञात्वा योगं कद्वारादिभेदं जानाति प्रयोजनवदिति योगादि समध्यापयिष्यति आसिद्धान्तीति तु दाधिमथानां सिद्धान्तः ॥

२ अस्याः परिहारान्तरशङ्काया उत्तरं पठतीत्यर्थः । आद्यादिवात्सार्वभौमिककलासिः । ( र. ना. )

३ उपपद काम्यतीत्येतदित्यर्थः । ( र. ना. )

( कित्करणप्रयोजनभाष्यम् )

इदमस्ति कार्यम्—अग्निचित्काम्यति । कितीति गुणप्रतिषेधो यथा स्यात् ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । सार्वधातुकार्धधातुकयो-रङ्गस्य गुण उच्यते । धातोश्च विहितः प्रत्ययः शेष आर्धधातुकसंज्ञां लभते । न चार्थं धातोर्विधीयते ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । उपपदकाम्यति । कितीति संप्रसारणं यथा स्यात् ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । यजादिभिरत्र कितं विशेषयिष्यामः । यजादीनां यः किदिति ॥ कश्च यजादीनां कित् ? । यजादिभ्यो यो विहितः ॥

( प्रदीपः ) यजादिभ्यो यो विहित इति । अयं तु सुबन्ताद्विहितः ॥

( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

अथापि कथं चिदित्कार्यं स्यात् । एवमपि न दोषः । क्रियते न्यास एव द्विचकारो निर्देशः "सुप आत्मनः क्यञ्च काम्यचेति"ति ॥ अथ वा छान्दसमेतत् । दृष्टानुविधिः छन्दसि भवति । न चात्र संप्रसारणं दृश्यते ॥ काम्यच्च ॥ ९ ॥

( प्रदीपः ) अथापीति । यदा यजादिभिः किञ्च विशेष्यते कार्यत्वेनैव यजादयो निर्दिश्यन्त इति भावः ॥ अथ चेति । विजुपे छन्दसीति विचद्विचन्दसि विधानात् ॥ इह वाक्याम्यतीति संप्रसारणं कित्कार्यमस्ति तस्मात् पूर्वं परिहार आश्रयणीयः अथवा धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम् ॥ ९ ॥

( उद्ध्योतः ) वाक्याम्यतीति । किञ्चचिप्रच्छीति वार्तिकेन किञ्चदीर्घासंप्रसारणानि ॥ अस्य प्रयोगस्य सत्त्वे दृढं मानं विन्यम् ॥ पूर्वपरिहार इति । यजादिभ्यो विहित इतीत्यर्थः । वाच् अमित्यस्यायां काम्यच्च प्रवृत्तेर्नायं वच्यादिभ्यो विहितः ॥ काम्यचश्चित्करणानर्थक्यमिति वार्तिकविरोधेन पुत्रकौम्यिष्यतीत्यादौ सति शिष्टस्य स्वरं बाधित्वा चित्स्वर एव यथा स्यादिति चित्त्वमिति हरदत्तोक्तमपास्तम् ॥ ९ ॥

४ काशीमुद्रितपदमञ्जरीशोधकदामोदरशास्त्रिभिस्तु 'क्यञ्च काम्यच्च' इति निर्देशं दर्शयद्भिः स्वस्मिन् सत्यमेव भारद्वाजत्वं दर्शितम् ॥ पूर्वपक्षिसिद्धान्तनोर्ज्ञानभेदे कारणाभावात् ॥

५ भारद्वाजदामोदरशास्त्रिशोधितपदमञ्जरीपुस्तकेपि मकारो पकाररहित एवोपलभ्यते । परंतु 'यस्य हलः' इत्यस्याङ्गसंज्ञानिमित्तस्य यकारस्य लोप इति भाष्यसंमतेऽर्थे यलोपस्याप्राप्त्या यकारसहित एव मकारः साधुरिति दाधिमथाः ॥

६ 'सति शिष्टमपि' इति पदमञ्जर्यामुपलभ्यते ॥

( ३८८ क्यच्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ३ सूत्रम् )

६२७ उपमानादाचारे ॥ ३।१।१० ॥

( १७३७ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अधिकरणाच्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् । इहापि यथा स्यात्—कुटीयति प्रासादे । प्रासादीयति कुट्याम् ॥ उपमानादाचारे ॥ १० ॥

( प्रदीपः ) उपमाना ॥ १० ॥ कुट्यामिति । उप-मेये सप्तमीश्रवणादुपमानमपि सप्तम्यन्तमिति कर्मविवक्षाया-मेतत्प्रयोगासंभवात् वार्तिकारम्भः ॥ १० ॥

( ३८९ क्यच्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ११ सूत्रम् )

६२८ कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ ३।१।११ ॥

( सलोपस्यान्वाचयशिष्टत्वाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

सलोपसन्नियोगेनायं क्यङ् विधीयते तेन यत्रैव सलोपस्तत्रैव क्यङ् स्यात्—पयायते । इह न स्यात्—अपि काकः श्येनायते ॥

( प्रदीपः ) कर्तुः क्यङ् ॥ ११ ॥ सलोपविधौ कर्तु-रिति स्थानवष्टी । सकारेण कर्तुर्विशेषणात्तदन्तविधिसङ्गावाद् ईसायत इत्यादौ सलोपाभावः ॥ सलोपसन्नियोगेनेति । एकवाक्यतां संनियोगार्थं च चशब्दं मला चोद्यते ॥

( उद्घोतः ) कर्तुः क्यङ् ॥ ११ ॥ एकवाक्यतोपपादकं संनियोगार्थं चेत्यादि । एतावतैकवाक्यतेति व्यवहारः ॥ एतेन विधेयानेकत्वात्कथमेकवाक्यतेत्यपास्तम् ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

नैतदस्ति । प्रधानशिष्टः क्यङ्, अन्वाचयशिष्टः सलोपः—यत्र च सकारं पश्यसीति । तद्यथा—कश्चिदुक्तो 'प्राप्ते भैक्षं चर देवदत्तं चानय' इति । स प्राप्ते भैक्षं चरति, यदि च देवदत्तं पश्यति तमप्यानयति ॥

( प्रदीपः ) वाक्यमेदमन्वाचये च चशब्दमाश्रित्य परिहारः ॥

( १७३८ न्यूनतावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स लोपो वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सलोपो वेति वक्तव्यम् । पयायते पयस्यते ॥

( १७३९ न्यूनतावार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ ओजसोप्सरसोर्नित्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ओजसोप्सरसो नित्यं सलोपो वक्तव्यः । ओजायमानं योऽहिं जघान । अप्सरायते ॥

( मतान्तरभाष्यम् )

अपर आह—सलोपोऽप्सरस एव । ओजस्यत इत्येव भवितव्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथम्—'ओजायमानं योऽहिं जघान' इति ? ।

( समाधानभाष्यम् )

छान्दसत्वात्सिद्धम् ॥

( प्रदीपः ) अपर आह—मत्तमेदप्रदर्शनाद्योप-न्यासः न त्वयं स्थितः पक्ष इत्याहुः ॥

( उद्घोतः ) इत्याहुरिति । अत एव उपक्रमभाष्ये पयायते इत्यत्रैव क्यङ् स्यात् सलोपसंनियोगशिष्टत्वादिति शङ्कायां तत्प्रयोगा-भावरूपं समाधानमनभिधायान्यदेव समाधानं कृतम् ॥

( १७४० न्यूनतावार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः  
क्लिच्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आचारेऽवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्लिच्वा वक्तव्यः । अवगल्भते । अवगल्भायते । विक्लीवते । विक्लीवायते । विहोडते । विहोडायते । किं प्रयोजनम् ? । क्रियावचनता यथा गम्यते ॥

( प्रदीपः ) क्रियावचनतेति । आचारलक्षणक्रियाव-चनतेत्यर्थो विवक्षितो, धातुपाठे हि पाठात्तेषां क्रियावचनता सिद्धेव ॥

( उद्घोतः ) क्रियावचनत्वस्य धातुगणमध्ये तत्तदर्थविशिष्टानां पठितत्वादेव सिद्धत्वादाह—आचारेति ॥

( क्लिबिधिवैयर्थ्यभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । धातव एवाववल्भादयः ॥

( शङ्काभाष्यम् )

न चैव ह्यर्था आदिश्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) न चैव हीति । अनेकार्थत्वाद्धातूनामाचार-क्रियावृत्तित्वस्यासिद्धत्वादित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये न चैव ह्यर्था इति । अस्य 'धातुपाठे' इति शेषः । अर्था इत्यस्य सर्वे अर्था इत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

क्रियावचनता च गम्यते ।

( उद्घोतः ) क्रियावचनतेति । तादृशक्रियेत्यर्थः । गम्यत इत्यस्य लोकेत इति शेषः । अनिर्दिष्टार्थधातूनामेवानेकार्थत्वमित्ये-तन्नाप्यार्थमन्ये ॥

( क्लिबिधिविप्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । अवगल्भा विक्लीवा विहो-डा । "अप्रत्ययात्" इत्यकारप्रत्ययो यथा स्यात् ॥



( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

मा भूदेवम् । “गुरोश्च हलः” इत्येवं भविष्यति ॥

( प्रयोजनान्तरभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । अवगल्भाचक्रे विक्रीबांचक्रे । विहोडांचक्रे । “कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि” इत्याम् प्रत्ययो यथा स्यात् ॥

अपर आह—

( १७४१ क्विब्विधिमतान्तरवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्य आचारे क्त्वा वक्तव्यः । अश्वति गर्दभतीत्येवमर्थम् ॥ \* ॥

( प्रदीपः ) अश्वतीति । प्रातिपदिकादेवायं क्विब्विधीयते न सुबन्तात् । तेन पदत्वाभावादतोऽगुण इति पररूपत्वं भवति । एतच्च सर्वेभ्य इति वक्तव्ये सर्वप्रातिपदिकेभ्य इति वचनाल्लभ्यते ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

न तर्हि इदानीं गल्भाद्यनुक्रमणं कर्तव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

कर्तव्यं च । किं प्रयोजनम् ? । आत्मनेपदार्थानुबन्धानासङ्क्ष्यामीति । गल्भ क्लीब होड ॥ कर्तुः क्यङ् ॥ ११ ॥

( प्रदीपः ) आत्मनेपदार्थानिति । वाक्येऽकारस्यानुदात्तत्वानुनासिकत्वे प्रतिज्ञायते इति भावः ॥ ११ ॥

( उद्धोतः ) वाक्ये इति । वार्तिके इत्यर्थः ॥ अकारस्येति ॥ ननु किप इकारस्यैवानुदात्तत्वमनुनासिकत्वं च प्रतिज्ञायतां किमनेनानुबन्धत्रयकरणेनेति चेन्न । अश्वतीत्यादावप्यात्मनेपदपक्षेः । अतिरिक्तकिपदकरणे तु गौरवमिति भावः ॥ भाष्ये आत्मनेपदार्थानित्यादेरामविषये किञ्चनियोगेनेति शेषः ॥ आसङ्क्ष्यामीति । तदुपविशिष्टमवर्णान्तरं प्रक्षेपेणोपदेक्ष्यामीत्यर्थः । अत एवेत्संज्ञा । अन्यथा क्लीबादीनां पचाद्यजन्तानां किबर्थमनुवादेनोपदेशाभावात्सा न स्यात् । प्रक्षेपे तु तस्य मानान्तरेण सिध्यभावादुपदेश एव । तद्विशिष्टस्य क्लीबादेरप्युपदेश एवेति अनुबन्धानामेकान्तत्वे करणसाधने उपदेशशब्दे च न दोषः । अतएव प्रत्यायान्तादामो मित्त्वे न विशेष इति ह्रस्वनद्याप इति सूत्रस्य भाष्यं संगच्छते । अन्यथाऽवगल्भादिह्रस्वन्तप्रकृतिके विशेषः स्यात् । अन्यह्रस्वन्तेभ्यस्त्वाचारे किब्वेति तदाशयः ॥ ११ ॥

( ३९० क्यङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ० ५ सूत्रम् )

६२९ भृशादिभ्यो भुव्यच्चेर्लोपश्च

हलः ॥ ३ । १ । १२ ॥

( ह्रस्वोपस्यान्वाचयशिष्टत्वाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

ह्रस्वो लोपसन्नियोगेनायं क्यङ् विधीयते । तेन यत्रैव ह्रस्वो लोपः, तत्रैव प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) भृशादिभ्यो ॥ १२ ॥ हल इति । ह्रस्वो भृशादयो विशेष्यन्ते तेन ह्रस्वन्तानामेव क्यङ्लोपाभ्यां भवितव्यमित्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) भृशादिभ्यो ॥ १२ ॥ ननु भृशादीनां ह्रस्वघटितानामेव सत्त्वात्तत्रैव प्राप्नोतीत्यस्य व्यावर्त्याभाव इत्यत आह—हलेति । आवृत्त्या विभक्तिविपरिणामेनेति भावः । अन्यथा हि सर्वत्र ह्रस्वो लोपः स्यादित्यापादयेदिति आशयः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

नैव दोषः । प्रधानशिष्टः क्यङ्, अन्वाचयशिष्टो ह्रस्वो लोपः यत्र च ह्रस्वं पश्यसीति ॥

( प्रदीपः ) प्रधानशिष्ट इति । वाक्यभेदेन सर्वेभ्यो भृशादिभ्यः क्यङ् विधाय ह्रस्वन्तानां लोपो विधीयत इत्यर्थः । अन्यर्थोऽनर्थकः पाठः स्याद् ह्रस्वन्तानाम् ॥

( १७४२ न्यूनतावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ भृशादिष्वभूततद्भावग्रहणम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) भृशादिष्वभूततद्भावग्रहणं कर्तव्यम् । इह मा भूत्—क दिवा भृशा भवन्तीति ॥

( प्रदीपः ) क दिवा भृशा भवन्तीति । ये रात्रौ भृशालोका नक्षत्रादयस्ते दिवसे क प्रदेशे भवन्तीत्यर्थः । अत्राभूततद्भावभावः ॥

( उद्धोतः ) भृशालोका इति । अधिकालोका इत्यर्थः ॥

( १७४३ अचिवग्रहणवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ चिवप्रतिषेधानर्थक्यं च भवत्यर्थे

क्यङ्वचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चिवप्रतिषेधश्चानर्थकः । किं कारणम् । भवत्यर्थे क्यङ्वचनात् । भवत्यर्थे क्यङ्विधीयते ॥

( १७४४ वैयर्थ्यसाधकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ भवति योगे चिवविधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भवतिना योगे चिवविधीयते । तत्र चिवनोक्तत्वात्तस्यार्थस्य क्यङ् न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) चिवनोक्तत्वादिति । चिवसहचरितेन भवतिनेत्यर्थः ॥

१ 'प्रतिज्ञाते' ॥

२ अवर्णान्तरस्य प्रक्षेपेणोपदेशादेवेत्यर्थः । ( र. ना. )

३ अस्य, ह्रस्वग्रहणस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

४ ह्रस्वन्तेभ्यः क्यङो विधानाभावे इत्यर्थः । ( र. ना. )

५ 'भृशा आलोका' इति पाठोऽपि कुत्रचित् ॥

( उद्घोतः ) भवत्यर्थे च्चेरविधानेन चिनोक्तत्वादित्यसंगत-  
मित्यत आह—चिवसहचरितेनेति ॥

( डाजन्तात्क्यषोऽनुपपत्तिभाष्यम् )

डाजन्तादपि तर्हि न प्राप्नोति—पटपटायते ।  
डाजपि हि भवतिना योगे विधीयते । भविष्यत्यर्थे  
क्यप् विधीयते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये डाजन्तादपीति । क्यषिति शेषः ॥

( १७४५ डाजन्तात्क्यषुपपत्तिवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ डाचि वचनप्रामाण्यात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) डाचि वचनप्रामाण्याद्भवति ।  
किं वचनप्रामाण्यम् ? । “लोहितादिडाज्भ्यः  
क्यप्” इति ।

( प्रदीपः ) डाचि वचनप्रामाण्यादिति । अप्रयुक्त  
एव भवतौ भवत्यर्थविवक्षायां वचनप्रामाण्याद् डाचं विधाय  
भवत्यर्थे क्यष्विधीयत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) वचनप्रामाण्यस्य क्यष्वपवृत्तौ हेतुत्वे क्यषन्त-  
समभिव्याहारे भवतेरपि प्रयोगः स्यादत आह—अप्रयुक्तेति ।  
भवत्यर्थेति । कृभ्वस्तियोग इत्यस्य डाज्विभावानुवृत्तस्य तदर्थयोग  
इत्यर्थः । चिवविधौ तु शब्दयोग इत्येवार्थ इति भावः । कृभ्वस्ति-  
योग इव क्यष्योगेऽपि डाजिति ज्ञाप्यते इति वृत्तिग्रन्थस्यापीदमेव  
तात्पर्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह किञ्चिदक्रियमाणं चोद्यते । किञ्चिच्च क्रियं-  
माणं प्रत्याख्यायते । सूत्रभेदः कृतो भवति ।

( उद्घोतः ) भाष्येऽक्रियमाणमिति । अभूततद्भावग्रहण-  
मित्यर्थः ॥

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ॥

( प्रदीपः ) यथान्यासमिति । अच्चेरिति पर्युदासा-  
श्रयेण दोषद्वयस्यापि परिहार इत्यर्थः ॥

( आक्षेपस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—इह कस्मान्न भवति क दिवा भृशा  
भवन्तीति ।

( परिहारभाष्यम् )

“नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थ-  
गतिः” । नञ्युक्तमिवयुक्तं वा यत् किञ्चिदिह दृश्यते  
ततः अन्यस्मिन्तत्सदृशे कार्ये विज्ञायते । तथा ह्यर्थो  
गम्यते । अब्राह्मणमानयेत्युक्ते ब्राह्मणसदृश एवा-  
नीयते नासौ लोष्टमानीय कृती भवति । एवमि-  
हाप्यच्चेरिति प्रतिषेधादन्यस्मिन्नन्यन्ते चिवसदृशे

कार्ये विज्ञायते । किं चान्यदतोऽन्यन्तं चिवसदृ-  
शम् । अभूततद्भावः ॥

( उद्घोतः ) नञिव युक्तमिति न्याये इव युक्तमिति दृष्टा-  
न्तार्थम् । अन्यस्मिन्तत्सदृशे इत्यनेनाभेदेऽपि सादृश्यमस्तीति सूच-  
यति ॥

( विप्रतिपत्तिभाष्यम् )

इह काश्चित्प्रकृतयः सोपसर्गाः पठ्यन्ते—अभि-  
मनस् सुमनस् उन्मनस् दुर्मनस् । तत्र विचार्यते—  
भृशादिषूपसर्गः प्रत्ययार्थविशेषणं वा स्यात् अभि-  
भवतौ सुभवतौ उद्भवतौ दुर्भवताविति । प्रकृत्यर्थ-  
विशेषणं वा—अभिमनस्शब्दात् सुमनस्शब्दात्  
उन्मनस्शब्दात् दुर्मनस्शब्दाद्वेति ।

( प्रदीपः ) इह काश्चिदिति । यदा मनःशब्देनास-  
मस्ता एव सूदुर्भय इति पक्षस्तदा प्रत्ययार्थविशेषणं ते  
भवन्ति । मनःशब्दश्च वृत्तिविषये तद्वति वर्तते । मनस्वी सुष्ठु,  
भवति । दुर्भवति दुष्ठु भवति । आभिमुख्येन भवतीत्यत्रार्थे  
क्यञ्चिविधिः । अन्ये त्वाहुः प्राप्त्यर्थस्यात्र वृत्तिविषये भवतेर्ग्रह-  
णम् तेन मनः कर्म शोभनं प्राप्नोतीत्यादिरर्थः क्यङन्तस्य भवति ॥  
यदा तु मनःशब्देन स्वादीनां बहुव्रीहिरिति पक्षः पदा प्रकृत्य-  
र्थविशेषणं ते भवन्तीति विचारः क्रियते ।

( उद्घोतः ) प्राक्प्रवृत्तेः पाठेन प्रत्ययार्थविशेषणत्वपक्षोऽसं-  
भावितोऽत आह—यदेति । समस्तासमस्तत्वाभ्यां पक्षद्वयसंभव  
इति भावः । असुमनाः सुमना भवतीत्यर्थस्य क्यङन्तात्प्रतीतिः समास  
एव आवश्यको अत आह—मनःशब्दश्चेति । तदर्थं मनुवादीना-  
मेव साधुत्वात् लक्षणयापि प्रकृतिमात्रस्यासाधुत्वं स्यादत आह—  
अन्ये त्विति । असुमनाः सुमना भवतीत्यर्थस्तु पक्षद्वयेऽप्यार्थ  
इति भावः ॥ मनः कर्मेति । मनः कर्तुं शोभनं कर्म प्राप्नोतीत्यन्वयः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

युक्तं पुनरिदं विचारयितुम् ॥

( आक्षेपोपपादकभाष्यम् )

नन्वेनेनासंदिग्धेन प्रकृत्यर्थविशेषणेन भवित-  
व्यम् । यावता प्राक् प्रकृतेः पठ्यन्ते, यदि प्रत्यया-  
र्थविशेषणं स्युः प्राग्भवतेः पठ्येरन् ॥

( प्रदीपः ) प्राक् प्रकृतेरिति । प्रकृतेरेवावयवाः पूर्व-  
भूताः पठ्यन्त इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) प्रकृतेः प्राक्पाठे एव असमस्तत्वसमस्तत्वाभ्यां  
पक्षद्वयोपपत्तेरुक्तत्वेनाह—प्रकृतेरेवेति । अवयवसंबन्धे षष्ठी ।  
प्राक्त्वं चावयवान्तरापेक्षयेति भावः ॥ बहुव्रीहिविवक्षयैवमुक्त-  
मित्याशयः ॥

१ अच्चेरित्येतदित्यर्थः । ( र. ना. )

२ ‘तत्र’ ॥ एकस्मिन्पुस्तके तु नैवास्ति ॥

३ ‘विज्ञायते’ ॥

४ ‘नन्वेतेन’ ॥

५ प्राक् प्रकृतेरित्यत्रेति भावः । ( र. ना. )

६ प्रकृत्या सहोपसर्गाणामिति शेषः । ( र. ना. )

( विचारौचित्यसाधकभाष्यम् )

नेमे शक्याः प्रारम्भतेः पठितुम् । एवं हि विशिष्टे प्रत्ययार्थे भृशादिर्मात्रादुत्पत्तिः प्रसज्येत । तस्मा-  
न्नैवं शक्यं वक्तुम् । न चेदेवम् जायते विचारणा ॥

( उद्घोतः ) न चेदेवं जायते विचारणेऽस्य समस्तत्वा-  
समस्तत्वाभ्यामिति शेषः ॥

( विशेषानुयोगभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः ? ।

( १७४६ प्रत्ययार्थविशेषणपक्षदूषणवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ भृशादिषूपसर्गः प्रत्ययार्थविशे-  
षणमिति चेत्स्वरे दोषः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भृशादिषूपसर्गः प्रत्ययार्थविशेषण-  
मिति चेत्स्वरे दोषो भवति । अभिमनायते—“तिङ्-  
उतिङ्” इति निघातः प्रसज्येत ॥

( प्रदीपः ) निघात इति । मनःशब्दात् क्यङि कृते  
मनायत इत्यस्य तिङन्तस्य पदस्यातिङन्तात् स्वादेः पदादुत्तर-  
त्वात् ॥ प्रकृत्यर्थविशेषणत्वे तु सुमनायत इत्यादि तिङन्तं  
संपद्यत इति तद्व्यतिरिक्तपदान्तराभावाच्चिघाताभावः ॥

( प्रकृत्यर्थविशेषणपक्षाश्रयणभाष्यम् )

अस्तु तर्हि प्रकृत्यर्थविशेषणम् ।

( १७४७ दूषणवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ सोपसर्गादिति चेदटि दोषः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सोपसर्गादिति चेदटि दोषो भवति ।  
स्वमनायतेति ॥

( वार्तिकान्तरावतरणभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते [ “अटि” इति ] ।

( वार्तिकम् )

॥ \* ॥ अटल्यपद्विर्वचनेषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अटल्यपद्विर्वचनेष्विति वक्तव्यम् ।  
अटि उदाहृतम् । व्यपि—सुमनाय । द्विर्वचने—  
अभिमिमनायिते ।

( प्रदीपः ) उपसर्गस्य तु धात्वन्तर्भावात्ततः पूर्वमडाटौ  
प्राप्नुतः । क्यङन्ते च तस्यानुप्रवेशात्तद्व्यतिरिक्तपदाभावात्स-  
मासाभावाल्लयपोऽप्रसङ्गः । क्यङन्ताच्च सनि कृते सोपसर्गस्य  
द्विर्वचनप्रसङ्गः ।

१ केवलेभ्यो भृशादिभ्य इत्यर्थः । सोपसर्गोभ्यस्तु न स्यादिति भावः ।

२ कोष्ठकान्तर्गतभाष्यं यद्यपि प्राचीनपुस्तकेषु नोपलभ्यते तथापि भाष्येऽन्यत्र  
‘कथाय क्रमणे’ इत्यादि सूत्रभाष्येषु बहुत्र तथातुवाददर्शनादत्र प्राक्तनलेखक-  
प्रमादतद्भुटितं भवेदिति मत्वा सार्वभौमिकशैलीसंवादायासाभिर्विधितम् ॥ अमूलक-  
भाष्यपाठकल्पनं दाक्षिण्यमनां महत्साहसमिति तु वयम् । ( र. ना. )

३ अड ग्रहणम् आटोऽत्युपलक्षणम् । अत एव प्रदीपे ‘अडाटौ प्राप्नुतः’

( उद्घोतः ) समासाभावादिति । कत्वान्तेन समासाभावा-  
दित्यर्थः । अनन्पूर्वं समासे विद्यमानस्य क्तो व्यतिरिक्तं सूत्रार्थ इति  
भावः ॥ तत्राद्विर्वचनयोरिष्टदेशेऽप्राप्तिः । व्यपस्त्वसिद्धिरेवेति भावः ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । अवश्यं संग्रामयतेः सोपसर्गादुत्प-  
त्तिर्वक्तव्या=असंग्रामयत शूर इत्येवमर्थम् । तन्नि-  
यमार्थं भविष्यति संग्रामयतेरेव सोपसर्गाद्व्या-  
प्तात्सोपसर्गादिति ।

( प्रदीपः ) अवश्यमिति । ग्रामशब्द एव युद्धे वर्तते  
सामान्यतोद्घातानुमानात् क्रियाविशेषस्य द्योतकः संशब्दः ।  
तथा च वा पदान्तस्थेति परसवर्णविकल्पो भवति । उपस-  
र्गसदृशानर्थकशब्दान्तरावयवे तु संग्रामशब्देभ्युपगम्यमाने  
परसवर्णविकल्पो न स्यात् । तत्र ग्राम युद्ध इत्येव वक्तव्यं  
संशब्दस्तु द्योतकः प्रयोगदर्शनाल्लभ्यते । यथा इक् स्वरणे  
इङ्ध्ययने इत्यनयोः अधिः । नियमार्थस्तु संग्रामेति पाठः ।  
नियमार्थत्वे च प्रत्ययोत्पत्तावुपसर्गः पृथक् क्रियते । अतो  
धातौ तेषामनन्तर्भावाद् यथेष्टमडादिसिद्धिः । प्रत्ययार्थविशे-  
षणपक्षे तु विरोधाद्भूततद्भावविषयत्वं नाश्रीयते ॥ असंग्रा-  
मयतेति । संग्रामयतिरनुदात्तोद् बोद्धव्यः ॥ १२ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—अवश्यं संग्रामयतेरिति । संग्रामयतेः  
सोपसर्गात् यथा उत्पत्तिर्भवति तिङां, तथा णिजुत्पत्तिर्वक्तव्येत्यर्थः ।  
अवश्यमित्यनेन चास्य फलान्तरमपि सूचितम्, तच्च समः पूर्वमद  
अन्यथा तत्करोतीत्यनेन सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव, तद्वचनयङु-  
दाहरति—असंग्रामयतेति । यद्यपि संग्रामशब्दे संशब्दो नोपसर्ग-  
स्तथापि सोपसर्गादित्यस्य सोपसर्गसमानाकारादित्यर्थो बोध्यः ॥  
ननु प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ इत्येव णिच् सिद्ध इति चेन्न । प्रजयसी-  
त्यादावुपसर्गरहितस्यैव धातुताया दृष्टत्वेनात्रापि तद्व्यतिरिक्तजन्तस्यैव  
धातुत्वबुद्धिवारणाय तत्सत्त्वात् । प्रकृते तु विशिष्टस्यैव प्रकृतित्वेनो-  
पदेशात्स्वादीनां वाचकत्वाच्च विशिष्टस्यैव धातुत्वात्पत्तिरित्याशयात् ।  
तदाह—ग्रामशब्द एवेति । अनेनेतरद्योतकसामर्थ्यं बोधितम् ॥  
सामान्यत इति । क्रियावाचकयुक्तानां क्रियाविशेषद्योतकत्वस्य  
दृष्टत्वेनात्रापि युद्धक्रियाद्योतकत्वमनुमीयत इत्यर्थः ॥ उपसर्गसद-  
ृशानर्थकेति । अनर्थकत्वमात्रं निषिध्यते तत्सदृशो निपात इत्यर्थः ।  
इदं चिन्त्यम्, उपसर्गसमानाकारत्वेन निपातत्वादनर्थकस्यापि निपा-  
तस्य प्रातिपदिकत्वेन सुबन्तत्वात् ॥ तत्रेति । युद्धे वर्तमानो यो  
ग्रामशब्दस्तस्मादिष्टयुक्ते सामर्थ्येन संपूर्वाद्भवित्यति णिच्, तदि-

इत्युक्तम् पदमज्जर्यां च ‘अडाह ल्यबुद्विर्वचनेषु’ इत्युक्ता आह—अभ्यमनायत  
उदमनायत इत्युदाहृतम् ॥

४ अवयवशब्देन शब्दान्तरान्तस्य बहुव्रीहिः । ( र. ना. )

५ गणे पाठं विनाऽपीति शेषः । ( र. ना. )

६ अन्यत्रेत्यादिः । ( र. ना. )

७ सोपसर्गात्संग्रामयतेत्यत्र णिजुत्पत्तिर्वक्तव्या यथा तत एव तिङ्मुत्पत्ति-  
र्भवतीति योजना । ( र. ना. )

शिष्टादेव च तिङ् भविष्यतीति भावः ॥ नियमार्थं इति । संग्राम-  
यतेरेव सोपसर्गाद्यथा तिङ्पत्तिस्था प्रत्ययोत्पत्तिः । अन्यस्मान्  
सोपसर्गाद् यथा तिङ्पत्तिः न तथा प्रत्ययोत्पत्तिरिति नियमार्थः ॥  
तत्फलितमाह—प्रत्ययोत्पत्तिविति । प्रत्ययोत्पत्तिकाले पृथक्करणेऽपि  
सामर्थ्यात्तद्विषयके लक्षणे सुबन्तादित्यंशे यस्माद्विहितस्तदादीलं-  
शाप्रवृत्त्या प्रत्ययोत्पत्तौ न दोषः इति भावः ॥ पृथक्करणं च  
जातसमासाभावः । अत एव सुमनाय्येत्यादौ पुनः कत्वान्तेन समासे  
व्यप्सिद्धिरिति हेयम् ॥ ननु प्रत्ययार्थविशेषणपक्षोऽसंगतः तत्र  
मनस्वी सुष्ठु भवतीत्यर्थेऽभूततद्भावाभावादत आह—प्रत्ययार्थेति ।  
एवं चैतद्विरोधादेव प्रत्ययार्थविशेषणपक्षोऽसंगत इति भावः । सङ्ग्राम-  
यतिरनुदात्तेति । 'सङ्ग्रामयुद्धे' इत्यत्राकारस्यानुदात्तत्वानुनासि-  
कत्वे प्रतिहेये, अवयवे च तस्या चारितार्थ्यात्समुदायविशेषकतेति  
भावः ॥ ननु अकारस्यानुदात्तत्वानुनासिकत्वप्रतिष्ठाने तत्सामर्थ्या-  
दुच्चारणकालाव्यवहितोत्तरकाले इत्वे लोपे उपस्थितमान्त्रग्रामशब्दस्य  
तदन्तस्य वा लोके युद्धे वर्तमानत्वाभावेन युद्धे योऽयं ग्रामशब्द  
इत्यनुवादासंभवेन संपूर्वस्यालभेन च 'संग्राम युद्धे वर्तते ततश्च  
णिच्' इत्यर्थे विशिष्टपाठस्यावश्यकत्वेन कथं नियमार्थत्वमिति  
चेन्न । द्वितीयमकारं प्रस्थित्य तस्यानुदात्तत्वानुनासिकत्वे प्रतिहेये  
इति तत्तात्पर्यात् ॥ अत्रानुदात्तत्वे मानं चिन्त्यम् । भाष्यप्रयोगस्य  
पाक्षिकात्मनेपदेनोपपत्तेः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि नियमः क्रियते । स्वरो न सिध्यति ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि भृशादिषु उपसर्गस्य पराङ्गवद्भावं  
वक्ष्यामि ।( उद्घोतः ) भाष्ये एवं तर्हि भृशादिषूपसर्गस्येति । भृशा-  
दिषु पठितस्योपसर्गस्येत्यर्थः । तेन भृशाद्यते इत्यादौ न निघातः ।  
देवदत्तः सुमनायत इत्यादौ च सोरपि तिङ्पत्तिङ् इति निघातः ॥ १२ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि पराङ्गवद्भाव उच्यते । अदृश्यवृद्धिर्वच-  
नानि न सिध्यन्ति ॥

( समाधानभाष्यम् )

स्वरविधाविति वक्ष्यामि ॥

( प्रत्ययार्थविशेषणपक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

एवं च कृत्वास्तु प्रत्ययार्थविशेषणमिति ॥

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तं \*भृशादिषूपसर्गः प्रत्ययार्थविशेषण-  
मिति चेत्स्वरे दोषः \*इति ॥

१ ग्रामशब्दे इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ मकारान्तग्रामशब्दान्तस्य

३ 'सुग्रामजिते' इत्यस्यानन्तरं 'भृशादिषूपसर्गः' इति वक्ष्यामि । इहापि तर्हि  
प्राप्नोति—अभिभृशाद्यते सुभृशाद्यते इति । यदि नेष्यते 'मनस्वुपसर्गः' इति वक्ष्या-  
मि ॥ इति पदमञ्जरी ॥

( परिहारस्मरणभाष्यम् )

स्वरे पराङ्गवद्भावेन परिहृतम् ॥

( प्रत्ययार्थविशेषणपक्षदूषणभाष्यम् )

अयं तर्हि प्रत्ययार्थविशेषणे सति दोषः । कयङो-  
क्तत्वात्तस्यार्थस्य उपसर्गस्य प्रयोगो न प्राप्नोति ।  
किं कारणम् ? । उक्तार्थानामप्रयोग इति । तद्यथा—  
'अपि काकः श्येनायते' इत्यत्र कयङोक्तत्वादाचा-  
रार्थस्य आहप्रयोगो न भवति ॥

( प्रत्ययार्थविशेषणपक्षे दूषणपरिहारभाष्यम् )

अस्त्यत्र विशेषः । एकेनैत्र विशिष्टे प्रत्ययार्थे प्रत्य-  
य उत्पद्यते । इह पुनरनेकेन । तत्र मनायत इत्युक्ते  
संदेहः स्यात्—अभिभवतौ सुभवतौ दुर्भवतौ उद्भ-  
वताविति । तत्रासंदेहार्थमुपसर्गः प्रयुज्यते ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

यत्र तर्ह्येकेन उत्पुच्छयते ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत्राप्यनेकेन—पुच्छादुदसने 'पुच्छाद्यसने' 'पु-  
च्छात्पर्यसने चे'ति ॥ भृशादिभ्यो भुव्यच्चेः ॥ १२ ॥

( ३९१ कयष्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ५ सूत्रम् )

६३० लोहितादिडाजृभ्यः

कयष् ॥ ३।१।१३ ॥

( ककारप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थः ककारः ? ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थः । "क्रुति च" इति गुण-  
वृद्धिप्रतिषेधो यथा स्यात् ॥( उद्घोतः ) लोहितादि ॥ १३ ॥ भाष्ये गुणवृद्धीति ।  
गणरत्नपठितेगन्तेभ्यस्तत्प्राप्तिः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । सार्वधातुकार्द्धधातुकयो-  
रङ्गस्य गुण उच्यते । धातोश्च विहितः प्रत्ययः शेष  
आर्द्धधातुकसंज्ञां लभते । न चायं धातोर्विधीयते ।  
लोहितादीनि प्रातिपदिकानि ॥

४ 'विशेषणमपि' इति तूष्णभ्यते ॥

५ अत्रोपसर्गपदं मनःशब्दः प्राक्प्रत्ययोपसर्गपरम् । अत एव 'स्वादीनामपि  
न स्यात्' इति पदमञ्जरी विवृतम् ॥६ एकेनोपसर्गेणाह विशिष्टे प्रत्ययार्थे आचारे श्येनायते इत्यत्र प्रत्यय उत्प-  
द्यते इत्यर्थः । ( र. ना. )

( प्रयोजनभाष्यम् )

सामान्यग्रहणार्थस्तर्हि । क सामान्यग्रहणार्थ-  
नार्थः ? । “नः कये” इति ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नायं नान्ताद्विधीयते ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इह तर्हि “यस्य हलः कयस्य विभाषा” इति ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नायं हलन्ताद्विधीयते ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इह तर्हि “आपत्यस्य च तद्धिते ऽनाति, कयच्छो-  
ध” इति ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नायमापत्याद्विधीयते ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इह तर्हि “क्याच्छन्दसि” इति ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

याच्छन्दसीत्येव तद्वक्तव्यम् । चुरण्युस्तुरण्युभु-  
रण्युरित्येवमर्थम् ।( प्रदीपः ) लोहितादि ॥ १३ ॥ भुरण्युरिति ।  
कण्ठ्वादिगन्तादुप्रत्ययः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । यत्तद्=अकृद्यकार इति  
दीर्घत्वम्, तत्र क्रिद्ग्रहणमनुवर्तते । तदिहापि  
यथा स्यात्—लोहितायतीति ।

किं पुनः कारणं तत्र क्रिद्ग्रहणमनुवर्तते ? ।

इह मा भूत्—उरुया धृष्णुयेति ।

( प्रदीपः ) उरुयेति । सुपां सुलुगिति तृतीयास्थाने  
यादेशः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि तत्र क्रिद्ग्रहणमनुवर्तते । पित्र्यमिति रीङ्-  
भावो न प्राप्नोति ॥( प्रदीपः ) पित्र्यमिति । पितुरागतमिति पितुर्यञ्चेति  
यत्प्रत्ययः ॥

( उद्घोतः ) पित्र्यमिति । रीङ् । यस्येति लोपः ॥

( समाधानभाष्यम् )

रीङ्भावं क्रिद्ग्रहणं निवर्तिष्यते ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि निवर्तते । कथमसूया वसूया च यजा-  
मह इति ? ॥( प्रदीपः ) यदीति । यदि रीङ् भाव एव निवर्तते न तु  
दीर्घविधावपि तदा असुवसुशब्दाभ्यां पूर्ववदादेशे कृते दीर्घा-  
भावादसूया वसूयेति न सिद्ध्यति ।( उद्घोतः ) ननु क्तितीति निवृत्तौ असूयेत्यपि सिद्धमत  
आह—यदीति ॥

( समाधानभाष्यम् )

असूयतेरसूया वसूयतेर्वसूया ।

( प्रदीपः ) असूयेः कण्ठ्वादियगन्तस्यासूया । वसूयतेरि-  
च्छाक्यजन्तस्य वसूयेत्युत्तरम् ।( उद्घोतः ) उत्तरमिति । असूयया धनेच्छया च यजामहे  
इति श्रुत्यर्थः । अप्रत्ययान्तदाबन्ताद्विभक्तेरञ्छान्दसो लुगिति भावः ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

अथ वा छान्दसमेतत् । दृष्टानुविधिश्छान्दसि  
भवति ॥

( सिद्धग्रहणानुवृत्तिवैयर्थ्यम् )

यदि छान्दसत्वं हेतुः । नार्थः क्रिद्ग्रहणेनानु-  
वर्तमानेन ॥

कस्मान्न भवति उरुया धृष्णुयेति ? ।

छान्दसत्वात् ॥

अथ वास्त्वत्र दीर्घत्वं, छान्दसं ह्रस्वत्वं भवि-  
ष्यति । तद्यथा “उपगायन्तु मां पत्नयो गर्भिण्यो  
युवतय इति ॥( प्रदीपः ) अथ वेति । वर्णव्यत्ययेन दीर्घः क्रियत-  
इत्यर्थः ॥ यदीति । अनेन ककारः प्रत्याख्यातः ॥( उद्घोतः ) अथ वेति पक्षे—प्राणैर्वसुभिश्च यजामह  
इत्यर्थः ॥ भाष्ये नार्थः क्रिद्ग्रहणेनेति । अत एव ज्यादादीयस  
इत्यसौङ्गवृत्तपरिभाषाज्ञापकत्वं सङ्गच्छते ।

( षकारप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ किमर्थः षकारः ॥

( समाधानभाष्यम् )

विशेषणार्थः । क विशेषणार्थेनार्थः ? । “वा  
कयषः” इति । “वा याद्” इति ह्युच्यमाने पाश्या  
अत्रापि प्रसज्येत ॥( प्रदीपः ) इदानीं षकारप्रत्याख्यानाय विचारः क्रियते—  
अथ किमर्थं इति ॥ पाशयेति । पाशादिभ्यो यद् इति  
समूहे यप्रत्ययः । वायादिति सूत्रं विध्यर्थं मन्यते । टापि  
कृत एकादेशस्यान्तवद्भावाद्यप्रत्ययान्तमेतत् ॥

१ असूयादिकमित्यर्थः । ( र. ना. )

२ अत्र उरुया धृष्णुयेत्यत्र ॥

३ ईयस ईकारलोपेन अकृदिति व्यशब्दाकारस्य दीर्घेण चेष्टसिद्धौ आकार-  
विधानस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

४ “अतोऽपि” बहुत्रोपलभ्यते ॥

५ लकारास्थानिकपरस्मैपदविधानार्थमित्यर्थः । नियमार्थमिति तु तत्त्वम् ।  
( र. ना. )

( समाधानवाचकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । परस्मैपदमित्युच्यते । न चार्त्रं परस्मैपदं नाप्यात्मनेपदं पश्यामः ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

सामान्यग्रहणाविघातार्थस्तर्हि ॥

क सामान्यग्रहणाविघातार्थेनार्थः ? ।

“क्याचं छन्दसि” इति ॥

( ककारप्रत्याख्यानभाष्यम् )

“यौचं छन्दसि” इत्येवं च तद्वक्तव्यम् । चुरण्युः  
तुरण्युर्भुरण्युरित्येवमर्थम् ।

( प्रदीपः ) नैतदस्तीति । सामान्यविहितानामात्मने-  
पदपरस्मैपदानां नियमार्थं प्रकरणमित्यदोषः ॥

( उद्घोतः ) नियमार्थमिति । ननु नियमार्थत्वेऽपि पाश्या  
सम्पादिशब्देभ्य आचारकिञ्चिन्त्यः पक्षे तच्च स्यात् तद्व्यावृत्त्यर्थं  
षकारोच्चारणमिति चेन्न । एतद्भाष्यप्रामाण्येन मूलभूतानुबन्धमन्यद्वा  
निमित्तमादायाचारकिञ्चिन्ते एतत्प्रकरणाप्रवृत्तेः ॥ अनभिधानादीदृशे  
विषये आचारकिञ्चिदभाव एवेत्यन्ये ॥

( आदिशब्दप्रत्याख्यानधिकरणम् )

( १७४८ आदिशब्दप्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ लोहितडाज्भ्यः क्यष् वचनम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) लोहितडाज्भ्यः क्यष् वक्तव्यः । लोहि-  
तायति लोहितायते । [ डाच् ] पटपटायति पटप-  
टायते । [ दमदमायति । दमदमायते मटमटायति  
मटमटायते ] ।

( प्रदीपः ) लोहितडाज्भ्य इति । आदिशब्दप्रत्या-  
ख्यानमेतत् ॥ अपठितसंग्रहार्थोऽप्यादिशब्दो न भवति तस्य  
वार्तिककारेण दूषितत्वात् ॥ १३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथान्यानि लोहितादीनि ॥

( १७४९ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ भृशादिष्वितराणि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भृशादिष्वितराणि पठितव्यानि ।  
किं प्रयोजनम् ? । छित इति नित्यमात्मनेपदं यथा  
स्यात् ॥ लोहितादि ॥ १३ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये भृशादिष्वितराणीति । ननु अभूत-  
तद्भावे क्यङ्, क्यष् तु तदभावे इति तदभावे पदद्वयार्थभावश्चक-  
मादिग्रहणमिति चेन्न । अत्राप्यन्तेरित्यनुवर्त्यास्यापि अभूततद्भावे एव  
प्रवृत्तेः । अत एव नित्यात्मनेपदार्थं भृशादिपाठ इत्युक्तम् ॥ अ-  
पठितेति । तेन चर्मायति चर्मायते इत्यादिभूत्याद्युक्तमसंगतम्,  
नायं हलन्ताद्विधीयत इति भाष्योक्त्येति बोध्यम् ॥ १३ ॥

( ३९२ क्यङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ६ सूत्रम् )

६३१ कष्टाय क्रमणे ॥ ३ । १ । १४ ॥

( निपात्यनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

कष्टायेति किं निपात्यते ॥

( समाधानभाष्यम् )

कष्टशब्दाच्चतुर्थीसमर्थात्क्रमणेऽनार्जवे क्यङ्  
निपात्यते । कष्टाय क्रमणे क्रामति कष्टायते ॥

( न्यूनताप्रदर्शकभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते—“कष्टायक्रमणे” इति ॥

( १७५० विवक्षितवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः

कण्वचिकीर्षायाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचि-  
कीर्षायामिति वक्तव्यम् । सत्र—सत्रायते—सत्र ।  
कक्ष—कक्षायते कक्ष । कष्ट—कष्टायते कष्ट ।  
कृच्छ्र—कृच्छ्रायते—कृच्छ्र । गहन—गहनायते—  
गहन ॥

( मतान्तरभाष्यम् )

अपर आह—

( वार्तिकरूपान्तरम् )

\*सत्रादिभ्यश्चतुर्थ्यन्तेभ्यः क्रमणेऽनार्जवे क्यङ्  
वक्तव्यः\* ।

तान्येवोदाहरणानि ।

( प्रदीपः ) कष्टाय ॥ १४ ॥ कष्टायेति किं निपा-  
त्यत इति । विधावनार्जवमेव क्रमणमिति विशेषो न लभ्यत  
इति क्रमणविशेषलाभाय निपातनाश्रयणम् ॥ सत्रेति ।  
सत्रादयोत्र वृत्तिविषये पापपर्यायाः । कण्वं पापमुच्यते ॥

( उद्घोतः ) कष्टाय क्र ॥ १४ ॥ कष्टशब्दाच्चतुर्थ्यन्ता-  
त्क्रमणार्थे क्यङित्यर्थे विशेषो न लभ्यते तदर्थं निपातनमित्याह—  
विधाविति । भाष्ये । क्रमणेनार्जव इति । यद्यत्र अनार्जवमेव  
क्रमणशब्दार्थस्तदा कष्टाय क्रमणे कुटिलो भवति इत्यर्थः स्यात् । न  
चायमर्थः कष्टायत इत्यतो गम्यते । किं च सत्रादिभ्य इति किम-  
र्थम् ? कुटिलायानुवाकाय क्रामतीत्युदाहरणे कुटिलायेत्यस्य  
वैयर्थ्यापत्तिः । किं च चतुर्थ्यन्तेभ्य इति किमर्थम् ? अनार्जवयुक्तं  
पन्थानं गच्छतीत्यर्थकम् अजः कष्टं क्रामतीत्युदाहरणं भाष्ये  
दत्तमसंगतं स्यात् ॥ अनार्जवरूपे क्रमणेऽवृत्तेर्द्वयैककल्पात् ।  
तस्मादनार्जवे इत्यस्यानृजुविषये क्रमणे इत्यर्थः । स्वार्थिकाणन्तार्जव-

१ अत्र पादया इत्यादौ ॥

२ “क्याच” इति तु सर्वथाऽन्येव ॥

३ क्यङ् पदकारणत्वे तदनुवर्त्यक्रमणपरिभाषयाऽस्यैव ग्रहणमत्रस्यात्र तु  
क्यङ् इति साङ् । ( र. ना. )

४-५ प्राचीनतुल्यकेषु नैवोपलभ्यते ॥

६ अपठितानीत्यर्थः । ( र. ना. )

७ कष्टायेति काष्ठमत्ययानानुकरणमिति मत्वा प्रश्नः । ( र. ना. )

शब्देन नञ्त्वत्पुरुषः । एवं चानृजौ वर्तमानात् कष्टशब्दात्क्रामणेऽर्थे क्यङित्यर्थः फलति । कष्टाय कर्मणे क्रामतीत्यस्य च कष्टम् अनृजु कर्म कर्तुं गच्छतीत्यर्थः । अनृजु च पापम् तेन पापार्थककष्टशब्दात्प्रत्यय इत्यर्थलाभार्थं निपातनम् । तेन दुःखपर्यायादुःखमनुभवितुं क्रामतीत्यर्थे न, एतदेव ध्वनयता कष्टाय कर्मणे इति कर्मपदं प्रयुक्तम् । अत एव सूत्रार्थव्याख्यानोत्तरं 'अत्यल्पमिदमुच्यते कष्टाय क्रमण इति । सत्रादिभ्यः कण्वचिकीर्षायामिति वक्तव्यम् इत्युत्तरभाष्यं सङ्गच्छते । पापचिकीर्षायां गम्यमानायामित्यर्थः । न च चिकीर्षोत्साह एव तस्या गम्यत्वे क्रामतीति परस्मैपदप्रयोगानुपपत्तिः । गमनरूपक्रमणपदार्थेनोत्साहस्य गम्यत्वेऽपि क्रमेस्तदर्थत्वाभावात् । नन्येस्तु वृत्तिसर्गोत्सादौ क्लृप्तोत्साहार्थत्वेनाश्रित्य चिकीर्षाया एवोत्साहरूपायाः प्रत्ययार्थत्वमाश्रित्य क्रमते इत्यात्मने पदं प्रयुक्तं तद्भाष्यविरुद्धम् ॥ अनार्जवमेव क्रमणमिति अनृजुविषयकमेव क्रमणमित्यर्थः । तद्ध्वनयन्वक्ष्यति—अनार्जवमुक्तं पन्थानं गच्छतीत्यर्थः इति ॥ अपर आहेत्यनेन च परस्परं वाक्यानां व्याख्येयव्याख्यानभावो गम्यते इति न कश्चिद्विरोधः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

सत्रादिभ्य इति किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

कुटिलाय अनुवाकाय क्रामति ॥

( प्रदीपः ) कुटिलायेति । दुरध्येयत्वादनुवाकस्यानार्जवमस्तीति भावः

( आक्षेपभाष्यम् )

चतुर्थ्यन्तेभ्य इति किमर्थम् ? ।

अजः कष्टं क्रामति ।

( प्रदीपः ) अज इति । अनार्जवमुक्तं पन्थानं गच्छतीत्यर्थः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ।

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । नेदं प्रत्ययान्तनिपातनम् ॥ किं तर्हि ? । तादर्थ्ये एषा चतुर्थी—कष्टाय यत् प्रातिपदिकम्=कष्टार्थं यत्प्रातिपदिकमिति ॥ कष्टाय ॥ १४ ॥

( प्रदीपः ) कष्टाय यदिदिति । कष्टलक्ष्णार्थप्रतिपादनाय यत् प्रातिपदिकं प्रयुज्यते तस्मात् क्रमणार्थे क्यङ् भवतीत्यर्थः । क्रमणविशेषश्चानार्जवमभिधानशक्तिस्त्राभाव्याल्लभ्यते । व्यवस्थितविभाषाविज्ञानाच्च पापादिभ्योऽतिप्रसङ्गाभावः ॥ १४ ॥

( उद्धोतः ) व्यवस्थितेनेति । अनभिधानादिति तत्त्वम् ॥ १४ ॥

( ३९३ क्यङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ७ सूत्रम् )

६३२ कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां

वर्तिचरोः ॥ ३।१।१५ ॥

( रोमन्थपदार्थनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

रोमन्थ इत्युच्यते । कोयं रोमन्थो नाम ? ।

( प्रदीपः ) कर्मणो ॥ १५ ॥ उद्गीर्णस्येति । मुख्यप्रदेश आकृष्टस्येत्यर्थः ॥ अवर्गीर्णस्येति । अपानप्रदेशान्निःसृतस्येत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) कर्मणो ॥ १५ ॥ भाष्येऽवर्गीर्णस्य वा मन्थ इति । मन्थो मन्थनम् तच्चोद्गीर्णस्य चर्वणम् । अन्यस्याशनरूपम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

उद्गीर्णस्य वावर्गीर्णस्य वा मन्थो रोमन्थः । यद्येवं ।

( १७५१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हनुचलने ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) "हनुचलन" इति वक्तव्यम् । इह म्ना भूत्—कीटो रोमन्थं वर्तयतीति ॥

( प्रदीपः ) हनुचलन इति । हनुचलनसहचरितं चर्वितं तस्य मुखप्रदेश आकृष्य यच्चर्वणं तत्र यथा स्यादित्यर्थः ॥ कीट इति । अपानप्रदेशान्निःसृतमश्नातीत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) हनुचलन इत्युक्त्या उद्गीर्णविषये एव प्रयोगः । तदुपपादयति—सहचरितमिति । अश्नातीत्यर्थः इति ॥ वर्तुलं करोतीत्यर्थः इत्यन्ये ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ।

( १७५२ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वानभिधानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यम् ॥ कस्मान्न भवति कीटो रोमन्थं वर्तयतीति ? । अनभिधानात् ॥

( प्रदीपः ) अनभिधानादिति । रोमन्थायत इति क्यङन्तेन लौकिके प्रयोगे चर्वितचर्वणस्यैवाभिधानं न त्वर्थान्तरस्येत्यर्थः ॥ १५ ॥

( उद्धोतः ) न तु इति । एवं च तत्र प्रयोगाभावात्किं तन्निवृत्त्यर्थेन यत्नेनेति भावः ॥ १५ ॥

( १७५३ न्यूनतावार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तपसः परस्मैपदं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तपसः परस्मैपदं चेति वक्तव्यम् । तपश्चरति तपस्यति ॥

१ भाष्ये—कष्टाय कर्मणे क्रामतीति परस्मैपदप्रयोगादिति भावः । ( र. ना. )

२ पूर्ववाक्यस्य व्याख्येयत्वमस्य च व्याख्यानत्वमिति भावः । ( र. ना. )

३ लघुणशब्दः स्वरूपार्थकः । ( र. ना. )

४ अन्यस्य अवर्गीर्णस्येत्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं 'तपस्यते लोकजिगीषुरग्रेः' ॥

( समाधानभाष्यम् )

छान्दसत्वाद् भविष्यति ॥ कर्मणो ॥ १५ ॥

( ३९४ क्यङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ८ सूत्रम् )

६३३ बाष्पोष्मभ्यामुद्गमने ॥ ३।१।१६ ॥

( १७५४ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ फेनाच्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) फेनाच्चेति वक्तव्यम् । फेनायते । बाष्पो ॥ १६ ॥

( ३९५ क्यङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ९ सूत्रम् )

६३४ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेधेभ्यः  
करणे ॥ ३।१।१७ ॥

( १७५५ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटा-  
पुष्टाष्टुष्टाग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अटाट्टाशीकाकोटापोटासोटापुष्टा-  
पुष्टाग्रहणं कर्तव्यम् । अटा-अटायते । अट्टा-  
अट्टायते । शीका-शीकायते । कोटा-कोटायते ।  
पोटा-पोटायते । सोटा-सोटायते । पुष्टा-पुष्टा-  
यते । पुष्टा-पुष्टायते ॥

( १७५६ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सुदिनदुर्दिनाभ्यां च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुदिनदुर्दिनाभ्यां चेति वक्तव्यम् ।  
सुदिनायते । दुर्दिनायते ॥

( १७५७ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ नीहाराच्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नीहाराच्चेति वक्तव्यम् । नीहारायते ॥  
शब्दवैर ॥ १७ ॥

( ३९६ क्यङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ९ सूत्रम् )

६३५ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम्

॥ ३।१।१८ ॥

( कर्तृवेदनापदार्थनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

कर्तृवेदनायामिति किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

इह मा भूत् । सुखं वेदयते प्रसाधको देवदत्तस्य ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

कर्तृवेदनायामित्युच्यमानेपि अत्र प्राप्नोति । किं  
कारणम् ? । कर्तुरितीयं कर्तरि षष्ठी । वेदनायामिति  
चानो भावे । स यद्येवात्मनो वेदयते । अथापि प-  
रस्य । कर्तृवेदनैवासौ भवति ॥

( प्रदीपः ) सुखादिभ्यः ॥ १८ ॥ किं तर्हीति ।  
वेदनायाः कर्तारमन्तरेणाभावात् कर्तृग्रहणसामर्थ्यात् सुखादीनि  
विशेष्यन्ते । कर्तृग्रहणं च सुपां सुलुगिति, षष्ठीलुका नि-  
र्दिष्टम् । ततश्च वेदयिता यदात्मसंबन्धीनि सुखादीनि वेदयते  
तदा प्रत्ययो नान्यदीयसुखादिवेदने ॥ १८ ॥

( उद्ध्योतः ) सुखादिभ्यः ॥ १८ ॥ भाष्ये सुखं वेदयत  
इति । सुखप्रसादादिना देवदत्तस्य सुखं प्रसाधको वेदयत इत्यन्वयः ।

( समाधानसाधकभाष्यम् )

न कर्तृग्रहणेन वेदनाभिसंबध्यते । किं तर्हि ? ।  
सुखादीन्यभिसंबध्यन्ते कर्तुर्यानि सुखादीनीति ॥  
सुखादिभ्यः ॥ १८ ॥

( उद्ध्योतः ) यद्यप्यन्तरङ्गत्वात्कारकत्वेन वेदनायामन्वयो  
न्यायः तथापि सामर्थ्यात्सुखादिभिरन्वय इत्याह—वेदनाया  
इति ॥ समस्तस्यान्यत्रान्वयासंबन्धदाह—सुपां सुलुगिति ॥  
वेदना शब्दे 'विद्' चेतनेति चौरादिकप्यन्तात् पयामश्चयेति  
युञ् ॥ नान्यदीयेति । सुखप्रसादादिना लिङ्गेनेति भावः ॥ १८ ॥

( ३९७ क्यच्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. १० सूत्रम् )

६३६ नमोवरिवश्चित्रङः क्यच्

॥ ३।१।१९ ॥

( वृत्तिघटकनमःशब्दयोगे द्वितीयोपपत्त्यधिकरणम् )

( १७५८ द्वितीयानुपपत्तिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ नमसः क्यचि द्वितीया-  
नुपपत्तिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नमसः क्यचि द्वितीया नोपपद्यते ।

१ अग्रेति लोकान्वयः । ( र. ना. )

२ 'अन' इति । 'पयासश्चन्यो युञ्' "वट्टिपन्दिचिद्विभ्यश्च" इत्योप-  
संख्यानिको वा ॥ इति पदमअरी ॥ 'आत्मनः' इति शेषेने तु भावः शोध-

केत्येव ज्ञायते ॥

३ सुलुगिति शेषः । ( र. ना. )

४ 'दीन्यनुसंबध्यन्ते' इति तु बहुशेषभाष्ये ॥



नमस्यति देवानिति ॥ किं कारणम् ? । नमःशब्देन योगे चतुर्थी विधीयते सा प्राप्नोति ॥

( १७५९ चतुर्थीप्राप्त्यभाववार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ प्रकृत्यन्तरत्वात् सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नमःशब्देन योगे चतुर्थी विधीयते । नमस्यतिशब्दश्चायम् ॥

( प्रदीपः ) नमोवरिव ॥ १९ ॥ प्रकृत्यन्तरत्वादिति । नमस्येति धातुं व्युत्पादयितुं निपातनमःशब्दसदृशशब्दान्तरावयवकल्पना क्रियते । परमार्थतस्तु अविद्यमानावयवार्थो नमस्यशब्दः पूजावाची प्रकृत्यन्तरमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) नमो वरि ॥ १९ ॥ नमस्यशब्दस्य प्रकृत्यन्तरत्वेऽपि नमःशब्दात्क्यषो विधानेन तद्योगे चतुर्थी स्यादत आह—नमस्येतीति ॥

( चतुर्थीप्राप्तिसाधकभाष्यम् )

ननु च नमस्यतिशब्दे नमःशब्दोस्ति । तेन योगे प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) ननु चेति । स एवायमिति प्रत्यभिज्ञानाज्निपात एवायमिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) निपात एवेति । अव्ययत्वोपलक्षणमेतत् । अन्यथा साक्षात्प्रभृतीनीत्यनेन कृष्योग एव क्यर्थे एव च निपातत्वविधानादत्र तदभावेनासंगतिः स्यात् ॥

( चतुर्थीप्राप्तिसाधकभाष्यम् )

नैष दोषः । अर्थवतो नमःशब्दस्य ग्रहणम् । न च नमस्यतिशब्दे नमःशब्दोर्थवान् ॥

( प्रदीपः ) अर्थवत इति । नमस्यशब्दस्य समुदायस्यैवार्थवत्त्वादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) अर्थवत्त्वादिति । अस्य शुद्धरूढत्वेन वृत्तेर्जहत्साधेत्वादिति भावः ॥

( एकदेशिसमाधानभाष्यम् )

अथ वा—‘उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी’ इति द्वितीया विभक्तिर्भविष्यति ॥

अथ वेति ।

( प्रदीपः ) अर्थवत्त्वाभ्युपगमेन नमस्कारेण पूजयतीत्यर्थोऽङ्गीकारेण परिहारान्तरम् । चतुर्थ्यास्तु नमोस्तु देवेभ्य इत्यादिरवकाशः । नमस्करोमि नारायणमित्यत्रापि कारकविभक्तिरेव भवति ॥

( उद्ध्योतः ) इत्यर्थाङ्गीकरणेति । अनेनैतत्सूचयति—‘नायमर्थोऽतः प्रतीयते, किं तु वरिवस्याशब्दादिभ्यः सपर्यादिमात्रप्रतीतिवदस्मात्पूजामात्रप्रतीतिरित्याद्यै एव समाधिरत्र युक्तः अयं त्वेकदेशिन इति ॥

( प्रत्ययार्थनिर्देशाधिकरणम् )

( १७६० न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ क्यजादिषु प्रत्ययार्थनिर्देशः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्यजादिषु प्रत्ययार्थनिर्देशः कर्तव्यः । नमसः पूजायाम् । वरिवसः सपर्यायाम् । चित्रड आश्रयं । भाण्डात्समाचयने । चीवरादर्जने परिधाने च । पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने चेति । किं प्रयोजनम् ? । क्रियावचनता यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) क्यजादिष्विति । करणग्रहणस्य वेदनाग्रहणेन व्यवधानादनधिकारे स्वार्थे प्रत्ययप्रसङ्ग इति वचनम् ॥ वरिवस इति । सपर्या सेवा । परिचर्यायामिति पाठान्तरम् ॥

( उद्ध्योतः ) करणपदानुवृत्त्या क्रियासामान्ये विधावपि प्रयोगवशादेव तद्विशेषप्रतीतिर्भविष्यतीति किमेतैरित्यत आह—करणग्रहणस्येति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—‘क्रियावचनाः क्यजादयः’ इति । यदयं ‘सनाद्यन्ता धातवः’ इति धातुसंज्ञां शास्ति ॥ कथं कृत्वा ज्ञापकम् ? । धातुसंज्ञावचन एतत्प्रयोजनं “धातोः” इति तद्व्यदादीनामुत्पत्तिर्यथा स्यात् । यदि चात्र क्रियावचनता न स्यात् धातुसंज्ञावचनमनर्थकं स्यात् । सत्यामपि धातुसंज्ञायां तद्व्यदादयो न स्युः । किं कारणम् ? । साधने तद्व्यदादयो विधीयन्ते । साधनं च क्रियायाः । क्रियाया अभावात्साधनाभावः । साधनाभावात्सत्यामपि धातुसंज्ञायां तद्व्यदादयो न स्युः । पश्यति त्वाचार्यः ‘क्रियावचनाः क्यजादयः’ इति, ततः “सनाद्यन्ता धातवः” इति धातुसंज्ञां शास्ति ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये—साधने तद्व्यदादय इति । भावोऽपि क्रियारूप एवेति भावः ॥

( प्रयोजनान्तरभाष्यम् )

ननु चेदं प्रयोजनं स्यात् परंसाधने तद्व्यदादीनामुत्पत्तिं वक्ष्यामीति ॥

१ समभिव्याहृतपदान्तरसमभिव्याहारनिमित्तकत्वेन बहिरङ्गायाश्चतुर्थीतः प्रातिपदिकार्थपञ्चकान्तरगतसार्थकारकनिमित्तिकायाः कारकविभक्तिर्द्वितीयायाः प्रबलत्वादिति भावः ॥

२ आद्य एवेति । ‘अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य’ इति परिभाषया वृत्तावेकार्थभावस्वीकारसिद्धान्ते तद्व्यदादयवचनानर्थकत्वेन नैव तद्योगे चतुर्थी प्राति-

रिति बोध्यम् । अत एव स्वयंभुवे नमस्कृत्य इत्यादौ ‘अनुकूलयितुम्’ इत्यध्याहृत्य तद्योगे चतुर्थी साधिता ॥ तुल्यनन्तस्याध्याहारभावे तु चतुर्थी प्रातिरेव नैति द्वितीयैव भवति । एकार्थोभूत क्रियाकर्तृत्वादिति भावः ॥

३ समाचयनं राशीकरणम् । ( र. ना. )

४ क्यजाद्यन्तादन्यस्याः क्रियायाः साधने इत्यर्थः । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) परसाधन इति । शब्दान्तरवाच्यायां क्रियायां यत्कर्मादि कारकं तत्र तव्यादीनां वृक्षं पश्येत्यादौ द्वितीयादीनामिव स्वार्थिकत्वाद् द्रव्यवान्वित्वेपि क्यजाद्यन्तानामुत्पत्तिः स्यादेवेति भावः ।

( उद्घोतः ) शब्दान्तरेति । स्वार्थिकत्वात्क्यजाद्यन्तानां द्रव्यवान्वित्वेऽपि शब्दान्तरवाच्यक्रियाकारके तव्यादीनामुत्पत्तिः स्यादेवेत्यन्वयः ॥ तत्र दृष्टान्तो वृक्षमित्यादि ॥

( प्रयोजनान्तरनिराकरणभाष्यम् )

न परसाधने उत्पत्त्या भवितव्यम् । किं कारणम् ? साधनइति संबन्धिशब्दोऽयम् । संबन्धि-शब्दाश्च पुनरेवमात्मका यदुत संबन्धिनमाक्षिपन्ति । तद्यथा—मातरि वर्तितव्यं पितरि शुश्रूषितव्यमिति । न चोच्यते—स्वस्यां मातरि स्वस्मिन् पितरीति । संबन्धाच्चैतद् गम्यते—या यस्य माता, यश्च यस्य पितेत्येति । एवमिहापि संबन्धादेतद् गन्तव्यम्—यस्य धातोर्यत् साधनमिति ॥

( प्रदीपः ) न परसाधन इति । द्वितीयादीनां प्रातिपदिकाद्विधानात् तस्य च, द्रव्यवचनत्वाद्वचनप्रामाण्यात् परसाधन उत्पत्तिर्भवति । तव्यादयस्तु धात्वन्तरेषु क्रियावाचिषु स्वसाधने सावकाशाः परसाधने नोत्पद्यन्त इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) तव्यादयस्त्विति । एवं च धातुसंज्ञाविधानमेवैषां क्रियावाचकत्वे मानमिति भावः ॥

( प्रत्ययार्थनिर्देशवैयर्थ्यभाष्यम् )

अथ वा धातव एव क्यजादयः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

न चैव ह्यर्था आदिश्यन्ते ॥

( उत्तरभाष्यम् )

क्रियावचनता च गम्यते । कः खल्वपि पचादीनां क्रियावचनत्वे यत्नं करोति येनैव खल्वपि हेतुना पचादयः क्रियावचनाः, तेनैव क्यजादयोपि । एवमर्थं खल्वप्याचार्यश्चित्रयति क्वचिदर्थानादिशति, क्वचिन्नेति ॥

( प्रदीपः ) अथ वेति । अभिधानशक्तिसाम्यादन्तरेणाप्यर्थदेशनं विविष्टक्रियावचनत्वस्य सिद्धत्वादित्यर्थः ॥ चित्रयतीति । चित्रवैचित्र्यकरण इति चौरादिकस्य रूपम् अनेकमार्गमाश्रयतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—अथवा धातव एवेति । क्रियावचना

एवेत्यर्थः ॥ कः खल्वपीति । पचादीनामर्थैरहितानामेव पाठात् ॥ क्वचिदर्थानिति । अनेकान् क्वचित्कामित्यर्थः ॥ क्वचिन्नेति । एकमपि नादिशतीत्यर्थः ॥

( अर्थादेशवैयर्थ्यभाष्यम् )

एवमप्यर्थादेशनं कर्तव्यम् । कथमिमे अबुधा बोध्येरन्निति ॥

( अर्थादेशवैयर्थ्यभाष्यम् )

अथ वा शक्यमेवार्थादेशनमकर्तुम् । कथम् ? । 'करणे' इति वर्तते । करणं च करोतेरर्थः । करोतिश्च क्रियासामान्ये वर्तते ॥ नमो वरि ॥ १९ ॥

क्रियासामान्यइति । सामान्येन च विशेषाणामाक्षेपात्कश्चित् प्रत्ययः क्वचिद्विशेषे भवतीत्यर्थः । न च वेदेनाग्रहणेन करणस्य विच्छेदः, तयोर्विरोधाभावात् ॥ १९ ॥

( उद्घोतः ) एवमप्यर्थादेशनमिति । नमसः पूजायामित्यादिः ॥ बोध्येरन्निति । निवृत्तप्रेषणात्स्वार्थे णिच् । बुध्येरन्नित्येव क्वचित्पाठः ॥ १९ ॥

( ३९८ णिच्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. ११ सूत्रम् )

६३८ मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्र-हलकलकृततुस्तेभ्यो णिच् ॥ ३।१।२० ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

इमौ हलिकली स्तः इकारान्तौ—[ हलिः कलिः ] । अस्ति हलशब्दः कलशब्दश्चाकारान्तः । कयोरिदं ग्रहणम् ? ।

( प्रदीपः ) मुण्डमिश्र ॥ २१ ॥ कयोरिदं ग्रहणमिति । किमिकारान्तयोः कृतात्त्वयोर्ग्रहणमुताकारान्तयोरेवेति प्रश्नः ॥

( उद्घोतः ) मुण्डमिश्र ॥ २१ ॥ निर्देशादेवाकारान्तनिर्णयेन प्रश्नानुपपत्तिरत आह—किमिकारेति । भाष्ये इमाविति । समानार्थवित्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

याविकारान्तौ तयोरत्वं निपात्यते ॥

( उद्घोतः ) यद्यप्यकारान्तयोरेव ग्रहणेऽपि तयोनियमार्थत्वादिकारान्ताभ्यां णिजभावेन सर्वदोषपरिहारोक्तिं तथाप्येकदेश्याह—भाष्ये याविति ॥ नियमश्च—एतत्सजातीयानुपूर्विकानामेतदर्थकानां चेद्भलकलयोरेवेति ॥ प्रकारान्तरेणाप्येकदेश्युक्तित्वमस्यानुपदं वक्ष्यते ॥

१ 'अविप्यति' ॥

२ क्यजाद्यन्ताप्यधातुष्वित्यर्थः । ( र. ना. )

३ अर्थरहितानामिति । पाणिनिना 'भेद स्पष्टः' इत्येवं धातुपाठः कृतः । अर्थनिर्देशस्तु पाश्चात्योऽर्वाचीनः । अत एव—भूवादिसूत्रे "परिमाणग्रहणं च" इति वार्तिकम् "परिमाणग्रहणं च कर्तव्यम्—इयानवधिधातुसंज्ञो भवतीति वक्तव्यम् । कुतो ह्येतत्—भूशब्दो धातुसंज्ञो भविष्यति न पुनर्'भवे' शब्दः" इति इति भाष्यं च संगच्छते ॥

४ 'करणे' इत्यनुवृत्तौ चिकीर्षितायां मध्ये 'कर्तृवेदनायाम्' इति वेदनाशब्देन व्यवधानशङ्का न कार्येति भावः ॥

५ 'स्तः' इति सविसर्गलक्षः सर्वत्र दृश्यते तत्संगतये 'असंहितया निर्देशः' 'भ्युक्तः किति' इत्यत्रैव ज्ञेयः इति बोध्यम् ॥

६ कोष्ठकान्तर्गतो बहुवचनोपलभ्यते ॥

७ अकारान्ताभ्यामित्यादिः । ( र. ना. )

( प्रश्नभाष्यम् )

किं प्रयोजनम् ? ।

( प्रदीपः ) किंप्रयोजनमिति । हलि कलि इत्येव कस्माच्च क्रियत इत्यर्थः ॥

( १७६१ अत्वनिपातनप्रयोजनवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हलिकल्योरत्वनिपातनं सन्वद्भाव-  
प्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) हलिकल्योरत्वनिपातनं क्रियते सन्व-  
द्भावो मा भूदिति । अजहलद् अचकलत् ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । इकारलोपे कृते 'अगलो-  
पिनां नेति प्रतिषेधो भविष्यति ।

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

वृद्धौ कृतायां लोपः तन्नागलोप्यङ्गं भवति । इद-  
मिह संप्रधार्यम्—वृद्धिः क्रियताम्, लोप इति ।  
किमत्र कर्तव्यम् ? । परत्वाद् वृद्धिः ॥नित्यो लोपः । कृतायामपि वृद्धौ प्राप्नोति, अकृ-  
तायामपि [ प्राप्नोति ] ॥वृद्धिरपि नित्या । कृतेपि लोपे प्राप्नोति, अकृ-  
तेपि ॥अनित्यो लोपः । अन्यस्य कृतायां वृद्धौ प्राप्नोति,  
अन्यस्याकृतायाम् । 'शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन्विधिर-  
नित्यो भवति' ॥वृद्धिरप्यनित्या । अन्यस्य कृते लोपे प्राप्नोति,  
अन्यस्याकृते । 'शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन्विधिरनित्यो  
भवति' । उभयोरनित्ययोः परत्वाद् वृद्धिः । वृद्धौ  
कृतायां लोपः, तन्नागलोप्यङ्गं भवति ॥अस्वे पुनः सति वृद्धिः क्रियतां लोप इति । य-  
द्यपि परत्वाद् वृद्धिः, वृद्धावपि कृतायामग्रेव लु-  
प्यते । तस्मात्सुष्ठुच्यते—हलिकल्योरत्वनिपातनं  
सन्वद्भावप्रतिषेधार्थमिति ॥ मुण्डमिश्र ॥ २१ ॥( प्रदीपः ) शब्दान्तरस्य चेति । यद्यपि वृद्धौ कृता-  
यामपि लोपस्य प्रवृत्तिस्तथापि वाचनिकं तस्यानित्यत्वम् । अथ  
वा अन्यस्य प्रवृत्तावप्यन्यस्य स्थानिनोऽप्रवृत्त्या लोपस्यानित्य-त्वम् ॥ अन्यस्य कृते लोप इति । अत उपधाया इत्य-  
नेनाकारस्येत्यर्थः ॥ ननु लोपस्य स्थानिवद्भावात्कथमकारस्य  
प्राप्नोति ॥ नैष दोषः । प्राप्तौ सत्यां स्थानिवद्भावेन प्रतिबन्धः  
क्रियते । पूर्वस्य विधौ स्थानिवद्भावविधानात् । अप्राप्तौ तु  
पूर्वविध्यभावात् स्थानिवद्भाव एव न स्यात् ॥ यद्यपि भिन्नल-  
क्षणा भिन्नस्वभावा च वृद्धिस्तथापि वृद्धिशब्दवाच्यत्वादमेद-  
माश्रित्य शब्दान्तरप्राप्त्या वृद्धेरनित्यत्वं कथितम् । तत्त्वतस्तु  
लोपे कृते वृद्धेरप्राप्त्याऽनित्यत्वं वक्तव्यम् । न्यार्थव्युत्पादनस्य  
त्वन्यथाभिहितम् ॥ सूत्रं चेदं प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इति  
णिचि सिद्धे प्रपञ्चाप्रमिलाहुः ॥ न च तत्करोतीत्यादिना  
तत्र धात्वर्थनियमः क्रियते । राजानमतिकान्तवानत्यरराजदि-  
त्यादावपि णिचो दर्शनात् । मुण्डं करोति माणवकमित्यादी  
सापेक्षेभ्योपि निर्जर्थं वा ॥ २१ ॥( उद्घोतः ) भाष्ये वृद्धिरपि नित्येति । कार्यमार्त्रं नित्यमिति  
भावः ॥ वाचनिकमिति । शब्दान्तरस्येति वचनमिति भावः ॥  
वस्तुतस्तदपि न्यायसिद्धमिलाह—अथ वेति ॥ प्राप्तौ सत्यामिति ।  
अत्र तूर्मयोरनित्ययोः परत्वादनित्यस्य वृद्धिर्नतूपाकारस्येति भावः ॥  
तदनास्थायापि समाहितमित्यत्र तात्पर्यम् ॥ ननु पूर्वमन्यवृद्धिप्राप्ता-  
वपि लोपे उपधावृद्धिप्राप्तिरिति नैकस्या अनित्यत्वमिति शङ्कते—  
यद्यपीति ॥ भिन्नस्वभावेति भिन्नस्थानिकेत्यर्थः । वस्तुतोऽचोष्ण-  
णितीत्यस्य लोपेन वापेऽपि अत उपधाया इत्यस्याप्रवृत्तिरेव स्थानि-  
वत्त्वेन वाच्या । अचोष्णितीत्यस्य चानित्यत्वं लोपे कृतेऽप्राप्त्ये-  
वेत्याशयेनाह—तत्त्वतस्त्विति । न्यायेति । पूर्वोक्त्यर्थः ॥ परे  
त्विदं भाष्यमेकदेशयुक्तिः । भिन्नलक्षणा भिन्नस्थानिकाया वृद्धे-  
रनित्यत्वेऽपि सिद्धान्त्युक्तिर्वाभावात् ॥ कृते लोपे स्थानिवद्भावेन  
वृद्धेरप्राप्तेरपि तदुक्तेस्तदुक्तिर्वाभावात् । अत एव णौ चङीति सूत्रे  
लोपस्य शब्दान्तरप्राप्त्या वृद्धेर्लोपोत्तरमप्राप्त्योभयोरनित्ययोः पर-  
त्वाद्द्विरित्याशङ्क्य नागलोपीति सूत्रेऽग्रहणाद् वृद्धेर्लोपो बली-  
यामिति सिद्धीर्नितम् । तेनात्रत्यैकदेशयुक्तित्वं स्पष्टमेवाकम् ।  
इदमेवाभिप्रेत्य सप्तमे कैयट आह—अनाश्रित्य ज्ञापकमत्वनिपा-  
तनमुक्तम् । ज्ञापकाश्रयणमेव तु ज्याय इति ॥ प्रातिपदिका-  
द्धात्वर्थे इति । चुरादिगणसूत्रमिति भावः ॥ तत्करोतीति । हेतु-  
मिति चेन्न वार्तिकादिदं गणसूत्रमप्रामाणिकम् । अत एव सत्या-  
पपाशेति सूत्रे पाशादिग्रहणं चरितार्थम् ॥ वार्तिके करोतिधात्वर्थ-  
मात्रोपलक्षणम् । तेनात्यरराजदित्यादीनां सिद्धिः ॥ सत्यापेति  
सूत्रेऽनुवृत्तकरण इतिवदित्यर्थः ॥ धात्वर्थे नियम इति । एवं च

१ प्राचीने पुस्तकेषु नोपलभ्यते ॥

२ कृताकृतमसङ्गित्वेऽपीत्यर्थः । ( र. ना. )

३ वृद्धिमवृत्त्यप्रवृत्त्योर्लोपस्य समानस्थानिकत्वाभावेनानित्यत्वमिति भावः ।  
( र. ना. ) ४ शब्दान्तरस्येति न्यायस्य विषयविशेषप्रदर्शनायेत्यर्थः । ( र. ना. )५ प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे इत्यनेत्यर्थः । धात्वर्थनियम इति । प्रातिपदिका-  
त्करोतीत्येते इत्यर्थद्वये एवणिजिज्ञाकारक इति भावः । ( र. ना. )

६ सूत्रं चेदमिति पूर्वोक्त्येति । ( र. ना. )

७ ननु शास्त्रनित्यर्थः । ( र. ना. )

८ वृद्धोरित्यर्थः । ( र. ना. )

९ वृद्धोर्भिन्नत्वमनाश्रित्यापीत्यर्थः ।

१० तथाचोपधावृद्धेरपि न बाधकाबाधितमसक्तिरूपा प्राप्तिः अचोष्णितीत्यस्य  
च लोपे कृतेऽप्राप्तिरेवेति वृद्धिसामान्यस्यात्रानित्यत्वं सिद्धयतीति भावः । ( र. ना. )११ एवं हि तत्रत्यं भाष्यम्—'एवं तस्माच्चार्थप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—वृद्धेर्लोपो  
बलीयान्' इति । यद्यप्य 'अगलोपिनां न' इति निषेधं शास्त्रिः इति ॥

१२ नित्यत्वेऽपि सिद्धान्त्युक्तिर्वाभावादिति भावः । ( र. ना. )

१३ अत्वनिपातनपरभाष्यसेत्यर्थः । ( र. ना. )

धातुवर्धमात्रे विधानार्थं स्यात् । करणे इति च धातुवर्धमात्रोपलक्षणं स्यात् । अत एव वर्गणा संनद्धाति संवर्धयतीत्यादिसिद्धिरिति भावः ॥ सापेक्षेभ्योपीति । अयमभ्युपगम इति मुप आत्मन इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम् ॥ २१ ॥

( ३९९ यद्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. १२ सूत्रम् )

६३९ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासम-  
भिहारे यद् ॥ ३ । १ । २१ ॥

( समभिहारशब्दार्थनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

समभिहार इति कोयं शब्दः ? ॥

( उत्तरभाष्यम् )

समभिपूर्वाद्धरतेर्भावसाधनो घञ्-समभिहरणं समभिहार इति । तथा—[पुष्पाभिहारः] उत्प-  
लाभिहारः मालाभिहारः [फलाभिहारः] इति ॥

( उत्तरबाधकभाष्यम् )

विषम उपन्यासः । बह्व्यो हीमाः सुमनसः, तत्र युक्तः समभिहार इति । इह पुनरेका क्रिया ॥

( उत्तरसाधकभाष्यम् )

यद्यप्येका सामान्यक्रिया । अवयवक्रियास्तु बह्वयः । अधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधोपक-  
र्षणक्रियाः । ताः कश्चित् कार्त्तुर्येन करोति । कश्चि-  
दकार्त्तुर्येन । तत्र यः कार्त्तुर्येन करोति स उच्यते पापच्यत इति । पुनः पुनर्वा पचति पापच्यते इति ॥

( प्रदीपः ) धातोरेकाचो ॥ २२ ॥ इह समभिहारो

नाम मूर्तस्थानेकस्यकालस्य भवति, धातुवाच्या तु क्रियैकैव युगपदेकैव धातुनानेकस्या अनभिधानात् । सा च निवृत्तभेदा साध्यैकस्वभावत्वाद्धानुना प्रत्याप्यते । अधिश्रयणादीनां च क्रमजन्यत्वाद्युगपदवस्थानाभावाच्च क्रियासमभिहारो न संभव-  
तीति मन्यमानः पुच्छति—समभिहार इति कोयमिति ॥

( उद्घोतः ) धातोरेका ॥ २२ ॥ इहेति । यथा कैवादीनां समभिहारोऽप्येवमेव तेन क्रियाया विशेषणानुपपत्त्या प्रसज्यते ।

१ गणभूमिति शेषः । ( र. ना. )

२ सत्यपि ननुऽनुवृत्तमिति शेषः । ( र. ना. )

३ कायं नोपलभ्यते किञ्चित्पुच्छकेषु ॥

४ व्यत्यासेन पाठ उपलभ्यते ॥

५ नोपलभ्यते किञ्चित्पुच्छकेषु ॥

६ 'बह्व्यस्य' सुमनसः ॥

७ 'पलादीनां' ॥

८ दर्शनमत आहति पाठो भाति । ( र. ना. )

९ धातुव्यवहारेणैव ॥ ( र. ना. )

१० धातुना निवृत्तभेद क्रियाया उपरधानादेवेत्यर्थः । ( र. ना. )

११ 'इतरस्तु बुद्धिः' ॥

१२ मालास्योऽभिहार इति विग्रहः । अभिमुक्तं श्रियते प्राप्यते इति कर्मण्यु-  
त्पत्त्याभिहार उपपत्ति भावः ।

एककालस्येति । एकदेशस्याप्युपलक्षणमेतत् ॥ ननु दिवैर्विजिगीषा  
कीडाद्यनेकार्थत्वदर्शनादाह—युगपदिति ॥ ननु विषयभेदात्कर्तृभे-  
दाच्च पाकादीनां नानात्वेन कथमेकैवेत्यत आह—सा चेति । एत-  
द्वक्तव्यमेव साध्यत्वमित्याह—साध्यैकेति । अत एव भवद्विरास्यत  
इत्यादां बहुवचनं नेति भावः ॥ अधिश्रयणादीनां नानात्वादाह—  
अधीति । युगपदिति । उत्पन्नविनाशित्वादिति भावः । अमूर्तत्वा-  
च्चलपि बोध्यम् । भाष्ये कोयमित्यस्य किमर्थकोयमित्यर्थः ॥

( प्रदीपः ) इतरस्तु बुद्धिपरीक्षार्थं शब्दव्युत्पत्तिमाह—  
समभिपूर्वादिति ॥

( उद्घोतः ) मालाभिहारे कर्मधार्यैः ॥ उत्पलाभिहारे  
पृथित्तुल्यैः ॥

( प्रदीपः ) यद्यप्येकेति । मुख्यस्य समभिहारस्येहासंभ-  
वाद् गौण आश्रीयते । बुद्धिगोचरानेकसकलावयवक्रियागतः  
पौनःपुन्येनानुष्ठेयमानप्रधानक्रियाविषयो वेत्यर्थः ॥ सामा-  
न्यक्रियेति । साधारणी समूहरूपा क्रिया धातुवाच्येत्यर्थः ।

यथोक्तं हरिणा—

गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम् ।

बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रियेति व्यपदिश्यते ॥

समूहश्च तथाभूतः प्रतिभेदं समूहिषु ।

समाप्यते ततो भेदे कालभेदस्य संभवः ॥ इति ॥

अथ वा अधिश्रयणादीनां तादर्थ्येन प्रवर्तनाद् गुणत्वादव-  
यवत्वं तस्याश्च साधारणत्वमुच्यते । तदुक्तम्—

अनन्तरं फलं यस्याः कल्प्यते तां क्रियां विदुः ।

प्रधानभूतां तादर्थ्यादन्यासां तु तदाख्यता ॥

कार्त्तुर्येनेति । विजातीयोऽव्यवहिता साकल्येनेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) बुद्धीति । अनेकासां सकलानां अवयव-  
क्रियाणां बुद्धिविषयत्वेन योगपथमिति भावः । बुद्धौ युगपदवस्था-  
नमत्र समभिहार इति बोध्यम् ॥ प्रधानेति । पौनःपुन्येन तस्या  
पबानुष्ठानादिति भावः । अत्रापि समभिहारी बौद्ध एवेति बोध्यम् ।  
क्रियाया जातिस्वरूपसामान्यत्वासंभवादाह—साधारणीति ॥  
सकलावयवसाधारणीत्यर्थः । तदाह—समूहरूपेति ॥ गुणभूतै-  
रिति । क्रमजन्मनाम् अधिश्रयणादीनां बुद्ध्या प्रकल्पितो योऽभेद-  
स्तद्रूपसमूहस्तैरेव गुणभूतैरवयवैः सह क्रियेत्युच्यत इत्यन्वयः ॥  
ननु प्रकृतः कटं देवदत्त इत्यादौ कथं भूते क इत्यत आह—समूहः

१३ उत्पलानामभिहार औत्तराधर्मेण समवस्थितिः समाहर इति विग्रहः ॥ ( र. ना. )

१४ 'समूहः स तथा' ॥

१५ ननु समूहस्यैकत्वात्कालभेदासंभवेन क्रमासंभवात् पचतीत्यादौ क्रमिक-  
क्रियाप्रतीतिर्न स्यादत आह—समूहश्चेत्यादि । तथाभूत उद्भूतावयवभेदः समूहश्च  
प्रतिभेदं प्रत्येकं समूहिष्ववयवेषु समाप्यते पर्यवसितो भवति तस्मात्तत्र पूर्वकारि-  
कोत्तरीत्या बुद्धिप्रकल्पिताभेदे सत्यपि व्यापाराणामवयवरूपाणां क्रमिकत्वेन  
समूहेऽपि कालभेदस्य संभव इति योजना । ( र. ना. )

१६ बहुवचनं "नञ्" सूत्रभाष्यतात्पर्यप्रकाशकसम्प्रत्ययविरुद्धमेव कथं  
कृतमिति चिन्त्यम् ॥

१७ युगपदवस्थानरूप इति शेषः । ( र. ना. )

१८ कर्तुमारब्धवानित्यर्थः । आदिकर्मणि निष्ठा । कथं भूते इति । प्रारब्धे  
चेत्यपि बोध्यम् । कृधात्वर्थक्रियायाः समूहस्याप्यभावेन क्रमिकत्वसामाना-  
धिकरण्यमारब्धत्वासंभवादिति भावः । ( र. ना. )

स इति ॥ तथाभूत षड्रूतावयवः ॥ समूहिषु अवयवेषु ।  
प्रतिभेदं प्रत्येकम् । अभेद इति । बुद्धिकृतामेदेपीत्यर्थः ॥ तस्या-  
श्रेति । यदव्यवधानेन फलोत्पत्तिस्तस्या इत्यर्थः ॥ अनन्तरमिति ।  
अव्यवधानेन फलोत्पादिकां प्रधानां क्रियामाहुः—अन्यासां तु  
तादर्थ्यान्तदाख्यता गौणो व्यवहार इत्यर्थः ॥ विजातीयेति ।  
यथा द्रव्याणां द्रव्यान्तरैरव्यवधानां समभिव्याहारस्तथा क्रियाणामपि  
क्रियान्तरैरव्यवधानानामेव स इत्यर्थः ॥ पुनः पुनर्वेति भाष्ये  
समूहरूपायाः क्रियायाः कालभेदाद्भेदेऽपि साजात्यात्सैव पुनः  
पुनरनुधीयत इति बुद्ध्या पौनःपुन्यमिति तात्पर्यम् ॥

( धातुग्रहणप्रत्याख्यानाधिकरणम् )  
( पूर्वपक्षभाष्यम् )

अथ धातुग्रहणं किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) अथेति । धातुरेव समभिहारविशिष्टक्रिया-  
वाची द्योतकस्तूपसर्गो न तु वाचक इत्यर्थः ।

( उद्योतः ) धातुरेवेति । क्रियासमभिव्याहार इत्यस्य सम-  
भिहित्यमाणक्रियावाचकादित्यर्थ इति भावः ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

इह मा भूत्—प्राटति भृशमिति ।

( प्रदीपः ) प्राटतीति । धातुपसर्गसमुदायस्य क्रिया-  
विशेषावगतिहेतुत्वात्ततो यदि प्रत्ययः स्यात् ततः सोपसर्गस्य  
द्विवचनं प्रसज्येत । प्राटादित्यत इति चेष्ट्यते ॥

( उद्योतः ) क्रियाबोधकादित्यर्थोऽपि संभाव्येतेत्युत्तरम् ।

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १७६२ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यङ्गविधौ धातुग्रहण उक्तम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यङ्गविधौ धातुग्रहणे उक्तम् । किमु-  
क्तम् ? । तत्र तावदुक्तम्—\*कर्मग्रहणात्सन्विधौ  
धातुग्रहणानर्थक्यं सोपसर्गं कर्मेति चेत्कर्मविशेष-  
कत्वादुपसर्गस्यानुपसर्गं कर्म । सोपसर्गस्य हि क-  
र्मत्वे धात्वधिकारेऽपि सनो ऽविधानमकर्मत्वात्\*  
इति । एवमिहापि 'क्रियासमभिहारग्रहणाद्यङ्गविधौ  
धातुग्रहणानर्थक्यम् । सोपसर्गः क्रियासमभिहार  
इति चेत् क्रियासमभिहारविशेषकत्वादुपसर्गस्या-  
नुपसर्गः क्रियासमभिहारः । सोपसर्गस्य हि क्रिया-  
समभिहारत्वे धात्वधिकारेऽपि यङोऽविधानमक्रि-  
यासमभिहारत्वाद्' इति ॥

( प्रदीपः ) सन्सूत्रोक्तं वस्तिवहाप्यतिदिशति—यङ्गविधा-  
विति ॥ धात्वधिकारेपीति । प्रपापच्यत इत्यादौ ।

( उद्योतः ) सन्ति । एवं चार्धधातुकसंज्ञार्थं धातुग्रहण-  
मित्याद्यपि तत्रत्यमत्र बोध्यमिति ध्वनितम् । तत्फलं च सोसूच्यते

इत्यादौ णिलोपः ॥ प्रपापच्यत इति । स्रं तु केवलधातौ चरि-  
तार्थमिति भावः ॥

( एकाज्जलादिग्रहणप्रत्याख्यानाधिकरणम् )

( पूर्वपक्षभाष्यम् )

अथैकाज्जलादिग्रहणं किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

इह मा भूत्—जागर्ति भृशम् । ईक्षते भृशमिति ॥

( १७६३ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ एकाज्जलादिग्रहणे चोक्तम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एकाज्जलादिग्रहणे चोक्तम् । किमु-  
क्तम् । तत्र तावदुक्तम्—\*कर्मसमानकर्तृग्रहणान-  
र्थक्यं चेच्छाभिधाने प्रत्ययविधानात् । अकर्मणो  
ह्यसमानकर्तृकाद्वा अनभिधानाद्\* इति । इहापि  
'एकाज्जलादिग्रहणानर्थक्यं च क्रियासमभिहारे  
यङ्गवचनाद् अनेकाचो हलादेर्ह्यनभिधानम्' इति ॥  
तच्चावश्यमनभिधानमाश्रयितव्यम् । क्रियमाणेऽपि  
होकाज्जलादिग्रहणे यत्रैकाचो हलादेश्चोत्पद्यमानेन  
यङोऽर्थस्याभिधानं न भवति, न भवति तत्रोत्पत्तिः  
तद्यथा—भृशं शोभते भृशं रोचते ॥ यत्र चानेकाचो  
ऽहलादेर्वोत्पद्यमानेन यङोऽर्थस्याभिधानं भवति,  
भवति तत्रोत्पत्तिः । तद्यथा—अटादित्यते अरार्यते  
अशादित्यते सोसूच्यते सोसूच्यते मोमूच्यते ॥

( १७६४ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ ऊर्णोतिश्चोपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ऊर्णोतिश्चोपसंख्यानं कर्तव्यम् ।  
प्रोर्णोऽनूयते ॥

( न्यूनताप्रदर्शकभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते—ऊर्णोतिरिति ।

( १७६५ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सूचिसूत्रिमूच्यत्यर्थशूर्णोतिग्रहणं  
यङ्गिधावनेकाजहलाद्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सूचिसूत्रिमूच्यत्यर्थशूर्णोतीनां ग्रहणं  
कर्तव्यम् । किं प्रयोजनम् ? । यङ्गिधावनेकाजहला-  
द्यर्थम् । सोसूच्यते । सोसूच्यते । गोमूच्यते । अटा-  
दित्यते । अरार्यते । अशादित्यते । प्रोर्णोऽनूयते ॥

( प्रदीपः ) ऊर्णोतिश्चेति । यथान्यासे सिद्धभावाद्वचनम् ।

( उद्योतः ) एकाज्जलादिग्रहणप्रत्याख्यानादाह—यथा-  
न्यास इति ॥

( ऊर्णग्रहणानावश्यकताभाष्यम् )

ऊर्णोतेर्न वक्तव्यः ।

वाच्य ऊर्णोर्णवद्भावो यङ् प्रसिद्धिः प्रयोजनम् ।  
आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेदुपग्रहात् ॥

( प्रदीपः ) कार्यान्तरसिद्धयेऽवश्यमूर्णोर्णवद्भावो वाच्य-  
स्तेनैव यद्यपि सिद्धिमाह—वाच्य इति । तत्र यङि भावा-  
तिदेश आमितोस्त्वभावातिदेशस्तयोर्नौतेरभावात् । इदुपग्रहः ।  
इदप्रतिषेधः । विभाषा गुण इति पञ्चमी । फलस्य चात्र  
हेतुत्वं यथाध्ययनेन वसतीति । उदाहरणानि—प्रोर्णोनूयते ।  
प्रोर्णुतः । प्रोर्णुतवानिति ।

( उद्घोतः ) वचनेन वचनप्रत्याख्याने लाघवाभावादाह—  
कार्यान्तरेति । इदुपग्रहस्य फलत्वेन हेतुत्वाभावादाह—फलस्य  
चेति । प्रोर्णुत इति । श्रुत्युक्तः कितीति इदं प्रतिषेधः ॥

( १७६६ लोटो यङ्वाधकत्ववार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ क्रियासमभिहारे यङो विप्रतिषे-  
धेन लोङ्निधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्रियासमभिहारे यङो लोङ् भवति  
विप्रतिषेधेन । क्रियासमभिहारे यङ् भवतीत्यस्या-  
वकाशः—धातुर्य एकाज्जलादिः क्रियासमभिहारे  
वर्तते, अधातुसंबन्धश्च लोळयते । पोषयते ॥ लो-  
टोवकाशः—धातुर्योनेकाज्जलादिः क्रियासमभि-  
हारे वर्तते, धातुसंबन्धश्च स भवान् जागृहि जा-  
गृहीत्येवायं जागर्ति, स भवानीहस्व ईहस्वेत्येवाय-  
मीहते ॥ धातुर्य एकाज्जलादिः क्रियासमभिहारे  
वर्तते धातुसंबन्धश्च, तस्माद् उभयं प्राप्नोति—स  
भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति । लोङ्  
भवति विप्रतिषेधेन ॥

( प्रदीपः ) यदैव क्रियासमभिहारस्य द्योतितत्वाभित्यवीप्स-  
योरिति क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वा द्विवचनं न  
भवति । यदा तु श्रुत्यर्थेपि पौनःपुन्यं विवक्ष्यते तदा पापच्यते  
पापच्यत इति द्विवचनं भवत्येव ॥ स भवानिति । सामा-  
न्यविशेषभावेन क्रियामेदाश्रयो धातुसंबन्धः ॥

( उद्घोतः ) इति चेति । वस्तुतस्तद्वार्तिकस्य लोङ्विषयतैवेति  
लोङ्विधायकं वक्ष्यते । भवत्येवेति । नित्यवीप्सयोरित्यनेन ॥  
सामान्येति । लोङ्न्तार्थः सामान्यम् । अनुप्रयोगार्थं कर्त्त-  
वाल्लिङ्गितत्वाद्दिशेः । अन्यथाऽर्थमेदाभावेन धातुसंबन्धाभावा-  
त्प्रत्ययो दुर्लभः स्यादिति भावः ॥ भाष्ये लोङ्भवति विप्रतिषेधे-  
नेति । पुनः पुनर्लब्धनाभिन्नं वर्तमानं लवनमित्येवं विवक्षायां धातु-  
संबन्धस्य सत्त्वादुभयप्राप्तिः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

न तर्हीदानीमिदं भवति—स भवान् लोळयस्व  
लोळयस्वेत्येवायं लोळयत इति ॥

( समाधानभाष्यम् )

भवति च ॥

( प्रदीपः ) स इति । श्रुत्यर्थपौनःपुन्ययोः प्रतिपिपादधि-  
षितत्वादेकतरस्मिन् यङ् प्रत्ययः । अपरस्मिन् लोट् । लोटश्च  
केवलस्य समभिहारमभिव्यङ्कुमसामर्थ्यात्तदन्तस्य द्विवचनं  
प्रवर्तते ॥

( उद्घोतः ) ननु विप्रतिषेधाश्रयणे लोटो भाव्यं, स्वाधिकत्वा-  
द्यङोन्तरङ्गत्वे तेनैव भाव्यमिति किमुच्यते भवति चेतीत्यत आह—  
भृशार्थेति । तत्रैकतरार्थेऽधातुसंबन्धे यङ् कृत्वा परार्थे धातुसंबन्धे  
यङ् कृत्वा परार्थे धातुसंबन्धे लोङिति भावः ॥ लोटश्चेति । विध्या-  
दिष्वपि लोटो विधानात् इति भावः ॥

( १७६७ विप्रतिषेधवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ न वा नानार्थत्वात्कर्तृकर्मणो हि  
लविधानं क्रियाविशेषे स्वार्थं यङ् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वार्थो विप्रतिषेधेन । किं कार-  
णम् ? । नानार्थत्वात् । का नानार्थता ? । कर्तृकर्म-  
णोर्हि लोङ्निधीयते । क्रियाविशेषे स्वार्थं यङ् । तत्रा-  
न्तरङ्गत्वाद्यङ्गा भवितव्यम् ॥

( प्रदीपः ) तत्रेति । लोङ् बहिरङ्गः । कर्त्रायपेक्षणा-  
द्धातुसंबन्धापेक्षणाच्च ।

( अनुयोगभाष्यम् )

न तर्हीदानीमिदं भवति—स भवान् लुनीहि  
लुनीहीत्येवायं लुनातीति ॥

( समाधानभाष्यम् )

भवति च । विभाषा यङ् । यदा न यङ्, तदा लोट् ॥

( प्रदीपः ) विभाषा यङिति । धातोः कर्मण  
इत्यतो वेत्यनुवर्तनात् ॥

( वार्तिकशेषभाष्यम् )

नित्यं कौटल्ये गतौ ३।१।२३॥

लुपसदचरजपजभदहदशृभ्यो भावगर्हायाम्  
३।१।२४॥

( १७६८ नित्यग्रहणानर्थक्यवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ उत्तरयोर्विग्रहेण विशेषासंप्र-  
त्ययान्नित्यग्रहणानर्थक्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उत्तरयोर्योगयोर्विग्रहेण विशेषस्या-

१ शुबद्भावे एकाचत्ववदुदात्तत्वस्याप्यतिदेशे 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' इत्यनेनेदं प्रतिषेधमाप्त्योदात्तेभ्योऽपीदप्रतिषेधविधायकं सूत्रमुपन्यस्यति—  
श्रुत्युक्त इति ॥ ( र. ना. )

२ लोङ् भवति यङो विप्रतिषेधेन इति लिखितपुस्तकेषु पाठः ॥

३ धातुना संबन्धत इति कर्मणि घञ् । ( र. ना. )

४ वस्तुतस्तु विशेषस्य विशेषणत्वं सामान्यस्य विशेष्यत्वमित्येव घटो द्रव्य-  
मित्यादौ सर्वत्रैवावुभवसिद्धम् । अत एव विशेषपदस्यान्वर्थत्वमपि । तथापि  
पौनःपुन्याल्लिङ्गितत्वेन लोङन्तार्थलवनस्यैव विशेषत्वं लङन्तोपात्तस्य तु सामा-  
न्यत्वं कर्त्तृलिङ्गितत्वं तु उभयत्राप्यविशिष्टमिति बोध्यम् । ( र. ना. )

संप्रत्ययान्नित्यग्रहणमनर्थकम् । नहि 'कुटिलं क्राम-  
ती'ति 'चङ्क्रम्यत' इति गम्यते ॥

( प्रदीपः ) नित्यं कौ । नहीति । चङ्क्रम्यत इत्यस्मा-  
द्यर्थः प्रतीयते नासौ 'कुटिलं क्रामतीति' वाक्येन शक्यः प्रत्या-  
ययितुमिति तदर्थानभिधानादेव वाक्यं न भविष्यति । अर्था-  
न्तरे च कौटिल्यमात्रप्रतिपादने वाक्यं निवारयितुमशक्यमिति  
नित्यग्रहणमनर्थकमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) नित्यम् । उत्तरयोरिति पदस्वरसाद्धातोरेकाच्  
इति सूत्र एवेदं वार्तिकमिति लभ्यते । तेनेतः पूर्वं नित्यमित्यादि-  
सूत्रद्वयलेखो लेखकप्रमादात् । तत्राद्यविषयं नित्यग्रहणानर्थक्यमिति,  
द्वितीयविषयं क्रियासमभिहारे चेति, तथैव भाष्ये उदाहरणादिति  
सुधियो विभावयन्तु ॥ नासाविति । कुटिलं पन्थानं क्रामतीत्यर्थ-  
प्रत्ययादित्यर्थः ॥ अर्थान्तरे पथि ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

अथैतेभ्यः क्रियासमभिहारे यडा भवितव्यम् ॥

( १७६९ समाधानवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥\*॥ क्रियासमभिहारे च नैतेभ्यः ॥\*॥

( भाष्यम् ) क्रियासमभिहारे च नैतेभ्यो यडा  
भवितव्यम् भृशं जपति ब्राह्मणः, भृशं समिधो  
दहतीत्येव ॥ धातोरेकाचो ॥ २२ ॥

( प्रदीपः ) क्रियासमभिहार इति । तत्कौण्डिन्य-  
न्यायेन कौटिल्यभावगर्हाभ्यां यडः क्रियासमभिहारादाच्छिद्य  
स्वीकृतत्वादिति भावः ॥ २२ ॥

( उद्घोतः ) तत्कौण्डिन्यन्यायेति । चिन्त्यमिदं 'विशेष-  
विहितेन सामान्यविहितस्य बाध उत्सर्गोपवादस्थले' इत्यत्रैवायं दृष्टान्तो  
मिदचोन्यात्सूत्रे भाष्ये उक्तो, न हि विशेषानुवादेन सामान्यानु-  
वादबाधे दृष्टान्तो लौकिकोस्ति, नान्येतद्विषये नियमेन तत्प्राप्तिरस्ति ॥  
तस्माच्चकारेण क्रियासमभिहारे चेत्यत्रापि विशेषासंप्रत्ययादि-  
त्यस्य संबन्धात् भृशं जपतीत्यर्थविशेषस्य यडन्तादप्रत्ययादित्यर्थ-  
इत्याहुः ॥ २२ ॥

१ 'अस्य प्रत्य' ॥

२ कौटिल्यभावगर्हाविवक्षे । ( र. ना. )

१ नाम लेखकप्रमादः न्याचिख्यास्यमानसूत्रलेखस्यान्यत्रापि ह्यवरसूत्रे  
'प्रत्याहारेऽनुबन्धानाम्' इत्यतः पूर्वम् 'अइउण्-' इत्यादि सूत्रचतुष्टयस्य  
भाष्ये दर्शनेन तादृशलेखस्य शैली सिद्धत्वात् ॥ अत एव 'ह्रस्वो ननुसर्के-'  
इति सूत्रभाष्येपि '\*उपसर्जनह्रस्वत्वे च\*' इति वार्तिकतः प्राक् 'गोस्त्रियो-  
रुपसर्जनस्य' इति सूत्रोद्धेखो बहुषु पुस्तकेषु समुपलभ्यते ॥ अस्माभिस्तु मान्य-  
पण्डितलिखितैकपुस्तके शुद्धत्वं मत्वा तदनुसारणैव बहुपुस्तकानुरोधस्त्यक्त इति  
क्षन्तव्यं क्षमाशीलैरिति सारग्राहिणो दाधिमथाः ॥

२ उदाहरणादिति । पूर्ववार्तिकस्य 'चङ्क्रम्यते' इत्युदाहरणस्य द्वितीय-  
वार्तिकस्य 'भृशं जपति' 'भृशं दहति' इत्युदाहरणस्य दानादित्याशयः ॥  
परं तु उत्तरयोरिति द्विवचनस्वारस्येनोभयोरैव सूत्रयोनित्यग्रहणस्योपात्तस्यापर-  
त्रातुदात्तस्य चानर्थक्यकथनानन्तरमेव 'अथैतेभ्यः क्रियासमभिहारे' इत्यनु-  
योगभाष्ये 'एतेभ्यः' इत्यनेन पूर्वोपक्रान्तसूत्रद्वयोपात्तकर्म्यादीनां परामर्शो न

( ४०० णिच्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. १५ सूत्रम् )

६४२ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोक-  
सेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो

णिच् ॥ ३ । १ । २५ ॥

( निपातनीयनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

सत्यापेति किं निपात्यते ॥

( १७७० समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सत्यस्य कृज्यापुक् च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सत्यस्य कृजि आपुक् च निपात्यते  
णिच् । सत्यं करोति सत्यापयति ॥

( न्यूनताभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते 'सत्यस्य' इति ॥

( १७७१ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ णिविधावर्थवेदसत्यानामापुक् च ॥\*॥

( भाष्यम् ) णिविधावर्थवेदसत्यानामापुक् चेति  
वक्तव्यम् । अर्थापयति वेदापयति सत्यापयति ॥

( प्रदीपः ) सत्यापपाश ॥ २५ ॥ आचार्यमतभेद-  
प्रदर्शनार्थोऽनेकपक्षोपन्यासः ।

( उद्घोतः ) सत्याप ॥ २५ ॥ सर्वत्र सामर्थ्यादेव टिलोप-  
वारणे नानामतोपन्यासो व्यर्थोऽत आह—आचार्येति ॥

( आपुकि दूषणभाष्यम् )

यद्यापुक् क्रियते टिलोपः प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) टिलोप इति । णाविष्टवदित्यतिदेशादिति  
भावः ॥

( पुगङ्गीकारमतभाष्यम् )

एवं तर्हि पुक्क्रियते ॥

३ क्रियासमभिहारप्राप्तिरित्यर्थः । ( र. ना. )

४ सर्वेषु आपुगादिविधानपक्षेषु तत्तद्विधानसामर्थ्यादेवेत्यर्थः । ( र. ना. )

विवारितः । तस्मादुभयप्राप्त्युदाहरणानि । 'नष्टुदाहरणमादरणीयम्' इत्यन्य  
भाष्याद् उपलक्षणपरतयैव नेयानि । तथाचोभयसूत्रोपात्तेभ्य एव यड् 'क्रिया-  
समभिहारे च नैतेभ्यः' इत्यनेन निविध्यते ॥ अटाट्यो अरार्थे इत्यत्र यड्  
तु क्रियासमभिहारे वार्तिकेन विहित इति न स क्रियासमभिहारे गत्यर्थमात्रा-  
यड् साधकः एकाञ्जलादिग्रहणसत्त्वेऽप्राप्त इव वार्तिकेन सूत्रयोनियमपरत्वेन  
वा क्रियासमभिहारेऽप्राप्त एव विधीयत इति 'गत्यर्थेभ्यः क्रियासमभिहारे यड्'  
स्थितिशीलस्थायवरप्रतिद्विजंगमशब्दतो गमनशीलत्वप्रतीत्ये भवत्येव' इति  
शब्देऽनुशेखरोक्तमपि चिन्त्यमेव स्वापासनकाले जंगमशब्दे प्रयोगानुपपत्तेः ।  
तस्माद् दंदशक्त-जंगमादिशब्दे यड् कृत्युत्तरं 'प्रार्थयति' 'रामो राज्यमची-  
कारत्' इत्यादी मेरण्या इव कौटिल्यभावगर्हयोरविवक्षाश्रयणीयेति दाधिम-  
थानां सिद्धान्तः ॥



( पुकि दूषणभाष्यम् )

एवमपि टिलोपः प्राप्नोति ॥

( आगङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्ह्याकरिष्यते ॥

( आकि दूषणभाष्यम् )

एवमपि टिलोपः प्राप्नोति ॥

( अगङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्ह्यक् करिष्यते ॥

( प्रदीपः ) अकरिष्यत इति । तत्र पररूपे कृते अचो-  
ञ्णितीति वृद्धौ कृतायां पुगागम इति भावः ॥( उद्ध्योतः ) अस्मिन् पुक्सिद्धये आह—तत्रेति । प्राति-  
पदिकाणिजिति भावः ॥

( अकि दूषणभाष्यम् )

एवमप्यनाकारान्तत्वात् पुङ्गप्राप्नोति ॥

( आडङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्ह्याट् करिष्यते ॥

( आटि दूषणभाष्यम् )

एवमप्यनाङ्गत्वात्पुङ्ग प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) अनाकारान्तत्वादिति । यद्यच वृद्धिः  
स्याद्विविधानमनर्थकं स्याद् अगागममन्तरेणापि तस्याः प्रस-  
ङ्गात् । ततश्च तद्वाधानार्थमगागमः स्यादिति भावः ॥( उद्ध्योतः ) यद्यप्यत्रापि टिलोपप्राप्तिरस्ति तथापि दूषणा-  
न्तरसङ्गात्तदनुपन्यासः ॥ अनर्थकं स्यादिति । न च टिलोप-  
बाधनद्वारा वृद्धिसिद्ध्यर्थमेव तदिति वाच्यम् । अन्त्यादेशाकारविधान-  
सामर्थ्येनैव टिलोपबाधे सिद्धे आगमलिङ्गकारोच्चारणसामर्थ्येन  
वृद्धेरपि बाधः स्यादित्यभिमानः ॥

( आपुङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्ह्यापुट् करिष्यते ॥

( प्रदीपः ) आपुडिति । तस्य च णिज्भक्तत्वादकारस्य  
पूर्वस्य टिलोपे सति सत्यापयतीत्यादि सिध्यतीति भावः ॥ २५ ॥( उद्ध्योतः ) भाष्ये एवं तर्हि आपुडिति । नन्वत्र पक्षे चङि  
णौ चङीति हस्वानापत्तिः । आपुकि प्राप्नोतीति फलभेद इति चेन्न ।  
कुड्यस्यानभिधानात् ॥ २५ ॥

( सर्वमतानां निर्दोषताभाष्यम् )

अथ वा पुनरस्त्वापुगेव ॥

ननुचोक्तं टिलोपः प्राप्नोतीति ।

आपुक्वचनसामर्थ्यान्न भविष्यति ॥

अथ वा पुनरस्तु पुगेव ।

ननु चोक्तमेवमपि टिलोपः प्राप्नोतीति ।

पुग्वचनसामर्थ्यान्न भविष्यति ॥

अथ वा पुनरस्त्वापुगेव ।

ननु चोक्तमेवमपि टिलोपः प्राप्नोतीति ॥

आग्वचनसामर्थ्यान्न भविष्यति ॥ सत्याप-  
पाश ॥ २५ ॥

( ४०१ णिचप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।२ आ. १६ सूत्रम् )

६४३ हेतुमति च ॥ ३।१।२६ ॥

( हेतुमच्छब्दार्थविशेष्यनिर्णयाधिकरणम् )

( विप्रतिपत्तिभाष्यम् )

कथमिदं विज्ञायते—हेतुमत्यभिधेये णिज्भव-  
तीति, आहोस्वित्—हेतुमति यो धातुर्वर्तते इति ॥( प्रदीपः ) हेतुमति च ॥ २६ ॥ कृत्रिमस्य पारि-  
भाषिकस्य प्रयोजकस्य हेतोर्ग्रहणम् । तदीयो व्यापारः प्रेषणा-  
ध्येषणतत्समर्थाचरणलक्षणो हेतुमानिह गृह्यते ॥ ननु सकल-  
कारकसाध्यपाकाद्यपेक्षः प्रयोजकस्य हेतुव्यपदेशो न तु तैर्दार्था-  
वान्तरस्वसाध्यप्रेषणाद्यपेक्षः । यथा काष्ठस्य पाकाद्यपेक्षं करणत्वं  
न तु ज्वलनापेक्षम् । तदपेक्षन्तु कर्तृत्वमेव । ततश्च पाकादेरेव  
हेतुमद्व्यपदेशो युक्तो न तु प्रेषणादेः ॥ नैष दोषः । णिच्  
प्रकृत्या धातुनैव तस्यार्थस्य प्रकाशितत्वात् प्रयोजनाभावात्तत्रै-  
वार्थे णिचोनुत्पादात् । प्रयोज्योऽपि हेतुमच्छब्देन न गृह्यते ।  
तस्य द्रव्यत्वात् । णिचश्च स्वभावतः करणाधिकाराद्वा क्रिया-  
वाचित्वात् । तस्मात् पारिशेष्यात् पाकाद्यर्थो यः प्रेषणादिलक्षणो  
लक्ष्यपाकाद्यपेक्षहेतुव्यपदेशहेतुत्रोपलक्षितप्रयोजकसाध्यो व्या-  
पारः स एव गृह्यते ॥( उद्ध्योतः ) हेतुमति ॥ २६ ॥ हेतुमच्छब्दार्थज्ञाने संदे-  
हस्योपपादयितुमशक्यत्वादाह—कृत्रिमस्येति । तस्यैव व्याख्या-  
नं कचित्पारिभाषिकस्येति । तत्प्रयोजको हेतुरित्यस्येत्यर्थः । उत्कृष्टेन  
निकृष्टप्रेरणम् औद्यम् । विपरीतं द्वितीयम्, प्रयोज्यव्यापारानुकूल-  
माचरणं तृतीयम् यथा—भिक्षा वासर्पतीत्यादौ ॥ पाकाद्यपेक्ष  
इति । तद्विषयत्वात्प्रेरणाया इत्यर्थः ॥ न तु तदर्थेति । तन्निमित्ते-  
त्यर्थः । हेतुरस्यास्तीति विग्रहेण हेतुत्वनिरूपकस्य तत्कार्यपाकादेरेव  
प्रतीतेस्तत्रैव णिच् स्यादित्याह—पाकादेवेति ॥ तत्रैवार्थे इति ।  
न चान्यप्रयुक्तः पञ्चतीयार्थप्रतिपादनाय णिच् । णिजन्तेन तादृ-  
शार्थाप्रतीतेरिति भावः ॥ एवमपि हेतुसंबन्धिकार्यरूपार्थाभिधायिनां१ अभिमानोक्तिवीजन्तु आगमलिङ्गकारोच्चारणस्याकारश्रवणार्थत्वेन  
तत्सामर्थ्यात्पररूपपादबाधेऽपि वृद्धिबाधे न मानमिति । ( र. ना. )

२ तदर्थः पाकाद्यर्थः । इदं सामानाधिकरण्येन प्रेषणाद्यन्वयि । ( र. ना. )

३ शब्दैर्वैरेत्यत इति भावः । ( र. ना. )

४ अयं भावः । देवदत्तशर्मा पञ्चमिहलैः कृषतीत्यत्र स स्वयं न कृषति पञ्च-

हलकरणैककर्तृककर्षणस्यासंभवात् किन्तु शब्दद्वारेति प्रयोजकव्यापारोऽपि कृष्-  
धात्वर्थ इति । कृषतीत्यस्य प्रकृते कर्षयतीत्यर्थत्वात् । ( र. ना. )

५ प्रेषणम् अग्रे द्वितीयम् अध्येषणम् । तृतीयम् तत्समर्थाचरणरूपम् । ( र. ना. )

६ अत्र प्रयोज्यदेवदत्तादिव्यापारस्य वासतुकूलस्यालमाचरणं स्वप्रेषणा-  
वस्थानरूपा क्रिया मिधाय इति भावः । ( र. ना. )



हेतुमच्छब्देन कथं प्रेरणोच्यतेऽत आह—तस्मादिति ॥ लब्धः पाकाद्यपेक्षो हेतुव्यपदेशो येन स चासौ हेतुत्वोपलक्षितश्चासौ प्रयोजकश्च तत्साध्यो व्यापारः इति विग्रहः । तत्प्रयोजक इत्यत्रापि कारके इत्यधिकारात् णिजुत्पत्तेः प्राक् हेतुत्वस्याभावाद्धेतुत्वोपलक्षितेत्युक्तम् । सै च व्यापार एव 'करणे' इत्यधिकारादिति भावः । तत्र मतुपः साधुत्वं तु हेतुः कर्ताऽस्येत्यनेति भाष्यकृदेव वक्ष्यति ॥

( प्रदीपः ) कथमिति । यदा पचतीत्युक्ते प्रयोज्यसाध्य एव व्यापारो गम्यते न प्रयोजकसाध्योऽपि तदा प्रत्ययार्थस्य करणाधिकारोपस्थापितस्य करणस्य विशेषणं हेतुमतीति संपद्यते । यदा त्वनेकार्थत्वाद्वातूनां तादर्थ्याद्वाधिभ्रयणादिवत् प्रयोजकव्यापारोऽपि पचादिवाच्यो भवति यथा पञ्चभिर्हलैः कृषतीति । तदा प्रकृतिविशेषणपक्षो भवति तदा तु णिचप्रत्ययो योतकः संपद्यत इति पक्षद्वयस्य संभवाद्दोषदर्शनाच्च प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) पक्षद्वयोपपादनपूर्वकं प्रत्ययार्थेनेति वक्तव्ये प्रत्ययार्थविशेषणेनेत्युक्तेरर्थमाह—पदेति । प्रत्ययार्थविशेषणमित्यस्य प्रत्ययार्थपरिच्छेदकमित्यर्थः ॥ प्रकृतिविशेषणेति । भाष्ये प्रकृत्यर्थविशेषणमित्यस्य प्रकृतेरर्थद्वारा विशेषणमित्यर्थ इत्यभिमानः ॥ वस्तुतः प्रकृत्यर्थस्य पाकादेर्विशेषणमित्यर्थः ॥ योतकचोत्पत्त्यस्य विशेषणत्वनियमात् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

युक्तं पुनरिदं विचारयितुम् । नन्वेनेनासंदिग्धेन प्रत्ययार्थविशेषणेन भवितव्यम्, यावता 'हेतुमति च' इत्युच्यते । यदि हि प्रकृत्यर्थविशेषणं स्याद्; 'हेतुमतः' इत्येव ब्रूयात् ॥

( प्रदीपः ) हेतुमत इति । हेतुमदर्थाभिधायिन इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) धातोः शब्दस्य प्रागुक्त हेतुमत्त्वासंभवादाह—हेतुमदर्थेति । हेतुमदर्थविशेषणकार्याभिधायिन इत्यर्थः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति । भवन्ति हि विषयसप्तम्योऽपि । तद्यथा—'प्रमाणे यत्प्रातिपदिकं वर्तते' 'स्त्रियां यत् प्रातिपदिकं वर्तते' इति ॥ एवमिहापि 'हेतुमत्यभिधेये णिज्भवति' इति, 'हेतुमति वा यो धातुर्वर्तते' इति जायते विचारणा ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये—विषयसप्तम्योपीति प्रमाणे इत्यादेस्तद्विषयकबोधजनकं प्रातिपदिकमित्यादिक्रमेणार्थ इत्याहुः ॥

१ णिजुत्पत्तेः प्राक् प्रेषणाद्यर्थभावेन तन्निरूपितकारकत्वाभावेन हेतुत्वस्याप्यभावादित्यर्थः । ( र. ना. )

२ तत्पदार्थो हेतुमात्र । ( र. ना. )

३ अनुपदवक्ष्यमाणभाष्ये ।

४ प्रेषणादिरूपप्रत्ययार्थोपलक्षणमित्यर्थः । प्रेषणादेस्तदानीमनभिधेयत्वेन मन्वस्य तद्विशेषणत्वासंभवादिनि भावः । ( र. ना. )

अनुपदवक्ष्यमाणभाष्ये ।

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १७७० प्रत्ययार्थविशेषणतावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हेतुमतीति कारकोपादानं

प्रत्ययार्थपरिग्रहार्थम् यथा

'तनूकरणे तक्षः' ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हेतुमतीति कारकमुपादीयते । किं प्रयोजनम् ? । प्रत्ययार्थपरिग्रहार्थम् । एवं सति प्रत्ययार्थः सुपरिगृहीतो भवति । यथा "तनूकरणे तक्षः" इति—तनूकरणमुपादीयते ॥

( प्रदीपः ) कारकोपादानमिति । कारकशब्देन प्रत्ययार्थ उच्यते स हि प्रत्ययं करोति निष्पादयति ॥ प्रत्ययार्थ इति । प्रत्ययस्यार्थः प्रयोजनं स सुष्ठु परिगृहीतः परिपूर्णो भवति । वाचकत्वात् प्रत्ययस्य । प्रकृतिविशेषणे तु प्रत्ययस्यानुवादकत्वाद् योतकत्वात्प्रयोजनमपरिपूर्णं स्यादित्यर्थः । अथ वार्थोऽभिधेयमुच्यते, स चान्वयव्यतिरेकाश्रयव्यवस्थत्वात् प्रेषणादिः प्रत्ययस्यैव न प्रकृतेरिति सुष्ठु परिगृहीतो व्यवस्थापितो भवति ॥ यथा तनूकरण इति । यदा विकरणार्थाः कर्त्रादय इति पक्षस्तदा तनूकरणशब्देन कर्ताभिधीयते तदा साधर्म्येण दृष्टान्तः । यदा तु सार्वधातुकार्थाः कर्त्रादय इति पक्षस्तदा वैधर्म्येण दृष्टान्त इति व्याख्यानम् । यथा तनूकरणं प्रकृत्यर्थो न तथा हेतुमद्व्यापार इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) हेतुमच्छब्दस्य प्रेरणापरत्वात्कारकोपादानमित्यसंगतमत आह—कारकशब्देनेति ॥ अन्वयव्यतिरेकाश्रयेति । पञ्चभिर्हलैः कृषतीत्यादौ पञ्चभिर्हलैरित्यस्यानन्वयात् वाचकान्तराभावाच्च धातोर्लक्षणेति भावः ॥ कर्ताभिधीयत इति । बाहुलकात्कर्तार्येण इति भावः ॥ तनूकरणस्य धात्वर्थत्वं विना तत्कर्तारि कथं प्रत्ययः स्यादिति तदर्थक्षिप्तमिति बोध्यम् ॥

( प्रकृत्यर्थविशेषणतासाधकभाष्यम् )

यदि तर्हि तद्वत्प्रकृत्यर्थविशेषणमिदं भवति । प्रकृत्यर्थविशेषणं हि तत्तत्र विशायते—'तनूकरणक्रियायां तक्षः' इति ।

( प्रदीपः ) परस्तु साधर्म्येण दृष्टान्तं सार्वधातुकत्वं च कर्त्रादीनां मन्यमान आह—यदीति ।

( उद्ध्योतः ) यदि इदं तद्वत् तर्हि प्रकृत्यर्थविशेषणमेव भवतीति भाष्येऽन्वयः ॥

६ स्वचोत्पत्त्यस्य प्रकृत्यर्थत्वेऽपि विशेषणत्वेन तद्व्यापारप्रकृतेर्विशेषणमित्यर्थः । ( र. ना. )

७ 'णत्वे तु' ॥

८ आश्रयान्तं बहुव्रीहिणा व्यवस्थाविशेषणं तत्रापि बहुव्रीहिः । ( र. ना. )

९ एकस्य देवदत्तस्य पञ्चभिर्हलैः कर्षणासंभवादिति भावः । ( र. ना. )

१० सार्वधातुकार्थत्वञ्चेति पाठः साधुर्भाति । ( र. ना. )

११ 'यदि तर्हि' ॥

( प्रकृत्यर्थविशेषणत्वाभ्युपगमभाष्यम् )

अस्तु प्रकृत्यर्थविशेषणम् । को दोषः ? ।

( प्रदीपः ) अस्त्विति । विनापि णिच् पञ्चभिर्हलैः कृषतीति प्रयोजकव्यापारावगमात् प्रकृत्यर्थत्वं हेतुमत उपपद्यते । पचतीत्यादौ तु द्योतको णिजास्तीति तदप्रतिपत्तिरिति भावः ॥

( उद्घोतः ) अस्त्वित्यनेन तत्पक्षोपपत्तिः सूचिता तामाह— विनापीति ॥ द्योतको णिजास्तीति । कृषतीत्यादौ तु पञ्चभिर्हलैरिति एकान्ते तूष्णीमासीनत्वादिकं च तदुद्घोतकमिति भावः ॥

( प्रकृत्यर्थविशेषणपक्षदूषणप्रदर्शनभाष्यम् )

इह हि—उक्तः करोति, प्रेषितः करोतीति णिच् प्राप्नोति ॥ प्रत्ययार्थविशेषणे सति पुनर्न दोषो भवति । स्वशब्देनोक्तत्वात् न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) उक्तः करोतीति । प्रकृतिविशेषणपक्षे यथा प्रकृत्यभिहिते प्रयोजकव्यापारे णिच् भवति, एवमुक्तप्रेषितादिशब्दाभिहितेऽपि प्राप्नोति । हेतुमद्विषयत्वात्करोत्यर्थस्य ॥ प्रत्ययार्थविशेषणपक्षे तूक्तार्थत्वाद् णिजभावः ॥

( उद्घोतः ) एवमुक्तप्रेषितेति । प्रकृतिविशेषणपक्षे शब्दान्तराभिहितद्योतनायैव णिच्प्रवृत्तिरिति भावः ॥ हेतुमद्विषयत्वादिति । प्रयोजकव्यापारविषयत्वादित्यर्थः । हेतुमतीत्यस्य विषयसप्तमीत्वादिति भावः ॥

( प्रकृत्यर्थविशेषणपक्षेऽपि दोषाभावप्रतिपादकभाष्यम् )

प्रकृत्यर्थविशेषणेऽपि सति न दोषः । यत्र नान्तरेण शब्दमर्थस्य गतिर्भवति, तत्र शब्दः प्रयुज्यते । यत्र ह्यन्तरेणापि शब्दमर्थस्य गतिर्भवति न तत्र शब्दः प्रयुज्यते ॥

( प्रदीपः ) यत्रेति । यस्यार्थस्य द्योतनाय णिज्विधीयते स यदा शब्दान्तरावगतो भवति तदा प्रयोजनाभावाद् णिज भवतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) शब्दान्तरेति । वाचकशब्दान्तरेत्यर्थः ॥

( प्रकृत्यर्थविशेषणपक्षे दूषणभाष्यम् )

इह तर्हि पाचयत्योदनं देवदत्तो यद्भदत्तेनेति उभयोः कर्त्रोलेनाभिधानं प्राप्नोति ॥ प्रत्ययार्थविशेषणे सति पुनर्न दोषः । प्रधानकर्तरि लादयो भवन्तीति प्रधानकर्ता लेनाभिधीयते । यश्चात्राभिधानं कर्ता, सिद्धा तत्र कर्तरीत्येव तृतीया ॥

( प्रदीपः ) उभयोरिति । धातुवाच्यस्य व्यापारस्य

कर्तरि लकारेणोत्पत्तयम् । यदा च पचिना द्वयोरपि प्रयोज्य-प्रयोजकयोर्व्यापारोऽभिधीयते णिच्प्रत्ययः केवलं स्वार्थिकत्वात् प्रयोजकव्यापारस्य द्योतकस्तदा धातुवाच्यव्यापारसाम्यात् कर्त्रोरपि साम्यमिति द्वयोरप्यभिधानं स्यात् । ततः पाचयतो देवदत्तयज्ञदत्ताविति प्रसज्येतेत्यर्थः ॥ प्रधानकर्तेति । प्रकृत्यर्थोपसर्जनत्वाद् ण्यर्थस्य प्राधान्यात्तस्य कर्तापि प्रधानमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) यदा चेति । पच्यादिभिः पाकानुकूलत्वेन द्वयोरप्यभिधानमिति मते इदं भाष्यमिति भावः ॥ एवं चोभयोरपि व्यापारयोः समकक्षत्वेन विशेष्यविशेषणभावानापन्नतयोभयोरपि कर्त्रोः प्राधान्यमिति हृदयम् । अत एवात्र पक्षे प्रयोज्यस्य कर्मत्वं नापादितम् । प्रयोज्यव्यापारस्य विशेषणतयाऽबोधेन तस्य फलत्वाभावेन फलश्रयत्वाभावात् । गत्यादि सूत्रं चैतत्पक्षे विष्यधमेवेति बोध्यम् । परे त्वेवं हि प्रकृत्यर्थविशेषणमिति भाष्याक्षरासंगतिः । तस्मात्प्रवर्तनाप्रयोज्यः पाकः पचैरर्थः तत्रान्यानधीनत्वलक्षणमार्थं प्राधान्यं प्रयोजकव्यापारस्य, शाब्दं च प्रयोज्यव्यापारस्येत्युभयाश्रयोः कर्तृत्वम् स्वतन्त्रः कर्तृत्वोभयविधप्राधान्यस्यापि विनिगमनाविरहेण ग्रहात् ॥ एवं च ण्यन्तोत्तरत्वेन पर्यायेण द्वयोरप्यभिधानापत्तिरिति भाष्याशयः । प्रधानकर्तरीति । प्रकृतिभूत-ण्यन्तार्थकर्तरीत्यर्थः । प्रयोज्य कर्ता तु पच्यर्थस्य, न तु ण्यन्तार्थस्येति न ण्यन्तप्रकृतिकत्वेन तदभिधानमिति भावः ॥ प्रधानकर्ता । सैप्रकृत्यर्थप्रधानव्यापाराश्रयरूपः कर्तृत्वार्थः ॥ अप्रधानमिति । णिच्प्रकृत्यर्थप्रधानव्यापाराश्रय इत्यर्थः ॥

( प्रकृत्यर्थविशेषणपक्षदूषणभाष्यम् )

इह च 'गमितो ग्रामं देवदत्तो यद्भदत्तेनेति अव्यतिरिक्तो गत्यर्थ इति कृत्वा "गत्यर्थानां कः कर्तरी"ति कर्तरि कः प्राप्नोति ॥

इह च व्यतिभेदयन्ते व्यतिच्छेदयन्त इति अव्यतिरिक्तो हिंसार्थ इति कृत्वा "न गतिर्हिंसार्थेभ्य" इति प्रतिषेधः प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) गमित इति । प्रयोजकव्यापारस्य गमिवाच्यत्वात्तस्य कर्तरि प्रयोजके कः प्राप्नोतीत्यर्थः । प्रयोज्यस्य तु कर्मत्वात्तत्रैव क इष्यते । तदुक्तम्—'अप्रधाने दुहादीनां ण्यन्ते कर्तुश्च कर्मणः' इति ॥

व्यतिभेदयन्त इति । प्रयोजकव्यापारस्य व्यतिहारो न तु प्रयोज्यव्यापारस्येति द्रष्टव्यम् ।

( उद्घोतः ) अव्यतिरिक्त इति । प्रयोजकव्यापारवाचका-

१ हेतुमदुद्घोतकमित्यर्थः । ( र. ना. )

२ 'प्रकृत्या' ॥

३ 'मद्विशेषणत्वा' ।

४ हेतुमते वचनप्रेषणादेर्विषयत्वात्कार्यत्वादित्यर्थः । ( र. ना. )

५ 'सति न दोषः' ॥

६ '—धानं सिद्धा' ॥

७ प्रकृत्यर्थ उपसर्जनं यत्रेति बहुव्रीहिः । तस्येति । ण्यर्थस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

८ इदं चिन्त्यम् । ण्यन्तधातुजन्यबोधे ण्यर्थस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यत्वेऽपि हेतुमति चेति सूत्रजन्यबोधे हेतुमति यो धातुरित्यनया रीत्या हेतुमतीत्यस्य धातुविशेषणत्वेन 'प्रकृत्यर्थविशेषण'मिति भाष्याक्षरसामं, लोपपत्तेः । ( र. ना. )

९ लप्रकृतीत्यर्थः । ( र. ना. )

१० स्वशब्देन लादीनां ग्रहणम् ॥

तिरिक्तावाच्य इत्यर्थः । निचस्तदर्थकर्त्तुं तु प्रयोजककर्ता न गत्यर्थ-  
कर्ता किंतु प्यन्तकर्तेति न दोष इत्याहुः ॥

ननु प्रत्ययार्थविशेषणपक्षेऽपि कथमत्रात्मनेपदम् हिंसासू-  
प्रयोज्यव्यापारस्यैव व्यतिहारो न तु निजवाच्यप्रयोजकव्यापारस्य  
सोऽत आह—प्रयोजकव्यापारस्य व्यतिहार इति ॥

( प्रत्ययार्थविशेषणपक्षाभ्युपगमभाष्यम् )

अस्तु तर्हि प्रत्ययार्थविशेषणम् ।

( प्रत्ययार्थविशेषणपक्षदूषणभाष्यम् )

यदि प्रत्ययार्थविशेषणं, पाचयत्योदनं देवदत्तो  
यज्ञदत्तेनेति प्रयोज्ये कर्तरि कर्मसंज्ञा प्राप्नोति ।  
भवति हि तस्य तस्मिन्नीप्सा ।

इह च ग्रामं गमयति ग्रामाय गमयतीति व्यति-  
रिक्तो गत्यर्थ इति कृत्वा “गत्यर्थकर्मणी”ति द्विती-  
याचतुर्थ्यौ न प्राप्नुतः ॥

इह चैधोदकस्योपस्कारयतीति व्यतिरिक्तः करो-  
त्यर्थ इति कृत्वा “कृजः प्रतियत्ने”इति षष्ठी न  
प्राप्नोति ॥

इह च मेदिका देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य काष्ठाना-  
मिति प्रयोज्ये कर्तरि षष्ठी न प्राप्नोति ॥

इह चाभिषावयति परिषावयतीति व्यतिरिक्तः  
सुनोत्यर्थ इति कृत्वा “उपसर्गात्सुनोतिसुवती”-  
त्यादिना षट्वं न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) भवति हीति । प्यर्थस्य प्राधान्यात्तद्व्यापा-  
रेणेप्सिततमत्वात् प्रयोज्यस्येत्यर्थः । प्रकृत्यर्थविशेषणत्वे तु  
द्वयोरपि प्रयोज्यप्रयोजकव्यापारयोरेकधातुवाच्यत्वाद्धातुवाच्य-  
व्यापारापेक्षया द्वयोरपि कर्तृत्वाद्धेनाभिधानं प्राप्नोतीति दोष  
उक्तः ॥

ग्रामं गमयतीति । प्यर्थस्यैव ग्रामः प्रयोज्यश्च कर्मेति  
भावः ॥

षष्ठी न प्राप्नोतीति । प्यर्थकर्मत्वादिति भावः । सुद तु  
करोति धात्वाश्रयत्वाद् निजुत्पत्तावपि तद्रूपसंज्ञिधानात्सिध्यत्ये-  
वेति तन्नाच्युदत् ॥

प्रयोज्ये कर्तरीति । तस्याप्राधान्यादिति भावः ॥

अभिषावयतीति । प्यर्थस्योपसर्गो विशेषक इति भावः ॥

( उद्घोतः ) तद्व्यापारेणेप्सिततमत्वादिति । तद्व्यापार-  
प्रयोज्यव्यापाररूपफलाश्रयत्वादित्यर्थः ॥ भाष्ये—तस्य प्रयो-  
जकस्य ॥ तस्मिन् । प्रयोज्ये ॥ एतेन स्वव्यापारे स्वातन्त्र्यात्परत्वे-  
नान्तरङ्गत्वेन ‘च कर्तृत्वमेवेत्यपास्तम् ॥ अन्तरङ्गादपि प्रधानकार्यस्य  
लोके बलवत्ताया दर्शनादिति भावः ॥ एकधातुवाच्यत्वादिति ।  
प्यन्तप्रकृतिधातुवाच्यत्वादित्यर्थः ॥

ननु प्रयोज्यस्य प्यर्थव्यापारापेक्षया कर्मेत्वेऽपि ग्रामादेशं प्यर्थ-  
निरूपितमेव कर्मत्वमत आह—प्यर्थस्यैवेति । प्राधान्यादित्यादिः ।  
उत्तरदेशसंयोगे प्यर्थव्यापारजन्यत्वस्यापि सत्त्वादिति भावः ॥

प्रतियत्नवाचि करोत्यपेक्षया सुदृष्योर्विधावविशिष्टे षष्ठ्यप्राप्ति-  
रेव कथमुक्तं तत आह—सुदृष्यत्वि । कर्मणि विधानादर्थसापेक्षा  
षष्ठी । उपात्प्रतियत्न इति सुदृ धातुस्वरूपापेक्ष इति भावः ॥

तस्याप्राधान्यादिति । कृत्प्रकृत्यर्थकर्त्रादौ हि तेन षष्ठी । कृत्प्रकृ-  
तिश्च प्यन्ता । एवं च तदर्थकर्तार्येव स्यात्, ननु निच्—प्रकृ-  
त्यर्थकर्तरि ॥ प्राधान्यं च कृत्प्रकृत्यर्थकर्तृत्वमेवेति बोध्यम् ।

( प्रत्ययार्थविशेषणपक्षे प्रथमदूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । यत्तावदुच्यते—पाचयत्योदनं देव-  
दत्तो यज्ञदत्तेनेति प्रयोज्ये कर्तरि कर्मसंज्ञा प्राप्नो-  
तीति ॥ “गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मका-  
णामणी”त्येतन्नियमार्थं भविष्यति—‘एतेषामेव  
प्यन्तानां यः कर्ता स णौ कर्मसंज्ञो भवति, नान्ये-  
षाम्’ इति ॥

( प्रदीपः ) एतेषामेवेति । प्यर्थस्य प्राधान्यात्तेनेप्सित-  
तमस्य प्रयोज्यस्य सिद्धा कर्मसंज्ञा । न च स्वव्यापारापेक्षया  
स्वातन्त्र्यात् परत्वात्कर्तृसंज्ञा प्राप्नोतीति युक्तं वक्तुम् । प्रयोज्य-  
व्यापारस्याप्राधान्यात् प्रधानाप्रधानव्यापारसंनिधौ च प्रधान-  
निमित्तस्य कार्यस्य युक्तत्वात् ॥ नियमेन तु प्रधानप्रयुक्तकार्य-  
व्यावृत्तौ गुणनिमित्तकार्यसिद्धावात्कर्तृत्वं भवत्येव ॥ तदुक्तं  
हरिणा—

‘गुणक्रियायां स्वातन्त्र्यात् प्रेषणे कर्मेतां गतः ।  
नियमात्कर्मसंज्ञायाः स्वातन्त्र्येणाभिधीयते’ इति ॥

( उद्घोतः ) नियमत्वे उपपत्तिमाह—प्यर्थस्येति ॥ पर-  
त्वादिति । अन्तरङ्गत्वादुपजीव्यत्वाच्चेत्यपि बोध्यम् ॥ प्रधानेति ।  
सर्वापेक्षया प्रधानकार्यस्य बलवत्त्वात् । न चोद्देश्यतालक्षणमार्थं  
प्राधान्यं प्रयोज्यव्यापारस्यापि, अन्यानधीनत्वलक्षणार्थं प्राधान्यस्य  
प्रयोजकव्यापारेऽपि सत्त्वात् । शब्दशास्त्रे शब्दप्राधान्यस्यैव मुख्य-  
त्वाच्चेति भावः ॥

गुणेति । प्रेषणे कर्मेतां प्राप्तोऽपि पदार्थः कर्मसंज्ञायां नियमा-  
दप्राप्त्या गुणक्रियायां स्वातन्त्र्याच्च स्वधर्मेण कर्तृत्वेनाभिधीयत  
इत्यर्थः ॥ स्वातन्त्र्येणेति पाठेऽपि कर्तृत्वेनेत्येवार्थः ।

( प्रत्ययार्थविशेषणपक्षे द्वितीयदूषणपरिहारभाष्यम् )

यदप्युच्यते—इह च ग्रामं गमयति ग्रामाय गम-  
यति इति व्यतिरिक्तो गत्यर्थ इति कृत्वा “गत्यर्थ-  
कर्मणी”ति द्वितीयाचतुर्थ्यौ न प्राप्नुत इति ॥ नासा-  
वेवं प्रेष्यते—‘गच्छ’ग्राममिति । कथं तर्हि ? साध-

१ निजप्रयोजकव्यापारवाचकातिरिक्तवाच्यो व्यतिरिक्त इति ।

२ ‘तद्व्यापारे’ ॥

३ ‘प्यर्थस्य कर्म’ ॥

४ तदर्थेति । प्यन्ताथेत्यर्थः ॥

५ ‘वक्तुं युक्तम्’ ॥

६ उभयत्रापि प्रेष्यते पदं प्राप्यते इत्यर्थकम् । ( र. ना. )

नविशिष्टां क्रियामसौ प्रेष्यते ग्रामं गच्छ ग्रामाय गच्छेति ॥

( प्रदीपः ) नासाविति । ग्रामः प्रकृत्यर्थस्य कर्म न तु पृथग्यथार्थः ॥ साधनविशिष्टामिति । ग्रामकर्मिको गमन-क्रियां प्रयोज्यः प्रेष्यति ग्रामोतीत्यर्थः । स च प्रेष्यते प्राप्यते ॥

( उद्घोतः ) ग्रामः प्रकृत्यर्थस्येति । गमेः सकर्मत्वेनावश्यं कर्मापेक्षत्वात् । पृथग्यस्य कर्माकाङ्क्षायाः प्रयोज्यकर्मणा शान्तत्वाच्चेति भावः । साधनविशिष्टां क्रियामसौ प्रेष्यत इत्यत्र कथं द्विकर्मकत्वं कथं च प्रयोज्ये कर्मणि लकार इत्यत आह—ग्रामोतीति । तथा च प्रपूर्वं इषिः प्राप्त्यर्थः । तस्मात्पण्यन्तात्कर्मणि प्रत्यये प्रेष्यत इतीति भावः ॥ ग्रामोतीत्यर्थ इति पाठे प्रेष्यतिपदस्य स्वोक्तस्येदमर्थक-थनं न तु 'भाष्ये तथा पाठः' इति त्रिमितव्यम् ॥

( तृतीयदूषणपरिहारभाष्यम् )

यदप्युच्यते—इह च 'पधोदकस्योपस्कारयतीति व्यतिरिक्तः करोत्यर्थ इति कृत्वा "कृजः प्रतियत्न" इति षष्ठी न प्राप्नोतीति ॥ नासावेवं प्रेष्यते—उप-स्कुरुष्वैधो दकस्येति । कथं तर्हि साधनविशिष्टां क्रियामसौ प्रेष्यते पधो दकस्योपस्कुरुष्वेति ॥

( चतुर्थदूषणपरिहारभाष्यम् )

यदप्युच्यते—'इह' भेदिका देवदत्तस्य यज्ञद-त्तस्य काष्ठानामिति प्रयोज्ये कर्तरि षष्ठी न प्राप्नो-तीति ॥ उक्तं तत्र कृद्ग्रहणस्य प्रयोजनं कर्तृभूत-पूर्वमात्रेऽपि षष्ठी यथा स्यादिति ।

( प्रदीपः ) कर्तृभूतपूर्वमात्रेऽपीति । प्रधानचरेऽपि कर्तरीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भूतपूर्वत्वस्यानुपपत्तेराह—प्रधानचरेऽपीति । कृत्प्रकृतिषट्कधात्वर्थकर्तृव्यपीत्यर्थः । तत्सूत्रस्यकृद्ग्रहणमावृत्येतदर्थ-कमपीति भावः ।

( पञ्चमदूषणपरिहारभाष्यम् )

यदप्युच्यते—इह चाभिपावयति परिषावयतीति व्यतिरिक्तः सुनोत्यर्थ इति कृत्वा "उपसर्गात्सुनो-तीत्यादिना षट्वं न प्राप्नोतीति" इति ॥ नासावेवं प्रेष्यते 'सुनु'अभीति । कथं तर्हि ? उपसर्गविशिष्टां क्रिया-मसौ प्रेष्यते अभिषुण्विति ॥

( प्रदीपः ) सुनु अभीति । न प्रयोजकव्यापारस्याभि-मुख्यमभिषन्देन द्योत्यते । अपि तु प्रयोज्यव्यापारस्यैवेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) अपि त्विति । एवं चोभेन<sup>१</sup> कदाचिदपि पृथक्-

विशेषणतेति भावः ॥ भाष्यसंमतेन कैयटेन प्रयोज्यव्यापारस्यैव-लेवकारेण तु तदाभिमुख्यद्योतकत्वाभाव एवामेकैभ्यत इति बहवः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

युक्तं पुनरिदं विचारयितुम् । नन्वेनासंदिग्धेन प्रत्ययार्थविशेषणेन भवितव्यम् । यावता व्यक्तम-र्थान्तरं गम्यते पचति पाचयतीति च ॥

( प्रदीपः ) युक्तं पुनरिति । संदेह एव विचारनिमित्तं नोपपद्यते । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां भूयोदर्शनविषयाभ्यां प्रत्य-यार्थविशेषणपक्षस्यैवोपपन्नत्वादिति भावः ।

( उद्घोतः ) यद्यपि पूर्वं 'प्रमाणे द्वयसच्' 'शेवे' संभूते इति सप्तमीनिर्देशस्योभयथापि दर्शनाद्विचार उपपादितस्तथापि अन्वयव्य-तिरेकाभ्यामिदानीं विचार आक्षिप्यत इत्याह—अन्वयेति ॥ भाष्ये व्यक्तमर्थान्तरं गम्यत इति । पण्यन्ताप्यन्ताभ्यां परस्परस्मादिति शेषः ॥

( समाधानभाष्यम् )

बाढं युक्तम् ॥ इह पचेः कः प्रधानार्थः ? । याऽसौ तण्डुलानां विक्रित्तिः ।

अथेदानीं तदभिसंधिपूर्वकं प्रेषणमध्येषणं वा । युक्तं यत्सर्वं पच्यर्थः स्यात् ॥

( प्रदीपः ) यासाविति । तदर्थत्वात्कारकग्रामस्य तद-नन्तरं फलोत्पादादिति भावः । तदुक्तं हरिणा—

'अनन्तरं फलं यस्याः कल्प्यते तां क्रियां विदुः ।

प्रधानभूतां तादर्थ्यादभ्यासां तु तदाख्यता ॥' इति ॥

तत्र यथाधिभ्रयणादयस्तादर्थ्यात्पचिवाच्यास्तथा प्रेषणादि-रपि । द्योतकस्तु निजपेक्षयत इत्यर्थः । न च कारकाणामपि तादर्थ्यात्पच्यभिधेयत्वप्रसङ्गः, तेषामक्रियारूपत्वाद्वातोश्च क्रि-यावाचित्वाद् ॥ विक्रित्तिश्चात्र फलानन्तरव्यापारोपलक्षणमि-ष्टकाः पचन्तीत्यादौ तस्यासंभवादित्याहुः ॥ पच्यर्थः स्या-दिति । संभावने लिङ् । संभाव्यते पच्यर्थत्वं प्रेषणादेः ॥ अत एव संशयाद्विचार्य प्रत्ययार्थविशेषणपक्षो भाष्यकारेण व्यवस्थापितस्तदोषाणां परिहृतत्वात् पक्षान्तरे दोषाणां चापरि-हारात् ॥ अथवा प्रकृत्यर्थविशेषणपक्षोऽपि स्थापित-स्तत्पक्षभाविनां दोषाणां सुपरिहरत्वात् । तथा हि—यदुक्तं द्वयोः कर्त्रोर्लैनाभिधानं प्राप्नोतीति ॥ नायं दोषः । प्रकृत्या प्रयोज्यव्यापारोपसर्जनस्य प्रयोजकव्यापारस्याभिधानात्तस्यैव निचा द्योतनात् प्रधान एव कर्तरि लो भविष्यति नाप्रधाने ॥ निचा द्योतकेन प्रधानभूतगत्यर्थत्वं निवर्तितं गमनारूपस्य प्रधानस्यार्थाभिधानादिति पण्यन्ताद् प्रयोजककर्तरि कस्यानु-

१ केवलं गमनप्रेरणया निचितं जाते कर्माकाङ्क्षायां ग्रामस्यान्वये ग्रामस्य निज-नकर्मत्वेन गत्यर्थकर्मत्वाभावाच्चतुर्थ्या अप्राप्तिराशङ्किता परंतु पूर्वमेव ग्रामकर्मक-गत्यर्थमेव प्रेरणा जायते इति पूर्वमेव ग्रामस्य गत्यर्थकर्मत्वाच्चतुर्थ्या जाता । ततश्च गमेर्निज गत्यर्थे इति भाष्यसंदर्भार्थः ॥ इति दादिमथाः ॥

२ इदानीमेव कर्तृत्वस्य वायमानत्वेनेति शेषः । ( र. ना. )

३ निजुत्पत्त्यनन्तरं नोपसर्गसंबन्धः किंतु—सोपसर्गात्पच्यर्थप्रेरणायामेव सोप-

सर्गारेव निच् । परंतु अडादिकार्ये करणीये उपसर्गस्य पृथक्कृतिरेव करणीयेति भावः ॥

४ बहुव्रीहिः । ( र. ना. )

५ अथति किञ्चेत्यर्थः । इदानीमित्यस्य विक्रित्तेः प्राणित्यर्थः । विक्रित्तो उदे-श्यत्वलक्षणमार्थं प्राधान्यम्, प्रेषणादौ तु शाब्दं तत् । ( र. ना. )

त्वत्तिः । व्यतिभेदयन्त इत्यत्रापि हिंसनालक्षणः प्रधानं धात्वर्थो न तु हिंसारूप इत्यात्मनेपदनिषेधाभावः ॥

( उद्घोतः ) विहितेः प्रधानार्थत्वे युक्तिमाह—तदर्थत्वादिति ॥ विहितिग्रहणं फलाव्यवहितपूर्ववर्तिव्यापारोपलक्षणम् । स्पष्टं चेदमनुपदं स्वयं वक्ष्यति । तदध्वनयन्नाह—तदनुन्तरं चेति ॥ तथा प्रेषणादिरपीति । विहित्यनुकूलत्वेनेत्यर्थः । वस्तुतः प्रवर्तनाप्रयोज्यत्वेन तस्य विशेषणता न्याय्या ॥ संभावने इति ॥ उपसंवादाशङ्कयोश्चेति सूत्रभाष्यपठितेनोपसंवादाशङ्कयोरिति लिङ्यनेन । तत्राशङ्कोपेक्षा । संभावनाऽप्युक्तकोटिकाशङ्कैवेति बोध्यम् ॥ भाष्ये तदभिप्रायपूर्वकमित्यस्य तद्विशेषणभूतमिति शेषः ॥ अपरिहारादिति । सर्वं पच्यर्थः स्यादिति युक्तम् । तथापि स पक्षो दुष्ट इति शेषः । दोषाणामुक्तत्वादिति भाष्यार्थ इति भावः ॥ अथवेति । अत्र पक्षे सर्वं पच्यर्थः स्यादिति यत् तद्युक्तमेवेति भाष्यार्थ इति भावः ॥ प्रयोज्यव्यापारेति । प्रयोज्यव्यापार उपसर्जनं यत्सेति विग्रहः । लोके प्रयोज्यप्रयोजकयोरुपप्रधानभावावगतेस्तद्व्यापारयोरपि तत्त्वमेवोचितम् । न तु फलानुकूलत्वेन समकक्षतया बोध उचितः ॥ एवं च वाचकतापक्ष इव द्योतकतापक्षेऽपि द्वयोर्व्यापारयोरुपप्रधानभावेनैवोपस्थितेः प्रधानकर्तुरेव तेनाभिधानमिति । अप्रधाने कर्तरि तृतीयादि भवति ॥

परे तु द्योतकत्वात्तस्य विशेषणतैवोचितेति भाष्योक्तदोषानुद्धारः । अत एवास्य पक्षस्य भाष्ये प्रकृत्यर्थविशेषणशब्देनोद्देशः । किं च प्यन्तात्प्रत्ययस्तत्प्रकृत्यर्थकर्तरि सामर्थ्यादित्यवश्यं वाच्यमेव तत्पक्षे ॥ एवं च प्रयोज्ये कर्तरि तृतीयेव लकारोऽपि दुर्वारः । दुहादीनामप्रधाने कर्मण्यपि लादिस्वीकारेण लादिविधौ कर्तृकर्मांशे प्रधानाप्रधानन्यायाप्रवृत्तेरुचितत्वाच्च । वाचकत्वे तु न दोषः । प्रयोज्यस्य प्यन्तप्रकृत्यर्थकर्तृत्वेऽपि प्यन्तकर्तृत्वाभावात्तत्र कर्तरि प्यन्तात्प्रत्ययानुपपत्तेः । एवमन्यथोरपि दूषणत्वमेवेत्याहुः ॥ णिचेति । प्राधान्येनोत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारार्थक एव गत्यर्थः [ इति भावः । ] अर्थग्रहणसामर्थ्यादिति बोध्यम् ॥ व्यतीति । सोऽपि प्रागुक्तयुक्त्यैव प्रधानभूतप्राणवियोगानुकूलव्यापारार्थक एवेति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ हेतुमतीति को मत्वर्थः ॥

( प्रदीपः ) अथेति । यद्यपि षष्ठ्यर्थः सप्तम्यर्थश्च मत्वर्थत्वेन निर्ज्ञातस्तथापि हेतुशब्दस्यानेकार्थत्वे सति हेत्वर्थापरिज्ञानात्तद्विशिष्टस्यापि मत्वर्थस्यापरिज्ञानात् प्रश्नः । स चार्थाद्धेतुविषय एवावतिष्ठते को हेतुरिति किंप्रयोजको हेतुः, अथ निमित्तमात्रम् ॥

१ प्रवर्तनाप्रयोज्या विहितिरित्येवं रीत्या शब्दबोधे प्रवर्तनारूपस्य णिज-  
धेयस्य विशेषणेत्यर्थः । अत्र यद्वक्तव्यं तत्प्रगोक्तम् । ( र. ना. )

२ द्योतकत्वपक्षे णिचोऽनर्थकत्वादिति भावः । तत्पक्ष इति । द्योतकत्वपक्ष इत्यर्थः । ( र. ना. )

३ गमितो ग्रामं देवदत्तो यज्ञदत्तेनेत्यत्र गत्यर्थानां कर्तरि इति कर्तरि कः प्राप्नोति । व्यतिभेदयन्ते व्यतिच्छेदयन्ते इत्याव्यतिरिक्तो हिंसार्थ इति कृत्वा न गतिर्हिंसाधेय इति प्रतिषेधः प्राप्नोतीत्युक्तयोरित्यर्थः । ( र. ना. )

४ गत्यर्थेत्येति शेषः । ( र. ना. )

( समाधानभाष्यम् )

हेतुः कर्तास्य स हेतुमतीति ।

( प्रदीपः ) हेतुः कर्तेति । हेतुः प्रयोजक इति भावः ॥

( उद्घोतः ) हेतुः प्रयोजक इति । तथा च पारिभाषिकस्यैव हेतोर्ग्रहणमिति भावः । वस्तुतस्तु को मत्वर्थ इत्यस्य किं पाकादिरुत प्रयोजकव्यापार इत्यर्थः । कृत्रिमाकृत्रिमन्यायेन हेतुसंज्ञाविधानसामर्थ्येन च तस्यैव ग्रहणं भविष्यतीति प्रश्नानौचित्यात् हेतुकर्तास्येति प्रयोजकव्यापार एवेत्युत्तरम् ॥

( १७७१ निमित्तमात्रस्य हेतुशब्दार्थत्वसमर्थकवार्तिकम् ॥ २॥ )

॥ \* ॥ हेतुनिर्देशश्च निमित्तमात्रे, भिक्षादिषु दर्शनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हेतुनिर्देशश्च निमित्तमात्रे द्रष्टव्यः । यावद् ब्रूयाद्—निमित्तं कारणम्, तावद्—हेतुरिति । किं प्रयोजनम् ? । भिक्षादिषु दर्शनात् । भिक्षादिषु हि णिज् दृश्यते—‘भिक्षा वासयति’ कारीषोऽग्निरध्यापयतीति ॥

( उद्घोतः ) प्रयोजकस्य पारिभाषिकहेतुत्वेऽपि लक्ष्यानुरोधेनाह भाष्ये—हेतुनिर्देशश्चेति ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

किं पुनः कारणं परिभाषिके हेतौ न सिध्यति ? ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं मन्यते चेतनावत एतद्भवति—प्रेषणमध्येषणं चेति । भिक्षाश्चाचेतनाः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैष दोषः । नावश्यं स एव वासं प्रयोजयति य ‘इहोष्यताम्’ इति ब्रवीति किं तर्हि ? तूष्णीमप्यासीनो यस्तत्समर्थान्याचरति सोऽपि वासं प्रयोजयति । भिक्षाश्चापि प्रचुरा व्यञ्जनवत्यो लभ्यमाना वासं प्रयोजयन्ति ॥ तथा कारीषोऽग्निर्निर्वाते एकान्ते सुप्रज्वलितोध्ययनं प्रयोजयति ॥

( प्रदीपः ) नावश्यमिति । तत्समर्थाचरणमपि प्रयोजकव्यापारस्तत्सद्भावाधीनत्वात् प्रयोज्यक्रियासिद्धेरित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) परिभाषिकेऽपि लक्ष्यसिद्धिमाह—नावश्यमिति । तदाशयमाह—तत्समर्थेति ॥ भाष्ये ब्रवीतीत्यनेन तादृशशब्दप्रयोग एव मुख्या प्रवर्तनेति सूच्यते ॥

५ दाधिमथारु—‘को मत्वर्थः’ इत्यस्यायमाशयः—व्यापारस्याधेयत्वेन स न मत्वर्थः ‘शालवान् दण्डो’ ‘पर्वतवान् गौः’ इत्याद्यप्रयोगात् । किंतु तदुपवेशनस्थानादिरेव भवेत् । स चानिष्ट इति ॥ ‘हेतुः कर्ताऽस्य’ इत्युत्तरस्य त्वयमाशयः—सप्तम्यर्थस्यासंभवेऽपि षष्ठ्यर्थोऽङ्गीकार्यः । षष्ठ्यास्तु ‘राज्ञः पुरुषः’ ‘पुरुषस्य राजा’ इति ‘कारकस्य क्रिया’ ‘क्रियायाः कारकः’ इति ‘कर्तुं क्रिया’ ‘क्रियायाः कर्ता’ ‘कर्तृव्यापारः’ ‘व्यापारस्य कर्ता’ इत्येवमुभयविधव्यवहारदर्शनात्संभव एवेति इति वदन्ति ॥

६ ‘प्रयोज्यस्य क्रिया’ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह कश्चित्कन्निदाह 'पृच्छतु मा भवान्' 'अनुयु-  
ङ्क्तां मा भवान्' इति अत्र णिच् कस्मान्न भवति ? ।

( प्रदीपः ) पृच्छतु मा भवानिति । प्रष्टा प्रयोज्यस्तस्य  
प्रेरकः प्रयोजको भवतीति तद्व्यापारे णिच् कस्मान्न भवतीति  
प्रश्नः । एकविषयत्वालोढादेर्णिचश्च पर्यायप्रसङ्गः ॥

( उद्घोतः ) ननु प्रश्नक्रियाकर्तृतया कस्यचित्सिद्धभावा-  
त्प्रयोज्यस्याभावे प्रयोजकस्याप्यभावात् कथं णिच् शङ्का । तत्राह—  
प्रष्टेति । भावीति शेषः ॥ समानार्थत्वाद्युपलब्धेऽणिचोरप्रसक्ते-  
राह—एकविषयत्वादिति । वस्तुतस्तु लोडन्ते प्रयुज्यमानलोड-  
न्तशब्द एव प्रयोजकस्यापारः, तस्य सत्त्वाणिणच् स्यादिति प्रश्नाशयः ।  
पर्यायस्य प्रश्नविषयत्वे लोटोक्तत्वात्प्रेषणस्य णिच् न भविष्यती-  
त्युत्तरपरभाष्यासंगतिः । न हि पर्याये लोटोक्तत्वमस्ति । पर्यायो  
नाम कदाचिदलोडेव, कदाचिण्णजेवेत्याकारः ॥ ननूक्तः करोती-  
त्यत्रोक्तन्यायेनात्राणि णिचोऽप्राप्त्या भवदुक्तव्याख्याने भाष्यासंगति-  
रिति चेन्न । लोडन्तशब्दप्रयोगरूपप्रयोजकस्यापारस्य लोड्वाच्यत्व-  
मित्यभिमानेन शङ्कायाः सत्त्वात् । लोटोक्तत्वादित्युत्तरस्य चाय-  
माशयः स प्रेरणात्वेन लोड्वाच्य एवेति । एतच्च विधिनिमज्ज-  
णेति सूत्र उपपादयिष्यते । मज्जुषायां च निपुणतरमुपपादितम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

अकर्तृत्वात् । न हासौ संप्रति पृच्छति ।  
तूष्णीमास्ते ॥

( प्रदीपः ) अकर्तृत्वादिति । स्वतन्त्रस्य कर्तुः प्रयोजको  
हेतुरित्युच्यते प्रयोज्यश्चात्र कर्ता नेति प्रयोजको न हेतुसंज्ञ  
इत्यर्थः ॥ तूष्णीमिति । निर्व्यापारत्वात्कारकत्वमात्रमपि  
तस्य नास्ति कुतस्तद्विशेषः कर्तृत्वमित्यर्थः । कर्तृत्वमेव तस्या-  
धीयमानं 'प्रश्नक्रियायाः कर्ता त्वं भवेति । यथा राजा भव  
युद्धं खेति राजत्वमेवाधीयते । यस्तु प्रवृत्तक्रियः संभावितक्रियो  
वा प्रयोज्यः कर्ता तस्य प्रयोजको हेतुरित्यत्र णिजभावः ॥

( उद्घोतः ) न कर्तेति । तत्र प्रश्नक्रियाया अभावादिति  
भावः ॥ कुतस्तद्विशेष इति ॥ तूष्णीमास्ते इति भाष्यं कैमुति-  
कन्यायोपलक्षणं बोध्यम् ॥ आधीयमानं विधीयमानमित्यर्थः ॥  
इति लोटा कर्तृत्वस्याभिधानात्कथमकर्तृत्वमित्यपास्तम् ॥ तदुप-  
पादयति—यस्तु प्रवृत्तेति । अस्य विध्यर्थकलोडादिप्रयोगं विना-  
पीत्यादिः । प्रवृत्तक्रियोपि शैद्यय प्रेथत एव ॥

- १ द्वितीयास्तस्यास्यच्छब्दस्य मादेशो न तु निषेधार्थकः । ( र. ना. )
- २ लोडन्ते णिच् स्यादिति संबन्धः । ( र. ना. )
- ३ स्वशब्देनोक्तत्वात् भविष्यतीत्येवं रूपेणेति भावः । ( र. ना. )
- ४ लोड्वाच्यत्वमिति पाठो भाति । ( र. ना. )
- ५ अभिमानोक्तिर्बोधमेव दर्शयति । ( र. ना. )
- ६ विध्यर्थकलोडादिशब्दप्रयोगं विनाऽपि प्रवृत्तक्रियानिरूपितस्य संभावित-  
क्रियानिरूपितस्य वा कर्तृत्वस्याभावादित्यर्थः । प्रदीपोद्घोतपर्यालोचनया लभ्यते ।  
( र. ना. )
- ७ 'न कर्तेति प्रयोजको' इत्येव प्राचीनः पाठः पदमञ्जर्यानिपि लिखितः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं च भो वर्तमानकालाया एव क्रियायाः कर्त्रा  
भवितव्यम्, न भूतभविष्यत्कालायाः ॥

( प्रदीपः ) इतरो वर्तमानक्रियस्यैवानेन कर्तृत्वमुक्तमिति  
मत्वा चोदयति—किं च भो इति ॥

( समाधानभाष्यम् )

भूतभविष्यत्कालाया अपि भवितव्यम् । अभि-  
संबन्धस्तत्र क्रियते—इमां क्रियामकार्षीद्, [ इमां  
क्रियां ] करिष्यतीति ॥

( प्रदीपः ) अभिसंबन्ध इति । भूताया भविष्याश्च  
क्रियायाः कर्त्राभिसंबन्धो भूतो भावी च प्रतिपाद्यत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—अभिसंबन्ध इति । बुद्धिकृतोऽभि-  
संबन्ध इत्यर्थः ॥

( प्रागुक्ताकर्तृत्वोपपादनभाष्यम् )

इह पुनर्न कश्चिदभिसंबन्धः क्रियते । न चासौ  
संप्रति पृच्छति, न चासौ प्रक्षयति तूष्णीमास्ते ? ।

( उद्घोतः ) भाष्ये—न चासौ प्रक्षयतीति । लोडन्त-  
प्रयोगकृतप्रेरणां विनेत्यर्थः ॥

( अकर्तृत्वबाधकभाष्यम् )

यदि तर्हि कर्ता नास्ति । कथं तर्हि कर्तृप्रत्ययेन  
लोटाभिधीयते ? ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ कथमस्मिन्नपृच्छत्ययं पृच्छतिर्वर्तते ? ॥

( प्रदीपः ) अथ कथमिति । असत्यर्थे शब्दप्रयोगा-  
संभवात् ॥

( समाधानभाष्यम् )

अभिसंबन्धस्तत्र क्रियते—इमां क्रियां कुर्विति ॥

( प्रदीपः ) अभिसंबन्ध इति । बुद्धिपरिवर्तिन्यर्थे  
बहिरसत्यपि शब्दप्रयोगादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) बुद्धीति । बुद्ध्या विषयीकृतस्यैव सर्वत्र बोधात् ।  
प्रकृते च क्रियाया इव कर्तृत्वस्यापि तथाभूतस्यैव विधानमिति भावः ॥

( अकर्तृत्वबाधकभाष्यम् )

कर्त्रापि तर्ह्यभिसंबन्धः क्रियते । कथम् ? । 'कर्ता  
अस्या क्रियाया भवेति ॥

( अकर्तृत्वसाधकभाष्यम् )

एवं न च कर्ता कर्तृप्रत्ययेन लोटाभिधीयते ।

८ इतिशब्दः पूर्ववाक्यार्थस्य हेतुत्वं बोधयति । ( र. ना. )

९ अत्र प्रश्नक्रियैव नास्ति किमुत तन्निरूपितकारकत्वविशेषः कर्तृत्वमिति  
रीत्येति भावः । ( र. ना. )

१० आधीयमानकर्तृत्वस्य लोटाऽभिधानेऽपि प्रवृत्तक्रियानिरूपितस्य संभा-  
वितक्रियानिरूपितस्य वा कर्तृत्वस्याभावेनेत्यर्थः । ( र. ना. )

११ प्राचीनलिखितपुस्तकेषु नोपलभ्यते ॥

१२ एवं सति, प्रकृते कर्तृत्वस्याधीयमानत्वे सति अन्यत्र कर्तृबोधकेनापि  
प्रत्ययेन लोटा कर्ता न चाभिधीयते किन्तु कर्तृत्वरहितस्य द्रव्यमात्रस्य प्रे-  
षणाभिधीयते इति भाष्ययोजना । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) न च कर्तते । तस्यैवाधीयमानत्वात् । तदुक्तं हरिणा—

द्रव्यमात्रस्य तु प्रेषे पृच्छयादेर्लौङ् विधीयते । सक्रियस्य प्रयोगस्तु यदा स विषयो णिच इति ॥

( उद्ध्योतः ) आधीयमानत्वादिति । विधेयत्वादित्यर्थः ॥ द्रव्यमात्रस्य कर्तृत्वरहितस्य ॥ प्रयोगः प्रेषः ॥

( कर्तृत्वसद्भावेऽपि समाधानभाष्यम् )

अथापि कथंचित्कर्ता स्यात्, एवमपि न दोषः । लोटोक्तत्वात् प्रेषस्य णिञ् भविष्यति । विधीयन्ते ह्येतेष्वर्थेषु प्रेषादिषु लोडादयः ॥ यत्र च द्वितीयः प्रयोज्योऽर्थो भवति भवति तत्र णिच् । तद्यथा— आसय शाशयेति ।

( प्रदीपः ) अथापीति । दुर्बलपक्षाभ्युपगमेनापि परिहरोऽभिधीयत इति भावः ॥ लोटोक्तत्वादिति । एकविषयत्वाणिचो लोडादीनां च, पाक्षिकत्वाद्यदा लोडुत्पद्यते तदा तेनैवाभिहितत्वात् प्रेषस्य णिञ् न भविष्यति ॥

( उद्ध्योतः ) दुर्बलेति । ईदृशैकर्तुरपि यदि हेतुसंज्ञासूत्रे ग्रहणमिति भावः ॥ पाक्षिकत्वात् । पर्यायेण जायमानत्वात् ॥ एतद्भाष्येति शर्कः प्रागेवोक्तः ॥ कैयटोक्तव्याख्याने हि लोडुशिष्टे तद्वारेणोऽपि तदुक्तरीत्या शङ्किततात्पर्यविषयस्य पर्यायस्यावारणात् चिन्त्यमिदम् ॥ नन्वेवं णिजुलोटोः समावेशाभावे आसयेत्याद्यनुपपत्तिरत आह—भाष्ये यत्र च द्वितीय इति । प्रयोजकोऽपि प्यर्थो यदाऽन्यापेक्षया प्रयोज्यो भवति भवति तदा तयोः समावेश इत्यर्थः ॥

( १७७२ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ कृष्यादिषु चानुत्पत्तिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृष्यादिषु चानुत्पत्तिर्वक्तव्या । एकान्ते तूष्णीमासीन उच्यते पञ्चभिर्हलैः कृषतीति । तत्र भवितव्यं पञ्चभिर्हलैः कर्षयतीति ।

( प्रदीपः ) एकान्त इति । कृषावसामर्थ्यं दर्शयति ॥ तूष्णीमासीन इति । व्यापाराभावकथनम् ॥ कश्चिद्धि सामर्थ्यातिशयाद्युपपत्त्यभिर्हलैः कृषेत् पर्यायेण वेति तन्निराकरणाय एकान्ते तूष्णीमासीन इत्युक्तम् । तत्र पञ्चभिर्हलैर्भूमिमन्यैः कर्षयतीत्यर्थावगमाणिचि सति कृषतीति न प्राप्नोतीति तदनुत्पत्तिर्वक्तव्येत्यर्थः ॥

१ द्रव्यमात्रस्य तु कर्तृत्वरहितस्य प्रेषेऽभिधेये पृच्छयादेर्लौङ् विधीयते । यदा तु सक्रियस्यात एव कर्तृरूपस्य द्रव्यस्य प्रयोगः प्रेषः तदा स णिचो विषयो वाच्यः इति कारिकायाः । ( र. ना. )

२ द्वितीयप्रेरणारूपोऽर्थो यत्र प्रयोज्यो भवतीत्यर्थः । तत्रास्तेति प्रथमा प्रेरणा । आसयेति च द्वितीयेति भावः । ( र. ना. )

३ आधीयमानकर्तृत्ववत इत्यर्थः । ( र. ना. )

१ सक्रियस्य पठनक्रियां कुर्वत एव प्रेरणायां 'पाठयति' इति प्रयोगः । न तु तूष्णीमासीनस्य प्रेरणायां 'पाठयति' इति प्रयोग इति भावः ॥

२ तत्कर्माकुर्वत उदासीनतया तूष्णीमासीनस्य तद्व्यापारानाविष्टेत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु प्रयोजकव्यापारस्य पञ्चभिर्हलैरित्यनेनैव द्योतितत्वात्तद्योतनाय एकान्त इत्यादि व्यर्थमत आह—कश्चिदिति ॥ तत्रेति । एवं च प्रयोजकव्यापारस्यात्र प्रतीतेस्तद्वोधनाय णिच् स्यादिति भावः ॥

( १७७३ समाधानवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ कृष्यादिषु चानुत्पत्तिर्नानाक्रियाणां कृष्यर्थत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृष्यादिषु चानुत्पत्तिः सिद्धा । कुतः ? । नानाक्रियाणां कृष्यर्थत्वात् । नाना क्रियाः कृषेरर्थाः । नावश्यं कृषतिर्विलेखन एव वर्तते । किं तर्हि ? । प्रतिविधानेऽपि वर्तते । यदसौ भक्तबीजबलीवदैः प्रतिविधानं करोति, स कृष्यर्थः ॥ आतश्च प्रतिविधानेऽपि वर्तते यदहरेवासौ न प्रतिविधत्ते, तदहरेव तत्कर्म न प्रवर्तते ॥

( प्रदीपः ) प्रतिविधानेऽपीति । अनेकार्थत्वाद्धातूनां कृषिरेव प्रयोजकव्यापारे तत्समर्थाचरणलक्षणे वर्तत इत्यर्थः । धातुनैव चोपपदसहितेन तस्यार्थस्य प्रकाशितत्वाणिजभावः । विभाषोपपदेन प्रतीयमान इति पक्ष आत्मनेपदाभावश्च । यदा तु कृषिर्विलेखने वर्तते तदा भवत्येव पञ्चभिर्हलैः कर्षयतीति णिच् ॥

( उद्ध्योतः ) अनेकार्थत्वादिति । प्रतिविधानान्तोऽत्र धात्वर्थः । फलानुकूलत्वेन स एव वा । करणस्य च फले एवान्वयः ॥ भाष्ये—तत्कर्मेत्यस्य कृष्यर्थफलमित्यर्थः ॥ आद्येऽत्र प्रयोज्यस्य कर्मत्वे इष्टापत्तिः । गतिबुद्धीति सूत्रं तु नियमस्य सजातीयपेक्षत्वादन्यथ्यन्त एव व्यावर्तकम् ॥ अन्ये तु तत्प्राप्तिरेव नेति दिक् ॥ णिजभाव इति । द्योतकतापेक्षेऽनुपपदेनैव द्योतितत्वाद् द्योतकणिचोऽभाव इति भावः ॥ वस्तुतो द्योतकत्ववादिनो वचनारम्भः, द्योतकसमुच्चयदर्शनाद्वाचकत्ववादेन तत्खण्डनमिति तत्त्वम् ॥ प्रयोजकव्यापारफलस्य कर्तृगामित्वात्कृषेरात्मनेपदमाशङ्क्याह—विभाषोपेति । सा च प्राप्तविभाषेति भावः ॥

( १७७४ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ यज्यादिषु चाविपर्यासः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यज्यादिषु चाविपर्यासो वक्तव्यः । पुष्यमित्रो यजते याजका याजयन्तीति । तत्र

४ प्रतिविधानं तत्समर्थाचरणमिति प्रदीपपर्यालोचनया प्रतीयते । भक्तं कर्मकरोभ्यो दीयमानं भोदन्पिण्डः । ( र. ना. )

५ विलेखनानुकूलं प्रतिविधानमित्यर्थः । फलानुकूलत्वेनेत्यादि । कृष्यर्थफलानुकूलं प्रतिविधानमित्यर्थः । ( र. ना. )

६ भृत्यादेरित्यर्थः । ( र. ना. )

७ गत्याद्यर्थक्रान्त्यप्यन्त एवेत्यर्थः । ( र. ना. )

३ 'आसय' इति प्रेरणां कुर्वन्नपि यदा प्रेर्यते 'आसितुं प्रेरय' इति वाच्ये—'आसय' इति भवति इति भावः ॥



भवितव्यं पुण्यमित्रो याजयते याजका याजय-  
न्तीति ॥

( प्रदीपः ) यज्यादिष्विति । यजेः प्रक्षेपविशेषवाचि-  
त्वात् प्रक्षेपे च ऋत्विजां कर्तृत्वाद्यजमानस्य प्रयोजककर्तृत्वा-  
स्मिन्प्रसङ्गनिवारणाय वचनम् ॥

( १७७५ समाधानवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ यज्यादिषु चाविपर्यासो नाना-  
क्रियाणां यज्यर्थत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यज्यादिषु चाविपर्यासः सिद्धः ।  
कुतः । नानाक्रियाणां यज्यर्थत्वात् । नाना क्रिया  
यजेरर्थाः । नावश्यं यजिर्हविःप्रक्षेपण एव वर्तते ।  
किं तर्हि । त्यागेऽपि वर्तते । तद्यथा । अहो यजत  
इत्युच्यते यः सुष्ठु त्यागं करोति । तं च पुण्यमित्रः  
करोति याजकाः प्रयोजयन्तीति ॥

( प्रदीपः ) नानाक्रिया इति । तत्र त्यागवचनाश्रयेण  
यः प्रयोगस्तद्विपरीतैः प्रक्षेपवचने द्रष्टव्यः ॥

( उद्घोतः ) तद्विपरीतः प्रक्षेपेति । अविपर्यासपदेनेष्ट-  
प्रयोगसिद्धिरेव न तु विपरीतप्रयोगव्यावृत्तेरपि इत्यर्थः ॥

( १७७६ निष्प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ तत् करोतीत्युपसंख्यानं

सूत्रयत्याद्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत् करोतीत्युपसंख्यानं कर्तव्यम् ।  
किं प्रयोजनम् । सूत्रयत्याद्यर्थम् । सूत्रं करोति  
सूत्रयति [ सूत्रयतीति ] ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये तदिति प्रातिपदिकोपलक्षणम् । प्राति-  
पदिकादित्यर्थः । कर्मत्वाद्यन्तर्भावैर्नैकाधार्थीभावो लोकव्यवहारात् ।  
करोतीति च धात्वर्थोपलक्षणम् । तेनाश्वेनाति क्रामति अश्वयती-  
त्यादिसिद्धम् । एवं च प्रातिपदिकाद्भावात् इत्यादि गणसूत्राणि  
प्रक्षिप्तानि । धातुपाठे सूत्रसूत्रधातू चेति बोध्यम् । तत्सत्त्वे तेनैव  
सिद्धे वार्तिकमफलं स्यात् । ऋषेस्तदज्ञानकल्पनापेक्षया मदुक्तस्यैवौ-  
चित्यात् । एवं मुण्डमिश्रेति सूत्रस्यः कैर्यदश्रित्य एवेति बोध्यम् ।

( आक्षेपभाष्यम् )

इह व्याकरणस्य सूत्रं करोति व्याकरणं सूत्रय-

१ विहितोपकरणे देवतोद्देशेन द्रव्यप्रक्षेपस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

२ यजते इत्येवं रूपः । ( र. ना. )

३ याजयते इत्येवं रूपः । ( र. ना. )

४ लिखितपुस्तकेषु नैवोपलभ्यते ॥

१ 'पातञ्जलं महाभाष्यं संग्रहाव्यसुधासमम् ।

पुण्यमित्रस्य समये समुदेति स भारते ॥

साकेतमध्यमिकयोर्यवनेनोपरुद्धयोः ।

वर्णनं पुण्यमित्रस्य यागस्य च पतञ्जलौ ॥

पुण्यमित्रे स्मृते पञ्चात्रिंशद्विदकशासने ।

अग्निमित्रोऽभवद्राजा तस्य पुत्रो महायशः ॥'

तीति वाक्ये षष्ठी, उत्पन्ने च प्रत्यये द्वितीया ।  
केनैतदेवं भवति ? ॥

( प्रदीपः ) इह व्याकरणस्येति । लक्ष्ये लक्षणसमुदाये  
वा व्याकरणशब्दो वर्तते इति भेदनिबन्धना षष्ठी । यदा तु  
लक्षण एव सूत्रे व्याकरणशब्दो वर्तते तदा व्यपदेशिवद्भाव-  
निमिता षष्ठी । यदा व्याकरणं सूत्रं करोतीति सामानाधिकरण्यं  
तदा यथा मुण्डयति माणवकमिति भवति तथा व्याकरणं सूत्र-  
यतीत्यपि भवति ॥

( उद्घोतः ) लक्ष्ये इति । व्याकरणशब्दः कर्मव्युद्भूत इति  
भावः ॥ लक्षणसमुदाये वेति । अष्टाध्यायीरूपेण करणव्युद्भूतः  
स इति भावः ॥ यदा तु लक्षण एवेति । प्रतिसूत्रं व्याकरणशब्द  
इत्यर्थः ॥ पदेति । व्यपदेशिवद्भावनाश्रयणे इत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

योसौ सूत्रव्याकरणयोरभिसंबन्धः स उत्पन्ने  
प्रत्यये निवर्तते अस्ति च करोतेर्व्याकरणेन साम-  
र्थ्यमिति कृत्वा द्वितीया भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) योसाविति । वाक्ये द्रव्यरूपं सूत्रं सूत्र-  
शब्देनोच्यते । णिचि तूत्पन्ने सत्त्वभावातिवर्तनात्करोत्यर्था-  
भिधायी सूत्रशब्दः संपद्यते । तदुक्तं परार्थाभिधानं वृत्ति-  
रिति ॥ एतच्च प्रक्रियागतविभागाश्रयेणोक्तम् । परमार्थतस्तु  
धात्वन्तरं सूत्रिर्विशिष्टक्रियावचनः ॥

( उद्घोतः ) करोत्यर्थाभिधायीति । करोत्यर्थविशेषणीभूत-  
साध्यावस्थस्वार्थाभिधायीत्यर्थः ॥ सूत्रणे च सूत्रेवृत्तिर्बोध्या ॥ भाष्ये  
व्याकरणेन सामर्थ्यमिति । तैज्जन्यफलाश्रयत्वरूपमित्यर्थः ॥  
निर्व्यशब्ददर्शने सूत्रयतीत्यत्रावयवार्थाभावाच्छङ्कैव नास्तीत्याह—  
एतच्चेति ॥

( १७७७ निष्प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ आख्यानात्कृतस्तदाचष्टे, कृल्लुक,  
प्रकृतिप्रत्यापत्तिः, प्रकृतिवच्च  
कारकम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आख्यानात्कृदन्ताणिज्वक्तव्यः तदा-  
चष्ट इत्येतस्मिन्नर्थे । कृल्लुक, प्रकृतिप्रत्यापत्तिः,  
प्रकृतिवच्च कारकं भवतीति वक्तव्यम् । कंसवध-

५ 'कण्योः' इति द्विवचनमुपलभ्यते । तथा च सूत्रकारस्य वार्तिकाज्ञानम्,  
वार्तिककारस्य गणसूत्राज्ञानमिति परस्पराज्ञानेत्यर्थः ॥

६ द्रव्यरूपतापरित्यागादित्यर्थः । ( र. ना. )

७ करोत्यर्थव्यापारजन्योत्पत्तिरूपफलाश्रयत्वमित्यर्थः । ( र. ना. )

८ नहि सूत्रशब्दाणिचि सूत्रिर्निष्पन्न इति भावः । ( र. ना. )

इत्येवं कालिदासवर्णितमालविकाग्निमित्रनाटकनायकस्याग्निमित्रस्य पिता  
पुण्यमित्रः २९१६-२९५० कलिगताब्देषु राज्यं चकारेति भारतीयेति वृत्त-  
निर्मातारः ॥

२ 'सूत्रं चेदं प्रातिपदिकाद्भावात्' इति णिचि सिद्धे प्रपञ्चार्थमित्याहुः ।  
इत्थं हि तदीयो ग्रन्थ इति बोध्यम् ॥



माचष्टे कंसं घातयति । बलिबन्धमाचष्टे बलिं बन्धयतीति ॥

( प्रदीपः ) आख्यानादिति । आख्यायत इत्याख्यानमिति वृत्तमुच्यते ॥ प्रकृतिवदिति । णिचो या प्रकृतिः कंसवधादिस्तथा तुल्यं कंसादि कारकं भवति । यथाख्यानक्रियापेक्षं कंसवधादेः कर्मत्वं तथा कंसादेरपि अप्रतिपन्नाख्यानकर्मभावस्येत्यर्थः । प्रकृतिवद्भावातिदेशेन च कंसादेः पृथक्कृतत्वात् कंसमघातयदित्यादौ कंसादिशब्दवर्जितस्याङ्गसंज्ञायामङ्गादयः कंसादेर्न भवन्ति । वत्करणाच्च स्वाश्रयमपि भवति ॥ पुष्पेण योजयतीति पुष्पस्य कर्मत्वाभावः । अथ वा प्रकृत्या तुल्यं वर्तते इति प्रकृतिवत्, प्रकृतेरिव प्रकृतिवद्, ण्यन्तस्य कारकमित्युभयथातिदेशाश्रयणात् कचित्कश्चित्परिगृह्यते । प्रकृतिप्रत्यापत्त्या राजागमनादौ नलोपाद्यपि निवर्तते इति राजानमागमयतीत्याद्युपपन्नं भवति ॥ कंसवधमिति । यद्यप्यत्र सञ्जियोगनिर्दिष्टानामन्यतरापाये उभयोरप्यभाव इति वधादेशनिवृत्तिः सिद्ध्यति तथापि पुष्पेण योगं जानाति पुष्पेण योजयतीति कुत्वस्य सञ्जियोगशिष्टत्वाभावाच्चिद्वृत्तिर्न सिध्यतीति प्रकृतिप्रत्यापत्तिरुच्यते ॥

( उद्द्योतः ) आख्यायत इति । बाहुलकात्कर्मणि ल्युट् । भावस्युटि हि आख्यानक्रियायां कर्मत्वं न स्यात् । णिच इति । कृतो या प्रकृतिरिति तु नोक्तं प्रत्ययलक्षणेन कृदन्ततयानेनातिदेशेन च षष्ठीसंज्ञात् । राजागमनमित्यादौ राज्ञः कर्तृत्वा राजानमिति द्वितीयानापत्तेश्च तदयमर्थः—णिचप्रकृतेर्यथा आख्यानक्रियायां कारकता तथा कंसादेरपीति तदाह—यथेति । नन्वेवमङ्गाद्यवस्थेयत आह—प्रकृतिवद्भावातिदेशेनेति । प्रकृताविव प्रकृतिवत् । अत्र प्रकृतिशब्देन कृतः प्रकृतिः तस्यां यथा कंसादेरनन्तर्भावस्तथा कृदन्तप्रकृतिकणित्वेपीत्यर्थः ॥ नन्वेवं पुष्पेण योजयतीत्यत्रापि द्वितीयापत्तिरत आह—वत्करणादिति ॥ कचिदिति । पुष्पयोगे जीत्यत्र च प्रकृतेरिव प्रकृतिवदित्येवाश्रयणीयमिति भावः ॥ एवं च द्वितीयाद्यन्तत्वाय पृथक्त्वाच्चातिदेशद्वयमाश्रयणीयं भवति, वैलक्षण्यं च भवतीति गौरवम् । अतः प्रकृतिवच्चेत्यस्य कृत्प्रकृतेर्हन्त्यादेर्ण्यन्तत्वे यथा कारकं द्वितीयाद्यन्तं धातावनन्तर्भूतं च तथैतैर्लक्ष्यं उच्यते । प्रकृतिप्रत्ययापत्तिरित्यत्र कृत्प्रकृतेरेव ग्रहणेनात्रापि तथैवैच्छित्वाच्च ॥ पुष्पेण योजयतीत्यत्र च न दोषः ॥ प्रकृतिप्रेति । कृत्प्रकृतेः प्रत्यापत्तावपि राजनशब्दे न लोपनिवृत्तिः कथमिति चिन्त्यम् ॥ वस्तुतः प्रकृतिवत्कृत्प्रकृतिसंज्ञात्पृथक्करणेन समासाभावेनापदत्वात्तच्चिद्वृत्तिरिति बोध्यम् ॥ अत्र प्रकृतिवच्चेति चः कारकमित्यनन्तरं बोध्यः प्रकृतिवत्कारकं चेति । तेन तद्व-

त्कार्यमप्यतिदिश्यते । तेन घातयतीत्यादौ कुत्वतत्वे सिध्यतः ॥ अन्यथा धातोः स्वरूपग्रहण इति परिभाषया न स्याताम् ॥ केचित्तु उभयत्रापि प्रकृतिपदेन हेतुमण्यन्तप्रकृतिः । हेतुमण्यन्तश्च प्रत्यासत्त्योपस्थितकृत्प्रकृतिप्रकृतिक एव ॥ प्रत्यापत्तिः प्रत्यभिज्ञा ॥ सा च तत्सत्त्वे तत्रत्य कार्यसत्त्वे च भवतीति अनेनैव कारकवद्भिर्भावो वधादेशनिवृत्तिः कुत्वतत्वादिकं च सिद्धम् ॥ नन्वेवं प्रत्ययलक्षणेन कृदन्तत्वात्कंसादेः षष्ठी स्यादतः प्रकृतिवच्च कारकमिति । यद्विभक्त्यन्तं तत्र, तादृशमत्रापीत्यर्थः । एवं चावृत्तिकल्पना न कुत्रापि । प्रत्यापत्तिशब्दस्य च प्रत्यभिज्ञाविषयतयापत्तिः । स्थितिरित्यर्थः । न तु नष्टस्य पुनः प्रादुर्भावः प्रत्यापत्तिः । अत एव रात्रिं विवासयति मृगान् रमयतीत्युदाहरणविषयवचने प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचः संगतिः । अन्यथा तत्र प्रकृतेरातिदेशेनानपहारात्प्रत्यापत्तिव्यवहारसंगतिः स्पष्टैव । कारकवद्भिर्भावश्च तस्याः फलमित्याहुः ॥ यद्यप्यत्र संनियोगेति । एवं च तदनित्यत्वज्ञापकं प्रकृतिप्रत्यापत्तिवचोऽनर्थकमिति बोध्यम् ॥

( १७७८ णिचप्रतिषेधवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ आख्यानाच्च प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आख्यानशब्दाच्च प्रतिषेधो वक्तव्यः—आख्यानमाचष्ट इति ॥

( पूर्ववार्तिकस्याख्यानशब्दप्राधान्यनिर्णयाधिकरणम् )

( विप्रतिपत्तिभाष्यम् )

किं पुनर्यान्येतानि संज्ञाभूतानि आख्यानानि तेभ्य उतपत्त्या भवितव्यम् । आहोस्वित् क्रियाख्यानमात्रात् ॥

( प्रदीपः ) किं पुनरिति । कंसवधनलोपाख्यानादीनीत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये संज्ञाभूतानीत्यस्य प्रसिद्धानीत्यर्थः ॥

( विशेषजिज्ञासाभाष्यम् )

किं चातः ? ।

( संज्ञाभूताख्यानग्रहणपक्षदूषणभाष्यम् )

यदि संज्ञाभूतेभ्यः । इह न प्राप्नोति—राजागमनमाचष्टे राजानमागमयतीति ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये राजानमागमयतीति । एवं च देवदत्तपाकमाचष्टे इत्यर्थे 'देवदत्तेन पाचयति' इत्येव, गतिबुद्धीति नियमेन देवदत्तस्य कर्मत्वाभावात् ॥

( क्रियाख्यानमात्रग्रहणपक्षभाष्यम् )

अथ क्रियाख्यानमात्रम् । न दोषो भवति ॥

१ अप्रतिपत्तिरिति । ( र. ना. )

२ तथाच प्रकृतिवदित्यत्रावृत्त्यर्थद्वयम् । प्रकृत्या तुल्यं प्रकृतिवदित्येकः । अत्र प्रकृतिशब्देन णिचः प्रकृतिः । प्रकृताविवेति द्वितीयः । अत्र च कृतः प्रकृतिः । ( र. ना. )

३ अर्थकृतवैरूप्यमित्यर्थः । ( र. ना. )

४ तथाच प्रकृतेरिव प्रकृतिवदित्येक एवार्थः । ण्यन्तत्वे इति च लक्ष्यानुरोधेनाध्याहित्ये इति भावः । ( र. ना. )

५ लक्ष्यानुरोधेन ज्ञायमानतात्पर्यान्वयाद्युपपत्त्या प्रकृतिपदस्य हेतुमण्यन्तप्रकृतौ लक्षणेति भावः । ( र. ना. )

६ एतदुदाहरणविषयवार्तिके इत्यर्थः । ( र. ना. )

७ अत्रेत्यादिः । ( र. ना. )

८ कंसवधमाचष्टे इत्येतदुदाहरणविषयकतयोपपुष्टमित्यर्थः अन्यथा पुष्पेण योजयतीत्यत्र कुत्वनिवृत्तये आवश्यकत्वादित्यस्त्वज्ञापकत्वासंगतिः स्पष्टैव । ( र. ना. )

यथा न दोषस्तथास्तु ॥

( १७७९ णिच्प्रत्ययवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ दृश्यार्थायां च प्रवृत्तौ ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दृश्यार्थायां च प्रवृत्तौ कृदन्ताणिज् वक्तव्यः, तदाचष्टे इत्येतस्मिन्नर्थे । कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकं भवतीति वक्तव्यम् । मृगरमणमाचष्टे मृगान् रमयति ॥ दृश्यार्थायामिति किमर्थम् ? । यदा हि ग्रामे मृगरमणमाचष्टे मृगरमणमाचष्ट इत्येव तदा भवति ॥

( प्रदीपः ) दृश्यार्थायामिति । यदारण्यस्थो रममाणान् मृगान् प्रतिपद्य व्याचष्टे एतस्मिन्नवकाश एवंविधा मृगा रमन्त इति, तदा प्रतिपाद्यदर्शनार्था प्रवृत्तिर्भवति ॥ यदा हि ग्राम इति । ग्रामे मृगाणामसंभवाच्च तद्दर्शनार्था प्रवृत्तिः ॥ दृश्यार्थायामित्येतच्च मृगरमणादिविषयमेव द्रष्टव्यम् । राजागमनादिषु तु दृश्यर्थप्रवृत्त्यभावेपि णिज् भवति ॥

( उद्घोतः ) दृश्यर्थेति । इक् कृष्यादिभ्य इति दृशिः साधुः । रममाणान् मृगान् इति ॥ एतेन मृगरमणशब्द आखेटे रूढ इत्यपास्तम् ॥ प्रवृत्तिर्भवतीति । आख्यानविषयेत्यर्थः ॥ इत्येतच्चेति । प्रयोगानुसारादिति भावः ॥

( १७८० णिच्प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ ११ ॥ )

॥ \* ॥ आङ् लोपश्च कालात्यन्तसंयोगे मर्यादायाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कालात्यन्तसंयोगे मर्यादायां कृदन्ताणिज् वक्तव्यः तदाचष्टे इत्येतस्मिन्नर्थे । आङ्लोपश्च कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकं भवतीति वक्तव्यम् । आरात्रिविवासमाचष्टे रात्रि विवासयतीति ॥

( प्रदीपः ) आरात्रिविवासमिति । यावद्रात्रेर्विवासोत्तिक्रमणं तावत्कथाः कथयतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) यावदिति । रात्रिरूपकालेनात्यन्तसंयोगः ॥ कथाश्चाख्याने कमेति भावः । आरात्रिविवासशब्देन तावत्पर्यन्तकथा लक्ष्यन्त इति बोध्यम् । कालात्यन्तसंयोगे गम्यमान इत्यर्थः ॥ वसेरकर्मकतया गतिबुद्धीति रात्रेः कर्मत्वं हेतुमस्मिन्नि तद्वदिहापि बोध्यम् ॥

( १७८१ णिच्प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ १२ ॥ )

॥ \* ॥ चित्रीकरणे प्रापि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चित्रीकरणे प्राप्तावर्थे कृदन्ताणिज्

वक्तव्यः । कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकं भवतीति वक्तव्यम् । उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमनं संभावयते । सूर्यमुद्गमयतीति ॥

( प्रदीपः ) चित्रीकरण इति । आश्चर्यकरणे गम्यमाने तत् प्राप्नोतीत्यत्रार्थे णिज् वक्तव्यः ॥ संभावयत इति । भू प्राप्तावात्मनेपदीत्यस्य रूपम् ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये प्रापीति । संप्रदादित्वेन भावकिवन्तात्सप्तमी । एवं ज्ञीत्यपि ॥ भूप्राप्ताविति । संभावयत इत्यस्य प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

( १७८२ णिच्प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ १३ ॥ )

॥ \* ॥ नक्षत्रयोगे जि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नक्षत्रयोगे जानात्यर्थे कृदन्ताणिज् वक्तव्यः कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकं भवतीति वक्तव्यम् । पुष्ययोगं जानाति पुष्येण योजयति मघाभिर्योजयतीति ।

( प्रदीपः ) पुष्येणेति । पुष्यो योगक्रियायाः कर्ता, स हि चन्द्रमसं संबध्नाति । तत्रोभयप्राप्तौ कर्मणीति नियमात् षष्ठ्यभावे तृतीयासमासः । तत्र प्रकृतेरिव प्रकृतिवदित्येवं प्रकृतिवदतिदेशात्कर्तरि तृतीयौ भवति लकारस्तु प्रधान एव कर्तरि भवति, नातिदेशिके ॥

( उद्घोतः ) उभयप्राप्ताविति । नियमेन चन्द्रमसः प्रतीतेरुभयप्राप्तिः ॥ वस्तुतः सद्ययोगेन तृतीया ॥ कर्तुः प्रयोगाभावेनोभयप्राप्तेरभावात् ॥ मतान्तरोक्ते प्रकृतिवदित्यस्यार्थेऽपि न दोषः । हेतुमणिषि गत्यादिनिधमात् तृतीयाया एव पुष्येणेत्यत्र प्राप्तेः ॥ नातिदेशिके इति । णिज्प्रकृत्यर्थकर्तृत्वातिदेशेऽपि णिज्प्रकृत्यर्थकर्तृत्वातिदेशाभावाच्च तदुत्तरलेनास्याभिधानमित्यर्थः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यम् ? ।

( १७८३ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ १४ ॥ )

॥ \* ॥ न वा सामान्यकृतत्वाद्धेतुतो ह्यविशिष्टम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यम् । किं कारणम् ? सामान्यकृतत्वात् सामान्येनैवात्र णिज् भविष्यति “हेतुमतीति ॥ किं कारणम् ? । हेतुतो ह्यविशिष्टम् । हेतुतो ह्यविशिष्टमेतद् भवति । तुल्या हि हेतुता देवदत्ते चादित्ये च ।

( प्रदीपः ) सामान्यकृतत्वादिति । सामान्यलक्षणे-

१ दृष्टेयर्थः । ( र. ना. )

२ अतएव ‘रज्यांश्चकार विरजाः स मृगान्’ इति भारविणा विश्वासदानेन समीपागमनाभिप्रायेणापि ‘रज्जेर्णो मृगरमणे’ इति नलोपः कृतः । अतएव षष्ठ्यभाष्ये ‘मृगरमण इति किमर्थम् ? रजयति वस्त्राणि’ इत्येवं प्र. उ. दाहृतम् ॥

३ नक्षत्रयोग इति कृदन्तादित्यनेनान्वेति । ( र. ना. )

४ पुष्यो हि चन्द्रमसं संबध्नाति तत्र युजेर्गत्यादिष्वनन्तर्भावोऽपि कर्तुः पुष्यस्य णिचि कर्तृत्वमेवेति कर्तृत्वानुतीया भवतीति पदमञ्जरी ॥

५ पुष्यस्य नक्षत्रत्वेन निष्क्रियत्वात्कर्तृत्वं नैव सिद्धान्तसिद्धमतो ग्रहाणामेव प्रतीच्यमित्युक्तं प्रतिवर्षं साधिकैकपञ्चाशद्विकलात्मकगतिमत्त्वात्कर्तृत्वे पुष्यात् कथं नृतीत्येतत् आह—वस्तुत इति ॥

नैव सिद्धत्वादित्यर्थः ॥ देवदत्ते चेति । देवदत्तविषयान्यस्य हेतुतेत्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) सूर्यमुद्गमयत इत्यादौ आदित्यस्य प्रयोज्यत्वा-  
चेतनदेवदत्तस्यापि तत्सजातीयता ध्वननाद्धेतुतेत्यनुपपन्नमत आह  
—देवदत्तविषयान्यस्येति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

न सिध्यति । स्वतन्त्रस्य प्रयोजको हेतुसंज्ञो  
भवतीत्युच्यते । न चासावादित्यं प्रयोजयति ।

( उद्ध्योतः ) भाष्ये स्वतन्त्रस्य प्रयोजक इति । स्वाभिप्रेत-  
मात्रोद्देशेन प्रवृत्तस्य प्रवर्तक इत्यर्थः ॥ एवं प्रयोजयतीत्यस्य च  
स्वाभिप्रेतोद्देशेन प्रवृत्तं प्रवृत्तं प्रवर्तयतीत्यर्थः ॥ स्वाभिप्रेतमात्रो-  
द्देश्यकप्रयोज्यनिष्ठप्रवृत्त्यनुकूलव्यापारवत्त्वं हि प्रयोजकत्वमिति  
फलितम् । सर्वत्र स्वशब्देन प्रयोजकः । एवं प्रयोजकाभिप्रेतमात्रो-  
द्देश्यकप्रवृत्त्याश्रयत्वं प्रयोज्यत्वम् ॥ तदेव च स्वतन्त्रत्वम् । न  
चैतत्सूर्य इति भावः ॥

( १७८३ समाधानवार्तिकप्रथमखण्डम् )

॥ \* ॥ स्वतन्त्रप्रयोजकत्वादप्रयोजक  
इति चेन्मुक्तसंशयेन तुल्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यं भवान् स्वतन्त्रप्रयोजकं मुक्तसंशयं  
न्याय्यं मन्यते पाचयत्योदनं देवदत्तो यज्ञदत्तेनेति,  
तेनैतत्तुल्यम् ॥ कथम् ? ।

( १७८४ समाधानवार्तिकद्वितीयखण्डम् ॥ १५ ॥ )

॥ \* ॥ प्रवृत्तिर्हुंभयत्रानपेक्ष्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रवृत्तिर्हुंभयत्रानपेक्ष्यैव किञ्चिद्  
भवति देवदत्ते चादित्ये च ॥ नेह कश्चित्परोनुग्रही-  
तव्य इति प्रवर्तते । सर्वे इमे स्वभूत्यर्थं प्रवर्तन्ते ॥  
ये तावदेते गुरुशुश्रूषवो नाम तेऽपि स्वभूत्यर्थं  
प्रवर्तन्ते=पारलौकिकं च नो भविष्यति, इह च नः  
प्रीतो गुरुरध्यापयिष्यतीति ॥

तथा—य एते दासाः कर्मकरा नाम तेऽपि स्वभू-  
त्यर्थं प्रवर्तन्ते=भक्तं चैलं च लप्स्यामहे । परिभाषाश्च  
न नो भविष्यन्तीति ॥

तथा—य एते शिल्पिनो नाम एतेऽपि स्वभूत्यर्थं  
प्रवर्तन्ते=चेतनं च लप्स्यामहे । मित्राणि च नो  
भविष्यन्तीति ।

१ देवदत्तनिष्ठप्रयोज्यतानिरूपिता प्रयोजकतेत्यर्थः ॥

२ स्वाभीष्टसिद्ध्युद्देशेनेत्यर्थः ॥

३ एतत् प्रयोजकाभिप्रेतमात्रोद्देश्यकप्रवृत्त्याश्रयत्वम् ॥

४ मुक्तसंशयमित्यस्य व्याख्या न्याय्यमिति । ( र. ना. )

५ 'न पेक्षा' ॥

६ किञ्चित्प्रयोजनमनपेक्ष्यैवेति संबन्धः । ( र. ना. )

७ नेति प्रवृत्त्यन्वयि । ( र. ना. )

८ प्रयोजकाभिप्रेतमात्रोद्देश्यकप्रवृत्त्याश्रयत्वं प्रयोज्यत्वमिति प्रयोज्यलक्षणे

( प्रदीपः ) परिभाषा इति । दण्डनादिकाः ।

( उद्ध्योतः ) समाधत्ते—भाष्ये स्वतन्त्रेति । स्वतन्त्रप्रयोजकस्य  
हि हेतुत्वम् । अर्थं च न तथैत्यप्रयोजको हेतुरिति चेदित्यर्थः ॥  
प्रवृत्तिर्हुंभयत्रानपेक्ष्येति । प्रयोज्यप्रवृत्तिरुभयत्रापि प्रयोजका-  
भिप्रेतानपेक्षा तन्मात्रानुद्देश्यकेत्यर्थः । उभयत्रानपेक्ष्यैव किञ्चि-  
दिति । किञ्चिदित्यस्य प्रयोजकाभिप्रेतमात्रं किञ्चिदनपेक्ष्यैवोभयोर्देव-  
दत्तादित्योर्भवतीत्यर्थः । तस्मान्मात्रांशो न निवेद्यः । अन्यथा  
णिजनर्वकाश इति भावः ॥ तदेव व्युत्पादयति—नेह कश्चिदिति ।  
सत्यामपि प्रेरणायामिति शेषः ॥ सनिन्द खपालम्भः परिभाषणम् ।  
तदाह—दण्डनादिका इति । अनेन सर्वत्र स्वेष्टसाधनताज्ञानं  
प्रवर्तकमित्युक्तम् ।

( वार्तिकादिशेषभाष्यम् )

एवमेतेषु सर्वेषु स्वभूत्यर्थं प्रवर्तमानेषु—

( १७८५ देवदत्तादित्ययोः प्रयोज्यस्वसाधकवार्तिकम् ॥ १६ ॥ )

॥\*॥ कुर्वतः प्रयोजक इति चेत्तुल्यम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) यदि कश्चित्प्रयोजको नाम कुर्वतो  
भवति तेनैतत्तुल्यम् ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये—कुर्वतः प्रयोजक इति । प्रयोजका-  
भिप्रेतमात्रोद्देशं विनापि स्वेष्टोद्देशेनैव कुर्वतः पुंसः प्रयोजको दृश्यते  
यथा 'गुरुः शिष्यान्ध्ययने प्रवर्तयति' इत्यादौ तद्वत्सूर्यस्यापि इति  
भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि तर्हि सर्वे इमे स्वभूत्यर्थं प्रवर्तन्ते, कः प्रयो-  
ज्यार्थः ? ॥

( उद्ध्योतः ) प्रयोज्यार्थ इति । प्रेरणाजन्यप्रवृत्त्याश्रयः  
प्रयोज्यः । तस्य प्रेरणायाः कोऽर्थः 'प्रयोजनं किम्' इति प्रश्नः ॥

( समाधानभाष्यम् )

यदभिप्रायेषु सज्जन्ते ईदृशौ वैध्यां कुरु, ईदृशौ  
पुटकौ कुरु इति । आदित्यश्चास्याभिप्राये सज्जते ।  
एष तस्याभिप्रायः 'उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां  
सूर्योद्गमनं संभावयेय' इति । तं चास्यादित्योभि-  
प्रायं निर्वर्तयति ॥

( प्रदीपः ) यदभिप्रायेष्विति । तदुक्तं हरिणा ।

निमित्तेभ्यः प्रवर्तन्ते सर्वे एव स्वभूतये ।

अभिप्रायानुरोधोपि स्वार्थस्यैव प्रसिद्धय इति ॥

इति भावः । मात्रांशः, मात्रपर्वन्तांशः । तथा च सर्वत्र प्रयोज्येष्टोद्देश्यकप्रवृत्त्या-  
श्रयत्वमेवेति भावः । तत्प्रवृत्तेः प्रयोजकव्यापारजन्यत्वाच्च तस्य प्रयोज्यत्वमिति  
भावः । ( र. ना. )

९ सर्वत्रैव स्वेष्टोद्देश्यकप्रवृत्त्याश्रयत्वस्यैव सत्त्वादिति भावः । ( र. ना. )

१० 'प्रेरणया' ॥

११ 'आसज्जन्ते' ॥

१२ वरत्रे इत्यर्थः । ( र. ना. )

१३ 'तं चास्यादित्यो'

सज्जन्त इति । भाष्यकारवचनादात्मनेपदम् । परस्मैपदी तु सजिः ग्लुषुषत्सजगताविति ।

( उद्ध्योतः ) उत्तरमाह—यदभिप्रायेष्वासज्जन्ते इति । प्रेरकाभिप्रायेष्वासज्जन्ते । तदभिप्रायं ज्ञात्वा तं निर्वर्तयन्ति यत्, एष एव प्रयोज्यस्य प्रेरणाया अर्थ इत्यन्वयः ॥ एवं च क्रियायां स्वाभिप्रायानुरोधफलकं तज्ज्ञापनमेव प्रेरणाफलमिति भावः ॥ अभिप्रायपदेन तद्विषय उच्यते । तदाह—इदृशावित्यादिना । तदाह—निमित्तेभ्य इति । स्वभूतिसाधनत्वज्ञापकप्रेरणादिभ्य इत्यर्थः ॥ ननु स्वभूतिफलकप्रवृत्तौ प्रयोजकाभिप्रायानुरोधोऽपि किमर्थः, इत्यत आह—अभिप्रायेति ॥ ननु शिष्यादीनां स्वार्थ-सिद्धये गुर्वभिप्रायानुरोधोऽपि सूर्यस्य तदनुरोधे मानाभावः फला-भावश्चेति चेत् । अभिप्रायसंपत्तिमात्रेण तदुद्देश्यकप्रवृत्त्याश्रयत्वादि-रूपप्रयोज्यप्रयोजकभावाध्यारोपेण णिजिति तात्पर्यात् । भाष्यकार-वचनादिति । तत्प्रयोगादस्यानुदात्तत्वमपि पाठोऽनुमीयत इति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

भवेदिह वर्तमानकालता युक्ता स्याद् उज्जयिन्याः प्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमनं संभावयते सूर्य-मुद्गमयतीति, तत्रस्थस्य हि तस्यादित्य उदेति । इह तु कथं वर्तमानकालता कंसे घातयति बलिं बन्ध-यतीति । चिरहते च कंसे, चिरवद्धे च बलौ ॥

( प्रदीपः ) चिरहत इति । चिरप्रवृत्तत्वाद्ध्यघातक-भावस्य प्रयोजकव्यापारस्य वर्तमानत्वासंभवात् । उपसंख्यानारम्भे तु न दोष, आख्यानस्य वर्तमानत्वादित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु चिरहते कंसे इत्युक्त्या प्रयोजकव्यापारस्य वर्तमानकालत्वाभावो नोक्त इत्यत आह—चिरप्रवृत्तेति । कंस-कृष्णयोर्वध्यघातकभावस्य चिरप्रवृत्तत्वेन तत्प्रयोजकव्यापारस्यापि तत्त्वमेवेति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत्रापि युक्ता ॥ कथम् ? । ये तावदेते शौभिका नाम एते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति ॥

( प्रदीपः ) शौभिका इति । कंसाद्यनुकारिणां नटानां व्याख्यानोपाध्यायाः । कंसानुकारी नटः सामाजिकैः कंसबुद्ध्या गृहीतः कंसो भाष्ये विवक्षितः ॥

१ 'प्रेरणा' ॥

२ क्रियाया, प्रयोज्यक्रियायामित्यर्थः । स्वाभिप्रायेति । प्रयोजकाभिप्राये-त्यर्थः । तज्ज्ञापनमेवेति । स्वभूतिसाधनत्वज्ञापनमेवेत्यर्थः । तच्छब्दस्य बुद्धिस्थपरामर्शित्वात् । स्वं प्रयोज्यम् । ( र. ना. )

३ प्रयोज्यक्रियायां प्रयोज्यभूतिसाधनत्वज्ञापकेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ प्रयोजकेऽभिप्रायस्त्वमात्रेणेत्यर्थः । तदुद्देश्यकेत्यादेः प्रयोज्ये इत्यादौ शेषः । ( र. ना. )

५ 'वर्तमानकाले वर्तमानकालता' ॥

( उद्ध्योतः ) कंसाद्यनुकारिणां कंसादिसदृशानाम् । भाष्ये प्रत्यक्षं कंसं घातयन्तीति । तादृशेनैव वासुदेवेनेत्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

चित्रेषु कथम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

चित्रेष्वपि उद्गूर्णा निपतिताश्च प्रहारा दृश्यन्ते कंसस्य कृष्णस्य च ॥

( उद्ध्योतः ) उद्गूर्णा इति । उद्यता इत्यर्थः । गूरी उद्यमने इत्यस्य रूपम् । एवं च चित्रलेखका अपि चित्रस्य कंसं तादृशेनैव कृष्णेन घातयन्तीत्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

ग्रन्थिकेषु कथम् । यत्र शब्दग्रन्थगङ्गमात्रं लक्ष्यते ।

( प्रदीपः ) ग्रन्थिकेष्विति । कथकेष्वित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) ग्रन्थिकपदे अत इति नैव इति ठन् ॥ शब्द-ग्रन्थगङ्गेति । शब्दः कथकमुखोच्चार्यमाणः । ग्रन्थस्तद्वस्तुपुस्त-करूपः । गङ्गो मनुष्यसंघातः । न तत्र कश्चिदपि कंसादिबुद्धि-विषय इत्यर्थ इत्याहुः ॥

( समाधानभाष्यम् )

तेऽपि हि तेषामुत्पत्तिप्रभृत्याविनाशात् तद्वृद्धी-व्याचक्षाणाः सतो बुद्धिविषयान् प्रकाशयन्ति ॥ आतश्च सतः । व्याप्तिश्चाश्च दृश्यन्ते—केचित् कं-सभक्ता भवन्ति, केचिद्वासुदेवभक्ताः । वर्णान्यत्वं खल्वपि पुण्यन्ति—केचित्कालमुखा भवन्ति केचिद् रक्तमुखाः । त्रैकाल्यं खल्वपि लोके लक्ष्यते—गच्छ हन्यते कंसः, गच्छ घानिष्यते कंसः, किं गतेन हतः कंस इति । हेतुमति च ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरण-महाभाष्ये तृतीयाध्यायस्य प्रथमपादे द्वितीयमाहिकम् ॥

( प्रदीपः ) तेऽपीति । तदुक्तं हरिणा—

शब्दोपहितरूपास्तु बुद्धेर्विषयतां गतान् ।

प्रत्यक्षमिव कंसादीन् सार्धं नत्वेन मन्यत इति ॥

शिष्टं भाष्यं स्पष्टम् ॥ २६ ॥

इत्युपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते भाष्यप्रदीपे तृतीय-स्याध्यायस्य प्रथमपादे द्वितीयमाहिकम् ॥

६ गङ्गशब्दस्तु न मनुष्यसंघातवाची । गङ्गो मीनान्तराययोरिति मेदिनी । गङ्गकः शकुलार्भक इत्यमरः । ( र. ना. )

७ 'तद्गङ्गी' ॥

८ व्याप्तिश्चाश्च भवन्ति । नाना(विरुद्ध)पक्षसमाश्रयो व्याश्रय इति पदमञ्जरी ॥

९ शब्दरूपहितानि स्वजन्यबुद्धौ समर्पितानि रूपाणि येषां तानित्यर्थः । यद्वा वाच्यतासंबन्धेन शब्दविशिष्टाकारानित्यर्थः । ( र. ना. )

१० कर्मकारकत्वेनेत्यर्थः । ( र. ना. )

( उद्ध्योतः ) तेऽपि, ग्रन्थिका अपि ॥ तद्वद्दीर्घ्याचक्षणा इति । तदैश्वर्याणीत्यर्थः । तानि कथयन्तो ग्रन्थिकाः स्वबुद्धिविषयान्सतो विद्यमानान्कसादीन्प्रकाशयन्ति श्रोतुबुद्धौ समर्पयन्तीत्यर्थः ॥ विद्यमानत्वेन बुद्धिविषयत्वे हेतुमाह—आतश्च सत इति ॥ व्यामिश्राश्चेति । चो हेतौ । यतो विरुद्धपक्षाश्रिता दृश्यन्ते इत्यर्थः ॥ नद्यतीतत्वबुद्धौ तत्संभवतीति भावः ॥ तत्कालमृते स्वपक्ष इव वर्णान्यत्वं पुण्यन्ति पुष्टं कुर्वन्ति दधतीत्यर्थः ॥ तत्रैव मुक्त्यन्तरमाह—त्रैकाल्यं खल्वपीति । एवं च बुद्धिविषयसत्तयैव सर्वोपि व्यवहार इति भावः ॥ शब्देति । शब्दसमर्पितबुद्धिविषयाकारानित्यर्थः ॥ साधनत्वेनेति । बुद्धिविषयवधादेरित्यर्थः ॥ २६ ॥

इति श्रीशिवभट्टसुतसतीगर्भजनगोशभट्टकृते प्रदीपोद्ध्योते  
तृतीयस्य प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम् ॥

## तृतीयाध्यायस्य प्रथमे पादे तृतीयमाह्निकम् ॥

( ४०२ यक्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ३ आ. १ )

६४४ कण्ठादिभ्यो यक् ॥ ३।१।२७ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थः ककारः ? ।

( प्रदीपः ) कण्ठादिभ्यो यक् ॥ २७ ॥ किमर्थं इति । द्वैविध्यं कण्ठादीनां दर्शयितुमुपन्यासः ॥

( उद्ध्योतः ) कण्वादि ॥ २७ ॥ धातुभ्यो यकि गुणनिषेधकतया कस्य चारितार्थादाह—द्विविध्यमिति ॥

( समाधानभाष्यम् )

गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थः । क्तितीति गुणवृद्धिप्रतिषेधो यथा स्यात् ।

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । सार्वधातुकार्धधातुकयो-  
रङ्गस्य गुण उच्यते । धातोश्च विहितः प्रत्ययः शेष  
आर्धधातुकसंज्ञां लभते । न चायं धातोर्विधीयते ।  
कण्ठादीनि हि प्रातिपदिकानि ॥

( उद्ध्योतः ) प्रातिपदिकत्वमात्रं तु प्रष्टा मन्यते ॥

( १७८६ यकोवैकल्पिकत्वसाधकवार्तिकप्रथमखण्डम् ॥ )

॥ \* ॥ कण्ठादिभ्यो वावचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कण्ठादिभ्यो वेति वक्तव्यम् ॥

( १७८६ वार्तिकद्वितीयखण्डम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अवचने हि नित्यप्रत्ययत्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अक्रियमाणे हि वावचने नित्यः  
प्रत्ययविधिः प्रसज्येत ॥

( प्रदीपः ) ककारप्रयोजनमेव दर्शयितुं वस्त्वन्तरमुपक्षि-  
प्यते—कण्ठादिभ्यो वावचनमिति । यदा कण्ठादीनि  
प्रातिपदिकानि तदा वेति वक्तव्यमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) उपक्षिप्यते इति । तत्समाधानेनैव ककार-  
प्रयोजनमप्युक्तमेव भवतीति भावः ॥ यदेति । प्रातिपदिकान्ये-  
त्यर्थः ॥ केवलधातुपक्षे तु वावचने क्रियमाणेऽपि कण्ठवतीत्यनिष्ट-  
प्रसङ्गः, कण्ठावित्यादावुवडादिप्रसङ्गश्चेति भावः ॥ न च प्राति-  
पदिकान्येव सन्तु अत्र च सूत्रे 'करणे' इत्यनुवर्तते । तेन कण्ठं  
करोतीत्यर्थे यक्, अन्यदा त्वभावः । तेन कण्ठावित्यादेः सिद्धिः ।  
यगन्तेभ्यस्तु न किञ् अनभिधानात् । तेन नोवङ् सदितः प्रयोगः ।  
एवं च वावचनं किमर्थमिति वाच्यम् । मुख्यतीत्यादावतो लोपा-  
नापत्तेः ॥

( दोषप्रश्नभाष्यम् )

तत्र को दोषः ? ॥

( प्रदीपः ) तत्र को दोष इति । नित्येपि प्रत्यये किपा  
कण्ठूरित्यादि सिध्यतीति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) किपा संपदादि किपा ॥

( १७८७ दोषकथनवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र धातुविधितुकप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र धातुविधेस्तुकश्च प्रतिषेधो  
वक्तव्यः स्यात् । कण्ठौ कण्ठः “अचिभुधातुभुवां  
य्वोरियङ्वङौ” इत्युवङादेशः प्रसज्येत ।

इह कण्ठा कण्ठे इति “नोङ्धात्वोः” इति विभक्त-  
रुदात्तत्वप्रतिषेधः प्रसज्येत ॥

तुक् च प्रतिषेध्यः, वल्गुर्मन्तुरिति “ह्रस्वस्य  
पिति कृति तुक्” इति तुक् प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) किपा यथेष्टं रूपं न सिध्यतीति दर्शयितु-  
माह—तत्रेति । कण्ठयशब्दात् किपि विहितेऽकारलोपस्य  
स्थानिवत्त्वमुवङ् कर्तव्ये नास्ति । किलुगुपधात्वङ्प-  
रनिहासकुत्वेष्विति निषेधात् ॥ अथापि स्थानिवत्त्वादुवङ्  
स्यात्, तथापि वकारस्योऽ करिष्यते । आदिष्टादचः पूर्वो  
वकार इत्यूठि कर्तव्ये स्थानिवत्त्वाभावः । अत एवोऽः पुनरु-  
वङ् न भवति ॥ तत्रै कण्ठ शब्दादौजसोः कृतयोऽवङ्  
प्राप्नोति । ओःसुपीति तु यणादेशोऽसंयोगपूर्वस्योक्तः ॥

( उद्ध्योतः ) यथेष्टमिति । वीप्सायां यथाऽसादृश्य इल-  
व्ययीभावः । अथापीति । तदसार्वत्रिकम् । किं तु कौ विधौ  
नेत्येत सार्वत्रिकमिति भावः ॥ इदं प्रौढ्या ॥ आदिष्टादिति ।  
कौ विधिमिति निषेधादित्यपि बोध्यम् ॥ अत एवेति । आदिष्टा-  
दचः पूर्वत्वेन स्थानिवत्त्वाभावादेवेत्यर्थः । पुनरुवङ्नेति । लक्ष्ये  
लक्षणस्येति न्यायादित्यपि बोध्यम् । न चानादिष्टादचः पूर्वत्वं

१ सत्यामिति शेषः । विरुद्धपक्षाश्रितत्वं तत्पदार्थः । ( र. ना. )

२ धातुत्वाभावादिति भावः । ( र. ना. )

३ उक्तरीत्योवङ्त्वाभावोभयपक्षे निष्पन्नात्कण्ठशब्दादित्यर्थः । ( र. ना. )

४ “कौ लुप्तं न स्थानिवत्” इति ॥

स्थानिवद्भावेन लभ्यम्, वसादेशत्वाभावात् । उवङ् आदेशत्वेऽपि तस्य कार्याभावात् । न च सर्वे सर्वपदादेशा इति कण्डू इत्यस्य कण्डुवादेशे तस्य स्थानिवत्त्वादिनादिष्टादचः पूर्वत्वेन तस्य कण्डू ऊ इत्यादेशे कार्ये स्थानिवत्त्वं, सर्वे सर्वपदादेशा इत्याश्रित्याचः परस्मिन्नित्यस्या प्रवृत्तेः । अत एव स्वरदिग्रहणस्य व्यवहितसाधारणपूर्वत्वग्रहणज्ञापकैता आकरोक्ता संगच्छते । न च प्रातिपदिकानीत्युपक्रम्य भाष्ये वावचनाद् यदाकण्डूवादीनि प्रातिपदिकानीत्यादिना स्वयं तथैव व्याख्यानाच्चाहोपस्य स्थानिवत्त्वेऽपि तत्र परे पूर्वस्य कण्डू इत्यस्य धातुत्वाभावादुवङोऽप्राप्त्याऽसंगतोयं कैयटः स्पष्टं चेदं लोपो व्योः इति सूत्रे कैयट इति वाच्यम् । अतिदेशेनाकारे सत्यपि श्रवणाभावेन तस्य लौकिकसत्ताविरहात् छिन्नपुच्छ-स्वहृष्टान्तमूलकेन प्राग्दीव्यतोण् इति सूत्रभाष्योक्तैकदेशविकृतन्यायेन कण्डू इत्यस्य धातुत्वमित्यभिमानात् ॥ तत्रेति । आञस्-निमित्तक उवङ् प्राप्नोति । एकदेशविकृतन्यायेन कण्डू इत्यस्य धातुत्वात् । न चैतन्निमित्ते उवङि अहोपस्य स्थानिवत्त्वम्, कौ लुप्तमिति निषेधादिति भावः ॥ भाष्ये ह्रस्वस्य पिति इति । ह्रस्वोच्चारणसामर्थ्यादीर्घाभावं मन्यते ॥ तदध्वनयन्नाह—ह्रस्व-यलोपौ चेति ।

( १७८८ दोषकथनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ ह्रस्वयलोपौ च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ह्रस्वयलोपौ च वक्तव्यौ स्याताम् ॥

ह्रस्व—चल्गुर्मन्तुरिति ॥

किमर्थमिदम् न ह्रस्व एवायम् ? ।

अन्तरङ्गत्वाद् 'अकृद्यकार' इति दीर्घत्वं प्राप्नोति ।

ह्रस्वः ॥

यलोप—यलोपश्च वक्तव्यः । कण्डूर्मन्तुर्वचल्गुरिति ।

किमर्थमिदम्, न 'वलीत्येव सिद्धम् ।

वलीत्युच्यते, न चात्र वलं पश्यामः ॥

ननु च किं वलादिः ॥

किपो लोपे कृते वलाद्यभावात् प्राप्नोति । इदमिह संप्रधार्यम् किंलोपः क्रियतां वलि लोप इति । किमत्र कर्तव्यम् ? । परत्वात् किंलोपः ॥ नित्यः खल्वपि किंलोपः कृते यलोपे प्राप्नोति, अकृतेऽपि ॥ नित्यत्वात् परत्वाच्च किंलोपे कृते वलाद्यभावाद् न प्राप्नोति ।

एवं तर्हि प्रत्ययलक्षणेन भविष्यति ॥

वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥

( प्रदीपः ) नित्यत्वाच्चेति । वेरपृक्तलोपात् पूर्वं वलि-लोप इत्येतदनाश्रित्येदमुच्यते ॥ वर्णाश्रय इति । बल्लूपा-श्रयो व्योर्लोपः न तु प्रत्ययाश्रयः ॥ वावचने तु सति पक्षे यगनुत्पादाद्यथेष्टसिद्धिः ।

( उद्घोतः ) अन्तरङ्गत्वादिति । अकृतव्यूहपरिभाषा तु नास्त्येवेति भावः ॥ वेरपृक्तलोपादिति । इदं कास्तीति चिन्त्यम् । लोपो व्योः इति सूत्रे क्वावुपसंख्यानमिति वार्तिकम् ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

अथ क्रियमाणेपि वावचने यदा यगन्तात् किप् तदैते दोषाः कस्मान्न भवन्ति ॥

( समाधानभाष्यम् )

नैतेभ्यस्तदा किवुत्पद्यते ! किं कारणम् ? । “अन्येभ्योपि दृश्यते” इत्युच्यते । नैतेभ्यः तदा किञ् दृश्यते ॥

( प्रदीपः ) नैतेभ्य इति । कर्तरि क्पिपो विधानात् कण्डूरिति च कर्त्रर्थानवगमादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) कर्त्रर्थानवगमादिति । यत्र तु कर्त्रर्थानवगमस्तत्र भवत्येव यथाभिषज्यतेः क्पिपि भिषकुशब्दे इत्याहुः ॥ केचित्तु इदं भाष्यमजन्तपरमेवेत्याहुः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

यथैव तर्हि क्रियमाणेपि वावचने “अन्येभ्योपि दृश्यते” इत्यत्र किञ् न भवति । एवमक्रियमाणेपि वावचने न भविष्यति ॥

( किपीष्टपत्तिभाष्यम् )

अवश्यमेतेभ्यः क्तिबेष्टितव्यः । किं प्रयोजनम् । एतानि रूपाणि यथा स्युरिति ॥

( प्रदीपः ) अवश्यमिति । संपदादिलाद्भावे कर्तव्य इति भावः ।

( उद्घोतः ) संपदादित्वादिति । तेन वेदनामात्रप्रतिपादनेऽपि कण्डूरित्यादिसिद्धमिति भावः ॥ भाष्ये एतानीति । कण्डूरित्यादीनि दीर्घान्तप्रथमैकवचनान्तानीत्यर्थः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

तत्तर्हि वावचनं कर्तव्यम् ।

( उद्घोतः ) एवमपि कण्डूवित्याद्यर्थं वावचनं कर्तव्यमेवेत्याह—तत्तर्हि ॥

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । उभयं कण्डूवादीनि धातवश्च प्राति-

१ तद्वदितसंनिवेशपक्षस्य ततः पूर्वत्वस्यातिदेशसहस्रेणाप्यतिदेष्टुमशक्यत्वाच्चेति हरिदीक्षितोक्तिरपि न विस्तर्तव्या । ( र. ना. )

२ अहोपस्येति भावः । ( र. ना. )

३ यदि सर्वे सर्वपदादेशा इत्याश्रित्याचः परस्मिन्नित्यस्य प्रवृत्तिः स्यात्तदा निमित्तस्य स्थानिविशेषणत्वेन चिन्नीर्ष अकृ इत्यस्यातो लोप इत्यनेन चिन्नीर्षक इत्यादेश इति कल्पनया प्रकृतिप्रत्ययव्यपवर्गाभावेन क्लृप्तरामात्याऽहोपस्य स्थानिवत्त्वाप्राप्ते तद्वारणार्थं न पदान्तसूत्रे स्वरग्रहणं व्यर्थमेव स्यात्कृतस्तस्य

व्यवहितसाधारणपूर्वत्वग्रहणज्ञापकत्वमिति भावः । ( र. ना. )

४ अभिमानोक्तिर्नीजं तु स्थानिवत्त्वेनाकारुण्डौ सत्यां कण्डू अ इत्यस्यै-कदेशविकृतन्यायेन धातुत्वं ननु कण्डू इत्यस्य, अकारस्य लौकिकसत्ताविरहेऽपि आतिदेशिकसत्तावत्त्वात्, व्याकरणे च तस्या अप्यपेक्षणीयत्वादिति । ( र. ना. )

५ आह वार्तिके वक्ष्यतीत्यर्थः ॥

६ तथा च तदसिद्धवत्कृत्वाऽत्र यलोपो वक्तव्यत्वेनोपदिश्यते । ( र. ना. )

पदिकानि च ॥ आतश्चोभयम् । कण्डूयतीति हि क्रियां कुर्वाणे प्रयुज्यते । अस्ति मे कण्डूरिति वेदनामात्रस्य सान्निध्ये ॥

अपर आह—

धातुप्रकरणाद्धातुः कस्य चासञ्जनादपि ।

आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः ॥

इति ॥ कण्ड्वादिभ्यो यक् ॥ २७ ॥

( प्रदीपः ) वेदनामात्रस्येति । वेदना च सत्त्वरूपा प्रतीयते न च साध्यरूपेति भावः ॥

तत्र धात्वधिकाराद्धातुभ्य एव स्वार्थे यक् भवति । प्रातिपदिकेभ्यस्तु स्वाद्युत्पत्तौ सत्यां कण्डूरित्यादिरूपसिद्धिः ॥ कस्य चेति । धातुविधानप्रतिबद्धार्धधातुकसंज्ञाश्रयगुणनिषेधार्थात्ककारासञ्जनादपि धातुः कण्ड्वादिर्यकमुत्पादयतीति ज्ञायत इत्यर्थः ॥ आह चेति । दीर्घान्तपाठाच्च पाक्षिकं धातुत्वमेषां निश्चीयते । नित्ये हि धातुत्वे नित्ये च यकि सति अकृद्यकार इति दीर्घस्य सिद्धत्वादीर्घपाठोनर्थकः स्यादित्यर्थः ॥ २७ ॥

( उद्धोतः ) भाष्ये उभयं कण्ड्वादीनीति । उभयथेत्यर्थे उभयमित्यव्ययम् ॥ द्विप्रकाराणीत्यर्थः ॥ उभयाङ्गीकारे प्रमाणमाह—आतश्चेति ॥ ननु भावकिबन्तेन वेदनामात्रे कण्डूरित्यादिसिद्धिरत आह—सत्त्वरूपेति । सैवेत्यर्थः ॥ भावकिबन्ते हि प्रकृत्या साध्यरूपेणापि प्रतीतिः स्यादिति भावः ॥ एवं चैतेभ्यो भावे किं नास्त्येवेति तत्त्वम् ॥ स्वार्थे इति । नित्यमिति शेषः । वा ग्रहणाननुवृत्तेः । तेन पक्षे कण्डवतीत्यादि न । आर्धधातुकसंज्ञेति । न च सैपि मास्तु कोऽपि मास्तिवति वान्यम् । सुख्यतीत्यादावतो लोपार्थं तस्या आवश्यकत्वात् ॥ दीर्घपाठ इति । वर्युमन्तुप्रभृतीनां ह्रस्वपाठः प्रातिपदिकविषये चरितार्थ इति तेषामपि दीर्घो भवति ॥ यन्तु केषांचिदीर्घपाठेन वर्युमन्तुनां दीर्घाभावो ज्ञाप्यते । तत्र, भाष्यविरोधात् । शास्त्रबाधकल्पनापेक्षया प्रातिपदिकत्वकल्पनस्यैव लघुत्वाच्च । एतेन ककारेणार्धधातुकत्वमेव कल्प्यतामित्यपास्तम् । धातुत्वकल्पनस्यैव लघुत्वात् ॥ २७ ॥

( ४०३ णिङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ३ आ. २ )

६४७ कमेर्णिङ् ॥ ३ । १ । ३० ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थो णकारः ।

( समाधानभाष्यम् )

वृद्ध्यर्थः । ङिणतीति वृद्धिर्यथा स्यादिति ।

१ लिङ्प्रत्ययव्यतिरेकस्यैव द्वयस्यैवत्यर्थः । ( र. ना. )

२ प्रतिबन्धः संबन्धः । ( र. ना. )

३ आर्धधातुकसंज्ञेत्यर्थः ॥

४ यकि णकार इत्यर्थः ॥

५ एवञ्च गुणनिषेधार्थं ककारोऽप्यवश्यक इति भावः । ( र. ना. )

( समाधानबाधकभाष्यम् )

क्रियमाणेपि वैणकारे वृद्धिर्न प्राप्नोति । किं कारणम् । कृति चेति प्रतिषेधात् ।

( समाधानसाधकभाष्यम् )

णित्करणसामर्थ्याद्भविष्यति ।

( समाधानबाधकभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १७८९ समाधानबाधकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ णिङि णित्करणस्य सावकाशत्वाद् वृद्धिप्रतिषेधप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) णिङि णित्करणं सावकाशम् । कोवकाशः ? । सामान्यग्रहणार्थो णकारः । क सामान्यग्रहणार्थेन णकारेणार्थः ? । “णेरनिटि” इति । णिङि णित्करणस्य सावकाशत्वाद् वृद्धेः प्रतिषेधः प्राप्नोति ॥

( प्रतिबन्दीभाष्यम् )

ङित्करणमपि सावकाशम् । कोऽवकाशः ? । सामान्यग्रहणाविधातार्थो ङकारः । क सामान्यग्रहणाविधातार्थेनार्थः ? । अत्रैव ॥

( उद्धोतः ) कमेर्णिङ् ॥ ३० ॥ भाष्ये ङित्करणमिति । सावकाशमिति । एवं च परत्वाद्वृद्धिः प्राप्नोतीति भावः ॥

( ङित्करणवैयर्थ्यभाष्यम् )

शक्योत्र सामान्यग्रहणाविधातार्थोऽन्योऽनुबन्ध आसङ्कुम् । तत्र ङकारानुबन्धाद् वृद्धिप्रतिषेधः प्राप्नोति ।

( ङित्करणसार्थक्यभाष्यम् )

अवश्यमत्रात्मनेपदार्थो ङकारोऽनुबन्ध आसङ्कल्प्यः । ङित इत्यात्मनेपदं यथा स्यात् ॥

( प्रतिबन्दीबाधकभाष्यम् )

एवमप्युभयोः सावकाशयोः प्रतिषेधबलीयस्त्वात्प्रतिषेधः प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) कमेर्णिङ् ॥ ३० ॥ प्रतिषेधबलीयस्त्वादिति । प्रतिषेधस्य विध्यपवादत्वाद् बाधकत्वाद् बलीयस्त्वम् ।

( प्रतिषेधाप्राप्तिभाष्यम् )

एवं तर्हि आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—‘न कमेर्वृद्धिप्रतिषेधो भवतीति’ । यदयं न कस्यमिचमामिति मित्संज्ञायाः प्रतिषेधं शास्ति ॥

६ भाष्येऽविशेषेण सर्वेषामेव दीर्घाङ्गिरिति भावः ।

७ दीर्घविधायकेत्यादिः । ( र. ना. )

८ आर्धधातुकत्वकल्पनद्वारा धातुत्वकल्पनापेक्षया साक्षाद् धातुत्वकल्पनस्यैवत्यर्थः । ( र. ना. )

९ सामान्यविशेषभावसत्त्वाद्भेदेनान्वयः । ( र. ना. )

(उद्घोतः) यदयमिति । मित्रनिषेधो हस्वाभावफलकः वृद्धि-  
भावे स्वत एव ह्रस्वसत्त्वाद् व्यर्थः सन् वृद्धिस्तत्तां ज्ञापयतीत्यर्थः ॥  
(१७९० ज्ञापकत्वबाधकं मित्रप्रतिषेधसार्थक्यवार्तिकम् ॥ २॥)  
॥ \* ॥ मित्रप्रतिषेधस्य चार्थवत्त्वात् ॥ \* ॥

(भाष्यम्) मित्रप्रतिषेधस्य चार्थवत्त्वाद् वृद्धिप्रति-  
षेधः प्राप्नोति । अर्थवान् मित्रप्रतिषेधः । कोर्थः ? ।  
णिङन्तस्य णिचि या वृद्धिस्तस्या ह्रस्वत्वं मा भूदिति ।

(प्रदीपः) णिङन्तस्येति । कामयमानं प्रयुङ्क्त इति  
णिच् ॥

(ज्ञापकत्वसाधकभाष्यम्)

ननु तस्या अपि कृतिचेति प्रतिषेधेन भवि-  
तव्यम् ।

(ज्ञापकत्वबाधकभाष्यम्)

न भवितव्यम् । उक्तमेतत् कृति प्रतिषेधे तन्नि-  
मित्तग्रहणमुपधारोरवीत्यर्थमिति ।

(ज्ञापकत्वसाधकभाष्यम्)

एवं तर्हि णिङन्तस्य णिचि या वृद्धिस्तस्या ह्रस्वत्वं  
न प्राप्नोति । किं कारणम् । णिङा व्यवहितत्वात् ।

(ज्ञापकत्वबाधकभाष्यम्)

लोपे कृते नास्ति व्यवधानम् ।

(ज्ञापकत्वसाधकभाष्यम्)

स्थानिवद्भावाद् व्यवधानमेव ।

(ज्ञापकत्वबाधकभाष्यम्)

णिङ्येव तर्हि मा भूदिति ।

(प्रदीपः) णिङ्येवेति । णिज्निमित्ता या वृद्धिस्तस्या  
णिङ्निमित्तं ह्रस्वत्वं मा भूदित्येवमर्थो मित्रप्रतिषेधः स्यादित्य-  
ज्ञापको णिङ्बुद्धेरित्यर्थः ॥

(उद्घोतः) ननु णिङ्येवेत्युक्तं प्रतिषेधप्रवृत्तौ ह्रस्वस्यैव  
भावादत् आह—णिङ्निमित्तेति । तौ त्वसौ मन्यते ॥

(ज्ञापकत्वसाधकभाष्यम्)

णिङि च न प्राप्नोति । किं कारणम् ? । “असिद्धं  
बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षणे” इति ।

(प्रदीपः) णिङि चेति । ह्रस्वत्वमिति शेषः । असि-  
द्धमिति । ह्रस्वे कर्तव्ये बहिरङ्गा वृद्धिरसिद्धेत्यर्थः ॥

(उद्घोतः) ह्रस्वे इति । वृद्धेरसिद्धत्वे ह्रस्वस्य ह्रस्वे प्रयो-  
जनाभावात्तस्याप्रवृत्तौ ज्ञापकत्वमेव स्थितमिति भावः ॥

(ज्ञापकत्वसाधकयुक्त्यन्तरभाष्यम्)

नैव वा पुनर्णिङन्तस्य णिचि वृद्धिः प्राप्नोति ।  
किं कारणम् । णिङा व्यवहितत्वात् ॥

लोपे कृते नास्ति व्यवधानम् ॥

स्थानिवद्भावाद् व्यवधानमेव ॥

(प्रदीपः) स्थानिवद्भावादिति । किल्लुगुपधात्वे-  
त्युपधाविधौ स्थानिवत्त्वनिषेधः प्रत्ययाविधावेवेति तत्रैवो-  
क्तम् । तथा च पठयतीत्यत्र वृद्धौ कर्तव्यायां निषेधो न  
भवति ॥

(उद्घोतः) ननु पर्जन्यवलक्षणप्रवृत्तेर्ह्रस्वदृष्टावपि प्राप्त-  
ह्रस्वारणेत्यदीर्घश्रवणाय मित्रनिषेधः सार्थक इत्यरुचेराह—भाष्ये  
नैवेति ॥ प्रत्ययविधावेवेति । पारिखीय इत्यादौ ॥

(ज्ञापकत्वबाधकभाष्यम्)

इदं तर्हि प्रयोजनम् । यत्तत् “चिण्णमुलोर्दीर्घोन्य-  
तरस्याम्” इति दीर्घत्वं शास्ति, तत्कमेर्णिङि मां  
भूदिति ॥

(उद्घोतः) भाष्ये इदं तर्हि प्रयोजनं यत्तच्चिण्णमुलोरिति ।  
मिस्संज्ञाप्रतिषेधस्येति शेषः ॥

(ह्रस्वघटितन्यासकरणे लाघवभाष्यम्)

किं पुनः कारणं तत्र दीर्घोन्यतरस्यामित्युच्यते,  
न ह्रस्वोन्यतरस्यामित्येवोच्येत । यथाप्राप्तं कमेर्ह्रस्व-  
त्वमेव ॥ तत्रायमप्यर्थः—ह्रस्वग्रहणं न कर्तव्यं  
भवति । प्रकृतमनुवर्तते । क प्रकृतम् ? । “सितां  
ह्रस्वः” इति ।

(प्रदीपः) किं पुनरिति । कमेर्णिङि वृद्धिप्रतिषेधा-  
भित्यं ह्रस्वत्वमेव स्थितमिति मित्रप्रतिषेधो न कर्तव्यो भवति ।  
क्रियमाणस्तु णिङि वृद्धेरज्ञापक एवेति भावः ॥

(भाक्षेपभाष्यम्)

का रूपसिद्धिः । अशमि अशमि । शमंशमम् ।  
शामंशमम् ॥

(समाधानभाष्यम्)

वृद्ध्या सिद्धम् ॥

(भाक्षेपसाधकभाष्यम्)

न सिध्यति । नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमे-  
रिति वृद्धिप्रतिषेधः प्राप्नोति ॥

(भाक्षेपबाधकभाष्यम्)

नैष दोषः । चिण्णकृतोः स वृद्धिप्रतिषेधो, न  
णिचि ॥

१ णिङन्तस्य णिचिया वृद्धिः सा न ङित्प्रत्ययनिमित्तेति भावः । (र. ना.)

२ एवं तर्हि णिङन्तस्य णिचि ह्रस्ववारणरूपमित्रप्रतिषेधफलस्योपन्यास  
इत्यर्थः । ह्रस्वत्वं न प्राप्नोतीति । एवञ्चात्र ह्रस्ववारणार्थो मित्रप्रतिषेध इति वक्तुम-  
शक्यत्वेन मित्रप्रतिषेधस्य वृद्धिप्रतिषेधाभावज्ञापकत्वं सूत्रमिति भावः । (र. ना.)

३ मित्रप्रतिषेधो णिङि वृद्धेरज्ञापक इत्यर्थः । (र. ना.)

४ ङिति चेति प्रतिषेधप्रवृत्तावित्यर्थः । (र. ना.)

५ णिङ्निमित्ताया वृद्धेः ङिति चेति प्रतिषेधेऽपि णिङ्निमित्तां तामसौ  
मन्यत इत्यर्थः । मन्यते इत्युक्तिस्तु णिङ् निमित्ताया अपि तस्या अप्राप्तिः,  
स्थानिवद्भावेन णिङा व्यवधानादिति वक्ष्यमाणत्वादित्यभिप्रेत्य । (र. ना.)

६ प्रयोजनपदस्येति भावः । (र. ना.)

७ ङिति चेत्यनेनेति शेषः । (र. ना.)

८ ‘तस्य ह्रस्वविकल्पाप्राप्त्या इति’ आदौ शेषः । (र. ना.)



( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

इह तर्हि । अजनि अजानि जनंजनम् । जानं-  
जानम् । जनिवध्योश्चेति वृद्धिप्रतिषेधः प्राप्नोति ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

सोपि चिण्मुलोरेव, न णिच्चि ॥

( ह्रस्वघटितन्यासे गौरवभाष्यम् )

णिज्ज्वल्यवहितेषु तर्हि यङ्लोपे चोपसंख्यानं  
कर्तव्यं स्यात् । शमयन्तं प्रयोजितवान् अशमि  
अशामि । शमंशमम् । शमंशामम् ॥ शंशमयतेः—  
अशंशमि अशंशामि । शंशमंशंशमम् । शंशामं-  
शंशामम् ॥

किं पुनः कारणं न सिध्यति ? ।

चिण्णमुल्परं णौ मितामङ्गानां ह्रस्वो भवतीत्यु-  
च्यते । यश्चात्र णिः चिण्णमुल्परः, न तस्मिन्मिद-  
ङ्गम् । यस्मिन्मिदङ्गम्, नासौ णिश्चिण्णमुल्परः ॥

णिग्लोपे तर्हि कृते चिण्णमुल्परः ॥

स्थानिवद्भावाच्च चिण्णमुल्परः ॥

( प्रदीपः ) उपसंख्यानं कर्तव्यं स्यादिति । पाक्षि-  
कवृद्धिप्राप्त्यर्थमित्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) चिण्णमुलोरेत्यत्र ह्रस्वघटितन्यासे दोषमाह—  
भाष्ये णिज्ज्वल्यवहितेष्विति । पाक्षिकेति । वृद्धेर्वैकल्पिकत्वात्  
वृद्धिर्वैकल्पसंख्यानं कर्तव्यमित्यर्थः । दीर्घविधाने तु कृतह्रस्वस्य  
दीर्घविधानात्सिध्यतीति भावः ॥

( दीर्घघटितन्यासेऽनुयोगभाष्यम् )

अथ दीर्घोऽन्यतरस्यामित्युच्यमाने यावता स्था-  
निवद्भावः कथमेवैतावता सिध्यति ॥

( समाधानभाष्यम् )

एतदिदानीं दीर्घग्रहणस्य प्रयोजनम्—‘दीर्घ-  
विधिं प्रत्यजादेशो न स्थानिवद्भवती’ति स्थानि-  
वत्त्वप्रतिषेधः सिद्धो भवति ॥

( प्रदीपः ) एतदिदानीमिति । ततश्च पाक्षिकदीर्घ-  
निवृत्त्यर्थो मित्प्रतिषेधो न शापकः ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये दीर्घविधिं प्रतीति । न पदान्तसूत्रे  
जशादिसाहचर्येण त्रैपादिकदीर्घस्यैव ग्रहणेन पूर्वत्रासिद्धे न स्था-  
निवादिलाश्रित्य भगवता न पदान्तसूत्रे तेषां प्रत्याख्यानं न च

स्थानिवत्त्वनिषेधाप्रसक्तैरिदं भाष्यमेकदेश्युक्तिरिति नार्थसाधकम् ।  
णिज्जन्ताणिचि उपसंख्यानेन सिद्धेः । शंशमं शंशाममित्याद्यपि  
यङ्लगन्ताण्यमुलि सिद्धम् । न च चिण्णमुलोरेत्यत्र दीर्घविधान-  
सामर्थ्यादत्रैपादिकेऽपि निषेध इति वाच्यम् हेङ्धातोर्हङि अहीङि  
इति साधनेन चारितार्थ्यात् । ह्रस्वविधाने ह्यहेङीति स्यादिति  
बोध्यम् ॥ केचित्तु एतद्भाष्यप्रामाण्यात्तत्रत्य वार्तिके वरेयलोप-  
स्वरवर्जमित्यत्र दीर्घोऽप्युपलक्षणीयः एतदिदानीं दीर्घग्रहणस्य  
प्रयोजनमिति अत्रत्य भाष्यस्वारस्यात् हेङ्धातोर्धटादिष्वप्रमाणिकैः  
पाठः ॥ ऊकालसूत्रस्य भाष्यप्रामाण्याच्च । वा दान्तेति सूत्रस्य-  
भाष्यप्रामाण्याच्च, चिण्णमुलोरेति सूत्रस्य भाष्याच्चेति यथाश्रुतभाष्यं  
रमणीयमेवेत्याहुः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदा खल्वप्यायादय आर्धधातुके वा भवन्ति  
तदा णिचि णिङ् नास्ति तदर्थं च मित्प्रतिषेधः  
स्यात् । तस्मात्प्रतिषेधः प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) यदेति । अणिङन्तात्कमेर्यदा णिच् क्रियते  
तदा ह्रस्वनिवृत्त्यर्थो मित्प्रतिषेधः स्यादित्यर्थः ॥ ३० ॥

( उद्द्योतः ) तस्मात्प्रतिषेधः प्राप्नोतीत्यस्य तन्निषेधो वक्तव्य  
इति शेषः । अत एवोक्तं वेति वार्शब्दः संगच्छते ॥ ३० ॥

( समाधानभाष्यम् )

उक्तं वा । किमुक्तम् । तद्धितकार्म्योरिक्प्रकरणा-  
दिग्लक्षणयोर्गुणवृद्धयोः प्रतिषेधः नचैषा इग्लक्षणा  
वृद्धिरिति ॥ कमेर्णिङ् ॥ ३० ॥

( ४०४ विकल्पसूत्रम् ॥ ३ । १ । ३ आ. ३ )

६४८ आयादय आर्धधातुके

वा ॥ ३ । १ । ३१ ॥

( आर्धधातुक इति सप्तम्यर्थनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

कथमिदं विज्ञायते—आयादिभ्यो यदाधधातुकं  
तस्मिन्नवस्थिते वा आयादीनां निवृत्तिर्भवतीति ।  
आहो खिद्—आयादिप्रकृतैर्यदाधधातुकं तस्मिन्न-  
वस्थिते आयादीनामुत्पत्तिर्भवतीति ॥

१ यदा शमिप्रभृतिभ्यो णिज्जन्तेभ्यो द्वितीयो णिच् क्रियते इति पदमञ्जरी ॥

२ शमिप्रभृतिभ्यो यङ्लगन्तेभ्यो णिचि अहोपयलोपयोरिति पदमञ्जरी ॥

३ यत इत्यर्थः । एतावता, दीर्घोऽन्यतरस्यामिति वचनेनेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ हेङ् धातोर्णिज्जन्ताहङि चिण् मित्राद् उपधाह्रस्वत्वे तस्याननेदीर्घविक-  
ल्पेऽहिङि, अहीङि इति रूपद्वयसिद्धिः । अस्य ह्रस्वविकल्पविधायकत्वे तु मितां  
ह्रस्व इति प्राप्तं नित्यह्रस्वं बाधित्वाऽनेन ह्रस्वविकल्पेऽहिङि, अहीङि इति  
स्यादिति भावः । ( र. ना. )

५ अहीङि इत्येव भवतीति भावः । ( र. ना. )

६ ‘वा पदान्ते’ इति तु केनचिद् वृथैव शोधितम् ॥

७ तस्मात्, मित्प्रतिषेधस्य वृद्धिज्ञापकत्वाभावात् कमेर्णिङि कृति चेति वृद्धि-  
प्रतिषेधः प्राप्नोतीत्यर्थः । ( र. ना. )

८ ‘वा समुच्चय एवार्थ उपमानविकल्पयोः’ इति कोशप्रामाण्याद् ‘उक्तं वा  
इत्यस्य ‘उक्तमेव ‘कृति च’ इति सूत्रभाष्ये इत्यर्थकत्वे तु नैव वाशब्दासंगति-  
रिति शेषपूरणं नागेशमहर्ष्यानां व्यर्थमेवेति दाधिमथाः ॥

९ इक्प्रकरणादिग्लक्षणयोर्गुणवृद्धयोः प्रतिषेधो नचैषा तद्धितकार्म्योरिक्-  
लक्षणा वृद्धिरिति योजना । तद्धितकार्म्योरिति संबन्धसामान्ये षष्ठी । ( र. ना. )

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

किं गतमेतदियता सूत्रेण, आहोस्विदन्यतरस्मि-  
नपक्षे भूयः सूत्रं कर्तव्यम् ? ॥

( प्रदीपः ) आयादयः ॥ ३१ ॥ आर्धधातुकइति  
परसप्तमीमाश्रित्य पक्षद्वयविचारः । द्वयोरपि च पक्षयोर्दोष  
इति मत्वा प्रश्नः—कथमिति ॥

आहोस्विदन्यतरस्मिन्निति । निवृत्तिशब्द उत्पत्ति-  
शब्दो वा निर्देष्टव्य इति मन्यते ॥

( उद्घोतः ) आयादयः ॥ ३१ ॥ विषयसप्तम्यां विचारा-  
नारम्भादाह—परेति ॥

आयान्तादिभ्य आर्धधातुके सिद्धेऽस्य विध्यभावात् निवृत्तिवि-  
धेया तदर्थं तदुपादानं कार्यमित्याह—निवृत्तीति ॥ उत्पत्तिशब्दो  
वेति । अस्य प्रयोजनं चिन्त्यम् । सर्वत्र विधिवान्वये तदभावेऽप्यु-  
त्पत्त्यवगतेः । एकतरपक्षेऽधिककर्तव्यतायामेव भाष्यतात्पर्याच्च ।  
कचिद् अनुत्पत्तिशब्दो वेति पाठः ॥ आयाद्यनुवृत्त्यैव सिद्धे  
आयादय इति पञ्चम्या विपरिणम्यते । आयादिभ्यो यदार्धधातुकं  
तत्र परे गुपादिभ्य आयाद्यनुत्पत्तिरित्यर्थः ॥ परं त्विदं युक्तिं दिक् ॥

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

गतमित्याह । कथम् ? । यदा तावदायादिभ्यो  
यदार्धधातुकं तस्मिन्नवस्थिते वायादीनां निवृत्ति-  
र्भवतीति तदाऽविशेषेण सर्वमायादिप्रकरणमनु-  
क्रम्य “आयादय आर्धधातुके वा” इत्युच्यते ॥

यदाप्यायादिप्रकृतेर्यदार्धधातुकं तस्मिन्नवस्थिते  
वा आयादीनामुत्पत्तिर्भवतीति तदैकं वाक्यं तच्चेदं  
च । ‘गुपूधूपविच्छिन्नपणिपनिभ्य आयः । आर्ध-  
धातुके वा’ । “ऋतेरीयङ् । आर्धधातुके वा” ।  
“कमेर्णिङ् । आर्धधातुके वा” इति ॥

( प्रदीपः ) यदा तावदिति । एतद्वाक्यनिरपेक्षैरायादि-  
विधानवाक्यैः परनिमित्तानपेक्षा आयादयो यदा विधीयन्ते  
तदानेनार्धधातुके तेषां पक्षे निवृत्तिः क्रियते । यद्यापि नित्या  
शब्दास्तथापि शास्त्रप्रक्रियायां कचिदुत्पन्नस्य लोपादिद्वारेण  
निवृत्तिः क्रियते । कचिदपवादविधानेनोत्सर्गस्यानुत्पत्तिर्ज्ञा-  
प्यते । ततो निवृत्तिपक्षो नानुपपन्नः ॥

यदेति । यदा सूत्रत्रयस्यायं योगः शेषस्तदैकवाक्यतायां  
सत्यामार्धधातुके परत आयादयो विकल्पे नोत्पद्यन्त इति  
पक्षः । यदि तर्ह्येकवाक्यता ततः सार्वधातुक आयादयो नो-  
त्पद्येरन् ॥ नैष दोषः । गुपूधूपेयत्रैवार्धधातुके वेति वक्तव्ये  
पृथक्पाठात्सार्वधातुकेऽप्यायादयो भवन्तीति ज्ञायते । आर्ध-  
धातुक एव त्वेकवाक्यतया विकल्पे न विधीयन्ते ॥

१ निवृत्तिपदोपादानमित्यर्थः । ( र. ना. )

२ गुरुत्वमुपलक्षणम्, परस्परसंबन्धश्चेत्यपि बोध्यम् । तथाहि आयादि-  
विहितार्धधातुकपरत्वम्, गुपादिभ्य आयाद्यनुत्पत्तिद्वयं न संयुज्यते । आयादि-  
प्रकृतिभ्यो यदार्धधातुकं तत्र परे इति पाठे तु गौरवमेव दोषः । ( र. ना. )

३ इदं तावदिष्टं ॥

( उद्घोतः ) पक्षे निवृत्तिरिति । निवृत्तिपदं विनापि साम-  
र्थ्यादिति भावः ॥ कचिदिति । अदिप्रभृतिभ्य इत्यादौ ॥ कचि-  
दिति । यथा—दीर्घविषये यागः ॥

सूत्रत्रयस्येति । आयादय इति पदोपादानसामर्थ्यादित्यर्थः ।  
अन्यथाऽव्यवहितत्वात्कमेर्णिङित्यस्यैव शेषः स्यात् ॥ पृथक्पाठा-  
दिति । तत्सामर्थ्याद्भिन्नवाक्यतया एकवाक्यतया च वाक्यार्थ इति  
भावः ॥ एकं वाक्यमिति भाष्यस्य एकं वाक्यमपीत्यर्थः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः ? ।

( १७९१ विशेषदर्शकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ आयादिभ्यो यदार्धधातुकम्

आयादिप्रकृतेर्यदार्धधातुकमिति

चोभयथाऽनिष्टप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ‘आयादिभ्यो यदार्धधातुकम्’ ‘आ-  
यादिप्रकृतेर्यदार्धधातुकम्’ इति चोभयथाऽनिष्टं  
प्राप्नोति ॥

यदि विज्ञायते आयादिभ्यो यदार्धधातुकं तस्मि-  
न्नवस्थिते वा आयादीनां निवृत्तिर्भवतीति । गुप्तिः—  
जुगोपेति चेष्टं न सिध्यति । इदं चानिष्टं प्राप्नोति—  
गोपांचकार गोपेति । इदं त्विष्टं सिद्धं भवति—गो-  
पायांचकार गोपायेति ॥

( प्रदीपः ) गुप्तिरिति । गोपायशब्दस्य प्रत्ययान्तत्वा-  
दकारेण क्तिनो बार्धाद् गुप्तिर्न सिध्यति । आम्नि परत आयस्य  
पाक्षिक्यां निवृत्तौ जुगोपेति न सिध्यति ॥ दोषोपलक्षणं चैतत्  
गुप्त इत्यपि न सिध्यति । क्तप्रत्यये परत आयस्य निवृत्तौ  
सत्यां प्रत्ययलक्षणेन गुणप्रसङ्गात् । न च प्रत्ययलोपसूत्रे  
लोपसंज्ञासूत्रे वा तद्भावितग्रहणमाश्रितम् ॥

( उद्घोतः ) अकारेण अ प्रत्ययादिति विहितेन ॥ क्तिनो  
बाधादिति । रुयधिकारादूर्ध्वं वाऽसरूपविधेरभावादिति भावः ॥  
आम्नि परत इति । यद्यपि लिलेवार्धधातुके आयादिनिवृत्तिस्तथापि  
प्रत्ययलक्षणेन प्रत्ययान्तत्वादान्प्राप्नोति । वस्तुतः परत्वादामि कृते  
एवैतत्प्रवृत्तिरिति बोध्यम् ॥ तद्भावितेति । अत एव लुकि लोप-  
संज्ञासिद्धिः ॥

( द्वितीयपक्षदूषणभाष्यम् )

अथ विज्ञायते—आयादिप्रकृतेर्यदार्धधातुकं त-  
स्मिन्नवस्थिते वाऽऽयादीनामुत्पत्तिर्भवतीति ।  
गुप्तिर्जुगोपेति चेष्टं सिद्धं भवति । इदं चानिष्टं न  
प्राप्नोति—गोपांचकार गोपेति । इदं त्विष्टं न सि-  
ध्यति—गोपायांचकार गोपायेति ॥

४ ‘बाधनात्’ ॥

५ ननु वाऽसरूपोऽस्त्रियमिति विकल्पेन बाधः स्यादित्याशङ्क्यमावार्थमाह ।  
( र. ना. )

६ ‘चकारेति’ ॥

( सिद्धुपपत्तिभाष्यम् )

इदं तावदिष्टं सिद्धं भवति गोपायांश्चकारेति ॥  
कथम् ? । अस्त्वत्रायादिप्रकृतेर्यदार्धधातुकं लिट्  
तस्मिन्नवस्थिते वा आयादयः आम्मध्ये पतिष्यति  
यथा विकरणस्तद्वत् ॥

( अनुपपत्तिभाष्यम् )

इदं तर्हीष्टं न सिध्यति—गोपायेति ।

( उद्घोतः ) भाष्ये गुसिजुंगोपेति चेष्टं सिद्धमिति । आ-  
यस्य वैकल्पिकत्वात् तदभावे सिध्यतीत्यर्थः ॥

इदं तर्हीष्टमिति । इदमुपलक्षणम् । क्तिनि कृते आयप्रत्यये  
गोपायतीत्यनिष्टमपि प्राप्नोतीत्यपि बोध्यम् । अलोपस्तु न, आर्ध-  
धातुकोपदेशे तदभावात् ।

( १७९२ इष्टसाधकन्यासान्तरवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु सार्वधातुके नित्य-  
वचनादनाश्रित्य वा विधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । अविशेषेणा-  
यादीनां वा विधिमुक्त्वा “सार्वधातुके नित्यम्”  
इति वक्ष्यामि ॥

( उद्घोतः ) सार्वधातुके नित्यमिति । अत्र नित्यग्रहण-  
मार्थिकार्थकथनम् । सामान्यसत्रेवेत्येवैस्य नित्यत्वसिद्धेः ॥

( १७९३ स्यादिवलीयस्त्वापत्तिवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ स्यादिवलीयस्त्वं तु विप्रति-  
षेधेन तुल्यनिमित्तत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्यादिभिस्त्वायादीनां बाधनं प्राप्नो-  
ति ॥ किं कारणम् ? । विप्रतिषेधेन तुल्यनिमित्त-  
त्वात् । तुल्यं हि निमित्तमायादीनां स्यादीनां च ।  
स्यादीनामवकाशः—करिष्यति हरिष्यति । आया-  
दीनामवकाशः—गोपायति धूपायतीति । इहोभयं  
प्राप्नोति—गोपायिष्यति धूपायिष्यतीति । परत्वात्  
स्यादयः प्राप्नुवन्ति ॥

( प्रदीपः ) गोपायतीति । विशेषाभावाद्वा शपोनुत्-  
पत्तिरित्यायादीनामवकाशं मन्यते ॥

( उद्घोतः ) स्यादिभिरिति । लादेशप्रवृत्त्युत्तरं स्यतासी  
इति पक्षे इदम् ॥ तुल्यं हि निमित्तमित्यनेनान्तरङ्गत्वं निरखति ॥  
परत्वात्स्यादय इति । तथा च सकृद्वृत्तिन्यायेनायो न स्यादेवेति  
भावः । न च सार्वधातुके नित्यमित्यस्य परत्वाद्वाधेऽपि सामान्य-

१ अदन्तत्वेति तच्छब्दार्थः । ( र. ना. )

२ वेत्यनेनैवेत्यर्थः । ( र. ना. )

३ ननु गोपायतीत्यादौ शपाऽस्यादीनामवकाशो रुद्ध इत्याशङ्कां परिहरति ।  
( र. ना. )

४ सामान्यसत्रेणापि । ( र. ना. )

सूत्रेण, वैकल्पिक आयो भविष्यति । न हि तेनापि विप्रतिषेधः,  
तस्यानैमित्तिकत्वेनान्तरङ्गत्वादिति बाध्यम् । अपवादविषये उत्सर्गा-  
प्रवृत्त्या सार्वधातुकविषये तदप्रवृत्तेः ॥

( १७९४ स्यादिनामायादिबाधानापत्तिवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ न वाऽस्यादिविधानस्यानवकाश-  
त्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वैष दोषः । किं कारणम् ? । आया-  
दिविधानस्यानवकाशत्वात् । अनवकाशा आया-  
दयः । उच्यन्ते च ते वचनाद्भविष्यन्ति ॥

( अवकाशभाष्यम् )

ननु चेदानीमेवावकाशः प्रकृतः—गोपायति धू-  
पायतीति ॥

( अवकाशभावभाष्यम् )

अत्रापि शप् स्यादिर्भवति ॥

( अवकाशभाष्यम् )

यद्यत्रापि शप् स्यादिर्भवति । न त्वत्रास्ति विशेषः  
सति वा शप्सति वा ॥

( उद्घोतः ) न त्वत्रास्तीति । विशेषकृच्छ्रात् तदभावेन  
प्रवर्तते इति मन्यते ॥

अन्यदिदानीमेतद्—यदुच्यते ‘नास्ति विशेषः’  
इति । यत्तु तदुक्तम्—‘आयादीनां स्यादिभिरव्या-  
प्तोऽवकाशः’ इति, स नास्त्यवकाशः । अवश्यं  
खल्वप्यत्र शप्स्यादिरेषितव्यः । किं प्रयोजनम् ? ।  
गोपायन्ती धूपायन्तीति “शप्स्यनोर्नित्यम्” इति  
नित्यो नुम् यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) अन्यदिदानीमिति । विशेषाभावेऽपि लक्ष-  
णवशात् प्रवर्त्य शपेति भावः ॥ कामयत इत्यत्र तु विशेष-  
योऽस्त्येव । शपमन्तरेणास्य रूपस्याभावात् ॥

( उद्घोतः ) स नास्त्यवकाश इति । पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्ते-  
रिति भावः ॥ विशेषोऽप्यस्तीत्याह—कामयत इति ॥ गोपायन्ती-  
त्यत्रापि विशेषं भाष्ये दर्शयति—अवश्यं खल्वपीति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि तर्हि अनवकाशा आयादयः आयादिभिः  
स्यादीनां बाधनं प्राप्नोति ॥

( उद्घोतः ) यदि तर्हीति । एवं चानवकाशत्वे तैः स्यादि-  
बाधने गोपायिष्यतीत्याद्यसिद्धिरिति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

यथा पुनरयं सूत्रमेदेन परिहारः यदि पुनः “शपि  
नित्यम्” इत्युच्यते ॥

५ सामान्यसूत्रस्य । ( र. ना. )

६ सामान्यसूत्रं तच्छब्दार्थः । ( र. ना. )

७-८ “शप्स्यादिः” इत्यत्र स्यादिग्रहणं दृष्टान्तयोपात्तम् नेमौ रहौ—इत्यत्र  
हकारवत् । ( र. ना. )

९ कामयत इत्यर्थः । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) यथा पुनरिति । वार्तिककारेण तु सिद्धं सार्धधातुके नित्यवचनादिति ब्रुवता सूत्रभेदेन परिहार उक्तोऽवश्यकर्तव्ये च सूत्रभेदे शपि नित्यमिति न्यासः कर्तव्यो येन दोषो न भवतीत्यर्थः ॥ ननु तौदादिकत्वाद्धिच्छेः शेन भाव्यं न तु शपा । एवं तर्हि न्यासभेदोपलक्षणार्थमिदमिति क्षिति नित्यमिति तु न्यासः कर्तव्यः ॥ ३१ ॥

( उद्घोतः ) यथा पुनर्वार्तिककृता सूत्रभेदेन परिहार उक्तस्तथा सूत्रभेदमङ्गीकृत्य यदि पुनः शपि नित्यमित्युच्यते तदा सर्वदोषपरिहार इति भाष्याक्षरार्थः । कच्चिद्भाष्य एव शितीति पाठः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

सिध्यति । सूत्रं तर्हि भिद्यते ॥

( सिद्धान्तभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ॥

( दोषस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—\*आयादिभ्यो यदार्धधातुकमायादिप्रकृतेर्यदार्धधातुकमिति चोभयथानिष्टप्रसङ्ग\* इति ।

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । आर्धधातुक इति नैषा परसप्तमी । का तर्हि ? । विषयसप्तमी । आर्धधातुके विषय इति । तत्रार्धधातुकविषये आयादिप्रकृतेरायादिषु (वा) कृतेषु यो यतः प्रत्ययः प्राप्नोति स ततो भविष्यति ॥ आयादयः ॥ ३१ ॥

( उद्घोतः ) विषयसप्तमीति । आर्धधातुक इति सूत्रभाष्योक्तरीत्या जातिनिर्देश इति भावः ॥ सूत्रे आयादय इत्युक्तिरनन्तरस्यैव संबन्ध इति अमवारणायैति तत्त्वम् ॥ ३१ ॥

( ४०५ धातुसंज्ञासूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ४ )

६४९ सनाद्यन्ता धातवः ॥ ३।१।३२ ॥

( अन्तग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अन्तग्रहणं किमर्थम्, न “सनादयो धातवः” इत्येवोच्येत ? ।

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

केनेदानीं तदन्तानां भविष्यति ॥

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

तदन्तविधिना ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १७९५ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सनादिष्वन्तग्रहण उक्तम् ॥ \* ॥

किमुक्तम् । \*पदसंज्ञायामन्तवचनमन्यत्र संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिप्रतिषेधार्थम्\* इति । इदं चापि प्रत्ययग्रहणम् । अयं चापि संज्ञाविधिः ॥

( सूत्रारम्भप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं पुनरिदमुच्यते । न “भूवादयो धातवः” इत्येव सिद्धम् ॥

( प्रदीपः ) सनाद्यन्ता ॥ ३२ ॥ भूवादय इत्येवेति । भूवो वादयो भूवादय इत्यर्थाश्रयणादिति भावः ॥ ततश्च क्रियावाचिस्त्वान्तानां धातुसंज्ञा सिध्यतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) सनाद्यन्ता ॥ ३२ ॥ गणपाठनिबन्धनासंज्ञा कथमेषामत आह—भूवोवादय इति । वदन्तीति वादयः । भवर्थवाचकाः । क्रियावाचिनः इति यावत् । यथा सूत्र्यादीनां क्रियावाचकत्वं तथोक्तम् ।

( सूत्रारम्भसाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । पाठेन धातुसंज्ञा क्रियते । न चैते तत्र पठ्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) पाठेनेति । आदिशब्दस्य प्रत्येकं संबन्धादर्थपाठाभ्यां धातुसंज्ञा विहिता । तेनाणवयत्यादयः समागच्छन् सर्वनामादयो निवर्तिता भवन्तीति भावः ॥

( उद्घोतः ) तेनेति । पाठे नाणवत्यादयः । अर्थेन या इत्येवमादय इत्यर्थः ॥ पाठेनेत्यादि । न चैते तत्र पठ्यन्ते इत्यन्तैवान्न भाष्यकारोक्तिः ॥

( सूत्रप्रत्याख्यानसाधकप्रत्याक्षेपभाष्यम् )

कथं तर्ह्यन्येषामपठ्यमानानां धातुसंज्ञा भवति—“अस्तेभूः” “भूवो वचिः” “चक्षिङः ख्याजिति” ॥

( प्रदीपः ) स्थानिवद्भावेन धातुसंज्ञासिद्धिं वक्ष्यामीति पृच्छति—कथं तर्हीति ॥ ननु भूवचिख्यादिशब्दा धातुपाठे पठिता एव । नैतदस्ति । नहि ये धातुपाठे पठितास्तद्वातिदिश्यन्ते शब्दान्तरत्वादादेशानाम् । अग्न्यादीनां तु पाठशङ्कापि नास्ति ॥

( उद्घोतः ) धातुसंज्ञासिद्धिमिति । सनाद्यन्तेऽपीति शेषः ॥ पृच्छतीत्यस्यैकदेशीति शेषः ॥ शब्दान्तरत्वादिति । स्थानवर्धनिर्देशादपूर्वोद्देशाच्च तस्यैवान्न ग्रहणे तदीयप्रयोगनियम एव स्यादिति भवतीत्याशङ्कितमिति भावः ॥ पठितसादृश्येन भवतीत्यादिस्थानामिवैषामपि तेनैव धातुत्वेऽप्याह—अग्न्यादीनामिति भाष्यमुपलक्षणमिति भावः ॥ अनेनास्यैकदेश्युक्तित्वं ध्वनितम् ॥

१ प्राचीनपुस्तकेषु न लभ्यते ॥ अत्र वाशब्दो वाच्यलङ्कारे । ( र. ना. )

२ ननु—आयादय आर्धधातुके वेति सूत्रे—आयादीनामनुवृत्त्येव सिद्धेरायादय इत्युक्तिर्विफलेत्याशङ्क्य समाधत्ते सूत्र इति । ( र. ना. )

( सूत्रारम्भसाधकप्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

यद्यप्येते तत्र न पठ्यन्ते । प्रकृतयस्त्वेषां पठ्यन्ते । तत्र स्थानिवद्भावात्सिद्धम् ॥

( सूत्रप्रत्याख्यानभाष्यम् )

इमेऽपि तर्हि यद्यपि तत्र न पठ्यन्ते । येषां त्वर्थे आदिश्यन्ते—ते तत्र पठ्यन्ते । तत्र स्थानिवद्भावात्सिद्धम् ॥

( प्रदीपः ) येषां त्वर्थ इति । इष्यादीनामित्यर्थः ॥

( सूत्रारम्भसाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । आदेशाः स्थानिवदित्युच्यते । न चेमे आदेशाः ॥

( प्रदीपः ) न चेम इति । रुडिशब्दस्यादेशशब्दस्य तत्र ग्रहणाद्येषामेव स्थानिनिवृत्त्यादेशत्वं प्रसिद्धं तेषामेव तत्र ग्रहणमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) रूढीति । तस्यायोगाद्बलवत्त्वादिति भावः ॥ न चे मे इति । भाष्ये इमे सनादय इत्यर्थः ॥ तत्रेति । स्थानिवदित्येत्यर्थः ॥ स्थानिनिवृत्त्येति । स्थानपृष्ठीनिर्देशादिति भावः ॥

( सूत्रप्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

इमे अप्यादेशाः ॥ कथम् ? । आदिश्यते यः स आदेशः । इमे चाप्यादिश्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) इमेऽपीति । क्रियानिमित्तकस्यादेशशब्दस्य तत्र ग्रहणमित्यर्थः ॥ अत्र बोध्यन्ति—यदि स्थानिवद्भावेन सनादीनां धातुसंज्ञा विधीयते, तदा तदन्तविध्यभावात् प्रत्याख्यानमेवाङ्गसंज्ञानिबन्धनान्यडादीनि प्राप्नुवन्ति प्रत्याख्यानानां चेष्ट्यन्ते । यद्धप्रत्ययश्च समभिहारविशिष्टक्रियावचनाद्धातोः स्वार्थे विधीयते, आयादयश्च शुद्ध एव स्वार्थे विधीयन्ते इति तेषां स्थानिनः कस्य चिन्निवृत्त्यभावात् स्थानिवत्त्वाभावाद्धातुसंज्ञा न प्राप्नोति ॥ अत्रोच्यते । कर्तुमिच्छतीति करणाङ्ग इष्यर्थे सर्वे सर्वपदादेशा इति न्यायाद्वर्तमानस्य इषेः प्रसङ्गे चिकीर्षशब्दः सन्नत आदिश्यत इति सिद्धं तदन्तस्य धातुत्वम् । एवं समभिहारविशिष्टलवनक्रियावाचित्त्वशब्दप्रयोगप्रसङ्गे लोलयशब्द आदिश्यते । गुपेः प्रसङ्गे गोपायशब्द इति भगवतो भाष्यकारस्याभिप्रायः ॥ ३२ ॥

( उद्घोतः ) क्रियानिमित्तकस्येति । आदेशग्रहणसामर्थ्यादानुमानिकस्यैव यौगिकस्यापि ग्रहणमित्याशयः ॥ तदन्तविध्यभावादिति । स्थानिवत्सूत्रे विशेष्यासन्निधानात्तदभावे आदेशान्तस्यातिदेशेन धातुत्वाभाव इति भावः ॥ यदा तिवादिविधौ तदभावादित्यर्थः ॥ अत्रोच्यते इति । धातोः कर्मण इत्यादेः ‘समानकर्तृककर्मभूतधात्वर्थविशिष्टेच्छायां प्रतिपाद्यायां तत्स्थानेऽर्थाभिधान-

योग्यो यद्धात्वर्थकर्मत्वमिच्छायां प्रतिपिपादयितुं तद्धात्वादिः सन्नत आदेश’ इत्यादिक्रमेणार्थ इति भावः ॥ तच्चङ्गप्रयुक्ता विकरणास्तु न, अदादित्वादेरनतिदेशात् । करणाङ्गे इष्यर्थे कर्तुमिष्येतत्समभिहारेण वर्तमानस्येवः प्रसङ्गे सर्वे सर्वपदादेशा इति न्यायात् सन्नत आदिश्यत इति अन्वयः ॥ भगवतो भाष्यकारस्येति । एकदेशिन इति शेषः ॥ अनेन इमे[ऽपि] तर्हि यद्यपीत्यादिभाष्यग्रन्थ एकदेशिनोरुक्तिप्रत्युक्तिपरतया प्रौढिवाद एवेति ध्वनितम् ॥ ३२ ॥

( स्थानिवत्त्वानुपपत्तिभाष्यम् )

एवमपि षष्ठीनिर्दिष्टस्यादेशाः स्थानिवद्भवन्तीत्युच्यते । न चेमे षष्ठीनिर्दिष्टस्यादिश्यन्ते ॥

( स्थानिवत्त्वोपपादनभाष्यम् )

षष्ठीग्रहणं निवर्तिष्यते ॥

( निवृत्तिदूषणभाष्यम् )

यदि निवर्तते । अपवादे उत्सर्गकृतं प्राप्नोति । ‘कर्मण्यण्’ ‘आतोऽनुपसर्गे कः’ इति केऽप्यण्कृतं प्राप्नोति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति ‘नापवादे उत्सर्गकृतं भवतीति । यदयं श्यन्नादीन् कांश्चिच्छ्रितः करोति श्यन्श्मश्नाश्चुरिति ॥ सनाद्यन्ता धातवः ॥ ३२ ॥

( विधिप्रकरणे प्रत्ययप्रकरणे विकरणप्रकरणम् )

( प्रत्ययप्रकरणे विकरणप्रकरणम् )

( ४०६ स्यतासूप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ५ )

६५० स्यतासी लृटोः ॥ ३।१।३३ ॥

( विकरणानामुत्सर्गापवादत्वनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

इमे विकरणाः पठ्यन्ते । तत्र न ज्ञायते—‘क उत्सर्गः, कोऽपवाद’ इति ॥ तत्र वक्तव्यम्—अयमुत्सर्गः, अयमपवाद इति ॥

( प्रदीपः ) स्यतासी ॥ ३३ ॥ उत्सर्गापवादधर्मज्ञानाय पृच्छति—इम इति ॥

( उद्घोतः ) स्यतासी ॥ ३३ ॥ उत्सर्गापवादधर्मेति । स चापवादविषयेऽवश्यं प्राप्तिरूप उत्सर्गस्य धर्मः तदप्राप्तियोग्यविषयाभावेन निरवकाशत्वरूपोऽपवादस्य ॥

१ विशेष्यसन्निधानं तच्छब्दार्थः । ( र. ना. )

२ विशेष्यसन्निधानं तच्छब्दार्थः । ( र. ना. )

३ निषेधे हेतुमाह—अदादित्वादेरिति । ( र. ना. )

४ सिद्धं तु षष्ठी निर्दिष्टस्य स्थानिवद्भवनात् इति स्थानिवत्सूत्रे वार्तिकोक्तेः ॥

५ स्थानिवत्सूत्रप्रदीपोद्घोतौ द्रष्टव्यौ ॥

६ उत्सर्गत्वेनाभिमतम् तच्छब्दार्थः । ( र. ना. )

( समाधानभाष्यम् )

इमे ब्रूमः—यगुत्सर्गः, अपवादाः शबादयः स्यादयश्च ॥

( प्रदीपः ) यगुत्सर्ग इति । भावकर्मग्रहणानुवृत्त्या सार्वधातुकमात्रे विधानादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) भावकर्मग्रहणानुवृत्तौ उत्सर्गत्वासंभवादाह—भावेति ॥

( वार्तिकशेषभाष्यम् )

यदि यगुत्सर्गः, अपवादः शबादिः स्यादयश्च—

( १७९६ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ) )

॥ \* ॥ अपवादविप्रतिषेधाच्छबादि-  
बाधनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अपवादविप्रतिषेधाच्छबादिभिः स्यादीनां बाधनं प्राप्नोति । शबादीनामवकाशः—पचति पठति । स्यादीनामवकाशः पक्ष्यते गक्ष्यते । इहोभयं प्राप्नोति—पक्ष्यति यक्ष्यति । परत्वाच्छबादयः प्राप्नुवन्ति ॥

( प्रदीपः ) अपवादविप्रतिषेधादिति । यगपवादानामुभयेषां शबादीनां स्यादीनां च विप्रतिषेधे सति परत्वाच्छबादयः स्युरित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये स्याद्यवकाशः पक्ष्यते इति । कर्मादी शपोऽप्राप्तेरिति भावः ॥

( १७९७ आक्षेपबाधकवार्तिकम् ॥ २ ) )

॥ \* ॥ अपवादो नामानेकलक्षणप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अपवादो नाम स भवति यत्रानेकलक्षणप्रसङ्गः ॥ अत्र च भावकर्मणोर्यग्विधीयते, कर्तरि शप् । कः प्रसङ्गो यद्भावकर्मणोर्यकं कर्तरि शबादयो बाधेरन् ॥

( प्रदीपः ) अपवाद इति । यत्रोत्सर्गलक्षणस्यापवादलक्षणस्य च प्रसङ्गः तत्रापवादव्यवहारः । यन्निवधौ तु भावकर्मग्रहणानुवर्तनात्कर्तरि यकोऽप्रसङ्गान्नास्ति तदपवादत्वमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) यत्रेति ॥ अनेकलक्षणप्रसङ्ग इति बहुव्रीहिः ॥ अपवादशब्दश्च तद्विषयपरः ॥ अनवकाशोऽपवाद इति भावः ॥ यन्निवधौ त्विति । अन्यथा अस्ति च संभवो यदुभयं स्यादिति वार्तिकमते पचतीत्यादौ शपि कृते तमेव निमित्तीकृत्य यक् स्यादिति भावः ॥

( उत्सर्गपवादोदाहरणान्तरभाष्यम् )

एवं तर्हि यक्शपावुत्सर्गौ, अपवादाः श्यनादयः स्यादयश्च ॥

एवमपि

( १७९८ अन्यविधोत्सर्गपवादत्वविदूषणवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अपवादविप्रतिषेधाच्छबादि-  
बाधनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अपवादविप्रतिषेधात् इयन्नादिभिः स्यादीनां बाधनं प्राप्नोति । इयन्नादीनामवकाशः—दीव्यति सीव्यति । स्यादीनामवकाशः—पक्ष्यति यक्ष्यति । इहोभयं प्राप्नोति—देविष्यति सेविष्यतीति । परत्वाच्छबादयः प्राप्नुवन्ति ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

नैष दोषः । शबादेशाः श्यनादयः करिष्यन्ते ॥ शप् च स्यादिभिर्बाध्यते । तत्र दिवादिभ्यः स्यादिविषये शबेव नास्ति कुतः श्यन्नादयः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि शपो ग्रहणं कर्तव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । प्रकृतमनुवर्तते । क प्रकृतम् ? । “कर्तरि शक्” इति ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं षष्ठीनिर्दिष्टेन चेहार्थः ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

नैष दोषः । दिवादिभ्य इत्येषा पञ्चमी शबिति प्रथमायाः षष्ठीं प्रकल्पयिष्यति ‘तस्यादित्युत्तरस्ये’ति ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

प्रत्ययविधिरयं न च प्रत्ययविधौ पञ्चम्यः प्रकल्पिका भवन्ति ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

नायं प्रत्ययविधिः । विहितः प्रत्ययः प्रकृतश्चाऽनुवर्तते ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

अथ वा अनुवृत्तिः करिष्यते—सार्वधातुके यक् ‘स्यतासी ललुटोः’ ‘चिल लुङि’ ‘चलेः सिज्भवती’ति । कर्तरि शप् ‘स्यतासी ललुटोः’ ‘चिल लुङि’ ‘चलेः सिज्भवति । दिवादिभ्यः श्यन्’ ‘स्यतासी ललुटोः’ ‘चिल लुङि’ ‘चलेः सिज्भवति’ ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

अथ वान्तरङ्गाः स्यादयः । काऽन्तरङ्गता ? । लावस्थायामेव स्यादयः । सार्वधातुके श्यन्नादयः ॥ स्यतासी ॥ ३३ ॥

( प्रदीपः ) लावस्थायामिति । ननु च परत्वादादेशेर्भाव्यम् । न च लादेशानामनित्यत्वम् कृतेष्वपि स्यादित्यु

आतृतीयपरिसमाप्तेर्धालधिकारेऽपि 'धातोर्विहितस्य लस्य' इत्येवं विहितविशेषणाश्रयणाच्छादेशानां प्रसङ्गात् ॥ एवं तर्हि कृतेष्वपि लादेशेषु स्वादयो भवन्तोन्तरङ्गा एव भवन्ति । नहि तद्विधौ शब्देन सार्वधातुकत्वमर्थविशेषो वा कर्त्रा दिराश्रितः । श्यनादयस्तु तदाश्रयत्वाद्बहिरङ्गाः ॥ अवश्यं चैतदभ्युपगन्तव्यं कृतेषु लादेशेषु स्यादयः क्रियन्त इति । अन्यथा तासैः परस्य लसार्वधातुकस्यानुदात्तत्वविधानं 'न विकरणस्य खरो लसार्वधातुकस्वरं बाधत' इत्यस्यार्थस्य कथं ज्ञापकं स्यात् । यदि हि लावस्थायां तासिः क्रियेत पश्चात्सार्वधातुकं तदा सति शिष्ट-स्वाल्सार्वधातुकस्योदात्तत्वे प्राप्तेऽप्राप्तानुदात्तार्थं वचनमिति ज्ञापकत्वं नोपपद्येत ॥ ये त्वाहुः । संख्याविधानवाक्येनात्म-नेपदपरस्मैपदप्रकरणेन च लादेशविधानवाक्यस्यैकवाक्य-तायां लादेशानां बहिरङ्गत्वाच्छावस्थायामेवान्तरङ्गत्वात् प्रतिप-दविधानाच्च स्यादयो भवन्तीति । तैस्तासैः परस्य लसा-र्वधातुकस्यानुदात्तविधानस्य पूर्वोक्तार्थज्ञापकत्वमसमर्थितं भवति ॥ ३३ ॥

( उद्घोतः ) लावस्थायामिति भाष्यस्यादेशोत्पत्तेः प्रागेव स्यादय इत्यर्थः प्रतिभाति । तत्र शङ्कते—ननु चेति ॥ अनित्य-त्वमिति । व्यवधानेन धातोः परत्वाभावादप्राप्तेरिति भावः ॥ अन्यथेति । इदं च ज्ञापकम्, अनुदात्तं पदमेकवर्जमित्यत्र भाष्ये स्पष्टम् । लादेशोत्तरं स्यादिप्रवृत्तौ तु सति शिष्टस्यादिस्वर-निमित्तकवर्ज्यमानस्वरेण लसार्वधातुकानुदात्तत्वे सिद्धे पुनर्विधीय-मानं तज्ज्ञापकाय संपद्यत इति भावः ॥ ये त्विति ॥ एतन्मते—अन्यत्र विकरणेभ्य इत्यंशो वाचनिक इति बोध्यम् ॥ प्रतिपद-विधानाच्चेति चिन्त्यम् निरवकाशत्वाभावात् इति कश्चित् ॥ परत्व-नुदात्तमिति सूत्रे भाष्ये सतिशिष्टस्वरवलीयस्त्वे सुनुत इत्यादौ सार्वधातुकस्वरबाधः स्यादि शङ्कायां वार्तिककारेणोक्तम्—स्यादि-नाम्येः परस्यानुदात्तत्वचनादिति । परत्वाच्छादेशा इत्येव

द्विप्रतिषेधाच्छयनादिभिः स्यादिबाध-

नुसारेण समाधानद्वयमुक्त्वा अथ-

म् । तस्यायं भावः—आर्धधातुक

य इत्यन्तरङ्गा इति विकरण-

मेव ॥ कैयटोक्तमर्थोपेक्षं सार्व-

त्वं न युक्तम्, तस्यात्र शास्त्रेऽनाश्रय-

अत एवात्र विप्रतिषेधो वार्तिककृतः संगच्छते ॥

तम् कषिभ्यां न ज्ञातमित्युक्तिरित्यन्याया, कान्त-

रङ्गता लावस्थायां स्यादय इति भाष्योक्तोर्भेदावाच्च । अल्पापेक्ष-त्वात्तिवादिभ्यः पूर्वं स्यादय इत्येवं वक्तुमौचित्याच्चेत्याहुः ॥ ३३ ॥

( ४०७ सिब्विकरणविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ६ )

६५१ सिब्वहुलं लेटि ॥ ३।१।३४ ॥

( १७९९ छान्दसत्वनियमवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सिबुत्सर्गः छन्दसि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिबुत्सर्गश्छन्दसि कर्तव्यः ॥

( १८०० सनादिषु विधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सनाद्यन्तेनेषत्वाद्यर्थः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सनाद्यन्ताधिकारे च कर्तव्यः । किं प्रयोजनम् ? । नेषत्वाद्यर्थः । इन्द्रो नस्तेन नेषतु । गावो नेष्टादिति ॥

( प्रदीपः ) सिब्वहुलम् ॥ ३४ ॥ सिबुत्सर्ग इति । परनिमित्तमनुपादाय सनादिवर्गे धातोः सिब्व विधेयः । तेन तदन्तस्य धातुसंज्ञायां सत्यां नेषत्वादीनि सिद्ध्यन्ति । नीशब्दात्सिपि गुणे च कृते लोटि च नेषत्विति रूपम् ॥

( उद्घोतः ) सिब्वहुलम् ॥ ३४ ॥ उत्सर्गपदार्थमाह—परनिमित्तमनुपादायेति । एवं हि सामान्यविधित्वादुत्सर्गत्वं भवति ॥ भाष्ये सनाद्यन्ताधिकार इति । सनाद्यन्तेति येषाम-धिकारो बुद्धिस्तथा तेषु कर्तव्य इत्यर्थः ॥ सिद्ध्यन्तीति । लोच्यपि सिप्सिद्धिरित्यर्थः । नेषत्विति प्रयोगे सिप्शपोः समावेशः सिद्ध्यति । विकरणत्वे तु स न स्यादिति भावः ॥ लोट्त्वाच्छन्दसि लेटोऽडा-टावित्यस्याप्राप्तिरिति बोध्यम् ॥

( १८०१ सनादिवर्गीयत्ववैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ प्रकृत्यन्तरत्वात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रकृत्यन्तरत्वात्सिद्धमेतत् ॥

कथं प्रकृत्यन्तरं नेषः ? ॥

( १८०२ प्रकृत्यन्तरत्वहेतुवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ नेषतु नेष्टादिति दर्शनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नेषतु नेष्टादिति हि दृश्यते ॥

( प्रदीपः ) प्रकृत्यन्तरत्वादिति जेषृणेषृ णषृ प्रेषृ-गताविति पाठान्नयत्यर्थं उत्सर्गो न कर्तव्यः ॥ अवयासिरीष्टा इत्याद्यर्थस्तु कर्तव्य एव ॥

( उद्घोतः ) अत्र उत्सर्गः कर्तव्यः, स च 'सनाद्यन्ते कर्तव्यः' इति पूर्वपक्षद्वयम् । तत्रान्त्यः खण्डित एव । उत्सर्गता त्वावदयकीत्याह—अवयवेति । लिङि सिप्सिद्धयर्थमुत्सर्गः कर्तव्य इत्यर्थः ॥ भाष्ये इति हीति नेषत्वित्यर्थं सनादिवर्गे करणे नेष्टा-दित्यस्यासिद्धिः अत्र करणे नेषत्वित्यसिद्धिः ॥ प्रकृत्यन्तरत्वे तु नेष्टादिति नयतेः सिपि सिद्धम् । अत्रैव लेटीतिपदरहितसूत्रकरणा-

१ सार्वधातुकत्वादि तच्छब्दार्थः । ( र. ना. )

२ यत् तासैः परस्य लसार्वधातुकस्यानुदात्तत्वविधानं ज्ञापकम् तदुपकर्तु-मित्यर्थः । ( र. ना. )

३ वार्तिककारमतम् । ( र. ना. )

४ प्राचीनलिखितपुस्तकेषु नैव लभ्यते ॥

५ अत्र विधा भाष्यसंगतिः प्रतीयते 'कथम्' इति प्रश्ने 'प्रकृत्यन्तरं नेषः' इत्युत्तरे हेतुः 'नेषतु—' इति वार्तिकम् । इत्येका विधा ॥ 'कथं प्रकृत्यन्तरम्' इति प्रश्ने 'नेषः' इत्युत्तरम् । इति द्वितीया कथं प्रकृत्यन्तरं 'नेषः' इति प्रश्नस्यै-वोत्तरम् 'नेषतु—' इति वार्तिकम् । इति तृतीया ॥

६ सेः सिद्धयर्थम् । ( र. ना. )

दित्याशयः ॥ यदा नेष्टादित्यत्र विकरणव्यत्ययेन शपो लुक् । नेषतु नेषतादिति दृश्यते इति भाष्ये पाठः । लोकेपीति शेषः ॥ नेष्टादिति दृश्यते इति लेखकप्रमादः । अन्यथा प्रकृत्यन्तरावश्यकत्वं न दर्शितं स्यात् ॥

( पित्करणप्रत्याख्यानधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ किमर्थः पकारः ? ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

स्वरार्थः “अनुदात्तौ सुप्पितौ” इत्येष स्वरौ यथा स्यादिति ॥

( १८०३ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥\*॥ पित्करणानर्थक्यं चानच्कत्वात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) पित्करणं चानर्थकम् । कुतः ? । अनच्कत्वात् । अनच्चोऽयम् । तत्र नार्थः स्वरार्थेनानुबन्धेन पकारेण ॥

( प्रत्याख्यानबाधकभाष्यम् )

इति कृते साचको भविष्यति ॥

( १८०४ प्रत्याख्यानसाधकवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥\*॥ इटोऽनुदात्तार्थमिति चेदागमानुदात्तत्वासिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आगमानुदात्तत्वेनेटोऽनुदात्तत्वं भविष्यति ॥

( उद्धोतः ) भाष्ये आगमानुदात्तत्वादिति । तारिषदित्यादौ धातुस्वरप्रयुक्तशेषनिधातेनेति भावः ॥

( प्रत्याख्यानबाधकभाष्यम् )

एवं तर्हि सबयं कर्तव्यः । किं प्रयोजनम् ? । यदवयासिसीष्ठाः पकाजलक्षण इट्प्रतिषेधो मा भूदिति ॥

( प्रदीपः ) सबयमिति । सनादिमध्येऽत्रैव वेति भावः ॥ यदवयासिसीष्ठा इति । यातेरवपूर्वात् सप् लिङ् यास् सुट् सीयुट् । सबन्तस्याङ्गस्यानेकाच्त्वात्सीयुडादेरिडागमो भवति । यदि पुनः सिप् क्रियते तदाषड्यमिकार उच्चारणार्थं व्याख्येयः । अन्यथा तस्य श्रवणं स्यात् । तत्र सिबन्तस्य धातोरेकाच्त्वादित्प्रतिषेधः प्रसज्येत ॥ ननु योऽत्र धातुरपदेशोऽनुदात्तो याशब्दः न तस्मात् परमार्धधातुकं, सिपा व्यवधानात् । यस्माच्च सिबन्तात् परमार्धधातुकं नासावुपदेशोऽनुदात्तः ॥ एवं तर्हि सनाद्यन्ता धातव इत्यस्य यदा सनाद्यवयवा धातवो भवन्तीत्यर्थो व्याख्यायते तदा सिपो यात्यवयवत्वाद्यातिग्रहणेन ग्रहणादिद्विप्रतिषेधप्रसङ्गः । यदापि स्थानिवद्भावाश्रयणेन सूत्रं प्रत्याख्यातं तदा स्थानिवद्भावेनानुदात्तादेकाचः श्रूयमाणात् प्राप्तोत्येवेद्विप्रतिषेधः ॥

( उद्धोतः ) सनादिमध्ये इति । लेटीति पदरहितमिति भावः ॥ एवं च सपः साचकत्वेन पित्त्वं चरितार्थमिति बोध्यम् ॥ ननु स्थानपरिवर्तनेन सनादिवर्गे करणे फलाभावस्य भाष्ये उक्तेराह—अत्रैव वेति । अत्रापि करणेन इट् सिद्धिरिति तात्पर्यम् ॥ भाष्ये किं प्रयोजनमित्यकारविषयः प्रश्नः ॥ यदवयासिसीष्ठा इति । नन्वत्र सिप्यपि तेन व्यवधानान्निषेधाप्रवृत्ताविट् सिध्यत्येवेत्यत आह—सबन्तस्याङ्गस्येति । एकाच इत्यङ्गस्यैव विशेषणम् । उपदेश इति चानुदात्तेनैव संबध्यते । उपदेशे योऽनुदात्तस्तद्वटित्तादेकाचोऽङ्गादिति चार्थः । सैनैमित्तिकत्वात्पूर्वमेव, ततश्च लादेशा इति भावः ॥ उच्चारणार्थं इति । इत्संज्ञायां फलान्तराभावादिति भावः ॥ उच्चारणे सहायसंपादनेन चरितार्थस्येत्संज्ञया लोपेन नेष्टसिद्धिरिति बोध्यम् ॥ सिबन्तस्य धातोरिति । अङ्गस्येति वक्तुमुचितम् ॥ सीयुटः सस्य षत्वाभावश्छान्दसः ॥ ननु चेति । तद्वटित्तादित्यर्थे न मानमित्यभिमानः ॥ नासावुपदेश इति । सिबन्तस्योपदेशाभावादिति भावः ॥ एवं च सिपैव सिद्धे अकारोच्चारणं व्यर्थमिति पूर्वपक्षाशयः ॥ सनादिवर्गपाठाभिप्रायेणेदं फलमुक्तमिति समाधत्ते—एवं तर्हीति । अकारोच्चारणसामर्थ्यादुपदेशोऽनुदात्तवटित्तादेकाचोऽङ्गादित्यर्थे इति न दोष इति तत्त्वम् । अनुदात्तादेकाच इति । सपि तु परत्वादिडादिषु कृतेषु अतो लोप इति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कायमकारः श्रूयते ? ।

( समाधानभाष्यम् )

न कचिच्छ्रूयते । लोपोऽस्य भविष्यति । “अतो लोपः आर्धधातुक” इति ॥

( प्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

यदि न कचिच्छ्रूयते । नार्थः स्वरार्थेन पकारेणानुबन्धेन ॥

( पकारप्रयोजनभाष्यम् )

एवमपि कर्तव्यः ? । किं प्रयोजनम् । अनुदात्तस्य लोपो यथा स्यादुदात्तस्य लोपो मा भूदिति । किं च स्यात् ? । उदात्तनिवृत्तिस्वरः प्रसज्येत ॥

( प्रदीपः ) अनुदात्तस्येति । धातोरित्यनाश्रित्योक्तम् । अथ वैतत् प्रदेशपाठाश्रयमेतद्भाष्यम् ॥ उदात्तस्येति । छन्दस्युभयथेति सार्वधातुकत्वादुपदेशादिति लसार्धधातुकानुदात्तत्वे सति प्रत्ययस्वरेण धातुस्वरेण वा सशब्दाकारस्योदात्तत्वादुदात्तनिवृत्तिस्वर इटा प्रसज्येत । पकारे तु सति अनुदात्त एवेह भवति पित्करणसामर्थ्यादेव च सशब्दाकारस्य धातुस्वरो न भवति एतत् प्रदेशपाठाद्वा । याशब्दस्यैव तु भवति । तिङ्ङुतिङ्ङु इति यो निघातः स निपातैर्य-



द्यदीति प्रतिषिद्धः । अवशब्दस्य तिङि चोदात्तवतीति निघातः ॥

( उद्द्योतः ) अथवेति । अत्र पाठे हि तदन्तस्थाधातुत्वात्तदप्रवृत्तिरिति भावः ॥ इदमेव युक्तम् । नन्वत्र योऽनुदात्त इकारस्तत्र परतो न लोपः आर्धधातुके हि सः । न च तदनुदात्तमत आह—लसार्वधातुकानुदात्तत्वे सतीति । अत्र पाठे ॥ प्रत्ययस्वरेणेति । सनादिपाठे ॥ धातुस्वरेणेति । प्रत्ययस्वरेणेत्येव युक्तम् । सनादिपाठस्य स्थानत्यागे फलाभावेन भाष्ये दूषितत्वात् ॥ पित्करणसामर्थ्यादित्यपि चिन्त्यम् । एतत्प्रदेशोत्पाद्येव युक्तम् ॥ या शब्दस्येवेति । एवं च यासिसिष्ठा इत्याद्युदात्त इति भावः ॥ ननु तिङ्गुतिङ् इति निघातः स्यादत आह—तिङ्गुतिङ् इति । अत्रेदं तत्त्वम्—अत्रैव पाठो लेटीति पदरहितः कार्यः । अकारस्तु लसार्वधातुकानुदात्तत्वायोक्तरीत्येदप्रतिषेधाभावाय च ॥ उदात्तनिवृत्तिस्वरवारणाय च पकारः । अन्तरङ्गत्वाच्च पूर्वं सपि ततो विकरणव्यवधानेऽप्यादेशः । अत आर्धधातुकोपदेशोऽकारान्तत्वालोपसिद्धिरिति ॥ ३४ ॥

( १८०५ सियो णिस्वविधिवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ सिब् बहुलं छन्दसि णित् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिब् बहुलं छन्दसि णिद् वक्तव्यः सविता धर्मं साविषत् । प्र ण आयूषि तारिषत् ॥ सिब्बहुलम् ॥ ३४ ॥

( प्रदीपः ) साविषदिति । षू प्रेरण इत्यस्य लेटिरूपम् ॥ तारिषदिति तरतेः ॥ ३४ ॥

( आम्बिकरणप्रकरणम् )

( ४०८ आम्बिकरणविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ७ )

६५२ कास्प्रत्ययादाममन्त्रे

लिटि ॥ ३।१।३५ ॥

( १८०६ आम्बिकरणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ काम्ग्रहणे चकास उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कास्ग्रहणे चकास उपसंख्यानं कर्तव्यम् । चकासांचकार ॥

( न्यासान्तरेण वैयर्थ्यभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । चकास्प्रत्ययादिति धक्ष्यामि ॥

१ अयं वार्तिकपाठो नैव पुस्तके कुत्राप्युपलब्धः । तथापि भाष्ये व्याख्यामात्रदर्शनेन व्याख्याया मूलमन्त्राऽनुपपत्त्या मूलवार्तिकमासीत् इति अन्यत्र व्याख्याया मूलपूर्वकत्वस्यैव दर्शनेन मूलवार्तिकं कल्पनीयमेवेति सिद्धे 'साधनं कृतेति पादहारकार्थम्' १२५८ वार्तिकस्यैव 'साधनं कृता समस्यत इति वक्तव्यम् । किं प्रयोजनम् ? पादहारकार्थम्' इति व्याख्यायाः, 'कर्मवद्भाष्यार्थम्' १३७३ वार्तिकमिति रहितमपि 'कालाध्वानौ कर्मवद्भवतः इति वक्तव्यम् । किं

( १८०७ न्यासान्तरेपि वार्तिककरणम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ चकास्ग्रहणे कास उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चकास्ग्रहणे कास उपसंख्यानं कर्तव्यम् । कासांचक्रे ॥

( दूषणभाष्यम् )

सूत्रं च भिद्यते ॥

( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ॥

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तम् \*कास्ग्रहणे चकास उपसंख्यानम्\* इति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । चकास्शब्दे कास्शब्दोऽस्ति तत्र कास्प्रत्ययादित्येव सिद्धम् ॥

( दूषणस्थैर्यभाष्यम् )

न सिध्यति । किं कारणम् । अर्थवतः कास्शब्दस्य ग्रहणम् । न च चकास्शब्दे कास्शब्दोऽर्थवान् ॥

( उद्द्योतः ) कास्प्रत्यया ॥ ३५ ॥ नन्वत्र प्रत्ययग्रहणं व्यर्थम् 'आममन्त्रे लिटि' इति योगविभागेन सामान्यत आमं विधाय कास्ग्रहणं नियमार्थं व्याख्येयम् । औपदेशिकाधातोश्चेत्कास एवेति प्रत्ययान्ते सिद्धेरिति चेन्न । अनेकाच्च प्रत्ययान्तग्रहणार्थत्वात् । तेन कादिभ्य आचारकिवन्तेभ्य आम् । ध्वनितं चेदं हरदत्तग्रन्थे । न चैकाच्चप्रत्ययान्तपरमेवास्तु किग्रहणेनैव सिद्धेः प्रत्ययग्रहणवैयर्थ्यापत्तेः ॥ गोपायांचकारेत्यादि भाष्यप्रयोगविरोधापत्तेश्च ॥

( समाधानसिद्धान्तिवार्तिकशेषभाष्यम् )

एवं तर्हि ।

( १८०८ समाधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ कास्यनेकाचश्चुलुम्पाद्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कास्यनेकाचः इति वक्तव्यम् । किं प्रयोजनम् ? चुलुम्पाद्यर्थम् । चुलुम्पांचकार ददिद्रांचकार ॥ कास्प्रत्यया ॥ ३५ ॥

( उद्द्योतः ) कास्यनेकाच इति । कासिपदमनेकाच्धातुमात्रस्य यथा भवति तथा व्याख्येयमित्यर्थः । तथा हि । 'एकदेशेन धातोश्चेलोप एव' इति नियमपरतया तद्व्याख्येयमिति । एवं च

प्रयोजनम् ? । लाघर्थात् इति व्याख्यातं भाष्यकृतेति दृष्ट्वा मूलभूतं वार्तिकम् अस्माभिः कोष्टकमध्ये वर्धितमिति क्षन्तव्यम् ॥ नागेशभट्टैस्तु "अनेकाग्रहणं चुलुम्पाद्यर्थम्" इति शेषरे दर्शितम् । उद्द्योते तु मौनमेवाश्रितम् ॥ "वयं तु—कास्यनेकाच इति वक्तव्यमिति भाष्यवार्तिकं ननु कात्यायनवार्तिकव्याख्यानभूतं येन कात्यायनवार्तिकं कल्प्येत—इति तत्कल्पनमनुचित इति वदामः" । ( र. ना. )

चकास उपसंख्यानमिति वार्तिकं सूत्रस्य प्रत्ययग्रहणं च न कार्य-  
मिति भाष्यतात्पर्यम् ॥ यथाश्रुतवार्तिकेऽपि प्रत्ययग्रहणस्थानेऽने-  
काग्रहणं कर्तव्यमित्येव तात्पर्यमिति हरदत्तानुसारिणः । अन्ये तु  
कासीति सप्तमी काम्बुविते सूत्रे-इत्यर्थः । अन्यथा समाहारद्वन्द्वे  
टजापत्तिः । इतरेतरयोगे तु द्विवचनापत्तिः ॥ प्रत्ययग्रहणापनर्थने  
च न मानम् । सूत्रे प्रत्ययग्रहणं तु योगविभाजनियमकल्पनारूप-  
गौरवपरिहारेण स्पष्टार्थमेव ॥ एवं च कशब्दादिभ्य आचारकिपि  
कामौसेत्यादिरूपाण्येव सत्यभिधाने इत्याहुः ॥ ३५ ॥

( ४०९ आम्रप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ८ )

६५३ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः

॥ ३ । १ । ३६ ॥

( १८०९ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ गुरुमत आम्बिधाने लिङ्गि-  
मिच्छात् प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गुरुमत आम्बिधाने लिङ्गिमिच्छाद्  
गुरुमतः प्रतिषेधो वक्तव्यः । इयेष उवोष । गुणे कृते  
“इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छ” इत्याम् प्रसज्येत ॥

( प्रदीपः ) इजादेः ॥ ३६ ॥ उवोषेति । नन्वत्रोष-  
विदेति विकल्पेनामा भाष्यम् ॥ अत्राहुः—द्विवचनबहुवच-  
नयोर्गुणाभावादगुरुमत्त्वाभावाद्विकल्पः सावकाश इति यत्र  
गुरुमत्त्वं तत्र नित्यमेवाम् प्राप्नोति एतच्च विप्रतिषेधे पर-  
मिति प्रतिपदविधेश्च बलवत्त्वमनाश्रित्य भाष्यकारेणोदाह-  
तम् । तत्र ह्याश्रिते विकल्प एव भविष्यतीति नैतदिहोपन्यस-  
नीयम् ॥

( उद्घोतः ) इजादेश्च ॥ ३६ ॥ भाष्ये—लिङ्गिमिच्छाद्गुरु-  
मत इति । गुरुमति लिङ्गिमिच्छत्वं गुरुद्वारा बोध्यम् ॥ द्विवचन-  
बहुवचनयोरिति । तयोः किञ्चादिति भावः ॥ तत्र द्विवचना-  
पेक्षया नित्यत्वाद्वैकल्पिक आम् । णलि तु परत्वाद्गुणे नित्य आम्प्राप्नो-  
तीति विशेषः ॥ एतेनात्रापि सवर्णदीर्घे गुरुमत्त्वमस्तीति कथमवकाश  
इत्यपास्तम् ॥ विप्रतिषेध इति । यत्रसंभवे प्रतिषेधः, अस्ति चा-  
त्रोभयोः संभवबुद्धिरित्युच्यते, तदापि विकल्पसिद्धोवोपेत्यस्य सिद्धि-  
रिति भावः ॥ प्रतिपदेति । अनवकाशत्वाभावेऽपि पूर्वप्रवृत्ताविदं  
नियामकमिति भावः ॥ उवोरखेति कवर्गद्वितीयान्तपाठ इत्यन्ये ॥

१ अपनेयपदे दोषं दत्त्वाऽभीष्टपदलेखनस्य सन्त्यकर्मण्यनादरसूत्रे उप-  
सर्गादनोत्तर इत्यादिसूत्रेषु भाष्यशैलीदर्शनेन प्रकृतसूत्रे प्रत्ययपदे दूषणादानेन  
नैव प्रत्ययपदानयनमाचार्यसंमतमिति भावः ॥

२ अत एव भाष्यकृताऽनेकाग्रहणस्य उल्लम्पादिग्रह एव प्रयोजनत्वेन  
दर्शितः नत्वेकाग्रहणवृत्तिः प्रयोजनत्वेन दर्शितमिति भावः ॥

३ सत्यभिधाने इत्यनेन एकाचः प्रातिपदिकात् किपोऽनभिधानकल्पनमेव

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

गुरुमद्वचनमिदानीं किमर्थं स्यात् ? ।

( प्रदीपः ) गुरुमद्वचनमिति । ईषतु रीधुरित्यत्रापि  
सवर्णदीर्घे गुरुमत्त्वादिजादेः सर्वत्र गुरुमत्त्वादाया भवितव्य-  
मिति गुरुमद्वचनसामर्थ्यादुपदेशावस्थायां गुरुमत इत्याश्रयि-  
ष्यत इति भावः ॥

( उद्घोतः ) ननु द्विवचनादौ किमिति गुणाभावे आमभावाय  
गुरुमद्वचनं चरितार्थम्, अत आह—ईषतुरिति । उपदेशेति ।  
एवं च लिङ्गिमिच्छादिति प्रतिषेधोऽनर्थक इति भावः ॥

( १८१० प्रत्याक्षेपवाधकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ गुरुमद्वचनं किमर्थमिति चेद्  
णल्युत्तमे यजादिप्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गुरुमद्वचनं किमर्थमिति चेण्णलि  
उत्तमे यजादीनां मा भूदिति । इयज अहम् ॥ उवप  
अहम् ॥

( प्रदीपः ) णल्युत्तम इति । एतच्चोपलक्षणं तेन  
थलपि गृह्यते—इयष्ट इयजिधेति । लिट्यभ्यासस्य संप्रसारणे  
कृते यजादय इजादयो भवन्तीति ॥

( उद्घोतः ) इषष्टेति । संयोगपरत्वेन गुरुमत्त्वेऽपि उपजी-  
व्यविरोधान्नाऽऽमिति गुरुमद्वचनस्येदं फलमिति भावः ॥ इयजिधेत्येव  
वा प्रत्युदाहरणम् ॥ ननु यजादीनां कथमिजादित्वं तत्राह—लि-  
ट्यभ्यासस्येति ॥

( १८११ आक्षेपवाधकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उपदेशवचनात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपदेशे गुरुमत इति वक्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) उपदेशवचनादिति । वचनं व्याख्यानम-  
भिप्रेतमन्यथा वचनेन वचनान्तरस्य निरासे को गुणः स्यात् ।  
तस्मान्नित्ययोगे मनुष्य आश्रयणादुपदेशावस्थायां गुरुमत  
इत्याश्रयिष्यत इत्यर्थः ॥ उपदेशग्रहणशब्देनाप्युपदेशो गृह्य-  
तेऽनेनेति व्युत्पत्त्या व्याख्यानमेवोच्यते ॥

( उद्घोतः ) तस्मान्नित्ययोग इति । भूमनिन्दाप्रशंसासु  
नित्ययोगेऽतिशयने इत्युक्तेः । प्रकृते लक्ष्यानुसारात्तत्रैव मनु-  
बिति भावः ॥ ननु वचनशब्दस्य व्याख्यानपरत्वेऽप्युपदेशग्रहण-  
मित्यसंगतमत आह—उपदेशग्रहणेति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्युपदेशग्रहणं क्रियते उच्छेदाम् वक्तव्यः ।  
व्युच्छांचकारेति ।

वरमिति सूच्यते ॥

४ प्रतिपदोक्तत्वम् । ( र. ना. )

५ वचनं वचनपदार्थः । ( र. ना. )

६ वचनशब्दस्य व्याख्यानपरत्वाभावे वार्तिकपरत्वे चेत्तर्थाः । ( र. ना. )

७ नित्ययोग एव । ( र. ना. )

८ अपिशब्दात् वार्तिकपरत्वे । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) उच्छेरिति । उच्छी विवास इत्युपदेशे  
गुरोरपाठाचार्यं गुरुणा नित्ययुक्तः ॥

( १८१२ आक्षेपबाधकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ ऋच्छिप्रतिषेधो ज्ञापक उच्छे-  
रामभावस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यद्यम् “अनुच्छः” इति प्रतिषेधं  
शास्ति तद् ज्ञापयत्याचार्यः—तुङ्गिमित्ता यस्य गुरु-  
मत्ता भवति तस्मादाम्” इति ॥

( प्रदीपः ) तुङ्गनिमित्तेति । तुङ्गग्रहणमागममात्रोपल-  
क्षणं तेनेच्छाचकारेत्त्रापि भवति ॥

( उद्धोतः ) तुङ्गग्रहणमिति । सामान्यापेक्षं ज्ञापकमित्यर्थः ॥

( गौरवापत्तिभाष्यम् )

स तर्हि ज्ञापकार्थं ऋच्छिप्रतिषेधो वक्तव्यः ? ॥

( अनन्यासिद्धफलसाधकत्वेन गौरवाङ्गीकारभाष्यम् )

ननु चावश्यं प्राप्त्यर्थोऽपि वक्तव्यः ? ॥

( प्रदीपः ) प्राप्त्यर्थोऽपीति । प्रतिषेधप्राप्त्यर्थ इत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) ऋच्छावामोभावादाह—प्रतिषेधेति । तुङ्ग-  
मित्तेत्याद्यर्थे ज्ञापिते ततोऽपि प्रत्ययस्य प्रतिषेधार्थ इति भावः ॥

( फलस्यान्यथासिद्ध्या गौरवसाधकभाष्यम् )

नार्थः प्राप्त्यर्थेन । “ऋच्छत्यृताम्” इति ऋच्छे-  
र्लिटि गुणवचनं ज्ञापकम्—नच्छेर्लिट्याम् भवति’  
इति ॥

( प्रदीपः ) ऋच्छेरिति । आमा व्यवधानेऽपि वच-  
नादगुणो भविष्यतीति चेद्, एवं सति तस्मिन्निति  
निर्दिष्टस्येतद् बाध्येत तस्मादाम् एवाभावो गुणविधानेन  
ज्ञाप्यते ॥

( उद्धोतः ) तस्मादाम् एवेति । यद्यप्यङ्गभूतपरिभाषाबाध  
प्रवोचितः । तथापि तस्या वाक्यार्थबोधप्रकाशोपस्थितिकतया वैय-  
र्थ्यस्य च लक्ष्यसंस्कारवेलायामुपस्थितत्वेनासंजातविरोधन्यायेनाम्-  
बाध एवेति भावः ॥ एवं च तुङ्गमित्तेत्याद्यर्थे ज्ञापितेऽप्यस्य  
सार्धक्यं दुरूपपादम् । ऋच्छेरामभावस्य प्रकारान्तरेण सिद्धेरिति  
नैतज्ज्ञापकमिति तात्पर्यम् ॥

( अन्यथासिद्ध्यनुपपत्तिभाष्यम् )

नैतदस्ति ज्ञापकम् । अत्यर्थमेतत्स्यात् ॥

१ अयमुच्छधातुः । ( र. ना. )

२ आगमात्रस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

३ उपलक्षणपरतया व्याख्यानास्य फलमाह—इच्छाचकारेति । अत्र—इति  
धातेरिदितोऽनुम् । ( र. ना. )

४ एतेन स्वांगे चारितार्थं दर्शितम् ॥

५ ननु—आमाव्यवधानेऽपिगुणो भवतीत्येवकार्थः । ( र. ना. )

६ विध्यङ्ग्येत्यर्थः । ( र. ना. )

७ तस्मिन्निति निर्दिष्टस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

८ उच्छपरिभाषायाः । ( र. ना. )

( प्रश्नभाष्यम् )

कथं पुनर्ऋच्छेर्लिटि गुण उच्यमानोऽत्यर्थः  
शक्यो विज्ञातुम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

सामर्थ्यात् । ऋच्छिर्लिटि नास्तीति कृत्वा प्रकृत्यर्थो विज्ञास्यते । तद्यथा—“तिष्ठतेरित्” “जिघ्रते-  
र्वे”ति । चङि तिष्ठतिजिघ्रती न स्त इति कृत्वा  
प्रकृत्यर्थो विज्ञायते ॥

( प्रदीपः ) सामर्थ्यादिति । ऋगतिप्रापणयोरित्यस्य  
द्वितीये शपि ऋच्छादेशः कृतो, न त्वनादेश ऋच्छिर्निर्दिष्ट  
इत्यर्थः ॥ ऋच्छिरिति । शिति ऋच्छादेशविधानाल्लिटि  
तदभावः ॥ तिष्ठतेरिति । अत्रापि स्थः शिति तिष्ठदेशं  
कृत्वा निर्देशः कृतः । तत्रानेन रूपेण स्थाशब्द एव प्रतीयत  
इत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) ननु स्थानिकार्यस्यादेशे जायमानत्वेऽपि आदेश-  
कार्यस्य कथं सामर्थ्यादपि स्थानिनि प्रवृत्तिः । तत्र स्थानिवद्भावस्ये-  
वात्रोपायाभावादत आह—ऋगतीति ॥ शितीति । स्वतन्त्रस्य  
त्वामा व्यवधानाल्लिट्परत्वाभावो बोध्यः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

किं पुनरर्तेर्लिटि गुणवचने प्रयोजनम् ? ।

( उत्तरभाष्यम् )

आरतुः । आरुः । एतद्रूपं यथा स्यात् ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

किं पुनः कारणं न सिध्यति ? ।

( गुणवचनावश्यकताभाष्यम् )

द्विर्वचने कृते [ सवर्णदीर्घत्वम् । ] सवर्णदीर्घत्वे  
च [ कृते ] यदि तावद्भातुग्रहणेन ग्रहणम्, ऋकारा-  
न्तानां लिटि गुणो भवतीति गुणे कृते रपरत्वे च  
अरतुः अरुतिरित्येतद्रूपं प्रसज्येत ॥ अथाभ्यासग्रह-  
णेन ग्रहणम् । उरदत्वे रपरत्वम् हलादिशेषः । अत  
आदेरिति दीर्घत्वम् तत ‘आतो लोप इति च’ इत्या-  
कारलोपे अतुः उरिति वचनमेव श्रूयेत ॥

९ ‘प्रकृत्यर्थम्’ इति क्रियाविशेषणमज्ञात्वा पुंलिङ्गनिर्देशः कृतः काशीमुद्रित-  
पुस्तके । दाधिमथाः । प्रकृत्यर्थ इत्यस्य—ऋच्छिरित्यनेन संबधात् । पुंस्त्व निर्देशो  
न्याय्य एव । ( र. ना. )

१० काशीमुद्रितः ‘प्रकृत्यर्थो’ इति पाठः ‘निर्देशः’ इति विशेष्यमभ्याहृतं  
मत्वा कृतो भवेदिति दाधिमथाः ॥ अत्रापि प्रकृत्यर्थ इत्यस्य तिष्ठति जिघ्रति-  
शब्दोपात्तयोः स्थाप्राधात्वोः मलेकात्वविवक्षया एकवचनान्तत्वं पुंस्त्वाभेति  
न्याय्यमेवेति वयम् । ( र. ना. )

११—१२ प्राचीनलिखितपुस्तकेषु नोपलभ्यते ॥

१३ प्रत्यय एव न तु प्रकृतिविशिष्टः प्रत्यय इत्यर्थः । ( र. ना. )

गुणे पुनः सति गुणे कृते रपरत्वे च द्विर्वचनम्  
'हलादिः शेषः' 'अत आदेरिति दीर्घत्वम्' ततः सिद्धं  
भवति—आरतुराररिति । यथा आटतुः आटुरिति ॥

( प्रदीपः ) द्विर्वचन इति । यणादेशात् पूर्वविप्रतिषे-  
धेन द्विर्वचनं कियते । तथा हि । सति स्थानिवद्भावशास्त्रे  
द्वयोरपि यणद्विर्वचनयोर्नित्यत्वमिति विप्रतिषेध उपपद्यते ॥  
अथवा यथा नित्यतुरित्यत्र यणादेशेन भवितव्यमिति द्विर्वच-  
नात् पूर्वमेव इयञ् न प्रवर्तते । तथेहापि द्विर्वचने कृते सव-  
र्णदीर्घेण भाव्यमिति यण न प्रवर्तते । सति वा यणि तस्य  
स्थानिवद्भावाद्विर्वचनम् । तत्र कृते यणादेशात् परत्वात्स-  
वर्णदीर्घत्वम् ॥ यदि तावदिति । अन्तादिवद्भावादुभयादे-  
शस्यान्यतरतो व्यपदेशात् स्थानिवद्भावाद्वेति भावः ॥

( उद्घोतः ) ननु परत्वाद्यणि द्विर्वचनेऽचीलनेन द्वित्वे स्था-  
निवद्भावाद्वित्वे कृते पुनरादेशरूपेणोत्तरखण्डस्यावस्थानादभ्या-  
सस्योरिति "हलादिः शेषः" अत आदेरिति दीर्घे आरतुरित्यादि-  
सिद्धेरत आह—यणादेशादिति ॥ ननु यणं नित्य इति कथं विप्रति-  
षेधोऽत आह—सतीति । द्विर्वचनेऽचीलसिद्धिर्नि शेषः ॥ द्विर्व-  
चनेऽचीति सूत्रे स्थानिवद्भावपूर्वविप्रतिषेधयोः किं ज्यायः इति  
भाष्योक्तेः पूर्वविप्रतिषेधारम्भे तदभावस्य लाभादर्थं पूर्वविप्रतिषेधो  
नित्यानामपि बाधक इति वक्तुं युक्तम्, इत एवाख्येराह—अथ  
वेति । सति वा यणीति । रूपातिदेशेन द्वित्वे जाते पश्चादथार्थं  
योग्यशास्त्राप्रतिरिति दीर्घे एवेति भावः ॥ अन्तादिवदिति । उत्तर-  
खण्डस्यैव क्रियावाचकत्वेन धातुत्वमिति भावः । समुदायस्य धातुत्वे  
त्वेतदसङ्गतिः स्पष्टेवेति बोध्यम् । स्थानिवदतिदेशस्यापि संभवा-  
दाह—स्थानिवद्भावाद्वेति । स्थान्यलाश्रयत्वाभावाच्चान्वित्वधाविति  
प्रतिषेधाभावः । स्थानिवत्प्रवाहपुपादकमुभयादेशस्येत्यादि ॥

भाष्ये गुणे पुनः सतीति ॥ ननु परत्वात्कृतेऽपि गुणे द्विर्व-  
चनेऽचीति रूपातिदेशादिशब्दस्यैव द्वित्वमिति को विशेष इति चेन्न ।  
यत्रादेशे कृते एकाचत्वादिव्याघातप्रयुक्ता द्वित्वाप्राप्तिस्तत्रैवातिदेश-  
प्रवृत्तिरित्याशयात् ॥

१ 'अन्तरङ्गं सवर्णदीर्घत्वम्, बहिरङ्गमुरत्त्वम् । काऽन्तरङ्गता? वर्णा-  
भाष्यस्य सवर्णदीर्घत्वम् अङ्गस्योरत्त्वम्' इति ग्रन्थेन सवर्णदीर्घे संज्ञानपेक्षत्वेन  
तदपेक्षया अङ्गसंज्ञानपेक्षत्वेन उरत्त्वस्यानल्पपेक्षतया बहिरङ्गत्वम्, तदपेक्षया सव-  
र्णदीर्घत्वस्यान्तरङ्गत्वं कथयता भाष्यकृताअनपेक्षमल्पापेक्षमन्तर्भूतनिमित्तकं चान्त-  
रङ्गम् सापेक्षमविकारपेक्षं संज्ञापेक्षं बहिर्भूतनिमित्तकं च बहिरङ्गम् इति सूचितम् ।  
एकत्वसंख्याया द्वित्वसंख्यान्तर्गतत्वेनान्तरङ्गत्वम् । द्वित्वसंख्याया एकत्वसंख्या-  
बहिर्भूतत्वेन बहिरङ्गत्वमेवेति तद्भावः ॥ गणितविदामपि शून्यस्य सर्वतोऽन्तरङ्ग-  
त्वम् । तदपेक्षयैकत्वसंख्याया बहिरङ्गत्वम् । तदपेक्षया द्वित्वसंख्याया इति  
व्यवहारः स्पष्टमेव । अत एव 'अन्धानां काणो राजा' इति भाष्ये चक्षुःशून्या-  
न्यापेक्षयाप्येकचक्षुषो बहुपेक्षत्वं 'राजा' इत्यनेन स्पष्टमेवोक्तम् ॥ एतेन—अन्त-  
रङ्गबहिरङ्गशब्दाभ्यामल्पपेक्षत्वबहुपेक्षत्वयोः शब्दमर्यादया अलभात् इति  
"संज्ञापेक्षबहिरङ्गत्वस्य शास्त्रेऽनाश्रयणात्" इति च शेषरक्तोक्तमपास्तम् ॥

१ 'द्विर्वचनात् प्रसाधनात्प्राप्तादिविकाररीत्वेत्त्वोत्त्वगुणवृद्धि-  
धनोः' इति "दाशान्" सूत्रे वार्तिकात् परविप्रतिषेधेनेति भावः ॥

( अनुयोगपूर्वकमारतुरित्यादिसिद्धिभाष्यम् )

किं पुनः कारणं सवर्णदीर्घत्वं तावद्भवति न  
पुनरुत्त्वम् ॥ परत्वादुत्त्वेन भवितव्यम् ॥

( गुणविधानावश्यकताभाष्यम् )

अन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घत्वं प्राप्नोति । अन्तरङ्गं  
सवर्णदीर्घत्वं बहिरङ्गमुरत्त्वम् । कान्तरङ्गता । वर्णा-  
वाश्रित्य सवर्णदीर्घत्वमङ्गस्योरत्त्वम् ॥

( प्रदीपः ) अन्तरङ्गत्वादिति वर्णदाङ्गं बलीय  
इत्येतत्तु समानाश्रयाङ्गवर्णविषयम् । यथा कारकश्चयनमिति  
गुणवृद्धी भवतो यणादेशात् । इह तूरदत्वं लिङाश्रयं वर्णद्वया-  
श्रयं तु सवर्णदीर्घत्वमिति भिन्नाश्रयत्वमनयोः ॥

( उद्घोतः ) इह तूरदत्वमिति । आसप्तमसमाप्त्यङ्गाधिकारा-  
दिति भावः ॥ इदं प्रोक्त्या कैयट आहृत्यनुपदमेव स्फुटं भविष्यति ॥

( गुणानावश्यकताभाष्यम् )

उत्त्वमप्यन्तरङ्गम् । कथम् ? । वक्ष्येत्येतत्प्राग-  
भ्यासविकारेभ्योऽङ्गाधिकारः' इति । उभयोरन्तर-  
ङ्गयोः परत्वादुत्त्वम् । उत्त्वे च कृते रपरत्वम्  
'हलादिः शेषः' 'अत आदेरिति दीर्घत्वं परस्य  
रूपस्य यणादेशः सिद्धं भवति—आरतुः आररिति ।

( गुणस्थान्यथासिद्धिप्रतिपादनभाष्यम् )

अथापि कथं चिदर्थेर्लिटि गुणेनार्थः स्यात् ।  
एवमपि न दोषः "ऋच्छत्यृताम्" इति ऋकारोऽ-  
प्यत्र निर्दिश्यते । कथम् । प्रश्निष्ठनिर्देशोऽयम्—  
ऋच्छति ऋच्छताम्—ऋच्छत्यृतामिति ॥

( प्रदीपः ) अथापीति । आसप्तमपरिसमाप्तेरङ्गाधि-  
कारो वन्नश्चेत्यादिसिद्धय आश्रित इति भावः ॥ ऋका-  
रोऽपीति । बहुवचननिर्देशादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) वन्नश्चेति । अत्राभ्यासे रेफस्य संप्रसारणे उरदत्वे  
तस्याङ्गाक्षिप्तपरनिमित्तत्वेन न संप्रसारण इति वस्य तन्निषेधे स्थानि-  
वत्त्वं सिध्यतीत्यर्थः ॥ ऋकारनिर्देशे लिङ्गमप्याह—बहुवचनेति ॥

"तथा सति 'असिद्धं बहुपेक्षमल्पापेक्षे' इत्येव वदेत्" इत्यपि परिभा-  
ष्येन्द्रो नागेशेनोक्तमविचारितरमणीयमेव । अन्तरङ्गशब्देन यथाऽल्पापेक्षस्य  
संग्रहो भवति । न तथाऽल्पापेक्षशब्देन अन्तर्भूतनिमित्तकस्य संग्रहो  
भवति ॥ एवमेव बहिरङ्गशब्देन तु बहुपेक्षबहिर्भूतनिमित्तकादीनां संग्रहो  
भवति न तथा बहुपेक्षशब्देन बहिर्भूतनिमित्तकस्य संग्रहो भवतीति सर्व-  
संग्रहायान्तरङ्गबहिरङ्गशब्दावेवोपात्तौ नैवाल्पापेक्षबहुपेक्षशब्दौ । तदुपादाने  
पटव्या मुद्रा स्योन इत्यादीनां सिद्धिर्न स्यादिति सर्वसाधकम् अन्तरङ्गबहिरङ्ग-  
शब्दभोरेवोपादानं कृतमिति सर्वरहस्यवेदिनां दाधिमथानामावेदनं मात्सर्य-  
मुत्सार्थं विचार्यमायैः ॥

२ ननु वर्णादाङ्गमिति परिभाषया एषान्तरङ्गताऽकिंचित्करीत्याङ्ग्य  
समाधत्ते वर्णादाङ्गमिति । ( र. ना. )

२ 'द्विर्वचनं यण्यवायावादेशाहोपोपधातोपणिलोपकिनोत्त्वे-  
भ्यः' इति दाशान् सूत्रे वार्तिकादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इहापि तर्हि प्राप्नोति—चक्रतुश्चक्रुरिति ।

( प्रदीपः ) इहाऽपीति । ऋ इति वर्णग्रहणात्तदन्तविधिसद्भावादिति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

संयोगादिग्रहणं नियमार्थं भविष्यति—संयोगादेरेवाकेवलस्य नान्यस्याकेवलस्येति ॥

( प्रदीपः ) संयोगादेरिति । अकेवलस्य वर्णान्तरसहितस्येत्यर्थः । ततश्च धातोरेव ग्रहणमवतिष्ठते ॥

( उद्ध्योतः ) धातोरेवेति । गत्यर्थस्य । न तु तदन्तविधिरित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तदेतदन्तरेणार्तेर्लिटि गुणवचनं, रूपं सिद्धं भवति । अन्तरेण च ऋच्छिग्रहणम् अर्तेर्लिटि गुणः सिद्धः । स एषोऽनन्यार्थं ऋच्छिप्रतिषेधो वक्तव्यः । उच्छेर्वा आम वक्तव्यः ।

( प्रदीपः ) स एष इति । आगमनिमित्तगुरुमत्त्वधात्वर्थ इत्यर्थः । अनृच्छ इति पर्युदासाश्रयेण तत्सदृशधातुग्रहणादुच्छे राभभवति ॥ अथवा यद्यपि गुणविधानेन ऋ च्छे राभ भवतीति ज्ञायते तथाप्यनृच्छ इति प्रतिषेधः प्राप्तिसंभावनया क्रियमाणो ज्ञापको यथोक्तस्यार्थस्य भवति ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये तदन्तरेणार्तेरिति । वार्णपरिभाषयैवेति भावः ॥ सा समानाश्रयविषयैवेति तु न मानाभावादिति भावः ॥ ननु पूर्वमुख्येऽपि हलादिः शेषे 'अत आदेरिति दीर्घे परखण्डे यणादेशं बाधित्वाऽऽद्गुण इति प्राप्नोतीत्यसिद्धिरत आह—अन्तरेण ऋच्छिग्रहणमिति । ऋकारनिर्देशेनेति भावः ॥ अयमेवाथापि कथंचिदिति भाष्यस्याशयः ॥ ननु गुणविधिस्यऋच्छिग्रहणेन ज्ञापकेन ऋच्छेरामोऽप्राप्तौ अनृच्छ इत्यस्य ज्ञापितेऽपि चारितार्थार्थाभावात्कथं ज्ञापकत्वमत आह—अनृच्छ इतीति । तत्सदृशगमसदृशधातुलक्षणाथैव तदुपादानमिति भावः ॥ वाक्यभेदश्च बोध्यः ॥ तेनैवादेः सिद्धिः ॥ अनन्यार्थ इत्यनेन भाष्ये ध्वनितमेतत् ॥ अथ वेति । इदं प्रौढ्या ॥

( सिद्धान्तभाष्यम् )

उभयं न वक्तव्यम् । उपदेशग्रहणं न करिष्यते ॥

( प्रदीपः ) उपदेशग्रहणमिति । गुरुमत इति गुरुमत्तामात्राश्रयो मतुब् यथा पितृमानिति न तु नित्ययोग इति व्याख्यास्यत इत्यर्थः ॥

कस्मान्न भवति—इयेष उचोषेति ॥

१ ध्वनितमिदम् 'आमि सर्वनाम्नः' इति सूत्रे 'प्रत्ययान्तादयं विधीयते तत्र नास्ति विशेषो 'मिदचोन्त्यात्परत्वे प्रत्ययरत्वे वा' इति वदता भाष्यकृता । कैयटेन तु 'हलन्तेभ्योऽनभिधानादाचार क्रिबभावः' इति स्पष्टमेवोक्तम् ॥

( १८१३ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ उक्तं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किमुक्तम् ? । 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विधातस्य' इति ।

( प्रदीपः ) संनिपातलक्षण इति । लिट्सन्निपातनिमित्तो गुणस्तद्विधातनिमित्तस्यामो निमित्तं न भवति । आमि सति हि लेर्लुका भाष्यमिति लिट्सन्निपातस्य विधातः स्यात् ॥

( उद्ध्योतः ) लेर्लुकेति । अव्यवधानविधातश्च बोध्यः ॥ एवं चानृच्छ इति \*लिङ्निमित्तादिति च प्रत्याख्यातम् ॥ ननूपदेश इति व्याख्याने ईत् ऊत् शब्देभ्य आचारकिपि आम प्राप्नोति । तत्प्रत्याख्याने तु प्राप्नोतीति चेन्न । प्रत्ययान्तत्वेनैव तन्नाम्सिद्धिरित्याशयात् ॥ हलन्तेभ्य आचारकिपोऽभावौच ॥

( १८१४ प्रतिषेधवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ ऊर्णोतेश्चोपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ऊर्णोतेश्चोपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥ ५ ॥

( प्रदीपः ) ऊर्णोतेरिति । प्रतिषेध इत्यर्थः ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् ।

वाच्य ऊर्णोर्णवद्भावो यद्ग्रसिद्धिः प्रयोजनम् । आमश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेदुपग्रहात् ॥

अथ वा उकारोऽप्यत्र निर्दिश्यते । कथम् ? । अविभक्तिको निर्देशः—अनृच्छ उ अनृच्छो दयायासश्चेति ॥ इजादेश ॥ ३६ ॥

( प्रदीपः ) उकारोपीति । तेनोकारान्तस्योर्णोतेराभ भवति । संहितया च सूत्रपाठ इति दर्शयति—अनृच्छो दयायासश्चेति ॥ ३६ ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये वाच्य ऊर्णोरिति । तत्र यङि भावतिदेशः । आमिदोरभावौतिदेश इति बोध्यम् । तेनैवादेरिति अनेकाच इति चान्नेति बोध्यम् ॥ उकारप्रत्ययेऽपि तत्सामर्थ्याद्वाध्यसामान्यचिन्तया सर्वस्याप्यामः प्रतिषेध इति बोध्यम् ॥ तेनोकारान्तस्येति । ऋच्छिसाहचर्यादौपदेशिकस्येत्यर्थः ॥ तदाह—ऊर्णोतेरिति ॥ ३६ ॥

२ यङो भावाय प्रातये ण्वद्भावोतिदिश्यते तेनैकाचत्वादित्वेन यङ्सिद्धिरिति भावः ॥

३ अभावाय अमातये प्रतिषेधायच ण्वद्भावोतिदेशः । तेनैकाचत्वाद् हलात्त्वाच्च नाम प्राप्नोति इदः प्रतिषेधश्चैकाचत्वात् सिध्यतीति भावः ॥

( ४१० आम्विकरणविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ९ )

६५५ उषविदजागृभ्योन्यतरस्याम्

॥ ३।१।३८ ॥

( १८१५ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ विदेराम् कित् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विदेराम् किङ्कतव्यः । विदांचकार ॥

( उद्घोतः ) उषविद् ॥ ३८ ॥ उषि जागृसाहचर्यात्परसै-  
पदिन आदादिकस्यैव विदेर्ग्रहणम् ॥

( वार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

न वक्तव्यः । विदिरकारान्तः ॥

( प्रदीपः ) उषविद् । विदिरकारान्त इति । सूत्रे  
अकारान्तत्वं विदेर्निपात्यत इति भावः ॥

( दूषणभाष्यम् )

यद्यकारान्तः, वेत्तीति गुणो न सिध्यति ॥

( प्रदीपः ) इतरो धातुपाठ एवाकारान्तत्वमनेन विदेरुक्त-  
मिति मत्वाह—यदीति । गुणो न सिध्यतीति । ईकार-  
स्योपधत्वाभावादकारलोपाभावाच्च विदेतीति स्यादित्यर्थः ॥( उद्घोतः ) अकारलोपाभावाच्चेति । गुणासिद्धिर्दोषोप-  
लक्षणमिति भावः ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

लिट्सन्नियोगेन ॥

( दूषणभाष्यम् )

एवमपि विवेदेति न सिध्यति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

एवं तर्हि आम् सन्नियोगेन ॥

( प्रदीपः ) आम् सन्नियोगेनेति । आमः प्राधान्येन  
विधीयमानत्वात्तदनुयायित्वमवस्येत्यर्थः ॥ ३८ ॥( उद्घोतः ) ननु लिटोऽप्युपस्थित्या तत्सन्नियोगेनापि विधानं  
स्यादत आह—आम् इति ॥भारद्वाजीयाः पठन्ति \*विदेराम् कित् ॥\*॥\*॥  
निपातनाद्वा अगुणत्वम् ॥\*॥ इति ॥ उषविद् ॥ ३८ ॥( उद्घोतः ) निपातनाद्वेति भाष्ये सूत्रेऽदन्तत्वनिपातना-  
दित्यर्थः ॥ ३८ ॥

( ४११ आम्विकरणविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. १० )

६५६ भीहीभृहुवां श्रुवच्च ॥ ३।१।३९ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

श्रुवदतिदेशे किं प्रयोजनम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

श्रुवदतिदेशे प्रयोजनं द्वित्वेत्वे विभरांचकार ॥  
भीहीभृ ॥ ३९ ॥( प्रदीपः ) भीही ॥ ३९ ॥ द्विर्वचनमेव विधेयं किमति-  
देशेनेति पृच्छति—श्रुवदतिदेश इति । न लुमताङ्ग-  
स्येति गुणप्रतिषेधो न भवति । प्रत्ययलोप इत्यस्याः प्राप्ते-  
रयं निषेधो न चात्रासौ प्राप्तिरस्ति ॥ ३९ ॥( उद्घोतः ) भीही ॥ ३९ ॥ न लुमतेति । लुमच्छब्द-  
वति कार्ये सति अङ्गस्य कार्यं नेत्यर्थः, इति मन्यते ॥ प्रत्ययेति ।  
लुमता शब्देन लुप्ते प्रत्ययलक्षणेनाङ्गकार्यं नेति तदर्थ इति भावः ॥ ३९ ॥

( ४१२ आम्संनियोगेनानुप्रयोगविधिसूत्रम् ॥ ३।१।३ आ. ११ )

६५७ कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥ ३।१।४० ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ।

( प्रदीपः ) कृञ्चानु ॥ ४० ॥ किमर्थमिति । अन्तरे-  
णापि सूत्रारम्भमनुप्रयोगः सिद्धः कालसाधनसंख्याप्रत्यक्त्वादि-  
प्रतिपादनाय लिटपरस्य कृञः । आमन्ताद्धि कालविशेष एवा-  
वसीयते, न त्वर्थान्तरम् तत्र समानार्थस्य धातोरनुप्रयोगो न  
भविष्यति—ओषासुबोषेति । उत्तरेणैव सर्वार्थाभिव्यञ्जनादा-  
मन्तस्यानर्थक्यप्रसङ्गात् ॥ नापि भिन्नार्थस्य—ईद्वां पपाचेति ।  
आमन्तसंबद्धसाधनाद्यसंप्रत्ययात् ॥ कृञ् तु सामान्यवचनः ।  
सामान्यविशेषवाचिनोश्च प्रयोगोऽर्थविशेषप्रतिपादनेनगुण इति  
भावः ॥( उद्घोतः ) कृञ्चा ॥ ४० ॥ अनुप्रयोगाय अन्यधात्वनुप्रयो-  
गस्य वारणाय च सूत्रमावश्यकमित्यत आह—अन्तरेणापीति ।  
लिटपरस्य कृञ् इत्यस्यानुप्रयोगः सिद्ध इत्यनेनान्वयः ॥  
आमन्ताद्धि क्रियाविशेष एवेति पाठः । कालविशेष इति पाठे  
कालेन विशेष्यते यः स क्रियारूप इत्यर्थः ॥ सामान्येति । सामा-  
न्यस्यापि विशेषे पर्यवसानात्तदुत्पन्नतिवादिनापि विशेषसंबन्धिसाध-  
नाद्यवगतिरित्यर्थः ॥

( आक्षेपवाचकभाष्यम् )

अनुप्रयोगो यथा स्यात् ।

( प्रदीपः ) अनुप्रयोग इति । यद्यप्यामन्तात्सकलार्था-  
भिव्यक्तिर्न भवति तथापि प्रकरणादिवशाद्भविष्यति तस्मादनु-  
प्रयोगसिद्ध्यर्थमिदं वक्तव्यमिति भावः ।

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । आमन्तमव्यक्तपदार्थकं  
तेनापरिसमाप्तार्थ इति कृत्वानुप्रयोगो भविष्यति ॥( प्रदीपः ) आमन्तमिति । पूर्वोक्तानामर्थानां प्रकरणादि-  
वशादशक्या प्रतिपत्तिरिति तदर्थभिधानायानुप्रयोगः सिध्य-  
त्येवेति भावः ।

( समाधानवार्तिकशेषभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १८१६ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कृञोऽनुप्रयोगवचनमस्तिभुवोः  
प्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृञोऽनुप्रयोगवचनं क्रियते [ किं प्रयोजनम् ? । अस्तिभुवोः प्रतिषेधार्थम् ] अस्तिभुवोरनुप्रयोगो मा भूदिति ॥

( प्रदीपः ) करोतेरेवानुप्रयोगो यथा स्याद् भवस्योर्मा भूदिति नियमार्थमेतदिति दर्शयितुमाह—कृञ इति ॥

( उद्ध्योतः ) भवस्योरिति । तयोरपि सामान्यवाचकत्वादिति भावः ॥

( १८१७ प्रयोजनान्तरवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ आत्मनेपदविध्यर्थं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आत्मनेपदविध्यर्थं च कृञोऽनुप्रयोगवचनं क्रियते । आत्मनेपदं यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) आत्मनेपदेति । सिद्धे कृञोऽनुप्रयोगे पुनर्वचनमतिशयेनानुगुणस्यानुप्रयोगार्थम् । तेनात्मनेपदप्रकृतेरामन्तस्यात्मनेपदान्त एव करोतिरेनुप्रयुज्यत इत्याम्प्रत्ययवदिति सूत्रं न कर्तव्यं भवतीत्यर्थः ॥

( २ यप्रयोजनस्य यत्नान्तरसाध्यताभाष्यम् )

उच्यमानेऽप्येतस्मिन्नवश्यमात्मनेपदार्थो यत्नः कर्तव्यः ।

( प्रदीपः ) अवश्यमिति । परस्मैपदेनापि कर्तव्यस्यावगमात्तदन्तस्यानुप्रयोगः स्यादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये दूषयति—उच्यमानेऽपीति ॥ परस्मैपदेनापीति । सूत्रन्यासेन त्वदुक्तातिशयालाभादिति भावः ॥

( प्रथमप्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

अस्तिभूप्रतिषेधार्थेन चापि नार्थः ॥

( १८१८ भवस्यनुप्रयोगो दृष्टापत्तिवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

( १८१८ सिद्धान्तवार्तिकम् )

॥ \* ॥ इष्टः सर्वानुप्रयोगः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सर्वेषामेव कृञ्वस्तीनामनुप्रयोग इष्यते ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमिष्यत एव आहो स्वित्रप्राप्नोति ? ॥

( इष्टापत्तिभाष्यम् )

इष्यते च, प्राप्नोति च । कथम् ? कञिति नेदं

धातुग्रहणम् किं तर्हि ? । प्रत्याहारग्रहणम् ॥ क सन्निविष्टानां प्रत्याहारः ॥

“कृञ्वस्तियोगे” इत्यतः प्रभृत्याकृञो अकारात् ॥

( प्रदीपः ) प्रत्याहारग्रहणमिति । एतच्चाऽम्प्रत्ययवदित्यत्र कृञग्रहणाद् भूस्तिनिवृत्त्यर्थाद्विज्ञायते । संपदश्चार्थविरोधान्न भविष्यत्यनुप्रयोगः ॥

( उद्ध्योतः ) संपदश्चेति । चेन संरहितपदभातोरपीत्यर्थः ॥ एतेन संपदो धातुत्वाभावात्कृञ्वाधसाजालेन प्रत्याहारे न संनिवेश इत्यपास्तम् । मध्यवर्तिनः सजातीया एव आह्वयमानाभावाच्च ॥

( १८१९ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सर्वानुप्रयोग इति चेदशिष्यमर्थाभावात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सर्वानुप्रयोग इति चेदशिष्यं कृञोऽनुप्रयोगवचनम् । किं कारणम् ? । अर्थाभावात् । आमन्तमव्यक्तपदार्थकं तेनापरिसमाप्तोऽर्थ इति कृत्वा अनुप्रयोगो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) अशिष्यमिति । विद्यति निवृत्त्यर्थमपि नोपयुज्यते । प्रयुक्तानामन्वाख्यानान्तस्य चानुप्रयोगादर्शनात् ॥

( उद्ध्योतः ) विद्यतीति । विदसत्तायामिति स्मरणादिति भावः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—कृञ्वस्तीनामेवानुप्रयोगो यथा स्यात् पचादीनां मा भूदिति ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् ।

( १८२० प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थाभावाच्चान्यस्य सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [ अर्थाभावाच्चान्यस्य सिद्धमेतत् कुतः ] कृञ्वस्तयः क्रियासामान्यवाचिनः, क्रियाविशेषवाचिनः पचादयः । न च सामान्यवाचिनोरेव विशेषवाचिनोरेव वा प्रयोगो भवति । तत्र विशेषवाचिन उत्पत्तिः । सामान्यवाचिनोऽनुप्रयोक्ष्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) न चेति । द्वयोरेकार्थयोः प्रयोगाभाव इति भावः । न्यायप्रदर्शनार्थं च सामान्यवाचिनोरित्युक्तम् । न तु सामान्यवाचिभ्यः कृञ्वस्तिभ्य आम्विधानमस्ति ।

१ अयं कोष्ठकान्तर्गतः पाठो न काष्ठ्युपलभ्यते । परंतु सार्वत्रिकभाष्यशैली-सिद्धः प्राचीनतरलेखकप्रमादाज्ज्ञो भवेदिति मत्वाऽस्माभिः पूरित इति क्षन्तव्यं क्षमावद्भिः ॥

२ क्रिपेसादिः ॥

३-४ ‘प्राप्नोत्यपि’ ॥

५ प्राचीनपुस्तके नास्ति ॥

६ ‘वचनोऽनुप्रयोक्ष्यते’ ॥ मा० ॥

सामान्यवाचिनश्चार्थं द्योतयितुं विशेषवचनो न शक्तः । प्रत्युत विशेषान्तरव्यावृत्त्या तदर्थविरोधी ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—अर्थाभावाच्चेति । एवमित्यादिना पक्ष्यादेरन्वयायोग्यत्वात् । एवमित्याद्यग्रे स्वस्यानुप्रयोगोऽसंभवी तत्राप्यामः प्राप्तेः । कृन्वादिभ्यस्तु आम्प्राश्यभावादेव न तद्विषये तदनुप्रयोगस्तदाह भाष्ये—न च सामान्येत्यादिना ॥ द्वयो-  
रेकार्थयोरिति । आम्विषययोरित्यर्थः । द्वितीयप्रयोगोऽप्यामः प्राप्तेरिति भावः ॥ न च पाचयामित्युत्तरं पचेरन्तर्भावित्यर्थस्य समानार्थतया प्रयोगः स्यादिति वाच्यम् । उत्तरेणैव सिद्धे पूर्वस्य वैयर्थ्योपपत्तेरिति भावः ॥ ननु निवृत्तप्रेषणकृञो णिन्वि कारयामित्यतः पचेरनुप्रयोगः स्यादिति सामान्यविशेषवाचिनोरित्यपि वक्तुं युक्तमत आह—सामान्यवाचिनश्चेति ॥

( १८२१ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ लिट् परार्थं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लिट्परार्थं तर्हि कृञोऽनुप्रयोगवचनं क्रियते । लिट्परस्यैवानुप्रयोगो यथा स्यात् । अन्यपरस्य मा भूदिति ॥

किं परस्य पुनः प्राप्नोति ? । लट्परस्य ॥

( प्रदीपः ) लट्परस्येति । भूतविशेषस्यामन्तेन प्रतिपादनाद् भूतस्यापि भूतपूर्वा वर्तमानतामाश्रित्य लट्प्रयोगः स्यादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) वर्तमानविहितस्य लटः कथं भूते प्रसक्तिरत आह—भूतपूर्वमिति ॥

( प्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

न लट्परस्यानुप्रयोगेण भूतकालो विशेषितः स्यात् ॥

( प्रदीपः ) न लट्परस्येति । आमन्तार्थाभिव्यक्त्यर्थ-  
त्वादनुप्रयोगस्य विरुद्धकालाभिधायिलङनुप्रयोगो न भविष्यति । न च सांप्रतिकवर्तमानतासंभवे भूतपूर्वाश्रयो लट्प्रयोग उप-  
पद्यत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) न च सांप्रतिकेति । वर्तमानसामीप्ये लट्यपि न विवक्षितमुख्यभूतत्वप्रतीतिः स्यादिति भावः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

निष्ठापरस्य तर्हि मा भूत् ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

न निष्ठापरस्यानुप्रयोगेण पुरुषोपपन्नौ विशेषितौ स्याताम् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

लुङ्परस्य तर्हि मा भूत् ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

न लुङ्परस्यानुप्रयोगेणानद्यतनभूतकालो विशेषितः स्यात् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

लुङ्परस्य तर्हि मा भूत् ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

न लुङ्परस्यानुप्रयोगेणाद्यतनः परोक्षः कालो विशेषितः स्यात् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

अयं तर्हि भूते परोक्षानद्यतने लुङ् विधीयते “दृशश्चतोल्लङ्घ” इति, तत्—परस्य मा भूदिति ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । “एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो न द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च भविष्यति” । तद्यथा—गोषु स्वामी अश्वेषु चेति । न हि भवति गोषु वाश्वानां च स्वामीति ॥

( प्रदीपः ) एकस्या इति । वेदलोकप्रसिद्धोऽयं न्यायः । यथा हि—खादिरे बध्नाति पालाशे बध्नातीत्यादौ विकल्पितेषु साधनेषु येनैव साधनेनोपक्रान्ता क्रिया तेनैव निर्वाह्यते । तत्र यदि कदा चित्खदिरस्य भ्रैषो भवति तदा तत्सदृशः बर्बुरैः सादृश्यात्खदिरबुद्ध्या प्रतिनिधीयते न तु पलाशः परिगृह्यते । साधनमेदेन क्रियान्यत्वादुपक्रान्तं क्रियाऽनिर्वाह प्रसज्जात् । लोकेऽपि यदा खस्वामिभावप्रतिपादनाय गवां स्वामीति षष्ठ्युपक्रम्येत तदा अश्वानां चेत्यत्रापि तत्प्रतिपादनाय सैव निर्वाह्यते । अन्यथाऽश्वेषु चेत्युक्तेऽधिकरणप्रतिपत्तिरपि स्यादश्वेषु च तिष्ठतीति । तस्माद्योऽर्थो यथा शब्दा-  
कृत्या प्रतिपादयितुमुपक्रान्तस्तथैवासौ निर्वाह्यो न त्वन्यथा शब्दाकृत्येत्यर्थः । एवं हि प्रतिपत्तिलाघवं भवति ।

( उद्घोतः ) खादिरे खदिरविकारे यूपे ॥ सादृश्यादिति । एवं च बहुखदिरावयवसामान्ययोगो बर्बुरस्येति तत्र खदिरबु-  
त्पादनेन खादिरारब्धैव क्रिया निर्वाहिता भवति । पालाशे तृपादी-  
यमाने तत्र खदिरबुञ्चनुत्पादात् खादिरेणोपक्रान्ता क्रिया न निर्वाहिता स्यात् इति न तदुपादनमिति भावः ॥ अश्वेषु चेति । एवं च तथा प्रयोगोऽसाधुतेति वदन्ति ॥

( १८२२ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थसमाप्तेर्वानुप्रयोगो न

स्यात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अर्थसमाप्तेस्तर्ह्यनुप्रयोगो न स्यात् ।

१ सामान्यार्थविरोधीत्यर्थः । ( र. ना. )

२ उपग्रहः परस्यैवदात्मनेपदे । ( र. ना. )

३ भ्रैषो श्रृंगः । ( र. ना. )

४ बर्बुर इत्यपि प्रयुज्यते । खदिरबर्बुरावित्यत्र भाष्ये । ( र. ना. )

५ प्रारब्धेत्यर्थः । ( र. ना. )



आमन्तेन च परिसमाप्तोऽर्थ इति कृत्वा अनुप्रयोगो न स्यात् ॥

( प्रदीपः ) अर्थसमाप्तेवेति । आमन्तं पदं यावन्तमर्थमभिधातुं शक्नोति तावानर्थस्तत्रैव परिसमाप्त इत्यनुप्रयोगो न स्यादिति भावः ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । इदानीमेव ह्युक्तमामन्तमव्यक्तपदार्थकं तेनापरिसमाप्तोऽर्थ इति कृत्वा अनुप्रयोगो भविष्यतीति ॥

( प्रदीपः ) एतद्भाष्यकारो दूषयितुमाह—एतदपीति । अशिष्यमर्थाभावात् इत्युक्तत्वात् ॥

( १८२३ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ विपर्यासनिवृत्त्यर्थं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विपर्यासनिवृत्त्यर्थं तर्हि कृजोऽनुप्रयोगवचनं क्रियते । ईहांचक्रे । चक्रे ईहामिति मा भूत् ।

( १८२४ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ व्यवहितनिवृत्त्यर्थं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) व्यवहितनिवृत्त्यर्थं च कृजोऽनुप्रयोगवचनं क्रियते । अन्वेव च कृजोऽनुप्रयोगो यथा स्यात्—ईहांचक्रे ॥ [ व्यवहितस्य मा भूदिति ] ईहां देवदत्तश्चक्रे इति ॥ कृञ्चानु ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये तृतीयाध्यायस्य प्रथमे पादे तृतीयमाह्निकम् ॥

१ सूत्रारम्भे तु तत्सामर्थ्यादनुप्रयोगो भविष्यतीति सूत्रमारब्धव्यमेवेति शेषः ॥

२ प्राचीनपुस्तकेषु नोपलभ्यते ॥

३ अनुशब्दस्य पूर्वदेशकालव्यावर्तकत्वेन पश्चात्पर्यायत्वे लोकप्रसिद्धेऽपि 'काशीतः पश्चिमे प्रयागः मथुरा पुष्करं द्वारका' इत्यत्र देशे 'चैत्रतः पश्चात् वैशाखः, ज्येष्ठः, श्रावणः' इत्यत्र कालेऽपि व्यवहिताव्यवहितसाधारणत्वस्यैव लोके दृष्टत्वेन व्यवहितनिवृत्तिः प्रायिका वार्तिककारेणाभिप्रेताऽत्र भाष्यकारेण प्रकीकृता ॥ भाष्यकारस्तु व्यवहितनिवृत्तिमेव नाभिप्रेति । अत एव \*कृजोऽनुप्रयोगवचनमस्ति भुवोः प्रतिषेधार्थम्\* इति वार्तिकार्थं "इष्टः सर्वाणुप्रयोगः" इत्यादि भाष्यसंदर्भेणानवहितवचनत्वसूचनवत् \*विपर्यासनिवृत्त्यर्थं वा\* \*व्यवहितनिवृत्त्यर्थं च\* इति वार्तिकोक्तार्थेऽज्ञानवहितवचनत्वस्यासूचितत्वेऽपि "क्रियासमभिहारे लोद" इति सूत्रेणभूते "यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्" "कपादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः" इति सूत्रयोरनुप्रयोगग्रहणसत्त्वेपि "करणे हनः" इति सूत्रे 'पाण्डुपचातं वेदिं हन्ति' इति प्रयोगे "क्रियासमभिहारे" सूत्रे लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनातीति प्रयोगे च "घातोरकाचो हलादिः" इति सूत्रे 'जागृहि जागृहीत्येवायं जागर्ति' 'इहस्थइहस्थेत्येवायसीहते' इति प्रयोगे च भाष्यकृता व्यवहितानुप्रयोगस्य दर्शितत्वेनानवहितवचनत्वस्य सूचितत्वात् ॥ अत एव बहुचम्राङ्गणे—'तान् ह राजानमयामेव चक्रे' इति व्यवहितप्रयोगो दृश्यते । एवं च

( प्रदीपः ) विपर्यासनिवृत्त्यर्थं वेति । सिद्धे कृञ्प्रयोगे देशनियमार्थं वचनम् । अनुशब्दस्य पश्चादर्थत्वात् ॥ तेनामन्तस्य पश्चादेव कृञ् प्रयुज्यते न पूर्वम्, नापि व्यवहितमित्यर्थसंपत्तिः ॥ ४० ॥

इत्युपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते महाभाष्यप्रदीपे

तृतीयस्याध्यायस्य प्रथमपादे तृतीयमाह्निकम् ॥

( उद्ध्योतः ) वार्तिके वाशब्दो विकल्पार्थकोऽपि पूर्वप्रयोजनानां खण्डितत्वात्तर्ह्यर्थो भाष्यकृता व्याख्यायते—विपर्यासनिवृत्त्यर्थं तर्हीति ॥ भाष्ये—अन्वेति । पश्चादव्यवधानेनेत्यर्थः ॥ ४० ॥

इति शिवभट्टसुतसतीगर्भजनगेशभट्टकृते भाष्यप्रदीपोद्ध्योते तृतीयस्य प्रथमे पादे तृतीयमाह्निकम् ॥

## तृतीयाध्यायस्य प्रथमपादे चतुर्थमाह्निकम् ॥

( ४१३ चिल्लिकरणविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. १ )

६६० चिल्लुङ्गि ॥ ३ । १ । ४३ ॥

( चिल्लप्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

काऽयं चिल्लः श्रूयते ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

न श्रूयते । एतस्य सिजादय आदेशा उच्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) चिल्लुङ्गि ॥ ४३ ॥ आदेशैः सर्वत्र बाधितत्वाच्चास्य प्रयोगः प्रयोजनम्, नापि किवादीनामिव कार्यार्थता दृश्यते । ततोऽस्यानर्थकं विधानमिति पृच्छति—कायमिति ॥

'अदीधेत् अदीधयुः' इति प्रयोगदर्शनेन दीधवेदीग्रहणप्रत्याख्यानवत् बहु च ब्राह्मणप्रयोगदर्शनेनानयोर्वार्तिकयोरेपि प्रत्याख्यानमेव भाष्यकृता ध्वनितमिति पदमजरीरहस्यम् ॥ 'यथाविध्यनुप्रयोगः' इति सूत्रे प्रदीपे 'पूर्वव्यवहितप्रयोगनिवृत्तिरपि नेष्टा' इति स्पष्टमेवोक्तम् । उद्ध्योतकारो व्याचख्यौ—नेष्टेति । अत एव 'लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनातीति भाष्ये व्यवहितप्रयोगः संगच्छते । तेनानुप्रयोगशब्दार्थव्यभिचार उक्तः । पूर्वप्रयोगस्तु यदि नेष्टः तर्हि अनभिधानाद्वारणीयः । यद्वेष्ट एव स इत्याहुः इति ॥ 'सोपसर्गं कर्म' इति भाष्यस्य 'सामान्यवाचिनोः' इति भाष्यस्य च समनुसारेण 'उक्षांप्रचकुर्नगरस्य मार्गान्' 'विभयां प्रचकारासौ' इति भट्टिप्रयोगो निराबाध एवेति 'उक्षाद् प्रचकुर्नगरस्य मार्गान्' 'प्रविभयां चकारासौ' इत्येव पाठं कल्पयन् जयमङ्गलाकारोऽप्यविकृतबुद्धिरेव 'ईहां देवदत्तश्चक्रे' इति व्यावर्त्यप्रयोगे देवदत्त इति भिन्नार्थसत्त्वमर्थानव्यावृत्तेरेव भाष्यकृता दर्शितत्वात् ॥ एवं च 'तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्' इति 'प्रभंशयां यो नहुषं चकार' इति प्रयोगा अभ्युपपन्ना एव । "हन्तेवत् कवयः कुर्वन्ति" इति वदता भाष्यकृता तेषां साधुत्वबोधनात् ॥ "नह्येपेतिः" इत्यग्रिमभाष्ये 'पृपोदरादि' सूत्रभाष्यहरिसंमतेः काकुत्वस्यानङ्गीकारेण वेददृष्ट्यापि व्यवहितप्रयोगस्यानङ्गीकाराग्रहे तु पातयां—प्रभंशयां शब्दोद्घोर्हितीयैकवचनान्तापातयां—प्रभंशयाम् इत्यनयोर्बोध्येति समव्यापयति प्राचीनखण्डनाग्रहणविधिप्रामाचीनापमानशीताः प्रतिभाशालिनो दाविमथाः ॥

( उद्घोतः ) चिल लुङि ॥ ४३ ॥ नन्वश्रवणेऽपि किवादि-  
वत्कार्यार्थः स्यादत आह—नापीति ॥

( भाष्येपसाधकभाष्यम् )

यदि न कचिच्छ्रूयते, किमर्थं चिलरुत्सर्गः क्रियते ।  
न सिजुत्सर्ग एव कर्तव्यः । तस्य कसादयोऽपवादा  
भविष्यन्ति ॥

( प्रदीपः ) चिलरुत्सर्ग इति । स्थानीत्यर्थः । स ह्यादेशे-  
नापोर्यते । सिजुत्सर्ग इत्यत्र तु सामान्यविधिरुत्सर्गशब्देनोच्यते ॥

( उद्घोतः ) उत्सर्गपदस्यापवादप्रतियोगिन्येव प्रसिद्धेराह—  
स्थानीत्यर्थ इति ।

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १८२५ प्रथमप्रयोजनवार्तिकम् ॥ १ ॥ ) .

॥\*॥ चत्युत्सर्गः सामान्यग्रहणार्थः ॥\*॥

( भाष्यम् ) चिलरुत्सर्गः क्रियते । [ किं प्रयो-  
जनम् ? ] सामान्यग्रहणार्थः ॥ कं सामान्यग्रह-  
णार्थेनार्थः ? । “मन्त्रे घसह्वरणशब्दहाहृचक्रगमि-  
जनिभ्यो लेः” इति । तत्राचैरतस्त्रयाणां ग्रहणं कर्तव्यं  
स्यात्—चङ्ङोः, सिचश्चेति ॥

( प्रदीपः ) चत्युत्सर्ग इति । चत्येहत्सर्गो धातुमा-  
त्राद्विधानमित्यर्थः ॥ तत्रावरत इति । त्रयाणां तावद-  
वश्यं कर्तव्यं, जनेषु दीपजनेति तशब्दे विहितस्य चिणो मन्त्रे  
यदि लुगृदृश्यते तदा चतुर्थस्यापि ग्रहणं कर्तव्यमित्यवरत इत्यु-  
क्तम् । तत्र धयतेराकारान्तत्वात्तदर्थं चङ्सिज्ग्रहणं कर्तव्यम्  
घञशगम्यर्थमङ्ग्रहणं, धात्वन्तरार्थं तु सिज्ग्रहणमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) ननु चत्युत्सर्ग इति अनुपपन्नं च्लेरन्यस्योत्-  
सर्गस्याभावात् । कर्मधारये तत्सर्गशब्दस्य पूर्वनिपातापत्तिरत  
आह—च्लेरिति ॥ चिलरुत्सर्ग इति भाष्यं तु फलितार्थपरम् ॥  
क्वचित्तु भाष्येऽपि च्लेरित्वेव पाठः ॥ मन्त्रे इति सूत्रे त्रयाणामपि  
चङङ् सिचां लिग्रहणेन लुगृ यथा स्यादिति प्रयोजनं चिलकरणस्य ॥  
अन्यथा सिच इत्यनुवर्ततेति चङङ्कोषः । लिचं तु तेषां स्थानि-  
वद्भावेन । अन्तरङ्गानपीति न्यायसु अत्र नास्ति अनित्यत्वात् ।  
तेन मन्त्रे—अधान् अधुरिष्यभयसिद्धिः तद्धनयन्नाह—त्रयाणा-  
मिति । चङङ्कोश्चेति कर्तव्यम् । चेन सिचोनुकृष्य इति पदत्रयं  
कार्यमिति भावः ॥ एतेन चङ्ग्रहणं व्यर्थम् धयतावेव हि तदुपयोगः ।  
तत्र सिचोर्लुक् सिद्धमित्यपास्तम् । अधान् इत्यसिद्ध्यापत्तेः ॥  
आकारान्तत्वादिति । मन्त्रे घसेति सूत्रप्राप्तिनिमित्तकथनम् ॥

( १८२६ द्वितीयप्रयोजनवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥\*॥ कसविधाने चानिद्वचने चिल-  
संप्रत्ययार्थः ॥\*॥

( भाष्यम् ) कसविधाने चानिद्वचने चिलसंप्रत्य-  
यार्थः चिलरुत्सर्गः क्रियते ‘च्लेरनिटः’ इति कसः  
सिद्धो भवति ॥

( प्रदीपः ) कसविधान इति । अनिट इत्येतत् च्लेर्वि-  
शेषणं यथा स्यादित्यर्थः । तथा हि—ययनिङ्ग्रहणेन धातु-  
विशेष्यते—‘यस्मादन्यत्रेडागमो न दृष्ट’ इति विषयान्तरगत-  
मनिद्वत्वमाश्रयणीयम् । लुङादेशानां सार्वधातुकत्वादितः  
प्राप्त्यभावात् ततश्च गुहादिभ्यः कसो न स्यात् । तेषां विक-  
ल्पितेनेटा सेदत्वात् ॥ अथापि पाक्षिकेनेडभावेन तेषामनि-  
द्वत्वं स्यात् । तथापि नित्यं कसः स्यात् । च्लौ तु विशेष्यमाणे  
यदा तस्येण नास्ति तदा कसो भवति अगुहृदिति । यदा त्विङ्  
भवति तदा सिच् अगुहृदिति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये चिलसंप्रत्ययार्थ इति । अनिटं प्रति  
च्लेर्विशेष्यत्वेन यः संप्रत्ययस्तदर्थमित्यर्थः ॥ यस्मादन्यत्रेति ।  
अस्य तर्हीत्यादिः । यस्माद्धातोर्लुङ्भिन्ने प्रत्यये इत्यर्थः ॥ लुङि  
योऽनिडित्याश्रयितुमशक्यमित्याह—लुङादेशानामिति ॥ तत-  
श्चेति । विषयान्तरगतानिद्वत्वाश्रयणाच्चेत्यर्थः ॥ अथाऽपीति ।  
इदोऽभावोऽनिट् तस्मान्मतुपः सौत्रत्वाद्भुगिति भावः ॥ यदास्वि-  
डिति । तदा निर्दिश्यमानपरिभाषया इदरहितस्य सिजित्यर्थः ।  
धातोरीत्यस्य विहितविशेषणत्वाश्रयणान्निर्दिश्यमानस्य व्यवहितत्वमिति  
न शङ्कम् ॥ अगुहृदिति । हन्यन्तेति वृद्धिनिषेधे गुणे ऊदुप-  
धाया इत्युत्त्वम् ।

( १८२७ प्रयोजनान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥\*॥ घसलभावे च ॥\*॥

( भाष्यम् ) घसलभावे च चलावेव कृते ‘लृदितः’  
इत्यङ् सिद्धो भवति ॥

( प्रदीपः ) घसलभावे चेति । लुङि यदार्धधातुकं तत्रा-  
देर्घसल भावो विधीयते । तत्र च्लौ परतो घसलभावे सत्यङ्  
सिध्यति । अन्यथा सिच्येव घसलभावः स्यात् । ततश्च सिचः  
श्रवणं स्यात् । नहि प्रवृत्तस्योत्सर्गस्यापवादेन बाधः कर्तुं शक्य-  
त इति भावः ॥ तथा मन्त्रे घसेति यदा सिचो लुङ् क्रियते  
तदा आदिः सिचोऽन्यतरस्यामिति खरः स्यात् । लुमता  
लुप्तेपि तस्मिन् प्रत्ययलक्षणेनास्य खरस्येष्टत्वात् ॥

( उद्घोतः ) आर्धधातुके विवक्षिते घञादेशविधानादाह—  
लुङीति । परसप्तमीत्यभिमानेनेदमिति भावः ॥ ननु च्लिर्न कार्यः,  
चङ्कसादयश्च सिच एवादेशः कार्याः । च्लेः इत्यस्य स्थाने सिच

इति कार्यम् । मन्त्रे इति सूत्रे च चलेरिति न कार्यम्, सिच इत्यनुवृत्त्यैवेष्टिसिद्धेरिति नैते दोषाः इति चेन्न । अपुष्पत्रित्यादौ लुसापत्तेः । दोषान्तरमप्याह—तथा मन्त्रे इति । ननु\*लुमति प्रतिषेध एकपदस्वरस्योपसंख्यानमिति प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधात्कथं स्वरप्राप्तिरित आह—लुमतेति । तस्य\*सर्वामभ्रितसिञ्जलुक्स्वर-वर्जमिति प्रतिषेधादिति भावः ॥

( चकारप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ चित्करणं किमर्थम् ? ।

( १८२८ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥\*॥ चलेः चित्करणं विशेषणार्थम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) चलेश्चित्करणं क्रियते । किमर्थम् ? । विशेषणार्थम् ॥ क विशेषणार्थेनार्थः ? । “चलेः सिचू” इति । ‘लेः सिचू’ इत्युच्यमाने लिङ्सिद्धोरपि प्रसज्येत ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । लुङीत्युच्यते । न च लुङि लिङ्लिटौ स्तः ॥

( प्रदीपः ) लुङीत्युच्यत इति । लुङीत्यनुवर्तत इत्यर्थः ॥ तदनुबन्धकग्रहण इत्ययमपि परिहारः संभवति । भाष्यकारेण तु-प्रकारान्तरेण परिहृतत्वाच्चोक्तः ॥

( उद्धोतः ) तदनुबन्धकेति । चकाराभावेऽस्यैकानुबन्ध-कत्वादिति भावः ॥

( इकारप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथेदित्करणं किमर्थम् ॥

( १८२९ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥\*॥ इदित्करणं सामान्यग्रहणार्थम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) इदित्करणं क्रियते । [ किमर्थम् ? । ] सामान्यग्रहणार्थम् ॥ क सामान्यग्रहणार्थेनार्थः ? । “मन्त्रे घसङ्करणशब्दद्वन्द्वचूकगमिजनिभ्यो लेः” इति, “आमः” इति च ।

( प्रदीपः ) आम इति चेति । तत्र सामान्यग्रहणे सति यथासंभवं कार्यं विज्ञायत इति भावः ॥

( उद्धोतः ) तत्रेति । आम इति सूत्रेऽनुवर्तमानेन लेरिति पदेन लिटोऽपि ग्रहणं सिध्यतीत्यर्थः ॥

( चकारप्रयोजनाधिकरणम् )

इकारे चेदानीं सामान्यग्रहणार्थं क्रियमाणे अवश्यं सामान्यग्रहणाविधातार्थश्चकारः कर्तव्यः ॥ क सामान्यग्रहणाविधातार्थेनार्थश्चकारेण ? । अत्रैव ।

( प्रदीपः ) अत्रैवेति । अन्यथा तदनुबन्धपरिभाष-याऽस्यैव ग्रहणं स्याद् न लिटस्ततश्चास इत्यनेन लिटो लुङ् न स्यादित्यर्थः ॥

( च्युत्सर्गेऽपि प्रथमप्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

यत्तावदुच्यते—\*चिल्लुत्सर्गः सामान्यग्रहणार्थः\* इति ॥

क्रियमाणेऽपि वै च्युत्सर्गे तान्येव त्रीणि ग्रहणानि भवन्ति—“चिल लुङि” “चलेः सिचू” लेरिति ।

( प्रदीपः ) तान्येवेति । चिल, चले, लेरिति । सिज-लुङीत्येतत्—इतरेणापि कर्तव्यम् । मन्त्रे घसेत्यत्र चङोऽङः सिच इति तान्येव त्रीणीत्यर्थः ॥

( च्युत्सर्गे लाघवभाष्यम् )

यदेतत् ‘लेः’ इति, तत्परार्थं भविष्यति । कथम् ? । यदेतद् “गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु” इति अत्र सिचो ग्रहणम् । एतद् ‘लेः’ इति वक्ष्यामि ॥

( प्रदीपः ) च्युत्सर्गवाद्याह—यदेतदिति । लेरिति वक्ष्यामीति । तदेव मन्त्रे घसेत्यत्रानुवर्तिष्यते । ततश्च लाघवं भवतीत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) तदेव मन्त्रे इति । गातित्येति सूत्रे लिग्रहणे यदि अन्तरङ्गानपीति न्यायेन च्यवस्थायां लुक्, तर्हि अगुरित्यादौ सिजभ्यस्तेति जुञ्ज स्यात् । माहिगातामित्यादौ आदिः सिचोऽन्य-तरस्यामिति स्वरश्च न स्यात् । तस्माद्—अन्तरङ्गानपीति न्यायाना-श्रवणेनादेशे कृते स्थानिवद्भावेन लिङ्वाङ्गोपेतव्यः ॥

( दूषणभाष्यम् )

यदि लेरित्युच्यते घेटश्चातुःशब्दं प्राप्नोति—अदधद् अधाद् अघासीद् । ‘अदधादित्येतदपि प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) घेट इति । विभाषा घ्राघेडित्यत्र लिग्र-हणानुवृत्तौ सत्यां लेरादेशेषु कृतेषु स्थानिवद्भावाङ्गिग्रहणेन तेषां ग्रहणाङ्गुकि कृते चङ्निमित्तं द्विवचनं प्राप्नोतीत्यदधा-दित्यपि स्यात् ॥ ननु चङ्लोपस्य स्थानिवद्भावादाकारलोपे सत्य-धदिति भाव्यं तत्कथमुच्यते अदधादिति प्राप्नोतीति । नैष दोषः । किलुगुपधात्वेति लुका लुप्तस्य स्थानिवत्त्वनिषेधाच्च लुमताऽङ्गस्येति प्रत्ययलक्षणनिषेधाच्चाकारलोपाभावात् ।

( उद्धोतः ) तत्राह—भाष्ये घेटश्चातुःशब्दमिति ॥ तद्वचनयत्राह—लेरादेशेष्विति ॥ आकारलोपे—इति । तिषी हल्ङ्वादिलोपे भवभावे चेत्यपि बोध्यम् ॥ अधदिति भाष्यमिति पाठः ॥ अदधदिति भाष्यमित्यपपाठः ॥ नैष इति । अङ्कार्यत्वा-दर्कं न लुमतेति निषेधो, न तु द्वित्वे इत्यभिमानः ॥

१ इतिच्छब्दः । ( र. ना. )

२ नाम्नश्च काष्ठपलभ्यते ॥

३ चत्वारः शब्दा इति विग्रहः चातुर्वर्ण्यमित्यादाविन स्वार्थे व्यञ्ज । ( र. ना. )

४ तानेव चतुरः शब्दानाह—अदधदित्यादि । ( र. ना. )

५ प्रदीपस्थोऽयं पाठः शोध्यते ॥

६ ‘आतो लोप इति च’ इत्यत्र ॥

( दूषणपरिहारभाष्यवार्तिकम् ॥ )

॥ \* ॥ न चङो लुकि द्विर्वचनम् ॥ \* ॥

( व्याख्याभाष्यम् )

न चङो लुकि द्विर्वचनेन भाष्यम् । किं कारणम् ? । “चङि” इत्युच्यते न चात्र चङं पश्यामः ॥

( दूषणसाधकभाष्यम् )

प्रत्ययलक्षणेन ।

( दूषणसाधकभाष्यम् )

“न लुमता तस्मिन्” इति प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधः ॥

( दूषणभाष्यम् )

बहुवचने तर्हि चातुःशब्दं प्राप्नोति—अदधत् अधुः अधासिषुः । अधानित्यपि प्राप्नोति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । “आत” इति जुस्भावो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) आत इति । विध्यर्थमेतद्भविष्यति न तु नियमार्थमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) विध्यर्थमिति । चङो लुकीति शेषः ॥

( दूषणसाधकभाष्यम् )

न सिष्यति । सिज्ग्रहणं तत्रानुवर्तते ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

सिज्ग्रहणं तत्र निवर्तिष्यते ॥

( दूषणभाष्यम् )

यदि निवर्तिते अभूवन्निति प्रत्ययलक्षणेन जुस्भावः प्राप्नोति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये अभूवन्निति । चङ् लुकि विध्यर्थत्वे संभवति नियमार्थत्वं न स्यादिति सिज्भ्यस्तेति जुस् स्यादित्यर्थः ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

एवं तर्हि लुक् सिजपवादो विज्ञास्यते ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । अकृतेश्वादेशेषु तदपवादो लेरेव लुग्विधास्यते । तेनाभूवन्निति जुस् भविष्यति । आत इत्येतच्च विध्यर्थं भविष्यति । अधुरदुरपुरित्यादिसिद्धार्थमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) प्राप्तेष्वादेशेषु इति । क्त्वादेशेष्वित्यर्थः । अकृतेश्वादेशेष्विति पाठान्तरम् ॥ नन्वेवमगुरित्यत्र जुस् न स्यादत आह—आत इत्येतदिति । नियमस्यासंभवादित्यर्थः । न च चङ्भ्यस्तेति कार्यम् । तेन चङ्लुक्पि जुस् च्लिपदानुवृत्त्या आत इत्यस्य नियमत्वादभूवन्नित्यपि सिद्धमिति वाच्यम् । अधुक्षन् अचो-चन्नित्यादौ क्सादिभ्योऽपि परस्य जुसापत्तेः । तस्मान्मन्त्रे इति सूत्रार्थं च्लिर्न कार्यं इति सिद्धम् । आत इत्यत्रापि लेरित्यस्य नोपयोगः । प्रत्ययमात्रस्य तेन लुग्विधानात् ॥

( दूषणभाष्यम् )

यदि लुक् सिजपवादो विज्ञायते । मा हि दाता-मित्यत्र “आदिस्सिचोऽन्यतरस्याम्” इत्येष स्वरो न प्राप्नोति । तस्मान्नैतच्छक्यं [वङ्कुम्]—‘लुक्सिजपवाद’ इति ।

( प्रदीपः ) तस्मादिति । स्वरसिद्धये सिजादेशो कृते लुक्कर्तव्य इत्यर्थः ॥

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

न चेदेवमुच्यते अभूवन्निति प्रत्ययलक्षणेन जुस्भावः प्राप्नोति । तस्माद् “आतः” इत्यत्र सिज्ग्रहणमनुवर्तते । तस्मिन्श्चानुवर्तमाने धेटश्चातुःशब्दं प्राप्नोति । तस्माद् “गातिस्थानु-पाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु” इत्यत्र सिज्ग्रहणं कर्तव्यम् । तस्मिन्श्च क्रियमाणे तान्येव त्रीणि ग्रहणानि भवन्ति—‘च्लि लुङि’ ‘च्लेः सिच्’ लेरिति ॥

( द्वितीयप्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

यद्युच्यते—\*क्सविधाने चानिद्वचने च्लिसं-प्रत्ययार्थः\* इति ॥ धातुमेवात्रानिद्वत्वेन विशेष-यिष्यामः—धातोरनिट् इति ॥

कथं पुनर्धातुर्नामानिद् स्यात् ? ।

धातुरेवानिद् ॥ कथम् ? । अनिमित्तं वा इट् अनिद् ॥ न वा तस्मादिडस्ति सोऽयमनिद् अनिडिति ॥

( प्रदीपः ) कथमिति । आर्धधातुकस्य होङ् विधीयते । तदेव तदभावादनिडिति व्यपदिश्यते । मत्वर्थं बहुव्रीहिविज्ञानादिति भावः ॥ अनिमित्तमिति । धातोरिटश्च निमित्तनिमित्तभावोऽस्तीति नानुपपन्नः षष्ठ्यर्थं बहुव्रीहिरिति भावः ॥ न वा तस्मादिति । अनिट् इति वचनसामर्थ्यात्पञ्चम्यर्थं बहुव्रीहिराश्रयिष्यत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) ननु धातुरपि न विद्यते इदं यस्मादपि व्युत्पत्त्याऽनिट्पदवाच्योऽत आह—मत्वर्थं इति । अवयवावयविभाव-दिरूपे षष्ठ्यर्थं इत्यर्थः ॥ भाष्ये—अनिमित्तं वा इट् इति । न विद्यते इदं कार्यं यस्येत्यर्थः ॥ पञ्चम्यन्तार्थेऽन्यपदार्थं बहुव्रीहिरिति पक्षान्तरमाह—न वाऽस्मादिति । तस्याचष्टे—वचनसामर्थ्यादिति । \*मत्वर्थे\* इति \*कर्मकर्तृवचनेनाप्रथमाया\* इति च वार्तिकोक्तेरिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ धातौ विशेष्यमाणे क’योऽनिट्’ इति विशेष-यिष्यते ? ॥ यदि विज्ञायते—‘निष्ठायामनिट्’ इति । भूयिष्ठेभ्यः प्राप्नोति । भूयिष्ठा हि शलन्ता इगुपधा-निष्ठायामनिट् ॥

१ अच्युतन्निति पाठो भाति । तस्मात्परस्य जुसापत्तिः क्रियते । ( र. ना. )

२ सर्वस्य प्रत्ययस्य । ( र. ना. )

३ प्राचीनपुस्तकेषु तु उटितम् ॥

४ इतः प्राग् ‘किं चातः ?’ इत्यनुपलभ्यते प्राचीनपुस्तके ॥

अथ विज्ञायते 'लिटि योऽनिडि'ति । न कुतश्चि-  
त्प्राप्नोति । सर्वे हि शलन्ता इगुपधा लिटि सेटः ॥

( प्रदीपः ) क योऽनिडिति । असति च्लिविधाने  
विकरणेन कसेनानिदवाश्रयेण भाष्यम् । तत्रास्मिन् विषय  
इटः प्राप्त्यभावाद्विषयान्तरमनिदत्वस्यापेक्षणीयमिति प्रश्नः ॥  
निष्ठायामिति । यद्यार्धधातुकमात्रं परिगृह्यते ततो गुहा-  
दिभ्य ऊदिङ्भ्यो न स्यादिति निष्ठाश्रयणम् । तदाश्रये च  
गुहादिभ्यो नित्यं कसः प्रसज्येत, विकल्पितश्चेत्यते ॥ इषुरि-  
षुरुषुश्रिषुगुष्वादीनां च निष्ठायामनिदत्वात् कसः प्राप्नोति ॥

( उद्द्योतः ) अस्मिन्विषये लुङ् रूपे विषये । तत्रानिद-  
त्वस्याव्यभिचारात् ॥ विषयान्तरं प्रत्ययान्तररूपम् ॥ उदिङ्भ्यो  
नेति । आर्धधातुकतासादिविषये पक्षे सेटत्वादिति भावः ॥ नित्यः  
कस इति । यस्य विभाषेति निष्ठायामनिदत्वादिति भावः । इष्यते  
इति । अनेनैषोऽपि तत्र पक्षे दोष इति सूचितम् । निष्ठाग्रहणपक्षे  
भूयिष्ठेभ्य इति सूचितं दोषमाह—इष्विति ।

( समाधानभाष्यम् )

किं पुनः कारणं धातौ विशेष्यमाण एतयोर्विशेष-  
योर्विशेषयिष्यते । न पुनर्यत्र सामान्येनेदो विधि-  
प्रतिषेधौ ? ॥ क सामान्येन ? । वलाद्यार्धधातुके ॥

( प्रदीपः ) न पुनर्यत्रेति । गुहादयो विकल्पिते इटो  
भावाभावाभ्यां सिद्ध्यन्ते तत्र ये सेटस्तेभ्यः सिज् भविष्यति  
अनिद्विभ्यस्तु कस इति न कश्चिदोषः ।

( उद्द्योतः ) भाष्ये वलाद्यार्धधातुके इति । अयं भावः—  
अनिदो धातोरित्युक्ते क्तेति विषयविशेषाकाङ्क्षायां लुङ्परवलाद्यार्ध-  
धातुके यदा योऽनिडिति कालविशेषावच्छिन्नो विषयविशेषो ग्रही-  
ष्यते लक्ष्यानुरोधादिति ॥ तदाह—गुहादय इति ॥

( तृतीयप्रयोजनप्रत्याख्यानभाष्यम् )

धदण्युच्यते घस्त्वभावे चेति । आर्धधातुकीयाः  
सामान्येन भवन्त्यनवस्थितेषु प्रत्ययेषु । तत्रार्धधा-  
तुकसामान्ये घस्त्वभावे कृते लृटित इति अङ्  
भविष्यति ॥ च्लिलुङि ॥ ४३ ॥

( प्रदीपः ) आर्धधातुकसामान्य इति । अङ्प्रत्यय-  
गतमार्धधातुकसामान्यं लुङ्विशेषितमाश्रयिष्यत इत्यर्थः । यदि  
तर्हि च्लिः प्रत्याख्यायते तदा मन्त्रे घसेति सिचो लुङ्यादिः  
सिच इति स्वरः प्राप्नोति । नैष दोषः । तत्र हि छन्दसि  
क्वचिदङाटोरुदात्तत्वेन भाव्यं क्वचित्तिङ्निघातेन । यत्र त्वङाटोः  
तिङ्निघातस्य च निषेधः प्रत्ययस्वरक्षेप्यते स विषयश्छन्दसि  
मास्ति । एतच्च भाष्यकारेण च्लेः प्रत्याख्यानाद्विज्ञायते ।  
मा हि लावीदित्यादौ तु सिच एव चित्त्वे नानन्याथैन चाग-  
मानुदात्तत्वं बाधियत इति तदर्थोप्यनुबन्धासङ्गार्थं च्लिनं  
कर्तव्यः ॥ ४३ ॥

( उद्द्योतः ) सामान्यमिति । आर्धधातुक इति विषयसप्त-

मीति भावः ॥ यत्तत्त्विति । माहिदातामित्यादौ ॥ सिच एव  
चित्त्वेनेति । एतच्चोत्तरसूत्रे स्फुटम् ॥ ४३ ॥

( ४१४ च्लेः सिजादेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. २ )

६६१ च्लेः सिच् ॥ ३ । १ । ४४ ॥

( चकारप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थश्चकारः ? ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

विशेषणार्थः । क विशेषणार्थेनार्थः ? । “सिचि  
वृद्धिः परस्मैपदेषु” इति । “सौ वृद्धिः” इतीय-  
त्युच्यमाने अग्निर्वायुरित्यत्रापि प्रसज्येत ॥

( प्रदीपः ) च्लेः सिच् ॥ ४४ ॥ अग्निरिति । सौ  
च परस्मैपदेषु चेति समुच्चयो विज्ञायेत । तथा चात्रापि स्यात् ।  
साविति च सिमुशब्दयोः साधारणो निर्देशः स्यात् । आगन्तुना  
वेकारेण सकारो निर्दिश्येतेति भावः ॥

( उद्द्योतः ) च्लेः सिच् इति ॥ ४४ ॥ साधारण इति ॥  
तत्रेणेति भावः ॥ पक्षान्तरमाह—आगन्तुना वेति । तथा च  
सकारमात्रे तात्पर्यमिति भावः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । परस्मैपदेष्वित्युच्यते । न  
चात्र परस्मैपदं पद्यामः ॥

( प्रदीपः ) न चात्रेति । पृथग्विभक्तिनिर्देशादङ्गात्रि-  
भावोत्र, न तु समुच्चय इति भावः ॥

( उद्द्योतः ) पृथगिति । अन्यथा ‘सिपरस्मैपदयोः’ इत्येव  
वदेत् सिति वर्णमात्रम् । स च परस्मैपदसाहचर्यादङ्गाधिकाराच्च  
प्रत्यय एव ग्रहीष्यते ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

स्वरार्थस्तर्हि । ‘चितोऽन्त उदात्तो भवतीति-  
अन्तोदात्तत्वं यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) स्वरार्थ इति । सिचोऽनञ्कृत्वेऽपि चित-  
स्तप्रकृतेरिति वचनं नाद् ‘मा हि कार्धामित्यादौ धातोरुदा-  
त्तार्थ इत्यर्थः ।

( उद्द्योतः ) धातोरुदात्तार्थ इति । लादेशनिमित्तनिघाते  
जाते पुनरुदात्तार्थ इत्यर्थः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । अनञ्कोयम् तत्र  
नार्थः स्वरार्थेन चकारेणानुबन्धेन ।

( प्रदीपः ) अनञ्कोयमिति । मा हि कार्धामित्यादावा-  
दिसिचोन्यतरस्यामिति पाक्षिकेणोदात्तत्वेन भाव्यमिति  
चित् स्वरस्यायमविषय इति भावः ॥

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

इति कृते साचको भविष्यति ॥

( प्रयोजनबाधकभाष्यम् )

तत्र प्रत्ययाद्युदात्तत्वेनेट उदात्तत्वं भविष्यति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये तत्र प्रत्ययाद्युदात्तत्वेनेति । सिञ्जविधा-  
दुपस्थिताद्युदात्त इति शास्त्रस्यान्यत्वात्तत्र वैयर्थ्येन तदुत्तरकाल-  
मिति स्वरविधायकतेत्यर्थः ।

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । “आगमा अनुदात्ता भवन्तीति”  
अनुदात्तत्वं प्राप्नोति ।( उद्घोतः ) अनन्तविषये बाधेन लाघवात्तदसंबन्ध एवेति  
धातोरित्याद्येकवाक्यतापन्नशेषनिघातो भविष्यतीत्युत्तरयति—आ-  
गमा इति । एवं च तद्बाधेनोदात्तत्वाय चित्त्वं सार्थकमिति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १८३० प्रयोजनबाधकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सिचश्चित्करणानर्थक्यं स्थानि-  
वत्त्वात् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) सिचश्चित्करणमनर्थकम् । किं कार-  
णम् ? स्थानिवत्त्वात् । चितोऽयमादेशः स्थानि-  
वत्त्वाच्चिद्विष्यति ॥

( १८३१ प्रयोजनसाधकवार्तिकप्रथमखण्डम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थवत्तु चित्करणसामर्थ्याद्धीट  
उदात्तत्वम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) नैष दोषः । अर्थवत्तु सिचश्चित्कर-  
णम् । कोऽर्थः ? सिचः चित्करणसामर्थ्याद्धि  
इट उदात्तत्वं भविष्यति ॥ [ नाप्राप्ते प्रत्ययस्वरे  
आगमानुदात्तत्वमारभ्यते तद्यथैव प्रत्ययस्वरं बा-  
धते एवं स्थानिवद्भावादपि या प्राप्तिस्तामपि  
बाधेत ॥ ]

( १८३१ वार्तिकद्वितीयखण्डम् ॥ )

॥ \* ॥ तस्माच्चित्करणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्माच्चकारः कर्तव्यः ॥

( प्रदीपः ) अर्थवत्त्विति । च्लेश्चिक्करणस्य सामान्य-  
ग्रहणाविधातार्थत्वान्मा हि लावीदित्यादौ स्थानिवद्भावप्राप्तं  
स्वरमागमानुदात्तत्वं बाधेत । तस्मादन्तोदात्तार्थं सिचश्चित्त्व-  
मित्यर्थः । नैष दोष इति । सिचश्चित्करणानर्थक्य-मिति य उक्तस्त नास्तीत्यर्थः ॥ अत्र केचिदाहुः—प्रत्यय-  
स्वरस्य द्वावपवादौ आगमानुदात्तत्वं यासुद्धित्यत्र ज्ञापितं  
तद्देशम्, चित्स्वरश्च षाष्ठिकः तत्रापवादविप्रतिषेधाच्च चित्-  
स्वर एव भविष्यति नार्थः सिचश्चित्त्वेनेति ॥ नैतदस्ति । नहि  
प्रत्ययस्वरस्यैतावपवादौ प्रकृत्यागमानामानुगादीनां तदप्रसङ्गा-  
त् । कुण्डिनजादीनां च चित्ताम् । स्थानिवदित्यर्थं च कार्याति-  
देश इति, परत्वमपि चित्स्वरस्य नास्ति ॥ आगमानुदात्तत्वेन  
चाविशेषात् सर्वः स्वरः बाध्यः । तस्मात्तद्बाधनार्थं सिचश्चित्त्वं  
कर्तव्यमिति स्थितम् ॥( उद्घोतः ) स्थानिवद्भावप्राप्तमिति । स्थानिनि दृष्टस्यैवा-  
तिदेश इत्यत्र न मानम्, किं तु तत्र संभावितस्यापीति भावः ।  
कार्यातिदेशेऽतिदेशेनैव कार्यविधानात्परत्वेन धातोरित्येकवाक्यता-  
पन्नशेषनिघातबलभ्येनागमानुदात्तत्वेन बाध्यतेति तात्पर्यम् । न  
च च्लेश्चित्त्वसामर्थ्यादेव तद्बाधः । मन्त्रे इति सूत्रे लेरिति सामान्य-  
ग्रहणार्थत्वात् । अन्यथा निरनुबन्धकत्वादस्यैव ग्रहणं स्यात् लिटः ।  
ततश्चाम इति सूत्रेऽस्यासंबन्धः स्यात् । ततश्च परत्वान्तरङ्गत्वाभ्यां  
तिबादिषु सत्सु प्रत्ययलक्षणेन तिङन्तत्वादेवदत्तः कारयाच्चकारेत्यत्रा-  
मन्तस्य निघातः । ततः परस्य चानिघातः स्यादिति । आम इत्यत्र  
लेरित्यनुवर्तनीयमित्यभिमानः । यदि तु अन्तरङ्गानपीति न्यायेन  
तिबादिभ्यः पूर्वमेव लुक् तदा न च्लौ चस्य प्रयोजनमिति तत्साम-  
र्थ्यादेवान्तोदात्तत्वं सिद्धम् । तस्मात्पूर्वाचार्यानुसारेण सिचि च्लौ  
वा चकारोच्चारणमिति सूत्राशयः ॥ अपवादविप्रतिषेधादिति ।  
स्थानिवद्भावेन हि चित्त्वंमात्रमितिद्वयते स्वरस्तु स्वशास्त्रेणैवेति  
भावः ॥ न हि प्रत्ययस्वरस्यैताविति । एवं च ना प्राप्ते प्रत्यय-  
स्वर इत्यारभ्य स्थानिवद्भावादपि या प्राप्तिस्तामपि बाधेतेत्यन्त-  
ग्रन्थो भाष्यपुस्तकेषु प्रायेण दृश्यमानोऽपि अग्रन्थ इति भावः ॥  
आगमानुदात्तत्वेनेति । बाध्यसामान्यचिन्तयेति भावः । वस्तु-  
तस्तु लवितव्यमित्यादौ प्रत्ययसंनियोगेनाद्युदात्तत्वे कृते पश्चादिद्  
जायमानोऽस्वरकः स्यादिति सामान्यतः स्वरप्राप्तिविषये तस्य  
चारितार्थोद्भाषकत्वोक्तिश्चिन्त्या । सुतरां सर्वस्वरस्य ॥ यदि शेष-  
निघातेन तत्रानुदात्तत्वसिद्धिरित्युच्यते तदा तद्वचनमेव व्यर्थं नास्ति  
चेत्याद्युदात्तत्वेति भाष्ये ध्वनितम् । चित्त्वं तु धातुस्वरेण प्रत्ययस्वरेण  
वैकवाक्यतापन्नशेषनिघातेन प्रत्ययानुदात्तत्वबाधनार्थं कार्यमेव ॥

( सिच इकारोच्चारणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथेदित्करणं किमर्थम् ? ।

( १८३२ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥\*॥ इदित्करणं नकारलोपाभावाय ॥\*॥

( भाष्यम् ) इदित्करणं क्रियते । नकारलोपो मा

१ 'कृते तेन साचको' ॥

२ आगमानुदात्ता इत्येतद्बाधनेन । ( र. ना. )

३ केषुचित्पुस्तकेषु नोपलभ्यत इत्युद्घोततः प्रतीयते ॥

१ उद्घोतत इति दाधिमथैः कोष्ठान्तर्गतोक्तस्य भाष्यस्य प्रदीपे सुगमत्वात्  
व्याख्यानविरहः उद्घोतव्याख्यानमवलम्ब्यानुपलब्धिकल्पनमनुचितं तदुद्घो

४ तृतीयाध्यायचतुर्थपाददेशस्थम् ॥

५ आमन्तात् । ( र. ना. )

६ त्वं चित्त्वम् । ( र. ना. )

तस्य प्रौढवादत्वादिति वयम् । ( र. ना. )

भूदिति । अमस्त अमस्ताः “अनिदितां हल उप-  
धायाः झिडि” इति ।

( १८३३ प्रयोजननिराकरणवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ न वा हन्तेः सिचः कित्करणं

ज्ञापकं नकारलोपाभावस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न चैतत्प्रयोजनमस्ति । किं कारणम् ? ।  
यद्यं “हनः सिच्” इति हन्तेः सिचः कित्त्वं शास्ति  
तज् ज्ञापयत्याचार्यः ‘न सिजन्तस्य नकारलोपो  
भवति’ इति ॥

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति ज्ञापकम् । अस्ति ह्यन्यदेतस्य वचने  
प्रयोजनम् ॥ किम् ? । सिच्येव नकारलोपो यथा  
स्यात्, परस्मिन्निमित्ते मभूदिति ।

( प्रदीपः ) परस्मिन्निमित्ते । सिचः परं यत्सार्वधातुकं  
तस्मिन्निमित्तार्थः ॥

( उद्द्योतः ) ननु सिचि जायमानोऽपि परस्मिन्निमित्त एव  
त आह — सिचः परस्मिन्निमित्तम् ॥

( विशेषप्रश्नभाष्यम् )

पुनरत्र विशेषः । सिचि वा नलोपे सति  
मांजनिमित्ते वा ।

( विशेषप्रवृत्तिकोत्तरभाष्यम् )

अयमस्ति विशेषः — सिचि नलोपे सति नलोप-  
स्यासिद्धत्वादकारलोपो न भवति । परस्मिन्पुनर्नि-  
मित्ते सति नकारलोपे कृते अकारलोपः प्रस-  
ज्येत ॥ समानाश्रयमसिद्धम् । व्याश्रयं तु सिद्ध-  
मेव । व्याश्रयं चेदम् ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये नलोपस्यासिद्धत्वादिति । असिद्ध-  
वद्वत्त्वाभावादित्येनेत्यर्थः ॥

( विशेषाभावसाधकभाष्यम् )

ननु च परस्मिन्निमित्ते निमित्ते नकारलोपे सति  
अकारलोपो न भवति ॥ कथम् ? । ‘असिद्धं बहि-  
रङ्गमन्तरङ्ग’ इति ॥

( प्रदीपः ) असिद्धमिति । बाह्यसार्वधातुकाश्रयस्य  
नलोपस्य बहिरङ्गत्वादसिद्धत्वमित्यर्थः । आर्धधातुकोपदेशे

१ ‘आ हृ’ इत्यवस्थायां सिज्निमित्तके नकारलोपे जाते आर्धधातुके  
सिचि परं ‘अतो लोपः’ प्रातः ‘असिद्धवद्वत्त्वाभावात्’ इति द्वयोरपि सनातनिमित्त-  
कत्वेन नकारलोपस्य सिद्धत्वादसिद्धत्वव्याघाताच्चैव भवति ॥ आत्मनेपदनिमित्तके  
नकारलोपे स्त्रीकृतो नलोपस्यात्मनेपदनिमित्तकत्वेन अकारलोपस्य सिज्निमित्त-  
कत्वेन द्वयोर्नकारलोपाकारलोपयोर्निमित्तकत्वेन नकारलोपस्यासिद्धत्वाभावेना-  
दन्तत्वाव्याघाताभावेन ‘अतो लोपः’ त्यादेवेति विशेषप्रदर्शकभाष्यग्रन्थरहस्यम् ॥

२ ‘एतेन अदत्तं साङ्गस्यार्धधातुके परे लोपः’ इत्येवमेव ‘अतो लोपः’ इत्यर्थो  
न तु आर्धधातुकोपदेशे इति “इति विशेषप्रदर्शकभाष्यकाराभिप्रेतः” इति  
सूचितम् ॥

यदकारान्तं तस्य लोप इत्येवं वा हन्तेरतो लोपो न भवि-  
ष्यति । तथा वोच्यते — अवयवलोपिनामतो लोपो नास्तीति ॥

( उद्द्योतः ) बहिरङ्गत्वादिति । ननु तशब्दनिमित्तलोपे  
तस्य बहिरङ्गतया सिद्धत्वादाहतेत्यादौ ह्रस्वादङ्गादिति न स्यात् ।  
सिज्निमित्तत्वे तु असिद्धत्वाभावास्तेत्यतीति चेन्न । त्रैपादिकेन्तरङ्गे  
बहिरङ्गपरिभाषाऽप्रवृत्तेः ॥

( आगुक्तप्रयोजननिराकरणदार्ढ्यभाष्यम् )

तदेतद्धन्तेः सिचः कित्करणं ज्ञापकमेव ‘न  
सिजन्तस्य नकारलोपो भवति’ इति ॥

( १८३४ उपायान्तरवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ इदिद्रा स्थानिवत्त्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथाऽप्यनेनेदिताऽर्थः स्यात् । इदि-  
तोऽयमादेशः स्थानिवद्भावादिति द्विविध्यति ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये — अथाप्यनेनेति । एकदेशयुक्तिः ॥

( १८३५ सिज्निमित्तवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ स्पृशमृशकृषतृपटृपां सिज्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्पृशमृशकृषतृपटृपां सिज् वेति  
वक्तव्यम् । स्पृश — अस्पृक्षद् अस्पाक्षीत् । मृश —  
अमृक्षद् अम्राक्षीत् । कृष — अकृक्षद् अक्राक्षीत् ।  
तृप — अतृपद् अत्राप्सीत् । टृप — अटृपद् अट्रा-  
प्सीत् ॥ किं प्रयोजनम् । सिच् यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) स्पृशेति । त्रिभ्यः कसे प्राप्ते, द्वाभ्यां पुषा-  
यङि पक्षे सिज्निवधीयते ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

अथ कसः सिज् ॥

( उत्तरभाष्यम् )

कथम् ? । “शल इगुपधादनिटः कसः” इत्येव ॥

( वार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

सिजपि सिद्धः ॥ कथम् ? । चलेः चित्करणं  
प्रत्याख्यायते । तत्र चलावेव शल्लक्षणेऽमागमे कृते  
विद्वतनिमित्तत्वात् कसो न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) चलेश्चित्करणमिति । ततश्च प्रयोजना-  
भावाच्चकारस्येत्संज्ञा नास्तीति चलो झलादौ पक्षेऽमागमे कृते  
सिच् । अमभावपक्षे तु कस इति त्रयाणां ग्रहणं न कार्य-  
मित्यर्थः ॥

३ त्रिपादां बहिरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्तिस्तु बहुलक्ष्यसंस्काराय बहूनां वा-  
तिकानामारम्भे पाणिनेर्युक्ता गौरवापत्त्या एकरेशिभाष्यकारस्य मौढिवादमेव ।  
बहिरङ्गपरिभाषाया अन्तरङ्गादर्शनेपि अन्तरङ्गविधित्तु स्वकार्यसाधिकां परि-  
भाषां नेष्यत्येवं स्वदेशम् अन्धां पत्नीं चक्षुष्मान् पतिरिवेति सार्वत्रिकभाष्यसि-  
द्धान्तः ॥ आहतेत्यादौ तु नैव दोषः ‘ह्रस्वादङ्गात्’ इत्यत्रापि ‘शल्लो शलि’ इत्यतः  
‘शल्लि’ इत्येतत्संबन्धसावयवत्वेन द्वयोरपि तशब्द शल्लनिमित्तकत्वेन बहिरङ्गा-  
न्तरङ्गत्वयोरभावात् ॥ नातोऽप्येव शङ्काशयं प्रत्यक्ष इति द्वाधिमधानां प्रार्थना ॥

४ ‘टृपः’ ॥

( उद्घोतः ) एकदेशेऽपि चकारेव हि—कथं चलेरिति ॥ ततश्चेति । खरस्य सिचश्चिच्चेनैव सिचिरिति भावः ॥ भाष्ये चित्करणं प्रत्याख्यायते इत्यस्य इत्संज्ञा प्रत्याख्यायते इत्येव तात्पर्यम् ॥

( दूषणभाष्यम् )

यद्येवम् अन्यस्य सिज्जादयः प्राप्नुवन्ति ॥

( प्रदीपः ) अन्यस्येति ॥ अन्यप्रहणमुपलक्षणं । चडादयो ह्यादेः परस्य प्राप्नुवन्ति ॥

( उद्घोतः ) चडादय इति । णिश्रिदुसुभ्य इत्यादि पञ्चमीनिर्देशेन विधानादित्यर्थः ॥ णिश्रिदुसुभ्य इति विहितविशेषणमिति भाष्याशय इत्यन्ये ॥

( १८३६ दूषणान्तरातिवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु सिचो यादित्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? यादित्वात् ॥ यादिः सिच्कारिण्यते । सः “अनेकाल् शित्सर्वस्य” इति सर्वादेशो भविष्यति ॥ किं पुनर्न श्रूयते यकारः ? । लुप्तनिर्देशो यकारः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

चडङोः कथम् ।

( १८३७ समाधानभाष्यम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ चडङोः प्रश्निष्टनिर्देशात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चडङोरपि [ सिद्धम् । कथम् ? । प्रश्निष्टनिर्देशात् । ] प्रश्निष्टनिर्देशोऽयम्—च अङ् चङ् । अ अङ् अङ् । सः “अनेकाल् शित्सर्वस्य” इति सर्वादेशो भविष्यति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये च अङिति ॥ चिण्ण्यायेनात्रापि च-सेच्चाभावेऽनेका लुत्त्वान्तिष्ठति तत्र प्रक्षेपे फलं चिन्त्यम् ॥ उपायान्तरपरमेतदभ्युपेत्याह—लोपोऽप्योः पूर्वप्रवृत्तिं, प्रवृत्तमिति बोध्यम् ॥

( अनुशोभाष्यम् )

चिणः कथम् ।

( १८३८ समाधानवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ चिणोऽनित्त्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चिणः चकारस्य अनित्त्वात्सिद्धम् ॥ किमिदमनित्त्वादिति ? । अन्यस्यायं स्थाने भवन्न-प्रत्ययः स्यात् । अन्यस्यां प्रत्ययसंज्ञायामित्संज्ञा न । असत्यामित्संज्ञायां लोपो न । असति लोपे अने-काल् । यदाऽनेकाल् तदा सर्वादेशः । यदा सर्वा-

देशस्तदा प्रत्ययः । यदा प्रत्ययः तदेत्संज्ञा । यदे-त्संज्ञा तदा लोपः ॥

( प्रदीपः ) चिणोऽनित्त्वादिति । चिण् भावकर्म-णोरित्यत्र धातुग्रहणं नापेक्ष्यत इति आदेः परस्येति न भविष्यति पदेर्दीपादिभ्यश्चादेः परस्येति प्राप्नोति । तस्माद्विहितविशेषणाश्रयेण परिहर्तव्यम् ॥

( उद्घोतः ) नन्वन्यस्यायं स्थाने भवन्निति भाष्यमनुप-पन्नम् । आदेः परस्येत्यस्य प्राप्तिः । प्रत्ययादित्वेनेत्त्वसिद्धेरत आह—चिण्भावेति । विहितेति । पदादिभ्यो विहितस्य चलेरित्यर्थं पर-शब्देन विधानाभावाद्वादेः परस्येत्यस्याः प्रवृत्तिरिति भावः ॥ भाष्ये—अप्रत्ययः स्यादिति । प्रत्ययाधिकारे पाठेऽपि अन्यर्थसंज्ञा-लभ्यार्थाभावात् । न हि प्रत्ययावयवस्तदर्थवानिति भावः ॥

( वार्तिकसिद्धान्तभाष्यम् )

एष च तत्र वार्तिककारस्य निर्णयः सप्रयोजनं चित्करणमिति ॥

( प्रदीपः ) सप्रयोजनमिति । सामान्यप्रहणाविधा-तार्थत्वस्योक्तत्वात् । सति च प्रयोजने चकारस्येत्संज्ञया भाव्यं लकारश्च झल् न भवतीत्यमोऽभावात् क्व एव प्रसज्येतेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) ननु यात्वन्तः पातिनोऽपि श्रमोऽर्थवत्त्वमिवान्या-वयवस्याप्यर्थवत्त्वमस्तु समुचित्य चावयवसमुदायधीनतकता तद्वदेव चार्थाधिकारात्प्रत्ययत्वेऽपि न बाधकमिति चेन्न । एकदेश्युक्तित्वे-नादोषात् । तद्वध्वनयन्नाह—एष चेति । एतेन ‘नानुबन्धकृतम-नेकाल्त्वम्’ इति सर्वादेशत्वं दुर्लभमित्यपास्तम् ॥ वार्तिककारस्येत्यु-क्त्या खोक्तरीत्या चकारस्य चलेरेव वा प्रत्याख्यानमिति सूचितम् ।

( चकारस्यातिरिक्ते दूषणान्तरभाष्यम् )

अपि च त्रैशब्द्यं न प्रकल्प्यते । अस्पृक्षत् अस्पा-क्षीत् अस्पाक्षीदिति । सिचि पुनः सति विभाषा सिच् सिच्यपि झल्लक्षणोऽमागमो विभाषा ॥

( उद्घोतः ) चलावेव झलादिलक्षणेऽपि अस्पाक्षीदित्यस्यसिद्धि-रूपं दूषणान्तरमाह—अपि चेति ॥

( सिजविधेरावश्यकताभाष्यम् )

यस्य खल्वपि अमा अङो निमित्तं न विहन्यते स स्यादेव ॥ तस्मात् सुष्ठूच्यते स्पृशमृशकृषट्प-ट्पां सिज्वेति ॥ चलेः सिच् ॥ ४४ ॥

( प्रदीपः ) यस्य खल्वपीति । पुष्पायङ् । सर्हि कृते-ऽप्यमागमे प्रवर्तते ॥ ४४ ॥

( उद्घोतः ) ट्पट्पांशे फलं दर्शयति भाष्ये—यस्य खल्व-पीति ॥ ४४ ॥

१ ‘चडङोरिति’

२ कोष्ठकान्तर्गतः पाठो नैव क्वापि दृश्यते ॥

३ पूर्वप्रवृत्तिमित्येतत् आक्षेपेलेख्ये नान्वेति । ( र. ना. )

४ अस्य भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वेन । ( र. ना. )

५ श्रीत् शब्दानेवाह—अस्पृक्षदित्यादिना । ( र. ना. )

६ यस्येत्येतत् समानाधिकरणेनाह इत्यनेनान्वेति । ( र. ना. )

७ यस्य खल्वपीत्यस्य व्याख्यानं पुषाद्यङ् इति । ( र. ना. )

८ पुषाद्यङ् हि । ( र. ना. )



( ४१५ चलेः कसादेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. ३ )

**६६२ शल इगुपधादनिटः**

**कसः ॥ ३ । १ । ४५ ॥**

( १८३९ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

**॥ \* ॥ कसविधान इगुपधाभावः**

**च्लेर्गुणनिमित्तत्वात् ॥ \* ॥**

( भाष्यम् ) कसविधाने इगुपधत्वस्याभावः । किं कारणम् ? । च्लेर्गुणनिमित्तत्वात् । च्लिर्गुणस्य निमित्तम् । तत्र च्लावेव गुणे कृते “इगुपधात्-” इति कसो न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) शलङ्गु ॥ ४५ ॥ कसविधान इति । विशेषणासंभवाल्लक्षणदोषमुद्भावयति । भूतपूर्वगत्याश्रये विहित-विशेषणाश्रये वा लक्ष्यासिद्धिः । किंकरणं तु कसस्या-चीति विशेषणार्थं वत्सा इत्यादौ लोपनिवृत्तये स्यात् ॥

( उद्घोतः ) शलङ्गु ॥ ४५ ॥ लक्षणदोषमिति । असंभ-वरूपमित्यर्थः । भूतपूर्वेति । विशेषणसामर्थ्याद्धि तद्वाश्रयणम् ॥ लक्ष्यासिद्धिरिति । सर्वत्र गुणश्रवणापत्तिरित्यर्थः ॥ ननु कसस्य कित्वसामर्थ्यात्पूर्वमपि गुणो न भविष्यतीत्यत आह—किंकरणं त्विति । वत्से वदेः स औणादिकः ॥

( १८४० समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

**॥ \* ॥ न वा कसस्याऽनवकाशत्वाद-  
पवादो गुणस्य ॥ \* ॥**

( भाष्यम् ) न वा एष दोषः । किं कारणम् ? । कसस्यानवकाशत्वात् । अनवकाशः कसो गुणं बाधियते ॥

( प्रदीपः ) न वा कसस्येति । भूतपूर्वगत्याश्रये कित्व-मनर्थकं स्यादिति सानुबन्धकं रूपमनवकाशमित्यपवादत्वाद् गुणस्य बाधकमित्यर्थः ॥ न च कसस्याचीति विशेषणार्थं कित्वम् । प्रत्ययत्वादर्थवत्त्वाच्चास्यैव कसस्य तत्र ग्रहणस्य सिद्धत्वादुणादीनामव्युत्पन्नत्वादत्सा इत्यादौ प्रसङ्गाभावात् ॥

( उद्घोतः ) कसस्य गुणापवादत्वे हेतुमाह—भूतेति । ननु मासाविलादावपि लोपापत्तिरत आह—प्रत्ययत्वादिति ॥ वत्सा इत्यादौ दोषवारणाय—उणादीनामिति । तुणैसाविलादौ दोषस्तु लुग्वानुहेत्यत्रेतः सपदानुवृत्तेरार्थाधिकारानुरोधेन दुहादिषु यस्य सम्भवस्तस्यैव पूर्वपक्षेऽपि ग्रहणाद्वारणीयः । अत एव दृशेः कसे तादृक्षाविलादौ न दोष इति कित्वसामर्थ्यादुणो नेति बोध्यम् ॥ दुधुक्षतीत्यादौ सनः सानुबन्धकत्वाच्च दोषः ॥ एतल्लोपविषये तुणस-तादृक्षादेरनभिधानमिति कश्चित् ॥

१ तदिति भूतपूर्वगतीत्यर्थः । ( र. ना. )

२ ‘तृणान्यसिन्’ देशे सन्तीति तुणसः इत्यत्र “बुञ् छण्” इत्यनेन तुणा-

( १८४१ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

**॥ \* ॥ अनिङ्गचनमविशेषणं च्लेर्नित्या-  
दिष्टत्वात् ॥ \* ॥**

( भाष्यम् ) अनिङ्गचनमविशेषणम् । किं कार-णम् । च्लेर्नित्यादिष्टत्वात् । नित्यादिष्टः च्लिः न कश्चित् श्रूयते । तत्र च्लेरनिट इति कसो न प्राप्नोति ।

( प्रदीपः ) अनिङ्गचनमिति । अनिट इत्येतत् च्लेः विशेषणं यथा स्यादिति च्लिरुत्सर्गः कृत इत्युक्तम्, तत्रास्य सिचा नित्यं भाव्यमितीडभावोपलक्षितमस्य रूपं न कश्चिद्वि-द्यत इति च्लेरनिट इति विशेषणस्याप्रसिद्धिरित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) सिचा नित्यमिति । आदेशान्तराभावे तस्या-वश्यं भावादित्यर्थः ॥

( १८४२ दूषणपरिहारवार्तिकप्रथमखण्डम् ॥ ४ ॥ )

**॥ \* ॥ न वा कसस्य सिजपवादत्वात्  
तस्य चानिडाश्रयत्वादनिटि प्रसिद्धे  
कसविधिः ॥ \* ॥**

( भाष्यम् ) न वैष दोषः । किं कारणम् ? । कसस्य सिजपवादत्वात् । सिजपवादः कसः । स चानिडा-श्रयः । न चापवादविषयमुत्सर्गोऽभिनिविशते । “पूर्व-ह्यपवादाः प्रवर्तन्ते पश्चादुत्सर्गाः” “प्रकल्प्य वाप-वादविषयमुत्सर्गोभिनिविशते” । तन्न तावदत्र कदाचित् सिज् भवति कसमपवादं प्रतीक्षते । कसस्य सिजपवादत्वात् ॥ तस्य चानिडाश्रयत्वाद् अनिट् प्रसिद्धः । अनिटि प्रसिद्धे कसविधिः \* । अनिटि प्रसिद्धे कसो भविष्यति ॥

सिजिदानीं क भविष्यति ? ।

( १८४२ वार्तिकद्वितीयखण्डम् ॥ ५ ॥ )

**॥ \* ॥ शेषे सिज्विधानम् ॥ \* ॥**

( भाष्यम् ) शेषे सिज्विधानं भविष्यति अकोषीद् अमोषीद् इति ॥ शल इगुपधा ॥ ४५ ॥

( प्रदीपः ) न वा कसस्येति । अयं भावः—लिट् लि त् इति स्थिते सिचा न भाव्यं कसस्यायं विषय इति । कसेनापि न तावद्भावं यावदस्यानिट्त्वं न ज्ञातम् । तत्र लकारस्यैवेतः प्राप्नोति तन्निषेधादनिट्त्वमस्तीति कसः सिद्धः अलि-क्षदिति । यत्र त्विटः प्रतिषेधो नास्ति तत्र सिजेव भवत्यको-षीदिति ॥ ४५ ॥

( उद्घोतः ) सिजेव भवतीति । निर्दिश्यमानपरिभाषया लेरेव सः । धातोरिति च विहितविशेषणमिति निर्दिश्यमानस्य न व्यवहितत्वमिति भावः ॥ ४५ ॥

दिभ्यः सः इति पदमञ्जरी ॥

३ नित्यं यद्वा—आदिष्टः—आदेशेनापहृत इत्यर्थः । ( र. ना. )

( ४१६ च्लेः कसादेशनियमसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. ४ )

६६३ श्लिष आलिङ्गने ॥ ३।१।४६ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ? ।

( प्रदीपः ) श्लिष आ ॥ ४६ ॥ किमर्थमिति । किं पुषादिपाठादङि प्राप्ते तद्वाधनाय विध्यर्थमिदम्, अथ पूर्वेण कसे सिद्धे नियमार्थमिति प्रश्नः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

नियमार्थम् । नियमार्थोऽयमारम्भः—श्लिष आलिङ्गन एव कसो यथा स्यात् । इह मा भूत्—उपा-श्लिषद् जतु च काष्ठं च, समाश्लिषद् ब्राह्मणकुलमिति ॥

( प्रदीपः ) इतरो वक्ष्यमाणयोगविभागं मनसि कृत्वा—नियमार्थमिति । उपाश्लिषदिति । प्रत्यासत्तावत्र श्लिषिवर्तते, नालिङ्गने ॥

( उद्घोतः ) श्लिष आ ॥ ४६ ॥ विधित्वसंभवे नियमार्थत्वं कथमित्यत आह—इतर इति । प्रत्यासत्तिः संबन्धमात्रम् । प्राणिकर्तृकतद्विशेषश्चालिङ्गनमिति बोध्यम् ॥

अत उत्तरं पठति—

( १८४३ नियमानुपपत्तिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ श्लिष आलिङ्गने नियमानुपपत्तिर्विधेयभावात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) श्लिष आलिङ्गन इति नियमस्यानुपपत्तिः ॥ किं कारणम् ? । विधेयभावात् ॥

कैमर्थक्यान्नियमो भवति । विधेयं नास्तीति कृत्वा ॥

इह चास्ति विधेयम् । किम् ? । पुषादिपाठादङ् प्राप्तः तद्वाधनार्थः कसो विधेयः ॥

तत्रापूर्वो विधिरस्तु नियमो वेति ।

अपूर्वं एव विधिः स्यान्न नियमः ॥

( प्रदीपः ) अङ् प्राप्त इति । श्लिषेर्नाप्राप्ते अङि कसस्या-रम्भाद् बाधकत्वमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) श्लिषेर्नाप्राप्ते इति । परस्मैपदविषये विधित्वं स्यादित्यर्थः ॥

( दूषणप्रश्नभाष्यम् )

किं च स्याद्, यदायं नियमो न स्यात् ? ।

( दूषणभाष्यम् )

आत्मनेपदेष्वालिङ्गनेऽनालिङ्गने च कसः प्रस-ज्येत ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये आलिङ्गनेऽनालिङ्गने चेति । कर्मणि कर्मव्यतीहारे चार्तो प्रभृतिष्वित्यर्थः । तत्रालिङ्गने इष्टमेव अन्यत्रापत्तिरेव दोषः ॥

( दूषणान्तरभाष्यम् )

यथैव कसोऽङ् बाधते, एवं चिणमपि बाधेत—उपाश्लेषि कन्या देवदत्तेनेति ॥

( प्रदीपः ) यथैवेति । विध्यर्थत्वे दोषान्तराद्भावनम् ॥

( उद्घोतः ) दोषान्तरमिति । बाध्यसामान्यचिन्तया पद-द्वयविषयको विधिः स्यादिति भावः ॥

( १८४४ दूषणपरिहारिन्यासान्तरवार्तिकप्रथमखण्डम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु श्लिष आलिङ्गनेऽचि-  
ण्विषये ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् ॥ कथम् ? । श्लिष आलिङ्गने अचिण्विषये कसो भवतीति वक्तव्यम् ॥

( १८४५ न्यासान्तरवार्तिकद्वितीयखण्डम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अङ्घ्रिधाने च श्लिषोऽनालिङ्गने ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अङ्घ्रिधाने च श्लिषोऽनालिङ्गने इति वक्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) सिद्धं त्विति । पूर्वेण कसे सिद्धे नियमार्थ-मेतद्वचनं कर्तव्यम् ॥ अचिण्विषय इति । अनेन निय-मार्थत्वं समर्थ्यते । अन्यथा चिण्वाधनाय तद्विषये विध्यर्थ-मेतत् स्याद् न तु नियमार्थम् ॥

अङ्घ्रिधान इति । ततश्चालिङ्गनेऽङ्प्रतिषेधात् 'श्लिष आलिङ्गनेऽचिण्विषये' इति नियमार्थं भवति । अन्यथा विध्य-र्थमेतत् स्यात् ॥

( उद्घोतः ) नियमार्थमिति । अचिण्विषये श्लिष आलिङ्गन एवेत्यर्थः । अचिण्विषयशब्देन भावकर्माधिकृतशब्दभिन्नमात्मने-पदमुच्यते ॥ अन्यथा विध्यर्थमिति । अचिण्विषय इत्यनेन तद्विज्ञतिङामेव ग्रहणं स्यादित्यर्थः । तत्तु चिण्विषये विधिव्यावृ-त्त्यर्थं स्यादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

सिध्यति । सूत्रं तर्हि भिद्यते ।

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ॥

( दूषणसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तम् \* श्लिष आलिङ्गने नियमानुपपत्ति-  
विधेयभावात्\* इति ।

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

नैव दोषः ।

( १८४५ सिद्धान्तिवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ योगविभागात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) योगविभागः करिष्यते । “श्लिषः” । श्लिषः कसो भवति ॥ किमर्थमिदम् ? । पुषादिपाठादहं प्राप्नोति तद्बाधनार्थम् ॥

ततः “आलिङ्गने” । आलिङ्गने च श्लिषः कसो भवति ॥ इदमिदानीं किमर्थं स्यात् ? । नियमार्थम् । ‘श्लिष आलिङ्गने एव ॥’ क मा भूत् ? । उपाश्लिषज्जतु च काष्ठं च, समाश्लिषद् ब्राह्मणकुलमिति ।

( प्रदीपः ) श्लिषः कस इति । श्लिष इत्यत्रानिष्ट इत्यनुवर्तनादाहार्थस्य सेतो ग्रहणाभावः । साऽनुबन्धकत्वाद्वा । तत्र पुषादिपाठानुमितोऽहं प्रत्यक्षशिष्टेन कसेन बाध्यते ॥

( उद्द्योतः ) दाहार्थस्येति । अन्यथा तत्र चारितार्थ्याददो बाधो न स्यादिति भावः ॥ सानुबन्धकत्वाद्वा । श्लिषु दाह इति पाठात् ॥ अनुमित इति । न च कसोऽचरितार्थः । तत्रादिपदस्यैतत्सामर्थ्यानेतरपुषादिमात्रपरत्वमित्यभिमानः ॥ पुषादि पाठोऽपि इत्यर्थः । न चान्यत्रैव पाठ्यः, अशोकवनिकान्यायात् ॥ वस्तुतः पुषादिपाठसामर्थ्यादादिपदेन तत्र ग्रहणसामर्थ्याच्चाह्वसयोः परस्परपदे आलिङ्गनानालिङ्गनविषये सर्वत्र विकल्पे प्राप्ते आत्मनेपदे चालिङ्गनानालिङ्गनयोरविशेषेण कसे प्राप्ते द्वितीयेन नियमः—आलिङ्गन एवेति ॥ एवं चार्थान्तरे सावकाशोऽहं आलिङ्गने कसेन बाध्यते । तस्यैव बाधस्यानुवादो भाष्ये तद्बाधनार्थमिति । न चालिङ्गने कस एवेति विपरीतनियमापत्तिः । लक्ष्यानुबन्धात्प्रत्ययनियमस्यैवाङ्गीकारादित्युक्तम् । योगविभागसामर्थ्याच्च नियमेन सर्वाङ्गप्राप्तिबाधः ॥ ४६ ॥

( दूषणान्तरपरिहारभाष्यम् )

यदप्युच्यते—यथैव च कसोऽहं बाधते, एवं चिणमपि बाधेतेति । ‘पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्’ इत्येवं कसोऽहं बाधियते न चिणम् ॥ अथवा तत्र वक्ष्यति—चिणित्यनुवर्तमाने पुनश्चिणग्रहणस्य प्रयोजनम् चिणेव यथा स्याद् यदन्यत्रप्राप्तेति तन्मा भूदिति ॥ श्लिष आलिङ्गने ॥ ४६ ॥

( प्रदीपः ) अथ वेति । समुदायापेक्षायां पुरस्तादपवादा इति परिभाषा नास्तीति परिहारान्तरोपन्यासः ॥ ४६ ॥

( ४१७ क्लेश्रुदेवविधिसूत्रम् ॥ ३।१।४ आ. ५ )

६६५ निश्चिद्रुसुभ्यः कर्तरि चड्

॥ ३।१।४८ ॥

( १८४६ शेषपूर्तिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ निश्चिद्रुसुषु कमेरुपसंख्यानम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) निश्चिद्रुसुषु कमेरुपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥

नाकमिष्टसुखं यान्ति सुयुक्तैर्वडवारयैः ।

अथ पत्काषिणो यान्ति येऽचीकर्मतभाषिणः ॥

( प्रदीपः ) निश्चिद्रु ॥ ४८ ॥ कमेरिति । आर्धधातुके विकल्पेन णिङो विधानादणिङ्पक्षे सिचि प्राप्ते वचनम् । तत्राचकमतेति भवति । णिङ्पक्षे तु सन्वद्धावादचीकमतेति ॥ सन्वद्धधुनि चर्षीति वक्तव्ये परग्रहणसामर्थ्यादन्यपदार्थो णिराश्रीयते अन्यस्यासंभवात् । तेन चड्परे णौ यल्लघुधात्वक्षरं तत्र परतोऽभ्यासस्य सनीव कार्यं भवतीत्यर्थः ॥

नाकमिष्टसुखमिति । नाकं स्वर्गमिष्टसुखं यान्ति सुयुक्तैर्वडवारयैः कमेरुङि किं रूपं भवतीति पृष्टेः ‘अचकमत’ इत्युक्तम् । यैस्तु ‘अचीकमत’ इत्युक्तं ते पत्काषिणो यान्ति लक्षणस्मरणान्निन्दार्थवादोऽयं लक्षणस्मरणादर्थः ॥ अन्ये त्वाहुः—अकमिष्टेति यैरुक्तं त एवोपचारादकमिष्टशब्देनानुकरणशब्देनोच्यन्ते । अनुकार्यानुकरणयोर्भेदस्याविवक्षितत्वाद्विभक्तिर्न कृता । ते सुयुक्तैरपि वडवारयैर्गच्छन्तः सुखं न प्राप्नुवन्ति अपशब्दोच्चारणात् । ये त्वचीकमतभाषिणस्ते पत्काषिणोपि सुखं यान्तीति ॥

( उद्द्योतः ) निश्चिद्रु ॥ ४८ ॥ ननु णिङभावपक्षेऽपि सन्वत्त्वं दुर्वारम्, तत्र णावित्यनुकेरत आह—सन्वद्धधुनीति ॥

अन्ये त्वाहुरिति । अत्रारुचिस्तु भाष्याननुगुणत्वम् । वार्तिकोक्तं पाठेन तत्सुल्लघ्वत्वस्य स्वरसतः प्रतीतिः । पूर्वव्याख्यायां विशेषलक्षणस्मरणप्रयुक्ताऽधिकसुखप्राप्तिः । कमेरुङि कीदृशं रूपमिति प्रश्ने, स्वरसतः कम् प्रकृतिके लुङीत्यर्थके तस्य साधुत्वेऽप्यसमजसोत्तरत्वात्प्रयुक्तसुखप्राप्तिः ॥ एवं च सामान्यशास्त्रानुगतलक्ष्यप्रयोगापेक्षया विशेषलक्षणानुगतशब्दप्रयोगे धर्माधिक्यमित्यस्य भाष्यस्य तात्पर्यम् ॥

( १८४७ न्यूनतापूर्तिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मकर्तरि च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मकर्तरि चोपसंख्यानं कर्तव्यम् । कारयति कटं देवदत्तः ‘अचीकरत कटः स्वयमेव’ । उच्छ्रयति कटं देवदत्तः ‘उदशिभ्रियत कटः स्वयमेव’ इति ॥

( प्रदीपः ) कर्मकर्तरि चेति । कर्तर्युच्यमानश्च कर्म-  
कर्तरि न प्राप्नोतीति वचनम् ॥

( उद्घोतः ) कर्मकर्तरीति । कर्मवद्भावादिना बाधः स्या-  
दित्यभिमानः ॥

( १८४८ न्यूनताखण्डनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ न वा कर्मण्यविधानात्कर्तृत्वाच्च  
कर्मकर्तुः सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा कर्तव्यम् । किं कारणम् ? ।  
कर्मण्यविधानात् । नहि कश्चित्कर्मणि विधीयते  
यश्चङ् बाधेत ॥ कर्तृत्वाच्च कर्मकर्तुः सिद्धम् ॥ अस्ति  
च कर्मकर्तरि कर्तृत्वमिति कृत्वा चङ् भविष्यति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये कर्मणि विधीयते य इति । कर्मवद्भाव  
प्राप्त इति भावः ॥

( खण्डनयुक्तिसाधकभाष्यम् )

ननु चायं कर्मणि विधीयते “चिण् भावकर्मणोः”  
इति ॥

( खण्डनयुक्तिसाधकभाष्यम् )

प्रतिषिध्येते तत्र यक्चिणौ—यक्चिणोः प्रति-  
षेधे हेतुमणिश्रिब्रूजामुपसंख्यानम् इति ॥

( प्रतिषेधायोग्यस्थलदर्शकभाष्यम् )

यस्तर्हि न हेतुमणिच् ‘उदपुपुच्छत गौः स्वय-  
मेवेति ॥

( प्रदीपः ) उदपुपुच्छतेति । पुच्छमुदस्यति उत्पु-  
च्छयते गौः, तत्र यदान्तर्भावितप्यर्थत्वादस्य गवा सकर्मकत्वं  
भवति तदा ‘उत्पुपुच्छयते गाम्’ इति भवति । पुनर्गौरेव  
यदा सौकर्यातिशयेन कर्तृत्वं विवक्ष्यते भूतकालश्च तदैतदु-  
दाहरणम् ॥ ४८ ॥

( उद्घोतः ) उत्पुपुच्छयते गामिति । कर्तुरीप्सिततममिति  
कर्मत्वं बोध्यम् ॥ ४८ ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत्रापि यथा भारद्वाजीयाः पठन्ति, तथा  
भविष्यति प्रतिषेधेन—“यक्चिणोः प्रतिषेधे नि-  
ग्रन्थिग्रन्थिब्रूजात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानं क-  
र्तव्यम्” इति ॥ निग्रन्थिब्रूजभ्यः ॥ ४८ ॥

( ४१८ छेरङ्देशविधिसूत्रम् ॥ ३।१।४ आ. ६ )

६६९ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योङ्

॥ ३।१।५२ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अस्यतिग्रहणं किमर्थम् ? ।

( १८४९ सिद्धान्तिसमाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अस्यतिग्रहणमात्मनेपदार्थं  
पुषादित्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अस्यतिग्रहणमात्मनेपदार्थं द्रष्टव्यम् ॥  
किमुच्यते आत्मनेपदार्थमिति, न पुनः परस्मै-  
पदार्थमपि स्यात् ? ।

पुषादित्वात्\* । पुषादिपाठात् परस्मैपदेष्वङ्  
भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) अस्यति ॥ ५२ ॥ पुषादय आगणान्ताद् ।  
अन्तराले, वृत्करणं रधादिसमाप्त्यर्थम्, न तु पुषादिपरिस-  
माप्त्यर्थमिति प्रतिपादनाय सुहृद्भूत आचार्य आह—अस्यति-  
ग्रहणमिति ॥

( उद्घोतः ) अस्यति ॥ ५२ ॥ ननु परस्मैपदेऽप्यङ्दर्शनादा-  
त्मने पदार्थमित्युक्तम्, अत आह—पुषादय आगणान्तादिति ॥

( १८५० न्यूनतापूर्तिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मकर्तरि च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मकर्तरि चोपसंख्यानं कर्तव्यम् ।  
पर्यास्थेतां कुण्डले स्वयमेव ॥

( न्यूनतापरिहारभाष्यम् )

अत्रापि ।

( १८५१ न्यूनतापरिहारवार्तिकम् ॥ ३ )

॥ \* ॥ न वा कर्मण्यविधानात् कर्तृत्वाच्च  
कर्मकर्तुः सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इत्येव ॥ अस्यतिवक्ति ॥ ५२ ॥

( प्रदीपः ) अत्रापीति । आतिदेशिकस्य कर्मकार्यस्य  
कस्यचिदत्राविधानात् स्वाश्रयं कार्यं प्रतिबन्धकभावात् प्रवर्त-  
त एवेति भावः ॥ ५२ ॥

( उद्घोतः ) आतिदेशिकस्येति । यक्छिण्ना बाधात् ।  
द्विवचने चिणोऽप्राप्तेः ॥ आत्मनेपदमपि उपसर्गादस्यत्युद्घोरिति  
वार्तिकेन सिद्धमित्यर्थः ॥ ५२ ॥

( ४१९ छेरङ्देशविधिसूत्रम् ॥ ३।१।४ आ. ७ )

६७५ जृस्तम्भुम्भुचुम्भुचुम्भुचुम्भु-  
श्चिभ्यश्च ॥ ३।१।५८ ॥

( सूत्रपाठविचारभाष्यम् )

इदं ग्लुचिग्रहणं ग्लुञ्चिग्रहणं च क्रियते । अन्य-  
तरच्छक्यमकर्तुम् । यदि तावद् ग्लुचिग्रहणं क्रियते ।  
ग्लुञ्चिग्रहणं न करिष्यते । तेनैव सिद्धं न्यग्लुचद्  
न्यग्लोचीत् । इदमिदानीं ग्लुञ्चैरूपं न्यग्लुञ्चीत् ॥

१ एतेन न ‘केवलं पाणिनीयलक्षणमेव मान्यम्’ इति नियमः । किं तु व्या-  
करणान्तरलक्षणमपि ‘मान्यमेव’ इति सूच्यते ॥

२ अतिदिश्यमानधर्मविरुद्धाश्रयधर्मप्रयुक्तकार्याभावस्य लोकसिद्धस्यास्या-  
न्नाभावदिति भावः । ( र. ना. )

अथ ग्लुञ्चिग्रहणं क्रियते ग्लुञ्चिग्रहणं न करिष्यते तेनैव सिद्धं न्यग्लुचद् न्यग्लुञ्चीत् । इदमिदानीं ग्लुचेरूपं न्यग्लोञ्चीदिति ॥ जृस्तम्भु० ॥ ५८ ॥

( प्रदीपः ) जृस्तम्भु, ॥ ५८ ॥ अन्यतरदिति । अने-  
कार्थत्वाद्वातुनामत्र विषयेऽर्थभेदो न प्रयोजक उभयोपादानस्येति  
भावः ॥ यत्तुभयोपादानसामर्थ्याद् ग्लुञ्चेरङ्गि नलोपो न  
भवति न्यग्लुञ्चदिति कैश्चिदभ्यधायि । तद्भाष्यविरोधादनाद-  
रणीयम् ॥ ५८ ॥

( उद्घोतः ) जृस्तम्भु ॥ ५८ ॥ ग्लुचेः स्तेयकरणार्थत्वा-  
त्कथं सिद्धिरत आह—अनेकार्थत्वादिति ॥ ५८ ॥

( ४२० च्लेशिणादेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. ८ )

६७७ चिण्ते पदः ॥ ३ । १ । ६० ॥

( तत्प्रत्ययनिर्णयाधिकरणम् )

( अनुयोगभाष्यम् )

अयं तशब्दोऽस्येवात्मनेपदम्, अस्ति परस्मैप-  
दम्, अस्यैवैकवचनम्, अस्ति बहुवचनम् । कस्येदं  
ग्रहणम् ? ।

( उत्तरभाष्यम् )

यः पदेरस्ति ॥ कश्च पदेरस्ति ? । पदिरयमात्म-  
नेपदी ॥ चिण् ते ॥ ६० ॥

( ४२१ च्लेशिणादेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. ९ )

६८३ चिण् भावकर्मणोः ॥ ३ । १ । ६६ ॥

( चिण्ग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

चिणिति वर्तमाने पुनश्चिण्ग्रहणं किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

नेत्येवं तदभूद् विध्यर्थमिदम् ॥

( प्रदीपः ) चिण्भाव ॥ ६६ ॥ नेत्येवमिति । प्रैति-  
षेधसंबद्धं तदभूदित्यर्थः ॥

( भाष्यम् ) अथ वा नेत्येवं तदभूद् नित्यार्थमिदम् ॥

( प्रदीपः ) नन्वत्र प्राप्यभावाज्ज्ञेति नापेक्षिष्यत इत्याह—  
अथ वेति ॥

( भाष्यम् ) अथ वा चिणिति वर्तमाने पुनश्चिण्-  
ग्रहणस्यैतत्प्रयोजनम् चिणेव यथा स्याद् यदन्य  
त्प्राप्नोति तन्माभूत् ॥ चिण् भावः ॥ ६६ ॥

( प्रदीपः ) विकल्पोपि पूर्वमेव निषेधेन निवर्तितत्वाच्चापेक्षिष्यत  
इत्याह—अथ वेति । तेनोपाश्लेषीति कसो न भवति ॥ ६६ ॥

( ४२२ यग्विकरणविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. १० )

६८४ सार्वधातुके यक् ॥ ३ । १ । ६७ ॥

( भावकर्मणोर्वचनव्यवस्थाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

इह पश्यामः 'कर्मणि द्विवचनबहुवचनान्युदा-  
ह्रियन्ते पच्येते ओदनौ' पच्यन्ते ओदना इति ।  
भावे पुनः एकवचनमेव—आस्यते भवता, आस्यते  
भवद्भ्याम्, आस्यते भवद्भिरिति । केनैतदेवं  
भवति ? ।

( प्रदीपः ) सार्वधा ॥ ६७ ॥ इह पश्याम इति ।  
वक्ष्यमाणस्य वाक्यार्थस्य दृष्टिक्रियायां कर्मत्वं यथा पश्य मृगो  
धावतीति मृगकर्तृकायाः सरणक्रियायाः ॥ केनैतदिति ।  
इह क्रियाप्रधानमाख्यातम् । सा च क्रिया साध्यरूपत्वान्निरु-  
तैभेदा । तदुक्तम्—

'निवृत्तमेदा सर्वैव क्रियाऽऽख्यातेऽभिधीयते ।

श्रुतेरशक्याभेदानां प्रविभागप्रकल्पनेति ॥

तत्र यथा साधनभेदात्कर्तृकर्माभिधायिनि लकारे द्विवचन-  
बहुवचने भवतस्तथा भावाभिधायिन्यपि प्रसजतः ॥ अथैक-  
पदवाच्यसाधनसंख्याश्रये द्विवचनबहुवचने भवत इति पक्ष-  
स्तदा पाकौ पाका इत्यत्र न प्राप्नुतः साधनस्य घञा अनभि-  
धानादिति प्रश्नः ॥

( उद्घोतः ) सार्वधातुके ॥ ६७ ॥ दृशेः कर्मणि नियता-  
काङ्क्षत्वात्तद्वर्शयति—वक्ष्यमाणस्येति । वाक्यार्थः क्रिया ॥ सा  
चेह केनैतदेवं भवतीत्यतद्रूपा ॥ सरणं धावनम् । अर्ध्याहृत-  
धावनादिपदोपस्थाप्यस्य कर्मत्वमित्यन्यत्रोक्तम् ॥ ननु भावस्य  
क्रियारूपस्य संख्ययाऽयोगाच्च द्विवचनादिकं भविष्यति । कर्मणि तु

१ आत्मनेपदमित्यादि आत्मनेपदे प्रथमादेशरूपम् एकवचनम् परस्मैपदे  
यादेशरूपम् बहुवचनमेति बोध्यम् । ( र. ना. )

२ आत्मनेपदीति तेनात्मनेपदप्रथमादेशरूपं बोध्यम् । ( र. ना. )

३ "न रुधः" इति सूत्रे इति भावः ॥

४ 'दीपजन' इति सूत्रोक्त इति भावः ॥

५ श्लिष इति सूत्रमात्र इत्यर्थः । ( र. ना. )

६ पच्येते—ओदनावित्यादौ द्वित्वादिविशिष्टोदनादिकर्मकाकस्य । ( र. ना. )

७ निवृत्तमेदा । अविवक्ष्यमानलिङ्गादिविशेषेत्यर्थः । ( र. ना. )

८ आख्याते तिङन्ते धातुनाभिधीयते, इत्यर्थः । ( र. ना. )

९ अर्ध्याहृत्कारवादेनेदम् । ( र. ना. )

१० 'पश्य मृगो धावति' इत्यत्र धावतीति पदस्योपात्तत्वेनाध्याहारस्य वैयर्थ्याद्

'अध्याहृतधावनादिपदोपस्थाप्यस्य' इति लेखस्यासंगतिरिति 'समभिव्याहृत-  
धावतीति पदोपस्थाप्यस्य' इति पाठो भवेत् ॥ इति दाधिमथाः ॥ यद्वात्राध्याहृत-  
पदम् 'अध्याहृतसमभिव्याहृतोभयपदं सत्' इत्यादिममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्प-  
त्तयः शुभाः इत्यत्राध्याहृतक्रियाया अपि यदि कर्मत्वं तदा समभिव्याहृतस्थ-  
ले का कथा इति सूचनायैव । अन्यत्र कैयटेन पश्यमृगो धावतीत्यादौ शब्दाध्या-  
हार एव उक्त इत्याह—अध्याहृतेत्यादि—अध्याहृतं यत् धावनादिपदं तदुप-  
स्थाप्यस्येत्यर्थः । अयं भावः । धावतीति पदात् प्रथममसत्त्वभूतं धावनं प्रतीयते  
ततो मनसा द्वितीयान्तधावनपदस्य सरणपदस्य वा ज्ञाने सरणादिपदेन सत्त्व-  
भूतस्य सरणस्यामादिपदेन कर्मत्वस्योपस्थितिः । पश्य मृगो धावतीत्यादिकायाः  
काकथेत्यन्ताया दाधिमथटिप्पण्या युक्तायुक्तत्वे सुधीभिरुक्ते । ( र. ना. )

शक्तिशक्तिमतोरभेदोपचाराच्छक्तिमतश्च संख्यायोगाद् द्विवचनादिकं सेत्स्यतीत्यत आह—इहेति ॥

श्रुतेरिति । साधनादिभेदाद्विभक्तत्वेऽपि श्रुतेराख्यातशब्दात् प्रविभागकल्पना भेदावगमरूपाऽशक्येत्यर्थः ॥

कथं तर्हि द्विवचनादिकम् । तत्राह—तत्रेति । साधनभेदादिति । साधनभेदकृतभेदारोपादित्यर्थः ॥ अथैकेति । शब्दशक्ति-स्वभावादिति भावः ॥ तदा पाकाविति । क्रियारूपस्य स्वतः सङ्ख्यासंबन्धाभावादिति तात्पर्यम् ॥

(समाधानभाष्यम्)

कर्माऽनेकम्, तस्याऽनेकत्वाद् द्विवचनबहुवचनानि भवन्ति । भावः पुनरेक एव ॥

(प्रदीपः) कर्मानेकमिति । कर्मशक्त्याधारो द्रव्यमनेकम् । शक्तिशक्तिमतोश्च शब्देन भेदो न प्रतिपाद्यत इति शक्त्यभिधायिनाप्याख्यातेनौदनः पच्यत इति शक्तिमद्द्रव्य-वाचिन ओदनशब्दस्य सामानाधिकरण्यं भवति ॥ भावः पुनरिति । भेदाभावलक्षणमभेदैकत्वं भावस्य । नत्वेकसंख्याऽऽख्यातवाच्यस्य भावस्यास्ति । तस्माद्रव्यधर्मत्वादसत्त्वभूतत्वा-च्चाख्यातवाच्यस्य भावस्य ॥

(उद्घोतः) ननु कर्मपदस्य शक्त्यभिधायित्वाच्छक्तेश्च विभक्तिवाच्याया असत्त्वभूतत्वात्सङ्ख्यायोगाभावेनानेकमित्यनुपपन्नमत आह—कर्मशक्तीति ॥ शब्देनेति । न हि घटस्य शुद्ध इति वत् घटस्य कर्मेति प्रयोगोऽस्ति इति भावः । तदेवाह—सामानाधिकरण्यमिति ॥ कर्मादिपदैः शक्तिमदभेदमापन्नैव शक्तिरुच्यते । अत एव कर्मत्वमिति भावप्रत्ययेन शक्तिरुच्यते, प्रवृत्तिनिमित्तेन व्यक्तेस्तादात्म्यसंबन्धस्याङ्गीकारादिति तत्त्वम् । एवं च कर्मणि विधीयमानाख्यातेनापि तथैव शक्तिरुच्यते इति सामानाधिकरण्योपपत्तिरिति भावः ॥ ननु भावस्यैकत्वयोगे द्वित्वादियोगोऽपि स्यादत आह—भेदाभावेति । परे त्वरत्यैकत्वसंख्या क्रियायामसत्त्वं त्वनारोपितत्वादिसंबन्धाभावमात्रेण । तदेवैकपदेत्येवकारेण भाष्ये ध्वनितमित्याहुः ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

कथं तर्हि इह द्विवचनबहुवचनानि भवन्ति पाकौ पाका इति ? ।

(समाधानभाष्यम्)

आश्रयभेदात् । यदसौ द्रव्यं श्रितो भवति भावस्तस्य भेदाद् द्विवचनबहुवचनानि भवन्ति ॥

(प्रदीपः) आश्रयभेदादिति । गुडतिलोदनादीनामाश्रयाणां भेदादाश्रितोऽपि पाको भिद्यते । घजादिभिश्च सत्त्वरूपोऽर्थोऽभिधीयत इति द्रव्यधर्मसंख्याभेदाश्रयो वचनभेदो न विरुध्यत इति भावः ॥

(उद्घोतः) आधारद्रव्याणां भेदेऽपि कुतः पाकादेर्भेदोऽत आह—गुडतिलेति ॥ आश्रितः पाकोऽपीत्यन्वयः ॥ आश्रयभेदात्तत्रापि भेदाध्यवसाय इति भावः ॥ नन्वेवं तिङ्गपि द्विवचनादि स्यात्, न स्याद्वा कृत्यपीत्यत आह—घजादिभिरिति । तिङ्वाच्यस्तु न सत्त्वभूत इति भावः ॥

(दूषणभाष्यम्)

इहापि तर्हि यावन्तस्ते तां क्रियां कुर्वन्ति, सर्वे ते तस्या आश्रयभूता भवन्ति, तद्भेदाद् द्विवचनबहुवचनानि प्राप्नुवन्ति ॥

(प्रदीपः) इहापीति । आख्यातवाच्यस्यापि भावस्याश्रयभेदाद्भेदोऽस्तु । ततश्च वचनभेदप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥

(उद्घोतः) उक्तार्थाज्ञानवतश्चोचमित्याह—आख्यातेति ॥ वस्तुतः पूर्वभाष्येण कृत्यपि तदनुपस्थाप्यसाधनगताया अपि सङ्ख्याया आरोपेण द्विवचनादीत्युक्तम् । तत्र शङ्का समञ्जसैव ॥

(दूषणोद्धारभाष्यम्)

एवं तर्हि इदं तावदयं प्रष्टव्यः—‘किमभिसमीक्ष्यैतत् प्रयुज्यते=पाकौ पाका इति ।

यदि तावत्पाकविशेषानभिसमीक्ष्य ‘यश्चादनस्य पाकः, यश्च गुडस्य, यश्च तिलानां’ बहुवस्ते शब्दाः सरूपाश्च । तत्र युक्तं बहुवचनमेकशेषश्च ॥ तिङ्मिहिते चापि तथा । भावे बहुवचनं श्रूयते । तद्यथा—उष्णसिका आस्यन्ते, हतशायिकाः शययन्त इति ॥

अथ कालविशेषानभिसमीक्ष्य ‘यश्चाद्यतनः पाकः, यश्च ह्यस्तनः, यश्च श्वस्तनः’स्तेऽपि बहुवः शब्दाः सरूपाश्च । तत्र युक्तं बहुवचनमेकशेषश्च ॥ तिङ्मिहिते चापि तथा भावेऽसारूप्यादेकशेषो न भवति—आसि आस्यते आसिष्यते इति ॥

(प्रदीपः) पाकविशेषानिति । केषित्पाकशब्दं कर्मसाधनं व्याचक्षते । पक्तव्यविशेषान् गुडादीनित्यर्थः ॥ तत्त्वयुक्तम् । असंज्ञायां कर्मणि घञो दुर्लभत्वात् । तस्मादाश्रयप्रकारादिभेदभिन्नान् पाकविशेषानित्यत्रायमर्थः ॥ अथवा संज्ञाप्रहणस्य प्रत्याख्यातत्वादसंज्ञायामपि कर्मणि घञ् भवति ॥ उष्णसिका आस्यन्ते इति । अत्राश्रयाणामुष्णानां भेदादनेकप्रकारयुक्तान्यासनानि भिन्नानि तत्सामानाधिकरण्याच्चाख्यातवाच्यभावभेदादास्यन्त इति बहुवचनमित्यर्थः । इवशब्दप्रयोगमन्तरेणापि चेवार्थगतिर्भवति । तदयमर्थः—यादृशान्युष्णानामनेकप्रकाराण्यासनानि तादृशानि देवदत्तादिभिः क्रियन्त इति ॥ भवद्विरास्यत इत्यत्राश्रयभेदादाश्रितभेदैस्य प्रतिपन्नत्वात् प्रयोजनाभावाद्भावो भेदं नोपादत्त इत्येकवचनमेव भवति ।

१ एकत्वसंख्यायाः । (र. ना.)

२ किन्तु घटः कर्मेति शेषः । (र. ना.)

३ द्रव्यस्य । (र. ना.)

४ “संज्ञाप्रहणमनर्थकं च सर्वत्र, सर्वत्र घञो दर्शनात् ॥३॥ इति वार्तिकात् ।

‘असंज्ञायामपि घञादयो दृश्यन्ते—‘को भवता लब्धः, को भवता दातो दत्तः’ इति” इति भाष्यात् ॥

५ ‘तत्सास्याच्च’ इत्युद्योतव्याख्यातपाठः ॥

६ ‘भेदस्याप्रतिपन्नत्वा’ ॥

यथा 'ताम्रः पलाशेषु बभूव राग' इति । न च सर्वत्राश्रयभेदा-  
दाश्रितभेदस्य प्रतीतिः घटान् पचतीत्यादौ पाकस्याभिज्ञस्यैवा-  
वगमात् ॥ केचित्तूष्णसिका आस्यन्त इति कर्मणि लकारमि-  
च्छन्ति,—उष्णसिकालक्षणस्य भावस्य कर्मत्वात् । यथा  
'गोदोहः सुप्यते' इति ॥ एवं तु विवक्षान्तरे भवत्येवेति भाष्य-  
कारेण भावेऽपि लविधाने बहुवचनमुपपादितम् ॥

तेऽपि बहव इति । भिन्नकालत्वादेवेति भावः ॥ तत्र  
युक्तमिति । शास्त्रैकशेषे सत्येकस्यानेकार्थाभिधायित्वाद्  
अन्तरेण वैकशेषारम्भं सरूपाणामेकस्यैव स्वभावतोऽनेकार्थ-  
त्वादिति भावः ॥ तिङ्भिहित इति । नह्येकं तिङन्तमनेक-  
कालभावप्रत्यायने समर्थं किंचिदस्तीति भिन्नकालासनक्रियाप्र-  
त्यायनाय भिन्ना एव शब्दाः प्रयुज्यन्त इति भावः ॥

( उद्द्योतः ) घञौदुर्लभत्वादिति । यो गुडस्येत्यादिवक्ष्य-  
माणभाष्यविरोधादित्यपि बोध्यम् । एतेनाथवेत्यपि न समञ्जसम् ॥  
एवं चाश्रयप्रकारादिकृतभेदानां पाकशब्दादवगतिर्भवेन युक्तं  
बहुवचनम् । न तु तिङन्ते तत्कृतभेदानवगमके इति भावः ॥ यत्र  
त्वस्ति तत्कृतभेदावगमस्तत्र भवत्येव बहुवचनमित्याह—भाष्ये  
तिङ्भिहिते चापीति ॥ ननुष्णसिका इत्यादावाख्यातवाच्ये भावे  
कथं भेदावगमोऽत आह—अत्राश्रयणामिति ॥ तत्साम्याच्चेति ।  
न हेकासने तावत्साम्यसंभवस्तत्प्रतिपादने फलं चेत्यर्थः । तत्सा-  
मानाधिकरण्याच्चेति पाठेऽपि अयमेवार्थः । उपमानोपमेययोः  
सामानाधिकरण्यादित्यर्थः ॥ ननु साम्यवाचके वाचभावात्कथं  
तत्प्रतीतिरत आह—इवेति ॥ 'परत्र परशब्दः प्रयुक्तः' इति  
न्यायादिति भावः ॥ प्रयोजनाभावादिति । प्रकृते तु साम्यप्रती-  
त्युपपादनमेव प्रयोजनमिति भावः ॥ यथेति । पलाशरूपाश्रया-  
नेकत्वेऽपि राग इत्येकवचनमेवेति भावः ॥ वस्तुतस्तत्रैकजातीयराग-  
प्रतिपादनार्थैकवचनमिति बोध्यम् । किं चाश्रयभेदादाश्रितभेदप्रती-  
तेरसार्वत्रिकत्वादपि न सा भावाख्याते द्विवचनादिनियामिकेत्याह—  
न चेति ॥ एवं चासिका इत्यादि क्रियाविशेषणं प्रथमान्तम् ।  
क्तिन्नधिकारस्थण्वुलः स्त्रीत्वस्य सत्त्वेन सामान्ये नपुंसकमित्यस्या-  
प्रवृत्त्या न स्त्रीत्वम् । उपमानोष्णसनाभिन्नान्यासनानीति बोधः ।  
बहुत्वावधारणाच्च नैकवचनमिति बोध्यम् ॥ कर्मणीति । अत्र पक्षे  
आख्यातावयवासिदेः परिच्छेदकत्वनिरूपके आसनादौ वृत्तिः ।  
परिच्छेदकत्वरूपफलाश्रयत्वात्कर्मत्वम् । दृष्टान्ते व्याख्याश्रयत्वादि-  
परिच्छेदकत्वं च सादृश्येन ॥ नायं भाष्यार्थ इत्याह—एवं त्विति ।  
विवक्षान्तरे ॥ आसेः परिच्छेदकत्वार्थरूपविवक्षाविशेषे ॥ भावेऽपि  
लविधाने यदुपपादितं बहुवचनं भाष्यकारेण, 'तन्नोपपादितं स्यादिति  
शेषः ॥ एवं च 'यथा पाकप्रकारानभिसमीक्ष्य पाकावित्यादिद्वि-  
वचनादि । एवमासनप्रकारानभिसमीक्ष्यास्यन्त इत्यादि भावे बहु-

वचनमिति भाष्यार्थः ॥ आख्यातवाच्येऽसत्त्वं लिङ्कारका नन्वयित्व-  
मेव बोध्यम् ॥ भिन्नकालत्वादिति । भिन्नकालार्थवाचकत्वादित्यर्थः ॥  
नन्वेकशेषमात्रेणाविद्यमानानेकार्थाभिधानशक्तिः कथमत आह—  
अन्तरेण चेति ॥ तिङ्भिहिते चापीत्यादि भाष्ये । तिङन्ताथै  
भावे तथात्वेऽपि कालभेदेन भेदेऽपि असारूप्यादेकशेषभावेन न  
बहुवचनादीत्यर्थः ॥ तदेवोपपादयति—न हेकमिति ॥

अस्ति खल्वपि विशेषः तिङ्भिहितस्य भावस्य  
कृदभिहितस्य च । कृदभिहितो भावो द्रव्यवद्भवति ॥  
किमिदं द्रव्यवदिति ? । द्रव्यं क्रियया समवायं  
गच्छति ॥ कं समवायं गच्छति ? । द्रव्यं क्रिया-  
भिनिर्वृत्तौ साधनत्वमुपैति ॥ तद्वद्भास्य भावस्य  
कृदभिहितस्य भवति 'पाको वर्तते' इति ॥ क्रिया-  
वन्न भवति ॥ किमिदं क्रियावदिति ? । क्रिया क्रियया  
समवायं न गच्छति—'पचति पठती'ति ॥ तद्वद्भास्य  
कृदभिहितस्य न भवति—'पाको वर्तते इति ॥

( प्रदीपः ) द्रव्यवदिति । द्रव्यत्वेन प्रसिद्धो यो घटा-  
दिस्तद्द्रव्यं भावो भवति । लिङ्गसंख्यासाधनसंबन्धप्रतिपत्त्या ।  
तत्र वस्तुपलक्षणं यत्रेति द्रव्यलक्षणयोगेऽपि प्रसिद्धप्र-  
सिद्धपक्षे उपमानोपमेयभावः ॥ क्रिया क्रियेति ॥ ननु  
'भवति पचति' 'पश्य मृगो धावती'ति कर्तृकर्मभावेन क्रिया  
क्रियया संबध्यत एव । एवं तर्हि करणादिरूपेण समवायं न  
गच्छतीति विवक्षितम् ॥ ननु साध्यत्वात् क्रियायाः कथं क्रिया-  
न्तरं प्रति कर्मकर्तृभावः । विषयभेदादेकस्याप्यर्थस्य साध्यसा-  
धनभावसंबन्धसंभवादोषः ॥ तदुक्तं हरिणा—

तत्र यं प्रति साध्यत्वमसिद्धा तं प्रति क्रिया ।  
सिद्धा तु यस्मिन् साध्यत्वं न तमेव पुनः प्रति ॥  
मृगो धावति पश्येति साध्यसाधनरूपता ।  
तथा विषयभेदेन सरणस्योपपद्यत ॥ इति

तत्र कर्तृकर्मत्वमाख्यातवाच्यस्य भावस्य न विरुद्धम् । तथा  
हि—भवतिक्रियापेक्षमेव तस्य कर्तृत्वम् । सर्वैश्वर्यः स्वेन  
रूपेण भवतीति भवने कर्तृत्वमुपपन्नम् । एवं कर्मापि क्रिया-  
फलत्वात् प्रधानमिति कर्मत्वमपि तस्योपपद्यते । करणत्वादीनि  
तु सर्वात्मना गुणभावमन्तरेण नोपपद्यन्त इति प्राधान्येनाख्य-  
न्तविरोधात्तस्य नोपपद्यन्ते ॥

( उद्द्योतः ) इतः परं 'भिन्नपदवाच्यसाधनादिकृतभेदेन भेदा-  
वगमः कृदन्तेऽस्ति, न तिङन्ते' इत्यत्र बीजभूतं तयोर्वैषम्यमाह—  
अस्तिखल्वपीति भाष्ये ॥ ननु लिङ्गसंख्याद्यन्वयित्वमेव द्रव्यत्व-  
मिति वतिरनुपपन्नोऽत आह—तत्रेति । भाष्ये क्रियया समवाय-

१ एकं तिङन्तं किञ्चिदित्यन्वयः । ( र. ना. )

२ 'वेदाः प्रमाणम्' इत्यत्र यथैकजातीयप्रमाण्यप्रतिपादनार्थैकवचनम्,  
तथेति केचित् ॥

३ द्रव्यवदित्यर्थः ॥

४ 'किंतु भवत्येव यथा' इति शेषः ॥

५ 'वस्तुपलक्षणं यत्र सर्वनाम प्रयुज्यते ।

द्रव्यमित्युच्यते सोऽर्थो भेद्यत्वेन विवक्षितः' ॥

मिति । क्रियानिरूपितकर्मादिसंज्ञासमानाधिकरणशक्तिभिः संबन्धं गच्छति इत्यर्थः ॥ द्रव्यं क्रियाभिनिर्वृत्तौ साधनत्वमित्यस्य कारकशक्तिमत्त्वमित्यर्थः ॥ करणादिरूपेणेति । कृदन्ते 'पाकेन वैरं कृतमि'त्यादौ तथान्वयादिति भावः ॥ ननु साध्यत्वादिति । असिद्धस्य जनकत्वाऽसंभवादिति भावः ॥

सिद्धात्विति । यन्निरूपितं सिद्धत्वं तमेव प्रति पुनः साध्यत्वं नेत्यन्वयः ॥ एवं चान्यनिरूपितसिद्धत्वेऽप्यन्यनिरूपितं साध्यत्वं संभवत्येवेति भावः ॥ तथा विषयेति । तथा सति विषयभेदेनेत्यर्थः ॥

क्रियाफलत्वादिति । अर्शआद्यच्चा तद्वत्त्वादित्यर्थः ॥ तस्य । आख्यातवाच्यभावस्य ॥ अन्वयस्त्वौदृशे विषयेऽन्यतराऽकाङ्क्षयैव ज्योतिष्टोमेन यजेतेत्यादौ करणत्वेनान्वयसत्त्वेऽपि स्वघटितपदवाच्य-क्रियायां तत्त्वाभाव एवेति बोध्यम् ॥ गुणभावमिति । इदं चि-  
न्त्यम् । कर्मणः क्रियाफलाश्रयत्वादिव कर्तुः क्रियाश्रयत्वादिव च प्राधान्यवत् करणस्यापि स्वव्यापाराव्यवधानेन फलोत्पादकतया-  
ऽन्यकारकापेक्षया प्राधान्यमस्त्विति । न हि कर्तृकर्मणोः प्राधान्यमेवा-  
श्रयणीयं नेतरस्येदृशमित्यत्र मानमिति तस्मात्स्वभावत एव तदन्वया-  
भाव इति बोध्यम् ॥ एवं च करणत्वोद्देश्यत्वावधित्वैरन्वयित्वेन कृदभिहितो भावो द्रव्यधर्मैव, तिङ्भिहितस्तु तद्विरुद्ध एवेति बोध्यम् ॥

( विशेषान्तरभाष्यम् )

अस्ति खल्वपि विशेषः कृदभिहितस्य भावस्य, तिङ्भिहितस्य च—तिङ्भिहितेन भावेन कालपुरु-  
षोपग्रहा व्यज्यन्ते, कृदभिहितेन पुनर्न व्यज्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) कालेति । पुरुषशब्देन तदर्थः प्रत्य-  
क्षपरागं भावश्चोच्यते । उपग्रहोऽनेकप्रकारः स्वार्यपराथ-  
त्वादिकः ॥

( उद्ध्योतः ) अस्यैवार्थस्य साधकं वैषम्यान्तरं दर्शयति—  
कालपुरुषेत्यादि । असत्त्वभूताया एवैतत्संभव इति भावः ॥  
प्रत्यक्त्वंमुत्तमे, पराक्त्वं मध्यमे, प्रत्यक्त्वं स्वगतत्वम् पराक्त्वं  
संबोध्यगतत्वम् । शुष्मदसद्व्यतिरेकेणापि मध्यमोत्तमाभ्यां तद्वोधः ।  
स्वार्थत्वपराथत्वादिकमपि बोधविषय इति भावः ॥

( विशेषान्तरभाष्यम् )

अस्ति खल्वपि विशेषः—तिङ्भिहितस्य भावस्य,  
कृदभिहितस्य च—तिङ्भिहितो भावः कर्त्रा संप्र-  
युज्यते, कृदभिहितः पुनर्न संप्रयुज्यते ॥

यावता किञ्चिच्च सामान्यं कश्चिच्च विशेषः ॥

युक्तं यद्यमपि विशेषः स्याद्—लिङ्गकृतः  
संख्याकृतश्च ॥

( प्रदीपः ) कृदभिहित इति । ननु कृदभिहितस्यापि  
भावस्य भवति कर्त्रा योगः । यथा 'ब्राह्मणानां प्रादुर्भाव'  
इति ॥ तत्राहुः—एकपदवाच्येन कर्त्रा न युज्यते यथा पच-

तीति कर्ता वाच्यो, नैवं पाक इति । शुद्धस्यैव भावस्य प्रत्याय-  
नात् । अथ वा घनादिभिः सिद्धरूपता भावस्याभिधीयत इति  
तेन रूपेण कर्त्रा योगाभावो धातुरूपप्रतिपाद्यया तु साध्य-  
तया कर्त्रा योगो भवति ॥ अथवोपलक्षणभावेन भावः कर्त्रा  
युज्यते कृत्सु पाक इति । तिङ्सु तु पचतीतिसाध्यमान-  
तया प्राधान्येन । तत्र कृत्सु प्राधान्येन कर्त्रा योगो नास्ती-  
त्यमत्रार्थः ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये कर्त्रा संप्रयुज्यत इति । तिङन्तवाच्यो  
भावो नियमेन कर्त्राकाङ्क्षः, कृदुपपत्तिस्तु न तथा । न हि पाको राग  
इत्युक्ते कस्येति नियमेन कर्त्राकाङ्क्षा दृश्यते । नापि तस्य नियमेन  
प्रयोगो दृश्यते । इदमेव ध्वनयितुं संप्रेत्युपसर्गद्वयोपादानमित्यर्थो  
मम भाति ॥ यतश्च क्रियात्वं सामान्यमुभयत्रापि । साध्यत्वसिद्धत्व-  
कृतश्च पूर्वोक्तो विशेषो दृश्यते ॥ तथायमपि, यत्तिङ्र्थस्य भावस्य  
लिङ्गवाह्यसाधनकृतसङ्ख्याययोग्यता, कृदर्थस्य तु तद्योग्यतेति भा-  
ष्यार्थः ॥ ब्राह्मणानामिति कर्तरि षष्ठी ॥ एकपदेति । इयं व्याख्या  
भाष्याननुगुणा ॥ पाचक इति कृदन्ते तस्यापि सत्त्वात् । न च तत्र  
न कृदभिहितो भावः । पचतीत्यत्रापि न तिङ्भिहितो भाव इति  
तुल्यम् ॥ उपलक्षणभावेनेति । विशेषेणत्वेनेत्यर्थः । अत्रापि पक्षे  
भाव्यस्वरसंश्लिश्य एव पाकादिशब्दोपक्रमेणैव भाष्यस्य प्रवृत्तेः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इदं विचार्यते—भावकर्मकर्तारः सार्वधातुकार्था  
वा स्युः, विकरणार्था वेति ॥ कथं च सार्वधातु-  
कार्था स्युः कथं वा विकरणार्थाः ? । भावकर्मवा-  
चिनि सार्वधातुके यक् भवति, कर्तृवाचिनि सार्व-  
धातुके शब् भवतीति सार्वधातुकार्थाः । भावकर्म-  
णोर्यक् भवति सार्वधातुके, कर्तरि शब् भवति  
सार्वधातुक इति विकरणार्थाः ॥

( प्रदीपः ) इदं विचार्यत इति । विचरति नानागच्छति  
यद्वस्तु तद्विचार्यते नानात्वं नीयत इत्यर्थः । इहान्वयव्यति-  
रेकाश्रया शास्त्रीया पदावयवानामावापोद्धारिक्यर्थवत्ता । तौ  
चान्वयव्यतिरेकावेकतरस्यापि न व्यवतिष्ठेते । सार्वधातुकम-  
न्तरेणापि कर्त्राद्यवगमाद् । यथा गच्छ प्रामम्, अशापि  
भवता, अकारि कट इति । तथा विकरणाभावेऽपि कर्त्राद्यव-  
गतिरस्ति—लविषीष्ट क्षेत्रमिति । उभयाभावेऽप्यस्ति—अजा-  
गर्भवानिति ॥ क्वचित्भयसंनिधौ कर्त्राद्यवगतिः पचति पच्यत  
इति । तत्र निश्चयाभावाद्विचारः क्रियते—कः पक्ष आश्रीय-  
माणः शास्त्रं न विरुणद्धीति ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये सार्वधातुकार्था इत्यत्र सार्वधातुकपदं  
तिङ्पलक्षकम् । नानापक्षोत्थितौ बीजमाह—इहेति । शास्त्रीयार्थ-  
वत्ता पदावयवानामावापोद्धारिकी अन्वयव्यतिरेकाश्रयेत्यन्वयः ।  
आवापः, प्रक्षेपः, अपनय उद्धारस्तत्कृता । अत एव भाष्यकारः



शास्त्रमेव पक्षद्वयसाधकत्वेनोपन्यसिष्यति ॥ सार्वधातुकमिति ।  
इदं च तिङ्परम् ॥ अत एवाग्रे गच्छेत्युदाहरणं संगच्छते ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः ? ।

( १८५२ सार्वधातुकार्थपक्षे दूषणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भावकर्मकर्तारः सार्वधातुकार्था-  
श्रेदेकद्विवहुषु नियमानुपपत्तिर-  
तदर्थत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भावकर्मकर्तारः सार्वधातुकार्थाश्रेद-  
एकद्विवहुषु नियमस्यानुपपत्तिः ॥ किं कारणम् ? ।  
अतदर्थत्वात् । न हीदानीमेकत्वादय एव विभ-  
क्त्यर्थाः ॥ किं तर्हि ? । भावकर्मकर्तारोऽपि ॥

( प्रदीपः ) एकद्विवहुष्विति । एकल एवैकवचनं  
नार्थान्तर इति यो नियमः स नोपपद्यते कर्त्रादीनामपि तदर्थ-  
त्वादित्यर्थः ॥ अतदर्थत्वादिति । सामर्थ्यादत्रावधारणमा-  
श्रीयते न तान्येवैकलानीत्यर्थः । अपि तु कर्त्रादयोऽपीत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) एकद्वीति । द्वयेकयोरित्यादिसूत्रेणैतत्त्वार्थः ॥  
नन्वतदर्थत्वादित्यस्य तदर्थत्वाभावादित्यर्थो न युक्तः । एकत्वाव-  
धेत्वस्य सत्त्वादित्यत आह—सामर्थ्यादिति ॥ न तान्येवेति ।  
'न तान्येवार्थो यस्येति' विग्रह इत्यर्थः ॥ तत्पदार्थमाह—एकत्वा-  
दीतीति । तन्मात्रार्थत्वाभावादित्यर्थ इति तात्पर्यम् ।

( विकरणार्थपक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

सन्तु तर्हि विकरणार्थाः ।

( १८५३ विकरणार्थत्वपक्षदूषणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ विकरणार्था इति चेत् कृताभिहिते  
विकरणाभावः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विकरणार्था इति चेत् कृताभिहिते  
विकरणो न प्राप्नोति—धारयः पारयः इति ।

( प्रदीपः ) कृताभिहित इति । क्वचिदेव कृति विकरणो  
विधीयते न सर्वत्रेति कृत एव कर्तरि कृदिति कर्तारो निर्दि-  
श्यते । तेनैव च कर्तृकलात्तदभिधायी विकरणो न प्राप्नोति ।  
ततश्च धारय इत्यादावसति शपि गुणो न स्यात् ॥

( उद्द्योतः ) ननु विकरणानां तदर्थत्वे कृताभिहित इत्यनु-  
पपन्नमत आह—क्वचिदेवेति । एवं च सर्वत्र विकरणाभावात्कृतां  
तेषु शक्तिकल्पनाऽऽवश्यकीति भावः ॥

( सार्वधातुकार्थवादिभाष्यम् )

किमुच्यते—'कृताभिहिते इति',—न लेनाप्यभि-  
धानं भवति ? ।

( प्रदीपः ) न लेनापीति । लः कर्मणि चेति वचना-  
ह्लादेशैरपि कर्त्रादेरभिधानमिति तत्रापि विकरणाप्राप्तिः किं न  
चोद्यत इत्यर्थः । ततो लः कर्मणीति वचनात् कर्त्रादीनां  
विकरणार्थत्वं नैव संभवतीत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) विकरणार्थत्वपक्षे शङ्कते—भाष्ये किमुच्यते  
कृतेत्यादिना ॥

( विकरणार्थवादिभाष्यम् )

न शक्यं लेनाभिधानमाश्रयितुम् । पक्षान्तरमि-  
दमास्थितम्—भावकर्मकर्तारः सार्वधातुकार्था वा  
स्युर्विकरणार्था वेति । यदि च लेनाप्यभिधानं  
स्याद् नेदं पक्षान्तरं स्यात् ॥

( उद्द्योतः ) इतर आह न शक्यमिति ॥ तत्र तदुक्तदूषणे 'कृता'  
इत्युक्तम्, 'अभिहिते' इत्येव युक्तमित्याह—पक्षान्तरमिति ।  
यदि चेति यदि लेनाभिधानं स्यात् नेदं पक्षान्तरं स्यात् इत्यर्थः ॥

( सार्वधातुकार्थवादिभाष्यम् )

कथमशक्यम् । यदा भवानेवाह "लः कर्मणि च  
भावे चाकर्मकेभ्यः" इति ? ।

( प्रदीपः ) ततो लः कर्मणीति वचनात्कर्त्रादीनां विक-  
रणार्थत्वं नैव संभवतीत्युक्तं भवति ।

( उद्द्योतः ) कथमिति । पक्षान्तरत्वासंभवेऽपि लेनाभिधान-  
माश्रयितुं कथमशक्यमित्यर्थः ॥ तदाश्रयणस्य शक्यत्वमुपपाद-  
यति—यदा भवानेवेति ॥ तद्व्याचष्टे—ततो ल इति । अत एव  
लिङादिषु कर्त्राद्यर्थवगतिरिति बोध्यम् ॥

( विकरणार्थवादिभाष्यम् )

एवं वक्ष्यामि लः कर्मणो भावाच्चाकर्मकेभ्य इति ॥

( प्रदीपः ) एवं वक्ष्यामीति । व्याख्यास्यामीत्यर्थः ।  
लः कर्मणि इति कर्मणि वर्तमानाद्विकरणादिति व्याख्यास्यत  
इत्यर्थः ॥ तत्र कर्माभिधायी विकरणः कर्मशब्देन भाष्य उक्तः ॥  
ननु सार्वधातुकनिमित्तो विकरणो न तु विकरणनिमित्तो लकारः,  
तत्कथमेवं व्याख्यायते । एवं तर्हि कृते लकारे सार्वधातुक  
इति विषयसप्तम्याश्रयणात् कृते विकरणे लः कर्मणि चेत्-  
नेन भावकर्मकर्त्रभिधायिनो विकरणात्परो लः साधुर्भवतीति  
व्याख्यानाददोषः ॥

( उद्द्योतः ) इतरोऽशक्यत्वमुपपादयति—एवं वक्ष्यामी-  
त्यादिना ॥ लः कर्मण इति न्यासे गौरवं सूत्रभेदश्च स्यादत  
आह—व्याख्यास्यामीति ॥ उक्तार्थे भाष्यं योजयति—तत्र कर्म-  
णि । कृते लकारे इति । वर्तमाने लिङित्यादिभिः परत्वादिति  
भावः ॥ यथा न्यासेऽपि वर्तमाने लिङित्यादिभिः सिद्धलकारानु-  
वादेन कर्त्राद्यर्थसंबन्धेन साधुत्वविधायकमेवेदम् ॥ लस्य साधुत्वं  
चादेशद्वारा बोध्यम् ॥

( सार्वधातुकार्थवादिभाष्यम् )

यस्मिंस्तर्हि ले विकरणा न श्रूयन्ते, कस्तत्र भाव-  
कर्मकर्तृनभिधास्यति ? क्व च न श्रूयन्ते ? । य एते  
लुग्विकरणाः श्रुविकरणाश्च ॥

( विकरणार्थवादिभाष्यम् )

अत्राप्युक्ते कर्तृत्वे लुग्भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) अत्राप्युक्त इति । विकरणलोपद्वारेण प्रकृति-  
रेव तत्र कर्त्राद्यभिधायिनीति प्रतिज्ञातं भवतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) ननु कुकि तदभावात् कोऽभिदध्याद् अत आह—लोपद्वारेणेति ॥ कर्त्रभीति पाठः । कर्त्राद्यभीति पाठे आदिशब्दार्थचिन्त्यः ॥

( सार्वधातुकार्थसाधकभाष्यम् )

यस्मिंस्तर्हि ले विकरणा नैवोत्पद्यन्ते कस्तत्र भावकर्मकर्तृनभिधास्यति । क च नैवोत्पद्यन्ते ? । लिङ्ङितोः ॥ तस्मान्नैवं शक्यं वक्तुं 'न लेनाप्यभिधानं भवतीति । भवति चेदभिहिते विकरणाभाव इत्येव ॥

( प्रदीपः ) यस्मिंस्तर्हि । ततश्च विकरणानुत्पादा-ल्लादेशस्यासाधुत्वप्रसङ्गो विधानसामर्थ्याद्वा साधुत्वे भावाद्यर्थावगतिर्न स्यात् कर्तरि कृदिति वचनात्कर्तृत्वं लकारः स्यादित्यर्थः ॥ भवति चेदिति । ततश्च विकरणार्थपक्षोऽनुपपन्न एवेति भावः ॥

( उद्घोतः ) लादेशस्येति । लस्य कापि प्रयोगाभावादेवमुक्तम् ॥ विधानेति । लिङ्ङिलोविधानसामर्थ्यादित्यर्थः ॥ भाष्ये तस्मान्नैवमिति । लः कर्मण इत्येतदित्यर्थः ॥ तस्मान्नैवमिति पाठान्तरम् ॥ ततः किं तत्राह—शक्यं नेति । यदुक्तं न लेनाप्यभिधानं भवतीति तद्वक्तुं शक्यमित्यर्थः ॥ भवति चेदिति । लेनाभिधानं भवति चेद्विकरणार्थत्वपक्षे अभिहिते विकरणानामनापत्तौ तच्छास्त्रवैयर्थ्यं स्यादित्यर्थः ॥ तदाह—ततश्चेति ॥

( विकरणार्थसाधकभाष्यम् )

एवं तर्हिदं स्यात्—यदा भावकर्मणोर्लः, तदा कर्तरि विकरणाः । यदा कर्तरि लः, तदा भावकर्मणोर्विकरणाः ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हि । प्रकारान्तरेण विकरणार्थत्वपक्षं समर्थयते । यथा ग्रामं गच्छतीति गमिक्रियायाः कर्तृकर्मणी साधने । तत्र कर्तरि लकारः कर्मणि द्वितीया । तथात्राप्येकस्मिन्नर्थे सार्वधातुकमपरस्मिन्विकरणो भविष्यतीति भावः ॥

( सार्वधातुकार्थवादिभादिभाष्यम् )

इदमस्य यद्येव स्वाभाविकम्, अथापि वाचनिकम् “प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः” इति । न चास्ति संभवो यदेकस्याः प्रकृतेर्द्वयोर्नार्थयोर्युगपत्सहायीभावः स्यात् । एवं च कृत्वा एकपक्षीभूतमेवेदं भवति सार्वधातुकार्था एवेति ॥

( प्रदीपः ) इदमस्येति । अयमर्थः—यत्र पदद्वयवाच्ये कर्तृकर्मणी साधने तत्र विरोधाभावात्तन्निबन्धनः कार्यमेदो युक्तः । एकस्मिन् पदे विरुद्धार्थयोर्विकरणसार्वधातुकयोर्विशिष्टार्थप्रतिपादने साहायकाभावात्परस्परानुपपकारादप्रयोग एव स्यात् । तथा हि पचतीति क्रियाविशिष्टः कर्ताभिधीयते ।

पच्यते इति क्रियाविशिष्टं कर्म । न त्वेकेन साधनद्वयं क्रियाविशिष्टं प्रतिपादयितुं शक्यते ॥ एकपक्षीभूतमिति । एक एव पक्षः सार्वधातुकार्थाः कर्मादय इत्यर्थः । पूर्वमेदापेक्षश्च त्विप्रत्ययनिर्देशः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये एवं तर्हीत्यादिनोक्तं विकरणार्थत्वं दूषयति—इदमस्येति । इदं प्रकृतीत्यादि ॥ अस्य आचार्यस्य ॥ स्वाभाविकं लोकव्युत्पत्तिसिद्धम् ॥ वाचनिकं व्याकरणान्तर इव ॥ प्रत्ययार्थं सहेति । प्रतीयमानार्थं सह ॥ ब्रूतः एकोपस्थितिविषयी कुरुतः । लोके तथैव व्युत्पत्तेरिति भावः ॥ नानार्थयोर्भिन्नार्थयोः ॥ सहायीभावः सहायत्वम् ॥ अयं भावः—पचत्रित्यादौ “प्रत्ययार्थः प्रधानमि”त्युत्सर्गरीत्याद्वयोरपि प्रत्ययार्थयोः प्राधान्ये एकत्र विशेषणतयान्वितप्रकृतेरपरत्र तथा संबन्धो व्युत्पत्तिविरुद्धः तदर्थानालङ्घितप्रत्ययार्थभानमप्युक्तव्युत्पत्तिविरुद्धमित्ययं पक्षोऽसंगत इति भावः ॥ विशिष्टार्थप्रतिपादने साहायकाभावादिति । प्रकृतेरिति शेषः ॥ परस्परेति । प्रकृतिप्रत्यययोरित्यर्थः ॥ पचतीति । आख्याते कारकविशिष्टक्रियाप्राधान्यादिदं चिन्त्यम् । भाष्यं तु पचन् पचमान इत्याद्यभिप्रायकतया नेयम् ॥ कैयटे पचतीत्याद्यपि पचत्रित्यादेरुपलक्षणं वा । सहायीभाव इत्यत्र चि्वस्तु उभयत्र तस्यासहायत्वादुपपन्नः ॥ केचित्तु क्रियाविशिष्ट इत्यस्य क्रियासहित इत्यर्थः । कर्तृविशेषणिका कर्मविशेषणिका चेति यावत् ॥ एकेन चोभयविशेषणिका क्रिया न प्रतिपादयितुं शक्येति भाष्यार्थमाहुः । तच्चिन्त्यम् ॥ न त्वेकेनेति । धातुनेत्यर्थः ॥ अत्र केचित् । सुपामिव तिङामपि कर्त्रादिद्योतकत्वमेव । भाष्यमत्रापि सुयोजनेवेत्याहुः । निरूपितं चैतद्विस्तरेण मञ्जूषायामाख्यातवादे ॥

( सार्वधातुकार्थपक्षदूषणसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्\* भावकर्मकर्तारः सार्वधातुकार्था इति चेदेकद्विवहुषु नियमानुपपत्तिरतदर्थत्वाद्\* इति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः ।

( १८५४ सिद्धान्तवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सुपां कर्मादयोप्यर्थाः संख्या चैव तथा तिङाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुपां तिङां च संख्या चैवार्थः कर्मादयश्च ॥

( १८५५ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ प्रसिद्धो नियमस्तत्र ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रसिद्धस्तत्र नियमः ॥

१ 'युगपदनुसहारीभावः' ॥

२ व्याकरणान्तरवृत्तित्यर्थः । ( र. ना. )

३ 'क्रिया विशिष्टा येनेति बहुव्रीहिणा क्रियाप्राधान्यस्यानुपपत्त्यभावेन सर्व

समञ्जसमिति तु दाधिमथानां सिद्धान्तः । क्रियेत्यादि—द्राविडप्रमाणायामस्मिति दाधिमथ इति बालानामपि स्पष्टम् । ( र. ना. )

( १८५६ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ नियमः प्रकृतेषु वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा प्रकृतानर्थानपेक्ष्य नियमः ॥  
के च प्रकृताः ? । एकत्वादयः । एकस्मिन्नेवैकवचनं  
न द्वयोर्न बहुषु । द्वयोरेव द्विवचनं नैकस्मिन् बहुषु ।  
बहुष्वेव बहुवचनं नैकस्मिन् द्वयोरिति ॥

( प्रदीपः ) प्रसिद्धो नियम इति । अर्थनियम इत्यर्थः ।  
कर्माद्यर्थान्तरनिर्देशान्तु न प्रत्ययनियमः प्रमाणसिद्धः । तत्रैकल  
एकवचनमेवेत्येवमेकत्वादिरर्थो नियम्यते । न तु प्रत्यय इति  
तस्यार्थान्तरमपि कर्मादि न विरुध्यते ॥

अथ वेति । कर्माद्यर्थविधानसामर्थ्याच्चुल्यजातीयसंख्या-  
पेक्ष एव नियम इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये प्रसिद्धो नियमस्तत्रेति । तत्र अर्थ-  
विषये ॥ यतः सुपां तिकां चार्थद्वयं दृश्यतेऽतः प्रत्ययनियमासंभवा-  
दिति भावः ॥ नियम इत्यर्थ इति । प्रत्ययनियम इत्यर्थः ॥

( १८५७ यग्विधिवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ भावकर्मणोर्यग्विधाने कर्मकर्त-  
र्युपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भावकर्मणोर्यग्विधाने कर्मकर्तृर्युप-  
संख्यानं कर्तव्यम् । पच्यते ओदनः स्वयमेव ।  
पठ्यते विद्या स्वयमेव ॥

किं पुनः कारणं न सिध्यति ? ।

( १८५८ शपोबलीयस्त्वप्रतिपादकं वार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ विप्रतिषेधाद्धि शपो बली-  
यस्त्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विप्रतिषेधाद्धि शपो बलीयस्त्वं  
प्राप्नोति । शपोवकाशः—पचति पठति । यकोव-  
काशः—पच्यते ओदनो देवदत्तेन, पठ्यते विद्या  
देवदत्तेनेति । इहोभयं प्राप्नोति—पच्यते ओदनः  
स्वयमेव, पठ्यते विद्या स्वयमेवेति । परत्वात् शप्  
प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) कर्मकर्तरीति । कर्मवदित्यतिदेशेन स्वाश्र-  
यस्य कार्यस्याबाधनात्कर्त्राश्रयविकरणप्राप्तौ वचनम् ॥ विप्रति-  
षेधादिति । यदा शास्त्रातिदेशपक्षस्तदा शपो बलीयस्त्वम् ।  
कार्यातिदेशे तु यक् एव बलीयस्त्वम् ॥

( उद्ध्योतः ) ननु कर्मवद्भावादेव यक् सिद्धोऽत आह—  
कर्मवदिति ॥ स्वाश्रयस्य कार्यस्येति । परत्वेन बलवत् इत्यर्थः ।  
अतिदेशस्त्वात्मनेपदादिविधानेन चरितार्थ इति भावः ॥ बलीय-  
स्त्वमिति । कर्मवदिति सूत्रस्य परत्वादिति शेषः ॥ वस्तुतः का-

र्तातिदेशेऽप्यतिदिश्यमानकार्याणामुत्पत्तिदेश एव देश इति प्रत्यय-  
लक्षणसूत्रोक्तरीत्या भाष्यं समञ्जसमेव ॥

( १८५९ कर्मकर्तरियग्विधिवार्तिकवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ योगविभागात् सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) योगविभागः करिष्यते—“चिण् भाव-  
कर्मणोः” । ततः “सार्वधातुके यक् भावकर्मणोः” ।  
ततः “कर्तरि” । कर्तरि च यक् भवति, भावकर्मणोः ।

( योगविभागदूषणभाष्यम् )

यथैव तर्हि कर्मणि कर्तरि यक् भवति । एवं  
भावेऽपि कर्तरि यग् प्राप्नोति—

“एति जीवन्तमानन्द नरं वर्षशतादपि” ।

“नास्य किं चिदुज्जति रोग” इति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

द्वितीयो योगविभागः करिष्यते—“चिण् भावे” ।  
ततः “कर्मणि” कर्मणि च चिण् भवतीति । ततः  
“सार्वधातुके यक्” । सार्वधातुके यक् भवति भावे  
कर्मणि च । ततः “कर्तरि” कर्तरि च यग् भवति । कर्म-  
णीत्यनुवर्तते । भाव इति निवृत्तम् ॥ ततः “शप्” ।  
शप् च भवति कर्तरीत्येव । कर्मणीति निवृत्तम् ॥

( यगुपसंख्यानवादिभाष्यम् )

एवमप्युपसंख्यानं कर्तव्यम् ।

( १८६० उपसंख्यानहेतुवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ विप्रतिषेधाद्धि इयनो बली-  
यस्त्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विप्रतिषेधाद्धि इयनो बलीयस्त्वं  
प्राप्नोति । इयनोवकाशः—दीव्यति सीव्यतीति ।  
यकोवकाशः—पच्यते ओदनो देवदत्तेन, पठ्यते  
विद्या देवदत्तेनेति । इहोभयं प्राप्नोति—दीव्यते स्वय-  
मेव सीव्यते स्वयमेवेति । परत्वात् इयन् प्राप्नोति ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये—एवमप्युपसंख्यानं कर्तव्यमिति ।  
कर्मकर्तृर्युपसंख्यानमित्यर्थः ॥ परत्वात् इयन्निति । इयन्न्यकोः स्वरे  
विशेषः ।

( उपसंख्यानवैयर्थ्यभाष्यम् )

ननु चैतदपि योगविभागेनैव सिद्धम् ।

( प्रदीपः ) ननु चैतदिति । सर्वा प्राप्तिर्योगविभागेन  
वाधिष्यत इति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) सर्वा प्राप्तिरिति । बाध्यसामान्यचिन्तयेति भावः ॥

( उपसंख्यानसार्थक्यभाष्यम् )

न सिध्यति । अनन्तरा या प्राप्तिः सा योगवि-  
भागेन शक्या निवारयितुम् ॥ कुत एतत् ? । “अ-

नन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा” इति । परा प्राप्तिरप्रतिषिद्धा तथा इयन् प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) परा प्राप्तिरिति । परत्वाद् बलीयस्त्वा-  
दित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्येऽप्रतिषिद्धेति । अबाधितेऽत्यर्थः ॥

( उपसंख्यानवैयर्थ्यभाष्यम् )

ननु चेयं प्राप्तिः परां प्राप्तिं बाधेत ॥

( प्रदीपः ) ननु चेयमिति । योगविभागप्राप्तिः पूर्व-  
विप्रतिषेधेन बाधिका भविष्यतीत्यर्थः ॥

( उपसंख्यानसार्थक्यभाष्यम् )

नोत्सहते प्रतिषिद्धा सती बाधितुम् ॥

( प्रदीपः ) नोत्सहते इति । न्याय्यविप्रतिषेधाश्रयणस्य  
युक्तत्वाद् दुर्बलो योगविभागप्राप्तिक इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) नोत्सहते प्रतिषिद्धेति । अनन्तरस्येति  
न्यायेन तद्विषयादीनां कृता सती तां बाधितुं नोत्सहते इत्यर्थः । तद्व्यु-  
त्पादयति—न्यायेति । परविप्रतिषेधेत्यर्थः । पूर्वविप्रतिषेधकल्पनेन  
मानमिति भावः ॥

( उपसंख्यानवैयर्थ्यभाष्यम् )

एवं तर्हि शबादेशाः इयन्नादयः करिष्यन्ते । शप्  
च यका बाध्यते । तत्र दिवादिभ्यो यग्विषये शब्देव  
नास्ति कुतः इयन्नादयः ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि शपो ग्रहणं कर्तव्यम् ॥

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । प्रकृतमनुवर्तते ॥ क प्रकृतम् ।  
“कर्तरि शवि”ति ॥

( आदेशत्वानुपपत्तिभाष्यम् )

तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं षष्ठीनिर्दिष्टेन चेदार्थः ॥

( आदेशत्वोपपादकभाष्यम् )

दिवादिभ्यः इत्येषा पञ्चमी शबिति प्रथमायाः  
षष्ठीं प्रकल्पयिष्यति तस्मादित्युत्तरस्येति ॥

( आदेशत्वानुपपत्तिभाष्यम् )

प्रत्ययविधिरयम् । न च प्रत्ययविधौ पञ्चम्यः  
प्रकल्पका भवन्ति ॥

( आदेशत्वोपपादकभाष्यम् )

नायं प्रत्ययविधिः, विहितः प्रत्ययः प्रकृतश्चानु-  
वर्तते ॥

( उपसंख्यानवैयर्थ्यभाष्यम् )

अथ वा भावकर्मणोरित्यननुवृत्त्यैव सिद्धे सत्यनु-  
वृत्तिर्यको भावाय । इह “सार्वधातुके यगि”ति  
अन्तरेण भावकर्मणोरित्यनुवृत्तिं सिद्धम् । सोयमेवं

सिद्धे सति यद्भावकर्मग्रहणमनुवर्तयति तस्येत-  
त्प्रयोजनं कर्मकर्तर्यपि यग् यथा स्यादिति ॥

( प्रदीपः ) इहेति । सार्वधातुके यग् भवतीति सामान्यो-  
क्तावपि कर्तरि शबाद्यपवादविधानाद्भावकर्मणोरेव यग् भवि-  
ष्यतीति भावकर्मानुवृत्तिरधिको यत्न इति कर्मकर्तर्यपि यग्  
भविष्यतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) ननु कर्तर्यपि यक् प्राप्तेः कथं सिद्धमत आह—  
सार्वधात्विति ॥ कर्मकर्तर्यपीति । पच्यते स्वयमेवेत्यादौ शवादी-  
न्बाधित्वेति भावः ॥

( १८६१ योगविभागान्तरवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ कर्तरीति च योगविभागः इयनः  
पूर्वविप्रतिषेधावचनाय ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्तरीति च योगविभागः कर्तव्यः ।  
इयनः पूर्वविप्रतिषेधं मा वोचमिति ।

( प्रदीपः ) अत्रापि व्याख्याने योगविभागः कर्तव्य एवे-  
त्याह—कर्तरीति चेति । अन्यथा भावकर्मानुवृत्तियत्नाच्छप  
एवानन्तरस्य बाधः स्याद् न तु इयन्नादीनाम् । योगविभागेन  
तु तेपि बाध्यन्ते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये पूर्वविप्रतिषेधं मा वोचमिति । अनेन  
पूर्वविप्रतिषेधोऽपूर्ववचनसाध्य इति सूचयति ॥

( उपसंख्यानवैयर्थ्ययुक्त्यन्तरभाष्यम् )

अथ वा कर्मवद्भाववचनसामर्थ्याद्यक् भवि-  
ष्यति ॥

( युक्त्यनुपपत्तिभाष्यम् )

अस्त्यन्यत् कर्मवद्भाववचने प्रयोजनम् । किम् ? ।  
आत्मनेपदं यथा स्यात् ॥

( युक्त्यनुपपत्तिभाष्यम् )

वचनादात्मनेपदं भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) वचनादिति । कर्तरिकर्मव्यतिहार  
इत्यत्र कर्तरीति योगविभागात् । तत्र च कर्मग्रहणानुवर्तनाद-  
न्तरेणाप्यतिदेशमात्मनेपदं भविष्यतीत्यर्थः ॥

( युक्त्यनुपपत्तिभाष्यम् )

चिण् तर्हि यथा स्यात् ॥

( सामर्थ्योपपत्तिभाष्यम् )

चिणपि वचनाद्भवति ॥

( प्रदीपः ) चिणपीति । चिणग्रहणेऽनुवर्तमाने पुनश्चिण-  
ग्रहणमधिकविधानार्थमिति कर्मकर्तर्यपि चिण् भविष्यतीत्यर्थः ॥

( सामर्थ्यानुपपत्तिभाष्यम् )

चिणवद्भावस्तर्हि यथा स्यात् ॥

( सामर्थ्योपपत्तिभाष्यम् )

नैकं प्रयोजनं योगारम्भं प्रयोजयति ॥ तत्र कर्म-  
वद्भाववचनसामर्थ्याद् यक् भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) नैकमिति । अन्यथा स्यात्सिचसीयुडित्यत्रैव कर्मणा तुल्यक्रिये कर्तरीति वाच्यं स्यादित्यर्थः ॥ ६७ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये कर्मवद्भाववचनसामर्थ्यादिति । तत्सामर्थ्यादनन्तरस्येति न्यायो नाश्रीयते किंतु बाध्यसामान्यचिन्तैवेति भावः ॥ ७० ॥

( उपसंह्यानवैयर्थ्ययुक्त्यन्तरभाष्यम् )

अथ वा आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति 'कर्मकर्तारि यग भवति' इति । यदयं "न दुहस्नुनमां यक्चिणौ" इति यक्चिणोः प्रतिषेधं शास्ति ॥ सार्वधातुके ॥ ६७ ॥

( ४२३ इयन्विकल्पविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. ११ )

६८८ यसोऽनुपसर्गात् ॥ ३।१।७१ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अनुपसर्गादिति किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

आयस्यति प्रयस्यति ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

अनुपसर्गादिति शक्यमकर्तुम् ॥

कथमायस्यति प्रयस्यतीति ? ॥

"संयसश्च" इत्येतन्नियमार्थं भविष्यति—"संपूर्वादेव यसः, नान्यपूर्वात्" इति ॥ यसोऽनुपसर्गात् ॥ ७१ ॥

( उद्घोतः ) यसोऽनुप ॥ ७१ ॥ इदं विकल्पेन इयन्विधायकम् ॥ संपूर्वादेव यस इति । सोपसर्गविषयो नियम इति भावः ॥ एतेनैवं नियमे केवलान्न स्यादित्यपास्तम् तदाह—नान्यपूर्वादिति ॥ ७१ ॥

( ४२४ श्रमविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. १२ )

६९५ रुधादिभ्यः श्रम् ॥ ३।१।७८ ॥

( शित्वप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थः शकारः ? ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

सार्वधातुकार्थः । 'शित्सार्वधातुकम्' इति सार्वधातुकसंज्ञा । 'सार्वधातुकमपिद्' इति ङित्वम् । ङीतीति गुणप्रतिषेधो यथा स्याद्-भिनत्ति छिनत्तीति ॥

( प्रदीपः ) रुधादि ॥ ७८ ॥ भिनत्तीति । भिषब्दस्याङ्गसंज्ञानिवन्धनो गुणो मा भूदिति शित्वं कृतमित्यर्थः ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । सार्वधातुकार्थधातुकयोरङ्गस्य गुण उच्यते । यस्माच्च प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्यये परतोऽङ्गसंज्ञं भवति । यस्माच्च प्रत्ययविधिः न तत् प्रत्यये परतः । यच्च प्रत्यये परतो न तस्मात्प्रत्ययविधिः ॥

( प्रदीपः ) यस्माच्चेति । भिदशब्दादित्यर्थः । तस्यैव रुधादित्वात् न तु तदवयवाद् भिषब्दात् प्रत्ययविधानम् ॥

( प्रयोजनान्तरभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—आर्थधातुकसंज्ञा मा भूदिति । किं च स्यात् ? । बलादिलक्षण इदं प्रसज्येत ॥

( प्रयोजनान्तरनिरासभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । बलादेरार्थधातुकस्याङ्गस्येदुच्यते । यस्माच्च प्रत्ययविधिः तदादिप्रत्यये परतोऽङ्गसंज्ञं भवति । यस्माच्चात्र प्रत्ययविधिः न तत् प्रत्यये परतः । यच्च प्रत्यये परतो न तस्मात्प्रत्ययविधिः ।

( उद्घोतः ) रुधादिभ्यः ॥ ७८ ॥ भाष्ये आर्थधातुकस्याङ्गस्येति अङ्गसंज्ञानिमित्तस्यार्थधातुकस्येत्यर्थः ॥

( उत्तरभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( १८६२ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ श्रमि शित्करणं प्वादिह्रस्वार्थम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) श्रमि शित्करणं क्रियते । प्वादिह्रस्वार्थम् । प्वादीनां शिति ह्रस्वत्वं यथा स्यात्—पृणति मृणतीति ॥

( प्रदीपः ) पृणतीति । पृ मृ इति ऋयादिषु पठितौ ताभ्यां व्यत्ययेन श्रमप्रत्ययः ॥

( उद्घोतः ) पृभ्योः ऋयादित्वात्तयोः श्रम् दुर्लभोऽत आह—व्यत्ययेनेति ॥

( १८६३ समाधाननिरासवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वा धात्वन्त्यत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा कर्तव्यम् । किं कारणम् । धात्वन्त्यत्वात् । धात्वन्तरे पृणिमृणी ॥

( प्रदीपः ) धात्वन्तरमिति । तौदादिकावित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यत्तर्हि न धात्वन्तरं, 'यत्र भूम्यां वृणसे' ॥

( प्रदीपः ) वृणस इति । वृवरणे इति ऋयादिस्तस्माद्व्यत्ययेन श्रमथासौ ॥

( उद्घोतः ) इति ऋयादिरिति । क्रैय्यादिक इति वा पठः ॥

१ एवकारेण बाध्यविशेषचिन्ता निवर्त्यते । ( र. ना. )

२ नियमस्य विशेषविषयत्वेन । ( र. ना. )

३ ऋयादिभिर्नो धातु इत्यर्थः । ( र. ना. )

४ ऋयादिशब्दस्य लक्षणया क्रैयादिकपरत्वसम्भवे पाठान्तरकल्पनमनुचितमिति वचम् । ( र. ना. )

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

नैष श्रम् । श्रं एवैतद्भ्रस्वत्वम् ॥

( प्रदीपः ) श्र इति । छान्दसमिति भावः ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

यदि श्रो ह्रस्वत्वम्, खरो न सिध्यति—वृणसे=  
'अदुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तं भवतीति' एष  
खरो न प्राप्नोति । तस्माच्छ्रमेः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

यदि श्रम् "श्रसोरलोपः" प्रसज्येत ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

उपधाया इति वर्तते । अनुपधात्वान्न भविष्यति ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

न शक्यमुपधाया इति विज्ञातुम् । इह हि दोषः  
स्यात् । अङ्कः अङ्गन्तीति । तस्माच्छ्र एवैतद्  
ह्रस्वत्वम् ॥( प्रदीपः ) अङ्क इति । श्रान्नलोप इत्यस्यासिद्ध-  
वदत्राभादित्यसिद्धत्वादकारस्योपधात्वाभावः ॥( उद्ध्योतः ) ननु श्रान्नलोप उपधात्वं सुलभमत आह—  
असिद्धत्वादिति ॥

( स्वरानुपपत्तिभाष्यम् )

यद्येवम् । स्वरः कथम् ।

( प्रदीपः ) प्रमिणीमीति । मीनो मीनातेर्निगम  
इति ह्रस्वः । मिपोऽपित्वेन ङित्वे सतीत्वम् ॥( उद्ध्योतः ) भाष्ये पित्वं वक्तव्यमिति । एवं च तेनानुदात्तत्वं  
सिद्धमित्यर्थः ॥

( १८६४ खरोपपादकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥\*॥ बहुलं पित्सार्वधातुकं छन्दसि ॥\*॥

( भाष्यम् ) सार्वधातुकस्य छन्दसि बहुलं पित्वं व-  
क्तव्यम् । पितश्चैवापित्वं दृश्यते । अपितश्च पित्वम् ।  
पितस्तावदपित्वम्—“मातरं प्रमिणीमि जनि-  
त्रीम्” । अपितश्च पित्वम्—“शृणोत ग्रावाणः” ।

( गौरवभाष्यम् )

तत्तर्हि श्रो ह्रस्वत्वं वक्तव्यम् ।

( इष्टापत्तिभाष्यम् )

अवश्यं छन्दसि ह्रस्वत्वं वक्तव्यम् । उपगायन्तु  
मां पत्नयो गर्भिण्यो युवतय इत्येवमर्थम् ।

( प्रयोजनान्तरभाष्यम् )

विशेषणार्थं तर्हि ॥ क विशेषणार्थेनार्थः ॥ “श्रा-

न्नलोप” इति । ‘नान्नलोप’ इतीयत्युच्यमाने यज्ञानां  
यज्ञानामित्यत्रापि प्रसज्येत ॥

( प्रयोजनान्तरबाधकभाष्यम् )

दीर्घत्वे कृते न भविष्यति ॥

( प्रयोजनान्तरसाधकभाष्यम् )

इदमिह संप्रधार्य दीर्घत्वं क्रियतां नान्नलोप  
इति । किमत्र कर्तव्यम्? परत्वान्नलोपः स्यात् ।  
तस्माच्च शकारः कर्तव्यः ॥( प्रदीपः ) परत्वादिति । यत्तु सुपि चेति दीर्घत्वम्,  
तत् सन्निपातलक्षणपरिभाषावशाच्च प्रवर्तते । यत्वन्यत्रोक्तं  
नामि दीर्घात्परत्वात् सुपि चेति भवितव्यमिति तत्सन्नि-  
पातपरिभाषाया अनित्यत्वाश्रयेणेति न विरोधः ॥( उद्ध्योतः ) अनित्यत्वाश्रयेणेति । ननु तत्सूत्रविषये  
तत्परिभाषायाः कष्टायेत्यादि निर्देशैरनित्यत्वावश्यकत्वेन नामविषये-  
ऽपि तत्त्वमाश्रित्य शः प्रत्याख्येय इति चेन्न । नलोपविधायकेऽङ्गावयव-  
श्रमः परस्य नस्य लोप इत्यर्थेऽनैमित्तिकतयान्तरङ्गत्वेन सुपिचेत्यस्य  
परनिमित्तकतया बहिरङ्गत्वेन तस्यासिद्धतया नलोपप्राप्तेरित्याशयात् ॥  
भाष्ये परत्वादित्यन्तरङ्गत्वस्याप्युपलक्षणम् । किं च सुपि चेत्यतो  
नामीति नित्यं विशेषाभावेऽपि शास्त्रप्राप्तेः सत्त्वात् ॥ ध्वनितं चेद-  
मायादय इति सूत्रे । इको झल्लितश्च च भाष्ये इति वदन्ति ॥७८॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ क्रियमाणेऽपि शकारे इह कस्मान्न भवति?  
विश्रानां प्रश्नानामिति ।

( समाधानभाष्यम् )

लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवेति ॥ रुधा-  
दिभ्यः ॥ ७८ ॥( प्रदीपः ) लक्षणेति । लक्षणिकस्यानुमीयमानरूपत्वात्  
प्रतिपदोक्तस्य तु प्रत्यक्षत्वादिति भावः ॥ ७८ ॥

( ४२५ तनादिगणे उविकरणविधिसूत्रम् ॥ ३११४ आ. १३ )

६९६ तनादिकृञ्भ्य उः ॥ ३११७९ ॥

( कृञ्ग्रहणप्रत्याख्यानधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं करोतेः पृथग्रहणं क्रियते, न ‘तनादिभ्यः’  
इत्येवोच्येत? ।

( समाधानभाष्यम् )

अन्यानि तनोत्यादिकार्याणि मा भूवन्निति ।  
कानि? । अनुनासिकलोपादीनि ॥

१ श्राप्रत्ययस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

२ “नामि” इति दीर्घत्वे कृते ‘नात्’ इति व्यपदेशाभावाच्च भविष्यति”  
इति पदमञ्जरी ॥३ ‘अतोऽम्’ इति सूत्रभाष्यप्रामाण्येन ‘कष्टाय’ इत्यस्य सामान्यापेक्षया ‘सुपि  
च’ इति दीर्घविषय एव सन्निपातपरिभाषाया अनित्यत्वाश्रयेण पूर्व दीर्घमवृत्तावपि  
तस्य पूर्वसाद्विधौ स्थानिवत्त्वाच्च शब्द एवायमिति नलोपः स्यादेवेति पदमञ्जरी ॥

(समाधानबाधकभाष्यम्)

दैवैरक्ताः किंशुकाः । अनुनासिकाभावादेवानु-  
नासिकलोपो न भविष्यति ॥

(प्रयोजनान्तरभाष्यम्-)

इदं तर्हि तनादिकार्यं मा भूत् “तनादिभ्यस्तथा-  
सोः” इति ॥

(प्रयोजनान्तरनिरासभाष्यम्)

ननु च भवत्येवात्र “ह्रस्वादङ्गादि”ति ॥

(प्रयोजनान्तरसाधकभाष्यम्)

तेनैव यथा स्याद्, अनेन मा भूदिति ॥

(उद्घोतः) तनादिकृ ॥ ७९ ॥ भाष्ये अनेन मा भूदिति ।  
अन्यथा तस्यासिद्धत्वादनेनैव स्यादिति भावः ॥

(प्रयोजनान्तरबाधकभाष्यम्)

कः पुनरत्र विशेषः-तेन वा सति, अनेन वा ? ।

(प्रयोजनान्तरसाधकभाष्यम्)

तेन सति सिजलोपस्यासिद्धत्वाच्चिण्वद्भावः सि-  
द्धो भवति । अनेन पुनः सति चिण्वद्भावो न स्यात् ॥

(प्रयोजनान्तरबाधकभाष्यम्)

अनेनापि सति सिद्धश्चिण्वद्भावः । कथम् ? । वि-  
भाषा लुक् । यदा न लुक्, तदा सिजलोपः । तत्र  
सिजलोपस्यासिद्धत्वाच्चिण्वद्भावो वा भविष्यति ॥

(प्रदीपः) तनादि ॥ ७९ ॥ विभाषालुगिति ।

ननु येन नाप्राप्तिन्यायेन लुका ह्रस्वादङ्गादिति लोपो  
बाध्यत इति कथं लुगभावपक्षे लोपः स्यात् । नैष दोषः । यत्र  
पक्षे लुक् प्रवर्तते तत्रासौ लोपस्य बाधकः । न त्वप्रवर्त-  
मानः ॥ ७९ ॥

(उद्घोतः) ननु येननेति । न च ह्रस्वादङ्गादित्यस्या-

सिद्धत्वात्कथं तेन येननाप्राप्तिन्यायः । तनादिपाठस्तु विकरणार्थः  
स्यात् विकल्पोऽपि तनादौ चरितार्थ इति वाच्यम् । असिद्धत्वेपि  
यदिदं न स्यात्तदा स्यादेव ह्रस्वादङ्गादित्यस्य प्राप्तिरित्याशयात् ॥  
यदुत्सर्गप्रवृत्तौ विकल्पवैयर्थ्यम्, स उत्सर्गोऽपवादाभावेऽपि न  
प्रवर्ततेऽन्यस्तु प्रवर्तते एवेत्युत्तराशयः ॥

तनादित्वात्कृञः सिद्धं, सिजलोपे च न दुष्यति ।

चिण्वद्भावे न दोषः स्यात्, सोपि प्रोक्तो विभा-  
षया ॥ तनादिकृञ्भ्यः ॥ ७९ ॥

(उद्घोतः) भाष्ये सोपि प्रोक्त इति । लुक् चिण्वद्भावश्चेत्यर्थः ॥

एवं च सूत्रे कृञ्ग्रहणं प्रत्याख्यातम् । एतेन कृञ्ग्रहणं गणकार्यानि-  
त्यत्वज्ञापनार्थम् । तेन न विश्वसेदित्यादि सिद्धिरित्यपास्तम् ॥  
न विश्वसेदित्याद्यसाध्वेव ॥ ७९ ॥

(४२६ उविकरणविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. १४ )

७९७ धिन्विकृण्वयोरच ॥ ३।१।८७ ॥

(अत्वविधिप्रयोजनाधिकरणम्)

(आक्षेपभाष्यम्)

कायमकारः श्रूयते ? ।

(उत्तरभाष्यम्)

न कचिच्छ्रूयते । लोपोस्य भविष्यति=“अतो  
लोप आर्धधातुके” इति ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

यदि न कचिच्छ्रूयते किमर्थमयमुच्यते । न ‘लोपः’  
इत्येवोच्येत ॥

(आक्षेपबाधकभाष्यम्)

नैवं शक्यम् । लोपे सति गुणः प्रसज्येत । अतः  
पुनः सति अकारलोपस्य स्थानिवद्भावाद् गुणो न  
भविष्यति ॥

(आक्षेपसाधकभाष्यम्)

ननु च लोपेऽपि सति “न धातुलोप आर्धधा-  
तुके” इति प्रतिषेधो भविष्यति ॥(उद्घोतः) धिन्विकृण्वयोः ॥ ८० ॥ भाष्ये ननु च  
लोपे सति न धात्विति । समुच्चयविषये एकसमभिव्याहृतस्याप-  
रसमभिव्याहृतार्थाधीनत्वप्रतीतेरनुभवसिद्धतया द्विर्वचनेऽचीति-  
वत्तद्भावभावितामात्रेणाधेधातुकनिमित्तो लोपस्तद्भावभाविता च  
समकालोत्पत्तावपि अन्वयव्यतिरेकाभ्यां संनियोगाद्विधानां सहप्रवृत्ते-  
र्निवृत्तैवेति भावः ॥

(आक्षेपबाधकभाष्यम्)

आर्धधातुकनिमित्ते लोपे स प्रतिषेधः । न चैष  
आर्धधातुकनिमित्तो लोपः ॥ अपि च प्रत्याख्यायते  
खल्वपि स योगः । तस्मिन्प्रत्याख्याते गुणः स्या-  
देव । तस्मादत्वं वक्तव्यम् ।(प्रदीपः) धिन्वि ॥ ८० ॥ आर्धधातुकनिमित्त  
इति । धातुलोप इति बहुव्रीह्याश्रयणादिति भावः ॥ न चैष  
इति । सन्नियोगादिष्टत्वाच्चिन्मित्तनिमित्तिभावाऽप्रसङ्गः ॥(उद्घोतः) सन्नियोगेति । ननु तादृशविषये परनिमित्तत्वा-  
भावेऽपि केवलनिमित्तत्वाभावे मानाभावः । जीरदानोरुदाहरणत्वमिति  
वदतो वाक्यकारस्य तदभावभावितामात्रेणैव निमित्तत्वनिवेशस्येष्ट-  
त्वाच्चेति चेन्न । पूर्वकालवतिबुद्ध्या विषयीकृतस्यैव निमित्तत्वमित्या-  
शयात् ॥ भाष्ये अपि च प्रत्याख्यायत इति । अनेन सूत्रमता-  
पेक्षया प्रत्याख्यानवादिमतं प्रबलमिति ध्वनितम् ॥ पतन्मूलकमेव  
पठ्यते यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यमिति ॥ ८० ॥१ दैवरक्ता इति । किंशुकेषु रक्तत्वं न मनुष्ययत्नसाध्यम् । किंतु दैवकृत-  
मेव सारसिकमेव यथा तथैव कुनि अनुनासिकश्रवणाभावस्य स्वतः सिद्धत्वेनैव  
न लोपापेक्षाऽनुनासिकश्रवणाभावायेति भावः ॥

२ ‘ह्रस्वादङ्गात्’ इत्यस्य ॥

३ ‘तनादिभ्यस्तथासोः’ इत्यनेनेत्यर्थः ॥

४ ‘तनादिभ्यस्तथासोः’ इति ॥

( नकारोच्चारणप्रत्याख्यानाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ किमर्थं नुमनुषक्तयोर्ध्विक्कृण्वयोर्ग्रहणं क्रियते, न 'ध्विक्कृण्वयोः' इत्येवोच्येत ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

'ध्विक्कृण्वयोः' इतीयत्युच्यमाने अत्वे कृते अनिष्टे देशे नुम् प्रसज्येत ॥

( प्रदीपः ) अत्वे कृत इति । अकारात्परः स्यादित्यर्थः ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

इदमिह संप्रधार्यम्—नुम् क्रियताम्, अत्वमिति । किमत्र कर्तव्यम् ? परत्वाच्चुमागमः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

अन्तरङ्गमत्वम् । कान्तरङ्गता ? । प्रत्ययोत्पत्ति-संनियोगेनात्वमुच्यते । उत्पन्ने प्रत्यये प्रकृतिप्रत्यया-वाश्रित्याङ्गस्य नुमागमः ॥

( प्रदीपः ) उत्पन्ने प्रत्यय इति । नुम्विधावङ्गाधिका-रादिति भावः ॥ ८० ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

नुमप्यन्तरङ्गः । कथम् ? । वक्ष्यत्येतत् \*नुम्विधा-वुपदेशिवद्वचनं प्रत्ययविध्यर्थम्\* इति । उभयोर-न्तरङ्गयोः परत्वाच्चुमागमः । तस्माद् 'ध्विक्कृण्वो-रिति' वक्तव्यम् ॥ ध्विक्कृण्वयोः ॥ ८० ॥

( ४२७ श्राविकरणस्य शानजादेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ४ आ. १५ )

७०० हलः श्रः शानज्ज्ञौ ॥ ३ । १ । ८३ ॥

( शानचि शकारप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थः शकारः ? ।

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

'शित्सार्वधातुकम्' इति सार्वधातुकसंज्ञा, 'सार्वधातुकमपिद्' इति ङित्वम् 'ङिति' इति गुण-प्रतिषेधो यथास्याद्—कुषाण पुषाणेति ॥

( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

१ एतद्वाच्याक्षरस्यारस्येन 'बहुपेक्षे संज्ञापेक्षे च बहिरङ्गत्वं स्फुटमेव लभ्यते इति 'संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वस्य शास्त्रेऽनाश्रयणात्' इति नागेशोक्त्यादृक् तादृक् सुधीर्भविष्यात् ॥

२ काशीस्थपण्डितैस्तु 'ज्ञापकार्थम्' इति मुद्रितम् ॥

३ आशङ्क्यां लिङ् अत एवेदं भाष्यं शङ्कापरत्वेनोत्थापितं नागेशेन । ( र. ना. )

( १८६५ शानचि शकारवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ श्राविकारस्य शित्करणानर्थक्यं स्थानिवत्त्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) श्राविकारस्य शित्करणमनर्थकम् । किं कारणम् । स्थानिवत्त्वात् । शितोयमादेशः स्थानिवद्भावात् शिञ्जविष्यति ॥

( १८६६ शानचि शकारस्य प्रयोजनवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थवत्तु ज्ञापकं सार्वधातुकादेशे अनुबन्धास्थानिवत्त्वस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अर्थवत्तु श्राविकारस्य शित्करणम् । कोर्थः ? । ज्ञापनार्थः । किं ज्ञाप्यते ? । एतज् ज्ञाप-यत्याचार्यः—'सार्वधातुकादेशे अनुबन्धा न स्थानि-वद्भवन्ति' इति ॥

( उद्धोतः ) हलः श्रः शा ॥ ८३ ॥ भाष्ये ज्ञापनार्थ इति । ज्ञापनरूपोर्थः प्रयोजनमित्यर्थः ॥

( प्रयोजनप्रश्नभाष्यम् ॥ )

किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ? ।

( १८६७ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ प्रयोजनं हि तातडोरपित्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हेः पित्वं न प्रतिषेध्यम् । पितोयमा-देशः स्थानिवद्भावात्पित्स्यात् । 'सार्वधातुकादेशे अनुबन्धान स्थानिवद्भवन्तीति नायं पिङ्गविष्यति ॥

तातडि च ङकारो नोच्चार्यो भवति । पितोय-मादेशः स्थानिवद्भावात्पित् स्यात् । 'सार्वधातुका-देशे अनुबन्धा न स्थानिवद्भवन्तीति नायं पिङ्ग-विष्यति' ॥

( उद्धोतः ) हेः पित्वं नेति । अपिङ्गहणं न कार्यमित्यर्थः । शङ्कते—पितोऽयमिति ॥ उत्तरयति—सार्वधातुकादेश इति ।

( १८६८ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ तबादिषु चाङित्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तबादिषु च ङित्वं न प्रतिषेध्यम् । शृणोत प्रावाणः । ङित इमे आदेशा स्थानिवद्भा-वान्ङितः स्युः । सार्वधातुकादेशेनुबन्धा न स्थानि-वद्भवन्तीति नेमे ङितो भविष्यन्ति ॥

( प्रदीपः ) हलः श्रः शा ॥ ८३ ॥ तबादिष्विति ।

४ 'ज्ञापनफलं प्रदर्शयन् ज्ञापितवचनाभावे प्राप्तामापत्तिं दर्शयति—' इत्येवो-चितम् ॥ इति दाधिमथाः ॥

५ 'ज्ञापितेन वचनेन तामापत्तिं परिहरति—' इत्येवोचितम् ॥ इति तु दाधिमथाः ॥



तस्मिन्तन्मथनाश्चेति शृणोतेत्येवमादौ ये तिङां जितामादेशा विधीयन्ते ते तदादयः ।

( उद्ध्योतः ) तदादिषु च डित्वं न प्रतिषेध्यमिति भाष्ये डित्वप्रतिषेधाय पित्वं न कार्यमिति भावः ॥ तदादिष्विति निर्धारणे सप्तमी ॥ न च स्थानिवत्त्वप्रयुक्तडित्ववारणेऽपि स्थानिवद्भावेन सार्व-धातुकत्वात्सार्वधातुकमपिदिति डित्वप्रतिषेधाय पित्वमावश्यकमिति वाच्यम् । एतदाशयेनेव क्रियन्ते न्यास एवेति वक्ष्यत इत्यदोषात् । हेरगिस्त्वमनुदास्यतेः स्थान आन्तरतन्मयात्प्राप्तस्यानुदात्तहेरवारणार्थ-मावश्यकमिति तातडोऽपि डित्वमन्यादेशार्थमावश्यकमिति तद्भावः ॥

( १८६९ ज्ञापनदूषणवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ तस्य दोषो मपि आदेशे पिद-  
भावः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्यैतस्य लक्षणस्य दोषो मपि आ-देशे पितोऽभावः । अस्मिन्वमकरवम् । पितोयमा-देशः स्थानिवद्भावात् पिङ्गवति । 'सार्वधातुकादेशे अनुबन्धा न स्थानिवद्भवन्तीति नायं पित्स्यात् ॥ अत्यल्पमिदमुच्यते—'मपि आदेशः' इति । 'तिप्-सिम्मिपामादेशा इति वक्तव्यम्' । वेद वेत्थ ॥

( १८७० दूषणवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ विदेर्वसोः शित्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विदेरुत्तरस्य वसोः शित्वं वक्तव्यम् । शितोयमादेशः स्थानिवद्भावाच्छिङ्गवति । 'सार्व-धातुकादेशेऽनुबन्धा न स्थानिवद्भवन्तीति नायं शित्स्यात् ॥

( १८७१ दूषणपरिहारवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ कित्करणाद्वा सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा अवश्यमत्र सामान्यग्रहणा-विधातार्थः ककारोऽनुबन्धः कर्तव्यः । क सामान्य-ग्रहणाविधातार्थेनार्थः ? । "वसोः संप्रसारणम्" इति । तेनैव यत्नेन गुणो न भविष्यति ॥ अस्य ज्ञाप-कस्य सन्ति दोषाः, सन्ति च प्रयोजनानि ॥ समा दोषा भूयांसो वा । तस्मान्नार्थोनेन ज्ञापकेन ।

( उद्ध्योतः ) अवश्यमत्रेति । उकार इत्संज्ञकत्वेपि सामान्य-ग्रहणार्थो वा तदनुबन्धकपरिभाषाप्रवृत्त्यर्थो वेति सन्देहः स्यादि-ति ॥ तस्मान्नार्थोऽनेनेति । न च वक्ष्यमाणेति डीवापत्तिर्लडा-देशत्वेन टित्वादिति वाच्यम् । सत्यभिधाने तत्रार्जादिपाठाद्व्याप्-सिद्धेः ॥ एतेनेदं शित्वं क्वचित्स्थानिवत्त्वेनानुबन्धकार्याभावस्य ज्ञापकमित्यपास्तम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं यानि प्रयोजनानि ।

( समाधानभाष्यम् )

तानि क्रियन्ते न्यास एव ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

एवमपि भवेत् पित्करणसामर्थ्यात् पित्कृतं स्यात् डित्करणसामर्थ्याद् डित्कृतम् । यत्तु खलु पिति डित्कृतं प्राप्नोति डिति च पित्कृतम् । केन तन्न स्यात् । तस्माद्वक्तव्यं पिङ्ग डित्भवति डित्च पिङ्ग भवतीति ।

( प्रदीपः ) एवमपीति । पित्वनिमित्तमनुदात्तत्वं भवतु ब्रूताद्भवानितीडागमश्च डित्वनिमित्तश्च गुणवृद्धिप्रतिषेध इत्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) भाष्य एवमपीत्यस्य केन तन्न स्यादित्यनेना-न्वयः ॥ पिति डित्कृतमिति । अवेदित्यादौ लङ्स्तिपः पित्त्वाद्-नुदात्तत्वमस्तु । स्थानिवद्भावेन डित्त्वाद्गुणनिषेधश्च प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ आदेशविधौ विशिष्टस्थाननुवादात् डित्त्वाद्यतिदेशेऽनलिवधाविति निषेधाप्रवृत्तेः । डिति पित्कृतमित्यस्योदाहरणमाह—ब्रूतादिति । अत्रानुदात्तत्वं ब्रुव ईडिति ईडागमश्चापाद्यौ ॥ ८३ ॥

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । एवं वक्ष्यामि—'सार्वधातुकं डि-ङ्गवति, पिङ्ग' एवं तावत्पितो डित्वं प्रतिषिद्धम् । ततः—'असंयोगाद्दिङ् किङ्गवति डित्च पिङ्ग भव-तीति । एवं डितः पित्वं प्रतिषिद्धम् ॥ हलः श्रः ॥ ८३ ॥

( प्रदीपः ) पिङ्गेति । अपिदिति प्रसज्यप्रतिषेध आश्री-यते । पिङ्गवन् डित् भवतीत्यर्थः । योगविभागाच्च यावती सार्वधातुकस्य डित्वप्राप्तिः सर्वासौ निषिध्यते ॥ असंयोगा-दिति । अत्र डिदपिदिति वर्तते । तेन किङ्गवन् पिङ्ग भवतीति तातडः स्थानिवद्भावप्राप्तं पित्वं निषिध्यते ॥ ८३ ॥

( ४२८ आत्रिकरणस्य शायजादेशविधिसूत्रम् ॥ ३११४ आ. १६ )

७०१ छन्दसि शायजपि ॥ ३११८४ ॥

( १८७२ अहौशायविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ शायच् छन्दसि सर्वत्र ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) शायच् छन्दसि सर्वत्रेति वक्तव्यम् ॥ क सर्वत्र ? । हौ चाहौ च किं प्रयोजनम् ? । महीर-स्कभायद्, यो अस्कभायद् उद्गृभायत उन्मथा-यतेत्येवमर्थम् ॥ छन्दसि शायजपि ॥ ८४ ॥

( प्रदीपः ) छन्दसि ॥ ८४ ॥ अस्कभायदिति । स्कन्धुः सौत्रो धातुः, लङ् तिप्, श्रः शायच्, अडागमः ॥ ८४ ॥

( उद्ध्योतः ) छन्दसि शाय ॥ ८४ ॥ अडागम इति । लुङ् लङ् लङ् इति ॥ ८४ ॥

( ४२९ छन्दसि व्यत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।४ आ. १७ )

७०२ व्यत्ययो बहुलम् ॥ ३।१।८५ ॥

( १८७३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ योगविभागः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) योगविभागः कर्तव्यः—“व्यत्ययः” । व्यत्ययो भवति स्यादीनामिति । आण्डा शुष्णस्य भेदति । भिनत्तीत्येवं प्राप्ते । स च न मरति । न म्रियत इति प्राप्ते ॥ ततो “बहुलम्” । बहुलं छन्दसि विषये सर्वे विधयो भवन्तीति । सुपां व्यत्ययः, तिङां व्यत्ययः, वर्णव्यत्ययः, लिङ्गव्यत्ययः, पुरुषव्यत्ययः, कालव्यत्ययः, आत्मनेपदव्यत्ययः, परस्मैपदव्यत्यय इति ॥ सुपां व्यत्ययः—युक्ता मातासीद्भुरि दक्षिणायाः । दक्षिणायामिति प्राप्ते ॥ तिङां व्यत्ययः—चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । तक्षन्तीति प्राप्ते ॥ वर्णव्यत्ययः—त्रिष्टुभोजः शुभितमुग्रवीरम् । शुभितमिति प्राप्ते ॥ लिङ्गव्यत्ययः—मधोस्तृप्ता इवासते । मधुन इति प्राप्ते ॥ पुरुषव्यत्ययः—अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः । वियूयादिति प्राप्ते ॥ कालव्यत्ययः—श्वोशीनाधास्यमानेन । श्वः सोमेन यक्ष्यमाणेन । आधातायष्टेति प्राप्ते ॥ आत्मनेपदव्यत्ययः—ब्रह्मचारिणमिच्छते । इच्छतीति प्राप्ते ॥ परस्मैपदव्यत्ययः—प्रतीपमन्य ऊर्मिर्मुध्यति । मुध्यत इति प्राप्ते ॥

सुप्तिङ्पुत्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ।

व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृद्देवां सोपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥ व्यत्ययो ॥ ८५ ॥

( उद्घोतः ) व्यत्ययो ॥ ८५ ॥ भाष्ये स्यादीनामिति । स्यतासिप्रभृतीनामित्यर्थः ॥ मधुन इति प्राप्ते इति । अमृतक्षीरान्यतरवान्नि नित्यनपुंसकाभिप्रायमिदम् ॥ उपग्रहः । लादेशव्यङ्ग्यं स्वार्थत्वादि । इह तत्प्रतीतिनिमित्ते परस्मैपदात्मनेपदे उपग्रहशब्देन लक्षणयोच्यते ॥ ८५ ॥

( ४३० अङ्गविधिसूत्रम् ॥ ३।१।४ आ. १८ )

७०३ लिङ्ग्याशिष्यङ् ॥ ३।१।८६ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अयमाशिषि अङ्ग विधीयते । तस्य किं प्रयोजनम् ? ।

१ एतदादिर्ग्रन्थः “षष्ठीयुक्तछन्दसि वा” ( १।१।९ ) गृहभाष्येपि समुपलभ्यते । तस्मात् तत्रत्य प्रदीपोद्घोतौ द्रष्टव्यौ ॥

२ यद्यपि ‘कर्मवत्’ इत्यमिसूत्रे भाष्यकृता ‘क्रियते न्यास एव “लिङ्ग्याशिष्यङ्” इति “द्विलकारको निर्देशः” इति वक्ष्यमाणत्वेन लकारद्वयवानेव

( १८७४ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ आशिष्यङः प्रयोजनं स्यागागमिवचिविदयः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्या—उपस्थेयं वृषभं तुत्रियाणाम् । स्या ॥ गा—अञ्जसा सत्यमुपगोयम् । गा ॥ गमि—यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयम् । गमि ॥ वचि—मन्त्रं वोचेमाश्रये । वचि ॥ विदि—विदेयमेतां मनसि प्रविष्टाम् । विदि ॥

( उद्घोतः ) लिङ्ग्याशि ॥ ८६ ॥ गासोरङ्गभावे अतो येय इति न स्यात् ॥

( १८७५ अङ्गविधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ शक्तिरुद्घोश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) शक्तिरुद्घोश्चेति वक्तव्यम् । शक्येमात्वा समिधं [ सौधया धियः ] । अस्रवन्ती मारुहेमास्वस्तये ।

( १८७६ अङ्गविधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ दृशेरक् पितरं च दृशेयं मातरं च दृशेयम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दृशेरक्वक्तव्यः । पितरं च दृशेयं मातरं च दृशेयमित्येवमर्थम् ॥

( प्रदीपः ) लिङ्ग्याशि ॥ ८६ ॥ दृशेरगिति । अङ्गिगुणः स्यात् ॥

( उद्घोतः ) अङ्गिगुण इति । ऋदृशोऽङ्गीत्यनेनेति भावः ॥

( आडागमविध्याक्षेपभाष्यम् )

इह उपस्थेयामेत्यत्र आडपि वक्तव्यः । न ह्यङ्गैव सिध्यति ॥

( प्रदीपः ) उपस्थेयामेति । स्या लिङ् मस् यासुद् अङ् आकारलोपः सलोपश्च । अतो येय इति इय् । मस्याडागमः कार्योन्यथा यलोपे सति उपस्थेमेति स्यात् ॥ ८६ ॥

इति श्रीमदुपाध्यायजैयटपुत्रकैयटविरचितभाष्यप्रदीपे

तृतीयस्याध्यायस्य प्रथमपादे चतुर्थमाह्निकम् ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये आडपीति । मस्येति शेषः ॥ आकारलोप इति । अङ्माश्रित्यातो लोप इति चेलालोपः ॥

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यः । सार्वधातुकत्वात् सलोपः, आर्ध-

पाठः सिद्धान्तिसंमतः । तथापि पूर्वपक्षोत्थानाय पूर्वपक्षिसंमतैकलकारपाठं निर्दिशति ॥

३ लिखितपुस्तकेषु नोपलभ्यते ।

४ ‘लिङ्गः सलोपोऽनन्त्यस्य’ इत्यनेनेति शेषः ॥

धातुकत्वादेत्वम् । तत्रोभयलिङ्गत्वात् सिद्धम् ॥  
लिङ्ग्याशिष्यङ् ॥ ८६ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याक-  
रणमहाभाष्ये तृतीयाध्यायस्य प्रथमे  
पादे चतुर्थमाह्निकम् ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये आर्धधातुकत्वादेत्वमिति । वान्यस्य  
संयोगादेरित्यनेन ॥ अङ्भावोऽपि छान्दसत्वादिति बोध्यम् ॥ उभय-  
लिङ्गत्वादिति । छन्दस्युभयधेयनेनोभयसंज्ञकत्वादित्यर्थः ॥ ८६ ॥  
इति श्रीकालोपनामकशिवभट्टसुतसतीगर्भजनागेशभट्टविरचिते भा-  
ष्यप्रदीपोद्ध्योते तृतीयाध्यायस्य प्रथमपादे चतुर्थमाह्निकम् ॥

( ४३१ कर्मवद्भावसूत्रम् ॥ ३ । १ । ५ आ. १ सू. )

७०४ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः

॥ ३ । १ । ८७ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

वत्करणं किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) कर्मवत्कर्मणा ॥ ८७ ॥ वत्करणमिति ।  
विनापि वतिना परार्थे शब्दप्रयोगात्तदर्थलाभ इति भावः ॥

( उद्द्योतः ) कर्मवत् ॥ ८७ ॥ तेन तुल्यमिति वतिः ।  
उपमेये प्रथमादर्शनात् ॥ कर्मणेति परिभाषिकस्य कर्मणो ग्रहणं  
कृत्रिमत्वात्सामर्थ्याच्च ॥ तुल्यक्रिय इत्येतावतैव क्रियया तुल्यत्वस्य  
लाभात् ॥ हि अक्रियया क्रियातुल्या भवति ॥

( समाधानभाष्यम् )

स्वाश्रयमपि यथा स्याद् भिद्यते कुसूलेनेति ।  
अकर्मकाणां भावे लो यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) स्वाश्रयमपीति । असति वत्करणे कर्तुः  
कर्मसंज्ञा विज्ञायेत । ततश्चाकर्मकव्यपदेशाभावाद्भावे लो न  
स्यात् । वत्करणे तु सति कर्मकार्याणि कर्तुरतिदिश्यन्ते न तु  
स्वाश्रयं कार्यं निवार्यत इति भावे लः सिद्धो भवतीति लादेशेन  
कर्तुरनभिधानात् तृतीया भवति भिद्यते कुसूलेनेति । न चास-  
त्यपि वत्करणे लान्तस्य कर्तेति वक्ष्यमाणेन भावे लः सिध्यति ।  
यस्माद्भावे लविधिर्लान्तस्य कार्यमिति स्वाश्रयनिवारणं स्यादेव ॥

( उद्द्योतः ) ननु वल्यर्थलाभे स्वाश्रयमपि भविष्यतीत्यत  
आह—असतीति । तदभावे तद्भाभ एव न भवतीति भावः ॥  
संज्ञेति । अधिशीङ्गिति वदिति भावः ॥ अकर्मकव्यपदेशा-  
भावादिति । एतच्छास्त्रीयकर्मसंज्ञकान्वयित्वमेव सकर्मकत्वमिति  
भावः ॥ ननु भावे ले कर्तारि वा ले को विशेषोऽत आह—लादे-  
शेनेति ॥ तृतीया भवतीति । कर्तारि लादेशे तु सा दुर्लभेति  
भावः ॥ न चासत्यपीति । लान्तवाच्यः कर्ता कर्मैत्यर्थं मत्वा शङ्का ।  
ततश्च यावत्कर्तारि न लस्तावत्कर्मसंज्ञाऽभावादकर्मकत्वेन भावे  
लेऽपि सिध्यतीत्यर्थः ॥ लान्तस्य कार्यं कर्तव्ये कर्ता कर्मैत्यर्थं मत्वोत्तर-

यति—यस्मादिति । ततश्च भावे लेऽपि कर्तव्ये कर्तुः कर्मत्वं  
स्यात् । ततश्चाकर्मकत्वाभावात् भावे लो न स्यादिति भावः ॥ लः  
कर्मणीति विधेयग्विध्युत्तरीत्या साधुत्वान्वाख्यापकत्वाच्चान्तकार्यत्वं  
बोध्यम् ॥ वस्तुतो लवाच्यस्यैव कर्तुः कर्मवत्त्वेन नेदं वतेः प्रयोज-  
नम् । नमते दण्ड इत्यादौ शपूंसिद्धिस्तु मुख्यं प्रयोजनं वक्ष्यति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कर्मणेति किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) कर्मणेति किमिति । धातुवाच्या क्रिया  
कर्तृकर्मणोरेव समवेता तत्र कर्तृस्थया क्रियया तुल्यक्रियः  
कर्ता न संभवतीति कर्मस्थैव क्रियाऽऽश्रयिष्यत इति भावः ॥

( उद्द्योतः ) धातुवाच्येति । प्रत्यासत्त्या धातुवाच्यक्रिया-  
पेक्षयैव तुल्यक्रियत्वस्य ग्रहणमिति भावः ॥

( भाष्यम् )

करणाधिकरणाभ्यां तुल्यक्रियः कर्ता यः स कर्म-  
वन्मा भूत् । साध्वसिद्धिञ्चनन्ति, साधु स्थाली प-  
चतीति ॥

( प्रदीपः ) साध्वसिद्धिञ्चनन्तीति । ननु करणादि-  
व्यापारो धातुना नाभिधीयते, यदा त्वभिधीयते तदा तेषां  
कर्तृत्वमेव न तु करणादिरूपता । न च कर्तृकर्मव्यतिरेकेण  
कारकान्तराश्रयणं क्रियाया उपपद्यते । नैष दोषः । यद्यपि  
करणादिव्यापारो धातुवाच्यो न भवति तथापि स्वव्यापारं  
कुर्वन्ति करणादीनि प्रधानक्रियां साधयन्ति । तत्रावश्यं तुल्य-  
क्रियत्वं कर्तुराश्रयितुमवस्थान्तरमपेक्षणीयम् । अवस्थान्तर-  
युक्तक्रियया तुल्यक्रियः कर्तेति । ततश्च कर्मावस्थावत्करणाद्य-  
वस्था अप्याश्रयेरन् प्रधानव्यापारश्च कर्तृकर्मणोरेव स्थितो न  
लवान्तरव्यापारोऽपि, तस्य सर्वत्रैव कारके व्यवस्थानात् । यद्यपि  
स्वव्यापारे कर्तृत्वं तस्य, तथापि प्रधानक्रियापेक्षलब्ध-  
करणादिव्यपदेशवस्तुव्यवस्थितक्रियातुल्यत्वग्रहणनिवारणाय क-  
र्मणेति कर्तव्यमेव । यद्यपि करणादिव्यापारस्य धातुवाच्यत्वं  
नास्ति तथापीह सूत्रे धातुवाच्यत्वस्य शब्देनानाश्रयणाद्वस्तु-  
सद्भावाश्रयेण प्रसङ्गः स्यादेव ॥ साधु स्थाली पचतीति ।  
स्थाल्या अधिकरणत्वे यादृशी धारणसंभवनादिरूपा क्रिया  
तादृश्येव कर्तृत्वेपीति स्यात्कर्मवैत्त्वम् ॥

( उद्द्योतः ) प्रत्यासत्तिमाश्रित्य शङ्कते—नन्विति ॥ कार-  
कान्तराश्रयणमिति । कारकान्तरस्याश्रयत्वेनाश्रयणमित्यर्थः ॥  
व्याप्तिन्यायाश्रयेणोत्तरयति—नैषदोष इति ॥ स्वव्यापारमिति ।  
स्वव्यापारावेशं विना क्रियासाधकत्वायोगादिति भावः ॥ तत्रा-  
वश्यमिति । एकावस्थायां भेदनिबन्धनतुल्यत्वासंभवादिति भावः ॥  
करणाद्यवस्था अपीति । व्याप्तिन्यायादिति भावः ॥ प्रधान-  
व्यापारः धात्वर्थव्यापारः ॥ कर्तृत्वमिति । आश्रयतामात्रमित्यर्थः ।  
तन्निरूपितकरणत्वाभावप्रतिपादनपरं चैतत् । प्रधानक्रियापेक्षो  
लब्धः करणादिव्यपदेशो येन वस्तुना तत्र व्यवस्थिता या क्रिया

तत्तुल्यत्वग्रहणनिवारणार्थेऽर्थः । यदि तु लक्ष्यानुरोधात्प्रत्यासत्त्या धातुवाच्यक्रियैव तुल्यक्रियत्वं विवक्ष्यते ॥ प्रत्यासत्तिस्तु यस्य धातोर्यत्कर्म तत्रत्यक्रियया तस्यैव धातोः कर्ता यदि तुल्यक्रिय इति वक्ष्यमाणार्थलाभाभ्यामावश्यकौ, तदा नेदं प्रयोजनम् । अतो यत्र कर्मणि क्रियाकृतविशेषस्तदर्थमिति प्रयोजनान्तरं वक्ष्यति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तुल्यक्रिय इति किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) तुल्यक्रिय इति किमर्थमिति । कर्मणेति तृतीया तुल्यशब्दाध्याहारेण व्याख्यास्यते । तुल्यक्रियत्वाच्च कर्तुस्तुल्यत्वमिति प्रश्नः । अथवा क्रियमाणेपि तुल्यक्रियग्रहणेऽतिप्रसङ्ग इति प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु कर्मकर्त्रोः साधनयोरत्यन्तभेदात्कथं तुल्यत्वमत आह—तुल्यक्रियत्वाच्चेति ॥ अतिप्रसङ्ग इति प्रश्न इति । इति व्युत्पादयितुं प्रश्न इत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

पचत्योदनं देवदत्तः ॥

( प्रदीपः ) पचत्योदनमिति । सहार्थेपि तृतीया विज्ञायेत । तेन कर्मणा सह यः कर्ता प्रतिपाद्यत इति भावः । अकर्मकनिवृत्त्यर्था कर्मश्रुतिः स्यादास्ते शेत इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तुल्यक्रिय इत्यप्युच्यमानेनैव प्राप्नोति । अत्रापि हि कर्मणा तुल्यक्रियः कर्ता ।

( प्रदीपः ) अत्रापीति । तुल्यशब्दस्य साधारणवचनत्वात् कर्तृकर्मसाध्यत्वाच्चात्र क्रियाया इति भावः ।

( उद्ध्योतः ) साधारणेति । यथा एतौ तुल्यधनवित्तत्रेत्यर्थः ॥ कर्तृकर्मसाध्यत्वाच्चेति । जन्यत्वेनोभयोः साधारणी क्रियेत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

न तुल्यक्रियग्रहणेन समानक्रियत्वमभिधीयते । किं तर्हि । यस्मिन्कर्मणि कर्तृभूतेपि तद्वत्क्रिया लक्ष्यते यथा कर्मणि । स कर्मणा तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवद्भवतीति ।

( प्रदीपः ) समानक्रियत्वमिति । साधारणक्रियत्वमित्यर्थः । एतच्च तुल्यक्रियग्रहणादेव लभ्यते । अन्यथा कर्मवत्कर्मणेत्येव ब्रूयात् ॥ यस्मिन्निति । सादृश्यवाची तुल्यशब्द आश्रीयत इत्यर्थः ॥ कर्तृभूत इति । च्चेर्विकल्पेन विधानादत्राभावः । कर्तरि संपन्न इत्यर्थः । अथ वा भूषाप्तवित्तस्याधृषाद्वेति णिचो विकल्पनाद्रूपमेतत् । तेन कर्तृत्वं प्राप्त इत्यर्थः । वृत्तिविषये कर्तृशब्दः कर्तृत्वे वर्तते । कर्तृकर्मावस्थाभेदाच्च एकस्या अपि क्रियाया भेदाश्रयं सादृश्यमुपपद्यते ॥ कर्मणेति । कर्मस्थया क्रियेत्यर्थः । साध्यसाधनयोरत्यन्तभेदात् तुल्यत्वासंभवात् कर्मस्था क्रिया कर्मशब्देनोच्यते । भवति हि तात्स्थयात्तच्छब्दं यथा मन्त्राः कोशन्तीति । तत्र पचत्योदनमित्यत्र कर्तृकर्मव्यापारयोरत्यन्तभेदात्सादृश्याभावात्कर्मवद्भावाभावः । लयते केदारः स्वयमेवेत्यत्र तु केदारस्य

द्विधाभवनलक्षणा कर्मावस्थायां यादृशी क्रिया तादृश्येव कर्तृवस्थायामपीति भवति कर्मवद्भावः ॥

( उद्ध्योतः ) समानशब्दे सदृशवाचकत्वस्यापि सत्त्वादाह—साधारणेति ॥ एतच्चेति । किंतर्हीत्यादि चेत्यर्थः । सादृश्यवचनतुल्यशब्दस्य प्रसिद्धतरत्वाच्चेत्यपि बोध्यम् ॥ इत्येवेति । सद्वार्थयुक्ततृतीयाया एकक्रियाजनकत्वरूपसाहित्यलाभेन त्वदुक्तार्थलाभादिति भावः ॥ च्विप्रत्यये कर्तृशब्दे रीङ् स्यादत आह—च्चेरिति । ननु च्चेरभावे ‘अकर्तरि कर्तरि भूते’ इत्येवोचितं प्रकृतिविकृतिभावप्रतीतये अत आह—अथ वेति ॥ भाष्ये यथा कर्मणीति पूर्वान्वयि ॥ ननु विकृति द्विधाभवनरूपायाः क्रियाया एकत्वात्कथं भेदनिबन्धनसादृश्योपपत्तिरत आह—कर्तृकर्मिति । तत्तत्संशालामरूपावस्थाभेदादाश्रयस्य भेदावसाये तन्मूलकः क्रियाया भेदावसाय इति सादृश्योपपत्तिरिति भावः ॥ लक्षणायां हेतुमाह—साध्येति । साध्या क्रिया, साधनं कारकम् ॥ व्यापारयोरिति । व्यापारशब्देन धात्वर्थे उच्यते । तद्भात्वर्थत्वरूपं सादृश्यं न विवक्षितं किं तु सामर्थ्यादवान्तरसादृश्यमेव विवक्षितमिति तात्पर्यम् ॥ भाष्ये कर्ता कर्मवदिति । कर्तरि शब्दितोऽनुवृत्तस्य कर्तरीत्यस्य प्रथमया विपरिणाम इति भावः ॥

( १८७७ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मवदकर्मकस्य कर्ता ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अकर्मकस्य कर्ता कर्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । किं प्रयोजनम् ? । सकर्मकस्य कर्ता कर्मवन्मा भूत् । भिद्यमानः कुसूलः पात्राणि भिनत्तीति ।

( प्रदीपः ) भिद्यमान इति । पात्राणामपि द्विधा भवनं कुसूलस्यापीति प्राप्नोति कर्मवद्भावः ॥

( उद्ध्योतः ) पात्राणामपीति । एवं च भिदेः कर्मसु पात्रेषु या क्रिया सा तत्कर्तरि कुसूलेपीति भावः ॥

( १८७८ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ तथा कर्मदृष्टश्चेत्समानधातौ ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तथा कर्मदृष्टश्चेत्समानधाताविति वक्तव्यम् । इह मा भूत्—पचत्योदनं देवदत्तः । राधत्योदनः स्वयमेवेति ॥

( प्रदीपः ) कर्मदृष्ट इति । समान एकस्मिन् धातौ कर्ता कर्मत्वेन यदि दृष्टो भवति तदा कर्मवद्भावः, यदा त्वन्यस्मिन् धातौ कर्मान्यस्मिन् कर्ता तदा मा भूत् कर्मवद्भाव इत्यर्थः ॥ पचत्योदनमिति । ओदनस्य कर्मत्वे यादृशी क्रिया विकृति-लक्षण सादृश्येव कर्तृत्वेपि राधत्येर्विकृतिवचनत्वात् । न चास्य वाक्यद्वयस्य युगपत्प्रयोगः । कर्मस्थक्रियातुल्यत्वप्रतिपादनाय तु वाक्यद्वयोपन्यासः । अन्यथा समानधातावपि व्याख्यातृभिः कथं तुल्यक्रियत्वं प्रदर्श्यते ? । यद्येवं लुनातौ केदारस्य कर्मत्वमिति लावयते केदारः स्वयमेवेति कर्मवद्भावो न स्यात् ॥ अत्र केचिदाहुः—लुनातिरेव णिचि लाविः संपन्न इति अस्ति समानधातुत्वम् ॥ अन्ये त्वाहुः—लावयतावेव केदारस्य कर्तृत्वं कर्मत्वं चेति दोषाभावः ॥

( उद्द्योतः ) समानशब्दः साधारणपर्याय एकसिन्नित्यर्थे पर्यवस्यतीत्याह—एकसिन्निति ॥ ननु युगपत्स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्ययोर्विरुद्धत्वात्कथं भाष्येऽनयोर्वाक्यार्थयोर्युगपत्प्रयोगोऽत आह—न चास्येति ॥ प्रतिपादनायेति । तत्प्रयोगे वा कर्मस्था सा च प्रयोगे कर्तृस्थेति प्रदर्शनायेत्यर्थः ॥ लुनात्ताविति । लुनाति केदारं देवदत्त इति प्रयोग इत्यर्थः ॥ लावयते केदार इति । गिश्रन्थीति यकुचिणोः प्रतिषेधः । कर्मवद्भावफलं स्वात्मनेपदमेव । निचश्चेत्यनेन तु न सिद्धिः । क्रियोद्देश्यफलस्य कर्तृगामित्वाभावात् । आहुरिति । अत्रारन्वितु प्यन्तस्य भावन्तरत्वम् ॥ लावयताविति । निवृत्तप्रेषणपक्षे इति भावः ॥

( १८७९ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तथा कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तथा कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्ता कर्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां च कर्ता कर्मवन्मा भूदिति ॥ कर्मस्थभावकानाम्—आसयति देवदत्तम्, शाययति देवदत्तम्, स्थापयति देवदत्तम् ॥ कर्मस्थक्रियाणाम्—गामवरुणद्धि, करोति कटम् ॥ कर्तृस्थभावकानाम्—चिन्तयति, मन्त्रयते ॥ कर्तृस्थक्रियाणाम्—गच्छति, धावति, हसति ॥

( प्रदीपः ) कर्मस्थभावकानामिति । अपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थो भावः । सपरिस्पन्दनसाधनसाध्यस्तु क्रिया । यत्र च क्रियाकृतविशेषदर्शनं ततस्था क्रियोच्यते । ततश्च पश्यति राजा स्वयमेव, आरोहति हस्ती स्वयमेवेति कर्मवद्भावाभावः ॥

( उद्द्योतः ) अन्यत्र भावक्रियोरभेदेन व्यवहारादाह—अपरिस्पन्दनेति । इदं च प्रकृताभिप्रायेण ॥ भावे षष्ठित्वादौ तु सिद्धावस्थापन्नो धात्वर्थो भाव इति बोध्यम् ॥ यत्र चेति । यथा लुभिदादौ कर्मणि क्रियाकृतविशेषदर्शनात्तस्या सा, पश्यत्यादौ राजादिदर्शनकर्तृयैव हर्षादिलक्षणविशेषदर्शनात्तस्यैवेति भावः ॥ न चैवं पच्यादिकर्तृयैपि श्रमादिरूपविशेषस्य दर्शनादिदमयुक्तम् । किं च पश्यत्यादीनां कर्तृस्थभावकत्वानापत्तिः कर्तारि क्रियाकृतविशेषाभावादिति वाच्यम् । येन धातुना कर्तृकर्मसाधारणं फलं शब्देन प्रतिपाद्यते स कर्तृस्थभावकः । यथा पश्यति गच्छतीत्यादौ । तत्र विषयता-समवायाभ्यां ज्ञानमुभयनिष्ठं संयोगश्चोभयनिष्ठः । एवं ह्यसोपि ॥ यत्र तु कर्तृवृत्तिधर्मरूपं फलं स कर्मस्थ भावकादिः । यथा भिदादिरित्यत्र तात्पर्यात् ।

( प्रथमपरिसंख्यावार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

यत्तावदुच्यते—‘अकर्मकस्य कर्ता कर्मवद्भव-

तीति वक्तव्यम्’ इति ॥ न वक्तव्यम् । वक्ष्यत्येतत्—\*सकर्मकाणां प्रतिषेधोऽन्योन्यामाश्लिष्यत इति\* ॥

( प्रदीपः ) सकर्मकाणामिति । अन्योन्यामाश्लिष्यत इत्युदाहरणमात्रमेतत् । न तु व्यतिहारविशिष्टक्रियाविषयकर्मवद्भावप्रतिषेधप्रतिपादनार्थमित्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये वक्ष्यत्येतत्सकर्मकाणामिति । अयं भावः—कालादिभिन्नकर्माभाववतामन्यत्राकर्मकग्रहणेन ग्रहणदर्शनादत्रापि तथात्वापत्तौ ‘मासं पचत्योदनः स्वयमेवेत्यादौ कर्मवदकर्मकस्येति वचने कर्मत्वं प्राप्नोतीति ॥ सकर्मकाणां प्रतिषेध इत्यावश्यकमिति ॥ अन्यथा वचनेन वचनप्रत्याख्यानं लाघवं न स्यात् ॥ नत्विति । उदाहरणबलात्तादृशे विषये एव प्रतिषेध इति न भ्रमितव्यमिति भावः ॥ अन्ये तु इदमुदाहरणं चिन्तयन् । आक्षेपः संयोगविशेषानुकूलव्यापारः । तत्र संयोगाश्रयत्वेन तयोः कर्मत्वम्, व्यापाराश्रयत्वेन कर्तृत्वम्, तत्र संयोगानुकूलक्रियायाः कर्तृत्वोऽपयोगित्वेपि व्यक्तिभेदोपपन्नमङ्गीकार्यः । अन्यथोभयोरपि कर्तृत्वमेव स्यात् ‘इमावाश्लिष्यत’ इति यथा । भेदे त्वन्यनिष्ठां प्रत्यन्यस्य कर्मत्वमुपपद्यते । एवं च कर्मत्वोपयोगिक्रियया तुल्यक्रियस्य तदीयकर्तुरभावात्कर्मवत्त्वाप्राप्तेरित्याहुः ॥ तत्रेत्यत्रे वक्ष्यते ॥

( द्वितीयपरिसंख्यावार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

यदप्युच्यते—\*कर्मदृष्टेत् समानधाताविति वक्तव्यमिति\* ॥ न वक्तव्यम् । धातोरिति वर्तते । धातोः कर्मणः कर्तुरयं कर्मवद्भाव उच्यते । तत्र संबन्धादेतद् अगतव्यम्—यस्य धातोर्यत् कर्म तस्य चेत् कर्ता स्यादिति । तद्यथा—धातोः कर्मण्यण भवतीति, तत्र सम्बन्धादेतद् गम्यते यस्य धातोर्यत्कर्मैति । इह मा भूत्—आह्वर कुम्भं करोति कटमिति ।

( प्रदीपः ) धातोः कर्मण इति । कर्मणः सतः कर्तुरित्यर्थः । कर्मणेति चोपादानादयमर्थो लभ्यते—यस्य धातोर्यत्कर्म तत्स्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता तस्यैव धातोर्यदि भवति ततः कर्मवद्भवति ॥ आह्वरकुम्भमिति । समर्थपरिभाषोपस्थानमन्तरेणापि भवत्येवेष्टसिद्धिरिति प्रदर्शनायोपन्यासः ॥

( उद्द्योतः ) ननु कर्मणः कर्तुरिति युगपद्विरुद्धमत आह—सत इति ॥ कर्मणेति चोपादानादिति । प्रत्यासत्त्येति भावः ॥ समर्थपरिभाषयैवेदं सिद्धमत आह—समर्थेति ॥ एवं च दृष्टान्त एकदेश्युक्तिरिति ध्वनितम् ॥

( तृतीयपरिसंख्यावार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

यदप्युच्यते—\*कर्मस्थभावकानां कर्मस्थक्रियाणां च कर्ता कर्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां वा कर्ता कर्मवन्मा भूदिति ॥ न वक्तव्यम् । कर्मस्थया क्रियया यं कर्तारमु-

पमिमीते । न च कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां वा कर्मणि क्रियायाः प्रवृत्तिरस्ति ॥

( प्रदीपः ) कर्तारमिति । कर्तृस्थां क्रियामित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) क्रियया कर्तुरूपमाऽसंभवात् आह—कर्तृस्था-मिति । भाष्ये न च कर्तृस्थेति । तेषां धातूनां वाच्यायाः फल-रूपक्रियायाः कर्ममात्रे प्रवृत्तिर्नास्तीत्यर्थः । करणादितुल्यक्रियेऽति-व्याप्तिवारणस्य प्रत्यासत्त्यैव सिद्ध्या कर्मणेत्युपादानसामर्थ्यात्कर्म-मात्रनिष्ठफलरूपकर्मस्थक्रिया लक्ष्यत इति भावः ॥ यथाश्रुतंप्रागुक्त-कैयटरीत्या व्याख्याने तु जानात्यादिकर्तैर्यपि क्रियाकृतविशेषानुप-लम्बेन चिन्तयतीत्याद्युपक्रमेणैतदुक्त्यसंगतिः ॥ एतेन क्रियायाः क्रियाकृतविशेषाणामित्यर्थ इत्यपास्तम् ॥ तदुक्तं हरिणा—

विशेषदर्शनं यत्र क्रिया तत्र व्यवस्थिता ।

क्रियाव्यवस्था त्वन्येषां शब्दैरेव प्रकल्पिता ॥ इति ॥

अन्येषां मत इति शेषः । इदमेव मतं युक्तम् । उक्तयुक्तः ॥

( कर्मवद्भावफलविचाराधिकरणम् )

( भाष्येपभाष्यम् )

किं पुनः कर्मकर्तरि कर्माश्रयमेव भवति, आहो-स्वित् कर्त्राश्रयमपि ? ॥ किं चातः ? ।

यदि कर्माश्रयमेव, चङ्क्षपृक्कृद्धिधयो न सिध्य-न्ति । चङ्—अचीकरत कटः स्वयमेव । चङ् ॥ शप्—नमते दण्डः स्वयमेव । शप् ॥ कृद्धिधिः—भिदुरं काष्ठं स्वयमेव ॥

अथ कर्त्राश्रयमपि, सिद्धमेतद् भवति ॥ [ किं तर्हीति ] ।

( प्रदीपः ) किं पुनरिति । किमतिदेशेन स्वाश्रयं निव-र्त्यते, आहोस्विनेति प्रश्नः ॥ यद्यपि स्वाश्रयमपि यथा स्यादित्यत्र निर्णयः कृतः तथापि दोषान्तरोद्भावनाय पुनर्वि-चार्यते ॥ अचीकरतेति । यक्चिणोः प्रतिषेधेपि स्वाश्रयौ चङ्क्षपौ न प्राप्तुतः ॥ भिदुरमिति । कर्तरि कुरज् न प्रा-प्नोति । लान्तस्य कर्ता कर्मवदिति न तावत् स्थापितमिति कृद्धिधेरसिद्धिरुक्ता ॥

( उद्घोतः ) दोषान्तरेति । तदुद्भावनपूर्वकं मुख्यफलप्रद-शेनायेत्यर्थः ॥ प्रतिषेधेपीति । न दुहेति णिश्चीति च शपाचिति नमति विषयकमिदम् ॥

( १८८० कर्त्राश्रयत्वे दूषणवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ आत्मनेपदशबादिविधि-

प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आत्मनेपदं विधेयं शबादीनां च प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

१ नहि क्रियाकर्त्रोरुपमानोपमेयभावो भाष्यकर्तुरभिप्रेतः, योऽसंभवो भवदुक्तः स्यात् । किंतु कर्मकर्त्रोरुपमानोपमेयभावः क्रियायाश्च साधारणधर्मत्वमेवाभिप्रेत-मिति न काव्यनुपपत्तिरिति दाधिमथाः ॥

२ इतः प्राक् 'अस्ति प्रयोजनमेतत्' इति पाठो भवेत् । अन्यत्र स्थल इव ॥ अन्यथाऽस्य संगतिर्दुर्ज्ञेया स्यात् ॥ वयं तु द्रूमः, अथ शब्दो यद्यर्थः । यदि

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

उभयं क्रियते न्यास एव ॥

( प्रदीपः ) उभयमिति । कर्तैव यः कर्ता तत्र परस्मै-पदमिति परस्मैपदाभावादात्मनेपदं भवति । कर्तरि शबि-त्यत्र कर्तरीति योगविभागेन शबादीनां यका बाधनं भवति ॥ कार्यातिदेशो वायमाश्रीयते । यच्चाविरुद्धमतिदेशेन स्वाश्रयं तद्भवति, न तु विरुद्धमिति शबादिपरस्मैपदाभावः ॥

( उद्घोतः ) कर्तैवेति । शेषादिति सूत्रे कर्तरि कर्मव्यतिहार इत्यतः कर्तरीति पदानुवृत्त्याऽयमर्थो लब्ध इति भावः ॥ योग-विभागेनेति । इदं च यस्मिन्वायके निरूपितम् ॥ कार्यातिदेशो वायमिति । एवं च परत्वादात्मनेपदविधिः शब्बाधश्च सिद्ध इत्यर्थः ॥ नन्वेवं स्वाश्रयनिवृत्तिरेव पर्यवसन्नेत्यत आह—यच्चेति ॥ अतिदेशेन तदाश्रयकार्येण । एवं च 'नमते दण्डः' 'अचक-रते'त्यादौ यक्चिणोरभावे चङ्क्षपौ भवतः । अन्यत्र च न भवत इति भावः ॥

( सूत्रप्रयोजनाधिकरणम् )

( भाष्येपभाष्यम् )

किमर्थं पुनरिदमुच्यते ? ।

( उद्घोतः ) भाष्ये किमर्थं पुनरिदमुच्यते इति । कर्मणः कर्तृत्वासंभवात्सूत्रं व्यर्थमिति प्रश्नः ॥

( १८८१ समाधानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मकर्तरि कर्तृत्वं स्वातन्त्र्यस्य विवक्षितत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मकर्तरि कर्तृत्वमस्ति । कुतः ? । स्वातन्त्र्येणैवात्र कर्ता विवक्षितः ॥

( प्रदीपः ) स्वातन्त्र्यस्येति । पच्यते ओदनः स्वयमेवेति विक्लित्तिमात्रवाची पचिस्तत्र चौदनस्य कर्तृत्वमेव लक्ष्यते केदार इति द्विधाभवनवाची लुनातिस्तथा च केदारस्य कर्तृत्वम् ॥

( उद्घोतः ) तत्संभवं दर्शयति भाष्ये—कर्मकर्तरीति ॥ स्वातन्त्र्यं च प्रधानधात्वार्थाश्रयत्वम् ॥ तच्च कर्मव्यापारमात्रस्य धात्वर्थत्वे संभवतीत्याह—पच्यत इति ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

किं पुनः सतः स्वातन्त्र्यस्य विवक्षा, आहोस्वि-द्विवक्षामात्रम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

सत इत्याह । कथं ज्ञायते ॥ इह 'भिद्यते कुसूले-ने'ति । न चान्यः कर्ता दृश्यते, क्रिया चोपलभ्यते ॥

( प्रदीपः ) क्रिया चेति । विचारणक्रियेत्यर्थः ।

कर्त्राश्रयमपि तदा एतत् सिद्धं भवतीति कारकां प्रश्नः । किं तर्हीत्युत्तरम् । ( र. ना. )

१ तदुक्तं हरिणा—

'वस्तुतस्तदनिर्देश्यं नहि वस्तु व्यवस्थितम् ।

स्थाव्या पच्यत इत्येषा विवक्षा दृश्यते यतः' इति ॥

स्पष्टं चेदं कारक इति प्रकरणे भाष्ये ॥

( उद्ध्योतः ) कुसूले क्रियाऽदर्शनादाह—विशरणेति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

किं च भो विग्रहवतैव क्रियायाः कर्त्रा भवित-  
व्यम्, न पुनर्वातातपकाला अपि कर्तारः स्युः ॥

( प्रदीपः ) किञ्च भो इति । कारणाभावे विशरणाख्यका-  
र्याभावादवश्यं केनचिद्वातादिना कारणेन भाव्यमिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये विग्रहवतैवेति । सशरीरेण चेतनेवेत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

भवेत्सिद्धं यदि वातातपकालानामन्यतमः कर्ता  
स्यात् । यस्तु खलु निवाते निरभिवर्षे अचिरकाल-  
कृतः कुसूलः स्वयमेव भिद्यते तस्य नान्यः कर्ता  
भवति अन्यदतः कुसूलात् ॥

( प्रदीपः ) अन्यदत इति । कुसूलस्यैव विशरणक्रियायां  
कारणत्वोपपत्तावदृश्यमानकारणान्तरकल्पनाया अयुक्तत्वा-  
दिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) निरभिवर्षे इति । अर्नातपे इत्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्यपि तावदत्रैतच्छक्यते वक्तुं यत्रान्यः कर्ता  
नास्ति । इह तु कथं स्याल्लूयते केदारः स्वयमे-  
वेति । यत्रासौ देवदत्तो दात्रहस्तः समन्ततो विप-  
रिपतन्द्दयते ।

( समाधानभाष्यम् )

अत्रापि याऽसौ सुकरता नाम तस्या नान्यः  
कर्ता भवति अन्यदतः केदारात् ॥

( प्रदीपः ) सुकरतेति । द्विधाभवनलक्षणक्रियेत्यर्थः ।  
अन्यथा पर्वतमपि देवदत्तो छनीयादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु सुकरता यदि प्रयोजकव्यापारः, तर्हि  
तस्य देवदत्तः कर्तेति नान्य इति भाष्यमनुपपन्नं स्यादत आह—  
द्विधेति ॥ सुकरताविषयक्रिया सुकरताशब्देनोच्यत इत्यर्थः ॥  
कर्मगतसौकर्यं निरीक्ष्यैव देवदत्तादेः कर्तृत्वं नान्यथेत्याह—अन्य-  
थेति ॥ एवं च सौकर्यातिशयविवक्षया विद्यमानोपि कर्तृव्यापारो  
न विवक्ष्यते, किं तु अनेकार्थत्वाद्वातूनां कर्मनिष्ठव्यापारमात्रपरता,  
तदा कर्मणः कर्तृत्वे कर्मणा तुल्यक्रिय इत्यत्रावस्थान्तरीयकर्मणा  
तुल्यक्रियत्वमित्येवार्थो विवक्षित इति दिक् ॥

( भाष्यम् ) अस्ति प्रयोजनमेतत् ? किं तहीति ।

( १८८२ कर्मवद्भावविषयपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र लान्तस्य कर्मवदनुदेशः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लान्तस्य कर्मवदनुदेशः कर्तव्यः ।  
लान्तस्य कर्ता कर्मवद्भवतीति वक्तव्यम् ।

( १८८३ परिसंख्यापरिहेयदर्शकवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ अन्यथा हि कृत्यक्तखलर्थेषु  
प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अक्रियमाणे हि लग्नहणे कृत्यक्तखल-  
र्थेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः स्यात् । कृत्य—मेत्तव्यः  
कुसूल इति कर्म । स यदा स्वातन्त्र्येण विवक्षित-  
स्तदास्य कर्मवद्भावः स्यात्, तस्य प्रतिषेधो वक्त-  
व्यः तस्मिन् प्रतिषिद्धे 'अकर्मकाणां भावे कृत्यो  
भवतीति' भावे कृत्यो यथा स्याद् मेत्तव्यं कुसूलस्य,  
मेत्तव्यं कुसूलेनेति । कृत्य ॥ क—भिन्नः कुसूल इति  
कर्म । स यदा स्वातन्त्र्येण विवक्षितो भवति, तदास्य  
कर्मवद्भावः स्यात्, तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः । त-  
स्मिन् प्रतिषिद्धे 'अकर्मकाणां भावे को भवतीति  
भावे को यथा स्याद् भिन्नं कुसूलेनेति । क ॥ ख-  
लर्थ—ईषद्भेदः कुसूल इति कर्म । स यदा स्वात-  
न्त्र्येण विवक्षितो भवति तदाऽस्य कर्मवद्भावः स्यात् ।  
तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः । तस्मिन् प्रतिषिद्धे 'अकर्म-  
काणां भावे खलुभवतीति' भावे खलु यथा स्यात् ।  
ईषद्भेदं कुसूलेनेति । खलर्थ ॥

( प्रदीपः ) लान्तस्य कर्तेति । लान्तवाच्यो यः कर्ता  
स लान्तकार्य एव कर्मवद्भवतीत्यर्थः । तेन कर्मणि विधीय-  
मानाः कृत्यादयोतिदेशात्कर्मकर्तरि न भवन्तीति भाव एवो-  
त्पद्यन्ते । ततश्चैतैः कर्तुरनभिहितत्वात्कर्तृविभक्ती षष्ठी-  
तृतीये भवतः—मेत्तव्यं कुसूलस्य, मेत्तव्यं कुसूलेनेति । भिद्यते  
कुसूल इत्यत्र च द्वितीया न भवति ॥ कर्महणस्यात्र प्रयोजनं  
न दृश्यते । गवा दुग्धं पय इत्यत्र दृश्यत इत्याहुः ॥ तथाह्य-  
कर्मकलाद् गत्यर्थाकर्मकेति वचनात् कर्तरि भवितव्यमेव  
केन 'भिन्नः कुसूलः स्वयमेवेति' । तथा च 'सिनोतेर्ग्रासक-  
र्मकर्तृकस्येति वक्तव्यमिति' सिनो ग्रासः स्वयमेवेति क्तः  
कर्तृयुदाहरिष्यते ॥

( उद्ध्योतः ) लान्तस्येति षष्ठी वाच्यवाचकसंबन्धे निमित्त-  
निमित्तिभावे वेत्याह—लान्तेति । लान्तवाच्य इत्यर्थस्य फल-  
माह—तेनेति ॥ षष्ठीतृतीये इति । कृत्यानां कर्तरि वेति  
वचनादिति भावः ॥ यद्यपि स्वाश्रयानिवृत्तेर्भावे सिध्यन्त्येव तव्या-  
दयस्तथापि 'मेत्तव्यः कुसूलः स्वयमेवेति'त्यपि स्यादिति दोषः ॥ भाष्य-  
स्यापि 'मेत्तव्यं कुसूलेनेति' भावे एव कृत्यो यथा स्यादित्यर्थो बोध्यः ॥  
लान्तकार्य एवेत्यस्य फलमाह—भिद्यते कुसूल इति । कर्तरि  
लैऽपि कर्मवद्भावेन द्वितीया स्यादिति भावः ॥ ननु ब्रह्मविकल्पमेतत्  
कर्मत्वेन, अनभिहितत्वेन च । तत्रातिदेशेन कर्मत्वेऽपि अभिहित-  
त्वात्कथं द्वितीयेति चेन्न । कार्यातिदेशेऽनेनैव द्वितीया विधीयते ।  
तत्र चानभिहिताहिताधिकाराभाव इत्यभिमानात् ॥ वस्तुतः  
कर्मवदित्युक्तेः कर्मणि यत्कार्यं येनोपाधिना यथा भवति तथा  
कर्तृवर्षपीत्यर्थादभिहितत्वेन द्वितीयावारणस्य सुकरत्वालान्तस्य कार्यं



इति चिन्त्यफलम् ॥ अत्र भिन्नं कुसुलेनेत्यत्र ॥ अत्र कर्मवत्त्वाभा-  
वेऽपि अकर्मकत्वनिबन्धनकर्तृत्वमादाय भिन्नः कुसुल इत्यस्य दुर्वा-  
रत्वेन तत्प्रवृत्त्यप्रवृत्त्योर्न फलमिति भावः ॥ तद्वक्ष्यति—तथा  
हीत्यादिना ॥ गवाहुरधमिति । अत्र गोः कर्मवत्त्वे 'अप्रधाने  
दुहादीनामिति वचनात्तस्मिन्नेव कर्मणि कैः स्यात् । तदभावे तु  
कर्मान्तराभावात्पयस्येव कर्मणि के गवा दुग्धं पय इति भवतीत्यर्थः ॥  
वस्तुतस्तु कर्मवद्भावेन कर्मणि के परशुभिन्नः कुसुल इत्यादौ  
'तृतीयान्तं पूर्वपदं कर्मवाचकत्वात् उत्तरपदे प्रकृतिस्वर'मित्यर्थक-  
तृतीया कर्मणीत्यनेन पूर्वपदप्रकृतिस्वरः प्राप्तोति । कर्तरि तु नेति  
फले विशेषस्य स्पष्टतया चिन्त्योऽयं कैवटः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि लग्नहणं कर्तव्यम् ॥

( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । क्रियते न्यास एव—“व्यत्ययो ब-  
हुलुल्लिङ्गाशिष्यङ्” इति द्विलकारको निर्देशः ॥

( १८८४ सूत्रवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु प्राकृतकर्मत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । प्राकृतकर्म-  
त्वात् । प्राकृतमेवैतत् कर्म । यथा कटं करोति,  
शकटं करोतीति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं पुनर्ज्ञायते प्राकृतमेवैतत्कर्मिति ॥

( १८८५ वैयर्थ्यहेतुवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ आत्मसंयोगेऽकर्मकर्तुः कर्म-  
दर्शनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आत्मसंयोगेऽकर्मकर्तुः कर्म दृश्यते ।  
क ? । हन्त्यात्मानम् । आत्मना हन्यत इति ।

( प्रदीपः ) सिद्धं त्विति । प्राकृतं स्वाभाविकमेवैतत्कर्म,  
न त्वातिदेशिकमित्यर्थः ॥

आत्मसंयोग इति । एकस्यैव वस्तुनो भेदेनात्मा कर्म-  
त्वेन कर्तृत्वेन च विवक्ष्यत इत्यर्थः । तदुक्तम्—

एकस्य बुद्धवैस्थाभिर्भेदे च परिकल्पितं ।

कर्मत्वं करणत्वं च कर्तृत्वं चोपजायते । इति ॥

कर्म दृश्यत इति । कर्मत्वं दृश्यत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) कर्मणि प्रत्ययेनैव प्रयोगाणां सिद्धेः सूत्रं व्यर्थ-  
मित्याशङ्कते भाष्ये सिद्धं त्विति ॥

आत्मसंयोग इति । आत्मवाचकपदसमभिव्याहारे इत्यर्थः ॥  
अकर्मकर्तुरिति । कर्मभिन्नस्य कर्तुरात्मनः सत्त्वेऽपि कर्म दृश्यत

इत्यर्थः । तथा भिद्यते कुसुल इत्यादावपि आत्मनः कर्तृत्वात्कर्मण्येव  
लकारेण सिद्धम् । अत एवात्मनेत्यर्थकं स्वयमेवेति कर्मकर्तृदाहरणेषु  
प्रयुज्यत इति तात्पर्यम् ॥

( वैषम्यविघटकसूत्रसार्थक्यभाष्यम् )

विषम उपन्यासः । हन्त्यात्मानमिति कर्म दृ-  
श्यते, कर्ता न दृश्यते । आत्मना हन्यत इति च  
कर्ता दृश्यते, न कर्म दृश्यते ॥

( १८८६ वैषम्योपपादकवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ पदलोपश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पदलोपश्चात्र द्रष्टव्यः । हन्त्यात्मान-  
मात्मा । आत्मना हन्यत आत्मेति ॥

( प्रदीपः ) विषम उपन्यास इति । अयं भावः—  
दृष्टान्ते आत्मभेदस्य शब्देन प्रतिपादितत्वाद्युक्तं कर्मत्वम् । इह  
तु 'ह्रयते केदारः पच्यते ओदन' इत्यादौ यदा स्वयमिति शब्दो  
न प्रयुज्यते तदात्मभेदाविवक्षायां कर्मत्वाभावात्कर्तृत्वमेव द्वि-  
धाभवनादौ केदारादीनामिति कर्मवदतिदेशः कर्तव्य एव ।  
'नमते दण्ड' इत्यादौ च प्राकृतकर्मत्वे यक्चिणोः प्रतिषेधे शब्द-  
चङौ न स्याताम् । भिद्यते कुसुलेनेति च सकर्मकत्वाद्धातोर्भावे  
लो न स्यात् ॥ कर्म दृश्यत इति । आत्मानमिति द्वितीया-  
न्तवाच्यं कर्म ॥ कर्ता न दृश्यत इति । हन्तीति कर्तरि  
लकारोत्पत्तावपि कर्तृविशेषानुपादानादिति भावः ॥ कर्ता दृ-  
श्यत इति । तमन्तरेण क्रियाया अभावादात्मनेत्येतद्वाच्य  
इति भावः ॥ कर्म न दृश्यत इति । कर्तृव्यतिरेकेणान्य-  
स्यात्र कर्मणो दुरुपपादत्वादिति भावः ॥

पदलोपश्चेति । गम्यमानार्थत्वादप्रयोगः पदस्येत्यर्थः ।  
यत्तु 'ह्रयते केदारः स्वयमेवेति वृत्तिकारैरुदाह्रियते, तत्र  
कर्त्रन्तराभावप्रतिपादनेन केदारस्यैव कर्तृत्वप्रतिपादनाय स्वयं-  
शब्दः प्रयुज्यते । न त्वेतत्कर्मवद्भावस्योदाहरणम् । स्वयंशब्द-  
स्यात्मनेति तृतीयान्तार्थं वर्तनात् । आत्मनः कर्तृत्वे केदारस्य  
प्राकृतकर्मत्वसद्भावात् ॥

( उद्घोतः ) समाधत्ते—विषम इति ॥ तत्र ह्रस्वं वैषम्यं  
दर्शयति—दृष्टान्त इति ॥ भावे ल इति । इदमुपलक्षणं तव्या-  
दीनाम् ॥ एतेन 'भिद्यते कुसुलेनात्मेति कर्मण्येवायं प्रयोग' इत्य-  
पास्तम् ॥ भेत्तव्यम् ईषद्भेदमित्यावसिष्मापत्तेः ॥ न च तत्रापि  
कर्मणि; नियमेन नपुंसकप्रयोगानापत्तेः ॥ ह्रस्वमुक्तं वैषम्यं विघट-  
यति—भाष्ये—हन्त्यात्मानमित्यादिना । एवं चात्र शब्देन  
प्रतिपादनाभावेऽपि यथा कर्मत्वं तथा प्रकृतेऽपि भविष्यतीति भावः ॥

वैषम्यमुपपादयति—पदलोपश्चेति । तस्याचष्टे—गम्यमानेति ।  
एवं च इति अध्याहारसंभवाद्वाक्यैकदेशन्यायेन बोधसंभवाद्वा

१ कर्मवद् भावेऽपीति पाठः शोभनो भाति । ( र. ना. )

२ कर्मवत्प्रवृत्त्यप्रवृत्त्योरित्यर्थः । ( र. ना. )

३ ततश्च कर्मकर्तृत्वात्तृतीया न स्यादिति भावः । ( र. ना. )

४ एकस्यैव वस्तुनो बुद्धिभेदप्रयुक्तेऽवस्थानेदप्रयुक्ते वा भेदे परिकल्पिते

सतीत्यर्थः । ( र. ना. )

५ आत्मेतिशब्देन, आत्मानमिति शब्देन चेत्यर्थः । ( र. ना. )

६ 'कर्तृविशेषव्यतिरेकेण' ॥

७ 'वर्तमाना' इति तु कैश्चित् पण्डितप्रकाण्डैः शोधितत्वेन ।



तत्रात्मभेदस्य शब्देन प्रतिपादनमिति वैषम्यमस्त्येवेति भावः ॥ ननु कर्मवद्भावविषयेऽपि स्वयमित्यस्य प्रयोग उदाहरणेषु दृश्यत इति तत्राप्यस्त्येव भेदस्य शब्देन प्रतिपादनमत आह—यत्त्विति ॥ न त्वेतदिति । आत्मनेत्यर्थकस्त्वयंपदघटितं विवक्षितात्मकर्तृकमित्यर्थः ॥

( शङ्काभाष्यम् )

कः पुनरात्मानं हन्ति, को वात्मना हन्यते ? ।

( उद्द्योतः ) नन्वेकस्यैव वस्तुनः कथं शब्दभेदमात्रेण भिन्न-धर्मेतेति शङ्कते—भाष्ये—कः पुनरिति । आत्मानं हन्ति यः आत्मा, स क इत्यर्थः ॥

( उत्तरभाष्यम् )

द्वावात्मानौ—शरीरात्मा, अन्तरात्मा च । अन्तरात्मा तत्कर्म करोति येन शरीरात्मा सुखदुःखे अनुभवति । शरीरात्मा तत्कर्म करोति येनान्तरात्मा सुखदुःखे अनुभवति ॥

( प्रदीपः ) द्वावात्मानाविति । णेरणाविलयत्र व्याख्यातमिति तत एवावधार्यम् ॥

( उद्द्योतः ) औपाधिकभेदेन भेदमारोप्य भिन्नधर्मेतेत्युत्तराशयः ॥

( १८८७ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ११ ॥ )

॥ \* ॥ सकर्मकाणां प्रतिषेधोऽन्योन्यमाश्लिष्यत इति ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः । किं प्रयोजनम् ? । अन्योन्यमाश्लिष्यतः अन्योन्यं संस्पृशतः अन्योन्यं संगृह्णीत इति ॥

( प्रदीपः ) आश्लिष्यत इति । क्रियाफलस्य संयोगस्य कर्मणि दर्शनात्कर्मस्थक्रियत्वमत्र द्रष्टव्यम् ॥

( उद्द्योतः ) संयोगस्य कर्मणीति । अन्योन्यसंयोगकृत-हर्षादिलक्षणस्येत्यर्थः ॥ ननु संयोगस्य तत्कृतहर्षादेश्च कर्तव्यमिति सन्वेनोक्तरीत्या कथं कर्मस्त्वमिति चेन्न । हर्षरूपविशेषस्य धात्वर्थ-कर्मकृतत्वेन कर्मस्त्वमेवेत्याशयात् ॥ यद्यप्युक्तरीत्या नेदमुदाहरणम् ॥ तथाप्ययमत्र भाष्यार्थः । कर्मपदेन तत्स्या क्रिया लक्ष्यते मन्त्राः क्रोशन्तीतिवत् । अन्यतरक्रियां प्रति कर्मण्यन्यतरस्मिन्या संयोगानुकूलक्रिया तादृशेनापरस्मिन्कर्तरीति स्यादेव प्रसङ्गः ॥ यद्यपि देवदत्तादयः पचन्तीत्यादाविव धातुना भेदैस्याप्रतीतिः । तथापि आश्रयभेदकृतं वास्तवं भेदमादाय तुल्यत्वाक्षतिः । कर्मत्वोपयोगिकर्मस्थक्रियया कर्तृत्वोपयोगिक्रिया तुल्या यस्य कर्तुरित्यर्थं तु न मानमिति बोध्यम् ॥

( १८८८ सकर्मकप्रतिषेधाय नियमवार्तिकम् ॥ १२ ॥ )

॥ \* ॥ तपेर्वा सकर्मकस्य वचनं नियमार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तपेर्वा पुनः सकर्मकस्य वचनं नियमार्थं भविष्यति—तपेरेव सकर्मकस्य नान्यस्य सकर्मकस्येति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

तस्य तर्ह्यन्यकर्मकस्यापि प्राप्नोति । उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः । उत्तप्यमानं सुवर्णं सुवर्णकारमुत्तपति ॥

( १८८९ समाधानवार्तिकम् ॥ १३ ॥ )

॥ \* ॥ तस्य च तपःकर्मकस्यैव ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्य च तपःकर्मकस्यैव कर्ता कर्मवद्भवति नान्यकर्मकस्य ॥

( प्रदीपः ) तपेर्वेति । तप इति योगविभागेन नियमः क्रियत इति भावः ॥ ननु तप्यते तपस्तापस इत्यत्र कर्मस्थक्रियया तुल्यक्रियत्वं कर्तुर्नास्ति । उपवासादेस्तापसः कर्तृत्वे तपेर्दुःखार्थत्वात्, तापसस्य कर्तृत्वेऽर्जनार्थत्वात् ॥ नैष दोषः—शरीरसंतापलक्षणायाः क्रियायास्तुल्यत्वादवस्थाद्वयेऽपि शरीरसंतापलक्षणमेवार्जनं तापसस्य यतो व्यापारः ॥

( उद्द्योतः ) एकयोगे नियमद्वयाभावादाह—योगविभागेनेति । दुःखार्थत्वादिति । तापसं तपस्तपतीत्यतस्तं दुःखयतीत्यर्थवगमात् ॥ अर्जनार्थत्वादिति । तापसस्तपस्तप्यत इत्यतोऽर्जयतीत्यर्थवगमादिति भावः ॥ शरीरेति । शरीरसंतापलक्षणायाः क्रियाया अवस्थाद्वयेऽपि तुल्यत्वात् । यतः 'शरीरसंतापलक्षणमर्जनमेव तापसस्य व्यापारो, नान्य इत्यन्वयः ॥ अयं भावः—तपति तापसं तप इत्यस्य 'संतापविशेषस्तापसं तपतीत्यर्थः' । तपतिरन्तर्भावितव्यर्थः । तापसवृत्तिशरीरसंतापसामान्यानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारः संतापविशेषवृत्तिरिति बोधः ॥ तदनुकूलो व्यापारश्च संतापविशेषे स्वरूपावस्थानरूप एव तापसे शरीरसंतापसामान्यानुकूलव्यापारश्च संतापविशेषस्वीकार एव । पृथग्व्यापारे तापसस्य कर्तृत्वं तापसस्तपः संतप्यत इत्यत्र 'संतापविशेषाभिन्नशरीरसंतापानुकूलव्यापारस्तापसकर्तृकः' इति बोधः ॥ कैयटे शरीरसंतापपदेन स व्यापार एव, तदेव वार्जनमिति बोध्यम् । तत्र क्रियाविशेषणत्वात्स्तोकमेवत इत्यादाविव तपसः कर्मत्वमिति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमिदं तप इति ? ।

( उत्तरभाष्यम् )

तपेरयमौणादिकोऽस्कारो भावसाधनः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कः प्रकृत्यर्थः, कः प्रत्ययार्थः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

स एव संतापः ॥

कथं पुनः स एव नाम प्रकृत्यर्थः स्यात् स एव च प्रत्ययार्थः ? ।

( उद्घोतः ) [ भाष्ये—किमिदं तप इति । सूत्रे तपः कर्मकस्येत्यत्र तपःपदेन किमुच्यते इति प्रश्नः ॥

धात्वर्थः संताप इत्युत्तरम् ॥ ]

भाष्ये तपेरयमौणादिकोऽस्कारो भावसाधन इति । इदमुणादीनां व्युत्पन्नत्वमिति मते उक्तम् ॥ अव्युत्पन्नत्वमिति पाणिनिसंमते पक्षे तु तपःशब्दस्य संतापोऽर्थ इति बोध्यम् ॥ एतदेव परसंमतान्वाख्यानानेन दर्शितम् ॥

( भाष्यम् ) सामान्यतपेरवयवतपिः कर्म भवति । तद्यथा—‘स एतान् पोषानपुषत् गोपोषमश्वपोष रैपोषमिति सामान्यपुषेरवयवपुषिः कर्म भवति । एवमिहापि सामान्यतपेरवयवतपिः कर्म भवति ॥

( प्रदीपः ) कः प्रत्ययार्थ इति । तापसेन तपस्तप्यत इति कर्मणि लकारोत्पत्तौ प्रकृत्यर्थस्यैव किर्यारूपस्य प्रत्ययार्थत्वं दृश्यते । किर्याकर्मणोश्च साध्यसाधनभावाद्भेदेन भाष्यम् । इह तु भेदाभावात् प्रकृतिप्रत्ययार्थानुपपत्तिः । अथ वा तपःकर्मकस्येति वचनात् प्रकृत्यर्थस्यैव कर्मत्वमाश्रितं तच्च विरुद्धमिति भावः ॥

अवयवतपिरिति । विशेषतपिर्ज्ञानलक्षणं तप इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) ननु प्रकृति प्रत्यययोरप्रकृतत्वात्प्रश्नानुपपत्तिरत आह—तापसेनेति ॥ प्रकृत्यर्थस्यैवेति । संतापस्येत्यर्थः । तस्यैव तपःपदार्थत्वादिति भावः ॥ प्रत्ययार्थत्वम् । तिङ्प्रत्ययार्थकर्मरूपत्वम् । यद्यपि किर्याविशेषणरूपे कर्मणि लकारो न, कर्तृसाहचर्येण धात्वर्थे भेदेनान्वयिकर्मण एव तत्र ग्रहणात् तथापि भाष्यप्रामाण्यात्सामान्यविशेषभावेनान्वयिनि किर्याविशेषणे कर्मणि लकारो भवत्येव ॥ अत एव स्तोकमित्यादेः किर्याविशेषणस्यैकत्वनपुंसकत्वेऽपि एतान्पोषानपुषदित्यादौ पुंस्त्वबहुवचन इति बोध्यम् ॥ ज्ञानलक्षणं तप इति । ज्ञानंजनकोपवासादिकरूपमित्यर्थः ॥ स एव संताप इति भाष्यस्य स एव संतापविशेष इत्यर्थः । विशेषेपि सामान्यसत्त्वात्स एवेत्यस्य नानुपपत्तिः ॥ भाष्ये—एतान्पोषानित्यस्य विशेषसमर्पकाणि गोपोषमित्यादीनि घञन्तानि बोध्यानि ॥

( १८९० कर्मवद्भावविकल्पवार्तिकम् ॥ १४ ॥ )

॥ \* ॥ दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दुहिपच्योः सकर्मकयोः कर्ता कर्म-

वद्बहुलं भवतीति वक्तव्यम् । दुग्धे गौः पयः स्वयमेव । तस्मादुदुम्बरः सलोहितं फलं पच्यते ॥

बहुलवचनं किमर्थम् ? ।

परस्मैपदार्थम् ।

यद्येवं नार्थो बहुलवचनेन । न हि परस्मैपदमिष्यते ॥

( प्रदीपः ) दुग्धे गौरिति । गौरुच्चति पय इत्यर्थः ॥ दुहेर्द्विकर्मकत्वात्कर्मस्थक्रियातुल्यक्रियत्वेपि सकर्मकत्वादप्राप्ते वचनम् । फलं पच्यत इत्यत्र वृक्षस्य कर्तृत्वविवक्षायामत्यन्तमप्राप्ते वचनम् ॥ अन्ये लाहुः—पचिरत्र विषये द्विकर्मको वृक्षस्य पार्कमन्तरेण फलपाकासंभवाद् वृक्षोऽकथितं कर्म । तस्यैव च यदा कर्तृत्वविवक्षा तदायं कर्मवद्भावः । एवंविध एव च विषये कर्मवद्भाव इष्यते, न पुनरोदनं पचतीत्यादौ ॥

( उद्घोतः ) अत्यन्तमप्राप्त इति । तुल्यक्रियत्वस्याप्यभावादिति भावः ॥ सकर्मकाणां प्रतिषेधोत्तरमस्योक्तत्वेन दुहिसाहचर्येण च सकर्मकत्वप्रयुक्ताप्राप्तावेवैतस्य विध्यर्थोत्तरेति ध्वनयन्नाह—अन्ये त्वाहुरिति । वृक्षस्य पाकमिति । वृक्षनिष्ठपाकानुकूलव्यापारं विनेत्यर्थः । तदा च कालस्य कर्तृत्वं बोध्यम् । एवं च पचैः फलपाकानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारोऽर्थः । तत्र फलपाकानुकूलव्यापाराश्रयत्वात्कर्तुरीप्सिततममिति वृक्षः कर्म । तस्य कर्तृत्वविवक्षायां भाष्योदाहरणसाम्राज्यात् । अकथितं कर्मैत्यत्राकथितपदमविवक्षितपरम् । कर्मत्वेनाविवक्षितमित्यर्थः ॥ किंत्वेन तर्हि विवक्षेत्यत्राह—तस्यैव चेति । न तु तत्पत्रविषयता, अस्य दुहादिषु भाष्येऽगणनात् । गौर्दुग्धे इत्यपि कर्तुरीप्सिततममिति कर्मत्वे एवोदाहरणं बोध्यम् ॥ विभागानुकूलव्यापारार्थकत्वे एव दुहेस्तदुदाहरणमिति तु न युक्तम् । तत्रार्थे कर्मस्थक्रियया तुल्यक्रियत्वानुपपादनं दित्याहुः ॥ यद्यपि कालस्याकर्तृत्वविवक्षायां कर्मणि लकारेपीदं सिध्यति तथापि उदुम्बरस्य कर्तृत्वविवक्षायामुदुम्बरः फलं पचतीत्येतद्व्यावृत्तये इदम् ॥ न पुनरोदनमिति । कर्मस्थक्रियया तुल्यक्रियत्वाभावादिति भावः ॥

( १८९१ इयन्विधिवार्तिकम् ॥ १५ ॥ )

॥ \* ॥ सृजियुज्योः श्यंस्तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सृजियुज्योः सकर्मकयोः कर्ता बहुलं कर्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । श्यंस्तु भवति ॥

सृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्तरि कर्मवद्भावो वाच्यः चिणात्मनेपदार्थः । सृज्यते मालाम्, असर्जि मालामिति ॥

युजेस्तु न्याय्ये कर्मकर्तरि यकोऽभावाय । युज्यते ब्रह्मचारी योगम् ॥

( प्रदीपः ) श्रद्धोपपन्न इति । श्रद्धायुक्ते कर्तरीत्यर्थः ॥ चिणात्मनेपदार्थ इति । श्यनाद्येव बाध्यते, न तु चि-

१ तापसेन तपस्तप्यते इत्यत्रेति भावः । ( र. ना. )

२ अयं कोष्ठकान्तर्गतः पाठः प्राचीनतरलेखकप्रमादात् ‘योगविभागेनेति’ ‘दुःखार्थत्वादिति’ इत्यनयोर्मध्ये पठितः सर्वेषु पुरुषेषूपलब्धोपि संदर्भसंगतये-

ऽस्मान्निवृत्त योगस्थाने स्थापित इति क्षन्तव्यं क्षमाव्रतैरिति आधिमथाः ॥

३ सामञ्जस्यादिति पाठः, फलितार्थो वा । ( र. ना. )

४ सविषये नित्यप्राप्तत्वादिति भावः । ( र. ना. )

णित्यर्थः । इयं तु प्रकृतेराद्युदात्तत्वं भवति, यकि तु लसार्व-  
धातुकाद्युदात्तत्वे यक एवोदात्तत्वमिति इयन्यकोरत्र स्वरे  
विशेषः ॥ सुज्यते मालामिति । श्रद्धया मालां निष्पाद-  
यतीत्यर्थः ॥ असर्जिं मालामिति । मालां निष्पादितवानि-  
त्यर्थः ॥ यकोऽभावायेति । अकारप्रश्लेषाद् यगूवाधनाये-  
त्यर्थः ॥ युज्यत इति । योगो ब्रह्मचारिणं युनक्ति संबधा-  
तीत्यर्थः । ततो ब्रह्मचारिणः कर्तृत्वविवक्षायां युज्यते ब्रह्मचारी  
योगमिति भवति ॥

( उद्द्योतः ) श्रद्धायुक्ते कर्तरीति । मुख्ये कर्तरीत्यर्थः ॥  
श्रद्धा आदरः, तेन युक्तो मुख्य एव, तस्यैव क्रियायामादरादिति  
बोध्यम् । तेनात्यन्तप्राप्तौ विध्यर्थोऽयमंशः ॥ इयन्यकोर्विशेष-  
माह—इयं नि त्विति ॥ मुख्यकर्तृत्वं निदर्शयति—श्रद्धयेति ।  
तत्र सृजेः कर्तरि इयन् सिद्धः, जिघात्मानेपदे एव कर्मवद्भावप्रयो-  
जने । इयन्स्तु कर्मवद्भावलक्ष्यका बाधो मा भूदिति प्रतिप्रसव-  
मात्रम् । दैवादिकः सृजिरकर्मक एवेति त्वश्रद्धेयमेवेति केचित् ॥

भाष्ये—न्याय्ये इति । न्याय उत्सर्गसूत्रम् कर्मवत्कर्मणेति  
तदनपेते तत्प्राप्तियोगे इति यावत् । सकर्मकत्वात्तदप्राप्तौ विधिः ।  
इयंस्तु अप्राप्त एव विधीयते यक् (गु) बाधनायेति विशेषः ॥ यकोऽभा-  
वायेत्यस्य इयंस्त्वंति आदिः ॥ योगो ब्रह्मचारिणमिति । पूर्वक-  
क्षेयम् ॥ संबध्नातीत्यस्य संबन्धानुकूलव्यापारवान् भवतीत्यर्थः ॥  
तत इति । प्रतियोगित्वावच्छिन्नः संबन्धो युजेरर्थः । प्रतियोगिता-  
श्रयत्वाच्च योगस्य कर्मत्वम् ॥ यत्तु—योगमिति प्रतियोगे द्वितीया ।  
एवं चाकर्मकत्वात्कर्मवद्भावे सिद्धे यगूवाधनाय इयन्मात्रविधानार्थ-  
मिदमिति ॥ तत्र । सृजियुज्योरिति वार्तिके सकर्मकयोरिति  
भाष्यविरोधापत्तेः ॥

( १८९२ कर्मवद्भावविधिवार्तिकम् ॥ १६ ॥ )

॥ \* ॥ करणेन तुल्यक्रियः कर्ता  
बहुलम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) करणेन तुल्यक्रियः कर्ता बहुलं कर्म-  
वद्भवतीति वक्तव्यम् । परिवारयति कण्टकैर्वृक्षः,  
परिवारयन्ते कण्टका वृक्षम् ॥

( प्रदीपः ) करणेनेति । बहुलप्रहणात्साध्वसिद्धिर्नती-  
त्यादौ न भवति ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये—परिवारयन्ते कण्टका इति । न च  
णिचश्चेल्लेनेनैवात्मनेपदं सिद्धम् । यक्चिणौ तु \*णिग्रिग्रन्थीति  
प्रतिषिद्धावेवेति व्यर्थमिदमिति वाच्यम् । कर्तृगामित्वाभावेऽपि  
आत्मनेपदार्थं णिचवद्भावार्थं च वार्तिकस्यावश्यकत्वात् ॥

( १८९३ प्रतिषेधवार्तिकम् ॥ १७ ॥ )

॥ \* ॥ स्वत्यादीनां प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्वत्यादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ।

स्वति कुण्डिका उदकम् स्वति कुण्डिकाया  
उदकम् । स्वन्ति वलीकान्युदकम् स्वति वली-  
केभ्य उदकम् ॥

( प्रदीपः ) स्वति कुण्डिकेति । निष्कामदुदकं निष्का-  
मयतीत्यस्मिन्नर्थे तुल्यक्रियत्वात् प्राप्तः कर्मवद्भावो निषिध्यते ॥

( उद्द्योतः ) स्वति कुण्डिका उदकमित्यस्य निष्कामयती-  
त्यर्थः ॥ स्वति कुण्डिकाया इत्यस्य निष्कामतीत्यर्थः ॥ तदाह—  
निष्कामदिति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

स तर्हि प्रतिषेधो वक्तव्यः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यः । तुल्यक्रिय इत्युच्यते । क्रियान्तरं  
चात्र गम्यते । इह तावत्स्वति कुण्डिका उदक-  
मिति विसृजतीति गम्यते । स्वति कुण्डिकाया  
उदकमिति निष्कामतीति गम्यते ॥ स्वन्ति वली-  
कान्युदकमिति विसृजन्तीति गम्यते । स्वति व-  
लीकेभ्य उदकमिति पततीति गम्यते ॥

( प्रदीपः ) विसृजतीति गम्यते इति । तथा च लोके  
कथ्यते—कृपणोसौ न किञ्चित् स्वतीति । विसर्गश्च दानमु-  
च्यते इति तुल्यक्रियत्वाभावः ॥

( उद्द्योतः ) ननु विसर्गोऽपि विभागानुकूलव्यापारो निष्का-  
मणादनतिरिक्तोऽत आह—विसर्गश्च दानमिति । मुख्यदानपदा-  
र्थस्यात्रारोप इति भावः ॥

( १८९४ यक्चिण्प्रतिषेधवार्तिकम् ॥ १८ ॥ )

॥ \* ॥ भूषाकर्मकिंरादिसनां चान्यत्रा-  
त्मनेपदात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भूषाकर्मकिंरादिसनन्ताच्च अन्यत्रा-  
त्मनेपदात् प्रतिषेधो वक्तव्यः । भूषयते कन्या स्व-  
यमेव । अबुभूषत कन्या स्वयमेव । मण्डयते कन्या  
स्वयमेव । अममण्डत कन्या स्वयमेव ॥ किंरादि—  
अवकिरते हस्ती स्वयमेव । अवाकीर्ण हस्ती स्वय-  
मेव । [ गिरते ग्रासः स्वयमेव । अगीर्ण ग्रासः स्वय-  
मेव ] । सन्—चिकीर्षते कटः स्वयमेव । अचिकी-  
र्षिष्ठ कटः स्वयमेव ॥ कर्मवद् ॥ ८७ ॥

( प्रदीपः ) भूषाकर्ममिति । कर्मशब्दः क्रियावाची । भूषा-  
फलं च शोभाख्यं कर्मणि दृश्यते इति कर्मस्था भूषा ॥ अण्य-  
न्तार्थं च भूषाप्रहणम् पृथन्तानां च वक्ष्यमाणेन यक्चिणोः  
प्रतिषेधस्य सिद्धत्वात् । तेनालङ्कुरुते स्वयमेव कन्या, अलम-  
कृत कन्येति भवति ॥ अवकिरत इति । हस्तिनं कश्चित्पां-  
खादिनावकिरति । तत्र सौकर्यात्कर्तृत्वेन हस्ती विवक्ष्यते ॥

१ प्रत्ययाद्युदात्तत्वमित्यर्थः । ( र. ना. )

२ कर्मस्थक्रियया तुल्यक्रियत्वाभावादिति भावः । ( र. ना. )

३ कर्मवद्भावाप्राप्तवित्यर्थः । ( र. ना. )

४-५-६ 'किरति' इत्येकस्मिन् पुस्तके ॥

७ नोपलभ्यते लिखितपुस्तकेषु ।

चिकीर्षत इति । करोतिक्रियापेक्षमत्र कर्मस्थक्रियत्वम् । इच्छा तु कर्तृस्थैव । अर्थाच्च करोतेः प्राधान्यं तदर्थत्वाद-  
च्छायाः ॥ ८७ ॥

( उद्घोतः ) सिद्धत्वादिति । वक्ष्यमाणेन यक्चिणोः प्रति-  
षेधे सिद्धेऽपि स्यतासिविषये चिण्वद्भावाभावाय ण्यन्तेऽपि एतत्प्र-  
वृत्तिरावश्यकी । अन्यत्रात्मनेपदादित्यनेन तस्याप्यत्र निषेधात् ॥  
णिश्रन्थीलनेन तु न सिद्धिः । न हि चिणिनपेधेन चिण्वद्भाव-  
निषेधो लभ्यते इति चिन्त्यमेतत् ॥ कर्तृत्वेन हस्तीति । अव-  
किरते व्याप्तो भवतीत्यर्थे इति भावः ॥ आद्यकक्षायां विक्षेपणेन  
प्राप्तं करोतीत्यर्थः ॥ भाष्येऽवाकीर्णं । अन्यत्रात्मनेपदादि-  
त्युक्तेचिण्वद्भावोऽपि नेति भावः ॥ अत एवेदं वार्तिकं न दुहेत्यत्र  
न पठितम् । चिकीर्षेरिच्छावाचकत्वात्कर्मस्थक्रियत्वाभावमाश-  
ङ्क्याह—करोति क्रियापेक्षमिति ॥ ननु यतः परलवाच्यस्य कर्म-  
वद्भावस्तत्प्रधानार्थस्य न कर्मस्थत्वमित्यत आह—अर्थाच्चेति ॥ ८७ ॥



( ४३२ यक्चिणप्रतिषेधसूत्रम् ॥ ३।१।५ आ. २ )

७०६ न दुहस्रुनमां यक्चिणौ

॥ ३।१।८९ ॥

( १८९५ यक्चिणप्रतिषेधवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमणिश्रि-  
ब्रूजामुपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमणिश्रिब्रू-  
जामुपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥ णि—कारयते कटः स्वय-  
मेव । अचीकरत कटः स्वयमेव । णि ॥ श्रि—उच्छ्र-  
यते दण्डः स्वयमेव । उदशिश्रियत दण्डः स्वयमेव ।  
श्रि ॥ ब्रूज—ब्रूते कथा स्वयमेव । अवोचत कथा  
स्वयमेव ॥

भारद्वाजीयाः पठन्ति—

( १८९६ भारद्वाजीयवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ यक्चिणोः प्रतिषेधे ॥ \* ॥

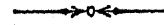
( भाष्यम् ) णिश्रन्थिप्रन्थिब्रूजात्मनेपदाकर्मका-  
णामुपसंख्यानम् \* इति ॥ न दुहस्रु ॥ ८९ ॥

( प्रदीपः ) न दु ॥ ८९ ॥ यक्चिणोरिति । आत्मने-  
पदविधावकर्मका ये धातवो निर्दिष्टास्ते यदान्तर्भावितपण्यार्थाः  
सकर्मका भवन्ति तदा कर्मवद्भावात् प्राप्तौ यक्चिणौ प्रतिषि-  
ध्येते । यथा विकुर्वते सैन्धवा वलग्न्तीत्यर्थः । तान् यदा अन्धो

वदगयति तदा तेषां कर्मत्वम् । पुनः सौकर्यातिशयात्कर्तृत्व-  
विवक्षायां विकुर्वते सैन्धवाः स्वयमेव व्यकृषत सैन्धवाः स्वय-  
मेवेति यक्चिणौ न भवतः । उतपुच्छयते गौरिलत्राप्यन्तर्भा-  
वितपण्यर्थत्वात्कर्मवद्भावाद्यक्चिणोः प्राप्तिः ॥ ब्रूते कथेति ।  
वचनं शब्दप्रकाशनफलत्वात्कर्मस्थम् ॥ ८९ ॥

( उद्घोतः ) न दुहस्रुनमाम् ॥ ८९ ॥ अकर्मकाणां कर्मस्थ-  
क्रियया तुल्यक्रियकर्त्रेभावात्कर्मवत्त्वाप्राप्तौ निषेधो व्यर्थोऽत आह—  
आत्मनेपदेति ॥ सकर्मका भवन्तीति । ततो व्यापारनिवृत्तौ  
यदा कर्मकर्तृत्वमिति शेषः ॥ व्यकृषतेति । अत्र चिण्वद्भावोपि  
नेति कैयटाशयमाहुः केचित् ॥ कृञ् इत्यनुवर्तमाने वेः शब्दकर्मणः  
अकर्मकाच्चेत्यत्रैयं निर्दिष्टः ॥ परे तु पक्षे चिण्वद्भावे व्यकारिषते-  
त्यपि बोध्यम् । यदि चिणप्रतिषेधे चिण्वद्भावप्रतिषेधोऽपीष्टः स्यात्,  
तर्हि भूषाकर्मैति पूर्ववार्तिकमप्यत्रैव कुर्यात् एतद्वा तत्रैव कुर्यात् ।  
विभेदेन करणाच्च चिण्वद्भावस्य प्रतिषेधोऽनेन नेति ध्वनयति ।  
चिण उदाहरणं एकवचने बोध्यमित्याहुः ॥

भारद्वाजीयानां हेतुमत्पदस्यागे वीजमाह—उत्पुच्छयत इति ।  
अत्र यगादिकं न ॥ ब्रूते कथेति । अत्रेति शेषः । प्रकाशनफलकं  
वचनं ब्रूजोऽर्थः । प्रकाशनस्य कर्ममात्रनिष्ठत्वाच्छब्दे प्रकाशनकृत-  
विशेषदर्शनाच्च कर्मस्थत्वं बोध्यम् ॥ ८९ ॥



( ४३३ कर्मवद्भावे इयन्परस्यैपदविधिसूत्रम् ॥ ३।१।५ आ. २ )

७०७ कुषिरजोः प्राचां इयन् परस्यै-

पदं च ॥ ३।१।९० ॥

( १८९७ इयन्विषयपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कुषिरजोः इयन्विधाने सार्व-  
धातुकवचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कुषिरजोः इयन्विधाने सार्वधातुक-  
ग्रहणं कर्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) कुषिरजोः ॥ ९० ॥ यकि प्राप्ते इयन्विधी-  
यते । तेन इयनि जिनत्यादिरित्याद्युदात्तं पदं भवति । शप्-  
इयनोर्नित्यमिति नित्यश्च नुमागमः कुष्यन्ती जङ्घेति ॥  
सार्वधातुकवचनमिति । सार्वधातुके विषयभूते इयन्  
परस्यैपदे भवत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) कुषिरजोः ॥ ९० ॥ यक्इयनोर्विशेषं दर्श-  
यति—जिनत्यादिरित्यादिना ॥ परस्यैपदस्य सार्वधातुके विधाना-  
संभवादाह—विषयेति ॥

१ 'णिश्रन्थि' इति वार्तिकेन ॥

२ आत्मनेपदातिरिक्तस्य सर्वस्य निषेधेन चिण्वद्भावस्यापि निषेधादेवे-  
त्यर्थः । ( र. ना. )

३ व्यकृषतेतिप्रयोगो निर्दिष्ट इत्यर्थः । ( र. ना. )

४ कैयटरथस्य 'वचन'मित्यस्यादाविति भावः । ( र. ना. )

( १८९८ अन्यथानुपपत्तिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अवचने हि लिङ्लिटोः

प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अक्रियमाणे हि सार्वधातुकग्रहणे लिङ्लिटोः प्रतिषेधो वक्तव्यः स्यात् । चुकुषे पादः स्वयमेव । ररञ्जे वस्त्रं स्वयमेव । कोषिषीष्ट पादः स्वयमेव । रङ्गीष्ट वस्त्रं स्वयमेव ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—लिङ्लिटोः प्रतिषेध इति । तत्र नित्यात्मनेपदस्यैवेष्टत्वादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

क्रियमाणे चापि सार्वधातुकग्रहणे कतीह कुष्णानाः पादा इति अत्रापि प्राप्नोति ॥ इयना च स्यादीनां बाधनं प्राप्नोति । कोषिष्यते पादः स्वयमेव । अकोषि पादः स्वयमेव । रङ्क्ष्यते वस्त्रं स्वयमेव । अरञ्जि वस्त्रं स्वयमेव ॥

( प्रदीपः ) कुष्णाना इति । ताच्छ्लील्यवयोवचनेति चानश् । तत्र इयन् प्राप्नोति परस्मैपदं चान्वाचयशिष्टं मन्यते ॥ इयना चेति । विशेषविहितत्वादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) ननु कुष्णाना इत्यत्र परस्मैपदाप्राप्तेस्तत्सहचरितः इयन्त्रपि नेत्यत आह—परस्मैपदं चेति ॥ विशेषविहितत्वादिति । ललुङ्लुङ्यतिरिक्ते इयन्श्चारितार्थादिदं चिन्त्यम् । परत्वाद्बाध इति उचितमिति कश्चित् ॥

( परिसंख्यावार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

यत्तावदुच्यते—सार्वधातुकग्रहणं कर्तव्यमिति । न कर्तव्यम् । प्रकृतमनुवर्तते ॥ क्व प्रकृतम् ? । “सार्वधातुके यगि”ति ।

( अनुवर्तनेऽनुवयविचारभाष्यम् )

यदि तदनुवर्तते पूर्वसिन्योगे किं समुच्चयः—ले च, सार्वधातुके चेति । आहो खित्—लग्रहणं सार्वधातुकविशेषणम् ॥ किं चातः ? ।

यदि समुच्चयः, कतीह भिन्दानाः कुसूला इत्यत्रापि प्राप्नोति ॥

अथ लग्रहणं सार्वधातुकविशेषणम् । लिङ्लिटोर्न सिध्यति—विभिदे कुसूलः स्वयमेव, भित्सीष्ट कुसूलः स्वयमेवेति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये पूर्वसिन्योग इति । कर्मवरकर्मणेत्यत्र ॥ ले च सार्वधातुके चेति । लसार्वधातुकयोर्वाच्यत्वेन स्थितः कर्मवदित्यर्थः ॥ भिन्दाना इति । चानश् ॥

( सार्वधातुकविशेषणत्वस्वीकारभाष्यम् )

अस्तु लग्रहणं सार्वधातुकविशेषणम् ॥

( दूषणसारकभाष्यम् )

ननु चोक्तं लिङ्लिटोर्न सिध्यतीति ॥

१-२ वार्तिके भाष्ये च ‘लिङ्लिटोः’ इत्येवमेव पाठो भवेत् अत्र उदाहरणकमोपलम्भात् । सूत्रपाठक्रमव्यागे मानाभावाच्च ॥ अक्षरसमाज्ञायक्रमस्य अस्यत्वेऽष्टाध्यायमपि तदङ्गीकारस्यैवापत्तेः ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

लिङ्लिटग्रहणमपि प्रकृतमनुवर्तते । क्व प्रकृतम् । “कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि” “लिङ्याशिष्यङि”ति च ॥

एवं च कृत्वा सोप्यदोषो भवति—यदुक्तं ‘कतीह कुष्णानाः पादा’ इत्यत्रापि प्राप्नोतीति । इहापि लविशिष्टं सार्वधातुकग्रहणमनुवर्तते ॥

( उद्घोतः ) भाष्य इहापि लेति । कुषिरजोरित्यत्रापि लादेशसार्वधातुकविषये इत्यर्थ इति भावः ॥

( दूषणान्तरनिराकरणभाष्यम् )

यदप्युच्यते—इयना च स्यादीनां बाधनं प्राप्नोतीति ॥ यक्प्रतिषेधसंबन्धेन इयनं वक्ष्यामि—“न दुहस्रुनमां यक्चिणौ” । ततः—“कुषिरजोः प्राचां” । कुषिरजोः प्राचां यक्चिणौ न भवतः । ततः—“इयन् परस्मैपदं चे”ति ॥

( प्रदीपः ) यक्प्रतिषेधसंबन्धेनेति । तेन यत्र यक् प्राप्तस्य प्रतिषेधस्तत्र इयन्परस्मैपदे भवतो नान्यत्रेति स्यादिविषये न भवतः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यथैव तर्हि यको विषये इयन् भवति, एवं चिणोपि विषये प्राप्नोति—अकोषि पादः स्वयमेव । अरञ्जि वस्त्रं स्वयमेव ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि द्वितीयो योगविभागः करिष्यते—“न दुहस्रुनमां चिण्” भवति । ततो “यक्” यक् च न भवति दुहस्रुनमाम् । ततः “कुषिरजोः प्राचां” यक् न भवति । ततः “इयन् परस्मैपदं चे”ति ॥

अथ वा—अनुवृत्तिः करिष्यते—“स्यातासी ललुटोः” “चिल्लुङि” “चलेः सिज्” भवतीति । ‘कर्तरि शप्’ ‘स्यातासी ललुटोः’ “चिल्लुङि” “चलेः सिज्” भवतीति । ‘दिवादिभ्यः इयन्’ ‘स्यातासी ललुटोः’ “चिल्लुङि” “चलेः सिज्” भवतीति । “कुषिरजोः प्राचां इयन्परस्मैपदं चे” “स्यातासी ललुटोः” “चिल्लुङि” “चलेः सिज्” भवतीति ॥

अथ, वान्तरङ्गाः स्यादयः ॥ कान्तरङ्गता ? । लावस्थायामेव स्यादयः । सार्वधातुके इयन् ॥ कुषिरजोः प्राचाम् ॥ ९० ॥

( प्रदीपः ) लावस्थायामेवेति । अकृतेष्वेव लादेशेषु विशेषविहिताः स्यादयो भवन्ति पूर्व, तैश्च इयनो विरोधाद् बाधितत्वात् संनियोगशिष्टं परस्मैपदमपि न भवति ॥ ९० ॥

( उद्घोतः ) अकृतेष्वेव लादेशेष्विति । निरवकाशत्वा-

६ एतत्सूत्रद्वयनिर्देशक्रमेणापि ‘लिङ्लिटोः’ इत्येवमेव पाठो वार्तिकभाष्ययोर्भवेत् इति प्रतीयते ॥

७ भिन्दाना इतिवत्, ‘कुष्णानाः’ इत्यत्रापि चानशेवेति भावः ॥

भावेऽपि विशेषविहितत्वस्य पूर्वप्रवृत्तिप्रयोजकतेति भावः ॥ परे तु स्यतासी इति सूत्रे “आयादय” इत्यत आर्द्धधातुक इत्यनुवर्त्य तत्त्वावस्थायामेव स्यतासी । अतोऽकृतेष्वेवादेशेषु तत्प्रवृत्तिः ॥ इदमेवाभिप्रेत्य भाष्ये लावस्थायामित्युक्तमित्याहुः ॥ इयनो विरोधादिति । उभयोः परत्वासंभवरूपो विरोधः ॥ ९० ॥

( ४३४ अधिकारसूत्रम् ॥ ३ । १ । ५ आ. ४ )

७०८ धातोः ॥ ३ । १ । ९१ ॥

( अधिकारावधिनिर्णयाधिकरणम् )

( भाष्यभाष्यम् )

आकुतोयं धात्वधिकारः । किं प्राग्लादेशात् । आहोस्विद् आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः ? ।

( प्रदीपः ) धातोः ॥ ९१ ॥ स्वरितत्वप्रतिज्ञानादधिकारत्वमस्य ज्ञायते न त्ववधिविशेषः । अथापि स्वरिते सति नाधिकारो भवतीति व्याख्यानम् । तथापि दुर्लभ्यत्वाच्च ज्ञायते क स्वरितत्वं धात्वधिकारनिवृत्त्यर्थं प्रतिज्ञातमिति पृच्छति—आकुत इति ॥

( उद्घोतः ) धातोः ॥ ९१ ॥ तथापीति । धात्वधिकारनिवृत्त्यर्थं प्रतिज्ञातं यत्स्वरितं तत्केति न ज्ञायते इति योजना ॥

( १८९९ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ धात्वधिकारः प्राग्लादेशात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्राग्लादेशाद्धात्वधिकारः ॥

( १९०० हेतुवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ लादेशे हि व्यवहितत्वाद-  
प्रसिद्धिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनुवर्तमाने हि लादेशे धात्वधिकारे व्यवहितत्वादप्रसिद्धिः स्यात् ॥ किं च स्यात् ? ।

( १९०१ दोषदर्शकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ आद्ये योगे न व्यवधये तिङः  
स्युः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आद्ये योगे विकरणैर्व्यवहितत्वात्तिङो न स्युः । पचति पठति ॥

इदमिह संप्रधार्यम् । विकरणाः क्रियन्ताम्, आदेशा इति । किमत्र कर्तव्यम् ? ।

परत्वादादेशाः ॥

नित्या विकरणाः । कृतेष्वप्यादेशेषु प्राप्नुवन्ति अकृतेष्वपि प्राप्नुवन्ति । नित्यत्वाद्विकरणेषु कृतेषु विकरणैर्व्यवहितत्वादादेशा न प्राप्नुवन्ति ॥

अनवकाशास्तर्ह्यदेशाः ॥

सावकाशा आदेशाः । कोऽवकाशः । य एते लुग्विकरणाः श्लुग्विकरणाः लिङ्लिटौ च ॥

( प्रदीपः ) आद्ये योग इति । तिस्रस्त्रीस्यत्र ॥ विकरणैरिति । स्याद्योत्र विकरणा अभिप्रेता न शबादयस्तेषां सार्वधातुकाश्रयत्वादकृते लादेशे प्राप्यभावात् । यदा तु सार्वधातुक इति विषयसप्तमीपक्षस्तदाऽकृतेति लादेशे शबादीनां प्राप्तिरस्ति ॥

( उद्घोतः ) अनुदात्तङित इत्यादिभिरादेशविधानात्तत्र धात्वधिकाराभावात् भाष्ये उक्तमाद्ये योग इति ॥ सर्वेषामेतन्नियामकत्वात्तिस्रस्त्रीत्यस्याद्यत्वमिति भावः ॥ आद्ये योगे धातोरित्यस्य संबन्धे व्यवधाने तिङो न स्युरिति संबन्धः ॥ पचति पठति इति भाष्योदाहरणासंगतिं मत्वाह—यदा त्विति । इदमेवाभिप्रेत्य विकरणानामादेशापेक्षया नित्यत्वं वक्ष्यति ॥

( १९०२ दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ न स्यादेत्वं टेष्टितां यद्विधत्ते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यच्च टित्संज्ञकानां टेरेत्वं विधत्ते, तच्च विकरणैर्व्यवहितत्वादादेशानां न स्यात् ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये टित्संज्ञानामिति । इत्संज्ञकटकारवतामिलर्थः ॥

( १९०३ दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ एशः शित्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एकारश्च शित्कर्तव्यः । किं प्रयोजनम् ? । ‘सित्सर्वस्ये’ति सर्वस्यादेशो यथा स्यात् । अक्रियमाणे हि शकारे “तस्मादित्युत्तरस्यादेः परस्य” इति तकारस्यैत्वे कृते द्वयोरेकारयोः श्रवणं प्रसज्येत । निवृत्ते पुनर्लादेशे धात्वधिकारे “अलोन्यस्य” विधयो भवन्तीत्येकारस्य एकारवचने प्रयोजनं नास्तीति कृत्वा अन्तरेणापि शकारं सर्वोदेशो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) द्वयोरेकारयोरिति । यद्यप्येकस्यायादेशस्तथाप्यादेशश्रवणद्वारेण तस्यापि श्रवणप्रसङ्ग इति भावः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये एकारस्यैकारवचने इति । यद्यपि विशेषविहितत्वात् ‘टित्’ इति बाधित्वा लिटस्तद्वयोरिति प्राप्नोति तथापि एकारस्य सिद्धावेकारवचने प्रयोजनं नास्तीति व्याख्येयम् ॥ सर्वोदेशो भविष्यतीति । निर्दिश्यमानपरिभाषयेति भावः ॥

( १९०४ दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ यच्च लोटो विधत्ते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यच्च लोटो विधीयते । तच्च विकरणैर्व्यवहितत्वाच्च स्यात् । किं पुनस्तत् ? । “लोटो लङ्ङत्” । “एरुः” । “सेह्यपिच्च” । “वा छन्दसी”ति ।

( १९०५ दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ यच्चाप्युक्तं लङ्लिङोस्तच्च न  
स्यात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [ यच्चाप्युक्तं लङ्लिङोः, तच्च न  
स्यात् । ] किं पुनस्तत् ? । “नित्यं ङितः” । “इतश्च” ।  
“तस्थस्थमिपां तांतंतामः” । “लिङः सीयुद्” ।  
“यासुद् परस्मैपदेपूदात्तो ङिञे”ति ॥ तस्मात्प्रा-  
ग्लादेशाद्धात्वधिकारः ॥

( प्राग्लादेशाद्धात्वधिकारपक्षे दूषणोपक्रमभाष्यम् )

यदि प्राग्लादेशाद्धात्वधिकारः ॥

( १९०६ प्राग्लादेशाद्धात्वधिकारे दूषणवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ अकारः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अकारः शित्कर्तव्यः । किं प्रयोज-  
नम् ? । शित्सर्वस्येति सर्वादेशो यथा स्यात् । अनु-  
वर्तमाने पुनर्लादेशो धात्वधिकारे “तस्मादित्युत्त-  
रस्य” “आदेः परस्ये”ति धकारस्यात्वे कृते द्वयोर-  
कारयोः पररूपेण सिद्धं रूपं स्यात्—पेच यूयं चक्र  
यूयमिति ॥

( प्रदीपः ) अकार इति । यस्थस्य स्थाने विधीयते ॥  
धकारस्यात्व इति । ननु पच् थ इति स्थिते परत्वादिद्  
प्राप्नोति । नैष दोषः । अकारो नित्यः कृतेऽपीति प्राप्नोति,  
अकृतेऽपि । इह तु कृते अकारे बलादित्वाभावाच्च प्राप्नोतीत्य-  
नित्यः । यद्यपि शब्दान्तरस्य प्राप्त्या अकारस्यानित्यत्वम् ।  
तथापि कृताकृतप्रसङ्गित्वाभित्यत्वमस्येव । न च शब्दान्तर-  
प्राप्तिकृतमनित्यत्वमिह सर्वत्र शास्त्र आश्रीयते ॥

( उद्ध्योतः ) यस्थस्येति । परस्मैपदानामित्यनेन ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

ननु च निवृत्तेऽपि लादेशे धात्वधिकारे अलो-  
प्यस्य विधयो भवन्तीत्यकारस्याकारवचने प्रयो-  
जनं नास्तीति कृत्वाऽन्तरेणापि शकारं सर्वादेशो  
भविष्यति ॥

( दूषणस्थापकभाष्यम् )

अस्यन्यदकारस्याकारवचने प्रयोजनम् । किम् ? ।  
वक्ष्येतत्—\* अकारस्याकारवचनं समसंख्यार्थ-  
मिति ॥

( १९०७ प्राग्लादेशाद् धात्वधिकारे दूषणान्तर-  
वार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

[ ॥ \* ॥ आर्धधातुकसंज्ञायां धातु-  
ग्रहणम् ॥ \* ॥ ]

( भाष्यम् ) आर्धधातुकसंज्ञायां धातुग्रहणं कर्त-

व्यम् । धातोः परस्यार्धधातुकसंज्ञा यथा स्यात् ।  
इह मा भूद् वृक्षत्वं वृक्षतेति ॥ तस्माद्लादेशे धात्व-  
धिकारोऽनुवर्त्यः ॥

( प्रथमदूषणसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—\*आद्ये योगे न व्यवाये तिङः  
स्युरिति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः ।

( १९०८ दूषणोद्धारवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

[ ॥ \* ॥ आनुपूर्व्यात् सिद्धम् ॥ \* ॥ ]

( भाष्यम् ) आनुपूर्व्यात्सिद्धमेतत् । नात्राकृते-  
ष्वादेशेषु विकरणाः प्राप्नुवन्ति । किं कारणम् ? ।  
सार्वधातुके विकरणा उच्यन्ते । न चाकृतेष्वादे-  
शेषु सार्वधातुकत्वं भवति ॥

( उद्ध्योतः ) आद्ये सार्वधातुके विकरणा इति ॥ विषय-  
सप्तम्यां तु परिभाषाबाधः स्यादिति भावः ॥

( दूषणसाधकभाष्यम् )

ये तर्हि नैतस्मिन्विशेषे विधीयन्ते । के पुनस्ते ? ।  
स्यादयः ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

अत्रापि धातुग्रहणं विहितविशेषणम्—धातो-  
र्विहितस्य लस्येति ॥

( उद्ध्योतः ) आद्ये अत्रापि । सिद्धमिति शेषः । कथम् ?  
तत्राह—धातुग्रहणमिति । टेरेत्वसिद्धये विषयसप्तमी नादिनोपि  
विहितविशेषणमावश्यकमिति भावः ॥

( दूषणभाष्यम् )

यद्येवं विन्दतीति णलादयः प्राप्नुवन्ति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

धातुनात्र विहितं विशेषयिष्यामः । विदिना आ-  
नन्तर्यं, धातोर्विहितस्य लस्य विदेरनन्तरस्येति ॥

( दूषणभाष्यम् )

इह तर्हि अजक्षिष्यन् अजागरिष्यन् इति अभ्य-  
स्ताद् झेर्जुस् भवतीति जुस्भावः प्राप्नोति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

अत्रापि धातुना विहितं विशेषयिष्यामः । अ-  
भ्यस्तेनानन्तर्यम् । धातोर्विहितस्याभ्यस्तादनन्त-  
रस्येति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

आत इत्यत्र कथं विशेषयिष्यसि ? ॥

यदि तावद्धातुग्रहणं विहितविशेषणम् । आका-  
ग्रहणमानन्तर्यविशेषणम् । अलुनन् अपुनन् इत्य-  
त्रापि प्राप्नोति ॥

( भाष्यम् ) अथाकारग्रहणं विहितविशेषणं धातु-  
ग्रहणमानन्तर्यविशेषणम् । अपिबन् अजिग्रन् इत्य-  
त्रापि प्राप्नोति ॥

( उद्घोतः ) अपिबन्नि । शब्दादेशस्य परादिबद्धान्तेन  
ग्रहणादिति भावः । लङ् शाकटायनस्येति जुस्प्राप्तः ।

( भाष्यम् ) अस्तु तर्हि धातुग्रहणं विहितविशेष-  
णमाकारग्रहणमानन्तर्यविशेषणम् ॥

( उद्घोतः ) वस्तुतः क्वचिद्विहितविशेषणमिति सर्वत्र तदेवा-  
श्रयणीयमिति न नियम इति न दोषः । भाष्यकारस्तु तथाश्रयणेपि  
अभ्युपेत्यवादेन दोषाभावं प्रतिपादयति ॥

( दूषणस्यारणभाष्यम् )

ननु चोक्तमलुनन्नपुनन्नित्यत्रापि प्राप्नोतीति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । लोपे कृते न भविष्यति ॥

( दूषणसाधकभाष्यम् )

नात्र लोपः प्राप्नोति । किं कारणम् । ईत्वेन  
बाध्यते ॥

( दूषणबाधकभाष्यम् )

नात्रेत्वं प्राप्नोति । किं कारणम् । अन्तिभावेन  
बाध्यते ॥

( दूषणसाधकभाष्यम् )

नात्रान्तिभावः प्राप्नोति । किं कारणम् । जुस्-  
भावेन बाध्यते ॥

( दूषणबाधकभाष्यम् )

नात्र जुस्भावः प्राप्नोति । किं कारणम् । लो-  
पेन बाध्यते ॥

( दूषणसाधकभाष्यम् )

लोप ईत्वेन । ईत्वमन्तिभावेन । अन्तिभावो  
जुस्भावेन । जुस्भावो लोपेनेति चक्रकमव्यवस्था प्र-  
सज्येत ॥

( उद्घोतः ) चक्रकमव्यवस्थेति भाष्ये चक्रकरूपाऽव्यव-  
स्थेत्यर्थः ॥

( दूषणबाधकभाष्यम् )

नास्ति चक्रकप्रसङ्गः । न चाव्यवस्थाकारिणा  
शास्त्रेण भाष्यम् । शास्त्रेण नाम व्यवस्थाकारिणा  
भवितव्यम् । न चात्र इलादिना मुहूर्तमपि शक्य-  
मवस्थातुम् । तावत्येवात्रान्तिभावेन भवितव्यम् ।  
अन्तिभावे कृते लोपः । लोपेन व्यवस्था भविष्यति ।

( प्रदीपः ) तावत्येवेति । कृत एव ज्ञान्देऽकृत एव  
विकरण इत्यर्थः । आयन्नादिषूपदेशिवद्गुणानुपदेशकाल एव  
ज्ञानान्तदेशेन भाष्यमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) आयन्नादिष्विति । आदिना श्रोऽतन्त इत्यस्यापि  
ग्रहादिति भावः ॥ उपदेशकाल एवेति । उपदेशोत्तरकाले कार्या-

न्तरात्पूर्वमेवेत्यर्थः ॥ भाष्येऽन्तर्भावे कृते लोप इति । न चान्त-  
रङ्गत्वात्पूर्वं कृतेऽप्यन्तौ लोपात्पूर्वं स्थानिवद्भावेन लिखात् जुष्मा-  
शोति अनाङ्गत्वेनान्तरङ्गत्वादिति वाच्यम् । च्लेर्जुंसित्यत्रेकारस्यो-  
च्चारणार्थत्वेनास्तिवधित्वेन स्थानिवत्त्वाभाव इत्याशयात् ॥ वस्तुत-  
आत इत्यत्र जुष्मग्रहणानुवृत्तेस्तत्सूत्रस्थभाष्ये च्लि लुङीति सूत्रस्थ-  
भाष्ये चोक्तत्वेन न कापि दोषप्रसङ्ग इति ध्येयम् ॥ प्रकृतसूत्रस्थ-  
भाष्यं त्वेकदेशयुक्तिः ॥

( तृतीयदूषणोद्धारभाष्यम् )

यदप्युच्यते—\*पशः शित्वमिति । क्रियते न्या-  
स एव ॥

( सूत्रप्रयोजनाधिकरणम् )

( भाष्येपभाष्यम् )

कानि पुनरस्य योगस्य प्रयोजनानि ।

( १९०९ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ११ ॥ ) .

॥\*॥ प्रयोजनं प्रातिपदिकप्रतिषेधः ॥\*॥

( भाष्यम् ) प्रातिपदिकप्रतिषेधः प्रयोजनम् ।  
धातोस्तव्यदादयो यथा स्युः प्रातिपदिकान्माभू-  
वन्निति ॥

( प्रदीपः ) प्रातिपदिकान्मा भूवन्निति । द्वितीया-  
दिवदिति भावः ॥

( उद्घोतः ) द्वितीयादीति । सा हि यथा शब्दान्तरवाच्यक्रिया-  
पेक्षे स्वप्रकृत्यर्थस्य कर्मत्वे विधीयन्ते तथा तव्यादयोपि स्युरित्यर्थः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । साधने तव्यदादयो विधी-  
यन्ते । साधनं च क्रियायाः । क्रियाऽभावात् साध-  
नाऽभावादसत्यपि धात्वधिकारे प्रातिपदिकात्त-  
व्यदादयो न भविष्यन्ति ॥

( प्रदीपः ) साधन इति । प्रकृतिवाच्यान्तरङ्गक्रियासा-  
धनसंभवे शब्दान्तरवाच्यबहिरङ्गक्रियासाधने तव्यादयो न भ-  
विष्यन्ति । द्वितीयादयस्तु प्रातिपदिकादेव विधीयमानाः शब्दा-  
न्तरवाच्यक्रियापेक्ष एव साधने वचनसामर्थ्याद्भवन्तीति भावः ॥

( उद्घोतः ) द्वितीयादिभ्यो वैषम्यमुपपादयति—प्रकृतीति ॥

( १९१० प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १२ ॥ )

॥ \* ॥ स्वपादिषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्वपादिषु तर्हि प्रयोजनम् । स्वपिति ।  
सुपितीति मा भूत् ॥

( प्रदीपः ) स्वपादिष्विति । येऽपभ्रंशरूपाः क्रियावचना  
आणवयत्यादितुल्यास्तेभ्यस्तव्यादयो मा भूवन् । न हि ते  
धातवः । पाठेन धातुसंज्ञायास्तेषां निरस्तत्वात् । ततः स्व-

१ 'न स्यादेत्वं देष्टितां यद्विधत्ते ॥\*॥' इति द्वितीयदूषणमपि प्रथम-  
दूषणोद्धाररीत्यैवोद्धृतमिति तृतीयदूषणोपन्यासः कृतः ॥



पितीति प्रयोक्तव्ये सुपितीति प्रयोगोऽपभ्रंशः ततः प्रत्ययोत्पत्तिर्मा भूदित्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) येऽपभ्रंशेति । स्वप्यपभ्रंशत्वात्क्रियावाचकत्वमेवामस्तीति भावः ॥ ततः प्रत्ययोत्पत्तिरिति । सुपितीत्येतदघटकात्सुपरित्यर्थः ॥

( १९११ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १३ ॥ )

॥ \* ॥ अङ्गसंज्ञा च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अङ्गसंज्ञा च प्रयोजनम् । “यस्यात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेङ्गम्” इति धातोरङ्गसंज्ञा सिद्धा भवति ॥

( प्रदीपः ) अङ्गसंज्ञेति । असति धात्वधिकारे धातुपसर्गसमुदायस्य क्रियाविशेषवाचित्वात्ततः प्रत्ययविधाने तस्यैवाङ्गसंज्ञायां सत्यामडादिप्रसङ्गः प्राप्तिरित्यादावित्यर्थः ॥

( १९१२ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १४ ॥ )

॥ \* ॥ कृत्संज्ञा च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृत्संज्ञा च प्रयोजनम् । धातोर्विहितः प्रत्ययः कृत्संज्ञो भवतीति कृत्संज्ञा सिद्धा भवति ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये कृत्संज्ञा च प्रयोजनमिति । एतद्भात्वधिकारे धातोर्विहितस्य कृत्संज्ञकत्वम् । अन्यथा स्यादीनामपि तत्त्वं स्यादिति भावः ॥ एवं क्लि लुङीत्यादेः ‘लुङ्गन्ते उपपदे’ इत्यादिक्रमेणार्थः स्यादिति बोध्यम् ॥

( १९१३ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १५ ॥ )

॥ \* ॥ उपपदसंज्ञा च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपपदसंज्ञा च प्रयोजनम् । तत्रैतस्मिन् धात्वधिकारे यत्सप्तमीनिर्दिष्टं तदुपपदसंज्ञं भवतीति उपपदसंज्ञा सिद्धा भवति ॥

( प्रदीपः ) तत्रैतस्मिन्निति । सत्यस्मिन्धात्वधिकारे तत्रोपपदमित्यत्र तच्छब्देन परामर्श उपपद्यते नान्यथा ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

कृदुपपदसंज्ञे तावन्न प्रयोजयतः । अधिकारादप्येते सिद्धे ॥

( उद्द्योतः ) अधिकारादप्येते इति ॥ “कृदतिङ्” “तत्रोपपद”मित्यनयोरधिकारत्वादित्यर्थः ॥

( अनिराकृतप्रयोजनभाष्यम् )

स्वपादिषु तर्हि अङ्गसंज्ञा च प्रयोजनम् ।

( १९१४ सूत्रवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ १६ ॥ )

॥ \* ॥ धातुग्रहणमनर्थकं यद्धिधौ धात्वधिकारात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) धातुग्रहणमनर्थकम् ॥ किं कारणम् ? यद्धिधौ धात्वधिकारात् । यद्धिधौ धातुग्रहणं प्रकृतमनुवर्तते । तच्चावश्यमनुवर्त्यम् ॥

१ एतद्धात्वधिकारसत्त्वे तु लुङ्गन्तस्य धातुनिरूपितपरत्वात्संभवाच्च तथाऽर्थः । ( र. ना. )

( १९१५ अधिकारत्वहेतुवार्तिकम् ॥ १७ ॥ )

॥ \* ॥ अनधिकारे अङ्गसंज्ञाभावः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनधिकारे हि सति अङ्गसंज्ञाया अभवः स्यात्—करिष्यति हरिष्यति ॥

( दूषणभाष्यम् )

यदि तदनुवर्तते । चूर्णचुरादिभ्यो णिञ् भवति धातोश्चेति धातुमात्राणिञ् प्राप्नोति ॥

( १९१६ दूषणपरिहारवार्तिकम् ॥ १८ ॥ )

॥ \* ॥ हेतुमद्वचनं तु ज्ञापकमन्यत्राभावस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यदयं “हेतुमति चेत्याह, तज् ज्ञापयत्याचार्यो न धातुमात्राणिञ्भवती”ति ॥

( प्रदीपः ) यदयमिति । यद्यविशेषेण धातुमात्राणिञ् स्यात् तदा करणे करोत्यर्थे विधीयमानो हेतुमत्यपि करणे सिद्ध इति पुनस्तत्र णिञ् न विदध्यादित्यर्थः । चुरादिग्रहणं तु प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इत्याद्यर्थं स्यादित्यज्ञापकम् ॥

( उद्द्योतः ) ननु चुरादिभ्य इत्यनेन स्वार्थे णिञ्विधानात्प्रयोजकव्यापारे णिञ् हेतुमति चेत्तावश्यकमत आह—यद्यविशेषेणेति ॥ हेतुमत्यपीति । अपिना स्वार्थरूपकरणसंग्रहः । नन्वेवं चुरादिग्रहणमेव ज्ञापकं किमिति नोक्तमत आह—चुरादीति ॥ ‘प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे’ ‘संग्रामयुद्धे’ इत्यादि तद्वर्णपठितेभ्यो णिञ्मिल्यर्थः ॥ परे तु चुरादिग्रहणं स्वार्थरूपकरणे विध्यर्थम् । अन्यथाऽन्यधातुभ्य इव तेभ्योऽपि प्रयोजकव्यापाररूपे करणे एव स्यात् । एवं च प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इत्यस्यानार्थत्वेऽपि न दोष इत्याहुः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह तर्हि कण्डादिभ्यो यग् भवतीति धातोश्चेति धातुमात्राद्यक् प्राप्नोति ।

( १९१७ समाधानवार्तिकम् ॥ १९ ॥ )

॥ \* ॥ कण्डादिषु च व्यपदेशिवद्वचनात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यदयं कण्डादिभ्यो यग्भवतीत्याह, तज् ज्ञापयत्याचार्यो “न धातुमात्राद्यग्भवती”ति ॥

अथ वा कण्डादीनेव धातुग्रहणेन संभन्तस्यामः—कण्डादिभ्यो धातुभ्यो यगिति ॥ धातोः ॥ ९२ ॥

( प्रदीपः ) व्यपदेशिवद्वचनादिति । धातुव्यपदेशो विद्यते तेषां ते पचादयो धातुपाठपठिता व्यपदेशिनस्तैस्तुल्यं कण्डादयो वर्तन्ते । यकः कित्त्वेन तेषां धातुत्वानुमानात् । तदयमर्थः—यदि धातुमात्राद्यक् प्रत्ययः स्यात् ततः कण्डादिग्रहणमनर्थकं स्यात् । तेषामपि क्रियावाचित्वाद्धातुमात्राद्यकः सिद्धत्वात् ॥ अथ वेति । सामानाधिकरण्येन संबन्धे संभ-

वति समुच्चयाश्रयणस्यायुक्तत्वादिति भावः ॥ आर्धधातुकसंज्ञा-  
र्थोप्ययं धात्वधिकारो नोपयुज्यते । यद्धिधावेवोपात्तस्यानुवृत्तस्य  
विहितविशेषणार्थत्वाज्जुगुप्सते लभ्यामित्यादावार्धधातुकसंज्ञा-  
निवृत्तेऽसिद्धत्वात् ॥ शमिधातोरेत्यतो द्वितीयधातुग्रहणा-  
नुवर्तनाद्वा ॥ ९१ ॥

( उद्ध्योतः ) विहितविशेषणेति । स्वरितत्वद्वयं प्रतिज्ञाय  
तत्सामर्थ्याद् 'धातोः' इत्येवं विहित इत्यर्थः कार्य इति भावः ॥ तदा-  
ह—जुगुप्सत इत्यादि । नन्वेकेन धातुग्रहणेन कथमेपौथो लभ्ये-  
तात आह—शमिधातोरेति । वाऽसरूप इत्यप्यधिकार एवेत्येत-  
दभावे कसादिभिः सिचः समावेशः स्यादिति न शङ्क्यम् ॥ ९१ ॥

( ४३५ उपपदसंज्ञाधिकारसूत्रम् ॥ ३ । १ । ५ आ. ५ )

७०९ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ॥ ३।१।९२॥

( स्थग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

स्थग्रहणं किमर्थम् ।

( प्रदीपः ) तत्रोपपदम् ॥ ९२ ॥ स्थग्रहणामेति । सप्त-  
मीशब्देन साहचर्यात्सूत्रेषु सप्तमीनिर्दिष्टा ग्रहीष्यन्त इति प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) तत्रोपपदम् ॥ ९२ ॥ ननु स्थग्रहणाभावे  
सप्तम्या एव संज्ञा स्यादत आह—सप्तमीशब्देनेति ॥ सूत्रस्थ-  
सप्तम्यन्तपदनिर्दिष्टं सप्तमीपदेन लक्ष्यत इत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

“तत्रोपपदं सप्तमी” इतीयत्युच्यमाने यत्रैव स-  
प्तमी श्रूयते तत्रैव स्यात्—सम्बेरमः । कर्णेजपः ।  
यत्र वैतेन शब्देन निर्देशः क्रियते “सप्तम्यां जनेर्ड”  
इति । इह न स्यात्—कुम्भकारो नगरकारः ॥ स्थ-  
ग्रहणे पुनः क्रियमाणे यत्र सप्तमी श्रूयते, यत्र [ च  
सप्तमी ] न श्रूयते यत्र वैतेन शब्देन निर्देशः क्रियते,  
यत्र वान्येन शब्देन, सप्तमीस्थमात्रे सिद्धं भवति ॥

( प्रदीपः ) यत्रैव सप्तमीति । मुख्यार्थसंभवे गौणग्र-  
हणस्यान्याश्रयत्वात्सप्तम्या एवोपपदसंज्ञा स्यात् । संज्ञाविधौ प्रत्य-  
यग्रहणे तदन्तविधेः प्रतिषेधात् । समासस्तु समर्थपरिभाषो-  
पस्थानात्तदन्तस्यैव स्यात् ॥ यत्रैवेति । सप्तमीति यदा रूप-  
ग्रहणम् तथा सति सप्तम्यां जनेर्ड इत्यादावेव स्यात् उप-  
सरजादिसिद्ध्यर्थं, कुम्भकारादिषु तु नैव स्यादित्यर्थः ॥ स्थग्र-  
हण इति । स्थग्रहणे तु सति सौत्रसप्तम्युपलक्षितस्य संज्ञावि-  
धानात्सर्वत्र सिध्यतीत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणात्कथं सप्तम्या एव  
संज्ञेत्यत आह—संज्ञेति ॥ नन्वेवमुपपदसमासोऽपि सप्तमीमात्रस्य  
स्यादत आह—समासस्त्विति । यत्रैव सप्तमीपदं विभक्तिपरं स्वरू-  
पपरं वा । आद्ये सप्तम्या एव संज्ञा । अन्ये तु यत्र सप्तमीपदं तत्रैव

स्यादित्याह—यदेति । तथा सति ॥ तदेत्यर्थः ॥ इत्यादावि-  
त्यादिना सप्तम्यां चोपपीडेति संग्रहः ॥ ननु स्थग्रहणेऽपि कुम्भा-  
दीनां सप्तमीस्थत्वाभावात्कथमुपपदत्वम् । तदाह—स्थग्रहणे त्विति ।  
अयं भावः—सप्तमीपदं तदन्तपरम् संज्ञाविधौ प्रत्ययांशे तदन्तविधि-  
प्रतिषेधस्तद्देशप्रत्ययांश एव । तत्स्थत्वं च तद्वाच्यत्वमिति ॥ तदाह—  
सौत्रसप्तम्युपलक्षितस्येति । सौत्रसप्तम्यन्तपदबोधस्येत्यर्थः ॥

( तत्रग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ तत्रग्रहणं किमर्थम् ।

( प्रदीपः ) अथ तत्रग्रहणमिति । धातोरेत्यनुव-  
र्तनादस्मिन्नेव धात्वधिकारे उपपदसंज्ञा भविष्यतीति प्रश्नः ।

( उद्ध्योतः ) धातोरेत्यनुवर्तनादिति । धातोरेत्यधिकार-  
विहितप्रत्ययविधौ सप्तमीस्थमित्यादिति भावः ॥

( १९१८ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ तत्रग्रहणं विषयार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [ तत्रैग्रहणं क्रियते । किमर्थम् ? ।  
विषयार्थम् । ] विषयः प्रतिनिर्दिश्यते । तत्रैतस्मि-  
न्धात्वधिकारे सप्तमीनिर्दिष्टमुपपदसंज्ञं भवतीत्यु-  
पपदसंज्ञा सिद्धा भवति ॥

( प्रदीपः ) तत्रैतस्मिन्निति । तत्रग्रहणेनाधिकारपरा-  
मर्शे स्पष्टा प्रतिपत्तिर्भवतीति भावः ॥

अथ वोपपदसंज्ञोत्तरत्राधिकारादत्रैव धात्वधिकारे भविष्य-  
तीति प्रश्नः । प्रतिसूत्रमधिकार आश्रीयमाणे गौरवं स्यात् ।  
तत्रग्रहणे तु क्रियमाणे अनेनैव वाक्येन परिपूर्णत्वात्संज्ञा वि-  
धीयत इति प्रतिपत्तिलाभवं भविष्यतीत्युत्तरम् ॥

( उद्ध्योतः ) धातोरेत्यनुवृत्तावपीडशार्थालाभादाह—अथ-  
वेति । अत्रैवेति । न तु छिल लुङीत्यादाविति भावः ॥ उपपद-  
संज्ञा सिद्धा भवतीति भाष्यस्यापीष्टविषये स्फुटतया सिद्धा  
भवतीत्यर्थः ॥

( सामर्थ्यविचाराधिकरणम् )

( १९१९ समर्थग्रहणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उपपदसंज्ञायां समर्थवचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपपदसंज्ञायां समर्थग्रहणं कर्तव्यम् ।  
समर्थमुपपदं प्रत्ययस्येति वक्तव्यम् । इह मा भूत्-  
'आहर् कुम्भम्, करोति कटम्' इति ॥

( प्रदीपः ) समर्थवचनमिति । इह यदा त्रिकः प्रातिपदि-  
कार्यः स्वार्थव्यलिङ्गलक्षणस्तदा विभक्तिमन्तरेण कर्माऽधिकर-  
णाद्युपपदं न भविष्यतीत्यवश्योत्पत्त्यर्थं विभक्त्या । ततश्च पद-  
विधित्वात्समर्थपरिभाषाया उपस्थानं भवत्येव । चतुष्कपक्षे  
पञ्चकपक्षे वा प्रातिपदिकस्यैव कर्मादिवचित्वात्पदविधित्वाभावा-  
त्समर्थपरिभाषानुपस्थानात्समर्थवचनं कर्तव्यमिति भावः ॥

आह्वर कुम्भमिति । कुम्भशब्द उपपदे करोतेरण् प्रत्ययः स्यात् । उपपदसमासस्तु सामर्थ्याभावात् स्यात् ॥

( उद्ध्योतः ) विभक्तिमन्तरेणेति । तामन्तरेण कर्मत्वाद्यभावादित्यर्थः ॥ शब्दस्य कर्मत्वादि हि तद्विशिष्टार्थवाचकत्वमेवेति भावः ॥ चतुष्कपक्ष इति । संख्यातिरिक्तं चतुष्कं प्रातिपदिकार्थ इति पक्षे इत्यर्थः ॥ प्रातिपदिकस्यैवेति । चिन्त्यमिदम् । पञ्चकपक्षेऽपि चोक्तसमभिव्याहारे विना प्रातिपदिकमात्रस्य तद्वोधकत्वाभावात् । प्रं विना जयतेः प्रकृष्टजयबोधकत्ववत् । एवं च तत्पक्षेऽपि पदविधित्वं दुर्वारमेव । तस्मादयमत्र भाष्यार्थः । सुबन्तत्वेन पदत्वेन वा यत्र निमित्तता तत्रैव तत्परिभाषापवृत्तिरिति प्रकृते तदभावात्परिभाषानुपस्थित्या समर्थग्रहणं कर्तव्यमिति युक्तमाभाति ॥ भाष्ये समर्थमुपपदमिति । सामर्थ्यं च प्रत्यासत्त्या प्रत्ययान्तैर्नैवेति बोध्यम् । प्रत्ययस्योत्पत्तौ निमित्तं यत्समर्थं सप्तम्यन्तपदवाच्यं तदेवोपपदसंज्ञकमिति वक्तव्यमित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ क्रियमाणे चापि समर्थग्रहणे महान्तं कुम्भं करोतीत्यत्रापि प्राप्नोति ॥

( काक्का प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

न वा भवितव्यं महाकुम्भकार इति ॥

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

भवितव्यं यदैतद्वाक्यं भवति—महान्तकुम्भो महाकुम्भः महाकुम्भं करोतीति महाकुम्भकारः । यदा त्वेतद्वाक्यं भवति—महान्तं कुम्भं करोतीति तदा न भवितव्यम् । यदा च प्राप्नोति तदा मा भूदिति ॥

( प्रदीपः ) महान्तं कुम्भमिति । महत्त्वयुक्तस्य कुम्भस्य करोतिना सामर्थ्यमस्तीति भावः । यदि चात्र प्रत्ययः स्यात् तदा कुम्भशब्दस्य कारशब्देन समासे कृते कारार्थ एकार्थभावात् महच्छब्देन समासो न स्यात् । सुबन्तसमुदायस्याप्यसुबन्तत्वादुपपदसमासे तृतीयान्तस्य सुब्रह्मणस्य निवृत्तावपि प्रथमान्तस्यानुवर्तनात्समासाभावः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु महान्तं कुम्भमिति सविशेषणे कथं सामर्थ्यमत्र आह—महत्त्वयुक्तस्येति । विशिष्टस्यैव कर्मत्वेन विशिष्टेन सामर्थ्यमस्तीति भावः ॥ तदा न भवितव्यमिति भाष्ये अनेति शेषः ॥ तदा च प्राप्नोतीत्यस्यापि 'अण्' इत्येव शेषः । न तु महाकुम्भकार इति । तदध्वनयन्नाह—महच्छब्देन समासो न स्यादिति । कारार्थविशेषणतयोपस्थितस्यैतद्विशेष्यत्वासंभवेन महच्छब्देन कुम्भशब्दस्य कर्मधारयो न स्यादिति भावः ॥ बहुलवचनेनोत्तरपदे विशेषणं विशेष्येणेत्यस्य तत्पञ्चभूतानां पूर्वनिपातनियमार्थानां च निवृत्तेः समर्थसूत्रे भाष्ये ध्वनितत्वादिति निरूपितं समर्थसूत्रे भाष्ये ॥ न च पूर्वं कर्मधारयः, उपपदसमासस्य परत्वादिति बोध्यम् ॥ ननु समुदायेनैव उपपदसमासो भविष्यतीत्यत्र आह—

सुबन्तसमुदायस्येति । वस्तुतः प्रथमान्तनिवृत्तावपि समुदायेन समासेऽपि कुम्भशब्दस्योत्तरपदत्वाभावादात्वाभावे महत्कुम्भ इत्यनिष्टस्यापत्तिरिति भाष्याशयः ॥ यदुक्तम्—कुम्भशब्दस्य कारशब्देन समास इति ॥ तदपि चिन्त्यम्, कुम्भशब्दस्य केवलस्य विशेषणत्वेनासमर्थत्वात् । समासविधौ समर्थपरिभाषोपस्थानेन समासाप्राप्तेः । भाष्यं तु सर्वथा समासाभावेऽप्यणापत्तिपरतया योजयितुं शक्यमेवेति दिक् ॥

( समर्थग्रहणवैयर्थ्यभाष्यम् )

यत्तावदुच्यते—समर्थग्रहणं कर्तव्यमिति ॥ न कर्तव्यम् । धातोरिति वर्तते । धातोः कर्मण्यण भवति । तत्र संबन्धादेतद्वन्तव्यं यस्य धातोर्थ-त्कमेति ॥

( आक्षेपवारणभाष्यम् )

यदप्युच्यते—क्रियमाणे चापि समर्थग्रहणे महान्तं कुम्भं करोतीत्यत्रापि प्राप्नोतीति उपपदमिति महतीयं संज्ञा क्रियते । संज्ञा च नाम यतो न लघीयः । कुत एतत् ? लघ्वर्थे हि संज्ञाकरणम् । तत्र महत्याः संज्ञायाः करणे एतत्प्रयोजनम्—अन्वर्थसंज्ञा यथा विज्ञायेत 'उपोच्चारितं पदमुपपदमिति' । यच्चात्रोपोच्चारितं न तत्पदम्, यच्च पदं न तदुपोच्चारितम् ॥

( प्रदीपः ) न तत्पदमिति । पदसमुदायत्वादिति भावः । यच्च पदमिति । महान्तमित्येतत् ॥

( भाष्यम् ) यावता चेदानीं पदगन्धोस्ति पदविधिरयं भवति । पदविधिश्च समर्थानां भवति । तत्रासामर्थ्यान्न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) कुम्भमित्येतच्च यद्यपि पदं भवति उपोच्चारितं च तथापि सापेक्षत्वादसामर्थ्यात्प्रत्ययोत्पत्तिनिमित्तं न भवति । अन्वर्थसंज्ञाकरणदेव सप्तमीनिर्दिष्टत्वेपि प्रकृत्यर्थविशेषणानां प्रत्ययार्थानां सद्विशेषाणां चोपोच्चारितत्वाभावादुपपदसंज्ञा न भवति ॥

पदविधिरिति । पदनिमित्तत्वात्प्रत्ययविधेरिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) यावता चेदानीमिति । भाष्यमवतारयति—कुम्भमित्येतच्च यद्यपीति ॥ समाधानाशयमाह—तथापीति ॥ भाष्ये गन्धशब्दः संबन्धवाची । स च महासंज्ञाबलात्प्रत्ययविधौ पदत्वेन निमित्तत्वात्स्पष्ट एव ॥ असामर्थ्यात्प्रत्ययाभावे चोपपदमं-ज्ञापि फलाभावात्तत्र उपपदसंज्ञायां समर्थवचनमनर्थकमिति भावः ॥ एवं च सुबन्तस्यैवोपपदत्वम् ॥ स्तम्भकरणोरित्यादौ तु तत्प्राकृतिके लक्षणा । इदमेवाभिप्रेत्योपपदमतिङ्गिति सूत्रे प्रथमान्तसुपपदस्यापि निवृत्तिर्भगवतोक्तेति दिक् ॥

( च्यन्तोपपदे प्रत्ययोत्पत्तिविचाराधिकरणम् )

( भाक्षेपभाष्यम् )

अथ च्यन्त उपपदे किमणा भवितव्यम् अकुम्भं कुम्भं करोति कुम्भीकरोति मृदमिति ॥

( प्रदीपः ) अथ च्यन्त इति । इह कचित्सापेक्षत्वे प्रत्ययो न भवति महान्तं पुञ्जमिच्छतीति । क्वचित्तु भवति माणवकं सुण्डयतीति तत्र संदेहात्प्रश्नः ॥ च्यन्तस्य चाव्ययत्वेऽपि कर्मत्वं मन्यते । सत्त्वभूतत्वस्यानिवर्तनात् ॥

( उद्ध्योतः ) कर्मत्वं मन्यते इति । स्वरादिवदिति शेषः ॥ तत्र हेतुमाह—सत्त्वेति ॥ च्विप्रत्ययेऽपि स्वाश्रयसत्त्वभावस्य निवृत्तौ मानाभावादिति भावः ॥ सत्त्वभूतस्येति पाठेऽपि भावे क्तः ॥

( समाधानभाष्यम् )

न भवितव्यम् । किं कारणम् ? । प्रकृतिविवक्षितत्वात् । प्रकृतिविवक्षायां च्विर्विधीयते । तत्सापेक्षम् । सापेक्षं चासमर्थं भवति ॥

( प्रदीपः ) प्रकृतिविवक्षायामिति । प्रकृतिविकारयोरभेदविवक्षायां च्विर्विधीयते । तत्रावश्यं विकारेण प्रकृतिविशेषोऽपेक्षणीयः । तदनपेक्षायां च्वेयरभावात् । ततश्च यथा महान्तं कुम्भं करोतीत्यत्राण न भवति एवं मृदं कुम्भीकरोतीत्यादावपीत्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) प्रकृतिविवक्षायामिति भाष्यस्य प्रकृतेर्विकृत्यभिन्नत्वेन विवक्षायां विकृतिवाचकाच्चिरित्यर्थः ॥ तत्फलितमाह—प्रकृतीति । तत्रावश्यमिति ॥ नन्वेवं नित्यसापेक्षत्वेनासामर्थ्याभावात्तु दुर्वारः । तदनपेक्षायां च्वेयरभावेन च्यन्तस्य नित्यसापेक्षताया उपपादितत्वादिति चेदत्र महद्भिन्नतनीयम् ॥ मम तु प्रतिभाति—न नित्यसापेक्षत्वं वृत्तौ प्रयोजकम्, किं तु गैरुक्तत्वं । एवं च नित्यसापेक्षत्वेऽप्यगमकत्वात् वृत्तिः ॥ काशकटीकारमित्यत्र तु गमकत्वाद्भवत्येवेति ॥ स्पष्टं चेदं समर्थवृत्ते सुप आत्मन इति सूत्रे च भाष्ये सूक्ष्मदृशम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

न तर्हि इदानीमिदं भवति—‘इच्छाम्यहं काशकटीकारमिति ॥

( समाधानभाष्यम् )

इष्टमेवैतद्गोर्दीयस्य ॥

( प्रदीपः ) काशान् कटीकरोतीत्यत्र त्विष्ट्याणूप्रत्ययो भवति । तस्मिन्नुपपन्ने काशशब्दात् कृद्योगे षष्ठी । तस्याः षष्ठीति समासः समासरूपस्यैव चेष्टत्वेनोपात्तत्वात् ‘काशानां कटीकार’ इति वाक्यं न भवतीत्याहुः ॥

( १९२१ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ निमित्तोपादानं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निमित्तोपादानं च कर्तव्यम् । निमित्तमुपपदं प्रत्ययस्येति वक्तव्यम् ॥

( १९२२ हेतुवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ अनुपादाने ह्यनुपपदे प्रत्ययप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अक्रियमाणे हि निमित्तोपादाने अनुपपदेऽपि प्रत्ययः प्रसज्यते ॥

( भाक्षेपभाष्यम् )

निर्देश इदानीं किमर्थः स्यात् ? ।

( प्रदीपः ) निर्देश इति । कर्मणीति सत्सप्तमीविज्ञानात्सत्येव कर्मणि प्रत्ययो भविष्यतीति भावः ॥

( १९२३ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ निर्देशः संज्ञाकरणार्थः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [ ‘कर्मणि’ इत्यादीनां निर्देशः क्रियते । किमर्थः ? संज्ञाकरणार्थः । प्रत्ययसंनियोगेन संज्ञायथा क्रियेत- ] यदा उपपदे प्रत्ययस्तदोपपदसंज्ञां वक्ष्यामीति ॥

( प्रदीपः ) निर्देशः संज्ञाकरणार्थ इति । यथेत्यसंज्ञार्थमनुनासिकत्वं प्रतिज्ञायते तथार्थनिरपेक्षा कर्मणीत्यादिसप्तम्युपपदसंज्ञालिङ्गं सौत्रीति भावः ॥ अर्थापेक्षायां तु सप्तम्यामण्प्रत्ययस्याभिधेयं कर्म स्याद् यथा धःकर्मणि घृष्टिति । तथा च उपपदत्वं न प्रतीयते । अर्थानपेक्षत्वे च सप्तम्या ‘धा’तोरण भवति कर्म चोपपदसंज्ञम्’ इत्ययमर्थः स्यादिति कर्मणः प्रत्ययोत्पत्तिनिमित्तत्वं न प्रतीयते ॥

( भाक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि निमित्तोपादानं कर्तव्यम् ? ।

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

न कर्तव्यम् ॥

( १९२४ निमित्तोपादानवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र वचनमुपपदसंनियोगार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र वचनं क्रियते तदुपपदसंज्ञासंनियोगार्थं भविष्यति । कर्मण्यपि विधीयते तत्र च प्रत्ययो भवतीति ॥

( प्रदीपः ) तत्र वचनमिति । तत्रैव सति प्रत्ययो भवति नासतीति तत्रग्रहणाल्लभ्यते । कथमिति चेत् ॥ उच्यते—

१ \* च्यन्तोपपदे न प्रकृतिविवक्षितत्वात् ॥ \* ॥ इति १९२० शं वार्तिकम् । तद्भाष्ये ‘च्यन्त उपपदे’ इति उद्धृतं भवेद् । अत एव नोपलभ्यते कापि ।

२ वृत्तेरुक्तत्वं चेष्टार्थवबोधकत्वम् । ( र. ना. )

३ उपपदं प्रत्ययस्य निमित्तमिति वक्तव्यमित्यर्थः । ( र. ना. )

४ स चोपपदस्य प्रत्ययनिमित्तत्वेन विनापि सप्तमीनिर्देशो सिध्यतीति कर्मणीत्यादि सप्तमीनिर्देशः किमर्थ इति प्रश्नभाष्याशयः । ( र. ना. )

५ इति भाष्यग्रन्थो लेखकप्रमादात् उद्धृतो भवेत् ॥

प्रत्यय इत्यत्रानुवर्तते । तत्रायमर्थः सप्तमीस्थमुपपदसंज्ञं भवति । तत्र चोपपदे प्रत्ययो भवतीति ॥ ९२ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

ननु चान्यत्तत्रग्रहणस्य प्रयोजनमुक्तम् । किम् ।  
\*तत्रग्रहणं विषयार्थमिति ॥

( समाधानभाष्यम् )

अधिकारादप्येतत्सिद्धम् ॥ तत्रोपपदम् ॥ ९२ ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्येऽधिकारादपीति । नन्वधिकारादेतस्मिन्धात्वधिकारे इत्यर्थवत् तत एव प्रतिसूत्रमुपपदसंज्ञाविधानेन संनि-  
योगशिष्टन्यायात्तत्र सत्येव प्रत्ययो भविष्यति, किं तत्रग्रहणेनेति  
चेन्न । तदभावेऽन्वाचयशिष्टत्वमपि संभाव्येतेति इत्यप्रतिपक्षार्थमिति  
तत्त्वम् ॥ ९२ ॥

( कृतप्रकरणम् )

( ४३६ कृतसंज्ञाधिकारसूत्रम् ॥ ३ । १ । ५ आ. ६ )

७१० कृदतिङ् ॥ ३ । १ । ९३ ॥

( अतिङ्ग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अतिङिति किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

पचति पठति ॥

( उद्ध्योतः ) कृदतिङ् ॥ ९३ ॥ भाष्ये एकदेश्याह—  
पचतीत्यादि ॥

( अतिङ्ग्रहणवैयर्थ्यभाष्यम् )

अतिङिति शक्यमकर्तुम् ॥

( उद्ध्योतः ) शङ्किताऽऽह—शक्यमकर्तुमिति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कस्मान्न भवति-पचति पठतीति ॥

( समाधानभाष्यम् )

धातोः परस्य कृतसंज्ञा । प्राक् च लादेशाद्धात्व-  
धिकारः ॥

( उद्ध्योतः ) तदुपपादयति स एव—धातोः परस्येति ॥  
धातोरिति पदमुच्चार्य धातोः परत्वेन विहितस्येत्यर्थः । अत एव  
वक्ष्यति—प्राक् च लादेशाद्धात्वधिकार इति । एवं च तिङ्शु  
कृतसंज्ञाया अप्राप्त्या निषेधो व्यर्थ इति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

एवमपि स्थानिवद्भावात्प्राप्नोति ॥

( उद्ध्योतः ) तत्सार्थक्यमेकदेशी शङ्कते—एवमपीति ॥

( प्रतिबन्दीभाष्यम् )

अथातिङित्युच्यमाने यावता स्थानिवद्भावः ।  
कथमिवैतत्सिध्यति ॥

( प्रदीपः ) कृदतिङ् ॥ ९३ ॥ स्थानिवद्भाव इति ।  
अतिङिति प्रतिषेधः स्वाध्यायमेव तिङः कृतसंज्ञां बाधितुमुत्स-  
हते नत्वतिदेशशास्त्रेण प्रसक्ताम् । अनन्तरस्य विधिर्वा भवति  
प्रतिषेधो वेति वचनादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) सिद्धान्ती शिष्यबुद्धिपरीक्षायै प्रतिबन्दीमाह—  
अथेति ॥

( समाधानभाष्यम् )

प्रतिषेधवचनसामर्थ्यात् ॥

( प्रदीपः ) प्रतिषेधेति । अन्यथानर्थकः प्रतिषेधः  
स्यादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) एकदेश्याह—प्रतिषेधेति ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

अथ वा तिङ्भाविनो लकारस्य कृतसंज्ञाप्रतिषेधः ॥

( प्रदीपः ) अथ वेति । तिङ्भावी लकार एव तिङ्श-  
ब्देनोच्यते इति मूलोच्छेद एव कृतसंज्ञाप्रतिषेधेन क्रियते ॥

( उद्ध्योतः ) तृतीयाध्यायान्तं धात्वधिकारे तिङो व्यावृत्त्या  
तत्सार्थक्यमत आह—अथ वेति । तिङ्भावीति । अत एवाम-  
न्तविषयकलकारस्य कृतत्वं भवत्येव । तस्य तिङ्भावित्वाभावात् । तिङ्-  
भावित्वस्य फलोपहितस्यैव निवेशात् ॥ मूलोच्छेद इति । मूलभूते  
लकार एव कृतोच्छेदः क्रियत इत्यर्थः । भो भगो इति सूत्र-  
भाष्योक्तरीत्याऽल्लविधित्वादप्यत्र स्थानिवत्त्वप्रतिषेध इत्यपि बोध्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं च स्यात् । यद्यत्र कृतसंज्ञा स्यात् ? ॥

( उद्ध्योतः ) अथ तृतीयाध्यायान्तं धात्वधिकारेपि भाष्ये  
फलाभावान्निषेधं प्रत्याख्यातुमाह—किं च स्यादिति ॥

( समाधानभाष्यम् )

कृत्प्रातिपदिकमिति प्रातिपदिकसंज्ञा स्यात् ।  
'प्रातिपदिकात्' इति स्वाधुत्पत्तिः प्रसज्येत ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । एकत्वादिषु अर्थेषु स्वादयो विधी-  
यन्ते । ते चात्र 'तिङोक्ता एकत्वादय' इति कृत्वा  
उक्तार्थत्वान्न भविष्यन्ति ॥

( उद्ध्योतः ) एकत्वादिविति । न नूत्तेऽपि एकत्वे एकशब्दा-  
त्कर्मत्वमात्रप्रतिपत्तये द्वितीयावत् पचति पश्येत्यादौ कर्मत्वोक्तये  
द्वितीया स्यात् । किं चैकवचनमुत्सर्गत इति तदुक्तमिति चेन्न ।  
कर्मत्वस्यापि वाक्येन प्रतीत्या तदनुत्पत्तेः ॥ तिङोक्ता इत्यस्य च  
तिङ्घटितवाक्येनोक्ता इत्यर्थः ॥ एकत्वादिविधित्वादिपदेन कर्मत्वादी-  
नामपि ग्रहणं बोध्यम् ॥ उत्सर्गोऽव्ययविषय एवेत्याशयात् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

टाबादयस्तर्हि तिङन्ताद् मा भूवन्निति ॥

( प्रदीपः ) टाबादय इति । यथा साधनाश्रयसंख्या-  
निमित्तैकवचनोत्पत्तिस्तथैव तद्रतलिङ्गाश्रयाष्टाबादयः स्युरिति  
भावः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

स्त्रियां टाबादयो विधीयन्ते । न च तिङन्तस्य स्त्रीत्वेन योगोऽस्ति ॥

( प्रदीपः ) स्त्रियामिति । शब्दशक्तिस्त्राभावात्साध-  
नाश्रयसंख्योपादानमस्ति तिङन्तस्य न लिङ्गोपादानमिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) तिङन्तस्येति । तदर्थक्रियाया इत्यर्थः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

अणादयस्तर्हि तिङन्तान्मा भूवन्निति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

अपत्यादिष्वणादयो विधीयन्ते । न च तिङन्त-  
स्यापत्यादिभिर्योगोऽस्ति ॥ अथापि कथंचिद्योगः  
स्यात् । एवमपि न दोषः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति  
'न तिङन्तादणादयो भवन्तीति' । यदयं क्वचित्त-  
द्वितविधौ तिङ्ग्रहणं करोति—“अतिशयाने तम-  
विष्टनौ । तिङ्श्च” ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये—अथापि कथं चिद्योगः स्यादिति ।  
शेष इत्यस्य विधायकत्वाद्बुद्धिपिष्टा इत्यर्थे इव पचलादिभ्यः  
पश्यत्याद्यर्थे प्रत्ययः स्यादिति भावः ॥ न तिङन्तादिति । अय-  
मत्राभिसन्धिः—तिङन्तानां कृदन्तत्वप्रयुक्तप्रातिपदिकत्वाभावो  
ज्ञाप्यत इति पचति भवतीत्यादौ प्रथमपि नेति बोध्यम् । पचेर-  
नित्यादौ नलोपश्चात् एव न ॥ अतएवाह्नित्यादौ न दोषः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इह तर्हि पचति पठतीति “ह्रस्वस्य पिति कृति  
तुभभवती”ति तुक् प्राप्नोति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

“घातोरि”ति वर्तते ॥

( प्रदीपः ) घातोरिति । घात्वादेरित्यतः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

एवमपि चिकीर्षतीत्यत्रापि प्राप्नोति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

अत्रापि शपा व्यवधानात् ।

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

एकादेशे कृते नास्ति व्यवधानम् ।

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एकादेशः पूर्वविधौ स्थानिवद्भवतीति स्थानि-  
वद्भावाद्यवधानमेवेति ॥ कृदतिङ् ॥ ९३ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरण-  
महाभाष्ये तृतीयस्याध्यायस्य प्रथमे पादे

पञ्चममाहिकम् ॥

( प्रदीपः ) एकादेश इति । ननु स्थानिवद्भावं बाधित्वा  
परत्वादन्तवद्भावेन भाष्यम् । नैष दोषः । परशब्दस्येष्टवाचि-

त्वात् स्थानिवद्भाव एवान्तवद्भावस्य बाधकः ॥ नन्वतिङ्गिति  
प्रत्याख्यायमाने पचेरञ्जिति प्रातिपदिकान्तत्वाच्चकारलोपः  
प्राप्नोति । इत्यस्य रञ्जिति नकारोच्चारणसामर्थ्याच्च भविष्यति ॥  
इह तर्हि विधीयादिति कृष्कारत्वादीर्घो न प्राप्नोति ॥ एषोप्य-  
दोषः । सार्वधातुकप्रतिषेधो ज्ञापयति—‘अकृदिति प्रतिषेध-  
स्तिङ्गे न भवतीति । यदि हि स्यात् सुनुयाच्चिनुयादित्यादावपि  
सार्वधातुके कृत्प्रतिषेधेन दीर्घो न भविष्यतीति पृथक्सार्व-  
धातुकप्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात् ॥ ९३ ॥

इति श्रीमदुपाध्यायजैयटपुत्रकैयटविरचिते भाष्यप्रदीपे  
तृतीयस्याध्यायस्य प्रथमे पादे पञ्चममाहिकम् ॥

( उद्ध्योतः ) परशब्दस्येष्टेति । अन्तवद्भावस्य प्रापकत्वेन  
स्थानिवद्भावस्याभावातिदेशकत्वेन निषेधकतया निषेधाच्च बली-  
यांस इति न्यायेनाच्च परस्मिन्त्रित्यस्यैव प्रवृत्तिरित्यपि बोध्यम् ।  
यत्किञ्चित्स्थानिभूतादचः पूर्वधर्मावच्छिन्नोद्देश्यकत्वादचः परस्मि-  
न्त्रित्यस्य प्रवृत्तिः ॥ एतेनान्तवद्भावेन शबन्तस्यैव कार्यमिति पूर्व-  
विध्यभावात्कथं स्थानिवत्त्वमिति परास्तम् । स्थानिभूतादचः पूर्वो-  
ऽस्थानिभूत एव गृह्यत इत्यत्र न मानम् । तत्तत्रौष्ठिन्यायस्या-  
नवकाशविषयकत्वेन विषेयविषयकत्वेन चेदृशे विषयेऽप्राप्तेः । तत्र  
सूत्रेऽभावातिदेशस्याप्यङ्गीकारेण स्थानिनि सत्यभवतस्तुक् एकादेशे-  
प्यभावातिदेशो बोध्यः ॥ एतेन स्थानिवद्भावेऽपि शबन्तस्य शपा  
व्यवधानाभावात्तुग् दुर्वार इत्यपास्तम् । धीर्धियौ धिय इत्यत्र तु न  
दोषः । ध्यायतेः संप्रसारणं चेत्यनेन संप्रसारणे पूर्वत्वे ह्रस्व इति  
दीर्घत्वे च कृते एकादेशस्य निवृत्तेस्तस्य स्थानिवत्त्वाप्रवृत्तेर्जुडुवतु-  
रित्यादावपि हेजोऽन्तरङ्गत्वादात्त्वे वाणांदाङ्गमित्यालोपे संप्रसारणे  
एकादेशस्यैवाभावाच्च दोषः । स्पष्टं चेदं सर्वत्रसंप्रसारणभ्य इति  
वार्तिकभाष्ये । धियावित्यादावियङ् आकारात्पूर्ववृत्तिधर्मावच्छिन्नो-  
द्देश्यकत्वाभावाच्च ॥ नकारोच्चारणेति ॥ समाध्यन्तरमपि प्रागु-  
क्तम् ॥ पृथक्सार्वधातुकेति । न च इयनर्थम्, दीर्घप्रवृत्ति-  
योग्याजन्तेभ्यः इयनभावात् ॥ ९३ ॥

इति कालोपनामकशिवभट्टसूतसतीगर्भजनगेशभट्टविरचिते  
भाष्यप्रदीपोद्ध्योते तृतीयस्य प्रथमे पादे पञ्चममाहिकम् ॥

अथ तृतीयाध्यायस्य प्रथमपादे

षष्ठमाहिकम् ॥

( ४३७ सूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. १ )

७११ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ॥ ३।१।९४ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथमिदं विज्ञायते—‘स्त्रियामभिधेयायां वाऽस-  
रूपो न भवतीति । आहोस्वित् ‘स्त्रीप्रत्ययेष्विति’ ? ॥  
किं चातः ? ।

( प्रदीपः ) वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ॥ कथमिति ।  
स्त्रियामित्यभिधेयसप्तमी वा स्यात्, स्त्रियामित्यस्यैव वा  
स्वरूपस्य निषेधः स्यात्—स्त्रियामित्युच्चार्य ये प्रत्यया विधी-  
यन्ते तेषु वाऽसरूपो न भवतीति संदिहानः पृच्छति ॥

( उद्द्योतः ) वाऽसरूपो ॥ ९४ ॥ ननु स्वरूपस्य निषेधे  
तदभाव एव स्यादतस्तत्पक्षे वाक्यार्थं दर्शयति—स्त्रियामित्युच्चा-  
र्येति ॥ स्वरूपस्येत्यस्य स्वरूपपरस्येत्यर्थः ॥ निषेधः स्यादित्यस्य  
निषेधान्वयन्यवित्तं स्यादित्यर्थः ॥

( अभिधेयपरत्वदूषणभाष्यम् )

यदि विज्ञायते—‘स्त्रियामभिधेयायाम्’ इति—ल-  
व्या लवितव्या अत्र वाऽसरूपो न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) लव्येति । अत्रो यदिदिति यता तव्यादीनां  
नित्यं बाधनं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

( स्त्रीप्रत्ययपरत्वदूषणभाष्यम् )

अथ विज्ञायते—‘स्त्रीप्रत्ययेषु’ इति, व्यावक्रोशी  
व्यावकुष्टिरिति न सिध्यति ॥

( प्रदीपः ) व्यावक्रोशीति । कर्मव्यतिहारे णच्  
स्त्रियामिति णच्चा क्तिनो बाधः प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

( सिद्धान्तभाष्यम् )

एवं तर्हि नैवं विज्ञायते—‘स्त्रियामभिधेयायाम्’,  
नापि ‘स्त्रीप्रत्ययेष्विति । कथं तर्हि? स्त्रीग्रहणं स्वर-  
यिष्यते ॥ तत्र स्वरितेनाधिकारगतिर्भवतीति ‘स्त्रि-  
याम्’ इत्यधिकृत्य ये प्रत्यया विहितास्तेषां प्रतिषेधो  
विज्ञास्यते ॥

( प्रदीपः ) स्त्रियामित्यधिकृत्येति । स्त्रियां क्ति-  
नस्मिन् रूपधिकारे ये उत्सर्गापवादास्तेष्वपवाद उत्सर्गस्य  
बाधक एवेत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) ननु ये विहितास्तेषां प्रतिषेधे विधिवैयर्थ्यं  
स्यात्, विहितप्रतिषिद्धादिकल्पो वा स्यादत आह—स्त्रियां क्ति-  
निति । तदधिकारे ये विहिता उत्सर्गास्तेषां वासरूपविधिना प्रस-  
क्तानां प्रतिषेधो बाधो विज्ञास्यते इति भाष्याक्षरार्थे इति भावः ॥  
एवं चोत्सर्गापवादयोर्द्वयोरपि अधिकारनिवेशित्वे सति अस्त्रियामिति  
प्रतिषेध इति लभ्यते । अन्येनापि यत्रासमावेश इष्टः सोऽनभिधा-  
नास्ताध्यः ॥

( सूत्रप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं पुनरिदमुच्यते ? ॥

( १९२५ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ असरूपस्य वावचनमुत्सर्गस्य

बाधकविषयेऽनिवृत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) असरूपस्य वावचनं क्रियते । उत्सर्गस्य  
बाधकविषयेऽनिवृत्तिर्यथा स्यात् । तव्यत्तव्यानीयर

उत्सर्गाः, तेषामजन्ताद्यदपवादः—चेयम् चेतव्य-  
मित्यपि यथा स्यात् ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । अजन्ताद्यद्विधीयते ।  
हलन्तात् ण्यद्विधीयते । एतावन्तश्च धातवो यदु-  
ताजन्ता हलन्ताश्च । उच्यन्ते च तव्यदादयस्ते  
वचनाद्भविष्यन्ति ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

एवं तर्हि ण्वुल्लुचावुत्सर्गौ, पचादिभ्योऽजप-  
वाद्—पचतीति पचः । ‘पक्ता पाचक’ इत्यपि यथा  
स्यात् ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । वक्ष्येत्येतत्—‘अ-  
जपि सर्वधातुभ्यो वक्तव्य’ इति ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

एवं तर्हि ण्वुल्लुजच उत्सर्गाः । तेषामिगुपधा-  
त्कोपवादः—विक्षिपः विलिखः । ‘विक्षेप्ता विक्षे-  
पक’ इत्यपि यथा स्यात् ॥

अस्ति प्रयोजनमेतत् । किं तर्हीति ।

( १९२६ आक्षेपवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥\*॥ तत्रोत्पत्तिवाप्रसङ्गो यथा तद्धिते॥\*॥

( भाष्यम् ) तत्रोत्पत्तिर्विभाषा प्राप्नोति यथा  
तद्धिते ॥

( प्रदीपः ) तत्रोत्पत्तिवाप्रसङ्ग इति । ‘वाऽसरूप’  
इत्येतावच्छ्रूयते । तत्र वाग्रहणेन किं भावो विकल्प्यताम्—  
असरूपोऽपवादो वा भवति पक्षे न भवतीति । अथ बाधकत्वं  
विकल्प्यताम् वा बाधको भवति, पक्षे न बाधक इति ॥ तत्रा-  
न्तरङ्गलात्सत्ताया एव विकल्पः स्यात् । यथोक्तम् ‘यत्रान्यत्  
क्रियापदं न श्रूयते तत्रास्तिर्भवन्तीपर’ इति । न तु  
बहिरङ्गस्य बाधकलयेत्युत्पत्तेरेव विकल्पः स्यात्, पक्षे तु न  
कश्चित् प्रत्यय उत्पद्येत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये तत्रोत्पत्ति वा प्रसङ्ग इति । उत्पत्ते-  
र्वाथविकल्पप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥ ननु बाधकत्वविकल्पे नायं दोष इत्या-  
शङ्का तद्विकल्प एव न सिध्यतीत्याह—वाऽसरूप इति ॥ अ-  
सरूपोपवादो वा भवतीति । अपवादपदं वक्ष्यमाणसिद्धान्ताभि-  
प्रायेण ॥ बहिरङ्गस्येति । शब्दानुपात्तस्येत्यपि बोध्यम् ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

अस्तु, यदा विक्षिपो विलिख इत्येतन्न, तदा वि-  
क्षेप्ता विक्षेपक इत्येतद्भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) अस्त्विति । बाधकाभावे उत्सर्गस्यानिवार्य-  
त्वादिति भावः ॥

( उद्द्योतः ) इत्येतन्नेत्यन्तो भाष्ये छेदः ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

यद्येतल्लभ्येत कृतं स्यात् । तत्तु न लभ्यम् । किं कारणम् ? । यथा तद्धित इत्युच्यते ॥

तद्धितेषु च सर्वमेवोत्सर्गापवादं विभाषा, उत्पद्यते वा न वा ॥

( प्रदीपः ) यद्येतदिति । अपवादशास्त्रेणोत्सर्गशास्त्रस्य बाधितत्वादपवादाभावपक्षेऽप्युत्सर्गस्याप्रवर्तनादिति भावः । तत्र यथा अत इजिति विकल्पितेनेवा मुक्ते पक्षेऽण् न भवति अपि तु वाक्यमेव । तथेहाप्यपवादाभावपक्षे प्रकृतिरेव कर्त्रादीनर्थानभिदध्याद् यथाभिचिदित्यादां किवादिलोपे कृते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये यद्येतल्लभ्येतेति । अपवादपदाभावादपवादविषय एव विकल्प इत्यत्र मानाभावादपवादोत्सर्गोभयविषयो विकल्पः स्यात् । एवं च तद्धित इवोत्सर्गापवादयोर्विकल्पाद्यत्रोत्सर्गापवादौ विभाषा तत्रापवादेन मुक्ते उत्सर्गाप्रवृत्त्या पक्षेऽनुत्पत्तिरेव प्राप्नोतीति भावः ॥ अपवादशास्त्रेणेति कैयटोक्तितु चिन्त्या, तद्धितेषु सर्वमुत्सर्गापवादं विभाषेति दृष्टान्तेन मद्वाक्यस्यैव लाभः ॥

( १९२७ समाधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं त्वसरूपस्य बाधकस्य वावचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । असरूपस्य बाधकस्य वावचनात् “असरूपो वा बाधको भवतीति” इति वक्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) सिद्धं त्विति । बाधकत्वे विकल्पिते यत्र पक्षेऽपवादस्य बाधकत्वं नास्ति तत्र बाधकत्वाभावादुत्सर्गः प्रवर्तते ॥

( उद्घोतः ) सिद्धं त्विति । भाष्ये बाधकपदे कृतेऽसरूपस्य बाधकस्यैव विकल्पे उत्सर्गविकल्पाभावात्सिद्धमिति भावः ॥ इदं चापवादशास्त्रेणैकवाक्यतापन्नम् । न चैवमसरूपो वा बाधको भवतीति भाष्येण बाधकत्वविकल्पप्रतिपादनं व्यर्थमिति वाच्यम् । \*असरूपस्य बाधकस्य वावचनादिति वार्तिकस्वरस्येन “असरूपो बाधको वा भवतीत्येव भाष्येऽन्वयात् । वार्तिकेऽपि बाधकानुवादेन विकल्पविधिरित्येव स्वरसतो लभ्यते, न तु बाधकत्वानुवादेनेति दिक् ॥ प्रत्यासत्त्या च यन्निरूपितं बाधकत्वं तस्यैव पक्षेऽभ्यनुज्ञानमिति नातिप्रसङ्गः ॥ कैयटे बाधकत्वे विकल्पिते इत्यादि । इदं चिन्त्यम्\*’ वार्तिकोक्तबाधकपदार्थैकदेशस्य बाधकत्वस्य विकल्पेनान्वयायोगात् । किं च पक्षे बाधकत्वाभावे शक्तिपोरिव समुच्चयः स्यादिति महदनिष्टम् ॥ धर्मनिषेधे धर्म्यभावाप्रतीतेः । अत एव न वेति सूत्रे साधुत्वविकल्पे पक्षे तस्यैवासाधुत्वमापादितम् ॥

१ ‘समर्थानां प्रथमाद्वा’ इत्यनेन अणोपवादस्य ‘अत इज’ इत्यस्य विकल्पेनाप्रवृत्तिपक्षेऽणोऽन्वयत्पत्तिरेव यथेत्यर्थः ॥

२ इदं चिन्त्यम् । ‘इक्षुक्षितपौ धातुनिर्देशे’ इत्येवमेव वार्तिकपाठे कथं धात्वर्थे प्रत्ययः । ‘धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्’ इति वार्तिकेन ण्वुल् एव धात्वर्थे

( आक्षेपभाष्यम् )

सिध्यति । सूत्रं तर्हि भिद्यते ॥

( समाधानभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ॥

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—\*तत्रोत्पत्तिचाप्रसङ्गो यथा तद्धितेः\* इति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । अस्ति कारणं येन तद्धितेषु विभाषोत्पत्तिर्भवति । किं कारणम् ? । प्रकृतिस्तत्र प्रकृत्यर्थे वर्तते, अन्येन च शब्देन प्रत्ययार्थोभिधीयते । इह पुनर्न केवला प्रकृतिः प्रकृत्यर्थे वर्तते । नचान्यः शब्दोस्ति यस्तमर्थमभिधीतेति कृत्वा तेनानुत्पत्तिर्न भविष्यति ॥

अथ वा समयः कृतः—“न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलः प्रत्ययः” इति । एतस्मात्समयादनुत्पत्तिर्न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) अन्येनेति । दक्षस्यापत्यमित्यादावपत्यादिशब्देनेत्यर्थः । इह पुनरिति । केवला प्रकृतिः स्वार्थमपि नाभिधत्ते किं पुनः कर्त्रादिकमर्थमभिधास्यति । तथाहि । प्रकृतिप्रत्ययसमुदाये प्रयुज्यमानेऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रकृतिः प्रकृत्यर्थे वर्तते प्रत्ययस्तु प्रत्ययार्थे इत्युच्यते अनुत्पन्नप्रत्यया तु प्रकृतिर्न कञ्चिदर्थं गमयति । अथापि हि क्षिपेः कर्तेति कर्त्रादिशब्दाः प्रयुज्यन्ते तथापि करोतिक्रियापेक्षमपि कर्तृत्वं प्रतीयेत न तु क्षिपिक्रियापेक्षमेव तस्मात्सामर्थ्याद् बाधकत्वं बहिरङ्गमपि विकल्प्यते ॥

( उद्घोतः ) क्षिपेरिति धात्वर्थनिर्देश इक्षुप्रत्ययः । इक्षु कृष्यादिभ्य इति इत्वा ॥ तथापीति । कर्तेत्यत्र तस्यापि सत्त्वादिति भावः ॥ बाधकत्वं बहिरङ्गमपीति । इदं चिन्त्यम् । सामर्थ्यादपवाद एवासरूपशब्देन विवक्षितो न तु उत्सर्गोपीति तु भाष्यतात्पर्यं बोध्यम् ॥ भाष्ये—अथ वा समय इति । एवं च समयैतत्पूत्रयोरन्यतरस्याप्यबाधायासरूपपदेनापवाद एव गृह्यते इति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

ननु च य एव तस्य समयस्य कर्ता स एवेदमप्याह । यद्यसौ तत्र प्रमाणम्, इहापि प्रमाणं भवितुमर्हति ॥

( प्रदीपः ) य एवेति । समयस्यायं बाधकोस्त्विति भावः ॥

( उद्घोतः ) इहापि प्रमाणं चेत्किमेतावता, तत्राह—समयस्येति ॥

विधानात् ॥ तस्मात् शब्दरूपस्य धातोः कर्त्तृसंभवात् वाच्यवाचकयोस्तादात्म्याच्छब्दार्थज्ञानातामेकाकारताया एव प्रयोगे सर्वैरङ्गीकृतत्वात्प्राप्तं तदर्थपरमेव प्रयुक्तमिति कल्पनमेव वरमिति दाधिमथाः ।



(समाधानभाष्यम्)

प्रमाणमसौ तत्र चेह च । सामर्थ्यं त्विह द्रष्टव्यं शब्दानां प्रयोगे । न चानुत्पत्तौ सामर्थ्यमस्ति । ततोनुत्पत्तिर्न भविष्यति ॥

(प्रदीपः) सामर्थ्यमिति । अर्थप्रत्यायनाय शब्दाः प्रयुज्यन्ते न च प्रत्ययस्यानुत्पत्तावर्थः प्रत्याययितुं शक्यत इत्यर्थः । पूर्वस्मिन् परिहारे प्रकृतेरेव केवलायाः स्वार्थमात्राभिधानेपि सामर्थ्यं नास्तीत्युक्तम् । उत्तरत्र तु समयात् प्रयोग एव केवलाया नास्तीत्युच्यते ॥

(उद्घोतः) अर्थः प्रत्याययितुमिति । न च प्रत्ययानुत्पत्तौ प्रयोगे सामर्थ्यमस्ति । न केवला प्रकृतिरिति निषेधात् । नापि प्रयुक्तादर्थबोध इति भाष्यार्थः इति भावः ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

कथं तर्हि तद्धितेष्वनुत्पत्तौ सामर्थ्यं भवति ? ॥

(प्रदीपः) कथं तर्हीति । समयात् केवलस्य प्रातिपदस्य तद्धितानुत्पत्तौ साधुत्वं न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

(समाधानभाष्यम्)

अन्येन प्रत्ययेन सामर्थ्यम् । केन ? । षष्ठ्या ॥ अथ वा रूपवत्तामाश्रित्य वाविधिरुच्यते । न चानुत्पत्तौ रूपवती । तेनानुत्पत्तिर्न भविष्यति ॥

(प्रदीपः) अन्येनेति । दक्षस्यापत्यमिति षष्ठ्यन्तस्य प्रातिपदिकस्य प्रयोगो, न केवलस्य । इह तु कृदनुत्पत्तौ सत्यां केवल एव धातुः स्यात्तस्य च समयात् प्रयोगाभावः ॥ अथ वेति । असरूपशब्देन भिन्नरूप उच्यते । तस्य च भिन्नरूपत्वं रूपवदुत्सर्गपेक्षया भवतीति स एव पक्षेऽभ्यनुज्ञायते न त्वरूपानुत्पत्तिरित्यर्थः ॥

(उद्घोतः) असरूपशब्देनेति । भिन्नरूपो वेत्युक्ते भावाभावयोः परस्परभिन्नरूपस्य सत्ता प्रतीतिरिति नानेनोभयोरुत्सर्गोपवादयोर्विभाषा बोधनम् । तथा सति पक्षेऽनुत्पत्तिः स्यात् । सा च न रूपवतीति अभावपक्षे न भिन्नरूपस्य सत्ता स्यादिति भावः ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

एवमपि कुत एतत्—अपवादो विभाषा भविष्यति, न पुनरुत्सर्ग इति ॥

(उद्घोतः) नन्वस्तु सामर्थ्यादन्यतरस्य विकल्पो, न त्भयोरिति बाधकपदभावे अपवाद एवेति कुतो लभ्यत इत्याशङ्कते भाष्ये कुत एतदिति ॥

(समाधानभाष्यम्)

न चैवास्ति विशेषो यदपवादो विभाषा स्याद्, उत्सर्गो वा ॥ अपि च सापेक्षोयं निर्देशः क्रियते—

‘वाऽसरूप’ इति । न चोत्सर्गवेलायां किं चिदपेक्ष्यमस्ति । अपवादवेलायां पुनरुत्सर्गोपेक्ष्यते । तेन यो रूपवानन्यपूर्वो बाधकः प्राप्नोति, स वा बाधको भविष्यति ॥ कः पुनरसौ ? । अपवादः ॥

(प्रदीपः) न चैवास्तीति । उत्सर्गविकल्पेऽप्राप्तविभाषा, अपवादविकल्पे तु प्राप्तविभाषेति न कश्चिद्विशेषः ॥ अपवादवेलायामिति । बाध्यत्वेन यावदुत्सर्गो नृापेक्ष्यते तावदपवादस्य प्रवृत्तिरेव नास्तीत्यर्थः ॥

(उद्घोतः) इद्यापत्या समाधत्ते—न चैवास्तीति ॥ तद्याचष्टे—उत्सर्गेति । असरूप उत्सर्गो वा भवतीत्यनेन प्रत्यासत्त्याऽसरूपोपवाद एव पक्षे स्थाप्यते इति कविषये नापि भावः ॥ वस्तुतोऽसरूपपदेनापवाद एवोपतिष्ठत इत्याह—भाष्ये अपि च सापेक्ष इति ॥ अवपि सापेक्ष इत्यर्थः । भिन्नरूपत्वं ह्यसरूपत्वं तत्र कुतो भिन्नरूप इत्यपेक्षायां स्वविधानवेलायां यः स्वविषये प्राप्तः स एव बुद्धिस्रो गम्यते । अपवादविधिसमये चोत्सर्गस्तमपि विषयसुपदौकमान उपारूढो भवतीति तदपेक्षया भिन्नरूपोपवाद एव गृह्यत इत्यर्थः ॥ न चोत्सर्गवेलायामिति । नन्वपवादवाक्यार्थोत्तरमुत्सर्गस्य लक्ष्यसंस्कारकतेति प्रातिपदिकार्थवृत्तभाष्ये उक्तत्वेनोत्सर्गोपि स्ववेलायामपवादमपेक्षते इति कथमेतदिति चेन्न । लक्ष्यसंस्कारवेलायामपेक्षायामपि वाक्यार्थबोधवेलायां तदभावात् । अस्य च तदैवैकवाक्यतेति भावः ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

यदि यो रूपवानन्यपूर्वो बाधकः प्राप्नोति स वा बाधको भवतीत्युच्यते । किवादिषु समावेशो न प्राप्नोति—ग्रामणीः ग्रामनाथ इति । न ह्येतं रूपवन्तः ॥

(उद्घोतः) स वा बाधको भवतीति भाष्ये स बाधको वा भवतीत्यन्वयः ॥

(समाधानभाष्यम्)

एतेपि रूपवन्तः । कस्यामवस्थायाम् ? । उपदेशावस्थायाम् ॥

(प्रदीपः) उपदेशावस्थायामिति । प्रत्यासत्तिन्यायादुपदेशावस्थायामसारूप्यमाश्रीयते इत्यर्थः ॥

(वार्तिकशेषभाष्यम्)

यद्येवम् ।

(१९२८ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ४ ॥)

॥ \* ॥ अनुबन्धविभिन्नेषु विभाषा-

प्रसङ्गः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) अनुबन्धविभिन्नेषु विभाषा प्राप्नोति—“कर्मण्यण्” “आतोनुपसर्गं क” इति कविषयेऽपि प्राप्नोति ।

१ यच्छब्दो यद्यर्थः । ( र. ना. )

२ प्राचीनतरपुस्तके तु ‘ग्रामनाथः’ इत्यत्र गत्वं न दृश्यते ॥ नव्यपण्डितैस्तु गत्वं कृतम् । परंतु तैः ‘ग्रामनयनस्रोत्सर्गतः’ इति कौस्तुभः ‘कर्मण्यणि

गत्वं न भवति—ग्रामनाथ इति’ इति तत्त्वबोधिण्यादिग्रन्था नैव इष्टा इति दाधिमथाः ॥

( १९२९ समाधानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥\*॥ सिद्धमनुबन्धस्यानेकान्तत्वात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । अनुबन्ध-  
स्यानेकान्तत्वात् । 'अनेकान्ता' अनुबन्धाः ॥

( उद्ध्योतः ) सिद्धमनुबन्धस्यानेकान्तत्वादिति । ननु  
यद्यनुबन्धोऽनवयवस्तदा कथं कप्रत्यये कस्येत्वम्, प्रत्ययादित्वा-  
भावात् । कथं वाडादीनामनेकाल्त्वेन सर्वादेशत्वम् न चादेश-  
प्रवृत्तिकालेऽनुबन्धत्वाभावादानेकाल्त्वम् । तर्हि केऽपि वाक्यार्थबोधो-  
त्पूर्वं प्रत्ययत्वाज्ञानेन तदुत्तरमेवेत्तज्ञाप्रवृत्तौ सर्वत्र नाञ्जलाविति-  
सूत्रभाष्योक्तरीत्या उपदेशोत्तरकालमेवेत्तज्ञा प्रवृत्त्या च उपदेशोऽनु-  
बन्धसत्त्वादसरूपाकारत्वं स्यादिति चेन्न, चुद्ध इत्यादावादिशब्दस्य  
समीपपरत्वात् दोषः । अनेकालित्यत्र संबन्धसामान्यषष्ठ्यर्थबहुव्रीह-  
ङ्गीकारात् दोषः । डादेशोऽपि डा आ इत्याकारप्रक्षेपात्सर्वादेशत्वम्  
इत एव वाऽस्वरसाद् अथैकान्तेषु दोष एवेति वक्ष्यति भाष्यकृत् ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

अथ वा प्रयोगेऽसरूपाणां वाविधिर्न्याय्यः ॥

( उद्ध्योतः ) अथ वा प्रयोगे इति ॥ किपि रूपाभावादिव  
स प्रयोगेऽसरूपः । असरूपपदेन च समानरूपाभाववानुच्यते  
इति भावः ॥

( १९३० दूषणवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ प्रयोगे लादेशेषु प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रयोगे चेष्टादेशेषु प्रतिषेधो वक्त-  
व्यः । ह्योऽपचदित्यत्र लुङपि प्राप्नोति । श्वः पक्ते-  
त्यत्र लङपि प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) ह्योऽपचदिति । लङ्घनचक्रस्तकारः प्रत्ययः  
लुङित्वापाक्षीदिति 'ईत्'शब्द इति भिन्नरूपत्वात्समावेशप्रसङ्गः ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'न लादेशेषु  
वासरूपो भवति' इति । यदयं "ह्रश्वतोर्लङ् च"  
इत्याह ॥

( प्रदीपः ) यदयमिति । परोक्षे लिङ्गिति लिटा लङ्  
समावेशोऽसारूप्यात्सिद्ध एवेति नार्थो लङ्घिधानेन । विहितस्तु  
लकाराणामसमावेशं ज्ञापयतीत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) न लादेशेषु वाऽसरूप इति । आदेशगतम-  
सारूप्यं गृहीत्वा लकारविषये वाऽसरूपविधिर्नास्तीति तात्पर्यम् ।  
आदेशप्रवृत्त्युत्तरकालिकवैरूप्यवस्तु लकारेष्वित्यक्षरार्थः ॥ तदाह—  
लकाराणामसमावेशमिति ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

अथ वा प्रयोगेऽसरूपाणां वाविधौ न सर्वमिष्टं  
संगृहीतमिति कृत्वा द्वितीयः प्रयोग उपास्यते ॥

कोसौ ? । उपदेशो नाम ॥ उपदेशे चैतेऽसरूपाः ॥

( प्रदीपः ) अथ वेति । किवादयो न संगृहीतास्तेषां  
प्रयोगे रूपाभावादित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) सर्वेष्टासंग्रहमुपपादयति—किवादय इति ।  
असरूपपदेन भिन्नरूपस्यैव ग्रहणमित्याशयः ॥

( दूषणसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—\*अनुबन्धविभिन्नेषु विभाषा-  
प्रसङ्गः\*इति ॥

( दूषणपरिहारसारणभाष्यम् )

परिहृतमेतत्—\*सिद्धमनुबन्धस्यानेकान्तत्वाद्\*  
इति ॥

( उद्ध्योतः ) डादौ तु प्रक्षेपान्निर्वाहः ॥

( दूषणभाष्यम् )

अथैकान्तेषु दोष एव ॥

( उद्ध्योतः ) चुद्ध इत्यादावादिशब्दस्य समीपपरत्वे चुष्ण-  
चणयोर्वादित्वेऽपीत्वापत्तेः ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

एकान्तेषु च न दोषः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—  
'नानुबन्धकृतमसारूप्यं भवति'इति । यदयं "ददा-  
तिदधात्योर्विभाषां" शास्ति ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये नानुबन्धकृतमिति । भाष्यनुबन्धत्व-  
ज्ञानविषयवर्णकृतमसारूप्यं नेत्यर्थः ॥ "ददाति दधात्योर्विभाषा"  
शः, पक्षे ष्यैः ॥

( परिहारान्तरभाष्यम् )

अथवाऽसरूपो वा बाधको भवतीत्युच्यते ।  
अपवादश्च नाम अनुबन्धभिन्नो वा भवति रूपान्य-  
त्वेन वा । तेनानेनावश्यं किञ्चित्स्याज्यं किञ्चिच्च  
संगृहीतव्यम् । तद्यदनुबन्धकृतमसारूप्यम्, तज्जा-  
श्रयिष्यामः, यत्तु रूपान्यत्वेनासारूप्यम्, तदाश्र-  
यिष्यामः ॥

( उद्ध्योतः ) अथवेति । उभयकृतासारूप्ये गृह्यमाणे व्याव-  
र्त्ताभावादसरूप इति व्यर्थं स्पष्टत्वाद् 'वाऽपवादः' इत्येव वदेत् ।  
तत्सामर्थ्यादनुबन्धकृतासारूप्यं नाश्रीयते, किं तु रूपान्यत्वेनैवेत्यर्थः ॥

( परिहारान्तरभाष्यम् )

अथवा—'असरूपो वा बाधको भवती'त्युच्यते ।  
सर्वेष्टासरूपः तत्र प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते—'साधीयो  
योसरूपः'इति । कश्च साधीयान् ? । यः प्रयोगे,  
प्राक् च प्रयोगात् ॥

( उद्ध्योतः ) तत्सामर्थ्यात्प्रकर्षगतिः । तेन प्रयोगे उपदेशे  
चासरूप इति द्वितीयः पक्षः ॥

१ अनुबन्धानामनेकान्तत्वे इत्यादिः ॥

२ इत्यापत्तेरिति । अस्य 'इत्यादि' इति शेषः । तथा च 'अनुबन्धाना-  
मनेकान्तत्वे आदिपदस्य समीपपरत्वे चुष्णचणयोर्वादित्वेपि चकारत्येत्वापत्तेर-

व्याघाताद् यकारादित्वाङ्गीकारवैयर्थ्यापत्त्या स्वीकारणीये एकान्तत्वे दोष एवेति  
भाष्याश्रयार्थः ॥

३ 'दधात्योर्विभाषा' इत्यनेनान्तत्वादिति भाष्यम् ॥

( परिहारान्तरभाष्यम् )

अथवा—‘असरूपो वा बाधको भवतीत्युच्यते । न चैवं सति कश्चिदपि सरूपः । त एवं विज्ञास्यामः—‘कचिद्येऽसरूपाः’ इति । अनुबन्धभिन्नाश्च प्रयोगे सरूपाः ॥

( प्रदीपः ) कचिद्य इति । प्रयोग इत्यर्थः । उपदेशे सर्वस्यैवासारूप्यमित्यसरूपग्रहणमनर्थकं स्यात् ॥

( उद्द्योतः ) तत्सामर्थ्यात् प्रायोगिकमसारूप्यमिति तृतीयः पक्षः ॥ तत्रान्ययोः किवादिसंग्रहः । कथमिति चेत् ? रूपाभावादेव सारूप्याभावस्याक्षतेः । असरूपपदेन च सारूप्याभाववानुच्यत इत्याहुः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ कथमिदं विज्ञायते अस्त्रियामिति—किं ‘स्त्रियां न भवति’ इति, आहो स्त्रि ‘प्राक् स्त्रिया भवति’ इति । कश्चात्र विशेषः ? ।

( प्रदीपः ) कथमिति । क्यधिकारविहितेष्वेव किं प्रतिषेधः, परस्तात् क्यधिकारस्य भवत्येव वासरूपविधिः । अथ क्यधिकारात् प्रागवासरूपविधिर्भवति क्यधिकारेण विच्छिद्यत इति प्रश्नः ॥

( उद्द्योतः ) प्रागिति । अत्र पक्षे सूत्रे संनिधः सौत्रः । यद्वा परिभाषापक्षे प्रथमः पक्षः । अधिकारत्वे द्वितीयः । तदा स्त्रियामिति दृष्ट्वा निवर्तते इत्यर्थः ॥

( १९३१ दूषणवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ स्त्रियां प्रतिषेधे कल्युदतुमुन्खल-  
र्थेषु विभाषाप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्त्रियां प्रतिषेधे कल्युदतुमुन्खलर्थेषु विभाषा प्राप्नोति ॥ क—हसितं छात्रस्य शोभनम् । घञपि प्राप्नोति ॥ ल्युट्—हसनं छात्रस्य शोभनम् । घञपि प्राप्नोति ॥ तुमुन्—इच्छति भोक्तुम् । लिङ्-लोटावपि प्राप्नुतः ॥ खलर्थः—ईषत्पानः सोमो भवता । खलपि प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) लिङ्लोटाविति । लिङ्चेति लिङ् भवत्येव । इच्छार्थेषु लिङ्लोटावित्यत्र तु लिङ्लोटीः सहनिर्देशादत्रापि सहनिर्देशः कृतः । लिङ्चेति नियमाच्छोभनं भविष्यतीति शक्यते वक्तुम् ॥ ननु तुमुन् भावे, कर्तृकर्मणोर्लिङ्-लोटाविति भिन्नार्थत्वात् कृतो बाध्यबाधकभावः ॥ नैष दोषः । भावेपि लिङ्लोटीरस्ति विधानमिति तदपेक्षया बाध्यबाधकभावोभिसतः ॥

( उद्द्योतः ) ‘समानकर्तृकेषु तुमुन्’ ‘लिङ्चे’ति वचना-

१ अयं भावः—‘वा असरूपः आ स्त्रियाम्’ इत्येवं चत्वारि पदानि । आह-मर्यादायाम् । ‘स्त्रियाम्’ इति पञ्चमीस्थाने व्यत्ययेन सप्तमी’ इति ॥

लिङ् इष्टत्वादाह—लिङ् चेति । लोटापादन एव भाष्यतात्पर्यमिति भावः ॥ नियमादिति । नियमो वा कल्प्यः, ज्ञापकं वा कल्प्यमिति तु भाष्याशयः ॥ किं च लिङ् कर्तृकर्मणोश्चरितार्थः । भावे तुमुन् भावार्थयोस्तयोरपवाद एवेतीष्टं भगवत इति ज्ञायते इति लिङ्भवत्येवेत्यपि कैयटश्चिन्त्यः ॥ ननु लिङ्लोटी कामप्रवेदने विधीयते इच्छामि भुञ्जीय इच्छामि भुङ्क्तां भवानिति हि तदुदाहरणम् । इदं त्वकामप्रवेदनेऽपीति कथमनयोर्बाध्यबाधकभावः । न चेदमपि कामप्रवेदनविषयः ‘इच्छति भोक्तुम्’ इत्युदाहरणसंगतेः । वक्त्रमिप्रायाविष्करणमेव हि कामप्रवेदनशब्देनोच्यत इति चेन्न । तव भोजनमिच्छतीति तदर्थेनात्रापि तत्सत्त्वात् ॥

( स्त्रियाः प्राग् इति पक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्हि स्त्रियाः प्रागिति वक्ष्यामि ।

( १९३२ दूषणवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ स्त्रियाः प्रागिति चेत् क्त्वायां  
वावचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्त्रियाः प्रागिति चेत्क्त्वायां वावचनं कर्तव्यम् । आसित्वा भुङ्क्ते । आस्यते भोक्तुमित्यपि यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) आस्यते भोक्तुमिति । भोजनार्थत्वादास-नस्य पौर्वकाल्यमात्रं गम्यते इति समानविषयत्वाद् बाध्यबाधकभावप्रसङ्गः । क्त्वा भावे तत्रैव च लकारोत्पत्तिरत्रेति समानार्थत्वमपि विद्यते । तत्रार्थं निर्णयः । क्यधिकारस्य परस्तादपि वासरूपविधिर्भवति । अहं कृत्यतृचश्चेत्यत्र तु कृत्य-तृजग्रहणेन तस्यानित्यत्वं ज्ञाप्यते ॥ १४ ॥

( उद्द्योतः ) ननु पौर्वकाल्याप्रतीतेः कथं क्त्वाविषये लकार-प्राप्तिर आह—भोजनार्थत्वादिति ॥

( १९३३ दूषणवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ कालादिषु तुमुन्विधाने  
वावचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कालादिषु तुमुन्विधाने वावचनं कर्तव्यम् । कालो भोजनस्येत्यपि यथा स्यात् ॥

( १९३४ वार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ अहं तृज्विधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अहं तृज् विधेयः । इमे अहं कृत्या विधीयन्ते ते विशेषविहिताः सामान्यविहितं तृचं बाधेरन् ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । भावकर्मणोः कृत्या विधीयन्ते कर्तरि तृच् । कः प्रसङ्गो यद्भावकर्मणोः कृत्याः कर्तरि तृचं बाधेरन् ।

एवं तर्हि ।

( १९३५ वार्तिकन्यासान्तरम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ अहं कृत्यतृजविधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अहं कृत्यतृचो विधेयाः । अयमहं लिङ् विधीयते । स विशेषविहितः सामान्यविहितान् कृत्यतृचो वा बाधेत ॥ वासरूपोस्त्रियाम् ॥ ९४ ॥

( उद्घोतः ) स्त्रियाः प्रागित्यत्र पक्षे दूषणान्तरमाह—भाष्ये कालादिष्विति । अहं तृजिति च ॥ ९४ ॥

( अथ कृत्यप्रकरणे कृत्यप्रकरणम् )

( ४३८ अधिकारसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. २ )

७१२ कृत्याः ॥ ३।१।९५ ॥

( अवधिज्ञापनाधिकरणम् )

( १९३६ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ कृत्यसंज्ञायां प्राङ् ण्वुल्वचनम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) कृत्यसंज्ञायां प्राङ् ण्वुल इति वक्तव्यम् । किं प्रयोजनम् । ण्वुलः कृत्यसंज्ञा मा भूदिति ॥

( १९३७ आक्षेपवारकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अहंकृत्यतृजग्रहणं तु ज्ञापकं प्राङ् ण्वुल्वचनानर्थक्यस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृत्यतृचश्चेति तृजग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः—प्राङ् ण्वुलः कृत्यसंज्ञा भवतीति ॥

( प्रदीपः ) कृत्याः ॥ ९५ ॥ कृत्याः इत्येतावत् सूत्रमित्याह—कृत्यसंज्ञायामिति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

एवमपि ण्वुलः कृत्यसंज्ञा प्राप्नोति ।

( समाधानभाष्यम् )

योगापेक्षं ज्ञापकम् ॥ कृत्याः ॥ ९५ ॥

( प्रदीपः ) योगापेक्षमिति । ण्वुलत्वाविलेखितस्माद्योगात् प्राक् कृत्यसंज्ञाधिकार इत्येवं तृजग्रहणेनानुमास्यत इत्यर्थः ॥ ९५ ॥

( ४३९ प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. ३ )

७१३ तव्यत्तव्यानीयरः ॥ ३।१।९६ ॥

( १९३८ प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ केलिमर उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) केलिमर उपसंख्यानं कर्तव्यम् ।

पचेलिमा माषाः पक्तव्याः । भिदेलिमाः सरलाः भेत्तव्याः ।

( प्रदीपः ) तव्यत्तव्या ॥ ९६ ॥ केलिमर इति । कर्मकर्तरि चायं कैश्चिद्विध्यते ॥ भाष्यकारेण तु कर्मणि प्रदर्शितः ॥

( उद्घोतः ) तव्यत्तव्या ॥ ९६ ॥ कैश्चिदिति । वृत्तिकारैरित्यर्थः । कर्मणि प्रदर्शित इति । पक्तव्या इति विवरणात् । न हि तव्यः कर्मकर्तरि, लकारवाच्यः कर्ता कर्मवदिति वचनादिति भावः ॥

( १९३९ प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ वसेस्तव्यत् कर्तरि णिच् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वसेस्तव्यत्कर्तरि वक्तव्यः, णिच् चासौ भवतीति वक्तव्यम् । वसतीति वास्तव्यः ।

( १९४० कर्तरि तव्यत् प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तद्धितो वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तद्धितो वा पुनरेष भविष्यति । वास्तुनि भवो वास्तव्यः ॥ तव्यत्तव्या ॥ ९६ ॥

( प्रदीपः ) वास्तुनि भव इति । दिगादित्वाद्यत्प्रत्ययः । नित्यानां शब्दानां यथाकथञ्चिदन्वाख्यानं कर्तव्यमिति मन्यते । यथोक्तम्—

‘उपादायापि ये हेयास्तानुपायान् प्रचक्षते ।

उपायानां च नियमो नावश्यमवतिष्ठते’ इति ॥

अवास्तव्य इत्यत्र स्वरभेदोपि नास्ति । कृत्योक्तेणुजिति यदन्तोदात्तत्वं विधीयते तदेव ययतोश्चातदर्थ इत्यनेन ॥ ९६ ॥

( उद्घोतः ) ननु बोधे विशेषात्कथं तद्धितेन सिद्धिरत आह—नित्यानामिति । वास्तु भवत्वेनापि वासकतुरेव रूढ्या बोधान्नार्थविशेषः । रूढ्या सर्वदोषपरिहारादिति भावः ॥ उपादायापि ये हेया इति । उपायशब्दव्युत्पत्तिः । पृषोदरादित्वात्साधुः ॥ रेखागवयस्थानीयत्वादिति भावः ॥ ‘कृत्योक्ते’ ययतोरिति चान्तोदात्तविधायके । नञ इति च तत्र वर्तते । अत्रेन वास्तव्योऽन्नवास्तव्य इत्यादिसमासस्तु अनभिधानात् भवतीति भाष्याशयः ॥ ९६ ॥

( अथ यत्प्रत्ययप्रकरणम् )

( ४४० यत्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. ४ )

७१४ अचो यत् ॥ ३ । १ । ९७ ॥

( अजग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अजग्रहणं किमर्थम् ? ।

१ ‘प्राक् तृचः’ इत्येवमेव पाठ आसीत् । अतएवाप्ये ‘ण्वुलः कृत्यसंज्ञा प्राप्नोति’ इत्याक्षेपः संगच्छते । ‘ण्वुलः प्राक्’ इति पाठे ण्वुलः कृत्यसंज्ञापत्तिः कथं संगच्छेतेति दाधिमथाः ॥

२ काशिकायाम् “कृत्याः प्राङ् ण्वुलः” इत्येवं दर्शितः सूत्रपाठोऽनर्थ इति सूचितम् ॥

३ इत्येवमेव ‘योगापेक्षं ज्ञापकम्’ इत्यस्य संख्यासंज्ञासूत्रस्थभाष्यस्यापि ‘बहुगुणवतुडति’ इति ‘योगापेक्षं ज्ञापकम्’ इत्येवाथोक्षेप इति दाधिमथाः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

अजन्ताद्यथा स्याद्, हलन्तान्मा भूदिति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । हलन्ताण्यद्विधीयते, स बाधको भविष्यति ॥

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

यथैव तर्हि ण्यद्यतं बाधते । एवं तव्यदादीनपि बाधेत । अजग्रहणे पुनः क्रियमाणे अजन्ताद्यद्विधीयते, हलन्ताण्यद्विधीयते । एतावन्तश्च घातवो यदुताजन्ता हलन्ताश्च । उच्यन्ते च तव्यदादयः । ते वचनाद्भविष्यन्ति ॥

( प्रयोजनबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । वासरूपेण तव्यदादयो भविष्यन्ति ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । अजन्तभूतपूर्वमात्रादपि यथा स्यात्—लघ्यम्, पच्यम् । आर्द्धधातुकसामान्ये गुणे कृतेपि प्रत्ययसामान्येपि च वान्तादेशे कृते 'हलन्तादिति' ण्यत् प्राप्नोति ॥ तथा दिव्यं धित्यम् । आर्द्धधातुकसामान्ये अकारलोपे कृते "हलन्तादिति" ण्यत् प्राप्नोति । अजग्रहणसामर्थ्याद्यदेव भवति ।

( उद्ध्योतः ) अचो यत् ॥ ९७ ॥ भाष्ये आर्द्धधातुकसामान्य इति ॥ विषयसम्बन्धमपि परभूतविषयसत्त्वे एव प्रवृत्त्या परनिमित्तत्वमस्त्येवेति कथयतीत्यादौ स्थानिवत्त्वनिर्वाहः । आर्द्धधातुके इति च जातिनिर्देश इति भावः ॥

( १९४१ यत्प्रत्ययवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यति जनेरुपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यति जनेरुपसंख्यानं कर्तव्यम् । जन्यं घत्सेन ॥

अत्यल्पमिदमुच्यते [—'जनेः' इति ।]

( १९४२ वार्तिकन्यासान्तरम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ तकिशसिचतियतिजनीनामुपसंख्यानमिति वक्तव्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तकि-तक्यम् । शसि-शस्यम् । चति-चत्यम् । यति-यत्यम् । जनि-जन्यम् ॥

( प्रदीपः ) अचो यत् ॥ ९७ ॥ यति जनेरिति । यतोऽनाव इति स्वरार्थं जनेर्यद्विधानम् । जन्यमिति तु ण्यतापि सिध्यति—जनिवध्योश्चेति वृद्धिप्रतिषेधात् ॥

( उद्ध्योतः ) यतोऽनाव इति । आद्युदात्तस्वरार्थमित्यर्थः ॥

( १९४२ कृत्यप्रत्ययवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ हनो वा वध च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हन्तेर्वा यद्वक्तव्यः । वध इत्ययं चादेशः । वध्यः । घात्यः ॥

( १९४३ कृत्यप्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तद्धितो वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तद्धितो वा पुनरेव भविष्यति—वधमर्हतीति वध्यः ॥

( प्रदीपः ) वधमर्हतीति । दण्डादिभ्य इति यत्प्रत्ययः ॥

( उद्ध्योतः ) यत्प्रत्यय इति । एतेन दण्डादिभ्यो य इति वृत्तिपाठ एतद्भाष्यविरुद्ध इति भावः ॥

( तद्धितानुपपत्तिभाष्यम् )

यदि तद्धितः, समासो न प्राप्नोति—असिवध्यो मुसलवध्य इति । यति पुनः सति \*साधनं कृतेति वा पादहारकाद्यर्थम्\* इति समासः सिद्धो भवति ॥

( प्रदीपः ) यदि तद्धित इति । तेन सह समासस्य लक्षणाभावात् ॥

( उद्ध्योतः ) लक्षणाभावादिति । सुप्सुपेति तु न सार्वत्रिकमित्यर्थः ॥

( तद्धितोपपत्तिभाष्यम् )

यदि पुनरसिवधशब्दादेवोत्पत्तिः स्याद् । असिवधमर्हतीति ॥

( उद्ध्योतः ) [ भाष्ये यदि पुनरिति । असिवधादयः समस्ता अपि गणे पाठ्याः । आकृतिगणो वा स इति भावः ॥ एतेन न चासि वधेत्याद्यपास्तम् ॥ ]

( तद्धितानुपपत्तिभाष्यम् )

नैवं शक्यं वक्तुम् । स्वरे हि दोषः स्यात्—'असिवध्यः' एवं स्वरः प्रसज्येत । असिवध्य इति चेप्यते ॥ अचो ॥ ९७ ॥

( प्रदीपः ) स्वरे हि दोष इति । असिवधशब्दायति सति तित्स्वरितमिति स्वरितः प्रसज्येत । कृदन्तेन तु समासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण वध्यशब्द आद्युदात्तो भवति । न चासिवधशब्दात् प्राप्नोति यत् दण्डादिषु केवलवधशब्दस्य पाठात्तदन्तविध्यभावाच्च ॥ ९७ ॥

( उद्ध्योतः ) कृदुत्तरपदेति । वध्यशब्दो 'यतोऽनावः' इति व्यञ्जकत्वादाद्युदात्तः ॥ एवं च तद्धितेनासिद्धिरिति वार्तिकं कार्यमेवेति भावः ॥ ९७ ॥

१ विधायकाभावादित्यर्थः । ( र. ना. )

२ अयं कोष्ठकान्तर्गतपाठः "कृदुत्तरपेति" इति प्रतीकतः प्रागेवोचितः

कृतः भाष्यपाठसंवादात् ॥ समुपलभ्यमानपुस्तकेषु तु 'व्यञ्जकत्वादाद्युदात्तः' इत्युत्तरम् 'एवं च तद्धितेनासिद्धिः' इत्यतः प्राक् समुपलभ्यते ॥

( ४४१ यत्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. ५ )

**७१७ गदमदचरयमश्चानुपसर्गे****॥ ३ । १ । १०० ॥**

( १९४४ यत्प्रत्ययविधिचार्तिकम् ॥ १ ॥ )

**॥ \* ॥ अनुपसर्गाच्चरेराडि चागुरौ ॥ \* ॥**( भाष्यम् ) अनुपसर्गाच्चरेरित्यत्राडि चागुरा-  
विति वक्तव्यम् । आचर्यो देशः ॥

अगुराविति किमर्थम् ? ।

आचार्य उपनयमानः ॥ गदमद ॥ १०० ॥

( ४४२ यत्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. ६ )

**७२० अर्यः स्वामिवैश्ययोः ॥३११०३॥**

( १९४५ अन्तोदात्तत्वविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

**॥ \* ॥ स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च ॥ \* ॥**( भाष्यम् ) स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च वक्तव्यम् ।  
अर्यः स्वामीति ॥ अर्यः स्वामि० ॥ १०३ ॥

( ४४३ यत्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. ७ )

**७२२ अजर्यं सङ्गतम् ॥ ३११०५ ॥**

( आक्षेपभाष्यम् )

सङ्गतमिति । किं प्रत्युदाह्रियते ? ।

( प्रदीपः ) अजर्यम् ॥ १०५ ॥ तयोरेवेति वचना-  
द्भावेऽजर्यशब्दः प्राप्नोति—अजर्यं सङ्गतेनेति । कर्तरि च स-  
ङ्गत इष्यते अजर्यमार्यसङ्गतमित्यतः—च्छति—किं प्रत्युदा-  
ह्रियत इति ॥( उद्घोतः ) अजर्यं ॥ १०५ ॥ कर्तरि च सङ्गत इष्यत  
इति । कर्तरि अर्थे, संगते विशेष्ये इष्यत इत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अजरः कम्बलः, अजरिता कम्बल इति ।

( प्रदीपः ) अजर इति । कर्तर्ययं प्रत्ययो निपात्यते ॥  
ततो ह्यङ्गविकलतापरिहाराय कर्तव्यं प्रत्युदाहरणे प्रदर्शनीय  
इति भावः ॥( उद्घोतः ) कर्तर्ययमिति । अत एवाजर्यमिति निपातना-  
श्रयणम् ॥ अङ्गति । कर्त्रर्थत्वसङ्गतविशेष्यकत्वरूपेत्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं पुनः कारणं कर्तृसाधन एव प्रत्युदाह्रियते,  
न भावसाधनः प्रत्युदाहार्यः ।

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि,

( १९४६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

**॥ \* ॥ अजर्यं कर्तरि ॥ \* ॥**

( भाष्यम् ) अजर्यं कर्तरीति वक्तव्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । गत्यर्थानां कः कर्तरि विधीयते तेन  
योगाद् अजर्यं कर्तरि भविष्यति ॥( प्रदीपः ) गत्यर्थानामिति । यद्यपि सङ्गमनं सङ्गत-  
मिति भावे इह को विहितः तथापि गत्यर्थानां कः प्रत्ययः  
कर्तरि दृष्टो गतो ग्रामं देवदत्त इति । ततो गत्यर्थधातुसाहच-  
र्यादजर्यमिति कर्तरि निपातनमिति मन्यते ॥( उद्घोतः ) गत्यर्थानामिति । भाष्यं दृष्ट्वा सङ्गतमिति  
कर्तरि क्तः । तदर्थं च निपात्यमानमजर्यं कर्तरीति प्रतीयते ॥  
तदसंगतम्, संगतमिति मैत्रीपर्यायस्य भावक्तान्तस्यैवात्र ग्रहणाद् ।  
अतस्तत्तात्पर्यमाह—तथापीति ॥ तेन योगादिति भाष्यस्य तेन  
साहचर्यादित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

गत्यर्थानां वै क्तः कर्मण्यपि विधीयते । तेन  
योगादजर्यं कर्मण्यपि प्राप्नोति ॥

( समाधानभाष्यम् )

जीर्यतिरकर्मकः ।

( प्रदीपः ) जीर्यतिरकर्मक इति । सोपसर्गस्य सक-  
र्मकत्वेपीहानुपसर्गस्य निपातनादकर्मकत्वं बोद्धव्यम् । द्रव्यक-  
र्माभावाश्रयेण चाकर्मकत्वमुक्तम् । कालादिना तु सर्वस्यैव  
सकर्मकत्वम् ॥( उद्घोतः ) सोपसर्गस्येति । अर्थान्तरदृष्ट्येति भावः ॥ ननु  
कालादिकर्मसङ्गात्कथमकर्मकत्वम् । तत्राह—द्रव्येति ॥ एतच्च  
गतिबुद्धीति सूत्रे कालाध्वनोरिति सूत्रे च निरूपितम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

भावे तर्हि प्राप्नोति ।

( उद्घोतः ) कर्तरीति वार्तिकारम्भवादी आह—भाष्ये भावे  
तर्हीति । गत्यर्थेभ्यो विशिष्यविधानेन भावेऽपि कदर्थनादिति भावः ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

संगतग्रहणसिद्धानीं किमर्थं स्यात् ? ।

( प्रदीपः ) सङ्गतग्रहणमिति । नहि गमेर्भावस्य जी-  
र्ततेर्भावेन सामानाधिकरण्यमुपपद्यत इति प्रश्नः ॥( उद्घोतः ) प्रत्याख्यानवाचाह—संगतग्रहणमिति । तथा  
च तत्सामर्थ्यात्कर्तयेव भविष्यति, नार्थो वार्तिकेनेत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

कर्तृविशेषणं संगतग्रहणम् । संगतं कर्तृचेद्भव-  
तीति । तद्यथा—“हृपेलोमसु” इति लोमानि चेत्क-  
र्तृणि भवन्तीति ॥ अजर्यम् ॥ १०५ ॥

( प्रदीपः ) कर्तृविशेषणमिति । वैयधिकरण्यमनयोः पदयोः स्यादिति भावः ॥ लोमानि चेदिति । तथा च हृषितं लोमभिर्हृष्टं लोमभिरिति वैयधिकरण्येपीदृक्कल्पो भवति । तस्मात्कर्तरीति वक्तव्यम् । अथ वा सामानाधिकरण्यत्यागेन वैयधिकरण्याश्रयणस्यायुक्तत्वाज्जिपातनाद्वा कर्तर्येव प्रत्ययो भवतीति स्थितम् ॥ १०५ ॥

( उद्ध्योतः ) वार्तिकारम्भवाद्याह—कर्तृविशेषणमिति । कर्तृपदाध्याहारेणेति भावः ॥ तद्याच्चे—वैयधिकरण्यमिति । अजयं संगतेनेत्युदाहरणमिति भावः ॥ एवं च तत्सामर्थ्याभावेन भावे प्रत्ययव्यावृत्त्यर्थं कर्तरीति वाच्यम् । निपातनसामर्थ्याद्वा कर्तरीति भावः ॥ वैयधिकरण्येपीडिति ॥ कर्तरि निष्ठायां सामानाधिकरण्येपि तद्विकल्प इति भावः ॥ १०५ ॥

( अथ क्यप्प्रत्ययप्रकरणम् )

( ४४४ प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. ८ )

७२३ वदः सुपि क्यप् च ॥ ३।१।१०६ ॥

( १९४७ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ वदः सुप्यनुपसर्गग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वदः सुप्यनुपसर्गग्रहणं कर्तव्यम् । इह मा भूत्—प्रवाद्यं संवाद्यम् ।

( आक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि कर्तव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । अनुपसर्ग इति वर्तते ॥

( वार्तिकसार्थक्यभाष्यम् )

एवं तर्ह्यन्वाच्चे—‘अनुपसर्ग इत्येवं वर्तते’इति ॥

( वार्तिकवैयर्थ्यभाष्यम् )

नैतदन्वाख्येयम्—‘अधिकारा अनुवर्तन्ते’इति । एष एव च न्यायो यदुत “अधिकारा अनुवर्तन्ते” इति ॥ वदः सुपि ॥ १०६ ॥

( प्रदीपः ) वदः सुपि ॥ १०६ ॥ नैतदिति । यत्राधिकारस्य विच्छेदोऽवध्यपरिज्ञानं वा सिंहावलोकनन्यायाश्रयणं वा तत्रावश्यवक्तव्यो विशेषः । एवमादौ तु प्रयोजनाभावाद्वक्तव्य इत्यर्थः ॥ १०६ ॥

( उद्ध्योतः ) वदः सुपि ॥ १०६ ॥ यत्राधिकारस्येति । यथा मण्डूकानुवृत्तिविषयं धान्यानामित्यादौ ॥ अवधीति । यथाऽऽनुगधिकारः प्रागानुवृत्ति इति ॥ सिंहेति । यथा प्राचां ग्लेखत्र सर्वत्रेति ॥ १०६ ॥

( ४४५ क्यप्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. ८ )

७२४ भुवो भावे ॥ ३।१।१०७ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

भावग्रहणं किमर्थम् ? ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

कर्मणि मा भूदिति ।

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । भवतिरकर्मकः ।

( प्रदीपः ) भुवो भावे ॥ १०७ ॥ भवतिरकर्मक इति । ननु प्राप्त्यर्थः सकर्मकोस्ति । नैष दोषः । प्राथम्यात्सत्तार्थस्यैवेह ग्रहणात् । ननु कालादिकर्मणि प्राप्नोति । अनभिधानात्कालादिकर्मणि न भविष्यतीति मन्यते ॥ १०७ ॥

( उद्ध्योतः ) भुवो भावे ॥ १०७ ॥ प्राथम्यादिति । धातुपाठ इति भावः ॥ प्रसिद्धत्वाच्चेत्यपि बोध्यम् ॥ १०७ ॥

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

अकर्मका अपि धातवः सोपसर्गाः सकर्मका भवन्ति । तेनानुभाष्यमामन्त्रणमित्यत्रापि प्राप्नोति ॥

( प्रयोजनबाधकभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । अनुपसर्ग इति वर्तते ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

उत्तरार्थं तर्हि भावग्रहणं कर्तव्यम् । “हनस्त च” भावे यथा स्यात्—श्वहत्या वर्तते । इह मा भूत्—‘श्वघात्यो वृषलः’ इति ॥ भुवो भावे ॥ १०७ ॥

( ४४६ क्यप्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. ९ )

७२५ हनस्त च ॥ ३।१।१०८ ॥

( १९४८ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हनस्तश्चित्खियां छन्दसि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हनस्त चेत्यत्र चित्खियां छन्दसि इति वक्तव्यम् । ‘तां भ्रूणहत्यां निगृह्यानुचरणम्’ । ‘अस्यै त्वा भ्रूणहत्यायै चतुर्थं प्रतिगृह्यते’ ।

( आक्षेपभाष्यम् )

खियामिति किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

आघ्नते दस्युहत्याय ।

( प्रदीपः ) हनस्त च ॥ १०८ ॥ दस्युहत्यायेति । छन्दस्यैवेतत् क्यबन्तं नपुंसकम्, भाषायां तु ब्रीहिवमेव ॥ १०८ ॥

१ भावे प्रत्ययस्वीकारे इत्यादिः । ( र. ना. )

२ ‘गदमदचरयमश्वाऽनुपसर्ग’ इति सूत्रादिति भावः ॥

३ ‘गदमदचरयमश्वा’ इत्यत इति भावः ॥

४ छिन्नव्यत्ययस्य छन्दस्येव विधानात् । तत्र चित्त्वं न ब्रीहत्वाभावात् । अथ तत्र ‘अनुदात्तत्वम्’ इत्येव भवतीति भावः ॥

( उद्घोतः ) हनस्त ॥ १०८ ॥ भाषायां त्विति । शब्द-  
शक्तिस्वभावादेतद्विहितक्यवन्तस्य स्वीत्वमित्यर्थः ॥ १०८ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

छन्दसीति किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

श्वहत्या दस्युहत्या वर्तते ॥ हनस्त च ॥ १०८ ॥

( ४४७ क्यप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. १० )

७२६ एतिस्तुशास्वृहजुषः क्यप्

॥ ३ । १ । १०९ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

क्यबिति वर्तमाने पुनः क्यवग्रहणं किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

क्यवेव यथा स्याद् । यदन्यत्प्राप्नोति तन्मा भू-  
दिति ।

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

किं चान्यत् प्राप्नोति ? ।

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

ण्यत् ।

( समाधानभाष्यम् )

\*ओरावश्यके ण्यतः स्तौतेः क्यप् पूर्वविप्रति-  
षिद्धम्\*इति वक्ष्यति, स पूर्वविप्रतिषेधो न पठि-  
तव्यो भवति ॥ अथवा \*हनस्तश्चित्त्रियां छन्दसि\*  
चोदितः, स न वक्तव्यो भवति ॥

( प्रदीपः ) एतिस्तु ॥ १०९ ॥ अथवेति । पूर्वस्मात्  
क्यपोऽस्य वैलक्षण्यप्रदर्शनाय क्यवग्रहणं कृतम् । तेन पूर्वं क्यप्  
छन्दसि स्त्रियां चिद्धवति ॥

( उद्घोतः ) एतिस्तु ॥ १०९ ॥ आत्मनेपदिभ्यामिति ।  
अकौरवद्विकरणाभ्यामित्यपि बोध्यम् । एतदंशे उत्तरसाहचर्यमप्यनु-  
ग्राहकम् । वृणातिरिति । वृङ् संभक्तविलयम् । एवं च क्यव्  
वृज एवेति भावः ॥ वस्तुतो व्याख्यानादत्र वृजो ग्रहणमित्येव तत्त्वम् ॥

( १९४९ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ क्यन्विधौ वृजग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्यन्विधौ वृजग्रहणं कर्तव्यम् । इह  
मा भूत्—‘वार्या ऋत्विजः’ इति ॥

( प्रदीपः ) क्यन्विधाविति । ईडवन्दवृशंसुदुहां  
ण्यत इति वार्यशब्दस्याद्युदात्तविधानादेतज् ज्ञायते । तत्र  
हीडिबन्दिभ्यामात्मनेपदिभ्यां साहचर्यादृशब्देन वृणातिर्गृह्यते ।

( १९५० क्यप्रत्ययवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अञ्जेश्वोपसंख्यानं संज्ञायाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अञ्जेश्वोपसंख्यानं संज्ञायां कर्तव्यम् ।  
आज्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि क्यप् । वृद्धिर्न प्राप्नोति । तस्माण्यदेषः ॥

( प्रदीपः ) तस्माण्यद एष इति । ननु खरमेदो  
भवति । क्यपि सत्याद्युदात्तं पदं ण्यति सत्यन्तस्वरितम् । नैष  
दोषः । नवविषयस्यानिसन्तस्येत्याद्युदात्तविधानात् ॥

( ण्यदनुपपत्तिभाष्यम् )

यदि ण्यत् । उपधालोपो न प्राप्नोति । तस्मात्  
क्यवेवैषः ।

( दूषणस्मारणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—वृद्धिर्न प्राप्नोतीति ।

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

आङ्पूर्वस्य प्रयोगो भविष्यति ।

( दूषणभाष्यम् )

यद्येवमवग्रहः प्राप्नोति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः, पदकारैर्नाम  
लक्षणमनुवर्त्यम् । यथालक्षणं पदं कर्तव्यम् ॥ एति-  
स्तुशास् ॥ १०९ ॥

( प्रदीपः ) न लक्षणेनेति । संहिताया एव नित्यत्वम् ।  
पदविच्छेदस्य तु पीरुषेयत्वम् । तथा च यत्रार्थनिश्चयाभावस्त-  
त्रावग्रहो न क्रियते । तदुक्तम्—हरिद्रूरनवगृह्यते इति ।  
हरिद्रूरित्यत्र किं हरिशब्द इकारान्तः । अथ हरित्शब्दस्त-  
कारान्त इति संदेहात् ॥ १०९ ॥

( उद्घोतः ) संहिताया एव नित्यत्वमिति । अविच्छिन्न-  
पारम् । पर्यत्वमेवात्र नित्यत्वम् ॥ अर्थनिश्चयाभाव इति । आज्य-  
शब्दस्य रुढत्वादाड्योस्ति न वेति निश्चयाभाव इत्यर्थः ॥ समासे  
संहिता नित्यत्ववग्रहस्य साधुत्वाभावात्संप्रदायमात्रशरणस्य तस्य  
लक्षणा विषयतेत्यर्थमन्ये ॥ १०९ ॥

( ४४८ क्यप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. ११ )

७२८ ई च खनः ॥ ३ । १ । १११ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

दीर्घोच्चारणं किमर्थम् । न “ई च खनः” इत्ये-  
वोच्येत ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

का रूपसिद्धिः—खेयम् ? ।



( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

आद्गुणेन सिद्धम् ॥

( भाष्येपबाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । “षत्वतुकोरसिद्धः” इति एकादेशस्यासिद्धत्वात्तुक् प्रसज्येत ॥

( भाष्येपसाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति । पदान्तपदाद्योरेकादेशोऽसिद्धः । नैष पदान्तपदाद्योरेकादेशः तस्माद् ‘इ च खनः’ इत्येव वक्तव्यम् ॥ ई च खनः ॥ १११ ॥

( प्रदीपः ) ई च खनः ॥ १११ ॥ दीर्घोच्चारणे भाष्यकारेण प्रत्याख्याते केचित् प्रश्नेषनिर्देशेन द्वितीय इकारो ये विभाषेत्याख्यस्य पक्षे परत्वात् प्राप्तस्य बाधनार्थं इत्याहुः । तदयुक्तम् । क्यप्सन्नियोगेन विधीयमानस्येत्यस्यान्तरङ्गत्वाद्, आत्वस्य तु यकारादावुत्पत्ते विधीयमानस्याङ्गस्य बहिरङ्गत्वाद्विप्रतिषेधाभावात् प्राप्त्यभावात् ॥ १११ ॥

( उद्ध्योतः ) ई च खनः ॥ १११ ॥ क्यप्सन्नियोगेनेति । ननु अन्तरङ्ग इत्वे कृते एकदेशविकृतन्यायेन प्राप्तात्स्ववारणार्थं तदावश्यकम् । इत्वं तु पक्षे चरितार्थम् । किं च अचः कर्तृयकीति सूत्रे भाष्ये ये विभाषेत्यत्र ये इत्यस्य विषयसप्तम्यन्तताया उक्ततया परत्वेन क्यपः पूर्वमेवात्वे ततः परत्वात्सर्वगोदीर्घे एकदेशविकृतन्यायेन इ च खन इत्यस्य प्रवृत्तौ स्त्रियमिति स्यात्तद्वारणार्थं दीर्घनिर्देश इति केषांदिदाशय इति चिन्त्यमेतत् इति केचित् ॥ भाष्याशयस्य व्यवस्थितविभाषयाऽत्रात्त्वाप्रवृत्तिरिति । इदं च तत्वाप्यावश्यकम् । अन्यथाकारस्य दीर्घेकारेऽपि स्त्रियमिति स्यात्, न तु खेयमिति । न च खनेनेत्यानुनासिकेकारः स्यात् । तस्याहुणेऽपि कदाचित्तादृश एव स्यात् । तद्वारणाय ईकाररूप एवेकार इत्यर्थं दीर्घनिर्देश इति वाच्यम् । स्थान्यनुरूपेणानासिक एवोच्चारणीयेऽननुनासिकोच्चारणात् । स्पष्टं चेदं पथिमथि अष्टन आ इत्यत्र भाष्यकैयटयोरित्याहुः ॥ १११ ॥

( ४४९ क्यप्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. १२ )

७२९ भृजोऽसंज्ञायाम् ॥ ३।१।११२ ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

असंज्ञायामिति किमर्थम् ।

( प्रदीपः ) भृजोऽसं ॥ ११२ ॥ असंज्ञायामिति किमर्थमिति । क्रियमाणेऽपि प्रतिषेध इष्टं न सिध्यतीति प्रश्नः ॥

( समाधानभाष्यम् )

भार्या ।

( प्रदीपः ) भार्येति । गृहिण्या इयं संज्ञेति क्यबभावे ण्यत्प्रत्ययः ॥

( १९५१ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भृजः संज्ञाप्रतिषेधे स्त्रियामप्रतिषेधोऽन्येन विहितत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भृजः संज्ञाप्रतिषेधे स्त्रियामप्रतिषेधः । अनर्थकः प्रतिषेधः अप्रतिषेधः । किं कारणम् ? । अन्येन विहितत्वात् । अन्येन लक्षणेन स्त्रियां क्यविविधीयते “संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदपुत्रशीङ्भृजिणः” इति ॥

( प्रदीपः ) अनर्थक इति । भृज इति प्राप्तेरयं प्रतिषेध आनन्तर्यात्, ननु लक्षणान्तरप्राप्तेर्व्यवधानादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) भृजोऽसंज्ञा ॥ ११२ ॥ स्त्रियामप्रतिषेध इति भाष्ये स्त्रीलिङ्गभार्याशब्दविषयेऽनर्थकोऽसंज्ञायामिति प्रतिषेध इत्यर्थः ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

प्रतिषेध इदानीं किमर्थः स्यात् ? ।

( प्रदीपः ) प्रतिषेध इदानीमिति । प्रतिषेधविधानसामर्थ्याल्लक्षणान्तरेण प्राप्तस्यापि क्यपः प्रतिषेधो भविष्यतीति भावः ॥

( १९५२ प्रत्याक्षेपसमाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ प्रतिषेधः किमर्थ इति चेदस्त्रीसंज्ञाप्रतिषेधार्थः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रतिषेधः किमर्थ इति चेद्, अस्त्रीसंज्ञाऽस्ति । तदर्थः प्रतिषेधः स्यात्—भार्या नाम क्षत्रियाः ।

( प्रदीपः ) अस्त्रीसंज्ञेति । संज्ञायत इति संज्ञेति कर्मसाधनोऽत्र संज्ञाशब्दः ॥

( उद्ध्योतः ) अस्त्रीशब्दस्य संज्ञाशब्देन समानाधिकरणसमासमभिप्रेत्य तत्सिद्धये कर्मणि संज्ञाशब्दं व्युत्पादयति—संज्ञायत इति । अस्त्री रूढ्या बोध्या यस्यास्तीत्यर्थः ॥

( १९५३ समाधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु स्त्रियां संज्ञाप्रतिषेधात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । स्त्रियां संज्ञाप्रतिषेधो वक्तव्यः । “संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदपुत्रशीङ्भृजिणः” । ततो “न स्त्रियां भृजः” इति ॥

( प्रदीपः ) ततो न स्त्रियामिति । स्त्रीशब्देनात्र स्वन-केशवती गृह्यते । अन्यथा विधिप्रतिषेधयोर्विषयविभागो न स्यात् । तस्माद्भरणं भूतेति विधेर्विषयः । लौकिकी तु स्त्री प्रतिषेधस्य ॥

( उद्घोतः ) अन्यथेति । संज्ञायां समजेति क्यबन्तानां समज्या इत्यादीनां स्त्रीलिङ्गत्वादिति भावः ॥ लौकिकी त्विति । न च विपरीतं किं न स्यादिति वाच्यम्, स्त्रियां क्तिमित्यत्र शास्त्री-यस्यैव ग्रहेणाऽस्यापि तत्रैव प्रवृत्तेरिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )  
सिध्यति । सूत्रं तर्हि भिद्यते ॥

( सिद्धान्तभाष्यम् )  
यथान्यासमेवास्तु ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये यथान्यासमिति । संज्ञायां समेति सूत्रे यदधिकं 'न स्त्रियाम्' इत्यादि कृतम्, तत्र कार्यमित्यर्थः ॥

( दूषणस्मारणभाष्यम् )  
ननु चोक्तम्—\*भृजः संज्ञाप्रतिषेधे स्त्रियामप्रतिषेधोऽन्येन विहितत्वाद्\* इति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )  
नैष दोषः । "भावे" इति तत्रानुवर्तते । कर्मसाधनश्चायम् ॥

( प्रदीपः ) भाव इति तत्रेति । व्रजयजोर्भावे क्यबिल्यतः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—भाव इति तत्र वर्तते इति । ननु समज्या—निषद्या—नियत्यानामधिकरणे, मन्याविधयोः कारणे, तेन सिद्धेरङ्गीकारेण कथं 'भावे' इत्यस्य तत्र संबन्ध इति चेन्न । भृज-विषये 'भावे' इति वर्तते इत्यर्थः । एवं च भृजो भावे एवेष्यत इत्यर्थः ॥ एवमग्रे भावाधिकारोऽस्तीत्यपि व्याख्येयम् ।

( भाष्यम् ) अथ वा य एते संज्ञायां विधीयन्ते, तेषु नैवं विज्ञायते—'संज्ञायामभिधेयायामिति । किं तर्हि ? । प्रत्ययान्तेन चेत्संज्ञा गम्यत इति ॥

( प्रदीपः ) संज्ञायामिति संज्ञाशब्दः कर्मसाधनो न गृह्यते, किं तर्हि ? भावसाधनः । तेन प्रत्ययान्तेन यदि रुढि-गम्यते ततः प्रत्ययः । न च मृत्याशब्देन हि गृहिण्यभिधीयत इति क्यपोऽप्रसङ्गः ॥

( उद्घोतः ) संज्ञाशब्द इति । संज्ञाशब्देन कर्मसाधनेन संज्ञायमानमभिधीयते । तत्राभिधेये प्रत्ययश्चेत्तर्हि मृत्याशब्देन स्यादेव गृहिण्यभिधानमिति भावः ॥ भावसाधनेन भातृनामनेकार्थत्वाद्विदुष्यते । तदाह—रुढिरिति । तद्विषयोऽर्थः । तेन रुढ्यर्थो गम्यत इत्यर्थः ॥ नामधेयवाची संज्ञाशब्दस्तु कारणव्युत्पन्न इति बोध्यम् ॥

( पक्षान्तरभाष्यम् )

अपर आह—

( १९५४ आक्षेपश्लोकवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ "संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वान्न ते भार्या प्रसिध्यति" ॥ \* ॥

( व्याख्याभाष्यम् )

संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वात्तत्र भार्याशब्दो न सिध्यति ।

( १९५५ समाधानश्लोकवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ "स्त्रियां भावाधिकारोस्ति तेन भार्या प्रसिध्यति" ॥ \* ॥

( प्रदीपः ) संज्ञायामिति । 'भार्या नाम क्षत्रिया' इत्य-त्रासंज्ञायामिति प्रतिषेधस्य चरितार्थत्वात्सूत्रान्तरेण स्त्रियां संज्ञायां क्यपः प्रसङ्गाद्भार्याशब्दो न सिध्यतीति चोद्यम् ।

( उद्घोतः ) अपर आहति भाष्ये \*सिद्धं तु स्त्रियां संज्ञा-प्रतिषेधादित्याद्यकरणेन पक्षान्तरत्वम् ॥

( व्याख्याभाष्यम् )

भाव इति तत्र वर्तते । कर्मसाधनश्चायम् ।

( प्रदीपः ) स्त्रीप्रकरणे भावप्रहणानुवर्तनात्कर्मणि क्यब-भावाण् ण्यदेव भवतीत्युत्तरम् ॥

( उद्घोतः ) कर्मणि क्यबभावादिति । भृज इति शेषः ॥

( १९५६ समाधानान्तरश्लोकवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ "अथ वा बहुलं कृत्याः संज्ञायामिति तत्स्मृतम्" ॥ \* ॥

( व्याख्याभाष्यम् )

अथ वा कृत्यल्युटो बहुलमिति एवमत्रापि ण्य-द्वविष्यति ।

( १९५७ दृष्टान्तश्लोकवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ "यथा यत्नं यथा जन्यं यथा भित्तिस्तथैव सा" ॥ \* ॥

( प्रदीपः ) यथेति । अजन्ताद्विधीयमानो यद् यथा हलन्तात् कुतश्चिद् भवति बहुलवचनात् । यथा च भित्ति-रित्यविवक्षितं क्तिन् भवति । एवं भार्येति क्यप्रसङ्गे ण्यद्वव-तीत्यर्थः ॥ ११२ ॥

( उद्घोतः ) जन्ये स्वार्थं यदेवेष्यते, स बाहुलकादेव सिद्ध इति यतिजनेरित्युक्तमुपसंख्यानं न कार्यमिति बोध्यम् ॥

( १९५८ वार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ समश्च बहुलम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) समश्च बहुलमुपसंख्यानं कर्तव्यम् । संभृत्या एव संभाराः । संभार्या एव संभाराः ॥ भृजोसंज्ञायाम् ॥ ११२ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये संभार्या एव संभारा इति । संभारा इति पाठे भृज इति दीर्घान्तात्क्रयादेर् ऋदोरब् बोध्यः ॥ ११२ ॥

( ४५० क्यपनिपातनविधिसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. १३ )

७३१ राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्ट-पच्याव्यथ्याः ॥ ३।१।११४ ॥

( १९५९ अर्थनिर्देशवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सूर्यरुच्याव्यथ्याः कर्तरि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सूर्यरुच्य अव्यथ्य इत्येते कर्तरि निपा-

त्यन्ते । किं निपात्यते ? । “सूर्यः सूसर्तिभ्याम्, सर-  
तेरुत्त्वम्, सुवतेर्वा रुडागमः” ॥ सरणाद्वा सुवति  
कर्मणीति वा सूर्यः ॥ रुच्यः । रोचतेसौ रुच्यः ॥  
न व्यथत इत्यव्ययः ॥

( १९६० वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ कुप्यं संज्ञायाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कुप्यं संज्ञायामिति वक्तव्यम् । गो-  
प्यमन्यत् ।

( १९६१ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ कृष्टपच्यस्यान्तोदात्तत्वं च  
कर्मकर्तरि च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृष्टपच्यस्यान्तोदात्तत्वं च वक्तव्यं  
संज्ञायां कर्मकर्तरि चेति वक्तव्यम् । कृष्टे पच्यन्ते  
स्वयमेव । ‘कृष्टपच्याश्च मे’ । यो हि कृष्टे पक्तव्यः स  
कृष्टपाक्यो भवति ॥ राजसूय ॥ ११४ ॥

( उद्घोतः ) राजसूय ॥ ११४ ॥ सूसर्तिभ्यामिति भाष्यस्य  
क्यव् निपात्यत इति शेषः ॥ कुप्ये गुपेरादेः कत्वम् । सुवर्णरजत-  
भिर्न धनं कुप्यम् ॥ ११४ ॥

( ४५१ क्यप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. १४ )

७३५ प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥ ३।१।११८ ॥

( १९६२ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः छन्दसीति वक्त-  
व्यम् । ‘मत्तस्य न प्रतिगृह्यम्’ । ‘अनृतं हि मत्तो  
वदति तस्मान्नापि गृह्यम्’ ॥ प्रतिग्राह्यमपि ग्राह्य-  
मित्येवान्यत्र ॥ प्रत्यपिभ्याम् ॥ ११८ ॥

( उद्घोतः ) प्रत्यपिभ्याम् ॥ ११८ ॥ अपिगृह्यशब्देन  
बलात्कारग्राह्यमुच्यते इति केचित् ॥ ११८ ॥

( ४५२ ण्यत्प्रत्ययवृद्धिबिक्लपविधिसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. १५ )

७३९ अमावस्यदन्यतरस्याम्

॥ ३ । १ । १२२ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कस्यायमनुबन्धः ? ।

१ सधातोर्नकारस्योच्चे रपरत्वे ‘हलि च’ इत्युकारस्य दीर्घे सूर्य इति सिध्-  
तीति भावः ॥

२ अर्थं तकारः ॥

( समाधानभाष्यम् )

प्रधानस्य ।

( प्रदीपः ) अमावस्यत् ॥ १२२ ॥ प्रधानस्येति ।  
विधीयमानत्वात् प्रत्ययस्य प्राधान्यमिति यत्प्रत्ययो निपात्यत  
इत्युक्तं भवति ॥

( उद्घोतः ) अभावः ॥ १२२ ॥ यत्प्रत्यय इति । सूत्रे  
तदानुपूर्व्या एव श्रवणादित्यर्थः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

यदि प्रधानस्य । अमावस्या इत्येवं स्वरः प्रस-  
ज्येत । अमावस्या इति चेप्यते । तथा अमावास्या-  
ग्रहणेनामावस्याग्रहणं न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) एवं स्वर इति । यतोऽनाव इति उत्तर-  
पदमाद्युदात्तं स्यात् । अन्तस्वरितं चेप्यते ॥ अमावास्याग्र-  
हणेनेति । शब्दान्तरत्वादमावास्याशब्दस्य ण्यदन्तत्वादमा-  
वस्याशब्दस्य यदन्तत्वादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) अन्तस्वरितमिति । अमेति लुप्तसप्तमीकमित्यु-  
पपदत्वात्, निपातनेन वा तत्त्वादुपपदसमासे कृदुत्तरपदप्रकृति-  
स्वरेणेति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि निपातनस्य ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । यत्प्रत्ययान्तत्वं न निपा-  
त्यत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) यत्प्रत्ययेति । निरस्तावयवविभागः समुदाय  
एव निपात्यते । तस्य च तकारोन्त इति अन्तस्वरितत्वं सिध्यतीति  
भावः ॥ अमावास्याशब्दस्थाने चेदं निपातनमिति तद्ग्रहणेनास्य  
ग्रहणमपि सिद्धमिति तात्पर्यम् ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

यदि तर्हि निपातनान्यप्येवंजातीयकानि भवन्ति  
“श्रोत्रियंश्छन्दोधीते” इति व्यपवर्गाभावात् ज्नि-  
त्याद्युदात्तत्वं न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) ननु तितिप्रत्ययग्रहणं चोदयिष्यते । निर-  
स्ताविभागे च निपातन आश्रीयमाणे स्वरितत्वं न सिध्यतीति  
मत्ताह—यदि तर्हीति ॥ एवंजातीयकानीति । निरस्ता-  
वयवविभागानीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये ज्नितीत्याद्युदात्तत्वं न प्राप्नोतीति ।  
ज्नितीति परसप्तमीत्यभिप्रायेणेदम् ॥ प्रकृते स्वरितत्वं न प्राप्नोतीत्यपि  
बोध्यम् ॥ तैत्सुत्रे प्रत्ययग्रहणस्य प्रत्याख्यास्यमानत्वाच्चैद्रीत्येदं  
भाष्यमित्यन्ये ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि—

३ ‘अमावास्याया वा’ इत्यनेति पदमञ्जरी ॥

४ तित्स्वरितमिति सूत्रे वार्तिकोक्तप्रत्ययग्रहणस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

५ प्रकृते समुदायनिपातनेऽपि अन्तस्वरितत्वसिद्धयेति भावः । ( र. ना. )

( १९६३ श्लोकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ “अमावसोरहं ण्यतोर्निपातयाम्य-  
वृद्धिताम् ॥ \* ॥तथैकवृत्तिता तयोः स्वरश्च मे  
प्रसिध्यति ॥”

( भाष्यम् ) अमा ॥ १२२ ॥

( प्रदीपः ) अमावसोरिति । वृद्धिभावाभावकृतमेदा-  
श्रयो द्विवचननिर्देशः ॥ निपातयामीति । एकतरस्येति  
शेषः ॥ एकवृत्तितति । एका तद्धितवृत्तिरुभयोः सिध्यति  
एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् । तथा हि ण्यत्यमावास्याशब्दस्य  
न्याय्यत्वादाकारस्य प्रकृतिलमकारस्य तु विकारत्वम् ॥ १२२ ॥( उद्घोतः ) एकतरस्येतीति । वसधातुभ्यां ण्यतोः कृतयो-  
रन्यतरस्येत्यर्थः ॥ वसोरिति पञ्चम्यर्थे षष्ठीद्विवचनम् ॥ ण्यदप्य-  
माशब्दे उपपदे निपात्यत इति बोध्यम् । अन्ययोपपदत्वाभावे  
समास उत्तरपदप्रकृतिस्वरश्च न स्यादिति बोध्यम् ॥ वार्तिकेऽवृद्धि-  
शब्देन हस्तो लक्ष्यते । तदध्वनयन्नाह—एकदेशेति ॥ भाष्ये  
स्वरश्च मे इति तत्प्रत्ययप्रयुक्तस्वरित इत्यर्थः ॥ १२२ ॥

( ४५३ छान्दसनिपातनसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. १६ )

७४० छन्दसि निष्टक्यदेवहूयप्रणीयो-  
न्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्थाध्वर्यखन्यखान्य-  
देवयज्यापृच्छथप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभा-  
व्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥ ३।१।१२३ ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

निष्टक्य इति किं निपात्यते ।

( १९६४ निपातनप्रदर्शकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ निष्टक्ये कृतेराद्यन्तविपर्यय-  
श्छन्दसि कृताद्यर्थः ॥ \* ॥( भाष्यम् ) यथा कृतेस्तर्कः, कसेः सिकता, हिंसेः  
सिंहः ॥( प्रदीपः ) छन्दसि ॥ १२३ ॥ कृताद्यर्थ इति ।  
कृतशब्दस्य धातोर्य आदिः ककारस्तत्प्रयोजनः । आदेरन्त-  
त्वम्, अन्तस्य चादित्वं यथा स्यादित्यर्थः । आद्यन्तयोः पर-  
स्पररूपापत्तिर्न तु वर्णान्तररूपापत्तिरिति प्रदर्शनाय कृताद्यर्थ  
इत्युक्तं भवति ॥ १२३ ॥( उद्घोतः ) छन्दसि नि ॥ १२३ ॥ कृतेराद्यन्तविपर्ययः  
कृताद्यर्थ इत्यसंगतं मतवाह—कृतशब्दस्येति । तत्प्रयोजन इत्यस्यतत्स्थाने तदुत्पत्तिप्रयोजनः तत्स्थाने(कस्थाने)तोत्पत्तिप्रयोजनस्तत्स्थाने-  
ने(तस्थाने)कोत्पत्तिप्रयोजनश्चेत्यर्थः । तदध्वनयन्नाह—परस्परिति ।  
अन्यथा आद्यन्तयोः स्थाने तृतीयवर्णकरणमप्याद्यन्तविपर्ययः स्यादिति  
भावः ॥ निष्टक्ये कृते राद्यन्तविपर्ययश्छन्दसि कृताद्यर्थ इत्येव  
भाष्यपाठ इति कैयटतात्पर्यम् । साम्प्रतपुस्तकेषु तु निष्टक्ये कृते-  
राद्यन्तविपर्ययश्छन्दसि कृताद्यर्थः । यथा कृतेस्तर्क इत्यादि  
दृश्यते । तत्र निष्टक्ये कृतेश्छन्दसि इत्यन्वयः । निपात्यत इति  
शेषः ॥ प्रत्ययप्रकरणण्यन्तिपात्यः । षत्वं च निपात्यमित्यर्थः ।  
अन्यथा कदुपधत्वात्यवेव स्यादिति भावः ॥ आद्यन्तविपर्ययः  
कृताद्यर्थ इत्यस्य कृताद्यर्थ आद्यन्तविपर्यय आवश्यकस्तेनान्नापि  
सिद्धे तदर्थं न निपातनमित्यर्थः । कृताद्यर्थ इत्यादिशब्दार्थमेव  
दर्शयति कृतेस्तर्क इत्यादिना ॥

( मतान्तरभाष्यम् )

अपर आह—

( १९६५ मतान्तरवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ निष्टक्ये व्यत्ययं विद्यान्तिसः षत्वं  
निपातनात् ।

ण्यदायादेश इत्येतावुपचाय्ये

निपातितौ ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निष्टक्ये चिन्वीत पशुकामः ।

( १९६६ निपातनीयवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ ण्यदेकस्माच्चतुर्भ्यः क्यप् चतुर्भ्यश्च  
यतो विधिः ।

ण्यदेकस्माद्यशब्दश्च द्वौ क्यपौ

ण्यद्विधिश्चतुः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ‘ण्यदेकस्मात्’—निष्टक्यः । ‘चतुर्भ्यः  
क्यप्’—देवहूयः, प्रणीयः, उन्नीयः, उच्छिष्यः ।  
‘चतुर्भ्यश्च यतो विधिः’—मर्यः, स्तर्था, ध्वर्यः, खन्यः ।  
‘ण्यदेकस्मात्’—खान्यः । ‘यशब्दश्च’—देवयज्या ।  
‘द्वौ क्यपौ’—आपृच्छथः, प्रतिषीव्यः । ‘ण्यद्विधि-  
श्चतुः’—ब्रह्मवाद्यः, भाव्यः, स्ताव्यः, उपचाय्यपृ-  
डम् । उपपूर्वाच्चिनोत्तेरायादेशोपि निपात्यते । नहि  
ण्यतैव सिध्यति ।

( १९६७ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ हिरण्य इति च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हिरण्य इति च वक्तव्यम् । उपचेय-  
पृडमित्येवान्यत्र ॥ छन्दसि निष्टक्ये ॥ १२३ ॥( उद्घोतः ) अपर आह—निष्टक्ये व्यत्ययमिति । वर्ण-  
व्यत्ययं प्रत्ययव्यत्ययं चेत्यर्थः । व्यत्ययो बहुलमिति सूत्रेणेति

भावः । एवं च षत्वमात्रफलकं निपातनमित्याह—निसः षत्व-  
मिति ॥ भाष्ये ण्यद्विधिश्रुतिरिति । मुजन्तमेतत् । चतुरो वारा-  
नित्यर्थः । चतुर्थ्य इति यावत् ॥ उपपूर्वाच्चिनोतेरिति । पृष्ठे  
उत्तरपदे इति यावत् । पृष्ठेरिगुपधलक्षणः कः ॥ १२३ ॥

( इति क्यप् प्रकरणम् )

( अथ ण्यत्प्रकरणम् )

( ४५४ ण्यत्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. १७ )

७४१ ऋहलोर्ण्यत् ॥ ३ । १ । १२४ ॥

( १९६८ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ पाणौ सृजेर्ण्यद्विधिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पाणौ सृजेर्ण्यद्विधेयः । पाणिसर्ग्या  
रज्जुः ॥

( उद्घोतः ) ऋहलोः ॥ १२४ ॥ पाणौ सृजेर्ऋदुपधा-  
दिति क्यपोपवादो ण्यत् ॥

( १९६९ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ समवपूर्वाच्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) समवपूर्वाच्चेति वक्तव्यम् । समव-  
सर्ग्या रज्जुः ॥

( १९७० वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ लपिदभिभ्यां च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लपिदभिभ्यां चेति वक्तव्यम् । अप-  
लाप्यम् । अपदाभ्यम् ॥ ऋहलो ॥ १२४ ॥

( उद्घोतः ) लपिदभिभ्यां पोरदुपधादिति यतः ॥ १२४ ॥

( ४५५ ण्यत्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. १८ )

७४२ ओरावश्यके ॥ ३ । १ । १२५ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथमिदं विज्ञायते—आवश्यके उपपदे, आहो-  
स्विद्—द्योत्य इति ।

( प्रदीपः ) ओरावश्यके ॥ १२५ ॥ कथमिति ।  
किमावश्यकार्थवाचिन्नुपपदे प्रत्ययः, उत प्रत्ययेन आवश्यके  
द्योत्य इति प्रश्नः ॥

कश्चात्र विशेषः ? ।

( १९७१ उपपदपक्षदूषणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ आवश्यक उपपद इति चेद् द्योत्य

उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आवश्यके उपपदे इति चेद् द्योत्ये  
उपसंख्यानं कर्तव्यम् । पाठ्यं लाप्यम् ॥

( द्योत्यपक्षाभ्युपगमभाष्यम् )

अस्तु तर्हि द्योत्ये ।

( १९७२ द्योत्यपक्षदूषणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ द्योत्य इति चेत्स्वरसमासा-  
नुपपत्तिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्योत्य इति चेत् स्वरसमासानुप-  
पत्तिः प्राप्नोति । अवश्यलाप्यम् । अवश्यपाठ्यम् ॥

( प्रदीपः ) अवश्यलाप्यमिति । द्वावपूर्वावित्यादौ  
गतार्थस्यापि क्वचित् प्रयोगो लोके दृश्यते लाघवं प्रत्यनादरा-  
दिति मन्यते ॥

( उद्घोतः ) ओरावश्य ॥ १२५ ॥ ननु उक्तार्थवाद-  
वश्यशब्दप्रयोग एव न स्यात् । ण्यदेव वा न स्यादिति कुतो नो-  
क्तम्, अत आह—द्वावपूर्वाविति । द्योत्य इत्युक्तेष्वेतकसमुच्चय इष्ट  
पदेति लभ्यते ॥ उपपदत्वाभावात्स्वरसमासयोरनुपपत्तिरिति भावः ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । मयूरव्यंसकादित्वात् समासः ।  
विस्पष्टादिवत् स्वरश्च ॥

( प्रदीपः ) विस्पष्टादिवदिति । यथा विस्पष्टकन्दुक-  
मित्यत्र मयूरव्यंसकादित्वात्समासे कृते पूर्वपदप्रकृतिस्वरो भ-  
वति, एवमवश्यलाप्यमित्यादावपि मयूरव्यंसकादिषु निपातना-  
दुत्तरपदप्रकृतिस्वरो भविष्यतीत्यर्थः ॥ १२५ ॥

( उद्घोतः ) ननु विस्पष्टादीनि गुणवचनेष्वित्यनेन पूर्व-  
पदप्रकृतिस्वरविधानादत्रोत्तरपदप्रकृतिस्वरस्येष्टत्वेन विस्पष्टादिव-  
दित्यसंगतमिति मत्वाह—यथेति । एवं च मयूरव्यंसकादिषु निपा-  
तनादेव सिद्धे विस्पष्टादीनि इति सूत्रमपि न कार्यमिति भावः ॥ १२५ ॥

( १९७३ पूर्वविप्रतिषेधवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ ओरावश्यके ण्यतः स्तौतेः क्यप्  
पूर्वविप्रतिषिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ओरावश्यके ण्यतः स्तौतेः क्यप्  
भवति पूर्वविप्रतिषेधेन । ओरावश्यके ण्यद्ववती-  
त्यस्यावकाशः—अवश्यलाप्यम् । अवश्यपाठ्यम् ।  
क्यपोवकाशः—स्तुत्यः । इहोभयं प्राप्नोति—अव-  
श्यस्तुत्यः । क्यप् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः ।

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यः । उक्तं तत्र 'क्यबिति वर्तमाने पुनः  
क्यवग्रहणस्य प्रयोजनम्'—क्यबेव यथा स्यात्,  
यदन्यत् प्राप्नोति तन्मा भूदिति ॥ ओरावश्यके १२५

( ४५६ ण्यत्प्रत्ययायादेशनिपातनसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. १९ )

**७४४ आनाय्योऽनित्ये ॥ ३।१।१२७ ॥**

( १९७४ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ दक्षिणाग्नौ ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दक्षिणाग्नौ वित्ति वक्तव्यम् । आने-  
योऽन्यः ॥

( १९७५ पूर्वपक्षवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ आनाय्योऽनित्य इति चेद् दक्षि-  
णाग्नौ कृतं भवेत् ॥ \* ॥

( १९७६ समाधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ एक्योनौ तु तं विद्यादानेयो  
ह्यन्यथा भवेत् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आनाय्यो ॥ १२७ ॥

( प्रदीपः ) आनाय्यो ॥ १२७ ॥ आनाय्योऽनित्य  
इति चेदिति । घटादिष्वपि प्रसङ्ग इति शेषः ॥ भवेदिति ।  
संभावने लिङ् । निर्पातनाद्बुद्धिराश्रीयते । एक्योनाविति ।  
यो गार्हपत्यादानीयते आहवनीयेन सहैक्योनिर्दक्षिणाग्निस्तत्रे-  
त्यर्थः । यस्तु वैश्यकुलादानीयते तत्रानाध्यशब्दो न भवति  
॥ १२७ ॥

( उद्घोतः ) आनाय्यो ॥ १२७ ॥ संभावने लिङिति ।  
दक्षिणाग्नौ युक्तत्वं संभाव्यते निपातनादित्यर्थः ॥ १२७ ॥

( ४५७ ण्यत्प्रत्ययादिनिपातनविधिसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. २० )

**७४६ पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या  
मानहविर्निवाससामिधेनीषु**

**॥ ३।१।१२९ ॥**

( आक्षेपभाष्यम् )

पाय्यनिकाय्ययोः किं निपात्यते ? ।

( १९७७ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ पाय्यनिकाय्ययोरादिपत्वकत्व-  
निपातनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पाय्यनिकाय्ययोरादिपत्वमादिकत्वं  
च निपात्यते ॥ मेयं निचेयमित्येवान्यत्र ॥ पाय्यसां  
॥ १२९ ॥

( उद्घोतः ) पाय्यसान्नाय्य ॥ १२९ ॥ भाष्ये पाय्य-

निकाय्ययोरिति । आयादेशोपि निपात्यत इति बोध्यम् ॥ १२९ ॥

( ४५८ ण्यत्प्रत्ययादिनिपातनसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. २१ )

**७४७ क्रतौ कुण्डपाय्यसंचायौ**

**॥ ३।१।१३० ॥**

( १९७८ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कुण्डपाय्ये यद्विधिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कुण्डपाय्ये यद्विधेयः ॥ कुण्डपाय्यः  
क्रतुः ॥ क्रतौ कु० ॥ १३० ॥

( उद्घोतः ) क्रतौ ॥ १३० ॥ यद्विधेय इति । तेन  
यतोऽनाव इत्याद्युदात्तः, कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण तैत्सत्ता च युक्  
च निपात्यत इत्यपि बोध्यम् ॥ १३० ॥

( ४५९ ण्यत्प्रत्ययायादेशादिनिपातनसूत्रम् ॥ ३।१।६ आ. २२ )

**७४८ अग्नौपरिचाय्योपचाय्यसमूह्याः**

**॥ ३।१।१३१ ॥**

( १९७९ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ समूह्य इत्यनर्थकं वचनं सामान्य-  
कृतत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) समूह्य इत्यनर्थकं वचनम् ॥ किं  
कारणम् ॥ सामान्यकृतत्वात् । सामान्येनैवात्र  
ण्यद्भविष्यति “ऋहलोर्ण्यद्” इति ।

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

वह्यर्थं तर्हि निपातनं कर्तव्यम् । वहर्ण्यद्यथा  
स्यात् ॥

( उद्घोतः ) अग्नौ प ॥ १३१ ॥ भाष्ये वहर्ण्यदिति । समूह्य-  
शब्दे इति शेषः ॥ तत्र कृते संप्रसारणदीर्घत्वे निपातनादित्यर्थः ॥

( १९८० आक्षेपसाधकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ वह्यर्थमिति चेद् ऊहेस्तदर्थत्वा-  
त्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ऊहिरपि वह्यर्थं वर्तते ।

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं पुनरन्यो नामान्यस्यार्थं वर्तते । कथमूहिर्व-  
ह्यर्थं वर्तते ? ।

( समाधानभाष्यम् )

बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति ।

१ प्रदीपाक्षरस्वरत्वेन तु प्रथमचरणेनाक्षेपः कृतः । द्वितीयचरणेन समा-  
धानमिति प्रतीयते ॥ परं तु—‘आनाय्योऽनित्ये’ इति चेदुच्यते तर्हि  
यद्यपि दक्षिणाग्नौ लिङ्, तथापि घटादिष्वनित्येषु अतिप्रसङ्गः  
स्यात् इत्येवं पूर्वार्थत्वेन शङ्कामन्यत्वम्, ‘एक्योनौ’ इत्युत्तरार्थस्य समाधान-

ग्रन्थत्वम्’ इति दाधिमथ्यानां प्रतिभायां योग्यायोग्यत्वं विचार्यमाणैः ॥

२ आद्युदात्तसत्ता । ‘ण्यति तु स्वरितत्वं स्यादिति पदमञ्जरी’ ॥

३-४ ‘सामान्येन कृतत्वात्’ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अस्ति पुनः क्वचिदन्यत्रापि ऊर्ध्वैर्ह्यर्थे वर्तते ।

( समाधानभाष्यम् )

अस्तीत्याह ।

( १९८१ आनर्थक्यसाधकान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥\*॥ ऊर्ध्वविग्रहाच्च ब्राह्मणे सिद्धम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) ऊर्ध्वविग्रहाच्च ब्राह्मणे सिद्धमेतत् ।

“समूहं चिन्वीत पशुकामः” । पशवो वै पुरुषेः पशूनेवास्यै तत्समूहतीति ॥ अग्नौ वहि ॥ १३१ ॥

( प्रदीपः ) अग्नौ ॥ १३१ ॥ ऊर्ध्वविग्रहादिति ।

वहिसमानार्थेनोहिना ब्राह्मणे समूहशब्दस्य निर्वचनं कृतमित्यर्थः ॥ १३१ ॥

( उद्घोतः ) वहिसमानार्थेनेति । संवाहमित्यग्नौ तु न अनभिधानादिति भावः ॥ भाष्ये—ऊर्ध्वविग्रहादिति । ब्राह्मणे ऊहिना विग्रहदर्शनादूर्ध्वैर्ह्यर्थेत्वं सिद्धमित्यर्थः ॥ १३१ ॥

( ४६० निपातनसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. २३ )

७४९ चित्याग्निचित्ये च ॥ ३।१।१३२ ॥

( १९८२ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ अग्निचित्येत्यन्तोदात्तो भावे ॥\*॥

( भाष्यम् ) अग्निचित्येतिभावेन्तोदात्तो भवति ।

अग्निचयनमेवाग्निचित्या ॥ चित्याग्नि ॥ १३२ ॥

( इति कृत्यप्रकरणम् )

( ४६१ प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. २४ )

७५० ण्वुल्तृचौ ॥ ३ । १ । १३३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थश्चकारः ।

( समाधानभाष्यम् )

स्वरार्थः । चितोन्त उदात्तो भवतीत्यन्तोदात्तत्वं यथा स्यात् ।

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । एकाजयम् । तत्र नार्थः स्वरार्थेन चकारेणानुबन्धेन प्रत्ययस्वरेणैव सिद्धम् ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

विशेषणार्थस्तर्हि । क विशेषणार्थेनार्थः ? । “अ-

१ ‘क्वचिद्विरन्यत्रापि बह्वर्थे’ ॥

२ ‘पुरुषाः’ ॥

३ उणादिषु निरनुबन्धो यथा तुशब्दोऽस्ति, तथा ‘ण्वुल्तृचौ’ इत्यत्रापि निरनुबन्धतुशब्दस्यैव विधाने, एतद्विहितनिरनुबन्धतृप्रत्ययान्ते इष्टस्य सिद्धये ‘अण्वुल्’ इत्येवं न्यासे एतद्विहिते तुशब्दे दीर्घस्येष्टत्वेन उणादिविहितेऽनित्यस्य दीर्घस्यापत्तिरित्यभिप्रायेण भाष्यकृता ‘अत्रैव’ इति नोक्तम्, किंतु ‘अत्रापि’

पण्वुल्तृच-”इति । ‘तृ’ इत्युच्यमाने मातरौ मातरः पितरौ पितर इत्यत्रापि प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) ण्वुल्तृचौ ॥ १३३ ॥ मातराविति ।

उणादिषु तृप्रत्ययान्ता मात्रादयो निपातिता इति भावः ॥

( उद्घोतः ) ण्वुल्तृचौ ॥ १३३ ॥ भाष्ये यदि तृ इत्युच्यते मातरौ मातरः अत्रापि प्राप्नोतीति । न च निरनुबन्धकत्वादस्यैव ग्रहणं स्यादिति वाच्यम् । लक्ष्यैतुरोधेन शापकसिद्ध-तयाऽनित्यत्वेन च तस्या इहाप्रवृत्तेरिति भावः ॥ तृप्रत्ययान्ता इति । निरनुबन्धतृप्रत्ययान्ता इत्यर्थः । अस्यापि तृत्वे यथान्यासेऽप्यापत्तेः सत्त्वेन तृ इत्युच्यमाने इत्यस्यासंगत्यापत्तेः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

स्वसृन्तृग्रहणं नियमार्थं भविष्यति । एतयोरेव योनिसंबन्धयोः, नान्येषां योनिसंबन्धानामिति ॥

( प्रदीपः ) स्वसृन्तृग्रहणमिति । नतृग्रहणं नियमार्थं स्वसृशब्दस्तु ऋन्प्रत्ययान्तत्वाद्विध्यर्थ एव ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

सामान्यग्रहणाविधातार्थस्तर्हि । क सामान्यग्रहणाविधातार्थेनार्थः ? ॥ अत्रैव ॥ यदेतत्तृन्तृचोर्ग्रहणम्, एतत् ‘तृ’ इति वक्ष्यामि ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये तृ इति वक्ष्यामीति । एवं च तृनो ग्रहणसिद्ध्यर्थं चकार इति भावः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

यदि ‘तृ’ इत्युच्यते । मातरौ मातरः पितरौ पितरः । अत्रापि प्रसज्येत ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

स्वसृन्तृग्रहणं नियमार्थं भविष्यति—“एतयोरेव योनिसंबन्धयोः, नान्येषां योनिसंबन्धानामिति ॥

( उद्घोतः ) यदि तृ इत्युच्यत इति । चकारकरणसामर्थ्यात्सानुबन्धकग्रहणेऽपि निरनुबन्धकग्रहणं दुर्वारमेवेति भावः ॥

( सामान्यग्रहणाविधातभाष्यम् )

“तुश्छन्दसि” “तुरिष्टेमेयःस्विति” चोभयोर्ग्रहणं यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) सामान्यग्रहणाविधातार्थत्वं चकारस्य स्थितम् । तुश्छन्दसि ‘तुरिष्टेमेयःस्व’ इत्यत्राप्येतत्प्रयोजनसद्भावात् ॥ १३३ ॥

( उद्घोतः ) अन्यत्रापि तदर्थत्वं दर्शयति—इति चोभयोर्ग्रहणमिति । इदम् उणादयो व्युत्पन्ना इति शाकटायनादिमते ॥

इत्येवोक्तमिति नागेशस्य पूर्वपक्ष एव न समीचीन इति दाधिमथाः ॥

४ ‘एवं च एकेन ‘तृ’ग्रहणेनैव तृनोपि ग्रहणसिद्ध्यर्थं चकार ‘खण्डितः’ इत्येवमुद्घोते पाठकल्पनेन भाष्ययोजना कार्येति दाधिमथाः ॥

५ निरनुबन्धकग्रहण इति परिभाषायाः प्रवोक्तरीत्याऽनित्यत्वादिति भावः । ( १. ना. )

अव्युत्पत्तिवादिमते तु प्राप्तिरेव न ॥ मातयतीत्यादौ तृलोपवारणा-  
यात्राव्युत्पत्तिपक्ष एवावश्यक इति अचिर कृत इति सूत्रे कैयटः ॥

( १९८३ धातुपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ ण्वुलि सकर्मकग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ण्वुलि सकर्मकग्रहणं कर्तव्यम् । इह  
मा भूद्—आसिता शयितेति ॥

( १९८४ परिसंख्यानिराकरणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥\*॥ न वा धातुमात्रादर्शनाद् ण्वुलः ॥\*॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यः । किं कारणम् ? ।  
धातुमात्रादर्शनाद् ण्वुलः । धातुमात्राण्वुल इ-  
दृश्यते । इमे अस्य आसकाः । इमे अस्य शयकाः ।  
उत्थिता आसका वैश्रवणस्येति ॥

( उद्घोतः ) किं कारणमिति । कस्माद्धेतोरित्यर्थः ॥ हेतु-  
माद्—धातुमात्रादित्यादिना ॥

( १९८५ कालपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तृजादिषु वर्तमानकालोपादान-  
मध्यापकवेदाध्यायाद्यर्थम् ॥ \* ॥

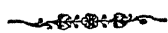
( भाष्यम् ) तृजादिषु वर्तमानकालोपादानं कर्त-  
व्यम् । किं कारणम् ? । अध्यापकवेदाध्यायाद्यर्थम् ।  
अध्यापकः वेदाध्यायः । अधीतवत्यध्येष्यमाणे वा  
मा भूद् इति ॥

( १९८६ परिसंख्यानिराकरणवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥\*॥ न वा कालमात्रे दर्शनादन्येषाम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यम् । किं कारणम् ? ।  
कालमात्रे दर्शनादन्येषाम् । कालमात्रे ह्यन्ये प्रत्यया  
दृश्यन्ते । चर्चापारः शमनीपारः ॥ ण्वुल्लृचौ ॥ १३३ ॥

( उद्घोतः ) अन्येषामिति । ण्वुल्लृच्यतिरिक्तानामित्यर्थः ।  
एवं च वर्तमाने इति कृते दोषः । ण्वुल्लृचोस्तु अन्यत्र कालेऽन-  
भिधानं स्वीकार्यमिति भावः ॥ १३३ ॥



१ मातरमाच्छे इति विग्रहे णिच् टिलोपः । ( र. ना. )

२ तृजादिषु वर्तमाने इति कृते कालान्तरे प्रत्ययो न स्यादिति दोष-  
इत्यर्थः । ( र. ना. )

( ४६२ प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. २५ )

७५१ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्य-  
चः ॥ ३ । १ । १३४ ॥

( १९८७ दृष्टसाधकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अजपि सर्वधातुभ्यः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अजपि सर्वधातुभ्यो वक्तव्यः  
इहापि यथा स्याद्—भवः सव इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

न तर्हीदानीमिदं पचाद्यनुक्रमणं कर्तव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

कर्तव्यं च । किं प्रयोजनम् ? ।

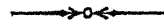
( १९८८ गणपाठप्रयोजनवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ पचाद्यनुक्रमणमनुबन्धासंजनार्थ-  
मपवादबाधनार्थं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनुबन्धासंजनार्थं तावत् । नदद्  
नदी । चोरद् चोरी । अपवादबाधनार्थम् । जार-  
भरा श्वपचेति ॥ नन्दिग्रहि ॥ १३४ ॥

( प्रदीपः ) नन्दि ॥ १३४ ॥ श्वपचेति । कर्मण्यण्  
बाध्यते । न्यङ्कादिषु श्वपाकशब्दस्य पाठात्पक्षे सोपि भवति  
॥ १३४ ॥

( उद्घोतः ) नन्दिग्रहि ॥ १३४ ॥ भवः सव इति  
भाष्ये पाठः ॥ १३४ ॥



( अथ कप्रत्ययप्रकरणम् )

( ४६३ कप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ. २६ )

७५२ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥ ३ । १ । १३५ ॥

( १९८९ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ इगुपधेभ्य उपसर्गे कविधिर्मे-  
षाद्यर्थः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इगुपधेभ्य उपसर्गे को विधेयः । किं  
प्रयोजनम् । मेषाद्यर्थः । मेषैः देवः सेवः ॥

३ अनुपसर्गत्वाद् को नेति 'अजपि सर्वधातुभ्यः\*' इति वार्तिके नाजिति-  
भावः ॥



( १९९० निराकरणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वा बुधादीनां दर्शनादनुप-  
सर्गेऽपि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा को विधेयः । किं कारणम् ।  
बुधादीनां दर्शनादनुपसर्गेऽपि । बुधादीनामनुप-  
सर्गेऽपि को दृश्यते बुधः युधः भिद इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं मेषः देवः सेव इति ।

( समाधानभाष्यम् )

पचादिषु पाठैः करिष्यते ॥ इगुपधक्षा ॥ १३५ ॥

( अथ शप्रत्ययप्रकरणम् )

( ४६४ शप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ० २७ )

७५४ पाघ्राध्माधेदृदृशः शः ॥ ३।१।१३७॥

( १९९१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधो वक्तव्यः ।  
व्याजिघ्रतीति व्याघ्रः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह केचिच्छस्यैव प्रतिषेधमाहुः । केचिज्जिघ्र-  
भावस्य । किं पुनरत्र न्याय्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

शस्यैव प्रतिषेधो न्याय्यः । जिघ्रभावे हि प्रति-  
षिद्धे केन शे आकारलोपः स्यात् ॥ पाघ्राध्मा ॥ १३७ ॥

( उद्घोतः ) पाघ्रा ॥ १३७ ॥ केचिदिति भाष्ये  
जिघ्रः संज्ञायामित्यादेशोऽकार उच्चारणार्थ इति जिघ्र इति पञ्चमीति  
भावः ॥ केचिज्जिघ्रभावस्येति । वार्तिके जिघ्र इति षष्ठ्यन्तं मन्यन्ते ॥  
केन शे आकारलोप इति । आतो लोप इत्यत्रार्थधातुक इत्य-  
धिकारादिति भावः । श्माभ्यस्तयोरित्यस्य प्राप्तिरेव न ॥ १३७ ॥

( ४६५ शप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ० २८ )

७५५ अनुपसर्गाह्लिम्पविन्दधारिपारि-  
वेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च

॥ ३ । १ । १३८ ॥

( १९९२ अब्यासिवारकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अनुपसर्गाह्नौ लिम्पेः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनुपसर्गाह्नौ लिम्पेरिति वक्तव्यम् ।  
निलिम्पा नाम देवाः ।

( १९९३ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ गवि च विन्देः संज्ञायामुप-  
संख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गवि चोपपदे विन्देः संज्ञायामुप-  
संख्यानं कर्तव्यम् । गोविन्दः ॥

( न्यूनतापूरकभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते गवीति ॥

( १९९४ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ गवादिष्विति वक्तव्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गोविन्दः । अरविन्दः ॥ अनुपसर्गा-  
ह्लिम्प ॥ १३८ ॥

( उद्घोतः ) अनुपस ॥ १३८ ॥ अरविन्दोऽर्धर्चादिः ॥ १३८ ॥

( ४६६ शप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ० २९ )

७५७ ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः

॥ ३ । १ । १४० ॥

( १९९५ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ तनोतेर्न उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तनोतेर्न उपसंख्यानं कर्तव्यम् ।  
अवतनोतीत्यवतानः ॥ ज्वलितिक ॥ १४० ॥

( ४६७ ष्वुन् प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ आ० ३० )

७६२ शिल्पिनि ष्वुन् ॥ ३१११४५ ॥

( १९९६ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ नृतिखनिरञ्जिभ्यः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) नृतिखनिरञ्जिभ्य इति वक्तव्यम् । इह  
मा भूत्—वायकः ॥ शिल्पिनि ष्वुन् ॥ १४५ ॥

( ४६८ वुन् प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । १ । ६ भा० ३१ )

७६६ पुस्तुल्वः समभिहारे वुन्

॥ ३ । १ । १४९ ॥

( १९९७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ पुस्तुल्वः साधुकारिणि वुन्वि-  
धानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रसूत्वः साधुकारिणि बुन्विधेयः ।

१ रङ्गरेच=नीलकर पर्यायत्वे रजक इत्यत्रायं घुन् ॥ धौविनि तु 'रजकः' इत्यत्र रजकरजनरजःसु कित्त्वारिसिद्धम्' इति पाठवार्तिकसूचित-  
कुन्प्रत्यय एवेति न परस्परवार्तिकविरोधः । नापि—

सकृदपि यः सुष्ठु करोति तत्र यथा स्यात् ॥ बहु-  
शोपि यो दुष्ठु करोति तत्र मा भूद् इति ॥ शु-  
स्त्वः ॥ १४९ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरण-  
महाभाष्ये तृतीयाध्यायस्य प्रथमे पादे  
षष्ठमाह्निकम् ॥ पादश्च समाप्तः ॥

इत्युपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते भाष्यप्रदीपे तृतीयाध्या-  
यस्य प्रथमपादे षष्ठमाहिकम् ॥ पादश्च समाप्तः ॥

( उद्घोतः ) मुसृज्वः ॥ १४९ ॥ साधुकारिणीति । समभि-  
हारग्रहणस्थाने इदं कार्यमित्यर्थः ॥ १४९ ॥

इति श्रीकालोपनामकशिवभट्टसुतसतीगर्भजनागेशभट्टविर-  
चित्ते भाष्यप्रदीपोद्भ्योते तृतीयाध्यायस्य प्रथमपादे  
षष्ठमाहिकम् ॥ पादश्च समाप्तः ॥

“नृपायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो रक्षक उच्यते ।

पुत्कसाद्वैश्यकन्याया जातो रजक उच्यते ॥”

इत्योशनस्यां स्मृतौ दर्शितस्य भिन्नभिन्नजातिवाचकस्य शब्दद्वयस्य मिश्र-  
विरोध इति दाधिमथानां सिद्धान्तः ॥

[illegible]

श्रीदधिमती(श्री) जयति ॥

## तृतीयाध्यायस्य द्वितीयपादे प्रथममाह्निकम् ॥

( अथ कर्मोपपदप्रकरणम् )

( ४६९ अणप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ भा० १ )

७६८ कर्मण्यण् ॥ ३ । २ । १ ॥

( १९९७ परिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

[ ॥ \* ॥ कर्मणि निर्वर्त्यमानविक्रियमाणे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मणि निर्वर्त्यमानविक्रियमाण इति वक्तव्यम् । इह मा भूत्—आदित्यं पश्यति, हिमवन्तं शृणोति, ग्रामं गच्छतीति ॥

( प्रदीपः ) कर्मण्यण् ॥ १ ॥ निर्वर्त्यमानेति । हरिणा निर्वर्त्यादीनां विशेषो दर्शितः—

‘सती वाऽविद्यमाना वा प्रकृतिः परिणामिनी ।  
यस्य नाश्रीयते तस्य निर्वर्त्यत्वं प्रचक्षते’ ॥

यस्योपादानकारणं नास्ति तन्निर्वर्त्यं यथा—संयोगं करोतीति ।  
यस्यापि सदप्युपादानकारणं न विवक्ष्यते तन्निर्वर्त्यं यथा—घटं  
करोतीति । यदा तूपादानकारणमेव परिणामित्वेन विवक्ष्यते  
मृदं घटं करोतीति तदा विकार्यं कर्म । भेदविवक्षायां तु मृदा  
घटं करोतीति निर्वर्त्यमेव कर्म ॥ विकार्यमपि द्विधम्—

प्रकृत्युच्छेदसंभूतं किञ्चित्काष्ठादिभस्सवत् ।  
किञ्चिदुणान्तरोत्पत्त्या सुवर्णादिविकारवदिति ॥  
प्राप्यमपि—

क्रियाकृतविशेषाणां सिद्धिर्यत्र न गम्यते ।  
दर्शनादनुमानाद्वा तत्प्राप्यमिति कथ्यते ॥ इति ॥

तत्र प्राप्यत्वं सर्वस्य कर्मणोस्ति क्रियया प्राप्यमाणत्वात् ॥  
भवान्तरविवक्षायां तु त्रैविध्यमुच्यते ॥

( उद्घोतः ) कर्मण्यण् ॥ १ ॥ यस्य सती परिणामिनी  
प्रकृतिर्नाश्रीयते, यस्य वाऽविद्यमाना, तन्निर्वर्त्यमित्युच्यत इत्यर्थः ॥  
तदेवाह—यस्येति । कार्यसामानाधिकरण्येन प्रतीयमानं नास्ती-  
त्यर्थः । यैषा मृदं घटं करोतीति ॥ विवक्ष्यत इति । कार्याभेदेनेति  
शेषः ॥ तदा विकार्यं कर्मेति । अवस्थाद्वयानुगमेन पूर्वाकारपरि-  
त्यागेनाकारान्तरप्राप्त्यवगमादिति भावः ॥ भेदविवक्षायामिति ।  
कर्मणः सकाशादुपादानस्य भेदविवक्षायामित्यर्थः ॥ मृदा घटमिति ।  
करणत्वविवक्षायां तृतीया । नो चेत्संबन्धसामान्यविवक्षायां मृदो

घटमिति षष्ठीति बोध्यम् ॥ विकार्यामपीति । पूर्वरूपस्य सर्वात्मना  
परित्यागतदभावाभ्यामित्यर्थः ॥ दर्शनादिति । प्रत्यक्षादित्यर्थः ॥  
निर्वर्त्यं स्वरूपलाभ एव क्रिया कृतो विशेषः ॥ विकार्यं विकाररूप  
एव सः । घटं करोति, स्वर्णं कुण्डलं करोति । काष्ठं भस्म करोतीति ॥  
अनुमानादथा—पुत्रः सुखं करोतीति । अत्र सुखरूपलाभो  
मुखप्रसादानुमेयः ॥

( १९९८ अप्राप्तविधायकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मणि निर्वर्त्यमानविक्रियमाणे  
इति चेद् वेदाध्यायादीनामुप-  
संख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मणि निर्वर्त्यमानविक्रियमाण इति  
चेद्वेदाध्यायादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम् । वेदा-  
ध्यायः चर्चापारः शमनीपारः ॥

( प्रदीपः ) वेदाध्याय इति । नित्यो वेदः स्थित एवा-  
धीयते इति निर्वर्त्यत्वाभावः ॥

( उद्घोतः ) नित्यस्तत्तत्कल्पेऽविच्छिन्नपारम्पर्य इत्यर्थः ॥

( १९९९ परिगणनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ यत्र च नियुक्तः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यत्र च नियुक्तस्तत्र चोपसंख्यानं  
कर्तव्यम् । छत्रधारः द्वारपालः ॥

( २००० परिगणनवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ हग्रहिनीवहिभ्यश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हग्रहिनीवहिभ्यश्चेति वक्तव्यम् ।  
ह—भारहारः । ह ॥ ग्रहि—कमण्डलुग्राहः । ग्रहि ॥  
नी—उष्ट्रप्रणायः । नी ॥ वहि—भारवाहः । वहि ॥

( प्रदीपः ) छत्रधार इति । वेदाध्यायादिग्रहणेन छत्र-  
धारादीनां ग्रहणं नास्ति प्रकारार्थेनादिशब्देन सदृशानां शास्त्रा-  
ध्यायादीनामेव शब्दानां ग्रहणात् । तत्प्राप्यमेव, न विकार्यम् ।  
नहि धारणादूर्ध्वं छत्रस्य कश्चित् क्रियाकृतो विशेषः प्रत्यक्षानु-  
मानपरिच्छेदोस्ति ॥

( उद्घोतः ) ननु वेदाध्यायादीनाम् इत्यादिनैव सर्वसंग्रहे  
सिद्धे \*यत्र च नियुक्तः\* इत्यादेर्वैयर्थ्यमत आह—वेदाध्याया-  
दीति । वस्तुतः प्रपञ्चार्थमेवैतानीति बोध्यम् ॥

१ ‘मृदो’ ॥

२ ‘तत्रैविध्य’ ॥

३ वैधर्म्ये दृष्टान्तः । ( र. ना. )

४ एवमेव—पीलुवानः, रथवानः, पानीयारः, इत्यादयोऽपि ॥ सिद्धानामेव  
शब्दानां शास्त्रेण साधुत्वमाख्यानादेवाश्च संस्कृतानामातप्रयोगाभावात्तत्तदर्थेण-  
साधुत्वमेवेति दाक्षिण्यानां प्रमादो विभावनीयः सूरिभिः । ( र. ना. )

( २००१ परिगणनप्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ अपरिगणनं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वार्थः परिगणनेन ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कस्मान्न भवति-आदित्यं पश्यति, हिमवन्तं शृ-  
णोति, ग्रामं गच्छतीति ? ।

( २००२ प्रत्याख्यानहेतुवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ अनभिधानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनभिधानादेव न भविष्यति ।

( प्रदीपः ) अनभिधानादिति । नित्यानां शब्दानामि-  
दमन्वाख्यानमात्रम् । न चादित्यं पश्यतीत्याद्यर्थप्रतिपादनाया-  
दित्यदर्शदयः शब्दा लोके प्रयुज्यन्त इति शास्त्रेणापि साधुत्वेन  
नानुशास्यन्त इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) शास्त्रेणापि । कर्मण्यण् इति सामान्यशास्त्रेणापि ॥

( २००३ विप्रतिषेधवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ अकारादनुपपदात्कर्मोपपदो

विप्रतिषेधेन ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अकारादनुपपदात्कर्मोपपदो भवति  
विप्रतिषेधेन । अनुपपदस्यावकाशः—पचतीति प-  
चः, कर्मोपपदस्यावकाशः—कुम्भकारः नगरकारः ।  
इहोभयं प्राप्नोति—ओदनपाचः । कर्मोपपदो भवति  
विप्रतिषेधेन ॥

अनुपपदस्यावकाशः—विस्त्रिपः विलिखः । कर्मो-  
पपदस्य स एव । इहोभयं प्राप्नोति—काष्ठभेदः ।  
कर्मोपपदो भवति विप्रतिषेधेन ॥

अनुपपदस्यावकाशः—जानातीति ज्ञः । कर्मोप-  
पदस्य स एव । इहोभयं प्राप्नोति—अर्थज्ञः । कर्मो-  
पपदो भवति विप्रतिषेधेन ॥

( प्रदीपः ) कर्मोपपदस्येति । यदा गणपठितधातु-  
विषय एवाचप्रत्ययस्तदायं विप्रतिषेधो । यदा तु सर्वधातुविष-  
योऽचप्रत्ययस्तदा येन नाप्राप्तिन्यायादणप्रत्ययस्यापवा-  
दत्वादुत्सर्गापवादयोर्विप्रतिषेधोऽनुपपन्नः । तथा च करोतेरच्-  
प्रत्ययः कृतः 'शिवशमरिष्ठस्य करे' इति । ततश्च कुम्भ-  
कारादिरपि नाणोऽवकाशः तत्राप्यच्प्रत्ययप्रसङ्गात् । अत एव  
भाष्यकार उदाहरणान्तराणि काष्ठभेदादीनि विप्रतिषेधस्य वक्ष्य-  
ति ॥ काष्ठभेद इति । सर्वधातुभ्यो विधानादच उत्सर्गस्य  
काणावपवादादौ तयोर्विप्रतिषेधादणेषां भवति ॥

( उद्ध्योतः ) ननु सर्वधातुभ्योऽजविधानेन कुम्भकार इति कथ-  
मणोऽवकाश इत्यत आह—यदेति ॥ सर्वधातुविषयश्चाचप्रत्यय

आवश्यक इत्याह—तथा चेति । उदाहरणान्तराणि काण्विष-  
याणि ॥ काणाविति । इगुपधेति कः । कर्मण्यण् ॥ भाष्ये  
अर्थज्ञः ॥ कर्मोपपद इति । विप्रतिषेधेन प्राप्तमणं बाधित्वा  
आतोऽनुपसर्ग इति तात्पर्यम् ॥

( विप्रतिषेधायुक्तत्वभाष्यम् )

नैष युक्तो विप्रतिषेधः । अनुपपदस्तृतीयः । ण्वु-  
ल्लुत्तजचैः । तेषां णैः । तस्य कः । स यथैव को णं  
बाधते एवं कर्मोपपदमपि बाधेत ॥

( प्रदीपः ) स यथैव क इति । प्राप्तिमात्रस्य बाध्य-  
त्वमपेक्ष्यैतदुच्यते । यदा तु प्राप्तिविशेषोऽपेक्ष्यते, तदा तु  
येन नाप्राप्तिन्यायाण्यस्यैव को बाधको, न तु कर्मोपपद-  
स्याणः ॥ कः पुनरनयोः प्रत्यययोर्विशेषः । उच्यते—कर्मोप-  
पदे के सति नित्यसमासो भवति । अकर्मोपपदे तु विकल्पेन  
षष्ठीसमासः स्यात् ॥

( उद्ध्योतः ) एतत्तात्पर्यमजानान एकदेश्याह—नैष युक्त  
इति ॥ शविषये काणोर्य इत्यर्थः ॥ तेषां ण इति । शाब्दधेति-  
विहितः ॥ तत्र हि इया आद् इति च्छेदः ॥ स यथैवेति । बाध्य-  
सामान्यन्वितायाऽणोपि स बाधक इत्यर्थः । सिद्धो विप्रतिषेधं विना-  
पीत्यर्थः । तदाह—प्राप्तिमात्रस्येति ॥ न तु कर्मोपपदस्येति ।  
एवं च विप्रतिषेधोऽयुक्त एवेति भावः ॥

( विप्रतिषेधसाधकभाष्यम् )

कर्मोपपदोऽपि तृतीयः । ण्वुल्लुत्तजचः । तेषामण् ।  
अणः कः । उभयोस्तृतीययोर्युक्तो विप्रतिषेधः ॥

( विप्रतिषेधोदाहरणान्तरभाष्यम् )

अनुपपदस्यावकाशः—लिम्पतीति लिम्पः । क-  
र्मोपपदस्य—स एव । इहोभयं प्राप्नोति—कुब्जलेप  
इति । कर्मोपपदो भवति विप्रतिषेधेन ॥

( विप्रतिषेधसाधकभाष्यम् )

नैष युक्तो विप्रतिषेधः । अनुपपदस्तृतीयः ।  
ण्वुल्लुत्तजचः । तेषां कः । कस्य शः । स यथैव शः  
कं बाधते एवं कर्मोपपदमपि बाधेत ॥

( सिध्युपायप्रश्नभाष्यम् )

का तर्हि गतिः ? ।

( सिध्युपायभाष्यम् )

“मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन्बाधन्ते नोत्तरा-  
नि”त्येवं शः कं बाधियते, कर्मोपपदं न बाधियते ॥

( विप्रतिषेधोदाहरणान्तरभाष्यम् )

अनुपपदस्यावकाशः सुगलः सुगलः । कर्मोपप-  
दस्य स एव । इहोभयं प्राप्नोति गोसंदायः बद्धवा-  
संदायः । कर्मोपपदो भवति विप्रतिषेधेन ॥

१ 'काष्ठभेदे उभयं प्राप्नोति ।'

२ तृतीयकोटिरथ इत्यर्थः ॥

३ प्रथमकोटौ इति शेषः ॥

४ तेषां ण्वुल्लुत्तजचां बाधको णो द्वितीयकोटिरथत्वेन द्वितीय इत्यर्थः ॥

५ तस्य णस्य बाधकः कः तृतीयकोटिरथत्वेन तृतीयः ॥ एवमपि बोध्यम् ॥

६ ण्वुल्लुत्तजचांकोऽपवादो द्वितीयकोटिरथ इत्यर्थः । ( र. ना. )

( विप्रतिषेधबाधकभाष्यम् )

नैष युक्तो विप्रतिषेधः । अनुपपदस्तृतीयः ।  
ण्वुल्लूजचः । तेषां णः । तस्य कः । स यथैव को  
णं बाधते एवं कर्मोपपदमपि बाधेत ॥

( गतिप्रश्नभाष्यम् )

का तर्हि गतिः ? ।

( गतिभाष्यम् )

“पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्वाधन्ते नोत्तरानि”त्येवमयं को णं बाधिष्यते, कर्मोपपदं न बाधिष्यते ॥

( प्रदीपः ) नन्वर्थज्ञ इत्यत्रातोऽनुपसर्गे क इति कः प्राप्नोति न त्वण् प्रत्ययः, तत्कथमुच्यते कर्मोपपदस्य स एवेति, न हि कुम्भकारः कर्मोपपदस्य विषयः । एवं तर्हि काणोर्विप्रतिषेधे परत्वाद्वा कं बाधते, अणमपि कर्मोपपदः कोपवादादिति कममादित्येतदुक्तमित्यदोषः ॥

( उद्ध्योतः ) नन्वर्थज्ञ इत्यत्राणं बाधितुं न कप्रत्ययेन विप्रतिषेध उच्यते । किं त्वातोऽनुपसर्गे क इति कं बाधितुम् । एवं चे-  
गुपधेति कस्याणा बाधेऽप्यातोऽनुपसर्गे इति केन तृतीयकक्ष्या-  
प्राप्तस्येगुपधेति कस्य विप्रतिषेधः संभवत्येवेत्याह—सिद्धान्त्येक-  
देशी—कर्मोपपदेतीति ॥ अणः क इति । आतोऽनुपसर्गे  
इत्ययमिति भावः ॥ उभयोरिति । सोपपदनिर्णयपदयोः कयोरि-  
त्यर्थः ॥ कर्मोपपदस्य कस्य विषय इति । अनाकारान्तत्वादिति  
भावः ॥ किं तु गोद इत्यवकाश इति वक्तुं युक्तमिति तात्पर्यम् ।  
क्रममादित्येति । अर्थज्ञः कर्मोपपदो भवति विप्रतिषेधेनेत्यु-  
त्तरम् । नैष युक्त इत्यादिर्युक्तो विप्रतिषेध इत्यन्तं भाष्यं त्वेक-  
देशयुक्तिरित्युक्तमेव ॥

अथ विप्रतिषेधस्योदाहरणान्तरमाह—अनुपपदस्येत्यादिना  
भाष्ये ॥

भाष्ये का तर्हि गतिरिति । तृतीयस्य प्रश्नः ॥

( २००४ णप्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः

पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णो वक्त-  
व्यः, पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम् । शीलि—  
मांसशीलः । मांसशीला । कामि—मांसकामः  
मांसकामा । भक्षि—मांसभक्षः मांसभक्षा । आ-  
चरी—कल्याणाचारः कल्याणाचारा ॥

( प्रदीपः ) मांसकाम इति । मांसशब्दः सप्रत्ययान्तो-  
न्तोदात्तः । कल्याणशब्दश्च लघावन्ते द्वयोश्च बह्वो  
गुरुरिति मध्योदात्तस्तत्र कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरे प्राप्ते पूर्वपद-  
प्रकृतिस्वरो विधीयते ॥

१ कप्रत्ययस्येति शेषः । ( र. ना. )

२ अणि कृते तु कुम्भकारीत्यादाविव ‘टिड्ढाणञ्’ इति ङीप् प्रसज्येत ।  
‘शीलम् । उत्रादिभ्यो णः’ इति गान्ते वीरी इत्यत्र तु ‘ताच्छीलके ण-

( उद्ध्योतः ) समासे पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं दर्शयितुं पूर्वपद-  
स्वरान्दर्शयति—मांसेति ॥ एकस्मिन्नन्त्ये लघौ द्वयोर्वान्त्ययोर्लघ्वोः  
सतोर्बहवः बहवचः बहुच्छेत्त्येत्यर्थः ॥

( २००५ णप्रत्ययवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ ईक्षिक्षमिभ्यां च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ईक्षिक्षमिभ्यां चेति वक्तव्यम् । सुख-  
प्रतीक्षः सुखप्रतीक्षा । कल्याणक्षमः कल्याणक्षमा ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ? ।

( समाधानभाष्यम् )

पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं वक्ष्यामि । ईकारश्च मा  
भूदिति ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये ईकारश्च मा भूदिति । अतो णैः कृत  
इति भावः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । इह यो मांसं भक्षयति  
मांसं तस्य भक्षो भवति । तत्र योसौ भक्षयतेरच्  
तदन्तेन बहुव्रीहिः ॥

( प्रदीपः ) भक्षयते रजिति । परजण्यन्तानामित्ये-  
तत्तु मुनित्रयस्य मते नास्ति कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेध एवास्ति ॥  
ननु च बहुव्रीहौ सति बहवो भक्षा अस्य बहुभक्ष इत्यत्र बहु-  
र्नञ्बहुदुत्तरपदभूमीत्यन्तोदात्तत्वं प्राप्नोतीति पूर्वपदप्रकृ-  
तिस्वरो न सिध्यति ॥ नैष दोषः । भक्षणं भक्षः बहुषु  
भक्षोस्येत्वं व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः करिष्यते तत्रोत्तरपद-  
भूमाभावाद्बहुव्रीहौ प्रकृत्येति स्वरो भविष्यति ॥

( उद्ध्योतः ) मांसं तस्य भक्ष इति । भक्षेः कर्मण्यच् ।  
घञजपाः पुंसीति नित्यपुंस्त्वम् । हैतेनेदं भावघञ्विषयमेवेत्य-  
पास्तम् ॥ भक्षणं भक्ष इति । भावेऽजिति भावः ॥ कर्मजन्तेन  
समानाधिकरणबहुव्रीहिस्तु नानभिधानात् । तच्च तवाप्यावश्यक-  
मेवेति बोध्यम् ॥

( ज्ञापनभाष्यम् )

एवं तर्हि सिद्धे सति यत्कर्मोपपदं णं शास्ति  
तज्ज्ञापयत्याचार्यः—‘समानर्थे केवलं विग्रहमेवाद्  
यत्र कर्मोपपदश्च प्राप्नोति बहुव्रीहिश्च, कर्मोपपदस्तत्र  
भवति’ इति ॥

किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ? ।

काण्डलावः । काण्डानि लावोऽस्येति बहुव्रीहिर्न  
भवति ॥

( प्रदीपः ) काण्डानि लावोऽस्येति । लावयते-  
रच् ॥

ऽणुकृतानि भवन्ति’ इति “कर्मस्ताच्छील्ये” इति निपातनेन ज्ञापितत्वाद्  
भवत्येवेत्यन्यत् ॥

३ इदम् । घञजपा इति शाब्दमित्यर्थः । ( र. ना. )

( उद्घोतः ) भाष्ये तज्ज्ञापयत्याचार्य इति । नन्वणि सति मांसमक्षीति प्रयोगः स्यादिति तद्वारणेन चरितार्थं वार्तिकं कथं ज्ञापकमिति चेत् । अनभिधानादणभावं मन्यते ॥ लावयतेरच्-प्रत्यय इति । निवृत्तप्रेषणप्रकृतिकप्राकृतार्थेणिजन्तादच्प्रत्यय इत्यर्थः ॥ अन्यथा काण्डानि लुनातीत्यनेन समानार्थत्वं न स्यात् ॥ काण्डानि लाव इत्यत्र लाव इति जातावेकवचनं बोध्यम् ॥

( ज्ञापनवैयर्थ्यभाष्यम् )

भवति बहुव्रीहिरपि मांसे कामोस्य मांसकामः मांसकामुक इति वा ॥ [ न त्वम्भोभिगमा । ] न त्विदं भवति अम्भोऽभिगमोऽस्या अम्भोभिगमा इति । किं तर्हि ? । 'अम्भोभिगामी' इत्येव भवति । काण्डलावेपि च विग्रहाभावान्न ज्ञापकस्य प्रयोजनं भवतीति । नैषोस्ति विग्रहः—काण्डानि लावोऽस्येति ॥

( प्रदीपः ) भवति बहुव्रीहिरपीति । तेन ज्ञापनस्य प्रयोजनाभावादन्याधनार्थमेवेदं वक्तव्यमित्यर्थः ॥ न त्वम्भोभिगमेति । तेनात्रानभिधानाद्बहुव्रीहिर्न भवतीति भावः ॥ नैषोस्तीति । काण्डानि लुनातीति प्रकृत्यर्थविवक्षायामभावा-णिचः लूयत इति लवः काण्डानि लवोऽस्येति विग्रहेण भा-व्यमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) अणवाधनार्थमेवेति । अनभिधानेन प्रत्या-ख्यानं तु न चमत्कारीति भावः ॥ भाष्ये न त्वम्भोऽभिगमेति । अम्भोभिगमा तु नेष्यते । तस्मादनभिधानमेव तदर्थमाश्रयणीयम् । न त्वेकप्रयोजनार्थं सामान्यज्ञापकाश्रयणमिति भावः ॥ लूयत इति लव इति । न च निवृत्तप्रेषणादिति प्राशुक्तीत्या तदर्थो लव-शब्दोप्यस्तीति वाच्यम् । सा हि कल्पना कन्दिष्टप्रयोगसिद्धये, न त्वनिर्वायेति भावः ॥

( २००६ वार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ अन्नादायेति च कृतां व्यत्यय-  
श्छन्दसि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अन्नादायेति च कृतां व्यत्ययश्छन्दसि द्रष्टव्यः । अन्नादायान्नपतये य आहुतिमन्नादां कृ-त्वा ॥ कर्मण्यण् ॥ १ ॥

( प्रदीपः ) अन्नादायेति । अन्नमस्तीत्यणः प्रसङ्गेऽच्-प्रत्ययः क्रियते । तेनात्र अदायेत्येवमवग्रह उपपद्यते ॥ १ ॥

( उद्घोतः ) चतुर्थ्यन्तप्रयोग एव व्यत्ययोक्तस्तत्र विशेषो-ऽणचोरत आह—अवग्रह इति । न लक्षणेन पदकारा अनु-वर्त्या इत्यादि भाष्येणावग्रहार्थताया लक्षणस्य दूषितत्वादिदं व्यर्थ-मित्यनेन सूचितम् ॥ १ ॥

( अथ कप्रत्ययप्रकरणम् )

१ एकस्मिन्प्राचीनतरपुस्तके तु नोपलभ्यते ॥ तत्र उदितं भवितुं प्रदीपे प्रतीकदर्शनात् ॥

( ४७० कप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. २ सू. )

७७० आतोऽनुपसर्गे कः ॥ ३।३।३ ॥

( २००७ कबाधकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ कविधौ सर्वत्र प्रसारणिभ्यो डः ॥\*॥

( भाष्यम् ) कविधौ सर्वत्र प्रसारणिभ्यो डो वक्तव्यः । ब्रह्मज्य इति ॥

( प्रदीपः ) आतोऽनुपस ॥ ३ ॥ ब्रह्मज्य इति । ब्रह्म जिनातीति डप्रत्ययः ॥

( उद्घोतः ) आतोऽनुप ॥ ३ ॥ प्रसारणिनः संप्रसारण-भाजः ॥ ब्रह्मज्य इति । के हि संप्रसारणे इयञ् स्यादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमुच्यते—सर्वत्रेति ? ।

( उद्घोतः ) भाष्ये किमुच्यते सर्वत्रेति । सर्वत्रेत्यस्य क-माने इत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अन्यत्रापि । नावश्यमिहैव ॥

कान्यत्र ? ।

आहः प्रह इति ॥

( २००८ हेतुवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ के हि संप्रसारणप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) के हि सति संप्रसारणं प्रसज्येत । संप्रसारणे कृते संप्रसारणस्य पूर्वत्वे च उवडा-देशः । आहुच इत्येतद्रूपं प्रसज्येत ॥

( उद्घोतः ) तमाह—अन्यत्रापि । आतश्चोपसर्ग इत्यत्राप्यित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

स तर्हि वक्तव्यः ? ।

( वार्तिकप्रत्याख्यानभाष्यम् )

न वक्तव्यः । अस्तुत्र संप्रसारणम् । संप्रसारणे कृते आकारलोपः । तस्य स्थानिवद्भावादुवडादेशो न भविष्यति ॥

( वार्तिकस्थापनभाष्यम् )

पूर्वत्वे कृते प्राप्नोति ॥

( वार्तिकप्रत्याख्यानभाष्यम् )

एवं तर्हीदमिह संप्रधार्यम्—आकारलोपः क्रि-यताम्, पूर्वत्वमिति । किमत्र कर्तव्यम् ? । परत्वाद् आकारलोपः ॥

( वार्तिकस्थापनभाष्यम् )

न सिध्यति । अन्तरकृत्वात्पूर्वत्वं प्राप्नोति ॥

( वार्तिकप्रत्याख्यानभाष्यम् )

एवं तर्हि 'वार्णादाङ् वलीयः' इत्याकारलोपो भविष्यति ॥

( प्रकारान्तरेण आकारलोपसाधकभाष्यम् )

एवं तर्हि—इदमिह संप्रधार्यम् । आकारलोपः क्रियतां, संप्रसारणमिति । किमत्र कर्तव्यम् ? । परत्वादाकारलोपः ॥

( प्रदीपः ) वार्णादाङ्गमित्युक्ते यो ब्रूयात् 'समानाश्रयाङ्गवार्णविषयमेतत्' इति तं प्रत्याह—एवं तर्हि ॥

( उद्घोतः ) एवं तर्हि वार्णादिति । इयायेत्यादिसिद्धयेऽस्या विभिन्ननिमित्तकेऽपि प्रवृत्तिरावश्यकीति भावः ॥ समानाश्रयेति । तदनाश्रयेण्येहेति वक्तुमुचितम् ॥ एवं च एवं तर्हि ॥ किं चेत्यर्थकमिति भावः ॥

( वार्तिकस्थापनभाष्यम् )

नित्यं संप्रसारणम् कृतेऽप्याकारलोपे प्राप्नोति, अकृतेऽपि ॥

( प्रदीपः ) नित्यमिति । संप्रसारणे कृते पूर्वत्वेन भाव्यमित्याकारलोपस्यानित्यत्वं मन्यते ॥

( वार्तिकप्रत्याख्यानभाष्यम् )

आकारलोपोपि नित्यः । कृतेपि संप्रसारणे प्राप्नोति, अकृतेपि ॥

( वार्तिकवश्यकतासमर्थकभाष्यम् )

अनित्य आकारलोपः । न हि कृते संप्रसारणे प्राप्नोति । अन्तरङ्गं हि पूर्वत्वं बाधते ॥

( प्रदीपः ) अन्तरङ्गमिति । वार्णादाङ्गं बलीय इत्येतत् समानाश्रयविषयमित्युक्तम् ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये अन्तरङ्गं हि पूर्वत्वमिति । यद्यपि वार्णपरिभाषयापि आलोपस्य नित्यत्वं वक्तुं शक्यं तथापि तदनाश्रयेणैवास्य ग्रन्थस्य प्रवृत्तेर्न दोषः ॥

( वार्तिकप्रत्याख्यानभाष्यम् )

यस्य लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यम् । न च संप्रसारणमेवाकारलोपस्य निमित्तं विहन्ति । अवश्यं लक्षणान्तरं पूर्वत्वं प्रतीक्ष्यम् ॥

( वार्तिकाभावे लक्ष्यतीभ्युपसंहारभाष्यम् )

उभयोर्नित्ययोः परत्वादाकारलोपः । आकारलोपे कृते संप्रसारणे कृते यणादेशेन सिद्धं रूपम्—आहः प्रह इति ॥

( उद्घोतः ) प्रकारान्तरेण तदुपपादयितुमाह—यस्येति ॥

( वार्तिकवश्यकतासाधकभाष्यम् )

एवमपि न सिध्यति । योऽनादिष्टादचः पूर्वस्तस्य

विधिं प्रति स्थानिवद्भावः आदिष्टाच्चैषोऽचः पूर्वो भवति ॥

( प्रदीपः ) एवमपि न सिध्यतीति । आह इत्यादिरूपमिति शेषः ॥ योऽनादिष्टादिति । उकारश्चानादिष्टादचः पूर्वो न भवति ॥ नन्वनादिष्टादचः पूर्वो वकार इति तदादेशस्यापि स्थानिवद्भावादानादिष्टादचः पूर्वत्वं भविष्यति । नैतदस्ति । शास्त्रीयकार्यसिद्धये स्थानिवद्भावो विधीयते न त्वनादिष्टादचः पूर्वत्वे लौकिके ॥

( उद्घोतः ) नन्वनादिष्टादच इति । अत्र एव न पदान्तघः त्रस्यसवर्णग्रहणं भगवता प्रत्याख्यं तम् ॥ न धातुघ्नस्य भाष्यं तु तत्रैव योजितमिति न तद्विरोध इति बोध्यम् ॥ समाधानान्तरस्य संभवादनित्यमिदं नाश्रितमिति तत्त्वम् ॥

( वार्तिकप्रत्याख्यानभाष्यम् )

एवं तर्हि आकारलोपस्यासिद्धत्वादुवङादेशो न भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) आकारलोपस्यासिद्धत्वादिति । असिद्धवद्वाभाविन्येनेति भावः ॥

( अनिष्टापत्तिभाष्यम् )

इहापि तर्ह्योकारलोपस्यासिद्धत्वादुवङादेशो न स्याद् जुहुवतुः जुहुवुरिति ॥

( समाधानभाष्यम् )

अस्त्यत्र विशेषः । अकृतेत्रात्वे पूर्वत्वं भवति ॥

इदमिह संप्रधार्यम्—आत्वं क्रियताम्, पूर्वत्वमिति । किमिह कर्तव्यम् ? । परत्वात्पूर्वत्वम् ॥

( समाधानवाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । अन्तरङ्गत्वादात्वं प्राप्नोति ॥ एवं तर्ह्येवमिह संप्रधार्यम्—आत्वं क्रियताम्, संप्रसारणमिति । किमत्र कर्तव्यम् ? । परत्वादात्वम् ॥

( प्रदीपः ) जुहुवतुरिति । हेनो लिटि ह्रः संप्रसारणमभ्यस्तस्यचेति संप्रसारणे रूपम् ॥

( उद्घोतः ) इ धातुना सिद्धमिदं रूपमत आह—हेय इति । वार्णादाङ्गं बलीय इति पूर्वरूपं बाधित्वा लोप इति पक्षेऽप्यस्यासिद्धिर्बोद्ध्या ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

नित्यं संप्रसारणम्, कृतेऽप्यात्वे प्राप्नोति, अकृतेऽपि ॥

१ तदिति । समानाश्रयाङ्गवार्णविषयकत्वानाश्रयेऽपीत्यर्थः । ( र. ना. )

२ पूर्वत्वे प्रतीक्ष्यमिति, पूर्वत्वप्रतीक्ष्यमिति वा पाठः शोभनो भाति । यदा पूर्वत्वं प्रतीति प्रतियोगे द्वितीया पूर्वत्वं प्रति अवश्यं लक्षणान्तरमीक्ष्यमिति योजना । ( र. ना. )

३ तद् आकारलोपस्य नित्यत्वम् ॥

४ आकारलोपोत्तरं संप्रसारणे प्राप्ताविषयवद्भावाकारलोपस्य स्थानिवद्भावान्न जायते इति प्रागुक्तमेव न विसरणीयम् 'इति सिद्धं रूपम्—आहः'

प्रह' इति भाष्येण सूचितम् । तत्र स्थानिवद्भावस्याप्राप्त्या इयदुवङ्गेऽप्राप्तिरन्याहेतुलभिम्रायेणाह—एवमपीत्यादि । स्थानिवद्भावमार्तिं वारयति—योऽनादिष्टादच इत्यादिना ॥

५ शिण्ठि इत्यादौ अनुस्वारस्यानादिष्टादचः पूर्वत्वाभावेन स्थानिवद्भावस्याप्राप्त्या सर्वविधौ तत्प्रतिषेधस्यानावश्यकत्वादिति भावः । ( र. ना. )

६ आकारलोपस्यासिद्धत्वादुवङादेशो न भविष्यतीत्येवं रूपस्य वक्ष्यमाणत्वे इति भावः । अनित्यमिदम्, आकारलोपस्यानित्यत्वमित्यर्थः । ( र. ना. )

( समाधानबाधकभाष्यम् )

आत्वमपि नित्यम् । कृतेऽपि संप्रसारणे प्राप्नोति, अकृतेऽपि ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

अनित्यमात्वम् । नहि कृते संप्रसारणे प्राप्नोति । परत्वात्पूर्वत्वेन भवितव्यम् ॥

( प्रदीपः ) परत्वादात्वमिति । अशित्तिरित्युदा-  
साश्रयेणैतदुक्तम् । प्रसज्यप्रतिषेधे त्वनैमित्तिकत्वादात्वमन्त-  
रङ्गम् । न चान्तरङ्गवहिरङ्गयोर्युक्तो विप्रतिषेधः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—अन्तरङ्गत्वादात्वमिति । एवं चात्वे  
पूर्वरूपलोपयोः प्राप्त्योर्वाण्यदिति न्यायेन लोपे तस्य स्थानिवत्त्वादु-  
वङ् न स्यादिति भावः ॥ एवं तर्हीति । प्राग्देव किं चेत्तर्ह्ये ॥  
प्रसज्यप्रतिषेधे त्विति । वचिस्वपीत्यत्र कितीत्यपि यदि  
विषयसप्तमी तदा भाष्यं सम्यगेव ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

यस्य लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनि-  
त्यम् । न च संप्रसारणमेवात्वस्य निमित्तं विहन्ति ।  
अवश्यं लक्षणान्तरं पूर्वत्वं प्रतीक्ष्यम् ॥ उभयोर्नि-  
त्ययोः परत्वादात्वम् । आत्वे कृते संप्रसारणम् ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये आत्वे कृते संप्रसारणमिति । आत्वे  
कृते लोपे कृते संप्रसारणे कृते प्राप्नोति स्थानिवत्त्वाभावेऽपि  
असिद्धत्वादुवङ्ओसिद्धिरिति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि पूर्वत्वे योगविभागः करिष्यते—“सं-  
प्रसारणात्” संप्रसारणात्परः पूर्वो भवति ॥ ततः  
“एङः” एङश्च संप्रसारणात्पूर्वो भवति ॥ किमर्थ-  
मिदम् ? अकृते आत्वे पूर्वत्वं यथा स्यात् ॥ ततः  
“पदान्तादिति” “एङः” इत्येव ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । एङः पदान्तादतीत्यं  
योगो विभज्यते ‘एङः’ इति तेनात्वं बाध्यते पूर्वत्वविधानेन ॥

( उद्घोतः ) समाधत्ते—एवं तर्हीति । योगविभागसामर्थ्या-  
दन्तरङ्गमप्यात्वं बाधित्वा पूर्वं संप्रसारणं पूर्वत्वं चेति उवङ्ओसिद्धो  
जुहुवतुरित्यादविति भावः ॥

१ उकारस्यानादिष्टादचः पूर्वत्वमावेनेति शेषः । ( र. ना. )

२ संप्रसारणात्परो य एङ् तस्य स्थाने पूर्वो भवतीत्यर्थः । एङ् इति षष्ठ्य-  
न्तम् । पदान्तादतीत्यत्रानुवृत्तं तु पञ्चम्यन्तं संपद्यते इति भावः । ( र. ना. )

३ आत्वाकारलोपपेक्षया संप्रसारणं नित्यं, कृताकृतप्रसङ्गित्वात्, तत्र कृते  
वाण्यदाङ्गमिति परिभाषया पूर्वत्वं नहि भवति, किन्त्वाकार लोप एव भवति,  
ततश्चाकारलोपस्य स्थानिवत्त्वादुवङ् नास्तीति ह्यो यण् प्रवर्तत इत्यर्थः । हि यतो  
योऽनादिष्टादचः पूर्वः तस्य कार्यं स्थानिवत्त्वं भवति नचात्रोकारोऽनादिष्टादचः  
पूर्व इति तस्योवङ्गि कार्यं आलोपस्य स्थानिवत्त्वामात्याऽऽह इत्यादिरूपा-  
सिद्ध्या भगवान् काव्यः प्रसारणभ्यो ङं प्रोवाचेत्यन्वयः । वार्तिकप्रत्याख्या-  
वाद्याह—तेन, आभादिति सूत्रेण आकारलोपस्य यतोऽसिद्धिरत उवङ्ओऽमात्या ते  
आह इत्यादौ त्वयोदाहियमाणो यण् भवत्वित्यर्थः । तथा सति वार्तिकं साध्यं

( आक्षेपभाष्यम् )

इहापि तर्ह्यकृत आत्वे पूर्वत्वं स्याद् आहः प्रह  
इति ॥

( समाधानभाष्यम् )

अस्त्यत्र विशेषः । आकारान्तलक्षणः कप्रत्यय-  
विधिः । तेनानेनावश्यमात्वं प्रतीक्ष्यम् । लिट् पुन-  
रविशेषेण धातुमात्राद्विधीयते । “नित्यं प्रसारणं  
ह्यो यण् वाणादाङ्गं न पूर्वत्वं हि ।

योनादिष्टादचः पूर्वस्तत्कार्यं स्थानिवत्त्वं हि ॥

प्रोवाच भगवान्काव्यस्तेनासिद्धिर्यणस्तु ते ।

आतः को लिण्नेङः पूर्वः सिद्ध आहस्तथा  
सति ॥” आतोऽनुपसर्गे ॥ ३ ॥

( प्रदीपः ) आकारान्तलक्षण इति । पर्युदासाश्र-  
येऽपि ह्यावामश्चेतिज्ञापकादाकारान्तलक्षणे कप्रत्यये कर्तव्ये  
पूर्वमेवात्वं भवति । ततस्तन्निमित्तः प्रत्यय इति भावः ॥

उक्तार्थसंप्रहार्थश्लोकाः—नित्यं प्रसारणमिति । कृता-  
कृतप्रसङ्गित्वादिति भावः ॥ तत्र कृते पूर्वत्वं क्रियतामाकार-  
लोप इति वाणादाङ्गमिति वचनादाकारलोपो भवति, न  
तु पूर्वत्वम् । तत्राकारलोपस्य स्थानिवत्त्वादुवङ् नास्तीति ह्यो  
यण् प्रवर्तत इत्यर्थः ॥ इतर आह—योऽनादिष्टादिति ॥  
तेनासिद्धिरिति । असिद्धवदत्राभादित्याकारलोपस्ये-  
त्यर्थः । तस्यासिद्धत्वाद्यणदेशो भवतीत्यर्थः ॥ जुहुवतुरित्यत्रापि  
तथैव यण् स्यादित्याह—एङः पूर्व इति । आह इत्यत्रापि  
तथैव पूर्वत्वं स्यादित्याह—आतः क इति ॥ लिण्नेति ।  
लिङ् धातुमात्राद्विधीयते न त्वाकारान्तादेवेत्यर्थः ॥ ३ ॥

( उद्घोतः ) पर्युदासाश्रयेऽपीति । अन्यथाऽन्योन्याश्रयः  
स्यादिति भावः ॥ आभीयासिद्धानित्यत्वेनापि जुहुवतुरिति सिध्यति ।  
हः के कृते आलोपात्पूर्वं संप्रसारणं यतो नित्यम् ॥ नित्यत्वं दर्श-  
यति—कृतेति । एवं च ह्यो यण् फलतीत्यर्थः ॥ वाणादित्यादि  
व्याचष्टे—तत्र कृत इति । यतोऽनादिष्टादचः पूर्वत्वे स्थानिवत्त्व-  
मतो भगवान्काव्यः संप्रसारणभ्यो ङं प्रोवाचेत्यन्वयः ॥ प्रत्या-  
ख्यानवाद्याह—तेनासिद्धिर्यणस्तु इति । तेनाभादितिसूत्रेण  
यतोऽसिद्धिरतो यणस्त्वित्यर्थः । प्रोवाच भगवान् काव्य इत्युक्त्या  
ऽविधानस्याहसिद्ध्यर्थमावश्यकता ध्वनिता ॥ तथा चेदमेव शापक-

आहः सिद्ध इति योजना । ननु जुहुवतुरित्यत्रापि तथैव यण् स्यादित्याह-  
ङ्क्याह—एङः पूर्व इति । एङः पदान्तादतीत्यत्र पूर्वोक्तं योगविभागेनेति भावः ।  
ननु आह इत्यत्रापि तथैव पूर्वत्वं स्यादित्यत आह—आतः क इति । आदन्ता-  
देव कविधानसामर्थ्याज्ज्ञः पूर्वत्वमिति भावः । जुहुवतुरित्यादौ तु नैवं वक्तुं  
शक्यत इत्याह—लिण् नेति । लिङ् धातुमात्राद् विधीयते नत्वाकारान्तादेवे-  
त्यर्थः । ( र. ना. )

४ अशित्तिरिति शेषः । अशित्तिरिति विषयसप्तमीत्यपि बोध्यम् । ( र. ना. )

५ पर्युदासाश्रयेऽपि विषयसप्तमीत्वानाश्रये इत्यर्थः । विषयसप्तमीत्वा-  
नाश्रये हि कप्रत्ययं विनाऽऽत्वं न स्यादात्वं विना च कप्रत्ययो न स्यादि-  
त्यन्योन्याश्रय इति भावः । ( र. ना. )



नीदृशविषये आभीयासिद्धत्वाभावस्य वार्णादाङ्गमित्येतदभावस्य चेति जुहुवतुरित्यादिसिद्धिः ॥ योगविभागस्य तवापि कर्तव्यत्वेन गौरवस्य तदवस्थत्वादिति ध्वनितम् । एवं च तेनासिद्धिरित्युक्तिरेकदेशिनः प्रोत्थेति च ध्वनितम् ॥ ३ ॥

( ४७१ कप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ३ सूत्रम् )

७७१ सुपि स्थः ॥ ३ । २ । ४ ॥

( २००९ भावार्थविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सुपि स्थो भावे च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुपिस्थ इत्यत्र भावे चेति वक्तव्यम् । इहापि यथा स्यात्—आखूत्थो वर्तते । श्येनोत्थः शलभोत्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ।

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् ।

( २०१० प्रत्याख्यानसाधकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ योगविभागात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) योगविभागः करिष्यते—“आतोऽनुपसर्गे कः” आतोऽनुपसर्गे को भवति । ततः—“सुपि” सुपि चातः को भवति । कच्छेन पिबति कच्छपः । कटाहेन पिबति कटाहपः । द्वाभ्यां पिबति द्विपः । ततः—“स्थः” स्थश्च सुपि को भवति ॥ किमर्थमिदम् ? । भावे यथा स्यात् ॥

( प्रदीपः ) सुपि स्थः ॥ ४ ॥ कच्छेन पिबतीति । अत्र केचिदाहुः—कच्छं पिबतीत्येवमसन्तमप्यवयवार्थमाश्रित्य कर्मोपपदः को विधास्यते किं योगविभागेन । नैतत्साधूच्यते । कच्छेन पिबति द्वाभ्यां पिबति इत्येतस्मिन् सत्येवार्थेऽसदर्थश्रयेण रूढिशब्दानामपि व्युत्पत्तेरयुक्तत्वात् । यत्र तु सर्वात्मनाऽर्थानुगमो नास्ति यथा तैलपायिकेति तत्रैवावसदर्थश्रयः व्युत्पत्तिः क्रियते ॥

भावे यथा स्यादिति । अत्राप्याहुः—घञर्थे कविधानमिति कः सिद्ध इति । एवं तर्हि नित्यसमासार्थं स्थ इत्यनेन उपपदाश्रयः को विधीयते । अन्यथा पाक्षिकः षष्ठीसमासः स्यात् ॥

( उद्ध्योतः ) सुपि स्थः ॥ ४ ॥ भाष्ये भावे चेति चात्कर्तरि । कच्छेन पिबतीति अकर्मण्युपपदे प्रत्ययार्थं सुपीति योगविभाग इति भावः ॥ सत्येवार्थे इति । एवमशब्दो वाक्यालङ्कारे । संभवति योग्येऽसदर्थश्रयेण व्युत्पादनमयुक्तमित्यर्थः ॥ नित्यसमा-

सेति । उपपदमतिङित्यनेनेति भावः । घञर्थे कविधानमित्येतदुद्धारणपरे\*‘स्था-ज्ञा-पा-व्याधि-हनिषुध्यर्थमित्यत्र स्याप्रहणं तु कर्मार्थमिति बोध्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कुतो नु खल्वेतद् भावे भविष्यति, न पुनः कर्मोदित्वपि कारकैष्विति ।

( समाधानभाष्यम् )

योगविभागादयं कर्तुरपकृष्यते । न चान्यस्मिन्नर्थे आदिश्यते । “अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ती”ति । तद्यथा “गुणितिकद्भयः सन्” “यावादिभ्यः कन्” इति । सोऽसौ स्वार्थे भवन्भावे भविष्यति ॥ सुपि स्थः ॥ ४ ॥

( प्रदीपः ) अनिर्दिष्टार्था इति । प्रत्यासन्नत्वात्तस्यार्थस्येति भावः ॥ यद्येवं स्थ इत्यनेन भावे विधीयमानः कर्तरि बाधेत । तथा च समस्थ इति कर्तरि न स्यात् ॥ नैष दोषः । यद्यत्र साक्षाद्भावशब्दोपादानेन भावे को विधीयते । तदा भावः कर्तारं तत्कौण्डिन्यन्यायेन बाधेत । सामर्थ्यात्त्वयं भावे व्यवतिष्ठत इति भावेन न बाध्यते कर्ता ॥ ४ ॥

( उद्ध्योतः ) प्रत्यासन्नत्वादिति । अत एवास नित्यमेकत्वमेव, न तु घञादिवाच्यवद् द्विवचनयोगोपीति भावः ॥ तत्रकौण्डिन्येति । विधेयविषय एव स न्यायो नानुवादविषय इत्यन्ये ॥ ४ ॥

( ४७२ कप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ४ )

७७२ तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः

॥ ३ । २ । ५ ॥

( २०११ अर्थपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोरा-  
लस्यसुखाहरणयोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोरित्यत्र “आलस्यसुखाहरणयोः” इति वक्तव्यम् । तुन्दपरिमृजोऽलसः । शोकापनुदः पुत्रो जातः । यो हि तुन्दं परिमार्ष्टि तुन्दपरिमार्जः स भवति । यश्च शोकमपनुदञ्चि शोकापनोदः स भवति ॥

( प्रदीपः ) तुन्द ॥ ५ ॥ आलस्यसुखाहरणयोरिति । आलस्ये गम्यमाने सुखोत्पादने च प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । तत्र सामर्थ्यादलसे कर्तरि सुखस्य चाहर्तरि प्रत्ययो भवतीत्युक्तं भवति ॥ शोकापनोद इति । यः संसारानित्यतोद्भावनादिना शोकमेव निवर्तयति न तु सुखमुत्पादयति स शोकापनोदः ॥ ५ ॥

१ एवः पदान्तादतीत्यनेन शेषः । ( र. ना. )

२ कर्तरि ‘कम्’ इति शेषः ॥

३ ‘विधीयते’ इति पाठे न चमत्कारः ॥

४ नचात्र भावोऽर्थो विधीयत इति भावः । ( र. ना. )

( उद्घोतः ) तुन्दशो ॥ ५ ॥ तत्र सामर्थ्यादिति । एव हि सति ते<sup>१</sup> गम्ये भवत इत्यर्थः ॥ तुन्दपरिमृजे मृजेरचि कृति वेति पक्षे वृद्धिः प्राप्नोति सा भवत्येव सत्यभिधाने । यत् 'अचि' इत्येव वक्तव्ये 'अजादौ' इत्युक्तेरादिग्रहणसामर्थ्यान्मुल्याजादावैव प्रवृत्तिरिति ॥ तत्र तत्र तदभावात् । यस्मिन्विधिरिति परिभाषालभ्यादिग्रहणस्यैव तत्रानुवादाच्च । अत्रत्यभाष्यस्वरमात्रत्र ति-त्पदेनातिदेशिककृतोरेव ग्रहणम् ॥ व्याकरणान्तरे संक्रमपदेन तयोरेव ग्रहणाच्चेति परे ॥

( २०१२ कप्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानं कर्तव्यम् । मूलविभुजो रथः । नखमुंचानि धनूंषि । काकगुहास्तिलाः । सरसीरुहं कुमुदम् ॥ तुन्दशोकयोः ॥ ५ ॥

( उद्घोतः ) मूलविभुजादिभ्य इति । तदर्थं यतुया ॥ काकगुहा इति । काकेभ्यो गृहितव्या इत्यर्थः ॥ घघर्थं कविधान-मित्यनेनापि सिध्यत्येतत् । सरसि सरस्या वा रोहति । कौ मोरत इत्यर्थः ॥ ५ ॥

( ४७३ ट्कप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ५ )

७७५ गापोष्टक् ॥ ३ । २ । ८ ॥

( २०१३ उपपदपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सुराशीध्वोः पिबतेः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुराशीध्वोः [पिबते]रिति वक्तव्यम् । इह मा भूत्—क्षीरपा ब्राह्मणीति ॥ पिबतेरिति च वक्तव्यम् । या हि सुरां पाति सुरापा सा भवति ॥

( प्रदीपः ) गापोष्टक् ॥ ८ ॥ पिबतेरिति । लुग्वि-करणपरिभाषालभ्यार्थकभनम् ॥

( २०१४ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ बहुलं तणी ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) बहुलं तणीति वक्तव्यम् ।

किमिदं तणीति ? ।

संज्ञाछन्दसोर्ग्रहणम् । या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति । या ब्राह्मणी सुरापा भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति ॥ गापोष्टक् ॥ ८ ॥

( उद्घोतः ) गापो ॥ ८ ॥ बहुलं तणीति । पदे आतो-

१ आलस्यसुखाहरणे इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ अतिक्रियतया नखेद्वेष्टुमशयतया नखेर्मुच्यन्ते यानि तानि नख-सुचानीत्यर्थः । ( र. ना. )

३ वार्तिकं दृष्ट्वा अभिमतभाष्यमदृष्ट्वा वर्धितोऽयं कोष्ठतान्तरगतपाठ इति बोध्यम् ।

नुपमर्ग इति कः । या ब्राह्मणी सुरापेति सुरां पिबतीत्यर्थं यदार्थं प्रयोग इति बाहुलवाश्रयणम् ॥ ८ ॥

( अथ अचप्रकरणम् )

( ४७४ अचप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ६ )

७७६ हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥ ३ । २ । १ ॥

( २०१५ अचप्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अचप्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुश-यष्टिनोमरघटघटीधनुष्पु ग्रहेरुप-संख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अचप्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टि-तोमरघटघटीधनुष्पु ग्रहेरुपसंख्यानं कर्तव्यम् । शक्तिग्रहः । शक्ति ॥ लाङ्गल—लाङ्गलग्रहः । लाङ्ग-ल ॥ अङ्कुश—अङ्कुशग्रहः । अङ्कुश ॥ यष्टि—यष्टिग्रहः । यष्टि ॥ तोमर—तोमरग्रहः । तोमर ॥ घट—घटग्रहः । घट ॥ घटी—घटीग्रहः । घटी ॥ धनुष्—धनुर्ग्रहः । धनुष् ॥

( प्रदीपः ) हरतेरनु ॥ ९ ॥ अचप्रकरणे इति । घटग्रहणेनैव सिद्धे घटीग्रहणं लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया भवि-त्यल्लक्षणार्थम् ॥ ९ ॥

( उद्घोतः ) हरते ॥ ९ ॥ लिङ्गेति । तत्फलं तु—देव-दत्तस्य इत्यादौ ईदभावः ॥

( २०१६ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सूत्रे च धार्यर्थे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सूत्रे च धार्यर्थे ग्रहेरुपसंख्यानं कर्त-व्यम् । सूत्रग्रहः ॥ धार्यर्थे इति किमर्थम् ? । यो हि सूत्रं गृह्णाति सूत्रग्राहः स भवति ॥ हरतेरनुद्यमने ॥ ९ ॥

( उद्घोतः ) धार्यर्थे इति । ग्रहणपूर्वकधारणे लाक्षणीकाद्-ग्रहेरित्यर्थः ॥ ९ ॥

( ४७५ अचप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ७ )

७८० स्तम्बकर्णयोरमिजपोः ॥ ३ । २ । १ ॥

( २०१७ अर्थपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्तम्बकर्णयोर्हस्तिसूचकयोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्तम्बकर्णयोरित्यत्र हस्तिसूचकयो-

४ 'रागाहः सर्गिभ्यः' इति ।

५ एतद्ग्रहयो रमिजपि कर्मणामेववात् 'कर्मणि' इति न संबध्यते । किंतु मिहानग्रेकमेव 'अर्थाकरणे' इत्यस्य संबन्धो भवेदिति दाधिसमा ।

रिति वक्तव्यम् । स्तम्बेरन्ता हस्ती । कर्णेजपः सूचकः । स्तम्बेरन्ता कर्णे जपितेत्येवान्यत्र ॥ स्तम्बकर्णयोः ॥ १३ ॥

( ४७६ अक्षप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ८ )

७८१ शमि धातोः संज्ञायाम्

॥ ३ । २ । १४ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

धातुग्रहणं किमर्थम् ? ।

( २०१८ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ शमि संज्ञायां धातुग्रहणं कृजो हेत्वादिषु टप्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) शमि संज्ञायां धातुग्रहणं क्रियते कृजो हेत्वादिषु टो मा भूदिति । शमि संज्ञायां धातो-रज्जवतीत्यस्यावकाशः शंभवः शंवदः । टस्यावकाशः—श्राद्धकरः पिण्डकरः । शंकरा नाम परिव्राजिका शंकरा नाम शकुनिका तच्छीला च, तस्यामुभयं प्राप्नोति । परत्वादः स्यात् ॥ धातुग्रहण-सामर्थ्यादजेव भवति ॥

( वार्तिकोक्तप्रयोजनप्रत्याख्यानभाष्यम् )

कुरणवाडवस्त्वाह—नैषा शंकरा । शंगरेषा ॥ कुत एतत् ? । गृणातिः शब्दकर्मा । तस्यैष प्रयोगः ॥ शमि धातोः ॥ १४ ॥

( प्रदीपः ) शमि धातोः ॥ १४ ॥ शंगरेति । पृषो-दरादिवात्संज्ञायां गकारस्य ककारव्यत्ययेन शंकराशब्दस्य सिद्धत्वात्तदर्थं धातुग्रहणं न कर्तव्यमित्यर्थः ॥ १४ ॥

( उद्द्योतः ) शमिधा ॥ १४ ॥ ककारव्यत्ययेनेति । नैषा शङ्करेति भाष्यविरोधाच्चिन्त्यमेतत् ॥ धातुग्रहणं न कर्तव्यमिति । टज्जवाधनार्थं न कर्तव्यमित्यर्थः ॥ किपो वाधनार्थं तु तदावश्यक-मिति स्थः क चेति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ १४ ॥

( ४७७ अक्षप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ९ )

७८२ अधिकरणे शेतेः ॥ ३।२।१५ ॥

( २०१९ उपपदपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अधिकरणे शेतेः पार्श्वादिषूप-संख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अधिकरणे शेतेः पार्श्वादिषूपसंख्यानां कर्तव्यम् । पार्श्वशयः पृष्ठशयः उदरशयः ॥

( २०२० उपपदपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ दिग्घसहपूर्वाच्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दिग्घसहपूर्वाच्चेति वक्तव्यम् । दिग्घ-सहशयः ॥

( प्रदीपः ) अधिकर ॥ १५ ॥ दिग्घसहपूर्वा-च्चेति । दिग्घसहशब्दस्य समुदायस्य पूर्वत्वमाश्रीयते न तु प्रत्येकम् । तत्र दिग्घेन सह शेते इत्यचि कृते मयूरव्यंसका-दित्वात् समासः ॥

( उद्द्योतः ) अधिकरणे शेतेः ॥ १५ ॥ मयूरव्यंसकेति । दिग्घसहपूर्वता प्रायोगिकी बोध्या । पृथक्दिग्घसहशब्दस्य सिञ्च-भावात् ॥

( २०२१ उपपदन्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ उत्तानादिषु कर्तृषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उत्तानादिषु कर्तृष्विति वक्तव्यम् । उत्तानशयः । अवमूर्धशयः ।

( २०२२ उपपदवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ गिरौ डड्छन्दसि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गिरावुपपदे छन्दसि डो वक्तव्यः । गिरौ शेते गिरिशः ॥

( २०२३ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ तद्धितो वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तद्धितो वा पुनरेष भविष्यति । गिरौ शेते गिरिरस्यास्तीति गिरिशः ॥ अधिकरणे ॥ १५ ॥

( प्रदीपः ) तद्धितो वेति । यो गिरौ शेते गिरिरस्या-स्तीति लोमादिषु दर्शनात् शप्रत्ययः ॥ अन्ये लाहुः—गिरौ गिरौ शेते इति संख्यैकवचनादिति सप्तम्यन्ताच्छस-प्रत्ययः । व्युत्पत्तिर्हि यथाकथंचित्कर्तव्या उपायानामनिय-मात् ॥ तदुक्तं हरिणा—

वैरवासिष्ठगिरिशास्तथैकागारिकादयः । कैश्चि-त्कथंचिदाख्याता निमित्तावधिसंकरैरिति । छन्द-सीति वचनाद्भाष्यायां गिरिशशब्दस्यासाधुत्वमाहुः ॥ १५ ॥

( उद्द्योतः ) गिरौ शेते इत्यर्थे तद्धितस्याविधानादाह—यो गिराविति ॥ अन्ये त्वाहुरिति । अत्रास्तिस्त्वदन्तशब्दासिद्धि-व्ययत्वापत्तिः । शसः स्वार्थिकत्वेन गिरौ गिरौ शेते इति विग्रहा-सङ्गतिश्च ॥ वैरेति । वीरस्येदं वीराया वा वीरादागतं तत्र भवमिति । वसिष्ठस्येदं तेन कृतं प्रोक्तं वा । गिरौ शेते गिरिं श्यति वा गिरिशः ॥ निमित्तमर्थः । अवधिः प्रत्ययानां प्रकृतिस्तत्संकरैरित्यर्थः ॥ १५ ॥

( टप्रत्ययप्रकरणम् )

( ४७८ टप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ. १० सू० )

७८३ चरेष्टः ॥ ३।२।१६ ॥

[ ७८४ भिक्षासेनादायेषु च

॥ ३।२।१७ ॥ ]

( आक्षेपभाष्यम् )

इह कस्मात् भवति—कुरुंश्चरति पञ्चालांश्चरतीति ? ।

( प्रदीपः ) चरेष्टः ॥ १६ ॥ कुरुंश्चरतीति । यस्य कुरु एव प्राप्याः स कुरुंश्चरतीत्युच्यते । यच्च कुरुषु भ्रमति स कुरुषु चरतीत्युच्यते ॥ १६ ॥

( उद्घोतः ) चरेष्टः ॥ १६ ॥ कुरुंश्चरतीति । तान्गच्छतीत्यर्थः ॥ यद्यर्थभेदो न स्यात्किं द्वितीयान्तात्प्रत्ययानुपपत्तिप्रतिपादनं व्यर्थं स्यादत आह—यश्चेति ॥

( समाधानभाष्यम् )

अधिकरण इति वर्तते ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

मनु च कर्मणीत्यपि वर्तते । तत्र कुत एतद् 'अधिकरणे भविष्यति' न पुनः कर्मणीति ॥

( २०२४ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ चरेर्भिक्षाग्रहणं ज्ञापकं कर्मण्यप्रसङ्गस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यद्यं "भिक्षासेनादायेषु च" इति चरेर्भिक्षाग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यो 'न भवति कर्मणीति' ॥ चरेष्टः ॥ १६ ॥

( उद्घोतः ) भिक्षाचरे चरतिश्चरणकरणकार्जने लाक्षणिकः भक्षणार्थो वा । तत्रैव चार्यं प्रयोग इष्यते । भाष्यप्रामाण्यात् । एतेन भिक्षया हेतुना चरतीत्यर्थकभिक्षाचरप्रयोगसाधकेन तत्सूत्रेण विपरीतं कर्मणीत्यस्य संबन्ध एव ज्ञाप्येतेति परास्तम् । सेनाग्रहणस्य ज्ञापकत्वं तु नोक्तम् । सेनां चरति सेनायां वेलथेद्वयेपीष्टेः । एवं चाधिकरण इति कर्मणीति चोभयोरप्यधिकारो यथायोगं च संबन्ध इति ध्वनितम् ॥ १६ ॥



१ यदि हि चरेष्ट इत्यत्र कर्मणीत्यस्य संबन्धः स्यात्तदा तेनैव भिक्षां चरतीत्यर्थे भिक्षाचरस्य सिद्धौ भिक्षाग्रहणं व्यर्थमेव स्यादिति भावः । ( र. ना. )

( ४७९ कृजष्ट प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ. ११ सूत्रम् )

७८८ दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिविलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजज्ञावाह-  
हर्षत्तद्धनुररुःषु ॥ ३।२।२१ ॥

( २०२५ अचप्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ किंयत्तद्धुषु कृजोऽज्विधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किंयत्तद्धुषु कृजोऽज्विधानं कर्तव्यम् । किंकरा यत्करा तत्करा बहुकरा ॥ दिवाविभा ॥ २१ ॥

( प्रदीपः ) दिवाविभा ॥ २१ ॥ किं यदिति । वार्तिकेन सूत्रस्य बाधितत्वाद्दृष्ट्याभावे किंकरीत्यसाधुरित्याहुः ॥ २१ ॥

( उद्घोतः ) दिवा विभा ॥ २१ ॥ इत्याहु रिति । अत्रा-रुचिबीजं तु वार्तिकस्य हेत्वाद्दौ एवाधनेन चरितार्थतया सूत्रस्य किमादिग्रहणस्य सार्थक्यानुपपादनात् ॥ २१ ॥

( अथेन्प्रत्ययप्रकरणम् )

( ४८० इन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ. १२ सू. )

७९१ स्तम्बशकृतोरिन् ॥ ३।२।२४ ॥

( २०२६ अर्थपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्तम्बशकृतोर्ब्रीहिवत्सयोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्तम्बशकृतोरित्यत्र "ब्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम्" । स्तम्बकरिर्ब्रीहिः शकृत्करिर्बेतसः ॥ स्तम्बशकृतो ॥ २४ ॥

( ४८१ इन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ. १३ )

७९३ फलेग्रहिरात्मंभरिश्च ॥ ३।२।२६ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

आत्मंभरिरिति किं निपात्यते ।

( समाधानभाष्यम् )

आत्मनो मुम् भृजश्चेन्प्रत्ययः ॥

( न्यूनताप्रदर्शकभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते 'आत्मनः' इति ।

( २०२७ न्यूनताप्रकारवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भृजः कुक्ष्यात्मनोर्मुम् च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भृजः कुक्ष्यात्मनोर्मुम् चेति वक्तव्यम् । कुक्षिभरिः । 'आत्मंभरिश्चरति यूथमसेवमानः' ॥ फलेग्रहिरात्मं ॥ २६ ॥

२ ज्ञापकतापरेत्यादिः । ( र. ना. )

३ किंकरीति साधुरेवेति भावः । ( र. ना. )

( उद्ध्योतः ) फलेग्रहि ॥ २६ ॥ भाष्ये आत्मनो मुमिति । समासे कृते न लोपे च कृते ततः प्राग्वा मुम् निपात्य इत्यर्थः ॥ २६ ॥

( अथ खश्प्रत्ययप्रकरणम् )

( ४८२ खश्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. १४ सू. )

७९५ एजेः खश् ॥ ३ । २ । २८ ॥

( २०२८ खश्प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ खश्प्रकरणे वातशुनीतिलशर्धे-  
व्वजधेटुदजहातिभ्यः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) खश्प्रकरणे वातशुनीतिलशर्धेषु अजधेटुदजहातिभ्य इति वक्तव्यम् । वातमजाः मृगाः । वात ॥ शुनी—शुनिधयः । शुनी ॥ तिल—तिलं तुदः । तिल ॥ शर्धे—शर्धजहा माषाः । शर्धे ॥ एजेः खश् ॥ २८ ॥

( ४८३ खश्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. १५ सूत्रम् )

७९६ नासिकास्तनयोध्मधेटोः

॥ ३ । २ । २९ ॥

७९७ नाडीमुष्ट्योश्च ॥ ३ । २ । ३० ॥

( २०२९ करणीयसूत्रपाठदर्शकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्तने धेटः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्तने धेट इति वक्तव्यम् । स्तनं धयः । ततो,

( प्रदीपः ) नासिका ॥ २९ ॥ स्तने धेट इति । यथासंख्याभावार्थ एतावान्योगः कर्तव्य इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) नासिका ॥ २९ ॥ एतावान्योग इति । एतदन्वाख्यापकं वार्तिकमित्यर्थः ॥

( २०३० करणीयसूत्रपाठदर्शकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ मुष्टौ धमश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) मुष्टौ धमश्च धेटश्चेति वक्तव्यम् । मुष्टिधमः मुष्टिधयः ।

( उद्ध्योतः ) मुष्टौ धमश्चेति वार्तिकं नाडीमुष्ट्योश्चेति पठि-

तसूत्रस्य व्यवस्थापकमेव । नैतावता तत्सूत्रमप्रामाणिकमिति भ्रमः कार्यः । यथा सङ्ख्यसूत्रस्य भाष्ये स्पष्टं तत्सूत्रोपादानात् । यद्यपि नाडीमुष्टिविषये तत्सूत्रे यथासङ्ख्यमुक्तं तथाप्येतद्भाष्यवार्तिक-विरोधात्तद्भाष्यं प्रौढिवाद इति बोध्यम् । एवं चात्र नाडीशब्देन धम एव संबन्धो मुष्टिशब्देनोभयोरिति बोध्यम् ॥

( २०३१ करणीयसूत्रपाठदर्शकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ नासिकायां धमश्च धेटश्चेति वक्त-

( भाष्यम् ) नासिकायां धमश्च धेटश्चेति वक्त-  
व्यम् । नासिकंधमः । नासिकंधयः ॥

( न्यूनताप्रदर्शकभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते ।

( २०३२ न्यूनताप्रदर्शकवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ नासिका नाडीमुष्टिघटीखारीषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नासिकानाडीमुष्टिघटीखारीष्विति वक्तव्यम् ।

नासिकंधयः नासिकंधमः । नासिका ॥ नाडि-  
धयः नाडिधमः । नाडी ॥ मुष्टिधयः मुष्टिधमः ।  
मुष्टि ॥ घटिधमः घटिधयः । घटी ॥ खारिधयः  
खारिधमः । खारी ॥ नासिकास्तन ॥ २९ ॥

( प्रदीपः ) वार्तिकस्याप्यव्याप्तिमुद्भावयन् भाष्यकार  
आह—अत्यल्पमिति ॥ २९ ॥

( उद्ध्योतः ) वार्तिकस्यापीति । अपिना नाडीमुष्ट्योश्चेति सूत्रस्यापि ॥ पूर्ववार्तिकदूषणेन नाडीशब्दसंबन्धोप्युभयोरित्याह—  
नासिका नाडीत्यादि । अत्र धमश्च धेटश्चेति वर्तते ॥ २९ ॥

( अथ खश्प्रकरणम् )

( ४८४ खश्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. १६ सू. )

८०५ प्रियवशे वदः खच् ॥ ३ । २ । ३८ ॥

( २०३३ खच्प्रत्ययवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ खच्प्रकरणे गमेः सुपि

उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) खच्प्रकरणे गमेः सुपि उपसंख्यानं  
कर्तव्यम् । मितंगमो हस्ती मितंगमा हस्तिनी ॥

१ वार्तं वातगमनं यथा भवति तथाऽजन्ति गच्छन्तीति विग्रहः । वातशब्दस्य वातकर्तृकं गमने लक्षणा, अभेदान्वयबोधोत्तरं सादृश्ये पर्यवसानम् । वातगमन-सदृशं गमनं कुर्वन्तीत्यर्थः । ( र. ना. )

२ तिलात् तुदति लुधति निष्पीडयतीत्यर्थो वा । ( र. ना. )

३ जहातिरन्तर्भावितव्यर्थः । ( र. ना. )

४ कोष्ठकान्तर्गतः सूत्रपाठः कुत्रापि नोपलभ्यते ॥ तथापि 'उच्चैरुदात्तः' 'नीचैरुदात्तः' इत्यनयोः 'दिङ्नामान्यन्तराले' 'तेन सहेति तुल्ययोरे' इत्यनयोश्चैकविधारविषयत्वेन सह लेखः कृतस्तथात्राशुचित एवोभयोर्येन इति दाधिमयानां प्रार्थना ॥

५ 'अष्टाध्यायी' इत्यादिः ॥

६ 'खरी' गर्दभी । जातिलक्षणे ङीष् । खारीत्यन्ये पठन्ति । स च परिमाणवचनः ॥ इति पदमञ्जरीदर्शनेन ज्ञायते—खारीस्थाने खरीति का-  
यिकायां पाठः । द्वित्रभाष्यपुस्तकेष्वपि खरीत्येवोपलभ्यते ॥ कौमुदीकृता तूमय-  
ग्रहणमेव कृतम्—'घटीखारीखरीषु' इति ॥

७ अर्थं कोष्ठकान्तर्गतपाठो यद्यपि सर्वपुस्तकेषु 'मुष्टौ धमश्चेति वार्तिकम्' इत्यतः प्राक् सपुलभ्यते तथापि तत्र पाठं लेखकममादजं ज्ञात्वा योग्यस्थाने स्थापित इति बोध्यम् ॥

( २०३४ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ विहायसो विह च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विहायसो विह इत्ययमादेशो वक्तव्यः खच्च । विहंगमः ॥

( २०३५ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ खच्च डिद्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) खच्च डिद्वा वक्तव्यः । विहंगमः ॥

( २०३६ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ डे च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) डे च विहायसो विह इत्ययमादेशो वक्तव्यः विहंगमः ॥ प्रियवशे ॥ ३८ ॥

( प्रदीपः ) प्रियवशे ॥ ३८ ॥ डेचेति । विहायः शब्दपूर्वाद् गमेः अन्येष्वपि दृश्यते\* इति उप्रत्यये सति विहादेशः ॥ ३८ ॥

( अथ उप्रकरणम् )

( ४८५ गमेऽप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. १७ सू. )

८१५ अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु

डः ॥ ३ । २ । ४८ ॥

( २०३७ उपपदन्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ उप्रकरणे सर्वत्रपन्नयोरुप-  
संख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उप्रकरणे सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानं कर्तव्यम् । सर्वत्रगः पन्नगः ॥

( २०३८ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उरसो लोपश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उरसो लोपश्च वक्तव्यः । उरगः ॥

( २०३९ न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सुदुरोरधिकरणे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुदुरोरधिकरणे डो वक्तव्यः । सुगः दुर्गः ॥

( २०४० न्यूनतापूरकवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ निसो देशे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निसो देशे डो वक्तव्यः । निर्गो देशः ॥ अपर आह—

( २०४१ अपरिसंख्यातोपपदवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ उप्रकरणे अन्येष्वपि दृश्यते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उप्रकरणे अन्येष्वपि डो भवतीति वक्तव्यम् । 'तत्र रुयगारगः अश्रुते' 'यावदन्नाय ग्रामः' 'ध्वंसते गुरुतल्पग' इति ॥ अन्तात्यन्ता ॥ ४८ ॥

( ४८६ उप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. १८ सू. )

८१६ आशिषि हनः ॥ ३ । २ । ४९ ॥

( २०४२ अनुप्रत्ययादिविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ दारावाहनोणन्त्यस्य च टः  
संज्ञायाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दारावुपपदे आङ्पूर्वाद्धन्तेरण्वक्तव्यः । अन्त्यस्य च टो वक्तव्यः । दारवाघाटस्ते वनस्पतीनाम् ॥

( २०४३ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ चारौ वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चारावुपपदे आङ्पूर्वाद्धन्तेरण्वक्तव्यः । अन्त्यस्य च टो वा वक्तव्यः । चारवाघाटः चारवाघातः ॥

( २०४४ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मणि समि च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मण्युपपदे संपूर्वाद्धन्तेरण्वक्तव्यः । अन्त्यस्य च टो वा वक्तव्यः । वर्णसंघाटः वर्णसंघातः । पदसंघाटः पदसंघातः ॥ आशिषि ॥ ४९ ॥

( ४८७ उप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. १९ सूत्रम् )

८१९ लक्षणे जायापत्योष्टक

॥ ३ । २ । ५२ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथमिदं विज्ञायते—'लक्षणे कर्तरि', आहो खित् 'लक्षणवति कर्तरी'ति । किं चातः ? । यदि विज्ञायते—'लक्षणे कर्तरी'ति । सिद्धं जायाम्नस्तिलकालकः, पतिघ्नी पाणिरेखेति । इदं तु न सिध्यति—जायाम्नो ब्राह्मणः, पतिघ्नी वृषलीति ॥

अथ विज्ञायते—'लक्षणवति कर्तरी'ति । सिद्धं जायाम्नो ब्राह्मणः पतिघ्नी वृषलीति । जायाम्नस्तिलकालकः, पतिघ्नी पाणिरेखेति न सिध्यति ॥

( प्रथमकल्पस्वीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि लक्षणे कर्तरीति ॥

( दूषणभाष्यम् )

कथं जायाम्नो ब्राह्मणः पतिघ्नी वृषलीति ? ।

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

अकारो मत्वर्थीयः । जायाम्नोऽस्मिन्नस्ति सोऽयं जायाम्न इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

पतिघ्नी वृषलीति न सिध्यति ॥

( द्वितीयकल्पस्वीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि लक्षणवति कर्तरीति ॥

( दूषणसारणभाष्यम् )

कथं जायाम्नास्तिलकालकः पतिग्री पाणिरेखेति ?

( समाधानभाष्यम् )

“अमनुष्यकर्तृके च” इत्येवं भविष्यति ॥  
लक्षणे ॥ ५२ ॥

( ४८८ टङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. २० सू. )

८२० अमनुष्यकर्तृके च ॥ ३।२।५३ ॥

( २०४५ न्यूनतापरिहारवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अप्राणिकर्तृके ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अप्राणिकर्तृक इति वक्तव्यम् । इह मा  
भूत्—नगरघातो हस्ती ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्यप्राणिकर्तृक इत्युच्यते, शशग्री शकुनीति न  
सिध्यति ॥

( समाधानभाष्यम् )

अस्तु तर्हि “अमनुष्यकर्तृके च” इत्येव ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं नगरघातो हस्ती ? ।

( समाधानभाष्यम् )

“कृत्यल्युटो बहुलम्” इत्येवात्राण भविष्यति ॥  
अमनुष्यकर्तृ ॥ ५३ ॥

( ४८९ टङ्प्रत्ययवत्त्वादिविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ. २१ )

८२२. पाणिघताडघौ शिल्पिनि

॥ ३ । २ । ५५ ॥

( २०४६ न्यूनतापरिहारवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ राजघ उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) राजघ उपसंख्यानं कर्तव्यम् । रा-  
जघः ॥ पाणिघताडघौ ॥ ५५ ॥

( ४९० ख्युन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ. २२ )

८२३ आढ्यसुभगस्थूलपलितनगान्ध-  
प्रियेषु च्यर्थेष्वच्चौ कृजः करणे ख्युन्

॥ ३ । २ । ५६ ॥

( २०४७ च्विप्रतिषेधवैयर्थ्यवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ ख्युनि च्विप्रतिषेधानर्थक्यं ल्युट्-  
ख्युनोरविशेषात् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) ख्युनि च्विप्रतिषेधोनर्थकः । किं का-  
रणम् ? । ल्युट् ख्युनोरविशेषात् । ख्युना मुक्ते ल्युटा  
भवितव्यम् । न चैवास्ति विशेषः च्यन्त उपपदे  
ख्युनो वा ल्युटो वा । तदेव रूपम् स एव च स्वरः ॥

( विशेषदर्शकभाष्यम् )

अयमस्ति विशेषः । ल्युटि सति ईकारेण भवि-  
तव्यम् । ख्युनि सति न भवितव्यम् ॥

( अविशेषदर्शकभाष्यम् )

ख्युन्यपि सति ईकारेण भवितव्यम् । एवं हि  
सौनागाः पठन्ति—\*नञ्छ्रीककृख्युस्तरुणतलु-  
नानामुपसंख्यानम्\* इति ॥( उद्द्योतः ) आढ्यसुभग ॥ ५६ ॥ ख्युनभावे करणे  
ल्युटोऽवश्यं सस्वेनाच्चाविति व्यर्थमित्याह—भाष्ये ख्युना मुक्ते  
इति ॥ भाष्ये स एव स्वरः । लिट्स्वरानित्स्वराभ्याम् ॥

( विशेषप्रदर्शनभाष्यम् )

अयं तर्हि विशेषः—ख्युनि सति नित्यसमासेन  
भवितव्यम् । उपपदसमासो हि नित्यसमास इति ।  
ल्युटि सति न भवितव्यम् ॥

( अविशेषप्रदर्शनभाष्यम् )

ल्युट्यपि सति भवितव्यम् । गतिसमासोपि हि  
नित्यसमासः । च्यन्तं च गतिसंज्ञं भवति ॥

( २०४८ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ मुमर्थं तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) मुमर्थं तर्हि प्रतिषेधो वक्तव्यः । ख्युनि  
सति मुमा भवितव्यम्, ल्युटि सति न भवितव्यम् ॥

( २०४९ प्रयोजननिरासवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ मुमर्थमिति चेन्नाव्ययत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) मुमर्थमिति चेत् । तन्न । किं कार-  
णम् ? । अव्ययत्वात् । अनव्ययस्य मुमुच्यते । च्यन्तं  
चाव्ययसंज्ञं भवति ॥

( २०५० प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ उत्तरार्थं तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उत्तरार्थं तर्हि प्रतिषेधो वक्तव्यः ।  
“कर्तरि भुवः खिण्णचूखुकजौ” अच्चावित्येव ।  
आढ्यीभविता ॥

( प्रदीपः ) आढ्य ॥ ५६ ॥ उत्तरार्थमिति । उत्तरत्र च्विप्रतिषेधस्य चरितार्थत्वादाढ्यीकरणमिति ल्युटा भाव्यम् । तत्र यदन्यैरुक्तं प्रतिषेधसामर्थ्यात् खुन्यसति ल्युटपि न भवतीति ल्युटोप्ययमर्थतः प्रतिषेध इति । तदयुक्तम् ॥

( उद्घोतः ) ल्युटा भाव्यमिति । अवश्यभावमित्यर्थः ॥ तदयुक्तमिति भाष्यविरोधादित्यर्थः । उत्तरार्थत्वं वदता इहायैवभावस्य भाष्यकृता बोधितत्वादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथेदानीमनेन मुक्ते ताच्छीलिक इण्णुज विधीयते सोत्र कस्मान्न भवति ? ।

( उद्घोतः ) भाष्ये इण्णुजिति भुवश्चेल्यनेन ॥

( समाधानभाष्यम् )

रुडिशब्दप्रकारास्ताच्छीलिकाः । न च रुडिशब्दा गतिभिर्विशेष्यन्ते । न हि भवति—देवदत्तः=प्रदेवदत्त इति ॥ आढ्य ॥ ५६ ॥

( प्रदीपः ) रुडिशब्दप्रकारा इति । यथा रुडिशब्देषु क्रिया केवलं व्युत्पत्त्यर्थमाश्रीयते गच्छतीति गौरिति । तेन गमनक्रियारहितोपि गौर्भवति । गोपिण्डाच्चान्योर्थो गमनविशिष्टोपि गौर्न भवति । तथा ताच्छीलिका अपि क्रियाविषयं ताच्छील्यमुपादाय क्रियावेशाभावेपि प्रयुज्यन्ते । केचिदेव तु गतिना संबध्यन्ते—आगामुकः प्रवर्षुक इति । न तु सर्वे यथा कामुक इति । न च भवति प्रकामुक इति । अत एव प्रकारग्रहणं सादृश्यार्थम् । रुडिशब्दानां न केषांचिद् गतिसंबन्धो भवति । ताच्छीलिकानां तु भवति केषांचित्, न सर्वेषामिति प्रतिपादयति । द्रव्योपलक्षणाय क्रियायाः प्रवृत्तत्वादात्मातिशयं प्रति आकाङ्क्षाया अभावात्तदतिशययोनार्थं गतिसंबन्धाभावस्ताच्छीलिकेष्वित्यर्थः ॥ प्रदेवदत्त इति । प्रकर्षेण देवनक्रिया न विशेष्यते । देवशब्दस्य रुडिशब्दत्वात्, तदवयवस्य च देवदत्तशब्दस्येत्यर्थः । व्याघ्रादयस्तु सोपसर्गा एव रुडिशब्दा इति तद्व्यतिरिक्तगल्यन्तरयोग्यतेषां नास्ति ॥ ५६ ॥

( उद्घोतः ) केचिदेवेति । स्पष्टं प्रतीयमानक्रियावेशा इति भावः ॥ द्रव्योपलक्षणायेति । अवस्थाविशेषविशिष्टस्योपलक्षणा-

येत्यर्थः ॥ न तु क्रियाप्रकारको बोध इति तात्पर्यम् ॥ वस्तुतस्तु आभिधानस्वाभाव्यात्केषांचिदेव कृतप्रयोगाणां गतिसंबन्धो न सर्वेषामिति भाष्यतात्पर्यम् ॥ प्रदेवदत्त इत्यत्र प्रशब्दस्य देवनक्रियायां दानक्रियायां वाऽन्वयः ॥ नाद्य इत्याह—देवशब्दस्येति । नान्य इत्याह—तदवयवस्य चेति । तदवयवस्येति बहुव्रीहिः । व्याघ्रादौ तर्हि संज्ञाशब्दे कथं गतिसंबन्धोत आह—व्याघ्रादयस्त्विति ॥ ५६ ॥

( ४९१ प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. १९ सू. )

८२४ कर्तरि भुवः खिण्णचूखुकजौ

॥ ३ । २ । ५७ ॥

( इकारादित्वनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं खिण्णुजिकारादिः क्रियते, न ‘खसुरित्येवोच्येत । तत्रायमप्यर्थः—स्वरार्थश्चकारो न कर्तव्यो भवति ।

( उद्घोतः ) कर्तरि भुवः ॥ ५७ ॥ भाष्ये—‘न चैक्षुरिति पाठः ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

केनेदानीमिकारादित्वं क्रियते ? ।

( २०५१ प्रत्याक्षेपसमाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ इण्णुच इकारादित्वमुदात्तत्वात् कृतं भुवः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भवति—रुदात्तस्तस्योदात्तत्वादिद् भविष्यति ।

( उद्घोतः ) उदात्तत्वादिति । तेनैका च उपदेशे इत्यस्या प्रवृत्तिरिति भावः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनं खिद्यं क्रियते । तत्र चत्वे कृते संदेहः स्यात्—किद्वा, खिद्येति ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

संदेहमात्रमेतद्भवति । सर्वसंदेहेषु चेदमुपतिष्ठते—‘व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणमिति । खिदिति व्याख्यास्यामः ॥

१ अथमुद्योतपाठश्चिरंतनलेखकप्रमादात् अग्रे ‘प्रदेवदत्तइत्यत्र’ इत्यतः पूर्वमेवोपलब्धः तथापि तत्र पाठे संदर्भासंगत्या संदर्भसंगतयेऽसाभिरत्र स्थापित इति बोध्यम् ॥

२ ‘उपलक्षणार्थं’ ॥

३ अयं नागेश्वरविरचितश्चकारो नैवोचितः ‘स्वरार्थश्चकारो न कर्तव्यो भवति’

इति भाष्यविरोधात् ॥ किं च चकारस्यैव खकारस्येत्सञ्ज्ञातुपपत्तिः इकारादित्वेनादि खकाराभावात् ॥ तस्मात् ‘ग्लान्तिरथश्च कस्तुः’ इत्यनेन दम्बसकारवानेव ‘कस्तुः’ इत्येव पाठ उचित इति दाधिमथाः ॥

४ ‘भवतेरुदात्तत्वादिकारादित्वं’ ॥



( २०५२ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ नञस्तु स्वरसिद्ध्यर्थमिकारादित्व-  
मिष्णुचः ॥ \* ॥( भाष्यम् ) इदं तर्हि प्रयोजनं “कृत्योकेष्णुच्चार-  
दयश्च” इत्येष स्वरौ यथा स्यात् ॥( प्रदीपः ) कर्तरि ॥ ५७ ॥ नञ इति पञ्चमी ॥ नञ  
उत्तरस्य स्वरसिद्ध्यर्थमित्यर्थः ॥( उद्घोतः ) ननु कृत्योकेष्णुजिति सूत्रेण नञः स्वराभावा-  
दाह—नञ उत्तरस्येति । अन्तोदात्तविधायकमिदं पूर्वपदप्रकृति-  
स्वरापवादः ।

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । अयमपि इति कृते  
षत्वे णत्वे चेष्णुजैव भविष्यति ॥( प्रदीपः ) अयमपीति । क्लृप् प्रत्ययः कियते  
चकारः सामान्यग्रहणार्थ इति मन्यते ॥खिष्णुचि तु कृते इकारोच्चारणसामर्थ्यात्तदनुबन्धकपरि-  
भाषा नाश्रीयते ॥ ५७ ॥( उद्घोतः ) ननु तदनुबन्धकपरिभाषया इष्णुच एव  
ग्रहणं भविष्यति, न खिष्णुच इत्यत आह—इकारोच्चारणेति ।  
चकारोच्चारणेनैव द्वयोर्ग्रहणे लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषातदनु-  
बन्धकपरिभाषाभावे च खिष्णुचः करणेन षत्वणत्वयोरसिद्धत्वाभावे  
च सिद्धे इकारोच्चारणं व्यर्थमिति ‘अयमपीति कृते’ इति भाष्य-  
तात्पर्यम् ॥

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्त-  
स्यैवेति । अथ वा असिद्धं खत्वपि षत्वम् । तस्या-  
सिद्धत्वादिसुजैव भवति ॥

इष्णुच इकारादित्वमुदात्तत्वात् कृतं भुवः ।

नञस्तु स्वरसिद्ध्यर्थमिकारादित्वमिष्णुचः ॥

कर्तरि भुवः ॥ ५७ ॥

( उद्घोतः ) न सिध्यतीत्यादि त्वेकदेश्युक्तिरिति बोध्यम् ॥ ५७ ॥

( ४९२ प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. २० )

८२५ स्पृशोऽनुदके किन् ॥ ३।२।५८ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थो नकारः ।

( समाधानभाष्यम् )

स्वरार्थः । ‘जिन्ती’त्याद्युदात्तत्वं यथा स्यात् ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । एकाचोऽयं विधीयते ।

१ ‘भविष्यति’ ॥

२ ‘स्वरार्थेन नकारेणानुबन्धेन’ ॥

तत्र नार्थः स्वरार्थेनानुबन्धेन नकारेण । धातुस्वरे-  
णैव सिद्धम् ॥( उद्घोतः ) स्पृशोऽनु ॥ ५८ ॥ एकाचोयमिति भाष्ये ।  
यद्भुगन्तास्वयं न किञ्चनभिधानादिति भावः ॥

( प्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

यस्तर्ह्यनेकाज् दधृगिति ॥

( प्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

वक्ष्यत्येतत् ‘धृषेर्द्विर्वचनमन्तोदात्तत्वं च निपा-  
त्यते’ इति ॥

( प्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

विशेषणार्थस्तर्हि । क विशेषणार्थेनार्थः ? । “कि-  
न्प्रत्ययस्य कुः” इति । “किप्रत्ययस्य कुः” इत्युच्य-  
माने संदेहः स्यात् ‘किर्वा एष प्रत्ययः, किन्वा’ इति ॥( प्रदीपः ) स्पृशोऽनु ॥ ५८ ॥ संदेहः स्यादिति ।  
किमेकपकारको निर्देश उत द्विपकारक इत्यर्थः ॥

( प्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

संदेहमात्रमेतद्भवति । सर्वसंदेहेषु चेदमुपति-  
ष्ठते—‘व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहांद-  
लक्षणमिति’ । ‘किन्प्रत्ययस्य’ इति व्याख्यास्यामः ॥  
स्पृशोऽनुदके किन् ॥ ५८ ॥( प्रदीपः ) व्याख्यानत इति । तदनुबन्धकपरि-  
भाषया च किपो ग्रहणाभावः ॥ ५८ ॥( उद्घोतः ) ननु किग्रहणे किपोपि ग्रहणं स्यादत आह—  
तदनुबन्धेति । अत्र सूत्रे कर्मेणीति संबध्यत एव । मन्त्रस्पृशि-  
त्यादि तु किपा सिद्धम् । किन्प्रत्ययस्येति बहुव्रीह्याश्रयणात्कुत्वमपि  
सिद्धम् ॥ ५८ ॥

( ४९३ प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. २१ )

८२६ ऋत्विग्दधृक्त्विग्दिगुष्णिगञ्जुयुजि-  
कृश्चां च ॥ ३।२।५९ ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

दधृगिति किं निपात्यते ।

( २०५३ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ धृषेर्द्विर्वचनमन्तोदात्तत्वं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) धृषेर्द्विर्वचनमन्तोदात्तत्वं च निपा-  
त्यते ॥ ऋत्विग्द ॥ ५९ ॥( उद्घोतः ) ऋत्विग्द ॥ ५९ ॥ अन्तोदात्तत्वं चेति ।  
इदं च किनो नकारसत्त्वे उक्तम् । सगुष्णिगोऽभिप्रायमानवस्तुतः

१ ‘किन् इति’ ॥

४ यथल्लतन्यासाभिप्राये णनकारोच्चारणमिति भावः ॥

स्पष्टत्वात्तत्रोक्तम् । कुत्रामिति निपातनाजलोपाभाव इति परेश्वेति<sup>१</sup>  
सूत्रे भाष्ये स्पष्टम् ॥ ५९ ॥

(४९४ कञ्क्लिप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. २२)

८२७ त्यदादिषु दशोऽनालोचने कञ्च  
॥ ३ । २ । ६० ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थो अकारः ।

( प्रदीपः ) त्यदादिषु ॥ ६० ॥ अकारस्य कार्यद्वयं  
प्रति युक्तत्वं प्रश्नद्वारेण प्रदर्श्यते—किमर्थ इति ॥

( उद्घोतः ) त्यदादिषु ॥ ६० ॥ अकारः केवलस्वरार्थः,  
उतान्यार्थोऽपीति विचारतात्पर्यमाह—अकारस्येति ॥

( समाधानभाष्यम् )

स्वरार्थः । जिनतीत्याद्युदात्तत्वं यथा स्यात् ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । नकारेणाप्येष स्वरः सिद्धः ।

( समाधानभाष्यम् )

विशेषणार्थस्तर्हि भविष्यति । क. विशेषणार्थे-  
नार्थः ? । “कञ्क्लरवि”ति । ‘कञ्क्लरवित्युच्यमाने’  
याविका इत्यत्रापि प्रसज्येत ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये याविका इत्यत्रापि । न च व्यनु-  
बन्धकत्वादस्य कनो ग्रहणं न स्यादिति वाच्यम् । येनानुबन्धेन  
व्यनुबन्धकत्वं तदनुच्चारण एव तत्प्रवृत्तेः ॥

( २०५४ उपपदान्तरेऽपि प्रत्ययविधिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ दशोः समानान्ययोश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दशोः समानान्ययोश्चोपसंख्यानं कर्त-  
व्यम् । सदृक् । सदृशः । अन्यादृक् । अन्यादृशः ॥

( २०५५ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ कृदर्थानुपपत्तिस्तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृदर्थस्तु नोपपद्यते । दशोः कर्तरि  
प्राप्नोति ॥

प्रदीपः ) कृदर्थानुपपत्तिस्त्विति । यः कृतोऽर्थः स  
दशः, सादृक्वाच्या न भवति । तादृशादयो हि सदृशलक्षण-  
मयर्भाचरित, न तु दर्शनक्रियायाः कतः रामत्यर्थः ।

( उद्घोतः ) यः कृतोऽर्थ इति । प्रकृते दशोः कर्तृत्वार्थः ॥

१ निपातनादिति । औपदेशिकनकारस्य अकारादशनिपातनादित्यर्थः ॥

२ नलोपाभाव इति । शालि परतः मातस्य ‘चोः कुः’ इति कुत्वस्याभावे  
ऽनुपलक्षणतया बोध्यः ॥

३ तत्र भाष्ये तु नैव नलोपवारणकथा किंतु चकाररूपशब्दनिमित्तकस्य ‘चोः  
कुः’ इति या कुत्वस्यैव निपातनेन वारणकथा ॥ कृत्वातावौपदेशिक अकार-  
माश्रित्य ‘नकारजाऽनस्तापश्चमौ’ इति नियमस्य प्रायिकत्वं कथयन् नागेशस्तु  
कथं भाष्यसिद्धान्तज्ञेयु गणनीयः स्यात् ॥ तत्र पञ्चमस्य अकारस्य नकारस्थाने  
निपातनेन जातत्वात् संकोचकल्पनाया अनावश्यकत्वात् ॥ यदि तु पञ्चमत्व-  
मात्रं न नागेशसमतम् किं तु ‘अनुस्वारस्य ययि’ इति जातपरसवर्ण एव पञ्चम-  
त्वेनेति विभाव्यते । तदा ‘सवर्णपदं विहाय पञ्चमपदप्रयोजनं नागेश एव

( २०५६ तद्धितविधिवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ इवार्थे तु तद्धितः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इवार्थे त्वयं तद्धितो द्रष्टव्यः । स  
इवायं तादृक् तादृशः । अन्य इवायमन्यादृक् अन्या-  
दृश इति ।

( उद्घोतः ) भाष्ये इवार्थेऽयं तद्धित इति । अयं भावः—  
यथा दृग्दृशवत्तुष्विति सूत्रे दृक्षे इति वार्तिकबलादनुक्तोपि वसः  
कल्प्यते तथा इवाधिकारे तद्धिते त्यदादिभ्यो ईगृहशदृक्षाः प्रत्ययाः  
कल्प्याः, दृशदृष्टिवाच्च जीवपि सिद्ध इति दिङ्ढेति । सूत्रे कञ्-  
ग्रहणमपि न कार्यमिति लाघवमिति ॥

( कृदर्थोपपादनभाष्यम् )

अथ वा युक्त एवायं कृदर्थः । कर्मकर्ताऽयम् ।  
तमिवेमं पश्यन्ति जनाः सोयं स इव दृश्यमान-  
स्तमिवात्मानं पश्यति तादृक् । अन्यमिवेमं पश्यन्ति  
जनाः सोयमन्य इव दृश्यमानोऽन्यमिवात्मानं प-  
श्यति अन्यादृगिति ॥ त्यदादिषु ॥ ६० ॥

( प्रदीपः ) कर्मकर्तेति । कर्मण एव सौकर्यात् कर्तृत्व-  
विवक्षायां कर्तृत्वैव प्रत्ययः क्रियत इत्यर्थः ॥ ६० ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये तमिवात्मानं पश्यतीति । प्रेरणावृद्धा-  
वपि अन्तर्भावितव्यार्थत्वाच्च णिच् । तमिवात्मानं जनान्दर्शयतीत्यर्थः ।  
अत्र प्रेरणावृद्धाधिकार्थत्वेनोद्धार्यतात्वम्, कर्मण्युपपदे एवायम् । तेन  
निवृत्तप्रेषणतया स इव पश्यतीति विग्रहोऽनुचितः । सत्सूद्विषेति सूत्रे  
एव ‘कर्मणि’ इत्यस्य निवृत्तेः । ‘सत्सू’ इति सूत्रे भाष्ये ध्वनित-  
त्वेनात्रानुवृत्तेः सत्त्वात् । ननु कर्मकर्तेति व्यवहारोऽनुपपन्नः कर्म-  
त्वाभावात्कर्मवद्भावाभावाच्चैत्यत आह—कर्मण एवेति ॥ ६० ॥

( ४९५ किप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ० २३ )

८२८ सत्सूद्विषदुहदुहयुजविदभि-

दच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि

किप् ॥ ३ । २ । ६१ ॥

( २०५७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सदादिषु सुब्रह्मणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सदादिषु सुब्रह्मणं कर्तव्यम् । होता  
वेदिषत । अतिथिर्दुरोणसत् ॥

प्रष्टव्यः ॥ प्रयोजनान्तराभावादेतन्निपातनञ् अकारस्यैव संयहाय पञ्चमपदोपा-  
दानामिति दाधिमथानां सिद्धान्ते तु न प्रायिक-वकल्पनावश्यकत्वेन विभावयन्तु  
सुधियः । वस्तुतस्तु सूत्रे कुञ्च इति निपातनबलाजलोपाभाव इति नागेशाशयः,  
तथाच नकारजत्वमत्राप्युक्तमिति न नागेशस्य मते कारिकाविरोध इति  
वयम् । ( र. गा. )

४ ‘करञ्’ इति विभक्तिप्राग्वर्तिनः प्रकृतिभोगस्यैवावतारणम् ॥

५ ‘हय’ इति निपातनादेव पदान्ते शकारस्य गकारादेशो जायते । एतेन  
तद्धितत्वे किनोऽभावाङ्गीकारे कुत्वानुपपत्तिरित्युपास्यम् ॥

६ ‘गोयुगजादय इवे’ति भावः ॥

( प्रदीपः ) सत्सूद्विष ॥ ६१ ॥ सदादीनां केषांचित्स-  
कमेकलात्कर्मैवोपपदं प्राप्नोतीति मत्वाह—सदादिष्विति ॥  
वेदिषदिति । वेद्यां सीदतीति । क्तिप् । पूर्वपदादिति षत्वम्  
दुरोणे सीदतीति दुरोणसत् । दुरोणं गृहम् ॥

( उद्घोतः ) सत्सू ॥ ६१ ॥ कर्मैवोपपदमिति । कर्मणी-  
ल्यधिकारादिति भावः ॥ सुब्रह्मणं तु तन्निवृत्तिद्योतनायेति बोध्यम् ।  
वस्तुतः सुब्रह्मणमेवात्रानुवर्तते कर्मणीति निवृत्तमित्यन्वाख्यात-  
मेवैतत् । अत्र सूत्रे ‘उपसर्गैषि’ ग्रहणम् ‘अनुपसर्गै’ इत्यस्यातो-  
ऽनुपसर्गै इति सूत्रादनुवर्तमानस्याग्रे निवृत्तिद्योतनाय । भाष्यकार  
एतज्ज्ञापकेनैव सुब्रह्मणस्योपसर्गैतरमुपरत्वं व्याख्यायानुपसर्ग  
इत्यस्यानधिकारं द्योतयति । तत्फलं ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वेन  
प्रष्ट इत्यादि सिद्धिः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

न तर्हीदानीमुपसर्गंऽपीति वक्तव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

वक्तव्यं च । किं प्रयोजनम् ? ज्ञापकार्थम् । किं  
ज्ञाप्यम् ? । एतज्ज्ञापयत्याचार्यः—“अन्यत्र सुब्र-  
ह्मणे उपसर्गग्रहणं न भवति” इति । किमेतस्य  
ज्ञापने प्रयोजनम् ? । वदः सुप्यनुपसर्गग्रहणं चो-  
दितम् ॥ तन्न वक्तव्यं भवति ॥ सत्सूद्विष ॥ ६१ ॥

( प्रदीपः ) तन्न वक्तव्यमिति । अनुपसर्गग्रहणानुवृत्ति-  
मन्तरेणैवोपसर्गनिवृत्तेः सिद्धत्वादननुवृत्तिप्रदर्शनमपि न युज्यते ।  
यत्र चानुपसर्गग्रहणानुवृत्तिर्न संभाव्यते स्पृशोनुदकेकोक-  
श्चित् एतदपि ज्ञापनस्य प्रयोजनम् । तेनोपस्पृशतीत्यादौ  
किञ्च भवतीति ॥ ६१ ॥

( उद्घोतः ) ननु वदः सुपीलत्र गदमदेत्यतोऽनुपसर्ग-  
ग्रहणानुवृत्तिप्रदर्शनपरं वार्तिकं नापूर्वकरणपरमत आह—अनुप-  
सर्गैति ॥ यत्र चेति । यत्र स्पृशोनुदक इत्यादावनुपसर्गग्रहणा-  
नुवृत्तिर्न संभाव्यते एतदपि ज्ञापनस्य प्रयोजनमित्यन्वयः । इदं  
निवृत्त्यम्, अत्राप्यातोऽनुपसर्ग इत्यतोऽनुवृत्तिसंभवात् ॥ ६१ ॥

( अथ विद्वत्प्रकरणम् )

( ४९६-४९७ विद्वत्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ० २४-२५ )

८३५-८३६ अदोनन्ने ॥ ३।२।६८ ॥

क्रव्ये च ॥ ३।२।६९ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते, न “अदोनन्ने” इत्येव सिद्धम् ।

( समाधानभाष्यम् )

न सिध्यति । छन्दसीति वर्तते । भाषार्थोऽयमा-  
रम्भः ॥

१ इदं ‘क्रव्ये च’ इति सूत्रमित्यर्थः ॥ प्रतीके ‘अदोनन्ने’ इत्यस्योपादानं  
प्रकरणबोधनायैव । एवमेवामे २०५८ वार्तिकेपि बोध्यम् ॥

२ अदोऽनन्ने इत्यत्रेति भावः । ( र. ना. )

( समाधानबाधकभाष्यम् )

पूर्वसिन्नेव योगे छन्दोग्रहणं निवृत्तम् । तच्चा-  
वश्यं निवर्त्यम् । आमादित्येवमर्थम् ॥

( उद्घोतः ) अदोऽन ॥ ६८ ॥ क्रव्ये च ॥ ६९ ॥ भाष्ये  
आमादित्येवमर्थमिति । लोके एतत्सिद्ध्यर्थमित्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति ।

( २०५८ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अदोनन्नेक्रव्यग्रहणं वासरूप-  
निवृत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अदोनन्ने क्रव्यग्रहणं क्रियते वासरूपो  
मा भूदिति ॥ अदोन ॥ क्रव्ये च ॥ ६९ ॥

( प्रदीपः ) अदोनन्ने ॥ ६८ ॥ क्रव्ये च ॥ ६९ ॥ वास-  
रूपो मा भूदिति । तेन क्रव्याद इत्यण् भवतीत्यर्थः ॥ ६९ ॥

( उद्घोतः ) क्रव्याद इत्यण्नेति । आमर्मासभक्षणकर्तृत्वर्थे इति  
भावः ॥ पक्वमांस उपपदे अदेरण्, उपपदस्य क्रव्यादेशः पृषोदरादि-  
त्वादित्यत्र तु न भाष्यानुग्रहः । क्रव्यशब्देन तदबोधाच्च । एवं च  
क्रव्याद इत्यसाध्वेवेति बहवः ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

( अथ णिवन् प्रकरणम् )

( ४९८ णिवन् प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।२।१ आ० २६ )

८३८ मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडा-  
शो णिवन् ॥ ३।२।७१ ॥

( २०५९ णिवन् बाधकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ श्वेतवहादीनां डस् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) श्वेतवहादीनां डस्त्वक्तव्यः ॥ श्वेतवा  
इन्द्रः ॥

( प्रदीपः ) मन्त्रे ॥ ७१ ॥ डस् वक्तव्य इति । णिवन्-  
प्रत्ययबाधनार्थ इति भावः ॥

( उद्घोतः ) मन्त्रे श्वे ॥ ७१ ॥ भाष्ये श्वेतवहादीनामिति ।  
अनन्तरयोगे षष्ठी ॥

( २०६० पूर्वशेषवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ पदस्य च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पदस्येति च वक्तव्यम् । इह मा भूत्—  
श्वेतवाहौ श्वेतवाह इति ॥

( प्रदीपः ) पदस्येति । भाविपदाश्रयेणोदमुच्यते । यत्र तु  
डसन्तस्य पदत्वं भविष्यति तत्र डसप्रत्ययोऽन्यत्र णिवन्नेवेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) पदस्येत्यस्य तदन्ते पदत्वस्य संभावनायामि-

१ ‘आमात्सत्यादित्येवमर्थम्’ ॥

२ आममत्तीति सस्यमत्तीति विग्रहः । ( र. ना. )

३ सामर्थ्यादिति भावः । ( र. ना. )

त्यर्थः ॥ केचित्तु तत्संबन्धिनो ण्विनः स्थाने ङस्वक्तव्य इत्यर्थे  
इत्याहुः ॥ ननु ङस्युत्पत्तिवेलायां कथं पदत्वमत आह—भावीति ॥

( प्रयोजनप्रश्नभाष्यम् )

किं प्रयोजनम् ? ॥

( २०६१ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ वर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) रुर्थथा स्यात् ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

क्रियते वर्थे निपातनम्—“अत्रयाः श्वेतवाः पुरो-  
डाश्च” इति । आतेश्च वर्थम् । उक्थशाःशब्दस्य सा-  
मान्येन रुः सिद्धः । न तस्य निपातनं क्रियते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये क्रियते वर्थमिति । तेन इकारादीनामेव  
रत्वमिति भावः ॥ भाष्ये उक्थशशब्दस्येति । तत्प्रकृतिकस्येत्यर्थः ॥

( निपातनानावश्यकताभाष्यम् )

तन्न वक्तव्यं भवति ॥

( प्रदीपः ) तन्न वक्तव्यमिति । ङसैव सिद्धत्वाज्जिपा-  
तनं न कर्तव्यमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) तन्न वक्तव्यमिति ॥ ननु वासरूपन्यायेन  
ङस्विष्ये ण्विनोऽपि सत्त्वेन तदर्थं निपातनमावश्यकमिति चेन्न ।  
पतङ्गाभ्यप्रामाण्येनादेशपक्षस्यैवौचित्यात् । कैयटे ‘ङस्प्रत्ययः’ इति  
व्यवहारः स्थानिवद्भावलब्धप्रत्ययत्वेनेति बोध्यम् ॥

( निपातनावश्यकताभाष्यम् )

अवश्यं तद्वक्तव्यम् । दीर्घार्थम् ॥

( उद्घोतः ) अवश्यं तद्वक्तव्यमिति । ङसारम्भेपीत्यर्थः ॥

( निपातनानावश्यकताभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । सिद्धमत्र दीर्घत्वम्—“अ-  
त्वसन्तस्य चाधातोरि”ति ॥

( निपातनावश्यकताभाष्यम् )

यत्र तेन न सिध्यति तदर्थम् ॥ क्व च तेन न  
सिध्यति ? । संबुद्धौ—हे श्वेतवाः इति ॥

( उद्घोतः ) न तर्हीदानीमिति । हादीनामेव रत्वं विधे-  
यम् । दीर्घस्तु ण्विनि वृद्धैव सिद्ध इति भावः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

न तर्हीदानीं ङस्वक्तव्यः ॥

( समाधानभाष्यम् )

वक्तव्यश्च । किं प्रयोजनम् ? । उत्वार्थम् । श्वेत-  
वोभ्यां श्वेतवोभिः ॥ मन्त्रे श्वेत ॥ ७१ ॥

( प्रदीपः ) वक्तव्यश्चेति । अवया इत्यादीनि प्रथमा-

न्तान्येव निपात्यन्त इति श्वेतवोभ्यामित्यादिरूपमन्यथा न स्यात् ।  
अथापि पदमात्रविषयं निपातनमाश्रीयते । तथाप्यत उत्त्वं  
विधीयमानमाकाराच्च स्यात् । तस्मात् संबुद्धार्थं निपातनमपि  
कर्तव्यम् । ङस्युत्त्वार्थो वक्तव्यः ॥

( उद्घोतः ) अन्यथा ङस्भावे ॥

( प्रदीपः ) उक्थशा इत्येतदपि संबुद्धार्थं निपातनं कर्तव्यम् ।  
उक्थशोभ्यामित्यादिसिद्धये ङसपि कर्तव्यः । ण्विनि हि नलोपे  
निपात्यमाने वृद्धौ सत्यामुत्वं न स्यादिति मन्त्रे दर्शनमस्ति ॥ ७१ ॥

( उद्घोतः ) इत्येतदपि संबुद्धार्थमिति । [पदान्ते ङसन्तत्वा-  
दिति भावः] ॥ ननु ङसेव मास्तु तत्राह—उक्थशोभ्यामिति ।  
यदि मन्त्रे इति । उक्थशासुशब्दस्येति भाष्याच्छेर्नलोप-  
पथावृद्धभावयोर्निपातनाच्छासेवोपधा हस्वनिपातनाद्वृद्धभावे उक्थ-  
शोभ्यामित्यस्य सिद्धेः । शासेर्विचि संबुद्धावुक्थशा इत्यस्यापि  
सिद्धेर्द्वयमपि न कार्यमित्यन्ये ॥ ७१ ॥

( ४९९ ककिप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ० २७ )

८४४ स्थः क च ॥ ३ । २ । ७७ ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

किमर्थं स्थः ककिपाबुच्येते । न, किप्सिद्धः ‘अ-  
न्येभ्योपि दृश्यते’ इति, कश्च ‘आतोऽनुपसर्गे कः’  
इति ? ॥

( उत्तरभाष्यम् )

न सिध्यति । विशेषविहितः कः सामान्यविहितं  
किपं बाधेत ॥

( अन्यथासिद्धिभाष्यम् )

वासरूपेण किबपि भविष्यति ॥

( अनन्यथासिद्धप्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि शंस्थः शंस्थाः ॥

( प्रदीपः ) स्थः क च ॥ ७७ ॥ शंस्था इति । \*ई-  
त्वमवकारादाविति वचनाद्भाष्यकारवचनप्रामाण्याद्वा प्रत्य-  
यलक्षणेनेत्वाभावः ॥ ७७ ॥

( उद्घोतः ) स्थः क च ॥ ७७ ॥ सप्तमीनिर्देशादेव तदादि-  
विधौ लब्धे पुनर्वकारादाविति वचनं मुख्यवकारादिप्रतिपत्त्यर्थमिति  
वदन्तं प्रत्याह—भाष्यकारवचनेति ॥ यद्वा पावान इति प्रयोगस्य  
वनिपा सिद्धिमाश्रित्य तत्प्रत्याख्यानादाह—भाष्येति ॥ अत एव  
\*ध्यायतेः संप्रसारणमिति वार्तिके ‘दधातेर्वाधीः’ इति भाष्ये  
किप्प्यपीत्वं कृतम् । वस्तुतो भाष्ये किपदेन सादृश्याद्विजुच्यते  
स्तीत्वाप्रसक्तिरेवात्रेति बोध्यम् ॥

लेखकप्रमादादेव ‘पदान्ते ङसि कृतेति संबुद्धौ दीर्घांप्राप्तेर्निपातनमेवा-  
वश्यकमिति भावः’ इति पाठः कल्पनीयः इति दाधिमथाः ॥

\* पदान्ते ङसन्तत्वेन संबुद्धौ ‘अत्वसन्तस्य चेत्यस्याप्रवृत्त्या उक्थशा इत्य-  
स्यासिद्धत्वादिति भावः । एतेन अस्यात्रानुपयोग इत्यादिका दाधिमथोक्तिः  
पराह्ता । ( र. ना. )

१ ङस्विधानस्येति शेषः । ( र. ना. )

२ अतोऽपि हेतोर्वर्थमेवेदं निपातनं क्रियत इत्यर्थः । ( र. ना. )

३ ‘शब्दस्य हि सामा’ ॥

४ अस्यात्रानुपयोगः किंतु अग्रे ‘उक्थशोभ्यामिति’ इति प्रतीकोत्तरमेवा-  
स्योपयोगः इति तत्रलोचं पाठो लेखकप्रमादाद्वा पतितः ॥ अत्र योग्यस्तु पाठो

( अन्यथासिद्धभाष्यम् )

उक्तमेतत्—\*शमिसंज्ञायां धातुग्रहणं कृओ हे-  
त्वादिषु टप्रतिषेधार्थम्\*इति । स यथैवाच् टं बा-  
धते । एवं कक्किपावपि बाधेत ॥ स्थः क च ॥ ७७ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये कक्किपाविति । आतोऽनुपसर्ग इति  
किप्चेति विहितौ । तत्र कस्य बाधे शंस्य इति न सिध्येत् । तदर्थं  
स्थः को विधेयः कस्य चाञ्च्बाधकत्वेन किवपवादत्वाभावात् ।  
परत्वेन किपो नित्यबाधवारणाय किवपि विधेय इति भावः । न  
चाचैव शंस्य इत्यस्य सिद्धत्वेन किपो बाधे फलाभावः । शंस्या-  
शब्दाच्छसि आतोलोपानापत्तेः । कृदतिङितिसूत्रस्य भाष्योक्तरीत्ये-  
कादेशस्य स्यानिवत्त्वात्पुरस्तादितिन्यायेन किप एव बाध इत्यस्यापि  
वक्तुं शक्यत्वात् । तस्माद्भाष्यसामान्यचिन्तयोभयोरपि स बाधकः  
स्यादिति तात्पर्यम् ॥ ७७ ॥

( ५०० णितिप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ० २८ )

८४५ सुप्यजातौ णिनिस्ता-  
च्छील्ये ॥ ३ । २ । ७८ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

सुपीति वर्तमाने पुनः सुग्रहणं किमर्थम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

अनुपसर्ग इत्येवं तदभूत् । इदं सुम्मात्रे यथा  
स्यात्—उदासारिण्यः प्रत्यासारिण्य इति ॥

( उद्घोतः ) सुप्यजातौ ॥ ७८ ॥ भाष्ये अनुपसर्ग इत्येव-  
मिति उपसर्गपीति ग्रहणात् ज्ञापकादित्यर्थः । एतेन सुवग्रहणमुप-  
सर्गनिवृत्त्यर्थमिति वृत्तिकारोक्तमपास्तम् ॥ ७८ ॥

( २०६२ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ णिन्विधौ साधुकारिण्युप-  
संख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) णिन्विधौ साधुकारिण्युपसंख्यानं  
कर्तव्यम् । साधुकारी साधुदायी ॥

( प्रदीपः ) सुप्य ॥ ७८ ॥ णिन्विधाविति । अता-  
च्छील्यार्थमिदम् । एवं ब्रह्मणि वद इति ॥ ७८ ॥

( २०६३ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ ब्रह्मणि वदः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ब्रह्मणि वद उपसंख्यानं कर्तव्यम् ।  
ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ सुप्यजा ॥ ७८ ॥

( ५०१ णितिप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ० २९ )

८४७ व्रते ॥ ३ । २ । ८० ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

किमुदाहरणम् ? ।

( प्रदीपः ) व्रते ॥ ८० ॥ उदाहरणे विचार्यमस्तीति  
प्रश्नः—किमिति ॥

( समाधानभाष्यम् )

अश्राद्धभोजी ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं योऽश्राद्धं भुङ्क्ते सोश्राद्धभोजी ? किं चा-  
तः ? । यदासावश्राद्धं न भुङ्क्ते तदास्य व्रतलोपः  
स्यात् । तद्यथा स्थण्डिलस्थायी यदा स्थण्डिले न  
तिष्ठति तदास्य व्रतलोपो भवति ॥

( प्रदीपः ) यदासाविति । ननु बुभुक्षाप्रयुक्तं श्राद्ध-  
श्राद्धभोजनं प्रसक्तम् । तत्राश्राद्धं भुङ्क्त इत्यनेन श्राद्धभोजनं  
निषिध्यते । यथा पञ्चपञ्चनखा भक्ष्या इति शशादिव्यति-  
रिक्तपञ्चनखभक्षणं निवर्त्यते । तत्र कथं व्रतलोपः स्यात् ।  
स्थायीत्यत्र तु स्थानविपरीतगमनाचरणे युक्तो व्रतलोपः । उ-  
च्यते—‘अश्राद्धं मया भोक्तव्यम्’ इति येन संकल्पः कृतः, स  
यदा बुभुक्षायां सत्यां यस्मिन्नहन्त्यश्राद्धं न भुङ्क्ते तदा तस्य  
स्यादेव व्रतलोपः ॥

( उद्घोतः ) व्रते ॥ ८० ॥ स्थायीत्यत्रेति । नन्वत्र कथं  
णिनिः सुप उपपदस्याभावात् इति चेत् । न, उत्तरसूत्राद्बुद्धलग्न-  
मपक्व्य केवलादपि विधानेनाक्षतेः । उत्थित एवाय भविष्यामि न  
तुपवेक्ष्यामीत्येवंसंकरूपं व्रतमेतत् । ‘तिष्ठन्मूत्रयते’ इत्यादिवदु-  
त्थाने स्या धातुरत्रेति परे ॥ ग्रह्यादि णिन्यन्तस्यैव वा प्रकरणाद्व्रत-  
परत्वम् ॥ परिसंख्यायां पूर्वपक्षः, विधिमाश्रित्य परिहारः ॥ यस्मि-  
न्नहनीति । एकादश्यादौ ॥ भाष्ये तद्यथा स्थायीति । स्थायी-  
त्यत्रोपपत्तिरुक्ता ॥ आस्थायीति पदमन्ये ॥ स्थण्डिलस्थायीति  
पाठ इति केचित् ॥ तदुभयमपि भाष्यकैयटविरुद्धम् ॥

( पर्युदासेन समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि णिन्यन्तेन समासो भविष्यति । न  
श्राद्धभोज्यश्राद्धभोजीति ॥

( प्रदीपः ) न श्राद्धभोजीति । सार्थं ॥ क.य-  
वाक्यामदम्, न तु लौकिकम् । न हि केवलः श्राद्धभाजेशब्दो  
व्रतविषय उपपद्यते । अश्राद्धभोजिशब्दस्यैव व्रतविषयत्वात् ॥

( उद्घोतः ) व्रतविषय इति । न हि तादृशव्रतसंभवः ।  
व्रते णिनेः प्रकृतत्वाच्च । प्रायुक्तैः संकरूपस्त्वप्रसिद्ध एवमेव भावः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैवं शक्यम् । स्वरे हि दोषः स्यात् । अश्राद्धभो-  
जीत्येवं स्वरेः प्रसज्येत । अश्राद्धभोजीत्येवं चेष्ट्यते ॥

( प्रदीपः ) एवं स्वर इति । अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर-  
त्वेनाद्युदात्तं पदं स्यात् । कृदुत्तरपदप्रकृतस्वरत्वेनान्तोदात्तत्वं

चेद्यत इत्यर्थः ॥ ननु च णिनीत्यनेन पूर्वपदाद्युदात्तत्वेनैव भाव्यमिति नास्ति खरे भेदः ॥ अत्राहुः—यदा णिनीत्यत्र संज्ञायामित्यनुवर्तते, तदाऽसंज्ञायामस्ति खरे भेदः । अथ नानुवर्तते, खरभेदाभावः ॥

( उद्घोतः ) अथ नानुवर्तत इति । उपमानं शब्दार्थेति सूत्रस्य षष्ठभाष्येऽयमपि पक्षो दृश्यत इति भावः ॥ अत्र पक्षे खर-भेदोक्तिरेकदेश्युक्तिरिति बोध्यम् । षष्ठभाष्यं त्वेकदेश्युक्तिः ॥

( प्रतिसज्यप्रतिषेधाङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्हि नञ एवायं भुजिप्रतिषेधवाचिनः श्राद्धशब्देनासमर्थसमासः—न भोजी श्राद्धस्येति ॥

( प्रदीपः ) भोजीति । एतदपि भुजिना संबन्धं नञः प्रदर्शयितुं प्रक्रियावाक्यमुपात्तम् । न हि केवलस्य भोजीशब्दस्य प्रयोगः । सुप्युपपदे प्रत्ययविधानात् । तदेतदुक्तं भवति—न श्राद्धं भुङ्क्त इति वाक्यं कृत्वा नञः श्राद्धशब्देनासमर्थसमासं विधाय श्राद्धशब्द उपपदे णिनिः कर्तव्यः । णिनीत्यत्र संज्ञानु-वृत्तौ सत्यामत्र कृत्स्नः ॥ ८० ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये भुजिप्रतिषेधवाचिन इति । तदर्थ-बोधकस्य नञ इत्यर्थः ॥ सुप्युपपदे इति । बहुलग्रहणं तु कनि-दिष्टसिद्धये इति भावः ॥ ८० ॥

( प्रसज्यप्रतिषेधे गौरवभाष्यम् )

स तर्ह्यसमर्थसमासो वक्तव्यः ॥

( इष्टापत्तिभाष्यम् )

यद्यपि वक्तव्यः । अथ वै तर्हि बहूनि प्रयोजनानि ॥ कानि ? असूर्यपश्यानि मुखानि । अपुनर्गैयाः श्लो-काः । अश्राद्धभोजी ब्राह्मणः । “सुडैनपुंसकस्येति” ॥ त्रते ॥ ८० ॥

( ५०२ खशणितिप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । १ आ. ३० )

८५० आत्ममाने खश्च ॥ ३ । २ । ८३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

आत्मग्रहणं किमर्थम् ?

( समाधानभाष्यम् )

परमाने मा भूदिति ॥

( प्रदीपः ) आत्ममाने ॥ ८३ ॥ आत्मशब्दः प्रत्यात्म-ध्वनः परव्यावृत्तिं करोति ॥

( समाधानानुपपत्तिभाष्यम् )

क्रियमाणेपि वै आत्मग्रहणे परमाने प्राप्नोति ॥ किं कारणम् ? । आत्मन इतीयं कर्तरि षष्ठी । मान इत्यकारो भावे । स यद्येवात्मानं मन्यतेऽथापि पर-म् । आत्मन एवासौ मानो भवति ।

( समाधानसाधकभाष्यम् )

नैष दोषः । आत्मन इतीयं कर्मणि षष्ठी । कथम् ? । “कर्तृकर्मणोः कृति” इति ॥

( समाधानबाधकाक्षेपभाष्यम् )

ननु च कर्तर्यपि वै तेनैव विधीयते । तत्र कुत एतत्—कर्मणि भविष्यति, न पुनः कर्तरीति ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

एवं तर्हि,

( २०६४ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

[ ॥ \* ॥ कर्मकर्तरि च ॥ \* ॥ ]

( भाष्यम् ) कर्मकर्तरि खश्चेति वक्तव्यम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । आत्मन इतीयं कर्मणि षष्ठी । क-थम् ? । “कर्तृकर्मणोः कृति” इति ॥

( समाधानबाधकस्मारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं कर्तर्यपि वै तेनैव विधीयते । तत्र कुत एतत् । कर्मणि भविष्यति न पुनः कर्तरीति ? ॥

( प्रत्याख्यानसाधकभाष्यम् )

एवं तर्हि आत्मग्रहणसामर्थ्यात्कर्मणि विज्ञास्यते ॥

( प्रदीपः ) कर्मकर्तरीति । यदा प्रत्ययार्थः कर्ता आ-त्मानमेव पाण्डित्यादियुक्तं मन्यते तदासौ कर्मकर्ता भवति तत्र यदि कर्तरि षष्ठी स्यात्तदात्मग्रहणमनर्थकं स्यात् । कर्तृसंबन्धा-व्यभिवारान्मननक्रियायाः ॥

( उद्घोतः ) आत्ममाने ॥ ८३ ॥ पूर्व कर्मण इदानीं कर्तृ-त्वाभावेन युगपदेकस्य कर्मकर्तृत्वविरोधेन चेदमसंगतमत आह—यदेति । केवलविशिष्टभेदेन शब्दभेदेन वा न कर्तृकर्मविरोध इति भावः ॥ आत्मग्रहणमनर्थकमिति । यद्यप्युभयप्राप्ताविति नियमा-दपि न कर्तरीति वक्तुं शक्यम् । तथापि उभयोः प्रयोगाभावाच्च तदप्राप्तिः ॥ किं च तेन षष्ठ्यां समासाप्राप्तिः । कर्मणि चेति निषे-धादित्याशयमाहुः ॥ तद्वक्ष्यति भाष्यकृत्—आत्मग्रहणसाम-र्थ्यात्कर्मणीति ॥

( प्रत्याख्यानबाधकभाष्यम् )

एवमपि कर्मकर्तृग्रहणं कर्तव्यम् । कर्मापदिष्टो यद्यथा स्यात्, इयन्माभूदिति ॥

( प्रदीपः ) कर्मापदिष्ट इति । लान्तस्य कर्ता कर्म-वदित्यनपेक्ष्योक्तं इयनेव सिद्धेर्वक्ष्यमाणत्वात् । यकः सिद्धान्त-लाभावादुपेक्षणीयत्वात् ॥

१ अथवेति तथाप्यर्थे एतर्हि, इदानीम् । असमर्थसमासकरणदशायामिति भावत् । ( र. ना. )

२ असमर्थसमासं सूत्रकारोपि करोतीति न तत्राप्राप्तापेक्षेत्याह—‘सुडैन-

पुंसकस्येतीति ॥ वार्तिककारोपि ‘लिङ्गानां च न सर्वभाक्’ इत्यादावङ्गी-करोतीति भावः ॥

( उद्द्योतः ) लान्तस्येति । इदमुपलक्षणं कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियत्वस्यापि ॥ वस्तुतः कर्मकर्तृग्रहणमिति भाष्यस्य कर्मवद्भावो वक्तव्य इत्यर्थः । यथास्यापि कर्मकर्तृत्वेन ग्रहणं व्यवहारो भवति तथा वक्तव्यमित्यक्षरार्थः । इयनैव तत्फलसिद्ध्या तत्प्रत्याख्यातम् ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः यको वा इयनो वा ॥

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

यकि सत्यन्तोदात्तत्वेन भवितव्यम् । इयनि स-  
प्रायुदात्तत्वेन ॥

( विशेषाभावभाष्यम् )

इयन्यपि सत्यन्तोदात्तत्वेनैव भवितव्यम् । क-  
थम् ? खशस्वरः इयन्स्वरं बाधियते ॥

( विशेषसाधकभाष्यम् )

सतिशिष्टत्वात् इयन्स्वरः प्राप्नोति ॥

( विशेषबाधकभाष्यम् )

आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति सतिशिष्टोऽपि विकरण-  
स्वरः सार्वधातुकस्वरं न बाधत इति । यदयं तासेः  
परस्य लसार्वधातुकस्यानुदात्तत्वं शास्ति ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये यदयं तासेरिति । लावस्यायां स्यता-  
स्योरुपत्तौ तु वाचनिकमेवेदं बोध्यम् ॥ ८३ ॥

( ज्ञापनस्यविशेषविषयत्वभाष्यम् )

लसार्वधातुक पवैतज् ज्ञापकं स्यात् ॥

( ज्ञापकस्यसामान्यविषयत्वभाष्यम् )

नेत्याह । अविशेषेण ज्ञापकम् ॥ आत्ममाने ॥ ८३ ॥

( प्रदीपः ) अविशेषेणेति । सार्वधातुकमात्र इत्यर्थः ॥ ८३ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरण-  
महाभाष्ये तृतीयस्याध्यायस्य द्वितीये पादे  
प्रथममाहिकम् ॥

इति श्रीमदुपाध्यायजैयटपुत्रकैयटविरचिते भाष्यप्रदीपे  
तृतीयस्याध्यायस्य द्वितीये पादे प्रथममाहिकम् ॥

इति कालोपनामकशिवभट्टसुतसतीगर्भजनार्णवभट्टविरचिते  
भाष्यप्रदीपोद्द्योते तृतीयस्य द्वितीये पादे प्रथममाहिकम् ॥

( ५०३ अधिकारसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. १ )

८५१ भूते ॥ ३ । २ । ८४ ॥

( भूतपदार्थविशेष्यभूतपदार्थनिर्णयाधिकरणम् )

( भाष्यभाष्यम् )

भूत इत्युच्यते । कस्मिन् भूते ? ।

( प्रदीपः ) भूते ॥ ८४ ॥ यस्य स्वसत्ता व्यपवृत्ता तत्सर्वं  
भूतशब्देनोच्यते । तत्र विशेषज्ञानाय पृच्छति—कस्मिन्निति ॥

( उद्द्योतः ) भूते ॥ ८४ ॥ यस्य स्वसत्ता व्यपवृत्तेति ।  
अतीतेत्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

काले ।

( प्रदीपः ) इतर आह—काल इति । तस्यैव भूतादि-  
शब्दाच्च्यत्वेन सुप्रसिद्धत्वादिति भावः ॥ अत्र केचिन्नित्यं कालं  
पदार्थानामनुज्ञाप्रतिबन्धाभ्यां स्थित्युत्पत्तिप्रलयहेतुमाचक्षते ।  
तत्र संसर्गिसूर्यादिक्रियाभेदाश्रयो मासादिभेदव्यवहारो भूतादि-  
व्यपदेशश्च ॥ अन्ये तु प्रसिद्धपरिमाणक्रिया सूर्यादिकर्तृका  
अप्रसिद्धपरिमाणायाः क्रियायाः परिच्छेदयोपात्ता अहरादि-  
व्यपदेशया काल इत्याहुः ॥

( उद्द्योतः ) तस्यैवेति । अन्यत्र तत्कालवृत्तित्वेन भूतशब्द-  
प्रयोगो गौण इति भावः ॥ एतदाशयानभिज्ञस्य न वै इत्यादिग्रन्थ  
इति तात्पर्यम् ॥ अनुज्ञा प्रतिबन्धार्थाभ्यामिति तद्रूपाभ्यामर्था-  
भ्यामित्यर्थः । तत्रानुज्ञया स्थित्युत्पत्तिहेतुः । प्रतिबन्धेन प्रलयहेतुः ।  
ईश्वराधिष्ठितत्वेन च तदुपपत्तिः ॥ ननु नित्ये काले तत्सत्ताया  
व्यपवृत्तत्वाभावात्कथं भूतत्वव्यवहार इत्यत आह—तत्र संस-  
र्गोति । तत्क्रियया उपाधिभूतया यो भेद उपधेयैस्स तत्कृतो मासादि-  
व्यवहार इत्यर्थः ॥ अन्ये त्विति । तथा च तस्या अनित्यत्वात्  
सिद्ध एव भूतादिव्यवहार इत्यर्थः । आद्ये पक्षे क्षणोपाधेर्निर्वक्तुम-  
शक्यत्वम् । उत्तरदेशसंयोगावच्छिन्नक्रियेति चेत् । तस्या विशेष्य-  
विशेषणसंबन्धरूपत्वे त्रयाणामपि स्थिरत्वात्क्षणव्यवहारनियामक-  
त्वाभावः । अतिरिक्तात्वे सिद्धोऽतिरिक्तः क्षणपदार्थ इति तत्प्रचयैरेव  
कलामुहूर्तादिव्यवहारोपपत्तौ किमखण्डेन तेन । स्पष्टं चेदं कालाः  
परिमाणेनेत्यत्र भाष्ये इति निरूपितं तत्रैव ॥ ईश्वरस्यापि काल-  
नियामकत्वेन कालत्वव्यवहारः श्रुत्यादिष्विति बोध्यम् ॥ अन्ये त्विति  
मतेऽपि पक्ष दोषोऽस्यैव । किं च प्रसिद्धपरिमाणेत्युक्तिरसंगता,  
तस्या अपि क्रियान्तरस्यैव परिच्छेदकत्वेऽनवस्थापत्तिरिति दिक् ॥

( भाष्यम् ) न वै कालाधिकारोस्ति ॥

( प्रदीपः ) न वै कालाधिकार इति । ततश्च सामा-  
न्यशब्दस्य विशेषेऽवस्थानं न लभ्यत इत्यर्थः ॥

( भाष्यम् ) एवं तर्हि धातोरिति वर्तते । धातौ  
भूते ॥

( भाष्यम् ) धातुर्वै शब्दः । न च शब्दस्य भूत-  
भविष्यद्वर्तमानतायाः संभवोस्ति ॥

( प्रदीपः ) न च शब्दस्येति । शब्दस्यार्थे गुणभावा-  
द्गुणस्य विशेषणसंबन्धायोग्यत्वाजित्यत्वाद्वा शब्दस्यानित्यत्वेऽपि

१ अनुज्ञा स्थूलरूपतया सर्वसंपादने तेन स्थित्युत्पत्तिहेतुः । प्रतिबन्धो  
निरोधः स्वकारणे सूक्ष्मरूपतयाऽवस्थानं तत्संपादनेन प्रलयहेतुः । न तु वस्तुतो  
वस्तुगत्या जन्मप्रलयौ स इति भावः । इदं च सत्कार्यवादाभिप्रायेण । ( र. ना. )

२ 'बन्धार्थाभ्याम्' इति नगेशोपलब्धपाठः ॥

३ उपधेयस्य, कालस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

४ शब्दस्येति नित्यत्वादिति पूर्वेणान्वेति । ( र. ना. )

भूतात्प्रत्ययविधानासंभवादुच्चरितलक्षणभूतत्वाश्रये च विशेष-  
णवैयर्थ्यादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) शब्दस्येति । स्वाभिधेयप्रतिपादने व्यग्रतया  
विशेषणसंबन्धायोग्यत्वादिति भावः । तदाह—गुणस्येति ॥ नित्य-  
त्वाद्देश्यत्वेन भूतादिव्यवहारायोग्यत्वं दर्शयति ॥ वैयर्थ्यादिति ।  
अनुच्चारितात्प्रत्ययविधेरसंभवादिति भावः ॥ न च शब्दस्येति  
भाष्ये तस्य नित्यत्वेन भूतादिविशेष्यतायाः संभवो नेत्यर्थः ॥  
अनित्यत्वपक्षेऽपि यथा वर्तमानशब्दस्य प्रकृतित्वसंभवे । न तथा  
भूतभविष्यतोः शब्दयोः प्रकृतित्वसंभव इति योजना बोध्या ॥

( भाष्यम् ) शब्देऽसंभवादर्थे कार्यं विज्ञास्यते ॥  
कः पुनर्धात्वर्थः ? । क्रिया । क्रियायां भूतायाम् ॥

( उद्घोतः ) क्रियाया भूतायामिति । तस्यां भूतत्वं च  
वर्तमानध्वंसप्रतियोगिकालवृत्तित्वम् ॥

( आक्षेपवार्तिकशेषभाष्यम् )

यद्येवं ।

( २०६५ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ निष्ठायामितरेतराश्रयत्वाद-  
प्रसिद्धिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निष्ठायामितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धिः  
स्यात् ॥

का इतरेतराश्रयता ? ।

भूतकालेनायं शब्देन निर्देशः क्रियते । निर्देशो-  
त्तरकालं च भूतकालता । तदेतदितरेतराश्रयं भ-  
वति ॥ इतरेतराश्रयाणि कार्याणि च न प्रकरन्ते ॥

( प्रदीपः ) भूतकालेनेति । भवतेर्निष्ठाप्रत्ययो भूत-  
क्रियावाचिनो विधातव्यः । न च भूताधिकारमन्तरेण निष्ठा-  
प्रत्ययस्य भूतक्रियाविषयत्वं लभ्यते । न च भूतक्रियाविषय-  
निष्ठाविधानमन्तरेण भूताधिकार उपपद्यते । ततश्चाधिकारा-  
श्रयो निष्ठाप्रत्ययस्तदाश्रयश्चाधिकार इतीतरेतराश्रयत्वमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भूतकालेनेति । भूतकालक्रियावाचकेनेत्यर्थः ॥

( २०६६ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अव्ययनिर्देशात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अव्ययवता शब्देन निर्देशः करि-  
ष्यते । अवर्तमाने अभविष्यतीति ।

( उद्घोतः ) अव्ययनिर्देशादिति वार्तिकेऽव्ययपदमशेषाद्य-  
जन्तम्, न्यासान्तरपरं चेलाशयेनाह—अव्ययवतेति ॥

( अनुयोगभाष्यम् )

स तर्हि अव्ययवता शब्देन निर्देशः कर्तव्यः ? ।

१ ननु याधेरुपाधिर्भवति विशेषणस्य च विशेषणमिति न्यायादपि विशेषणसं-  
बन्धायोग्यत्वं बोध्यम् । ( र. ना. )

२ नित्यार्थक इत्यर्थः । संबद्धो वाच्यवाचकभावरूपसंबन्धवान् इत्यर्थः । ( र. ना. )

३ ननु भूतेशब्दस्य अव्ययस्य नित्यार्थे साधुत्वबोधकशास्त्राभावेन कथं  
तत्सिद्धार्थविषयकशब्दबोध इत्याशङ्क्याह साधुत्वज्ञानमित्यादि । ( र. ना. )

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यः । अव्ययमेष भूतेशब्दः । नैषा भवते-  
र्निष्ठा ॥

कथमव्ययत्वम् ? ।

उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाता भव-  
न्तीति निपातसंज्ञा । निपातोऽव्ययमित्यव्ययसंज्ञा ॥

( उद्घोतः ) अव्ययमेष इति । अव्ययस्य भूतेशब्दस्य  
निर्देशादिति वार्तिकार्थ इति भावः ॥

( निष्ठापक्षेपि समाधानभाष्यम् )

अथापि भवतेर्निष्ठा । एवमव्ययमेव । कथम् ? ।  
नव्येतीत्यव्ययमिति ।

क पुनर्न व्येति ? ।

एतौ कालविशेषौ भविष्यद्वर्तमानौ । स्वभावतो  
भूते एव वर्तते ॥

( प्रदीपः ) एवमपीति । न शास्त्रीयमव्ययत्वमभिप्रेतं,  
किं तर्हि नित्यत्वमित्यर्थः । ततो नित्यो भूतशब्दोऽतिक्रान्तार्थ-  
वाची, नित्येनार्थेन भविष्यद्वर्तमानप्रतिद्वन्द्वना संबद्धोधिक्रियत  
इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) नित्येनार्थेनेति । साधुत्वज्ञानं न शब्दे कार-  
णम्, नाप्यसाधुत्वज्ञानं प्रतिबन्धकमित्यर्थः । परमतेऽपि शिष्टो-  
च्चरितत्वेन साधुत्वानुमानाद्बोधः । शास्त्रजं तत्प्रेत्यक्षं तु पश्चाद्भ-  
विष्यतीत्यदोषः । यदि तु शास्त्रेणैव निष्पाद्यः स्यात्स्यादयं दोष  
इति भावः ॥ भाष्ये—न व्येतीति । विविधमर्थं न प्राप्नोतीत्यक्षरार्थः ॥  
शास्त्राभावेऽपि तदर्थक एवायमिति भावः ॥ तदुक्तं कैयटेन—नि-  
त्यत्वमित्यर्थ इति ॥ क पुनर्नव्येतीति । केति विषयसप्तमी ।  
कस्मिन्विषये विविधमर्थं न प्राप्नोति=किं रूपं विविधमर्थं न प्राप्नो-  
तीत्यर्थः ॥

तत्रोत्तरमाह—भाष्ये—एतौ कालविशेषाविति ॥

( वार्तिकावतरणभाष्यम् )

यदि तर्हि न व्येतीत्यव्ययम्—

( २०६७ अधिकारवैयर्थ्याक्षेपवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ न वा तद्विधानस्यान्यत्राभावात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा भूताधिकारेणार्थः । किं कार-  
णम् ? । तद्विधानस्यान्यत्राभावात् । येऽपि ह्येते  
इत उत्तरं प्रत्ययाः शिष्यन्ते तेऽप्येतौ कालविशेषौ  
न वियन्ति भविष्यद्वर्तमानौ । स्वभावतो भूत एव  
वर्तन्ते ॥

( उद्घोतः ) तद्विधानस्येति । तस्मिन्विधानं यस्येत्यर्थः ॥

४ साधुत्वप्रत्यक्षमित्यर्थः । ( र. ना. )

५ 'एतेऽप्येतौ' ॥

६ 'वर्तमानभविष्यन्तौ' ॥

७ 'स्वभावत एव ते भूत' ।



भूतशब्दवत्तेपि स्वभावत एव भूतमात्रवाचका भवन्ति किमधिकारे-  
णेति भावः ॥

( समाधानवार्तिकवतरणभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( २०६८ समाधानवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

[ ॥ \* ॥ प्रयोजनं कुमारघाती शीर्षघाती

आखुहा बिडालः सुत्वानः सुन्वन्तः

सुषुपुषोऽनेहाः अग्निमादधानस्य ॥\*॥ ]

( भाष्यम् ) भूताधिकारस्य प्रयोजनम् । कुमार-  
घाती, शीर्षघाती, आखुहा बिडालः, सुत्वानः सु-  
न्वन्तः सुषुपुषोऽनेहाः अग्निमादधानस्य [ भूतकाल-  
निवृत्त्यर्थं भविष्यद्वर्तमानकालसंप्रत्ययार्थम् ? ] ॥

कुमारघाती शीर्षघातीति भविष्यद्वर्तमानार्थो  
भूतनिवृत्त्यर्थः ॥

आखुहा बिडाल इति भविष्यद्वर्तमानार्थो भूत-  
निवृत्त्यर्थः । इतरथा हि ब्रह्मादिनियमस्त्रिषु कालेषु  
निवर्तकः स्यात् ॥

सुत्वानः सुन्वन्तः । यज्ञसंयोगे द्वुनिपस्त्रिषु का-  
लेषु शतापवादो मा भूत् ॥

सुषुपुषः । नजिङ्ग सर्वकालापवादो मा भूत् ॥

अनेहा इति वर्तमानकाल एव । अन्यत्र अना-  
दन्ता ॥

आदधानस्य कानचश्चानश् ताच्छील्यादिषु सर्व-  
कालापवादो मा भूत् । अग्निमादधानस्येत्येवान्यत्र ॥  
भूते ॥ ८४ ॥

( प्रदीपः ) कुमारघातीति । यदीह भूताधिकारो न  
क्रियते तदा कर्मणि हन इति गिनिः सामान्येन विधीयते ।  
कुमारशीर्षयोर्गिनिरित्यत्र गिनिस्तथैव कालसामान्ये ।  
पुनर्विधानं तु वासरूपनिवृत्त्यर्थं स्यात् । ततश्च विशेषविहितः  
कुमारशीर्षयोर्गिनिरित्यं भूतेऽपि प्रसज्येत । सति तु  
भूताधिकारे तत्कौण्डिन्यायेन कुमारशीर्षयोर्गिनेन  
भूते गिनिं बाधित्वा भविष्यद्वर्तमानयोरेव गिनिर्विधीयते ॥

आखुहेति । सति भूताधिकारे ब्रह्मादिष्वेव हन्तेभूते  
किञ्च भवतीति नियमेन भूत एवोपपदान्तरे किञ्चिद्वर्त्यते न तु  
कालान्तर इत्याखुहेति भविष्यद्वर्तमानयोः प्रयोग उपपन्नो  
भवति ॥

सुन्वन्त इति । सुजो यज्ञसंयोग इति शतृप्रत्ययः ।  
तत्र यदि भूताधिकारो वर्तमानाधिकारश्च न क्रियते तदा यज्ञ-

संयोगे विशेषे विधीयमानः शता कालत्रयेऽपि द्वुनिपं बाधेत ।  
ततश्च भूते यज्ञसंयोगे सुत्वेति न स्यात् । अथ वासरूप इति  
द्वुनिष् विधीयते तथापि सुत्वा सुन्वन्निति कालभेदो न स्यात् ।  
सति लधिकारे कालभेदेन तयोरवस्थानं भवति ॥

सुषुपुष इति । असति भूतवर्तमानाधिकारे विशेषविहि-  
तेन नजिङ्ग लिटो बाधनं स्यात् । ताच्छीलिकेषु वासरूपवि-  
धिर्नास्ति । सति लधिकारे भूते लिङ्, वर्तमाने नजिङ्गिति बा-  
ध्यबाधकभावाभावः ॥

अनेहा इति । नञ्याहन एह चेति असिप्रत्ययोऽस-  
त्यधिकारे सर्वस्मिन्काले तृचं बाधेत । सति लधिकारे वर्तमान-  
काल एवौणादिकस्तृचं बाधते ॥

चानशिति । असत्यधिकारे कानचश्चानश् बाधकः  
स्यात् । कः पुनरनयोर्भेदः यावताऽभ्यस्तानामादिरिति  
लसार्वाधातुके विधीयते न सार्वाधातुकमात्रे । एवं तर्ह्युपग्रह-  
कृतो भेदः । कानजात्मनेपदत्वात्कर्त्रभिप्राय एव भवति ।  
चानश् पुनरविशेषेण । सति त्वधिकारे भूते कानञ् वर्तमाने  
चानशिति बाध्यबाधकभावाभावः ॥ ८४ ॥

( उद्ध्योतः ) सामान्येनेति । कालसामान्येनेत्यर्थः । सा-  
मान्ये इति सप्तम्यन्तपाठस्तु युक्त एव । ननु वृत्तौ कर्मणीनि सूत्रे  
कुत्सितग्रहणं कृतमिति अकुत्सितार्थं तदिति चेन्न । कुत्सितग्रहणस्य  
भाष्येऽभावात् । शब्दशक्तिस्वभावसिद्धं चेत्तत्रापि तां भाष्याशयः ॥  
ननु तेनैव सिद्धेः कुमारेल्यादि व्यर्थमिति चेत्तत्राह—पुनर्विधानं  
स्त्विति । कुमारहन्तेत्यादि व्यावृत्तये इत्यर्थः ॥ विशेषविहितः  
उपपदविशेषे विहितः ॥ इत्ययं भूतेऽपीति । इत्ययमपि भूते प्रस-  
ज्येत्येत्थं नवयः ॥ तत्कौण्डिन्येति । कुमारशीर्षयोर्विशेषविहितो  
गिनिः कर्मणि हन इत्येतं बाधते तत्र तेनापि गिनेरेव विधानेन  
गिनेर्बाधस्य वक्तुमशक्यतया तत्सहचरितभूतकालो बाध्यते इति  
वर्तमानभविष्यतोरेव कुमारेल्यादि गिनिर्भवति । एवं च तद्बाधनेन  
चरितार्थं शास्त्रमिति वासरूपन्यायबाधे मानाभावेन कुमारहन्ते-  
त्यापि सिध्यतीति भावः ॥ कुमारघातीत्यादौ विधीयमानः कुमार-  
ेल्यादिगिनिर्भविष्यद्वर्तमानयोर्थथास्यात्, तस्य भूतार्थनिवृत्तिश्च  
यथा स्यादिति भूताधिकार इति भाष्याक्षरार्थः ।

इदं चिन्त्यम् । तत्कौण्डिन्यायस्य विधेयविषयत्वात् । तस्मा-  
द्भूताधिकारसामर्थ्यात्कर्मणि हन इत्यत्रायमेव गिनिर्भूत इति निय-  
मादन्यस्य गिनेर्भूते निवृत्तिरिति भाष्यार्थः । यथास्य गिनेरधि-  
काराभावेऽपि स्वभावत एव भूते वृत्तिस्तथा कुमारेलस्य स्वभावत  
एव भूते वृत्तिर्भविष्यतीत्यस्यैव प्रयोजनान्तरमाह—भाष्ये आखु-  
हेति ।

यज्ञसंयोग इति । यज्ञसंयोगविषये शता द्वुनिपस्त्रिषु कालेषु

१ अयं कोष्ठकान्तर्गतो वार्तिकस्त्वस्माभिः कस्मिन्नपि पुस्तकेऽनुपलब्धोऽपि  
व्याख्याभाष्यानुसारेणास्माभिः कल्पित इति क्षन्तव्यम् ॥

२ कोष्ठकान्तर्गतः पाठो नैव बहुषु पुस्तकेषु ॥

३ भविष्यत्सहितो वर्तमानार्थ इत्यर्थः । ( र. ना. )

४ स्वपेः कर्त्तुं शक्ति रूपम् । नजिङ्गप्रत्ययो वर्तमाने समक् ( र. ना. )

५ वृत्ताविषय भाष्येऽपि 'कर्मणि कुत्सिते' इति वार्तिकस्य समुपलभ्यमान-  
त्वाच्चिन्त्येयं समाधिः ॥ दाधिमथास्तु 'कर्मणीनि' इति सूत्रभाष्ये कुत्सित-  
ग्रहणवार्तिकसत्त्वेऽपि 'कुमारशीर्षयोः—' इत्यत्र तत्संबन्धस्याशक्यत्वाच्छङ्का-  
पीयं न संभवतीति वदन्ति ॥

अपवादो मा भूदित्यन्वयः । प्रसङ्गाद्वर्तमानाधिकारस्यापि प्रयोजन-  
प्रदर्शनम् । वार्तिके भूताधिकारस्येत्युपलक्षणम् । तत्र ङुनिप् भू-  
ताधिकारे, शता वर्तमानाधिकारे । ङुनिप् सुयजोङ्घनिविति  
विहितः ॥

कालभेदो न स्यादिति । वासरूपेण वर्तमानेऽपि ङुनिप्  
प्राप्नोतीति भावः ॥

नजिङेति । स्वपितृघोर्नजिङ् । अयं वर्तमानाधिकारे, लिट्  
भूताधिकारे ॥ लिट्=‘छन्दसि लिट्’ ‘लिटः कानञ्वा’ ‘कसु-  
श्चेत्यस्य ॥ भाष्ये सर्वकालापवाद इत्यस्य सर्वकालद्योतकप्रत्यया-  
पवाद इत्यर्थः ॥ भूतकाललियोपीति यावत् ॥

असत्यधिकारे इति । वर्तमाने इत्यधिकारेऽसतीत्यर्थः ॥ सति  
त्विति । वर्तमान इत्यधिकारे सति । उणादय इत्यस्य तदधिकार-  
स्थत्वात् असिर्वर्तमानकाल इति भावः । रूडिशब्दत्वादेवोणादिषु  
वासरूपविधिर्नास्तीति तात्पर्यम् । एतत्प्रयोजनोक्तिरेकदेशिनः ।  
उणादीनामव्युत्पन्नत्वेऽसंभवात् । ण्वल्लुत्चोरपि वर्तमानकाल एव  
साधुत्वस्य तत्सत्रे भाष्ये उक्तत्वेनान्यत्रानाहन्तेत्यस्यासंगतेश्च ॥

असत्यधिकार इति । भूतवर्तमानयोरधिकारयोरसतीत्यर्थः ॥  
कानच इति । कसोरप्युपलक्षणमिदम् । यद्वा कानजुपलक्षितस्य  
लिट् इत्यर्थः ॥ लसार्धधातुकेति । तत्र चानशः सार्धधातुकत्वेऽपि  
लादेशत्वाभावः । कानचो लादेशत्वेऽप्यार्धधातुकत्वमित्युभयत्रापि  
अन्तोदात्तत्वमेवेति भावः ॥ कर्त्रभिप्राये एवेति । अतस्मिन्  
कसुरिति भावः । भाष्ये चानश ताच्छील्यादिषु सर्वकालापवादो  
माभूदित्युत्तरमग्निमादधानस्येवेव पाठः । सुषुपुषोऽनेहाऽग्नि-  
मित्यपपाठः । आदधानस्येवेवान्यत्रेति । भूतार्थातिरिक्तवर्तमान-  
त्वविवक्षायां अकर्त्रभिप्राये कर्त्रभिप्राये च आदधानस्येवेव । भूते  
तु कर्त्रभिप्राये एव तथा, अकर्त्रभिप्राये तु कसुरेवेत्यर्थः ॥ ८४ ॥

( ५०४ किप्प्रत्ययनियमसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. २ )

८५४ ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु किप् ॥ ३।२।८७ ॥

( भाक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं ब्रह्मादिषु हन्तेः क्तिव्विधीयते, न “कि-  
पैवान्येभ्योपि दृश्यते” इत्येव सिद्धम् ? ।

( २०६९ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ ब्रह्मादिषु हन्तेः क्तिव्वचनं निय-  
मार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नियमार्थोयमारम्भः ॥ [ ब्रह्मादिष्वेव  
हन्तेर्भूते क्तिव्वथा स्यादिति ]

किमविशेषेण ? ।

१ वार्तिकपदेन वार्तिकेऽपि तथा पाठ आसीदिति स्पष्टमेव प्रतीयते । यद्वा  
वार्तिकपदं वार्तिकव्याख्याभूतभाष्येत्युपलक्षणम् ॥

२ एवं पाठेन “पाणिनिना ‘आतो मनिङ्कनिङ्चनिपश्च । किप् च ।  
अन्येभ्योऽपि दृश्यते” इत्येवमेव सूत्रक्रमः आश्रितः । ननु ‘अन्येभ्योपि  
दृश्यते । किप् च’ इति” इति नागेशभट्टपर्यालोचिताष्टाध्यायी पाठः ॥ दाधि-

( प्रदीपः ) ब्रह्मभ्रूण ॥ ८७ ॥ किमविशेषेणेति ।  
किं धातूपदकालप्रत्ययाश्चत्वारोपि नियम्यन्ते, अथ किंचिदेव  
नियम्यत इति प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) ब्रह्मभ्रूण ॥ ८७ ॥ किं धातूपदेति । भाष्ये  
नियमार्थोयमारम्भः । किमविशेषेणेत्येव पाठः । ब्रह्मादिष्वेव-  
त्यादनियमाकारलेखस्तु लेखकप्रमादात् । अन्यथा तदाकारप्रदर्श-  
नेनैव नियमान्तरतिरस्कारात्पुनः प्रश्नानुपपत्तेः ॥

( भाष्यम् ) नेत्याह । उपपदविशेषे एतस्मिन्  
विशेषे ॥

( प्रदीपः ) उपपदविशेष इति । अनेन धातुनियमं  
दर्शयति । ब्रह्मादिष्वेव हन्तेर्भूते क्तिव् भवति नोपपदान्तरे ।  
तेन पुरुषं हतवानित्यत्र क्तिव् भवति ॥

( उद्ध्योतः ) उपपदविशेषे इति । नियमस्य सजातीयापेक्ष-  
त्वाद्धन्तेः किप् उपपदविशेषे एवेत्यर्थः ॥ एतस्मिन् विशेपे इति ।  
भूत इत्यर्थः । तेन भूते हन्तेः किप् ब्रह्मादिष्वेवेति नियम इति  
भावः ॥ तदाह—अनेनेति । धातोर्ब्रह्माद्यतिरिक्ते उपपदे भूत-  
कालावच्छिन्नैर्वर्तमानात् किपोऽसंबन्धबोधकत्वादिति भावः ॥

( भाष्यम् ) अथ ब्रह्मादिषु हन्तेर्णिनिना भवि-  
तव्यम् ? ।

न भवितव्यम् । किं कारणम् ? ।

उभयतोऽनियमात् ।

( प्रदीपः ) अथेति । कर्मणि हन इत्यनेनेति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये अथेति । एतन्मात्रनियमाङ्गीकारे इत्यर्थः ॥

( भाष्यम् ) उभयतोऽनियमोयम् । ब्रह्मादिष्वेव हन्ते-  
र्भूते क्तिव्वभवति । क्तिव्वेव हन्तेर्भूते ब्रह्मादिष्विति ॥

( प्रदीपः ) क्तिव्वेवेति । ब्रह्मादिषु हन्तेर्भूते क्तिव्वेव भवति  
न प्रत्ययान्तरमिति । क्तिव् भूतकाले नियम्यत इति काल-  
नियमोयं भवति । एतदेव नियमद्वयं भाष्यकारेणाश्रितम् ॥

‘ब्रह्मादिषु हन्तेरेव भूते क्तिव् भवति । ब्रह्मादिषु हन्तेः क्तिव् भूत  
एवे’त्येतत्तु नियमद्वयं नाभ्युपगतम् ॥ अन्यैस्त्वाहोपगुहिकया  
चतुर्विधो नियमो व्याख्यातः । स भाष्यविरोधान्नान्तरणीयः ॥

( उद्ध्योतः ) कालनियम इति । भूतकालावच्छिन्नार्थाद् धातोः  
क्तिव्वतिरिक्तसंबन्धबोधकत्वादिति भावः ॥ तत्र केवलधातोः प्रत्यया-  
न्तरसंबन्धस्यावारणात् तात्पर्यतः कालनियमोयमिति बोध्यम् ॥  
नियमद्वयमिति । ब्रह्मादिष्वेव, क्तिव्वेति च । कथ्यमानस्यैवकारस्य  
श्रुत्युपस्थापितेन्यवो न्यायः । स च भाष्यप्रामाण्यादुभयत्रापीति  
तत्त्वम् ॥

( २०७० दृष्टोपपत्तिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ तथा चोत्तरस्य वचनार्थः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एवं च कृत्वोत्तरस्य योगस्य वचनार्थं

मथानां सिद्धान्ते तु ‘कृत्वं कस्मात् भवति—‘चोक्तुः पदस्य’ इति भाष्यसमा-  
लोचनेन प्रकृतसूत्रस्यान्तेऽनुवृत्तसूत्रयोजनेन न कोऽपि प्रचरिताष्टाध्यायीपठे  
भाष्यविरोध इति बोध्यम् ॥

३ अयं कोष्ठकपठितः पाठो लेखकप्रमादपठितः इत्युच्यते नागेशः ॥

उपपन्नो भवति—“बहुलं छन्दसि” इति । ‘यो मा-  
तृहा पितृहा भ्रातृहा’ । न च भवति—अमित्रेधात  
इति ॥ ब्रह्मभूषण ॥ ८७ ॥

( प्रदीपः ) तथा चेति । यस्माद् ब्रह्मादिष्वेति निय-  
मोऽनेन क्रियते तस्मादुत्तरस्य योगस्य वचने प्रयोजनमस्ति ।  
उपपदान्तरेपि हन्तेऽछन्दसि किञ्चित्था स्यादिति ॥ ८७ ॥

( उद्ध्योतः ) उत्तरस्य वचनार्थ इति । सापेक्षत्वेऽपि गमक-  
त्वात्समासः ॥ धातुनियमस्येदं मानमिति दर्शयति—यस्मादिति ।  
न चैतदर्थं छन्दसीत्येवास्तु सामर्थ्यादुपपदान्तरे भविष्यति किं  
बहुलग्रहणेनेत्यत—आह—भाष्ये न च भवति अमित्रेति । ताव-  
न्मात्रोक्तौ किञ्चेति नियमादण्न स्यात् स भवत्वित्येतदर्थं बहुलपद-  
मिति भावः ॥ ८७ ॥

( ५०५ इतिप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. ३ )

८६० कर्मणीनि विक्रियः ॥ ३।२।१३ ॥

( २०७१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मणि कुत्सिते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मणि कुत्सिते इति वक्तव्यम् । इह  
मा भूत्—धान्यविक्राय इति ॥

( प्रदीपः ) कर्मणि ॥ ९३ ॥ कर्मणि कुत्सित इति ।  
यस्य सोमघृतादेः शास्त्रेण विक्रयः प्रतिषिद्धस्तत्कर्म विक्रये  
कुत्सितम् ॥ ९३ ॥

( उद्ध्योतः ) कर्मणीति ॥ ९३ ॥ ननु कर्मणः कथं कुत्सित-  
त्वमत आह—यस्य सोमेति ॥ ९३ ॥

( अथ उपप्रत्ययप्रकरणम् )

( ५०६ उपप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. ४ )

८६८ अन्येष्वपि दृश्यते ॥ ३।२।१०१ ॥

( २०७२ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अन्येभ्योपि दृश्यते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अन्येभ्योपि दृश्यत इति वक्तव्यम् ।  
इहापि यथा स्यात्—आखा उखा परिखा ॥ अन्ये-  
ष्वपि ॥ १०१ ॥

( प्रदीपः ) अन्येष्वपि ॥ १०१ ॥ अन्येष्विति सप्तमी-  
निर्देशादुपपदान्तरमेवाश्रितं न तु धात्वन्तरमित्याह । अन्ये-  
भ्योपीति ॥ १०१ ॥

( ५०७ निष्ठासंज्ञकप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. ५ )

८६९ निष्ठा ॥ ३ । २ । १०२ ॥

( २०७३ अन्योन्याश्रयदूषणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ निष्ठायामितरेतराश्रयत्वाद-  
प्रसिद्धिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निष्ठायामितरेतराश्रयत्वादप्रसिद्धिः  
स्यात् ॥

केतरेतराश्रयता ? ।

सतोः कक्तवत्त्वोः संज्ञया भवितव्यम् । संज्ञया  
च कक्तवत् भाव्येते । तदेतदितरेतराश्रयं भवति ।  
इतरेतराश्रयाणि च कार्याणि न प्रकल्पन्ते ॥

( २०७४ गौरवापत्तिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ द्विर्वा कक्तवतुग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्विर्वा कक्तवतुग्रहणं कर्तव्यं भवति—  
“कक्तवत् भूते” । “कक्तवत् निष्ठा” इति ॥

( गौरववारणभाष्यम् )

यदि पुनरिहैव निष्ठासंज्ञाप्युच्येत—“कक्तवत्  
भूते” । ततो “निष्ठा” । कक्तवत् निष्ठासंज्ञौ भवत  
इति ॥

किं कृतं भवति ? ।

द्विः कक्तवतुग्रहणं न कर्तव्यं भवति ॥

( गौरवस्यापरिहार्यताभाष्यम् )

पवमपि “तौ” इति वक्तव्यं स्यात् । वक्ष्यति  
ह्येतत्—\*तौ सदिति वचनमसंसर्गार्थम्\* इति ।  
असंसक्तयोर्भूतकालेन कक्तवत्वोर्निष्ठा संज्ञा यथा  
स्यात्—जिमिदा । मिन्नः । जिक्विदा क्षिणः ॥

( उद्ध्योतः ) निष्ठाः ॥ १०२ ॥ तौ सदिति वचनमि-  
त्यादिवार्तिकं तौ सदिति सूत्रे । तेन समानन्यायमिदमित्याह—  
भाष्ये असंसक्तयोरिति । तावित्युक्ते हि अगृहीतविशेषस्वरूपमा-  
त्रपरामर्शान्न दोष इति भावः ॥ मिन्न इत्यादौ जीतः क्त इति  
वर्तमाने क्तः ॥

( अन्योन्याश्रयद्विःकरणदूषणपरिहारभाष्यम् )

यदि पुनरदृष्टश्रुतावेव कक्तवत् गृहीत्वा निष्ठा-  
संज्ञोच्येत ।

( प्रदीपः ) निष्ठा ॥ १०२ ॥ यदि पुनरिति । यौ  
लौकिके प्रयोगे न दृष्टौ, नापीह शास्त्रे श्रुतौ, तौ कक्तवत्  
निर्दिश्य संज्ञा विधीयते । एतदुक्तं भवति—इहैव प्रकरणे  
“कक्तवत् निष्ठा” इति सूत्रं कर्तव्यम् । यौ भूते कक्तवत् तौ  
निष्ठासंज्ञौ भवतः । तत्र संज्ञाविधानान्यथानुपपत्त्या तयोर्भूते  
विधानमनुमास्यते । इतरेतराश्रयदोषश्च न भविष्यतीति ॥

( उद्ध्योतः ) यदि पुनरिति भाष्यं पूर्वोक्तेन पुनरुक्तमित्या-  
शङ्क्याह—यौ लौकिक इति । न दृष्टाविति । अनुबन्धविशिष्टौ  
न दृष्टावित्यर्थः । कथमश्रुतत्वमत आह—एतदुक्तं भवतीति ।

( परिहाराशङ्क्यत्वभाष्यम् )

नैवं शक्यम् । दृष्टश्रुतयोर्हि न स्यात्—‘जिम्बि-  
दा-मित्रः, जिम्बिदा-क्षिबण’ इति । तस्मान्नैवं श-  
क्यम् । न चेदेवं, द्विः कक्तवतुग्रहणं कर्तव्यं भव-  
ति । इतरेतराश्रयं वा भवति ॥

( प्रदीपः ) दृष्टश्रुतयोरिति । यद्यपि कक्तवतुरन्यो नास्ति ।  
तथापि संज्ञाविधाने द्वयोः सह निर्देशादत्रापि द्विवचनेन नि-  
र्देशो, न तु द्वित्वं विवक्षितम् ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये दृष्टश्रुतयोरिति । जीतः कः इत्यादौ ।  
अत्र शास्त्रज्ञानां तत्त्वप्रत्यभिज्ञानात्प्रयोगेऽनुबन्धविगमेपि दृष्टत्वं  
बोध्यम् ॥ भाष्ये द्विः केति । तद्विधेयग्रहणमित्यर्थः । ‘कक्तवतु  
भूते’ तौ निष्ठेति ॥

( अन्योन्याश्रयपरिहारसारभाष्यम् )

नैष दोषः । इतरेतराश्रयमात्रमेतद्भवति । स-  
र्वाणि चेतरेतराश्रयाण्येकत्वेन परिहृतानि—\*सिद्धं  
तु नित्यशब्दत्वाद्\* इति ॥

( प्रदीपः ) एकत्वेनेति । सामान्येनेत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) सामान्येनेति । एकत्वपदेन तदाश्रयो लक्ष्यते ॥  
साधारणपर्यायश्वैकशब्द इत्यन्ये ॥

( उक्तपरिहाराप्राप्तिभाष्यम् )

नेदं तुल्यमन्यैरितरेतराश्रयैः । न हि संज्ञा नित्या ॥

( प्रदीपः ) न हि संज्ञा नित्येति । वृद्धादिका संज्ञा  
विषयनियतत्वान्नित्या आकारादयो हि प्रयोगे विद्यन्ते तत्र मृ-  
जैर्जुद्धिरित्यादिना साधुत्वमात्रमन्वाख्यायते—मृजैर्जुद्धिः सा-  
धुर्भवति । कक्तवतु तु सानुबन्धकौ प्रयोगे न विद्येते इति  
नित्यत्वाभावं संज्ञिनोऽभिप्रेत्यैतदुक्तम् ॥

( उद्ध्योतः ) ननु वृद्धादिसंज्ञापि कृत्रिमत्वादित्यैव तत्कथं  
तत्रायं समाधिर्नैवेत्यत आह—वृद्धादिकेति ॥ विषयनियतत्वा-  
दिति । संज्ञाविषयस्य शास्त्रे प्रयोगे चैकरूपत्वेन संज्ञिनो नित्यत्वा-  
त्संज्ञा नित्या, साधुत्वान्वाख्यानस्य च संभवो, नैवं प्रकृते इति भावः ॥

( परिहारान्तरसारभाष्यम् )

एवं तर्हि भाविनी संज्ञा विज्ञास्यते । तद्यथा  
कश्चित्कञ्चित्तनुवायमाह—‘अस्य सूत्रस्य शाटकं  
वयं’ इति । स पश्यति—‘यदि शाटको न वातव्यः ।  
अथ वातव्यो, न शाटकः । शाटको वातव्यश्चेति  
विप्रतिषिद्धम् । भाविनी खल्वस्य संज्ञाभिप्रेता ।  
स मन्ये वातव्यः यस्मिन्नुते शाटक इत्येतद्भवति’

१ ‘भर्तिदेशन’ ॥

२ ‘हेतु’ ॥

३ क्षणस्य ग्राह्यत्वाभावे इत्यर्थः । ( र. ना. )

इति । एवमिहापि तौ भूते काले भवतो ययोरभि-  
निर्वृत्तयोर्निष्ठेत्येषा संज्ञा भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) भाविनी संज्ञेति । संज्ञिनोर्भावित्वात्संज्ञा  
भाविनीति । तथा हि—निष्ठेत्युक्ते संज्ञावाक्यं कक्तवतु  
निष्ठेति स्मर्यते । तत्र सामर्थ्यात् कक्तवतुविधानं संपद्यते ॥

( उद्ध्योतः ) ननु संज्ञायाः स्वतो भावित्वमनुपपन्नमत आह—  
संज्ञिन इति ॥ सामर्थ्यादिति । अन्यस्योत्पन्नस्य निष्ठासंज्ञाया  
अभावादिति भावः ॥

( २०७५ निष्ठाविधिवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ आदिकर्मणि निष्ठा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या । प्रकृतः  
कटं देवदत्त इति ॥

( प्रदीपः ) आदिकर्मणीति । आद्येषु क्रियाक्षणेभु  
भूतेषु सर्वस्याः क्रियाया भूतत्वाभावाविष्ठा न प्राप्नोतीति वच-  
नम् । न चादिकर्मणि कः कर्तरि चेत्येतदर्थोदेशनमादि-  
कर्मणि निष्ठाया ज्ञापकम् । जीतः क इत्यादिना वर्तमान-  
कालविषयस्य कस्य संभवात्स्यैवेतदर्थोदेशनं स्यात् ॥

( उद्ध्योतः ) आदिकर्मणीति । कर्मशब्दः क्रियावाची ।  
एकफलोद्देशेऽप्रवृत्तसमूहरूपा च क्रिया ॥ तत्र वार्तिकफलं दर्शयति—  
आद्येष्विति । संपूर्णसमूहस्य व्यपवृत्तत्वे हि भूतव्यवहार इति भावः ॥  
क्रियाक्षणेष्वाति । अत्र क्षणशब्दः सूक्ष्मग्राह्यकालोपलक्षणम् ।  
अन्यथा क्षणरूपत्वे क्रियायास्तद्देव सूक्ष्मकालावच्छिन्नत्वात् प्रत्य-  
क्षत्वानापत्त्या ‘पश्य मृगो धावती’ त्यादेर्लोपापत्तिरिति बोध्यम् ॥

वस्तुतः क्रियाऽप्रत्यक्षैव फलानुमेया च । तद्वक्ष्यते भाष्ये—  
अत्यन्तापर दृष्टेति । अवयवरूपेण समुदायरूपेण चाप्रत्यक्षेत्यर्थः ॥  
पश्य मृगो धावतीत्यादि प्रयोगस्तत्फलसंयोगदर्शनाभिप्रायेण ।  
दृशेर्वा ज्ञानसामान्ये लक्षणा । निरूपयिष्यते चेदं वर्तमाने लङिति  
सूत्रे ॥ आद्येषु क्रियालक्षणेष्वाति कन्वित्पाठः । तत्रापि क्रिया-  
वयवेष्वेत्यर्थः ॥ जीतः क इति । यदि तद्विषयमेव स्यात्, वर्त-  
मानग्रहणमेव कुर्यादिति चिन्त्यमिति हरदत्तः । तेन कानुमानेपि  
कत्वत्वर्थं वचनमावश्यकमित्यपरे ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

किं पुनः कारणं न सिध्यति ? ।

( २०७६ हेतुवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ यद्वा भवन्त्यर्थे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यद्वा भवन्त्या अर्थे भाष्यते । प्रकृतः  
कटं देवदत्तः प्रकरोति कटं देवदत्त इति ॥

( प्रदीपः ) यद्वा भवन्त्यर्थे इति । यस्माद्दोषे विक-  
ल्पेन भाष्यते निष्ठा तस्माद्वक्तव्येत्यर्थः ॥

४ क्षणरूपत्वेनेति पाठो भाति । क्रियायाः सूक्ष्मकालावच्छिन्नत्वात्तद्देव क्षण-  
वदेव प्रत्यक्षत्वानापत्त्येति योजना । ( र. ना. )

( उद्घोतः ) यस्माद्धट इति । धात्वर्थस्य वर्तमानत्व एव, यतो लोके विकल्पेन प्रयुज्यतेऽतो वक्तव्येत्यर्थः । यद्भवन्त्यर्थे वा भाष्यत इति भाष्येऽन्वयः ॥

( २०७७ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ न्याय्या त्वाद्यपवर्गात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न्याय्या त्वेषा भूतकालता । कुतः ? । आद्यपवर्गात् । अदिरत्रापवृक्तः । एष च नाम न्याय्यो भूतकालः—यत्र किञ्चिदपवृक्तं दृश्यते ॥

( प्रदीपः ) न्यायेति । आदिभूत एवावयवे समूह-रूपस्य समाप्तत्वादस्ति भूतत्वोपपत्तिरित्यर्थः । तदुक्तं हरिणा—

समूहः स तथा भूतः प्रतिभेदं समूहिषु ।

समाप्यते ततोऽभेदे कालभेदस्य संभव इति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये आदिरत्रेति । आद्यक्रियाक्षण इत्यर्थः ॥ ननु तस्य भूतत्वेऽपि धात्वर्थस्य किमायातमत आह—आदिभूत एवेति ॥

समाप्तत्वाद् आरोपितत्वाद् ॥ प्रतिभेदम् । प्रत्ययवयवम् ॥ समूहिषु । अवयवेषु ॥ समाप्यते । आरोप्यत इत्यर्थः ॥ अभेदे अवयवे समूहाभेदे ॥

( २०७८ (२०७६ वार्तिक) प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ वा चाद्यतन्याम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वा चाद्यतन्यां भाष्यते । प्रकृतः कटं देवदत्तः, प्राकार्षीत्कटं देवदत्त इति ।

( प्रदीपः ) वा चाद्यतन्यामिति । यदुक्तं यद्वा भवन्त्यर्थे भाष्यत इति, तस्य व्यभिचारः । लुङोपि विषये निष्ठाया अयं प्रयोगः । तस्मादवश्यमाद्यपवर्गात् भूततैष्ठ्या । अन्यथा लुङः प्रयोगो न स्यादित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं शक्यन्त एते शब्दाः प्रयोज्यमित्यतो न्याय्येषा भूतकालता ॥

( प्रदीपः ) किं शक्यन्त इति । यावदभिमतफलप्रयोजनसकलक्रियापरिसमाप्तिर्न भवति तावद्वर्तमानत्वमेव क्रियाया न तु भूतत्वम् । ततश्च वस्तुशून्या एवामीशब्दाः प्रयुज्यन्त इति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

नावश्यं प्रयोगादेव । क्रिया नामेयमत्यन्तापरदृष्टा अनुमानगम्या न शक्या पिण्डीभूता निदर्शयितुम् । यथा गर्भो निर्लुठित इति । सासौ येन येन शब्देनाभिसंबध्यते तावति तावति परिसमाप्यते तद्यथा—कश्चित्पाटलिपुत्रं जिगमिषुरेकमहर्गत्वाह इदमद्य गतम्'इति । न च तावता तस्य व्रजिक्रिया

समाप्ता भवति । यत्तु गतं तदभिसमीक्ष्यैतत् प्रयुज्यते 'इदमद्य गतम्'इति । एवमिहापि यत्कृतं तदभिसमीक्ष्यैतत्प्रयुज्यते—'प्रकृतः कटं देवदत्तः' इति । यदा हि वेणिकान्तः कटोभिसमीक्षितो भवति । 'प्रकरोति कटम्'इत्येव तदा भवितव्यम् ॥ निष्ठा ॥ १०२ ॥

( प्रदीपः ) अत्यन्तापरदृष्टेति । परं प्रधानं प्रमाणं प्रत्यक्षम् । अनुमानस्य तत्पूर्वकत्वात् । तेन क्रिया न दृश्यते । अवयवसमूहस्य युगपदनुत्पादादनवस्थानाच्च । तदुक्तम्—

क्रमात्सदसतां तेषामात्मानो न समूहिनाम् ।

सद्वस्तुविषयैर्यान्ति संबन्धं चक्षुरादिभिरिति ॥

येन येनेति । शब्देन प्रत्याख्यमाना येनयेनावयवेन संबध्यते समूहरूपा क्रिया तस्मिन्नेवावयवे समाप्यते । तत्रावयवानां कालत्रययोगात् क्रियाया अपि कालत्रययोगः ॥ १०२ ॥

( उद्घोतः ) तेन क्रिया न दृश्यते इति । अत्यन्तमवयवशः समूहश्च न दृश्यत इत्यर्थः ॥ अनवस्थानाच्चेति । अनेनावयवस्याप्यप्रत्यक्षत्वम् । क्षणिकत्वेनानवस्थानादित्यर्थः ॥

क्रमात्सदसतामिति । भूयोऽवयवसंनिर्गमः समूहप्रत्यक्षे कारणमिति भावः ॥ चक्षुरादिभिरसंबन्धे हेतुः—सद्वस्तुविषयैरिति ॥ येन शब्देनेति सामानाधिकरण्ये तच्छब्देनापि तस्यैव परामर्शात् शब्दे परिसमाप्तिरुक्ता स्यात् । न च सा युक्तिमती । अतो वैयधिकरण्येन व्याचष्टे—येनावयवेनेति । संबध्यते यत्रयत्रावयव आरोप्यत इत्यर्थः । यो योऽवयवः फलानुकूलत्वेन विवक्ष्यते तत्रैव समाप्यते । तत्रावयवे समाप्ते समूह एव समाप्यतेऽतीतो भवतीत्यर्थः ॥ वेणिका कटचरमावयवः । तदन्तः कट इत्यस्य तदन्तःकटनिर्वर्तकः क्रियासमूह इत्यर्थः ॥ १०२ ॥

( ५०८ लिटः कानञ्चिद्विधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. ६ )

८७३ लिटः कानञ्वा ॥ ३।२।१०६ ॥

( ५०९ लिटः कसुविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. ७ )

८७४ कसुश्च ॥ ३ । २ । १०७ ॥

( वाग्रहणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं कानचूकस्वोर्वावचनं क्रियते ।

( २०७९ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कानचूकस्वोर्वावचनं छन्दसि

तिङो दर्शनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कानचूकस्वोर्वावचनं क्रियते । छन्दसि तिङो दर्शनात् । छन्दसि तिङपि दृश्यते—

अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । अहं द्यावापृथिवी आत-  
तानेति ॥

( प्रदीपः ) लिटः कान ॥ १०६ ॥ कसु ॥ १०७ ॥  
छन्दसि तिङो दर्शनादिति । वासरूपविधिश्च लादेशेषु  
नास्तीत्युक्तम् ।

( उद्ध्योतः ) लिटः कानज्वा ॥ १०६ ॥ कसुश्च ॥ १०७ ॥  
वासरूपविधिरिति । ननु हशश्वतोर्लङ् चेति ज्ञापकादादेशगत-  
वैरूप्यमादाय लविधौ वासरूपो नास्तीत्युक्तम् । एवं च प्रकृते  
स्यादेव । न च प्रत्ययविधिविषयस्यादेशेष्वभावः । आदेशविधावपि  
प्रत्यय इत्यस्योपस्थितेराद्युदात्तश्चेति सूत्रभाष्यसंमतत्वात् इति चेन्न ।  
यतद्वाग्रहणादादेशरूपप्रत्ययविधौ तदनुपस्थितिकल्पनात् । तत्फलं  
तु सदादिभ्यो भूतसामान्ये लिटः कसुरेव न पक्षे तिङ इति भावः ॥

( २०८० समाधानासंगतिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥\*॥ न वानेन विहितस्यादेशवचनात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) न वा एतत्प्रयोजनमस्ति । किं कार-  
णम् ? अनेन विहितस्यादेशवचनात् ॥

( प्रदीपः ) अनेनेति । छन्दसि लिङित्यनेनेत्यर्थः ।  
तस्यैव लिट इहातुकुतत्वाद् आनन्तर्यादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अस्त्वनेन विहितस्यादेशः । केनेदानीं छन्दसि  
विहितस्य लिटः तिङः श्रवणं भविष्यति ॥

( समाधानभाष्यम् )

“छन्दसि लुङ्लङ्लिटः” इत्यनेन । तदेतद्वा-  
चनं तिष्ठतु तावत् सांन्यासिकम् ॥

( प्रदीपः ) तदेतदिति । उत्तरत्रोपयोक्ष्यत इति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) उत्तरत्रेति । केचित्तु तस्य धातुसंबन्धे विधानेन  
धातुसंबन्धे पक्षे भूतसामान्ये लिट्स्थानिकतिङः श्रवणार्थमिदमाव-  
श्यकमित्याशयो भाष्यस्येत्याहुः ॥ यत्तु वृत्तौ लिङित्यनुवर्त्य विभक्ति-  
विपरिणामेन सिद्धे लिट्प्रहणेन लिप्तात्रस्यादेशो ज्ञाप्यते इति वा-  
चनमावश्यकमेवेत्यस्यम् ॥ तत्र । प्रकृतभाष्यविरोधादित्याहुः ॥

( कित्करणप्रयोजनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ कित्करणं किमर्थम् । न “असंयोगालिट्  
कित्” इत्येव सिद्धम् ।

१ अत्र लविधेरभावादिति भावः । ( र. ना. )

२ वाऽसत्प्रतिविधिरुक्तपदार्थः । ( र. ना. )

३ सांन्यासिकमिति । ‘काम्यानां कर्मणां त्यागं संन्यासं कथ्यो विदुः’  
इति भगवद्गीतेकेः काम्यानां कर्मणां दृष्टप्रयोजनानां त्यागो राहित्यमेव संन्यासो-  
ऽनेति ‘वा’ वचनस्यादृष्टार्थत्वमेव न दृष्टार्थत्वमिति बोध्यम् ॥ यथा—न्यासः=  
निक्षेपः=आधि=इत्येतेषु धर्मशास्त्रेण ‘न चाधेः कालसंरोधात् विसर्गोऽस्ति  
न विक्रयः’ इति दानविक्रययोश्चिकाराभावो बन्धकिनः, किंतु ‘अविकृतस्था-

( २०८१ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥\*॥ कित्करणं संयोगान्तार्थम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) कित्करणं क्रियते । संयोगान्तार्थम् ।  
संयोगान्ताः प्रयोजयन्ति । बन्धे वृत्रस्य यद्वद्वधा-  
नस्य रोदसी । त्वमर्णवान् बद्धधानां अरम्णाः ।  
अञ्जे आजिवानिति ॥

( प्रदीपः ) बद्धधानस्येति । बन्धवन्धने छान्दस-  
लादभ्यासधकारस्य हलादिः शेषेण निवृत्त्यभावे झलां जश्  
झशीति जश्त्वं दकारः ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

छान्दसौ कानच्कस् । लिट् च छन्दसि सार्व-  
धातुकमपि भवति । तत्र सार्वधातुकमपिद् डिङ्-  
ङ्भवति । डिङ्त्वादुपधालोपो भविष्यति ॥

( २०८२ प्रयोजनान्तरवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥\*॥ ऋकारान्तगुणप्रतिषेधार्थं वा ॥\*॥

( भाष्यम् ) ऋकारान्तानां गुणप्रतिषेधार्थं तर्हि  
कित्वं वक्तव्यम् । अयं हि लिटि ऋकारान्तानां प्रति-  
षेधविषये गुण आरभ्यते । स यथैवेह प्रतिषेधं  
बाधित्वा गुणो भवति—तेरतुः तेरुरिति । एवमि-  
हापि स्यात्—तितीर्त्तान्, तितिराण इति । पुनः  
कित्करणात् प्रतिषिध्यते । तस्मात्कित्वं कर्तव्यम् ॥  
लिटः कानज्वा ॥ १०६ ॥ कसुश्च ॥ १०७ ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये पुनः कित्करणादिति । आरिवानित्यादौ  
गुणस्तु ऋच्छत्युत्तामित्यत्र ऋकारान्तरप्रक्षेपेण ऋधातोः पुनर्विधाना-  
द्बोध्य इति दिक् ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

( ५१० कसुःविधिसूत्रम् ॥ ३ : २ । २ आ. ८ )

८७५ भाषायां सदवसश्रुवः

॥ ३ : २ । १०८ ॥

( २०८३ लिङ्विकल्पवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ भाषायां सदादिभ्यो वा लिट् ॥\*॥

( भाष्यम् ) भाषायां सदादिभ्यो वा लिङ्वक्तव्यः ।  
किं प्रयोजनम् ? ॥

पितरक्षणे एवाधिकारः तथाच वाग्रहणेन किमपि कार्यं कर्तुमधिकारो नेति तत्त्वम् ।  
इति दाहितथाः ॥ वस्तुतस्तु संन्यसनं संस्थापनं तदेवास्य प्रयोजनं तदतिरिक्त-  
प्रयोजनाभाव इति तदाशयः । ( र. ना. )

४ छन्दसि लिङिति विहितस्य लिटः । ( र. ना. )

५ प्रकृतभाष्येण छन्दसि लिङिति विहितस्यैव लिट् आदेश इत्यस्य लामा-  
दिति भावः । ( र. ना. )

६ ‘अनिदितां हल उपधायाः’ इत्युपधालोपार्थं कित्त्वमावश्यकमिति भावः ॥

( २०८४ लिङ्विकल्पवार्तिकशेषवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ तद्विषये लुङोऽनिवृत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्य लिटो विषये लुङोऽनिवृत्तिर्यथा स्यात् । उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् । उपासदत् ॥

( प्रदीपः ) भाषायाम् ॥ १०८ ॥ इह कखादेशविधानाद् भूतसामान्ये लिट् सदादिभ्योऽनुमीयते स विशेषविषयत्वा-  
लुङो बाधकः प्राप्नोतीति मत्वाह—भाषायामिति ॥

( उद्ध्योतः ) भाषायां ॥ १०८ ॥ इति मत्वाहेति । एवं च विकल्पमात्रविधानेऽस्य तात्पर्यमिति भावः ॥

( २०८५ लङ्समावेशवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अनद्यतनपरोक्षयोश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनद्यतनपरोक्षयोश्च वा लिङ्कथ्यः । उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम् । उपासीदत् । उप-  
ससाद ॥

( उद्ध्योतः ) अनद्यतनपरोक्षयोरिति वचनस्य तयोरपि कसु-  
वैधेयः । तेन च तद्विषयो लिङनुमातव्यः । स च वेल्यर्थः ।

( २०८६ हेतुवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ अपवादविप्रतिषेधाद्धि तयो-  
र्भावः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अपवादविप्रतिषेधाद्धि तौ स्याताम् ।  
कौ ? । लङ्लिटौ ॥

( प्रदीपः ) अपवादविप्रतिषेधादिति । लुङोपवाद  
एतत्सूत्रानुमितो लिट् । तथाऽनद्यतने लङ् परोक्षे लिङिति  
च तत्रास्य लिटो लङ्लिटोश्च विप्रतिषेधे परत्वाल्लङ्लिटौ स्याता-  
मित्यर्थः । अस्य तु भूतसामान्यमवकाशः । एतदादेशविधा-  
नानुमितस्यैव लिटः सदादिभ्यः कसुः न तु परोक्षे लिङित्य-  
नेन विहितस्य, तस्याप्रकृतत्वात् ॥

( उद्ध्योतः ) ननु भूतसामान्येऽनुमितस्य विशेषपरतापि भवि-  
ष्यति, किमनेनेत्यत आह—भाष्ये अपवादेति । तत्राचष्टे लुङो-  
पवाद इति ॥ ननु अनद्यतनादौ लिङ्वैकल्पिकस्तस्य नित्यं कसु-  
रित्युपससादेति । न स्यादत आह—एतदादेशेति । अनद्यतने-  
त्यादि वचनेन तयोरप्यनेन लिङनुमानान्न दोषः ॥

( २०८७ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ तस्य कसुरपरोक्षे नित्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्य लिटो भाषायां कसुरपरोक्षे  
नित्यमिति वक्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) तस्येति । नित्यग्रहणं वेति प्रकृतस्य विकल्पस्य  
निवृत्त्यर्थम् । अपरोक्षग्रहणं परोक्षे लिङित्यनेन विहितस्य  
लिटस्तिङां श्रवणार्थम् ॥

१ अत्रापि विषये 'लुङोऽनिवृत्त्यर्थम्' इति प्रयोजनं कल्पनीयम् ॥

२ अनद्यतनपरोक्षयोरित्यर्थः । अनेन, लिटः कखादेशविधानेनेत्यर्थः । न  
दोषः । कखादेशानापत्तिरूपो दोषो नेत्यर्थः । ( र. ना. )

( अपरोक्षग्रहणप्रत्याख्यानभाष्यम् )

अपरोक्षग्रहणेन नार्थः । तस्य कसुर्नित्यमित्येव ॥

केनेदानीं लिटः परोक्षे श्रवणं भविष्यति ? ॥

परोक्षे लिङित्यनेन ॥

तत्तर्हि वक्तव्यम् ? ॥

न वक्तव्यम् । अनुवृत्तिः करिष्यते । भाषायां  
सदादिभ्यो वा लिङ् भवति । लिटश्च कसुर्भवति ॥  
ततो "लुङ्" लुङ् भूते काले भवति । भाषायां  
सदादिभ्यो वा लिङ् भवति, लिटश्च कसुर्भवति ॥  
ततः—"अनद्यतने लङ्" । अनद्यतने भूतकाले लङ्  
भवति । भाषायां सदादिभ्यो वा लिङ् भवति,  
लिटश्च कसुर्भवति ॥ [ततः—] "परोक्षे लिट्" ।  
परोक्षे लिङ् भवति । भाषायां सदादिभ्यो वा लिङ्  
भवति लिटश्च कसुर्भवति । तत्रायमप्यर्थः—'तस्य  
कसुरपरोक्षे नित्यम्' इत्येतन्न वक्तव्यं भवति ॥  
भाषायां सद् ॥ १०८ ॥

( प्रदीपः ) अपरोक्षग्रहणेनेति । अनद्यतनपरोक्ष-  
योश्चेति वचनेन वा लिङ्यं विधीयते तत्र यस्मिन् पक्षेऽयं  
लिप्ता भवति तत्र लङ्लिटौ भवतः । ततश्च परोक्षे लिङिति  
विहितस्य लिटः सूत्रान्तरविहितत्वात् कखभावात्तिङो भव-  
न्ति ॥ भाषायां सदादिभ्यो वा लिङिति । लिटः का-  
नज्वेल्यतो वेल्यनुवर्तते । तच्च न कसुना संबध्यते किं तर्हि  
लिटा । तत्र वाचनान्तापक्षे लुङ्भावः सिध्यति । ततोऽनद्यतने  
लङ् परोक्षे लिङित्यत्रास्य सूत्रस्यानुवर्तनादनद्यतनपरोक्षयोरपि  
सदादिभ्यो वा लिङ् भवतीत्यर्थः ॥ १०८ ॥

( उद्ध्योतः ) ननु वा ग्रहणानुवृत्तौ कसोर्विकल्पः स्यादत  
आह—तच्च नेति । व्याख्यानादिति भावः ॥ १०८ ॥

( ५११ कसुप्रत्ययसंनियोगनिपातनसूत्रम् ॥ ३।२।२ आ. ९ )

८७६ उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च

॥ ३ । २ । १०९ ॥

( प्रदीपः ) उपेयिवान् ॥ १०९ ॥ उपसर्गस्यातन्त्रत्वा-  
दीयिवान् समीयिवान् इत्याद्यपि भवति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमुपेयिवानिति निपातनं क्रियते ॥

( २०८८ निपातनप्रयोजनवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ उपेयुषि निपातनमिडर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपेयुषि निपातनं क्रियते इडर्थम् ।  
इड्यथा स्यादिति ॥

१ 'ततोऽनद्यतने' ॥

४ लेखकप्रमादज्ञात् भवेत् ॥



( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । सिद्धोऽत्रेह “वस्वेकाजा-  
द्वसाम्” इत्येव ।

( प्रयोजनसाधकभाष्यम् )

द्विर्वचने कृतेऽनेकाचूत्वान्न प्राप्नोति ।

( प्रयोजनबाधकभाष्यम् )

इदमिह संप्रधार्य, द्विर्वचनं क्रियतामिदिति ।  
किमत्र कर्तव्यम् । परत्वादिडागमः ॥

( साधकभाष्यम् )

नित्यं ‘द्विर्वचनं’ कृतेऽपीति प्राप्नोत्यकृतेऽपि  
प्राप्नोति ॥

( बाधकभाष्यम् )

इदपि नित्यः, कृतेऽपि द्विर्वचने एकादेशे च  
प्राप्नोत्यकृतेऽपि प्राप्नोति ॥

( साधकभाष्यम् )

नात्रैकादेशः प्राप्नोति । किं कारणम् । “दीर्घ  
इणः कितीति” इति दीर्घत्वेन बाध्यते । तदेतदुपे-  
युषि निपातनमिदर्थं क्रियते ॥

( प्रदीपः ) उपेयुषीति । इणो लिङ् कसुः तत्रेडागमा-  
त्पूर्वं नित्यत्वाद् द्विर्वचनं दीर्घ इणः कितीत्यभ्यासस्य दीर्घ-  
त्वम् तत्सामर्थ्यादेकादेशो न प्रवर्तते । न च दीर्घस्यावकाश  
इत्यतुरित्यादिः तत्रापि पूर्वपरविधेः पूर्वविधिवात् तत्र कर्तव्ये  
यणादेशस्य स्थानिवत्त्वादेकादेशप्रसङ्गात् । तत्रानेकाचूत्वादिड-  
प्राप्तौ निपात्यत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) उपेयिवान् ॥ १०९ ॥ इडागमादिति ।  
वस्वेकाजाद्वसामित्येकाज्जगृहणादित्यर्थः । द्वित्वे कृतेऽनेकाचूत्वात्तद-  
प्राप्तेरनित्यत्वमिदं इति भावः ॥ नन्वेकादेशे कृते एकाचूत्वात्तदप्राप्तिरिति  
सोऽपि नित्य इत्यत आह—तत्सामर्थ्यादिति ॥ न चेति । तत्र  
द्वित्वे सवर्णदीर्घ बाधित्वेणो यणि निमित्ताभावादेकादेशप्राप्तौ दीर्घः  
सावकाश इति भावः ॥

( २०८९ दूषणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उपेयुषि निपातनमिदर्थमिति

चेदजादावतिप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपेयुषि निपातनमिदर्थमिति चेद-  
जादाविटोऽतिप्रसङ्गो भवति । उपेयुषा उपेयुषे उपे-  
युषः उपेयुषीति ॥

( प्रदीपः ) अजादावतिप्रसङ्ग इति । यदाऽपूर्वं इणि-  
पात्यते तदा विशेषानुपादानादजादावपि प्राप्नोति । यथा स्य  
सिच् सीयुडित्यत्रोक्तं, नित्यश्चायं वल्निमित्तो विधातीति ॥

१ इडपीत्यर्थः । ( र. ना. )

२ एकादेशस्य पूर्वान्तवत्त्वेनेत्यादिति भावः । ( र. ना. )

३ प्रकृतभाष्ये इति शेषः । ( र. ना. )

यदि त्वनेन निपातनेन क्कानियमप्राप्तस्य वस्वेकाजाद्व  
सामित्यनेन नियमेन निवारितस्य प्रतिप्रसवमात्रमिदं क्रियते  
न त्वपूर्वो विधिस्तदाऽजादावतिप्रसङ्गाभावः ।

( उद्घोतः ) विशेषेति । बलादित्वरूपेत्यर्थः ॥ तदाजादा  
विति । प्राप्तविषय एव प्रतिप्रसवसंभवाद् इति भावः ॥ किं च  
पूर्वस्यैव विधौ स्थानिवत्त्वं न पूर्वपरयोरिति सिद्धान्तादीयतुरित्यादौ  
तदप्रवृत्त्या सवर्णदीर्घाप्राप्तेरभ्यासदीर्घस्य नैकादेशबाधकत्वमितीदं  
सिद्ध एवेति न तन्निपातनफलमित्यपि बोध्यम् ॥

( २०९० निपातनीयान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ एकादिष्टस्यैवभावार्थं तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एकादिष्टस्यैवभावार्थं तु निपातनं  
क्रियते । एकादिष्टस्य ईय इत्येतद्रूपं निपात्यते ॥

( प्रदीपः ) इदानीमजादावतिप्रसङ्गपरिहाराय प्रकारान्तर-  
माश्रयति—एकादिष्टस्येति । द्विर्वचने कृते अभ्यासस्य  
दीर्घत्वे नैकादेशस्तस्येयादेशो निपात्यते ॥ यद्यप्युपेयिवानित्ये-  
तदिष्यदेशनिपातनेन सिध्यति, तथापि समीयिवानित्यादि न  
सिध्यतीति तदर्थमीयादेशो निपात्यते ॥ क्वचित्तु, भाष्ये “ईय”  
इति पाठः, स उपेयिवानित्येतद्रूपसिध्यपेक्षया द्रष्टव्यः ॥

( उद्घोतः ) ईयादेश इति । अन्यथेति कृते इणो यणिति  
स्यादिति भावः ॥ तदर्थमिति । ईयादेशे दीर्घोच्चारणमसंध्युच्चारणं  
चोपेयस्याविवक्षायां वीजं द्रष्टव्यम् ॥ भाष्ये—इयिति ह्रस्वपाठे  
ईयिवानित्यादौ छान्दसो वर्णव्यत्ययो बोध्यः । लोके तु उपेयिवा-  
नित्येव साधुः । उपेयविवक्षायां मानाभावादित्यन्ये ॥

( उक्तदूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तं नात्रैकादेशः प्राप्नोति । किं कारणम् ?  
“दीर्घ इणः कितीति” इति दीर्घत्वेन बाध्यत इति ॥

( तद्दूषणासामञ्जस्यभाष्यम् )

तद्धि न सुष्ठूच्यते । न हि दीर्घत्वमेकादेशं बा-  
धते । कस्तर्हि बाधते ? । यणादेशः । स चापि क  
बाधते ? । यत्रास्य निमित्तमस्ति । यत्र हि निमित्तं  
नास्ति निष्प्रतिद्वन्द्वस्तत्रैकादेशः ॥

( प्रदीपः ) कस्तर्हीति । इणो यणित्यनेनाजादौ विधी-  
यमान इत्यर्थः । ननु चोक्तमीयतुरित्यत्राभ्यासदीर्घत्वे कृते एका-  
देशात् पूर्वं वार्णादाङ्गं बलीय इति यणि कृते स्थानिवत्त्वा-  
देकादेशः प्राप्नोति ततश्चावश्यमभ्यासदीर्घत्वेनैकादेशो बाध्यः ।  
नैष दोषः । नहि स्थानिवद्भावेन रूपमतिदिश्यते, रूपाश्रयश्च  
पूर्वपरयोरेकादेशो न यकारस्य भवितुमर्हति । अथवा यणादे-  
शेन वार्णादाङ्गमिति वचनेन बाधितस्यैकादेशस्य पुनः स्थानि-  
वद्भावाद् बाधितत्वादेव प्रवृत्त्यभावात् ॥

४ प्रकृते द्वित्वोत्तरमनेकाचूत्वेनेटोऽभावे यणानिमित्ता वा निष्प्रतिद्वन्द्व एका-  
देश इति भावः । ( र. ना. )



( उद्घोतः ) भाष्ये न हि दीर्घत्वमिति । ईयतुरित्यादौ प्रायुक्तीत्या चारिताभ्यादिति भावः ॥ न हीति । किं तु शास्त्रातिदेश इति भावः ॥ रूपाश्रयश्चेति । अक्-अच् पदाभ्यां तत्तद्रूपेणोपस्थितयोरेव दीर्घ इति भावः ॥ ननु कार्यातिदेशे दोषस्तु तदवस्थ इत्युच्यते—अथवेति । वस्तुतः पूर्वस्यैव विधौ स्थानिवत्त्वमिति नात्र स्थानिवत्त्वमिति बोध्यम् ॥ भाष्ये निष्प्रतिद्वन्द्व इति । एकादेशात्पूर्वमिदोऽभावेन यणप्राप्तेरिति भावः ॥

( २०९१ निपातनीयान्तरवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ व्यञ्जने यणादेशार्थं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा व्यञ्जन एवं यणादेशो निपात्यते । यणादेशो कृते “एकाच” इतीदृ सिद्धो भवति ॥

( प्रदीपः ) व्यञ्जन इति । अभ्यासदीर्घत्वे कृतेऽजादौ विधीयमान इणो यणिति यणादेशो हलादौ न प्राप्नोतीति निपात्यते ॥ ततश्चैकाच्त्वाद्द्वस्वेकाजाद् घसामित्यनेनैवेद्भवतीत्यजादौ न भवति ॥

( उद्घोतः ) यणादेशो निपात्यत इति । एकादेशबाधकतयेति भावः ॥

( ऋध्यन्तरमतभाष्यम् )

अपर आह—

( २०९२ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ नोपेयिवास्त्रिपात्यो द्विर्वचनादिङ् भविष्यति परत्वाद् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्विर्वचनं क्रियतामिडिति परत्वादिङ् भविष्यति विप्रतिषेधेन ॥

( प्रदीपः ) नोपेयिवानिति । इणो भाषायां केवलभूतमात्रे वा लिङ्गिष्यस्तस्य च नित्यं कसुरादेशः, कार्यान्तरं तु सिध्यत्येवेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) इणो भाषायामिति । पूर्वसूत्र एवेणग्रहणं कार्यमिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इहापि तर्हि द्विर्वचनादिङ् स्याद् विभिन्नान् चिच्छिद्धानिति ।

( २०९३ वार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ अन्येषामेकाचां द्विर्वचनं नित्यमित्याहुः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अन्येषामेकाचां द्विर्वचनं नित्यम्—कृतेऽपीति प्राप्नोति, अकृतेऽपि ।

( प्रदीपः ) अन्येषामिति । भिदादीनां द्विर्वचने कृतेऽनेकाच्त्वादितोऽप्रसङ्गादनित्यत्वम् ॥ १०९ ॥

१ नत्वजादौ प्रत्यये इति भावः । ( र. ना. )

३ द्विर्वचनेनेदो निमित्तमिति शेषः । ( र. ना. )

( २०९४ वार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ अस्य पुनरिद् च नित्यो द्विर्वचनं च न विहन्यते ह्यस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अस्य पुनरिद् चैवं नित्योऽस्य हि द्विर्वचनं च न विहन्यते ।

( उद्घोतः ) भाष्येऽस्य पुनरिद् चेति । द्वित्वे कृते एकादेशे तत्प्राप्तेरिति भावः ॥ न विहन्यते ह्यस्येति । असेदो निमित्तं द्विर्वचनेन न विहन्यते यत इत्यर्थः ॥

( २०९५ वार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ द्विर्वचने चैकाच्त्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्विर्वचने कृते एकादेशो चैकाज्भवति ।

( २०९६ वार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ तस्मादिङ्बाधते द्वित्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्मादिङ् द्विर्वचनं बाधते ॥

( २०९७ वार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ अनूचानः कर्तरि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनूचानः कर्तरि ति वक्तव्यम् । अनूकवाननूचानः । अनूकमित्येवान्यत्र ॥

( उद्घोतः ) लकाराणां भावकर्मणोरपि सत्त्वेन तत्राप्यनूचानः स्यादतो भाष्ये कर्तरि ति ॥ १०९ ॥

नोपेयिवास्त्रिपात्यो द्विर्वचनादिङ् भविष्यति परत्वात् ।

अन्येषामेकाचां द्विर्वचनं नित्यमित्याहुः ॥

अस्य पुनरिद् च नित्यो द्विर्वचनं च न विहन्यते ह्यस्य । द्विर्वचने चैकाच्त्वात्तस्मादिङ्बाधते द्वित्वम् ॥

उपेयि ॥ १०९ ॥

( ५१२ लुङ्बिधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. १० )

८७७ लुङ् ॥ ३ । २ । ११० ॥

( २०९८ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ लुङ्लटोरपवादप्रसङ्गो भूतभविष्यतोरविशेषवचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लुङ्लटोरपवादः प्राप्नोति । अगमामघोषान् । अपाम पयः । अशयिष्महि पूतीकतृणेषु । गमिष्यामो घोषान् पास्यामः पयः शयिष्यामहे पूतीकतृणेषु । किं कारणम् । भूतभविष्यतोरविशेषवचनात् । भूतभविष्यतोर्ह्यविशेषेणैतौ विधीयेते

३ भावकर्मणोरित्यर्थः । ( र. ना. )

लुङ्लटौ, तयोर्विशेषविहितौ लङ्लुटावपवादौ प्राप्नुतः ॥

( प्रदीपः ) लुङ् ॥ ११० ॥ लुङ्लटोरिति । कालविशेषसङ्गावाश्रयेण चोद्यम् ।

( उद्घोतः ) लुङ् ॥ ११० ॥ भाष्ये लुङ्लटोरिति । तुल्यन्यायत्वात् लटोऽप्युपन्यासः ॥ कालविशेषेति । अगमामेत्याद्युदाहरणेषु अनद्यतनरूपेत्यर्थः ॥

( २०९९ आक्षेपोद्धारवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वापवादस्य निमित्ताभावाद-  
नद्यतने हि तयोर्विधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा एष दोषः । किं कारणम् ? । अपवादस्य निमित्ताभावात् । नात्रापवादस्य निमित्तमस्ति । किं कारणम् ? । अनद्यतने हि तयोर्विधानम् । अनद्यतने हि तौ लङ्लुटौ विधीयेते । न चात्रानद्यतनः कालो विवक्षितः । किं तर्हि ? । भूतकालसामान्यं भविष्यत्कालसामान्यं च ।

( प्रदीपः ) सामान्यविवक्षाश्रयेण प्रतिसमाधानम्—न वेति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्यपि तावदेतच्छक्यते वक्तुम्—गमिष्यामि घोषान्पास्यामः पयः । शयिष्यामि पूतीकृतणेषु । यत्रैतन्न ज्ञायते—किं कदेति । इह तु कथम्—‘अगमाम घोषान्, अपाम पयः, अशयिष्यामि पूतीकृतणेष्विति । यत्रैतन्निर्ज्ञातं भवति अमुष्मिन्नहनि गतमिति ॥

( प्रदीपः ) यत्रैतदिति । विशेषनिश्चयाभावात् सामान्यस्यैव युक्ता विवक्षेति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत्रापि नवापवादस्य निमित्ताभावादनद्यतने हि तयोर्विधानमित्येव । कथं पुनः सतो नामाविवक्षा स्यात् । सतोऽप्यविवक्षा भवति । तद्यथाऽलोमिका षडका अनुदरा कन्येति । असतश्च विवक्षा भवति । तद्यथा समुद्रः कुण्डिका विन्ध्योवर्धितकमिति ।

( प्रदीपः ) असतश्चेति । विवक्षोपाकृढ एवार्थः शब्दप्रयोगनिमित्तमित्येतदनेन द्रढयति । इह तु सदेव विशेषेषु सामान्यमाश्रित्य लुङादिप्रयोग उपपद्यत एव । विशेषविवक्षया तु लुङादिप्रयोग इति न कश्चिद्दोषः ॥

( उद्घोतः ) सतोऽप्यविवक्षयेति । सतामेव लोभानां सत्त्वेनाविवक्षया नञ्घटितप्रयोग इति भावः ॥ नन्वसतो विवक्षानिरूपणस्य प्रकृते नोपयोगोऽत आह—विवक्षोपेति ॥

१ भाष्यपुस्तकेषु तु प्रथमान्तपाठ एवोपलभ्यते । उद्घोतपुस्तकेषु तु तृतीया-  
न्तपाठ इति किं कुर्मः ॥

( ३००० वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ वसेर्लुङ् रात्रिशेषे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वसेर्लुङ् रात्रिशेषे वक्तव्यः । न्याय्ये प्रत्युत्थाने प्रत्युत्थितं कश्चित् कंचित्पृच्छति ‘क भवानुषित’ इति, स आह ‘अमुत्रावात्सम्’ इति । अमुत्रावसमिति प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) वसेर्लुङिति । रात्रेश्चतुर्थे यामे प्रबुद्धो यदा वाक्यं प्रयुङ्क्ते अमुत्रावात्समिति तदा तत्रातिक्रान्तरात्रिप्रहरत्रयवसनमनद्यतनमिति लङ्प्रसङ्गे लुङ् वक्तव्यः । एकस्या रात्रेश्चतुर्थो यामो दिवसश्च सर्वो द्वितीयायाश्च रात्रेः प्रथमोऽनद्यतन इत्याहुः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये न्याय्ये प्रत्युत्थाने इति । प्रत्युत्थानं जागरणम् । तत्समये प्रत्युत्थितं प्रबुद्धमित्यर्थः । प्रत्युपस्थितम् इति पाठेऽप्ययमर्थः । प्रस्थितमिति कचित्पाठः । तत्रापि प्रत्युत्थाय प्रस्थितमित्यर्थः । सै च रात्रेश्चतुर्थयाम एव, तत्र स्मृत्या प्रबोध-  
स्योक्तेः तदाह—रात्रेरिति ॥

( ३००१ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ जागरणसन्ततौ ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) जागरणसन्तताविति वक्तव्यम् । यो हि मुहूर्तमात्रमपि स्वपिति तत्र ‘अमुत्रावसम्’ इत्येव भवितव्यम् ॥ लुङ् ॥ ११० ॥

( प्रदीपः ) जागरणसन्तताविति । यदा प्रयोक्ता सकलमतिक्रान्तरात्रिप्रहरत्रयं जागरितवांसदा लुङ्प्रयोगः । यदा तु सुषवा प्रबुध्य प्रयुङ्क्ते तदा लङ्प्रत्यय एवेत्यर्थः ११०

( उद्घोतः ) अतिक्रान्तरात्रिप्रहरत्रयं जागरितवानिति । एवं हि पूर्वतनस्य प्रत्युत्थितं कंचित्पृच्छतीति ग्रन्थस्यासंगतिः, स्वापं विना प्रत्युत्थानासंभवात् । तस्माच्चतुर्थे यामे यदा जागरणसन्ततिरिति भाष्यार्थः । तत्र मुहूर्तमपि स्वापे लङेवेत्यर्थ इति केचित् ॥ ११० ॥

—><—

( ५१३ लङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ भा० ११ )

८७८ अनद्यतने लङ् ॥ ३ । २ । १११ ॥

( ३००२ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अनद्यतन इति बहुव्रीहिनिर्देशोऽद्य ह्योऽभुक्ष्महीति ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनद्यतन इति बहुव्रीहिनिर्देशः कर्तव्यः । अविद्यमानाद्यतनोनद्यतन इति ॥ किं प्रयोजनम् ? । ‘अह ह्योभुक्ष्महीति’ ॥ अद्य च ह्यश्वाभुक्ष्महीति व्याप्तिश्च लुङेव यथा स्यात् ॥

( उद्घोतः ) अनद्यतने लङ् ॥ १११ ॥ अनद्यतन इति यदि तत्पुरुषः पयुंदासश्च, तर्हि व्याप्तिश्च दोषः । प्रसज्यप्रतिषेधे-

२ रात्रिशेषेत्यर्थः । स्मृत्या, धर्मशास्त्रेणेत्यर्थः । ( ५. ना. )

३ लङापत्तिरूपो दोषो व्याप्तिश्रत्याप्यद्यतनमिज्जलः । ( १. ना. )

ऽसमर्थसमासो भूतसामान्ये च स्यादत आह—भाष्ये बहुव्रीहि-  
निर्देश इति । तथा चाविद्यमानाद्यतनभूतकालार्थवृत्तेर्धातोर्लङि-  
त्यर्थः । एवं च व्यामिश्रे न, भूतसामान्येऽपि नेति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्येवमद्यतनेपि लङ् प्राप्नोति । न ह्यद्यतनेद्यतनो  
विद्यते ।

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

अद्यतनेपि हि अद्यतनो विद्यते । कथम् ? व्य-  
पदेशिवद्भावेन ।

( प्रदीपः ) अनद्यतने ॥ १११ ॥ व्यपदेशिवद्भावे-  
नेति । यथा मुख्ये भेद आधाराधेयभावो भवति तटे तिष्ठ-  
तीति । तथेहापि समुदायावयवभेदाश्रयेण समुदायेऽद्यतनेऽव-  
यवा अद्यतनाः सन्तीत्यनद्यतनो न भवतीत्युच्यते । न तु तत्त्वतो  
ऽवयवव्यतिरिक्तोत्र समुदाय आधरोस्ति । तदुक्तं हरिणा—  
'कालस्याप्यपरं कालं निर्दिशन्त्येव लौकिकाः ।  
न च निर्देशमात्रेण व्यतिरेकोऽनुगम्यते' इति ॥

( उद्ध्योतः ) गौणाधारत्वाश्रयेण बीजमाह—न तु तत्त्वत  
इति ॥

कालस्यापीति । यथा दिने मुहूर्त इति । न च तावता मुहूर्त-  
समुदायातिरिक्तं दिनमस्तीत्यर्थः । अनुगम्यते प्रमाविषयो भवति ॥

( ३००३ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ परोक्षे च लोकविज्ञाते प्रयो-  
क्तुर्दर्शनविषये ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) परोक्षे च लोकविज्ञाते प्रयोक्तुर्दर्शन-  
विषये लङ्कृत्यः । अरुणद्यवनः साकेतम् । अरु-  
णद्यवनो मध्वमिकाम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

परोक्ष इति किमर्थम् ? ।

( प्रत्युदाहरणभाष्यम् )

उदगादादित्यः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

लोकविज्ञात इति किमर्थम् ? ।

( प्रत्युदाहरणभाष्यम् )

चकार कटं देवदत्तः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

प्रयोक्तुर्दर्शनविषय इति किमर्थम् ? ।

( प्रत्युदाहरणभाष्यम् )

जघान कंसं किल वासुदेवः ॥ अनद्यतने ॥ १११ ॥

रीपः ) परोक्षे चेति । अननुभूतत्वात्परोक्षोपि  
यतासात्राश्रयेण दर्शनविषये इति विरोधाभावः १११

( उद्ध्योतः ) भाष्ये जघानेति । कंसवधो हि नेदानीतन-  
प्रयोक्तुर्दर्शनयोग्योपीत्यर्थः ॥ अरुणदित्युदाहरणे तु तुल्यकालः  
प्रवर्तते बोध्यम् ॥ १११ ॥

( ५१४ लङ्विकल्पसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ० १२ )

८८१ विभाषा साकाङ्क्षे ॥ ३ । २ । ११४ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमुदाहरणम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

अभिजानासि देवदत्त कश्मीरान् गमिष्यामः ।  
तत्र सक्तून् पास्यामः । अभिजानासि देवदत्त क-  
श्मीरानगच्छाम । तत्र सक्तून्पिबाम ॥

( उद्ध्योतः ) विभाषा ॥ ११४ ॥ साकाङ्क्षे वर्तमानाद्  
धातोरित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

भवेत् पूर्वं परमाकाङ्क्षतीति साकाङ्क्षं स्यात्,  
परं तु कथं साकाङ्क्षम् ।

( प्रदीपः ) विभाषा सा ॥ ११४ ॥ भवेत्पूर्वमिति ।

यदतिप्रसिद्धं वासगमनादि तल्लक्षणम् तच्च परार्थमुपादीयमानं  
यत्तत्स्वार्थमाणत्वालक्ष्यं भोजनादि प्रति भवतु साकाङ्क्षम् ।  
लक्ष्यं तु प्रधानमपरोपकारि कथं साकाङ्क्षमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) तत्रैकस्य साकाङ्क्षत्वेऽप्युभयत्र कथं लङ्घितं शङ्क-  
ते—भवेत् पूर्वमिति ॥ तच्चावष्टे—यदतीति । वासगमनादे-  
र्लक्षणस्वे हेतुमाह—तच्चेति । यत् परबोधनार्थमुपादीयते तदेव  
लक्षणमित्यर्थः । यत्तत्स्वार्थमाणत्वालक्ष्यं भोजनादि, तत्प्रति भवतु  
लक्षणं साकाङ्क्षमित्यन्वयः । यद्यपि पुरुषगताकाङ्क्षैवार्थानां साका-  
ङ्क्षव्यवहारः । आकाङ्क्षायाश्चेतनधर्मत्वात् । तथापि तस्यापि गम-  
नेन सक्तुपानं बोधयिष्यामीत्येवाकाङ्क्षा, न तु विपरीतेति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

परमपि साकाङ्क्षम् । कथम् ? । अस्यस्मिन्ना-  
काङ्क्षेत्यतः साकाङ्क्षम् ॥

( प्रदीपः ) अस्यस्मिन्निति । सहशब्दो विद्यमानार्थ-  
वृत्तिः । तेन विद्यमानाकाङ्क्षः साकाङ्क्षोर्थ उच्यते, लक्ष्यल-  
क्षणयोश्च परस्परपेक्षत्वाद् द्वयोरपि साकाङ्क्षत्वमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) द्वयोरपीति । उक्ताकाङ्क्षायां द्वयोरपि विषय-  
त्वादिति भावः ॥ परस्परपेक्षत्वादिति । चिन्त्यं, लक्ष्यस्य लक्षणा-  
नपेक्षाया भाष्ये दर्शितत्वात् ॥ ११४ ॥

( ३००४ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ विभाषा साकाङ्क्षे सर्वत्र ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विभाषा साकाङ्क्षे सर्वत्रेति वक्त-  
व्यम् । क सर्वत्र ? । यदि चायदि च । यदि तावत्—  
अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरान् गमिष्यामः,

यत्कश्मीरानगच्छाम । यत्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे, यत्त-  
त्रौदनमभुञ्जमहि । अयदि—अभिजानासि देवदत्त  
कश्मीरान् गमिष्यामः कश्मीरानगच्छाम । तत्रौदनं  
भोक्ष्यामहे । तत्रौदनमभुञ्जमहि ॥ विभाषा सा०  
॥ ११४ ॥

( प्रदीपः ) सर्वत्रेति । यदीति नावुवर्तते । तेनोभयत्र  
विभाषेयमिति भावः ॥ ११४ ॥

( ५१५ लिङ्गविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ० १३ )  
८८२ परोक्षे लिट् ॥ ३ । २ । ११५ ॥

( परोक्षशब्दसिद्धयधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

परोक्ष इत्युच्यते । किं परोक्षं नाम ? ।

( प्रदीपः ) परोक्षे लिट् ॥ ११५ ॥ किं परोक्ष-  
मिति । यद्यपीन्द्रियाविषयोर्थः परोक्षशब्दवाच्य इति जानाति,  
तथापि सर्वस्याः क्रियायाः परोक्षत्वाद्विशेषणानर्थक्यमिति  
पृच्छति ॥

( उद्ध्योतः ) परोक्षे लिट् ॥ ११५ ॥ इन्द्रियाविषय इति ।  
इन्द्रियजन्यज्ञानाविषय इत्यर्थः ॥ तथापीति । यस्य क्रियायां व्यभि-  
चारस्तत्परोक्षं किमिति प्रश्नार्थ इति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

परमक्षणः परोक्षम् ॥

( प्रदीपः ) परमक्षण इति । मयूरव्यंसकादित्वात्समासः ।  
अचूप्रत्यन्ववपूर्वैत्यत्राजिति योगविभागादत एव वा निपा-  
तनादचूप्रत्यन्तः । यद्वा प्रतिपरसमनुभ्योक्षण इति टच्-  
समासान्तः । स च यद्यप्यव्ययीक्ये विधीयते तथापि परश-  
ब्दस्याक्षिशब्देनाव्ययीभावासंभवात्समासान्तरे विज्ञायते । वृ-  
त्तिविषये चाक्षिशब्दः सर्वेन्द्रियवाची, न तु चक्षुर्मात्रपर्यायः ।  
अन्यथेन्द्रियान्तरविज्ञातं वस्तु परोक्षशब्दवाच्यं स्यात् । अत  
एवान्ये दर्शनपर्यायोयमक्षिशब्दो न भवतीति अक्ष्णोदर्शना-  
दित्येवं समासान्तं कुर्वन्ति । ततो यदिन्द्रियात्परमिन्द्रियागो-  
चरतामापन्नं वस्तु तत्परोक्षमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) इन्द्रियागोचरत्वमेव परोक्षम् । तच्च साधन-  
द्वारा क्रियायामित्याशयेनोत्तरयति—परमित्यादि ॥ मयूरेति ।  
तत एव परशब्दस्य पूर्वनिपात इति बोध्यम् ॥ योगविभागस्य  
भाष्येऽदर्शनादाह—अत एवेति ॥ [ वृत्तिविषये त्वक्षिशब्दः सर्वे-

१ यद्वा अतएव ज्ञापकादव्ययीभावोपि कल्पनीय इति सिद्धान्तकौमुद्यां  
दीक्षिताः ॥ तत्र टिप्पण्यां दाधिमथेस्तृच्छब्दकृतया 'प्रतिपरि' इति गणसूत्र-  
मङ्गीकृत्य 'अपपरि' बहिरश्चः पञ्चम्या' इति समासस्य निर्वाधतया 'सिद्धं  
वाऽस्यानिपातनात्' इत्यनेनैवकाराकारयोरोकारनिपातनमपि दर्शितम् ॥

२ अयं कोष्ठकान्तर्गतः पाठो नैवोद्योतपुस्तकेषु दृश्यते । न जाने केनचिद्धि-  
द्वारेण प्रदीपे दृष्ट्वा तत्र स्वसंमतिप्रदर्शनायैवान्ते 'तत्त्वम्' इति लिखितम् ॥

३ व्युत्पत्तिद्वारेणेति वक्तव्येनान्वेति । ( र. ना. )

न्द्रियवचनो, न चक्षुःपर्यायः । अन्यथेन्द्रियान्तरविज्ञातं वस्तु  
परोक्षमापद्येत । एवं च कृत्वा दर्शनपर्यायोप्यक्षिशब्दो न भवती-  
त्यक्ष्णोऽदर्शनादित्येवाचू समासान्त इति तत्त्वम् ॥ ] प्रतिपरेति ।  
शरदाद्यन्तर्गणसूत्रम् । इन्द्रियाजन्यं ज्ञानं परोक्षम् । अत एव परोक्षं  
ज्ञानमित्युपपद्यते । अर्शआद्यत्रा तद्विषयोपि तथा । अत एव क्रि-  
यायां परोक्षायामिति भाष्यप्रयोग उपपन्नः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

अक्षि पुनः किम् ? ।

( प्रदीपः ) अक्षि पुनरिति । किं चक्षुरेवाक्षिशब्देनो-  
च्यते अथ सर्वमिति प्रश्नः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अश्रोतेरयमौणादिकः करणसाधनः सिप्रत्ययः ।  
अश्रुतेऽनेनेत्यक्षि ।

( प्रदीपः ) अश्रोतेरिति । व्युत्पत्तिद्वारेण विषयव्याप-  
नात्सर्वमिन्द्रियं वृत्तिविषयेऽक्षिशब्दो वक्तव्यार्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्येवं परोक्षमिति प्राप्नोति ।

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः ॥

( ३००५ निपातनवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ परोभावः परस्याक्षे परोक्षे  
लिटि दृश्यताम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) परशब्दस्याक्षिशब्दे उत्तरपदे परो-  
भावो वक्तव्यः ॥

( ३००६ निपातनान्तरवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उत्वं वादेः परादक्षणाः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा परशब्दादुत्तरस्याक्षिशब्द-  
स्योत्वं वक्तव्यम् ॥

( ३००७ निपातनान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं वास्मान्निपातनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा निपातनादेव सिद्धं "परोक्षे  
लिट्" इति ॥

( प्रदीपः ) सिद्धं वेति । निर्भागः समुदाय एवेन्द्रिया-  
गोचरार्थवाची निपात्यत इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) निर्भाग इति । सभागनिपातनस्य गुरुत्वादिति

४ 'अक्षशब्दोऽपीन्द्रियवाच्यस्तीति नास्मिन्पक्षे समासान्तकरणक्षेप इति  
'प्रतिपरसमनुभ्यः' इति गणसूत्रे परपदोपादानमन्यनार्थमेवेति अत्र गणसूत्रे  
परग्रहणं प्रक्षिप्तमिति परोक्षे लिङिति सूत्रभाष्यकैयटस्वरस इति शब्देन्दो  
नानेशः ॥ अत्र दाधिमथाः—परोक्षशब्दसाधनप्रकारत्रये आद्यन्तप्रकारयोः  
समासान्तानावश्यकत्वेऽपि मध्यमे 'उत्वं वादेः परादक्षणाः' इति प्रकारे सना-  
सान्तकरणस्यावश्यकत्वमेवोचितम् । अत एव प्रदीपे यदा 'प्रतिपरसमनुभ्यो  
ऽक्ष्ण' इति साक्षादेवोपात्तम् ॥ इति वदन्ति ॥

भावः । अवयवार्थाप्रतीतिश्च ॥ इन्द्रियागोचरार्थवाचीति । तद्विषयकज्ञानवाचीत्यपि बोध्यम् ॥

( परोक्षार्थविशेष्यविचाराधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

कस्मिन्पुनः परोक्षे लिङ् भवति ? ।

( समाधानभाष्यम् )

काले ।

( प्रदीपः ) काल इति । यथा कालस्य नित्यपक्ष उपाधिभेदाद् भूतादिव्यपदेशस्तथा परोक्षत्वमपि । अनित्यक्रियारूपकालपक्षे तु स्वत एव परोक्षत्वम् ।

( उद्द्योतः ) ननु कालः सर्वस्यापि इदानीमित्यादि व्यवहारोपापरोक्ष एवेत्यत आह—यथेति । नित्यपक्ष इति । नित्यत्वपक्ष इत्यर्थः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

न वैकालाधिकारोस्ति ।

( समाधानान्तरभाष्यम् )

एवं तर्हि “धातोः” इति वर्तते, धातौ परोक्षे ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

धातुर्वै शब्दः । न च शब्दस्य प्रत्यक्षपरोक्षतायां संभवोस्ति ।

( प्रदीपः ) न च शब्दस्येति । प्रत्ययप्रकृतेः शब्दस्योच्चार्यमाणस्यानुभूतत्वात्परोक्षत्वासंभवः । ततो यथा प्रत्यक्षत्वमव्यभिचाराच्छब्दस्य विशेषणं न संभवति, एवं परोक्षत्वमप्यसंभवादविशेषणमित्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये प्रत्यक्षपरोक्षतायामिति । प्रत्यक्षपरोक्षत्वयोर्विशेषणतायामित्यर्थः ॥ तत्र प्रत्यक्षत्वेन विशेषणस्य काव्यभावात्तदुपादानमसंगतमत आह—यथा प्रत्यक्षत्वमिति ।

( समाधानसाधकभाष्यम् )

शब्देऽसंभवादर्थे कार्यं विशास्यते—परोक्षे धातौ=परोक्षे धात्वर्थे इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कः पुनर्धात्वर्थः ।

( प्रदीपः ) कः पुनरिति । यद्येकैकः क्षणो धात्वर्थस्तदा तस्य प्रत्यक्षत्वपरोक्षत्वसंभवादुक्तं विशेषणम् । अथ समूहस्तस्य युगपदसंनिधानादप्रत्यक्षत्वाव्यभिचारात्परोक्षत्वमविशेषणमिति मत्वा प्रश्नः ।

( उद्द्योतः ) युगपदसंनिधानादिति । अतः सदस्तुविषयैतिन्द्रियेन गृह्यते इत्यप्रत्यक्ष एवेत्यर्थः ।

( समाधानभाष्यम् )

क्रिया । क्रियायां परोक्षायामिति ॥

( प्रदीपः ) क्रियेति । समूहरूपेति भावः ॥

( उद्द्योतः ) एवं वैकैकस्य प्रत्यक्षत्वेपि समूहरूपो धात्वर्थः परोक्ष एव । अत एव पिण्डीभूता निदर्शयितुमशक्येत्युक्तमिति

भावः । वस्तुतोऽवयवशोऽप्यप्रत्यक्षत्वमेवेति उक्तं प्राक् । किं चावयवशः प्रत्यक्षत्वे एकैकत्रावयवे समुदायरूपारोपेण भूतत्वादिवत् प्रत्यक्षत्वस्यापि संभवेन तद्व्यावृत्त्यर्थं परोक्ष इति विशेषणोपपत्तौ साधनादिप्रत्यक्षत्वेन तत्प्रत्यक्षत्वोपपादनं भाष्योक्तमसंगतं स्यात् । अत एवात्यन्तापरदृष्टेयत्यन्तपदं चरितार्थम् ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

यद्येवं ह्योपचदित्यत्र लिङ् प्राप्नोति । किं कारणम् ? । क्रिया नामेयमत्यन्तापरदृष्टा अनुमानगम्याऽशक्या पिण्डीभूता निदर्शयितुम् । यथा गर्भो निर्लुठितः ॥

( उद्द्योतः ) ननु अवयवानां सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्समूहस्य प्रत्यक्षत्वं स्यादत आह—अशक्येति । पिण्डीभूतापि निदर्शयितुमशक्याऽवयवानां क्षणिकत्वेन पिण्डीभावस्यैवाभावादिति भाव इति बोध्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि साधनेषु परोक्षेषु ।

( प्रदीपः ) साधनेष्विति । शक्तिशक्तिमतोरभेदविवक्षया साधनशब्देन शक्तिमन्ति द्रव्याण्युच्यन्ते ।

( आक्षेपभाष्यम् )

साधनेषु च परोक्षेषु भवतः कः संप्रत्ययः ? ।

( प्रदीपः ) इतरो यथोक्तमभिप्रायमप्रतिपद्य पृच्छति—साधनेष्विति ॥

( उद्द्योतः ) साधनेषु चेति भाष्ये साधनपदेन किं भवान्मन्यते इत्यर्थः ।

( समाधानभाष्यम् )

यदि तावद् गुणसमुदायः साधनम् । साधनमप्यनुमानैर्गम्यम् ॥

( प्रदीपः ) गुणसमुदाय इति । शक्तीनां समुदाय इत्यर्थः । समुदायग्रहणं सर्वासां करणादिशक्तीनां क्रियासिद्धौ निमित्तत्वाविशेषात् साधनत्वप्रतिपादनार्थम् । तेन यावदुक्तं सर्वाः शक्तयः साधनमिति तावद् गुणसमुदायः साधनमिति । साधनमपीति । शक्तीनां नित्यानुमेयत्वात् ॥

( उद्द्योतः ) नन्वेकैकस्या अपि शक्तेरप्रत्यक्षत्वात्समुदायग्रहणं व्यर्थमत आह—समुदायेति । नित्यानुमेयत्वादिति । तत्त्वं चातीन्द्रियत्वाद्बोध्यम् ॥

( भाष्यम् ) अथान्यद् गुणेभ्यः साधनम्, भवति प्रत्यक्षपरोक्षतायां संभवः ॥

( प्रदीपः ) अथान्यदिति । शक्तिव्यतिरिक्तं शक्तिमद्द्रव्यमित्यर्थः । तत्र द्रव्यप्रत्यक्षत्वे लोकस्य क्रियाप्रत्यक्षत्वाभिमानः तत्परोक्षत्वे क्रियापरोक्षत्वमित्यर्थः ॥

१ साधनेषु परोक्षेषु इति द्रवाणस्य भवतः साधनशब्देन किंविषयकः श्रोतुः संप्रत्ययोऽभिप्रेत इति योजना । ( र. ना. )

२ ततश्च तस्य परोक्षत्वाव्यभिचारात् परोक्ष इति विशेषणासंभव इति भावः । ( र. ना. )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ यद्वा नेन रथ्यायां तण्डुलोदकं दृष्टं कथं तत्र भवितव्यम्,

( समाधानभाष्यम् )

यदि तावत्साधनेषु परोक्षेषु ? । पपाचेति भवितव्यम् । भवन्ति हि तस्य साधनानि परोक्षाणि ।

( प्रदीपः ) यदि तावदिति । दृष्ट्वापि तण्डुलोदकं यदा न निश्चितवान् किमेते तण्डुलाः पच्यन्तेऽथ ह्वयन्तेऽथ कुच्यन्ते इति तदा प्रमाणान्तरेण यदा कालान्तरे प्रयोक्ता पाकमवगम्य वाक्यं प्रयुक्ते तदा साधनत्वस्य संरम्भरूपस्य परोक्षत्वात्पपाचेति प्रयुक्ते ॥

( उद्ध्योतः ) ननु तण्डुलोदकदर्शनकाले पाकस्य भूतत्वाभावात्कथं लिट्प्रयोगोऽत आह—दृष्ट्वापीति ॥ साधनस्य तच्छक्त्याश्रयस्य ॥ संरम्भरूपस्येति । संरम्भः शक्तिस्तदाविष्टरूपस्येत्यर्थः । संरम्भशब्दोऽर्थ आद्यजन्तः ॥ पपाचेति युक्तमिति पाठः ।

( भाष्यम् ) अथ य एते क्रियाकृता विशेषाश्चीत्काराः फूत्काराश्च तेषु परोक्षेषु, एवमपि पपाचेति भवितव्यम् ॥

( प्रदीपः ) अथेति । क्रियाकृतविशेषप्रत्यक्षत्वेऽपि लोकास्य क्रियाप्रत्यक्षत्वाभिमानः । तत्परोक्षत्वे तु पपाचेत्येव भाव्यमित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये सीत्काराः फूत्काराश्चेति पाठः । क्रियाकृतविशेषप्रत्यक्षत्वेऽपीति । अपिना साधनप्रत्यक्षत्वेपीत्यर्थः ।

( परोक्षकालनिर्णयाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

कथंजातीयकं पुनः परोक्षं नाम ? ।

( प्रदीपः ) कथंजातीयकमिति । यस्मिन् भूतानयतनपरोक्षे लिटा भाव्यं तत्परिज्ञानाय प्रश्नः ॥

( समाधानभाष्यम् )

केचित्तावदाहुः—वर्षशतवृत्तं परोक्षमिति ॥

अपर आहुः—वर्षसहस्रवृत्तं परोक्षमिति ॥

अपर आहुः—कुल्यकटान्तरितं परोक्षमिति ॥

अपर आहुः—व्यहवृत्तं त्र्यहवृत्तं चेति ॥

( प्रदीपः ) केचिदिति । मतभेदप्रदर्शनायानेकदर्शनोपन्यासः । इन्द्रियागोचरसाधनसाधितानयतनक्रियावाचिनस्तु धातोर्लिट्प्रत्यय इति निर्णयः । तथाच ह्यःपपाचेत्याद्यपि भवति ॥

( उद्ध्योतः ) इन्द्रियागोचरसाधनेति । तत्र क्रियाकृतविशेषरूपसीत्कारादिविशिष्टस्य संरम्भरूपस्य चेन्द्रियागोचरत्वं बोध्यम् ।

१ साधनस्येव प्रदीपे पाठो नागेशेनोपलब्धो भवेत् । अत एव समञ्जसायै संरम्भशब्दोऽर्थआद्यजङ्गीकृतः ॥

( उत्तमपुरुषोपपादनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

सर्वथोत्तमो न सिध्यति ॥

( प्रदीपः ) सर्वथेति । आत्मसाध्यायाः क्रियायाः प्रत्यक्षत्वाभिमान इति भावः ॥

( ३००८ समाधानवार्तिकम् ४ )

॥ \* ॥ सुप्तमत्तयोरुत्तमः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुप्तमत्तयोरुत्तम इति वक्तव्यम् । सुप्तोहं किल विललाप । मत्तोहं किल विललाप । सुप्तोन्वहं किल विललाप । मत्तोन्वहं किल विललाप ॥

( प्रदीपः ) सुप्तमत्तयोरिति । सुप्तमत्तग्रहणं चित्तविक्षेपनिमित्तोपलक्षणम् ॥

( उद्ध्योतः ) अचित्तव्याक्षेपस्यले उत्तमासिद्धाविष्टापत्ति सूचयन् चित्तव्याक्षेपे तदुदाहरणमाह—सुप्तेति ॥

( परोक्षत्वाङ्गीकारभाष्यम् )

अथ वा भवति वै कश्चिज्जाग्रदपि वर्तमानं कालं नोपलभते । तद्यथा वैयाकरणानां शाकटायनो रथमार्गे आसीनः शकटसार्थं यान्तं नोपलेभे ।

किं पुनः कारणं कश्चिज्जाग्रदपि वर्तमानकालं नोपलभते ? ।

मनसा प्रयुक्तानीन्द्रियाण्युपलब्धौ कारणानि भवन्ति, मनसोऽसांनिध्यात् ।

( प्रदीपः ) असान्निध्यादिति । विषयान्तरेणाकृष्टत्वा-न्मदाद्यभिभवाद्देति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) जागरेऽमत्तत्वेऽपि पारोक्ष्यं दर्शयति—अथ वेति । वैयाकरणानां शाकटायन इत्यनेन तस्यामत्ततोक्ताऽन्यचित्तता च ॥ भाष्ये वर्तमानकालमिति । वर्तमानकालं वस्त्वित्यर्थः ॥ मनसा इति । यद्यपि पातञ्जलानामन्तःकरणं व्यापकं तथापि तत्परिणामविशेषो मनश्चिरस्थायी, मध्यमपरिमाणं संकोचविकासशालि ज्ञानकारणमिति भावः ॥ अत एव सदा न ज्ञानयोगपथं कदाचित्छोगपथमपि इति दिक् ॥

( ३००९ लिट्विधिवार्तिकम् ५ ॥ )

॥ \* ॥ परोक्षे लिट्यन्तापह्वे च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) “परोक्षे लिट्” इत्यत्र “अत्यन्तापह्वे च” इति वक्तव्यम् । नो खण्डिकान् जगाम । नो कलिङ्गाजगाम । न कारिसोमं प्रपपावशे, न दूर्ध्वजस्य प्रतिजग्राह, को मे मनुष्यः प्रहरेद्भयाय ॥

परो भावः परस्याक्षे परोक्षे लिटि दृश्यताम् ।

उत्वं वादेः परादक्ष्णः सिद्धं वासान्निपातनात् ॥ परोक्षे लिट् ॥ ११५ ॥

( प्रदीपः ) अत्यन्तापह्वे चेति । न केवलं तद्देशस्य

भोजनादेरपहवः, यावत्तद्देशगमनादेरपि, यदि भवतीत्यर्थः ॥  
खण्डिका नाम जनपदः । त्वया 'अयाज्यो याजित' इत्युक्तः  
कश्चिदाह 'नकारिसोमम्' इति । कारी याजक ऋत्विगु-  
च्यते । तस्य सोमं नाहं पपी । ऋत्विग्भूत्वा सोमं न पीत-  
वान् । अपि तु यजमान एव भूत्वेत्यर्थः । ऋत्विक्क्रमेवापहृते ।  
तथा 'प्रतिग्रहस्त्वयाऽयोग्याद् गृहीतः' इत्युक्त आह—न दा-  
र्वजस्येति । दार्वो नाम जनपदविशेषः । तत्र जातस्याहं न  
प्रतिजग्राहेति सर्वथा प्रतिग्रहीतृत्वमपहृते ॥ को मे मनुष्य  
इति । को मनुष्यो वधाय ममासत्वारोपणेन प्रहरेदित्यर्थः ११५

( उद्ध्योतः ) जनपद इति । कलिङ्गखण्डिकादिषु त्वया भुक्त-  
मिति पृष्ठे तत्कारणीभूतगमनप्रतिषेधादत्यन्तापह्वोत्रेति बोध्यम् ॥  
तस्य सोममिति । तदंशभूतं सोममित्यर्थः ॥ फलितमाह—ऋत्वि-  
ग्भूत्वेति ॥ त्वयाऽयोग्यादिति । दार्वदेशीयादिति शेषः ॥ को  
मनुष्य इति । यतोऽहं न प्रतिजग्राह अत इत्यादिः ॥ परेतु  
'मरुतस्त्वयि प्रहरिष्यन्ति' इत्यग्निनोक्ते इन्द्रस्येदं वाक्यम्—खण्डि-  
कादिषु भोजनवतः अयाज्यऋत्विक्कर्मकृतवतोऽसतोदार्वजात्प्रतिग्रही-  
तुर्वा मनुष्य(स्य)प्रहारो न मम, तद्देशे गमनस्यैवाभावात् । ऋत्वि-  
कत्वस्यैवाकरणात् दार्वजतः प्रतिग्रहस्यैवाग्रहणान्मयि तस्य न प्रहारे  
सामर्थ्यमित्यर्थमाहुः ॥ ११५ ॥

( ५१६ लट्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. १४ )

८८५ लट् स्मे ॥ ३ । २ । ११८ ॥

( ३०१०-११ वार्तिकद्वयम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ 'सपुरा भूतमात्रे' 'न  
सपुराद्यतने' ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) 'सपुरा भूतमात्रे' 'न सपुराद्यतने'  
ति वक्तव्यम् ।

( प्रदीपः ) लट् स्मे ॥ ११८ ॥ इत आरभ्य पञ्चसूत्र्यां  
कालविभागप्रतिपादनाय वार्तिकद्वयम्—'सपुराभूतमात्रे'  
'\* न स पुराद्यतन\*' इति । तस्यायमर्थः—प्रथमे वार्तिके  
सपुराशब्दाभ्यामाद्यन्ताभ्यां पञ्चसूत्री लक्ष्यते । तत्र भूतमात्रे  
प्रत्ययो भवति । सपुरालक्षणस्तु प्रत्ययोद्यतने न भवति ॥  
एतदुक्तं भवति—'लट् स्मे' 'अपरोक्षे च' 'पुरि लुङ्  
चास्मे' इति सूत्रत्रयेणानद्यतने भूतविशेषे प्रत्ययो भवति ।  
'ननौ पृष्टप्रतिवचने' 'नन्वोर्विभाषेत्येताभ्यां तु भूत-  
मात्रे प्रत्ययः । तत्र सपुरेति वार्तिकद्वये विधिप्रतिषेधयोरु-  
पादानाद्भूतमात्रस्य विधानात्तस्यैव चाद्यतननिषेधद्वारेणानद्यत-  
नलक्षणविशेषप्रतिपादनेन निषेधादेकस्मिन्विषय एकस्य विधि-  
प्रतिषेधयोरत्यन्तविरोधात् पूर्वोक्तविषयविभाग आश्रीयते ॥

( उद्ध्योतः ) लट् स्मे ॥ ११८ ॥ प्रथमे वार्तिके इति ।  
यद्यप्युपसंज्ञाविरोधाद् द्वितीयवार्तिके लक्षणा युक्ता तथापि लक्ष्यानु-

रोधादग्रिमभाष्याच्चात्रैव लक्षणेति भावः ॥ तत्र लक्षणाश्रयणे बीज-  
माह—तत्र स्मेति ॥ भूतमात्रस्य विधानादिति । आद्ये वार्तिके  
इति भावः ॥ निषेधादिति । अनद्यतनलक्षणविशेषप्रतिपादने  
निषेधतात्पर्यादित्यर्थः । एकस्मिन्विषये—'लट् स्मे' 'अपरोक्षे च'  
'पुरि लुङि' इति सूत्रत्रयविषये ॥ भूतमात्रविधि अद्यतननिषेधयो-  
र्विरोधः ॥ पूर्वोक्तेति । आद्ये पञ्चसूत्री लक्षणरूपः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमयं स्मादिविधिः पुरान्तोऽविशेषेण भूतमात्रे  
भवति । तत्र वक्तव्यं 'सलक्षणः पुरालक्षणश्चा-  
द्यतने न भवत' इति ॥

आहोस्वित् 'सलक्षणः पुरालक्षणश्चाविशेषेण  
भूतमात्रे भवत' इति । तत्र स्माद्यर्थं 'न सपुरा-  
द्यतन' इति वक्तव्यम् ? ।

( प्रदीपः ) किमयमिति । सपुराभूतमात्र इत्यत्र  
वार्तिके सपुराशब्दाभ्यां यदि पञ्चसूत्री लक्ष्यते तदा मध्यमौ  
योगौ भूतमात्रे भवतो, न सपुराद्यतन इति वचनाच्च सपु-  
रालक्षणो विधिरनद्यतन एव ।

अथ सपुराभूतमात्र इत्यनेन सपुरालक्षणस्यैव विधेर्भूत-  
मात्रं निर्दिश्यते । न सपुराद्यतन इत्यत्र वार्तिके सपुराश-  
ब्दाभ्यां मध्यमौ योगौ लक्ष्येते तदा 'ननौ पृष्टप्रतिवचने'  
'नन्वोर्विभाषेत्येताभ्यां योगाभ्यामनद्यतन एव विधिना  
भवितव्यमिति प्रश्नः ।

( उद्ध्योतः ) मध्यमौ योगौ लक्ष्येते इति । आद्यन्ताभ्यां  
पञ्चसूत्रीग्रहणेऽपि सूत्रत्रये भूतमात्र इति विशेषोक्तेर्मध्यमयोरैवै-  
तत्फलमिलाशयेनेदमुक्तम् । ननाविति नन्वोरिति च मध्यमौ  
योगौ ॥ इति प्रश्न इति । तत्र विनिगमकाभावादिति भावः ॥  
भाष्ये स्माद्यर्थमित्यतदुपसंविज्ञानो बहुव्रीहिरिति बोध्यम् ॥

( भाष्यम् ) किं चातः ? ।

( प्रदीपः ) किं चात इति । एकतरस्मिन् वार्तिके सपु-  
राशब्दावुपलक्षणत्वेनाश्रयणीयौ तत्र पूर्वस्मिन् परस्मिन् वा  
विशेषमपश्यन् पृच्छति ।

( उद्ध्योतः ) विशेषमपश्यन्निति । अक्षरलाघवगौरवरूपं विनि-  
गमकमित्यर्थः । अन्यथा फलविशेषस्य स्पष्टतया तदसंगतिः स्पष्टैव ॥

( ३०१२ पूर्ववार्तिकप्रत्याख्यानवार्तिकम् २ )

॥ \* ॥ स्मादिविधिः पुरान्तो यद्यविशे-  
षेण किं कृतं भवति न सपुराद्यतन  
इति ब्रुवता कात्यायनेनेह ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्मादिविधिः पुरान्तो यद्यविशेषेण  
भवति, किं वार्तिककारः प्रतिषेधेन करोति—न  
सपुराद्यतन इति ॥

१ यदि तद्देशगमनादिर्भवति तदा तद्देशगमनादेरपि यावदपहव इति  
योजना । ( र. ना. )

२ भागमिति शेषः । ( र. ना. )

३ 'लट् स्मे' ( ११८ ) 'अपरोक्षे च' ( ११९ ) 'ननौ पृष्टप्रतिवचने' ( १२० )  
'नन्वोर्विभाषा' ( १२१ ) 'पुरि लुङ् चास्मे' ( १२२ ) इति पञ्चसूत्री ॥

( प्रदीपः ) इतरो वार्तिकप्रत्याख्यानानाम् मया विकल्पित-  
मेतदित्याह—स्मादिविधिरिति । लट्स्मे । अपरोक्षे  
च । पुरि लुङ् चास्मे । इत्येतेषु योगेष्वनद्यतनग्रहणानुवृ-  
त्त्येष्टस्यार्थस्य सिद्धत्वाच्च स्म पुराद्यतन इति वार्तिकं न कर्त-  
व्यमित्यर्थः ॥

( ३०१३ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अनुवृत्तिरनद्यतनस्य लट् स्म इति  
तत्र नास्ति नञ्कार्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) “लट् स्मे” इत्यत्रानद्यतन इत्येतदनु-  
वर्तिष्यते ॥

( ३०१४ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अपरोक्षानद्यतनौ ननौ च नन्वोश्च  
विनिवृत्तौ ॥ ‘न पुराद्यतन’ इति  
भवेदेतद्वाच्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्रैतावद्वक्तव्यं स्याद्—‘न पुरा-  
द्यतन’ इति ॥

( प्रदीपः ) अपरोक्षानद्यतनाविति । तेन भूतमात्रे  
एताभ्यां योगाभ्यां विधिरित्यर्थः ॥ पुरि लुङ् चास्म इत्य-  
त्राप्यनद्यतनग्रहणनिवृत्तौ भूतमात्रे विधिः प्राप्नोतीत्याह—न  
पुरेति ॥

( ३०१५ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र चापि लुङ्ग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र चापि लुङ्ग्रहणं ज्ञापकम्—न  
पुरालक्षणोद्यतने भवतीति ॥

( प्रदीपः ) तत्रेति । पुरि लुङ् चास्म इत्यत्रानद्यतन-  
ग्रहणमनुवर्तते इत्येतद्लुङ्ग्रहणेन ज्ञाप्यते । यदि तु भूतमात्रेऽयं  
विधिः स्यात्तदा नन्वोर्विभाषेयतो विभाषाग्रहणानुवृत्त्या विक-  
ल्पेन लटो विधानात् पक्षे लुङ् भविष्यति किं लुङ् ग्रहणेन ।  
अनद्यतनानुवृत्तौ तु लुङ् ग्रहणमन्तरेण पक्षे लुङ् न लभ्यते  
लडा बाधितत्वाद् इति भावः ॥

( उद्घोतः ) अपरोक्षानद्यतनावितीति । अपरोक्षे चेति  
सूत्रस्यमपरोक्षग्रहणमिति बोध्यम् । एवं च तन्निवृत्तेरिवानद्यतन  
इत्यस्यापि निवृत्तिर्भविष्यतीति निषेधवार्तिकं व्यर्थमित्याशयः ॥  
ज्ञापकमुपपादयति—यदि त्विति ।

( भाष्यम् ) अथ बुद्धिरियम् ‘अविशेषेण स्मपुरा  
हेतू’ इति, तत्र चापि शृणुभूयः ॥

अपरोक्षे चेत्येष प्राक् पुरिसंशब्दनादविनिवृत्तः ।  
सर्वत्रानद्यतनस्तथासति नञा किमिह कार्यम् ॥

( प्रदीपः ) अथ बुद्धिरिति । ‘लट्स्मे’ ‘पुरि लुङ्  
चास्मे’ एतावाद्यन्तौ योगौ यदि भूतमात्रे भवत इत्यर्थः ॥  
स्मपुराहेतू इति । स्मपुराशब्दौ प्रत्ययोत्पत्तेर्निमित्ते इत्यर्थः ॥  
तत्र चापीति । अयमर्थः—\*न स्म पुराद्यतने\* इत्ययं  
निषेधो यद्याद्यन्तोपलक्षितमध्यमयोगविषयस्तदा न कर्तव्य  
एव । अपरोक्षग्रहणं ननौ पृष्टप्रतिवचने ‘नन्वोर्विभाषे’—  
त्यत्रानुवर्तिष्यते । तदनुवृत्त्याऽनद्यतनग्रहणानुवृत्तिरनुमास्यते ।  
यस्मात्परोक्षानद्यतनयोः प्रकृतत्वेऽन्यतरनिवृत्तिरित्येन क्रिय-  
माणा द्वितीयस्यानुवृत्तिमनुमापयति । अपरोक्षग्रहणेन हि परो-  
क्षाधिकारो निवर्त्यते, यथा—अङ्गग्रहणं द्वन्द्वाधिकार-  
ग्रहणनिवृत्त्यर्थमित्युक्तम् ॥

( उद्घोतः ) द्वितीयपक्षेऽपि वैयर्थ्यमुपपादयति—भाष्ये अथ  
बुद्धिरिति । भूतमात्रे लटः स्म—पुराशब्दौ हेतू इत्यर्थः ॥ निव-  
र्त्यते इति । लट् स्मे इत्यत्र परोक्षानद्यतनयोर्निवृत्त्या स भूतमात्रे  
सिद्धः । एवं चापरोक्षे इत्यस्यायमर्थः—उत्तरसूत्रद्वये परोक्ष इति  
निवृत्तमिति । तेन तत्रानद्यतनानुवृत्तिर्भवतीति उत्तरवार्तिकं व्यर्थ-  
मेवेति भावः ॥

( अपरोक्षे च इत्यस्य प्रत्याख्यानभाष्यम् )

स्मादावपरोक्षे चेत्यकार्यमपि शक्यमेतदिति  
विद्धि ।

शक्यं हि निवर्तयितुं परोक्ष इति लट् स्म इत्यत्र ॥

( प्रदीपः ) इदानीमपरोक्षे चेत्येतत् सूत्रं प्रत्याख्यातु-  
माह—स्मादाविति । स्मादिग्रहणेन ‘स्मादिविधिः पुरान्त’  
इत्येष पक्षो लक्ष्यते । लट् स्म इत्यादिसूत्रेषु परोक्षग्रहणस्य  
निवृत्तत्वाद् अपरोक्षे चेत्येतत्सूत्रं न कर्तव्यमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) प्रत्याख्यातुमाहेति । प्रथमपक्ष इति शेषः ॥  
प्रथमपक्षे लाघवेन स एव पक्षः परिग्राह्य इति बोधयितुमिति भावः ॥

( सूत्रसमर्थनभाष्यम् )

स्यादेषा तव बुद्धिः स्मलक्षणेऽप्येवमेव सिद्ध-  
मिति ।

लट् स्म इति भवेन्नार्थस्तस्मात्कार्यं परार्थं तु ॥  
एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यः—‘स्मलक्षणः पुरालक्षण-  
श्चानद्यतने भवतः’ इति ॥ लट् स्मे ॥ ११८ ॥

( प्रदीपः ) इदानीमाचार्यः सूत्रं समर्थयितुमाह—  
स्यादेषेति । यदि त्वं मन्यसे लट् स्म इत्यत्र परोक्षग्रहणनि-  
वृत्तौ सत्यां परोक्षे चापरोक्षे च लङ् भविष्यतीति नार्थोऽपरोक्षे  
चेत्येतत्सूत्रेणेति । तत्र । यस्मादपरोक्षग्रहणमनद्यतनानु-  
वृत्तिज्ञापनार्थं कर्तव्यम् । लट् स्म इत्ययं योगः परोक्षानद्यतने  
वर्तते । यदि ह्यत्र परोक्षग्रहणं निवर्तते तदा तत्संबद्धमनद्यतन-  
ग्रहणमपि निवर्तते तस्मादपरोक्षे चेति सूत्रारम्भात् लट् स्मे  
इत्ययं योगः परोक्षानद्यतनविषयः, अपरोक्षे चेत्ययमपरोक्षान-

१ परोक्षनिवृत्तिरित्यर्थः । द्वितीयस्य, अपरोक्षग्रहणस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

२ लट् स्म इति सूत्रेण अपरोक्षे च इत्यस्यार्थः प्रयोजनं न भवेत् तस्मात्परा-

र्थम् अनद्यतनानुवृत्तिज्ञापनार्थम्, अपरोक्षे चेति सूत्रं कार्यमित्यर्थः । ( र. ना. )



यतनविषयः । पुरि लुङ् चास्म इत्ययं तु लङ्ग्रहणादनद्यत-  
नविषयः । मध्यमौ तु भूतमात्रविषयाविति सूत्रेणैव व्यवस्थायाः  
सिद्धलाक्षायां वार्तिकारम्भेणेत्यर्थः । ननौ पृष्टप्रतिवचन  
इत्ययं योगो येन नाप्राप्तित्यायेन लुङो बाधकः, परत्वेन  
लङ्लिटोः ॥ ११८ ॥

( उद्ध्योतः ) इदानीमिति । तत्पक्षस्यैव ज्ञापकतया सूत्रं  
समर्थयितुमित्यर्थः ॥ मध्यमौ त्विति । परोक्षग्रहणस्यापरोक्षग्रहणस्य  
च निवृत्त्या तत्सहचरितानद्यतनग्रहणस्यापि निवृत्तेरिति भावः ॥  
भाष्ये एवं तर्हि ज्ञापयत्याचार्यः स्मलक्षणश्चानद्यतने इति ।  
तत्र सग्रहणे इदं ज्ञापकं, पुराग्रहणे तु लुङ् ग्रहणमिति विवेको  
बोध्यः ॥ नन्वेवं ननुयोगेऽनद्यतने लङ्लिटौ स्यातां ताभ्यां येन  
नाप्राप्त्यभावेन तद्वाधयोगादत आह—ननाविति ॥ ११८ ॥

( ५१७ लङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. १५ )

८८७ ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥ ३।२।१२० ॥

( ३०१६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ ननौ पृष्टप्रतिवचन इत्यशिष्यं  
क्रियासमाप्तेर्विवक्षितत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ननौ पृष्टप्रतिवचन इति अशिष्यो  
लङ् । किं कारणम् ? । क्रियासमाप्तेर्विवक्षितत्वात् ।  
क्रियाया अत्र असमाप्तिर्विवक्षिता । एष एव न्या-  
य्यो वर्तमानः कालः यत्र क्रियाया असमाप्तिर्भवति  
तत्र “वर्तमाने लङ्” इत्येव सिद्धम् ॥

( प्रदीपः ) ननौ पृष्ट ॥ १२० ॥ असमाप्तिरिति ।  
निवृत्तायामपि पाकादिक्रियायां तत्कृतस्य श्रमादेरनुवर्तना-  
त्तस्या एवासमाप्तिविवक्षायां लङ् सिद्ध इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) ननौ पृष्ट ॥ १२० ॥ असमाप्तिविवक्षायां हेतु-  
माह—तत्कृतस्य श्रमादेरिति ॥

( दूषणभाष्यम् )

यदि “वर्तमाने लङ्” इत्येव लङ् भवति । शतृ-  
शानचौ च प्राप्नुतः ॥

( इष्टापत्तिभाष्यम् )

इष्येते शतृशानचौ—ननु मां कुर्वन्तं पश्य, ननु  
मां कुर्वाणं पश्येति ॥ ननौ पृष्ट ० ॥ १२० ॥

( प्रदीपः ) इष्येते इत्यनेन प्रत्याख्यानं द्रव्यति ॥ यदि  
हि भूताश्रयो लङ् क्रियेत तदा वर्तमानाधिकाराद्वर्तमाने विहि-  
तस्य लटो विधीयमानौ शतृशानचावस्य लटो न स्याताम् ॥  
अथ पृष्टग्रहणं किमर्थम् । यावता प्रश्नपूर्वकमेव प्रतिवचनं  
भवति ॥ नैतदस्ति—विरुद्धमपि वचनं वचनाभिमुख्यमपि  
तथा । वचनं वचनं प्रति प्रतिवचनमित्यनेकार्थसंभवात् पृष्टग्र-  
हणं कर्तव्यम् ॥ १२० ॥

( उद्ध्योतः ) प्रत्याख्यानमिति । सूत्रारम्भे इष्टासिद्धेरिति  
भावः ॥ ननुशब्दयोगे लङ्लङ्लिटामनभिधानमाश्रयणीयमिति  
तात्पर्यम् ॥ १२० ॥

( ५१८ लङ्लङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ० १६ )

८८९ पुरि लुङ् चास्मे ॥ ३ । २ । १२२ ॥

( ३०१७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हशश्वत्प्रां पुरा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हशश्वलक्षणात्पुरालक्षणो भवति  
विप्रतिषेधेन । हशश्वलक्षणस्यावकाशः—इति हा-  
करोत् इति ह चकार,—शश्वदकरोत् शश्वच्चकार ।  
पुरालक्षणस्यावकाशो—रथेनायं पुरा याति रथे-  
नायं पुरायासीत् । इहोभयं प्राप्नोति—रथेन ह  
शश्वत्पुरा याति रथेन हशश्वत्पुरायासीत् । पुरा-  
लक्षणो भवति विप्रतिषेधेन ॥

( ३०१८ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ स्मः सर्वेभ्यो विप्रतिषेधेन ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्मलक्षणः सर्वेभ्यो भवति विप्रति-  
षेधेन । हशश्वलक्षणात्पुरालक्षणाच्च । हशश्वलक्ष-  
णस्यावकाशः—इति हाकरोत्=इति ह चकार ।  
शश्वदकरोत् शश्वच्चकार । पुरालक्षणस्यावकाशः—  
रथेनायं पुरा याति=रथेनायं पुरायासीत् । स्मलक्ष-  
णस्यावकाशः—धर्मेण स्म कुरवो युध्यन्ते । इह  
सर्वं प्राप्नोति—‘न ह स्म वै पुरा शश्वदग्निरपरशु-  
वृकृणं दहत’ । स्मलक्षणो लङ् भवति विप्रति-  
षेधेन ॥ पुरि लुङ् ॥ १२२ ॥

( प्रदीपः ) पुरि लुङ् ॥ १२२ ॥ स्मः सर्वेभ्य इति ।  
परविप्रतिषेधेन पूर्वविप्रतिषेधेन च । ततश्च पुरिलुङ् चास्मे  
[ इति<sup>२</sup> अस्म ] इति न वक्तव्यं भवतीति भावः ।

( उद्ध्योतः ) पुरि लुङ् ॥ १२२ ॥ पूर्वविप्रतिषेधेनेति ।  
पुरिलुङ् चास्म इत्यतः स्मे लङिति पूर्वं इति भावः ॥ ननु  
अस्मे इत्युक्ते सयोगे पुरि लुङित्यस्याप्राप्तिः कथं विप्रतिषेधोऽत  
आह—ततश्चेति ॥ १२२ ॥

( इति भूताधिकारः )

( अथ वर्तमानकालाधिकारः )

( ५१९ लट्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । २ आ. १७ )

८९० वर्तमाने लट् ॥ ३ । २ । १२३ ॥

( ३०१९ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १. ॥ )

॥ \* ॥ प्रवृत्तस्याविरामे शिष्या भवन्त्य-  
वर्तमानत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवन्ती ।  
इहाधीमहे, इह वसामः, इह पुष्यमित्रं याजयाम  
इति ॥ किं पुनः कारणं न सिध्यति ? अवर्तमान-  
त्वात् ॥

( प्रदीपः ) वर्तमा ॥ १२३ ॥ प्रवृत्तस्येति । इहाधी-  
मह इत्यध्ययनं प्रवृत्तं प्रारब्धं, न च तद्विरतम् । यदा च भो-  
जनादिकां क्रियां कुर्वन्तो नाधीयते तदाऽधीमह इति प्रयोगो  
न प्राप्नोति इति वचनम् ॥ भवन्तीति । लटः पूर्वाचार्यसंज्ञा ।

( उद्घोतः ) वर्तमाने लट् ॥ १२३ ॥ ननु प्रवृत्तं न च  
विरतं अथ च न वर्तमानमिति विरुद्धमत आह—इहेत्यादि । न  
च तद्विरतमिति । सर्वथा न समाप्तमित्यर्थः ॥

( ३०२० आक्षेपवार्तिकम् ॥ २. ॥ )

॥\*॥ नित्यप्रवृत्ते च कालाविभागात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) नित्यप्रवृत्ते च शासितव्या भवन्ती ।  
तिष्ठन्ति पर्वताः, स्रवन्ति नद्य इति ॥ किं पुनः  
कारणं न सिध्यति ? कालाविभागात् । इह भूत-  
भविष्यत्प्रतिद्वन्द्वो वर्तमानः कालः । न चात्र भूत-  
भविष्यन्तौ कालौ स्तः ॥

( प्रदीपः ) नित्यप्रवृत्ते चेति । पर्वतास्तिष्ठन्तीत्यादौ  
स्थानादेः सर्वदा सद्भावात् साध्यत्वाभावात् क्रियारूपत्वाभावा-  
त्तद्वर्तमानत्वस्याप्यभाव इति भावः ॥ भूतेति । सा-  
ध्यस्यार्थस्यानित्यत्वादवश्यं भविष्यत्वेन भाव्यम् । उत्पन्नस्यापि  
नाशाद्भूतत्वेन भूतभविष्यत्प्रतिद्वन्द्वो वर्तमानो धात्वर्थो, नि-  
त्यप्रवृत्तस्य भूतभविष्यत्त्वाभावाद्वर्तमानत्वाभावः क्रियारूपत्वा-  
भावश्चेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) क्रियारूपत्वाभावादिति । भूतभविष्यद्वर्तमान-  
व्यवहारविषयत्वस्वभावत्वात्तस्या इति भावः । त्रिविधव्यवहारविषय  
एव हि साध्यत्वमित्यभिमानैः ॥ ननु विद्यमानकालसंबन्धित्वरूपं  
वर्तमानत्वमसाध्यस्यापि संभवतीत्यतो—भाष्ये भूतेत्यादि ॥ तद्व्या-  
चष्टे—साध्यस्येति । अनित्यत्वात् वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वात् ।  
उत्पन्नस्यापि । भावस्येति शेषः । तेन ध्वंसव्यावृत्तिरिति केचित् ।  
वस्तुतो ध्वंसस्यापि प्रलयेऽदर्शनरूपो नाशोऽस्त्येव । न ह्यभावनानाशः  
प्रतियोगिरूप एवेति नियमः । अधिकरणरूपत्वादिति परे ॥ प्रति-

द्वन्द्व इति । प्रतियोगिसत्ताकाले तयोः संभवात्तद्विरोधिवर्तमानत्व-  
मिति भावः । वर्तमानत्वाभाव इति । भूतादिविरोधिवर्तमानत्वा-  
भाव इत्यर्थः । तादृशमेव वर्तमानत्वं सूत्रे विवक्षितम्, पूर्वं भूते  
इत्युक्तेरग्रे च भविष्यतीति वक्ष्यमाणत्वादिति भावः । क्रियारूप-  
त्वाभावश्चेति । यतो भूतभविष्यद्विरोधि वर्तमानत्वाभावोऽतः  
क्रियात्वाभाव इत्यर्थः । तदुक्तम्—

क्रिया भेदाय कालस्तु सङ्ख्या सर्वस्य भेदिकेति ।

( ३०२१ प्रथमाक्षेपबाधकवार्तिकम् ॥ ३. ॥ )

॥\*॥ न्याय्या त्वारम्भानपवर्गात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) न्याय्या त्वेषा वर्तमानकालता ।  
कुतः ? । आरम्भानपवर्गात् । आरम्भोत्रानपवृक्तः ।  
एष एव च नाम न्याय्यो वर्तमानकालो यत्रारम्भो-  
नपवृक्तः ॥

( ३०२२ वार्तिकम् ॥ ४. ॥ )

॥\*॥ अस्ति च मुक्तसंशये विरामः ॥\*॥

( भाष्यम् ) यं खल्वपि भवान्मुक्तसंशयं वर्त-  
मानकालं न्याय्यं मन्यते 'भुङ्क्ते देवदत्त' इति ।  
तेनैतत्तुल्यम् । सोऽपि ह्यवश्यं भुञ्जानो हसति वा  
जल्पति वा पानीयं वा पिबति । यद्यत्र युक्ता वर्त-  
मानकालता दृश्यते । इहापि युक्ता दृश्यताम् ॥

( प्रदीपः ) न्याय्यात्विति । अध्ययनं यदा प्रवृत्तं, न  
चोपरतं तदा तस्य भोजनादिक्रियानान्तरीयकत्वादव्यवधा-  
यिका । अथ वाध्ययनस्यैवावयवक्रियेति भावः । तदुक्तं हरिणा—

'व्यवधानमिवोपैति निवृत्त इव दृश्यते ।

क्रियासमूहो भुज्यादिरन्तरालप्रवृत्तिभिः ॥

न च विच्छिन्नरूपोऽपि सोऽविरामान्निवर्तते ।

सर्वेव हि क्रियान्येन संकीर्णवोपलभ्यते ॥

तदन्तरालदृष्टा वा सर्वैवावयवक्रिया ।

सादृश्यात्सति भेदे तु तदङ्गत्वेन गृह्यते' इति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये आरम्भोत्रेति । कर्मणि घञ् । आरम्भ  
इत्यर्थः ॥ अथवाध्ययनस्येवेति । भोजनादिकं विना तदनिर्वा-  
हात्—तदवयवत्वेनैव तस्या ग्रह इति भावः ॥

व्यवधानमिवेति । अव्यवधायकोऽपि व्यवधानमिव प्राप्नोति,  
अनिवृत्तोऽपि निवृत्त इव दृश्यते इत्यर्थः ॥ अन्तरालप्रवृत्तिभिः ।  
हासादिभिः ॥ अविरामात् । फलानिर्वृत्त्या विरामाभावात् ॥  
विच्छिन्नरूपोऽपि । विच्छिन्न इव भासमानोऽपि ॥ [ अविरामात् ]  
फलानिर्वृत्तेः न निवर्तते, सर्वथा न निवर्तते इत्यर्थः । सर्वैवेति ।  
तथा च नान्तरीयकत्वात्तासां न व्यवधायकत्वमिति भावः ॥ पश्चान्त-  
रमाह—तदिति । तन्मध्यदृष्टा सर्वा तदवयवक्रियैवेत्यन्वयः ॥ एवं  
च स्वावयवक्रिया यथा स्वस्य न व्यवधायिकास्तथा इमा अपीत्यर्थः ॥

१ स्थानादेरित्यस्य स्थित्यादेरित्यर्थः । ( र. ना. )

२ अभिमानोक्तिर्बीजं तु क्रियान्तराकाङ्क्षाऽनुत्थापकतावच्छेदकधर्मरूपं सा-  
ध्यत्वं त्रिविधव्यवहारविषयेऽपि नित्ये आत्मसत्तादौ संभवतीति । ( र. ना. )

३ कालस्तु क्रियाभेदायेत्युक्त्या कालः क्रियाविशेषणमिति लब्धमिति भावः ।  
( र. ना. )

एवं चात्र पक्षे भोजनाद्यपि अध्ययनशब्दार्थेनाश्रितमिति तात्पर्यम् ॥  
ननु कथं तदवयवत्वेन ग्रहोऽत आह—सादृश्यादिति । तत्फल-  
निर्वाहकत्वेनेत्यर्थः ॥ सति भेदेत्विति । तुरप्यर्थे । अत्यन्तभिन्नाया  
अपि क्रियाया मध्यपातितया तदङ्गत्वेन अद्वात्स्वाङ्गं न व्यवधायक-  
मिति भावः ॥

( ३०२३ द्वितीयाक्षेपबाधकवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ सन्ति च कालविभागाः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सन्ति च खल्वपि कालविभागाः  
तिष्ठन्ति पर्वताः, स्थास्यन्ति पर्वताः, तस्थुः पर्वता  
इति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

किं शक्यन्त एते शब्दाः प्रयोक्तुमित्यतः सन्ति  
कालविभागाः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

नावश्यं प्रयोगादेव । इह हि भूतभविष्यद्वर्तमानानां  
राज्ञां याः क्रियास्ताः तिष्ठतेरधिकरणम् । इह ता-  
वत् 'तिष्ठन्ति पर्वताः' इति, संप्रति ये राजानस्तेषां  
याः क्रियास्तासु वर्तमानासु । 'स्थास्यन्ति पर्वताः'  
इति । इत उत्तरं ये राजानो भविष्यन्ति तेषां याः  
क्रियास्तासु भविष्यन्तीषु । 'तस्थुः पर्वताः' इति,  
इह हि ये राजानो बभूवुस्तेषां याः क्रियास्तास्वति-  
क्रान्तासु ॥

( प्रदीपः ) नित्यप्रवृत्ते चेत्यस्योत्तरं सन्तीति । इहेति ।  
'प्रसिद्धपरिमाणं क्रियैव क्रियान्तरपरिच्छेदात्कालः' इत्युक्तम् ॥  
तत्र राज्ञां स्थितिर्भूतादिभेदेन भिन्ना पर्वतादिस्थित्यादिभेदिकेति  
क्रियारूपत्वं कालत्रययोगश्चोपपन्न इत्यर्थः ॥ उक्तञ्च हरिणा—

'परतो भिद्यते सर्वमात्मा तु न विकल्पते ।

पर्वतादिस्थितिस्तस्मात्पररूपेण भिद्यते ॥

प्रसिद्धभेदा व्यापारा विरूपावयवक्रियाः ।

साहचर्येण भिद्यन्ते सरूपावयवक्रियाः ॥ इति ॥

ता इति । तासामेव कालरूपत्वात् कालस्य च क्रियाधि-  
करणत्वादिति भावः ॥

( उद्योतः ) भाष्ये नावश्यमिति । किं त्वर्थसत्त्वादपीत्यर्थः ॥  
ननु कालः क्रियाधिकरणं न तु क्रियाऽत आह—प्रसिद्धेति ।  
वस्तुतोऽनवस्थापय्या चिन्त्यमिदम् ॥ भाष्ये क्रियापदेन तदधि-  
करणकालो लक्ष्यत इति वक्तुं युक्तम् ॥ तिष्ठतेरिति । तत्तत्क्रिया-  
विशिष्टतिष्ठतेरित्यर्थः ॥ क्रियारूपत्वमिति । तत्तद्राजक्रियासमाना-  
धिकरणपर्वतादिस्थित्यादेरित्यर्थः । यतः कालत्रययोगोऽतः क्रिया-  
रूपत्वमित्यर्थः ॥

१ वर्तमानत्वादपि पदार्थसत्त्वादपीत्यर्थः । ( र. ना. )

२ षष्ठ्यर्थे बहुव्रीहिः । ( र. ना. )

३ साहचर्येण. सामानाधिकरण्येन, तत्तद्राजक्रियाधिकरणकालवृत्तित्वरूपे-

आत्मा, द्रव्यम् । न विकल्पते इति । न स्वरूपेण भिन्न  
इत्यर्थः । विरूपावयवक्रियाः व्यापाराः प्रसिद्धभेदाः । न तु  
साध्यभेदा इत्यर्थः । सरूपावयवक्रियास्तु गिरिस्थित्यादयो राज-  
क्रियादेः साहचर्येण भिद्यन्त इत्यर्थः । साहचर्यमत्र कालवर्तितं  
बोध्यम् ॥

तासामेवेति । अत्र यद्वक्तव्यं तदुक्तम् ॥ क्रियाकारणत्वा-  
दिति । आधारतयेति भावः ॥ क्वचित्क्रियाधिकरणत्वादित्येव पाठः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अपर आहुः—'नास्ति वर्तमानः कालः' इति ॥  
अपि चात्र श्लोकानुदाहरन्ति—

( भाष्यम् ) 'न वर्तते चक्रमिधुर्न पात्यते ।

न स्यन्दन्ते सरितः सागराय ।

कूटस्थोऽयं लोको न विचेष्टितास्ति ।

यो ह्येवं पश्यति सोऽप्यनन्धः ॥

मीमांसको मन्यमानो युवा मेधाविसंमतः ।

काकं स्नेहानुपृच्छति 'किं ते पतितलक्षणम्' ॥

अनागते न पतसि अतिक्रान्ते च काक न ।

यदि संप्रति पतसि सर्वो लोकः पतत्ययम् ॥

हिमवानपि गच्छति ॥

अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानमिति त्रयम् ।

सर्वत्र च गतिर्नास्ति गच्छतीति किमुच्यते ॥

( प्रदीपः ) नास्तीति । निष्पन्नस्यार्थस्य भूतत्वादनित्य-  
ञ्चस्य भावित्वान्निष्पन्नान्निष्पन्नव्यतिरेकेण रूपान्तरस्याभावः ॥  
न वर्तत इति । परिवर्तनक्रियाया वर्तमानाया अभावादिति  
भावः ॥ कूटस्थ इति । स्वरूपस्थो न तु वर्तमानक्रिया-  
विशिष्ट इत्यर्थः ॥ अत एवाह—न विचेष्टितेति । व्यापारस्य  
न कर्तव्यार्थः । एवं यो वेत्ति सोऽप्यनन्धः किं पुनर्योऽनुष्ठाता  
योगीत्यर्थः । स ह्यविकृतमात्मतत्त्वं भावयन् प्रत्यक्षीकरोति ।  
तथा चोक्तं भगवता—

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ इति ॥

मीमांसक इति । विचारकः ॥ युवेत्यनेन प्रज्ञार्या  
पाठवं दर्शयति—मेधाविसंमत इति । मेधावी चासौ  
सम्मतश्चेति विशेषणसमासः ॥ षष्ठीसमासस्य तु केन च  
पूजायामिति निषेधात् ॥ पतितलक्षणमिति । पातः  
पतितं तस्य किं रूपम् । नास्त्येव पतनक्रियेत्यर्थः ॥ अनागत  
इति । अनागतत्वादेवासत्त्वात् पातक्रियायाः पतसीति व्यप-  
देशोऽनुपपन्न इत्यर्थः ॥ अतिक्रान्त इति । तथैव क्रियाया  
असत्त्वात् ॥ सर्वो लोक इति । क्रियाया वर्तमानत्वाभावेऽपि

नेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ इधुर्न पात्यते इति । वर्तमानायाः पातनक्रियाया अभावादित्येवात्रापि हेतु-  
रेवेमेवायेऽपि । ( र. ना. )

भदि पतसीति व्यपदेशस्तदा विशेषाभावात् पर्वतादावपि पत-  
सीति व्यपदेशप्रसङ्ग इत्यर्थः । **अनागतमिति ।** एक एव  
क्षण उपलभ्यते नातीतो नाप्यनागतो न चैकस्य क्षणस्य गम-  
नादिक्रियावेशः सम्भवतीति भावः । **सर्वत्रेति ।** कालवृत्ति-  
त्वाविवक्षायां दाप्रत्ययो न कृतः ।

( उद्धोतः ) इदानीं क्षणभङ्गवादी सूत्रमाक्षिपतीत्याह—  
अपर आहुर्नास्तीति । वर्तमानकाला क्रिया नास्तीत्यर्थः ॥ एवं च  
क्षणभङ्गुरे पदार्थमात्रे क्रियाश्रयत्वात्संभवात्क्रियायां भूतभविष्यप्रति-  
द्वन्द्ववर्तमानत्वाभावेन कालविभागावगतेर्वर्तमाने लङिति सूत्रम-  
संगतमिति भावः ॥ तद्धवनयन्व्याचष्टे—निष्पन्नस्येति ॥ रूपा-  
न्तरस्याभाव इति । प्रतिक्षणनश्वरत्वाद्वर्तमानक्रियाश्रयस्या-  
भावेन सर्वथा वर्तमानभाव इति भावः ॥ अतीता-  
नागतानां तत्त्वैर्देव न वर्तमानव्यवहारप्रयोजकता क्रियां प्रति  
द्रव्यस्य समवायिकारणतयोत्तरक्षणे क्रिया वाच्या तैत्तु न उत्तरक्षणे-  
ऽन्यस्यैव भावादिति तात्पर्यम् ॥ तदुपपादयति—भाष्ये अपि चात्रे-  
त्यादिना ॥ वर्तते चक्रमित्यादिवर्तमानप्रयोगो निरालम्ब इत्यर्थः ॥  
तदाह—परिवर्तनेति ॥ अत्र विचेष्टिता लोको नास्तीत्यनेन  
दृश्यस्य क्षणभङ्गुरतासूचिता ॥ यद्यप्ययं श्लोकः, क्रियाश्रयो नात्मा  
यतोयं कूटस्थोऽपरिणामीत्यर्थः । नापि लोकदृश्यः पदार्थः, यतो  
दृश्यश्चेष्टाश्रयः स्थिरो नास्ति प्रतिक्षणपरिणामित्वात्पदार्थानामिति  
संसारानित्यत्वातिशयोक्त्यः तथाप्यापातार्थमादाय क्षणभङ्गवादिना  
स्वसाधकत्वेनोपन्यस्तः ॥ एवं यो वेत्सीति । यथाकथं विज्ञाना-  
तीत्यर्थः । अपिद्योलमर्थमाह—किं पुनरिति । सर्वथा तथाभावना-  
वानित्यर्थः । एवं चक्रादेः क्रियाराहित्यज्ञानवानपि योगितुल्योऽल-  
न्तास्थिरत्वस्य दृश्येषु ग्रहात् । आत्मन्यपरिणामित्वस्थिरत्वग्रहाच्चे-  
त्युक्तं भवति । **अविकृतमात्मतत्त्वं**, अपरिणाम्यात्मतत्त्वं ॥ स  
हि तर्था जडं भावयंस्तत्कारणतया अविकृतमात्मतत्त्वं प्रत्यक्षीकरोती-  
त्यन्वयः ॥ अत्रैवार्थं संमतिमाह—तथा चेति । प्रकृतिपुरुषविवेका-  
देव हि तथा साक्षात्कार इति योगसांख्ययोः सिद्धान्तः ॥ अथ  
पदार्थानां स्थिरत्वेऽपि वर्तमानकालाभावमुपपादयति—भाष्ये मी-  
मांसक इति । मन्यमानः । आत्मानं विचारकं मन्यमान इत्यर्थः ॥  
संमतश्चेतीति । अर्थान्मेधाविनामेवेति गम्यते ॥ पृच्छति स प-  
प्रच्छ ॥ लट्स्ये इति लट् ॥ भाष्ये—अतिक्रान्ते च न पतसी-  
त्यन्वयः ॥ काकपर्यायं काकैर्नशब्दस्य काकनेति संबोधनम् ॥  
संप्रति प्रयोगकाले ॥ वर्तमानत्वाभावेपीति । क्रियाया वर्तमा-  
नत्वाभावेऽपि यदि पतसीति व्यवहारस्तदायं सर्वो लोकः पततीति  
व्यवहारविषयः स्यादित्यर्थः । तदाह—हिमवानपीत्यादिभाष्यस्य  
व्यवहारः स्यादिति शेषः ॥ अयं भावः—त्रिक्षणस्थायिन्या अपि  
क्रियाया अतिसूक्ष्मकालावच्छिन्नत्वरूपदोषवशाज्ज्ञानासंभवेनाज्ञातेन  
च व्यवहारासंभवोऽज्ञातेन च व्यवहारेऽतिप्रसङ्ग इति ॥ उक्तमे-  
वार्थं दाढ्यायाह—अनागतमिति । एक एव क्षण उपलभ्यत

इति । उपलभ्ययोग्यो भवितुमर्हतीत्यर्थः ॥ न चैकस्येति ।  
एकक्षणवर्ती पदार्थगतः क्रियावेशज्ञानयोग्यः संभवतीत्यर्थः ॥  
ननु कालवाचकत्वात्सदेति भाव्यमत आह—कालेति ॥ भाष्ये  
सर्वत्रेत्यस्य काल इति शेषः । सर्वत्रगतितर्नास्तीत्यस्योपलब्धियोग्या  
नास्तीत्यर्थः ॥ अनुपलब्धिप्रमाणान्न तदभावनिश्चय इति भावः ।  
क्षणभङ्गवादेवात्र वक्तव्यं तु न युक्तं, तस्य मेधाविसंमत इति विशे-  
षणानुपपत्तेः । यदि संप्रतीत्यादिस्तन्मते । उक्तिसंभवाभावाच्च ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

क्रियाप्रवृत्तौ यो हेतुस्तदर्थं यद्विचेष्टितम् । त-  
त्समीक्ष्य प्रयुञ्जीत गच्छतीत्यविचारयन् ॥

( प्रदीपः ) क्रियाप्रवृत्ताविति । परिहारः । हेतु-  
प्रयोजनं गमनस्य देशान्तरप्राप्तिस्तदर्थं फलार्थमित्यर्थः । इह  
प्रत्यभिज्ञानात् क्षणभङ्गनिरासे देवदत्तस्य देशान्तरप्राप्तिर्निर्हेतुका  
न संभवतीति गमनक्रियैव तस्या निमित्तम् । तदात्मन्वनश्च  
गच्छतीति प्रत्ययोऽबाधित उत्पद्यत इति सत्त्वं तावदवगम्यते  
क्रियायाः । वर्तमानत्वाभावे च भूतभविष्यतोरप्यभावप्रसङ्गो,  
वर्तमानो हि भूतत्वं भविष्यत्त्वं च प्रतिपद्यते । तत्रानेकक्षण-  
समूहात्मकं क्रियाप्रबन्धरूपं बुद्ध्या संकलनं गच्छतीत्यादि  
प्रयुज्यत इत्यर्थः ॥ **अविचारयन्निति ।** कुविकल्पकलङ्क-  
रहितमित्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) इदानीं सिद्धान्तमाह—क्रियाप्रवृत्ताविति  
भाष्ये क्रियारम्भे यो हेतुः प्रयोजकः फलं तदर्थं यद्विचेष्टितं क्रिया-  
समूहस्तं तदनुकूलत्वेन समीक्ष्य बुद्धिविषयीकृत्य बौद्धसमूहस्य बौद्धं  
वर्तमानत्वमादाय गच्छतीति प्रयोगोपपत्तिरित्यर्थः ॥ क्षणभङ्गवादे  
बुद्धेरप्येकस्या अभावादाह—इहेति । कदाप्यवर्तमानस्य शशवि-  
षाणादितुल्यस्य भूतभविष्यत्त्वे अपि त्वत्संमते न संभवत इति  
गच्छतीत्यबाधितप्रत्ययस्तत्सत्तायां मानमिति भावः ॥ गच्छतीति  
प्रत्ययोऽबाधित उत्पद्यत इति सत्त्वं तावदवगम्यत इति ।  
एतेनावयवशोपि अप्रत्यक्षत्वं सूचितम् । अन्यथावयवगतस्य समूहे  
आरोप इत्येव वदेत् ॥ ननु अवयवानामभावे समूहोऽसंभवी  
तत्राह—तत्रानेकेति । बौद्धो वैकल्पिक एवार्थं समूह इत्यर्थः ।  
शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प इति पातजलोक्तेः ॥  
समूहस्य वर्तमानत्वं तु प्रारब्धापरिसमाप्तत्वमुक्तमेव । तदपि बौद्ध-  
मेव । तत्रानेकक्षणसमूहात्मकं तदात्मकत्वेन प्रसिद्धं । क्रिया-  
प्रबन्धरूपं तत्त्वेन च प्रसिद्धमविचारणीयमेव बुद्ध्याविषयीकृत्ये-  
त्यर्थः । अन्यथा पूर्वं सर्वथा वर्तमानकालाभावस्योक्तत्वेन तत्रै-  
साध्यैवेदृशोक्तैरसङ्गत्यापत्तेः ।

( मत्तान्तेरेणाक्षेपपरिहारभाष्यम् )

अपर आह—अस्ति वर्तमानः काल इति । आ-

१ 'पततीति' इति युक्तं प्रतीयते ॥

२ अतीतानागतत्वादेवेत्यर्थः । ( र. ना. )

३ तद्धवन्यं तु उत्तरक्षणे नास्तीत्यर्थः । तत्र हेतुः, अन्यस्यैव भावादिति । ( र. ना. )

४ तथेति । अविकृतत्वेनेत्यर्थः । ( र. ना. )

५ न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः । इत्यत्रैव नञः

एनहक्तिमजानस्येदं कल्पनं दृष्ट्वेति दाधिमथाः ॥

६ एकक्षणवर्तिपदार्थगतः क्रियावेशो न ज्ञानयोग्यः संभवतीत्यर्थ इति पाठः

साधुर्भाति । ( र. ना. )

७ पूर्वं त्वस्य पतनाभाव इदानीं पतनमित्युक्तौ युष्मत्पदार्थस्य स्थिरत्वात्पत्त्या  
क्षणभङ्गवादहानिः स्यादिति तन्मते एतदुक्तेः संभवाभावादिति भावः । ( र. ना. )

८ बुद्धिविषयीकृत्येत्यस्य व्याख्यानम्, 'आदाय' इत्यन्तो ग्रन्थः । ( र. ना. )

९ वर्तमानत्वस्येति शेषः । ( र. ना. )

१० वर्तमानकालमसाध्यैवेत्यर्थः । ( र. ना. )

दित्यगतिवन्नोपलभ्यत इति ॥ अपि चात्रश्लोक-  
मुदाहरन्ति—

विसस्य वाला इव दह्यमाना ।  
न लक्ष्यते विकृतिः सन्निपाते ।  
अस्तीति तां वेदयन्ते त्रिभावाः ।  
सूक्ष्मो हि भावोऽनुमितेन गम्यः ॥ इति ॥  
वर्तमाने लट् ॥ १२३ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरण-  
महाभाष्ये तृतीयाध्यायस्य द्वितीये पादे  
द्वितीयमाह्निकम् ॥

( प्रदीपः ) विसस्येति । विसस्य वाला विसे दह्यमाने  
दह्यमाना अपि न प्रत्यक्षं दह्यमानत्वेनावसीयन्ते । किं तर्ह्यनु-  
मानेन विसान्तर्गतत्वात्तदाहे तेषामपि दाहः प्रतीयते । तथा  
कारकसंनिपात एकैकक्षणग्रहणे क्रियावेशलक्षणाविकृतिः प्रत्य-  
क्षेण न लक्ष्यते । तां तु त्रिभावा अस्तीति निश्चिन्वन्ति ।  
त्रिषु कालेषु भावो भावना येषां ते त्रिभावा योगिनो ये भाव-  
नावशेन त्रीनपि कालान् योगिप्रत्यक्षेण विदन्ति ॥ सूक्ष्म  
इति । अनेकक्षणसमूहात्मकस्य धातुवाच्यस्य अर्थस्य क्रिया-  
रूपस्य युगपदसंनिधानादनुमीयत इत्यर्थः ॥ १२३ ॥

इत्युपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते भाष्यप्रदीपे तृतीयस्या-  
ध्यायस्य द्वितीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ॥

( उद्द्योतः ) एवं वास्तववर्तमानक्रियाभावमङ्गीकृत्यानुमित-  
बौद्धसमूहप्रक्रियां तद्वर्तमानत्वं च बौद्धमाश्रित्य प्रयोगानुपपाद्ये-  
दानीं वास्तववर्तमानक्रियां तत्तत्क्षणवर्तिनीं योगिप्रत्यक्षप्रमाणिका-  
माश्रित्य समाधत्ते अपर आह—अस्ति वर्तमानः काल इति ।  
क्रियाणां त्रिक्षणावस्थायित्वादिति भावः ॥ आदित्यगतिवन्नोप-  
लभ्यते प्रत्यक्षेणेति शेषः । क्रियाप्रत्यक्षत्वाभिमानिनो यथातिदूरत्व-  
शततद्वैतिरनुमेया तथातिसूक्ष्मकालावच्छिन्नत्वादेकैकक्षणावच्छिन्ना  
क्रियाप्यनुमेयैवेति भावः । ननु कार्येणोत्तरदेशसंयोगादिना एकैक-  
क्षणवर्त्येति सूक्ष्मवर्तमानक्रियायाः कथमनुमानगत आह—भाष्ये  
अपि चेति । विसदाहे बालदाहवत्कारकसंनिपाते विकृतिः  
एकैका क्रिया यद्यपि न लक्ष्यते तथापि त्रिभावा योगिनस्ताम-  
स्तीति वेदयन्त इत्यर्थः । अनेन योगिप्रत्यक्षं प्रमाणं दर्शितम् ॥  
नन्वस्मदादिव्यवहारः कथमत आह—सूक्ष्मो हीति । समूहा-  
न्यथानुपपत्तिर्वर्तमाने लङिति शास्त्रं च तदनुमापकमिति भावः ।  
एकैकक्षणग्रहणे एकैकक्षणस्य वर्तमानग्रहणेन ग्रहणे तत्क्षणावच्छेदेन  
क्रियावेशलक्षणा विकृतिः प्रत्यक्षेण न लक्ष्यत इति अक्षरार्थः ।  
नन्वेकैकक्षणस्य सूक्ष्मत्वेऽपि समूहः प्रत्यक्षः स्यादत आह—अने-  
नेति । एवं चावयवरूपा समुदायरूपा च क्रियाऽनुमानगम्यैवेति  
“पर्यम् ॥ अत्र पक्षेऽनुमितैकैकक्षणवर्तिक्रियायां धात्वर्थसमूहरूपा-  
ऽवर्तमानप्रयोग इत्याशय इति दिक् ॥ १२३ ॥

ति श्रीशिवभट्टसुतसतीगर्भजनगोशभट्टविरचिते व्याक-  
रणमहाभाष्यप्रदीपोद्द्योते तृतीयस्य द्वितीये  
पादे द्वितीयमाह्निकम् ॥

तुमितेन, अनुमानेन, नपुंसके भावे क्तः । ( र. ना. )  
तर्तमानकालविशिष्टो धातुवाच्योऽर्थ इति शेषः । ( र. ना. )

तृतीयाध्यायस्य द्वितीये पादे

तृतीयमाह्निकम् ॥

( ५२० लटः शतृशानञ्जविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. १ )

८९१ लटः शतृशानचावप्रथमासमाना-  
धिकरणे ॥ ३ । २ । १२४ ॥

( आदेशोपपादनाधिकरणम् )

( ३०२४ आदेशानुपपत्तिवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ लस्याप्रथमासमानाधिकरणेना-  
योगादादेशानुपपत्तिर्यथान्यत्र ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लस्य अप्रथमासमानाधिकरणेना-  
योगादादेशयोरनुपपत्तिर्यथान्यत्र । तद्यथा—अन्य-  
त्रापि लस्याप्रथमासमानाधिकरणेन योगो न भ-  
वति । कान्यत्र ? । लङि—अपचदोदनं देवदत्त  
इति ॥

( प्रदीपः ) लटः शतृ ॥ १२४ ॥ लस्येति । इहायं  
लकारो लः कर्मणि च भावे चेत्यनेन कर्तृकर्मणोर्विधीय-  
मानो गुणभूते क्रियां प्रति कर्तृकर्मणी प्रतिपादयति । तथा च  
पचलोदनं देवदत्तः, ओदनः पच्यते देवदत्तेनेति क्रियाप्रधान-  
त्वात् क्रियान्तरयोगाभावाच्छतयन्तरावेशाभावः । अन्ये तु  
कृतः प्राधान्येन कर्त्रादीनि प्रतिपादयन्ति । तथा च क्रियान्त-  
रयोगे शतयन्तरावेशो भवति । पाचकं पश्य पकेन तृप्त इति ।  
ततश्च लङादिवल्लटोपि क्रियान्तरयोगाभावाद् द्वितीयाद्यनु-  
त्पत्तावप्रथमान्तेन सामानाधिकरण्यं नोपपद्यत इत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) लटः शतृशानचौ ॥ १२४ ॥ भाष्ये लस्ये-  
त्यादि । समानाधिकरणेनाप्रथमान्तेन लवाच्यस्य कारकस्यायोगा-  
दित्यर्थः । ननु पचन्तं देवदत्तं पश्येत्यादौ तत्सामानाधिकरण्य-  
मस्येवेत्यत आह—इहेति ॥ गुणभूते इति । क्रियाप्रधानमा-  
ख्यातमिति सिद्धान्तादिति भावः ॥ इति क्रियेति । इत्यस्य  
क्रियाप्रधानत्वादित्यर्थः ॥ क्रियान्तरयोगाभावादिति । एकत्र  
विशेषणत्वेनान्वितस्य कारकस्यान्यत्र तथान्वयायोगात्कर्तृत्वाद्यति-  
रिक्तानभिहितशतयन्तरावेशाभावेन नियमेन प्रथमान्तेनैव सामा-  
नाधिकरण्यादिति भावः ॥ प्राधान्येनेति । सत्त्वप्रधानानि ना-  
मानीत्युक्तः ॥ लङादिवदिति । लङादिवाच्यकारकसमानाधि-  
करणवल्लङ्वाच्यकारकसमानाधिकरणस्येत्यर्थः ॥ अप्रथमान्तेन ।  
तदर्थेन ॥

३ सूर्यगतिरित्यर्थः । ( र. ना. )

४ इदं च क्रियान्तरयोगाभावादित्यनेनावेति । ( र. ना. )

( ३०२५ अन्यथा दूषणापत्तिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ योग इति चेदन्यत्रापि योगः  
स्यात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ मतमेतत्—‘भवति योग’इति ।  
अन्यत्रापि योगः स्यात् ॥ कान्यत्र ? । लङि—अप-  
चदोदनं देवदत्त इति ॥

( प्रदीपः ) अपचदिति । तथा चापचदोदनं देवदत्तं  
पश्येत्यादिप्रसज्येतेत्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) इत्यादिप्रसज्येतेति । शतरीव लङ्यपि लका-  
रार्थकर्तुः प्राधान्यं स्यादिति भावः ॥ यच्चप्यन्तरङ्गा प्रथमा तथापि  
प्रधानानुरोधित्वेन बलवती द्वितीयैव स्यादित्यर्थः ॥

( अनुपपत्तिपरिहारभाष्यम् )

न कचिद्योग इति कृत्वातः सर्वत्र योगेन भवि-  
त्वयम् । कचिद्वाऽयोग इति कृत्वा सर्वत्रायोगेन ॥  
तद्यथा—समानमीहमानानां चाधीयानानां च के-  
चिदर्थैर्युज्यन्ते, अपरे न । न चेदानीं ‘कश्चिदर्थवान्’  
इति कृत्वा सर्वैरर्थवद्भिः शक्यं भवितुम्, ‘कश्चि-  
द्वानर्थक’ इति सर्वैरनर्थकैः । तत्र किमस्माभिः  
शक्यं कर्तुं यल्लटोऽप्रथमासमानाधिकरणेन योगो  
भवति, लङो न भवति, स्वाभाविकमेतत् ॥

( प्रदीपः ) न कचिदिति । तिङ्भाविनो लकारस्य  
गुणभूतकर्त्राभिधानम् । शत्रादिविषयस्य तु क्रियोपसर्जनक-  
र्त्राभिधानम् । तथा च क्रियान्तैरनिमित्तद्वितीयादिसामाना-  
धिकरण्योपपत्तिरित्यर्थः ॥ शक्यं कर्तुमिति । प्रतिप-  
त्तुमित्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) कर्त्राभिधानमिति । तदभिधानशक्तिरित्यर्थः ॥  
द्वितीयादीति । द्वितीयाद्यन्तार्थेत्यर्थः ॥ प्रतिपत्तुमित्यर्थ इति ।  
लङ्वाच्यस्याप्रथमान्तसामानाधिकरण्यं न भवति, लङ्वाच्यस्य  
भवति यत्तत्र किं कारणं प्रतिपत्तुं शक्यम्, स्वभावातिरिक्तं न  
किमपीति भाष्यार्थ इति भावः ॥ ततश्च शत्रादिविषयलटोऽस्त्येव  
शत्रुविधायकशास्त्रबलवत्स्वभावादप्रथमासमानाधिकरण्यमिति न  
दोष इति तात्पर्यम् ॥

( परिहारान्तरभाष्यम् )

अथ वाऽऽदेशेन सामानाधिकरण्यं दृष्ट्वाऽनु-  
मानाद्वन्तव्यं ‘प्रकृतेरपि सामानाधिकरण्यं भवति’  
इति । तद्यथा—धूमं दृष्ट्वा ‘अग्निरत्र’इति गम्यते ।  
त्रिविष्टब्धकं दृष्ट्वा ‘परिव्राजक’इति ।

( प्रदीपः ) अथ वेति । सिद्धानां शब्दानामिदमन्वा-

ख्यानं प्रवृत्तम् । तत्र पचन्तं देवदत्तं पश्येत्यादिप्रयोगदर्शनात्  
स्थानिनोपि लटः प्रक्रियार्थं विहितस्याप्रथमासमानाधिकरण्य-  
मनुमीयत इत्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) ननु लस्य कापि प्रयोगाभावेन कथमीदृश-  
स्वभावावगतिरतः पक्षान्तरमाह—भाष्ये अथवेति ॥ ननु यावद-  
प्रथमासमानाधिकरण्यं न निर्णीतं तावदादेश एव न, आदेशेन  
चानुमानमित्यन्योन्याश्रयग्रस्तमत आह—सिद्धानामिति । नित्या-  
नामित्यर्थः ॥ प्रक्रियार्थं विहितस्येति । अनेन प्रक्रियार्थं कल्पि-  
तानामबोधकत्वं दर्शयति ॥

( परिहारान्तरासंभवभाष्यम् )

विषम उपन्यासः—प्रत्यक्षस्तेनाग्निधूमयोरभि-  
संबन्धः कृतो भवति, त्रिविष्टब्धकपरिव्राजकयोश्च ।  
ननु तद्विदेशस्यमपि दृष्ट्वाध्यवस्यति ‘अग्निरत्र’ परि-  
व्राजकोवेति ।

( प्रदीपः ) विषम इति । अग्निधूमयोर्हि प्रत्यक्षेण  
सम्बन्धो गृह्यते । लकारस्य तु प्रयोगाभावादप्रथमासमाना-  
धिकरण्यं न कचिदुपलब्धमिति भावः ।

( उद्ध्योतः ) विषमउपन्यास इति वदन्प्रष्टव्यः—‘किं  
प्रत्यक्षेण बाधनिश्चयादनुमानं न, उत व्याप्तिग्रहणाभावादिति ।

( प्रत्यक्षस्यानुमानाबाधकताभाष्यम् )

भवति वै प्रत्यक्षादप्यनुमानबलीयस्त्वम् । तद्य-  
थाऽलातचक्रं प्रत्यक्षं दृश्यते, अनुमानाच्च गम्यते  
‘नैतदस्ति’इति ॥

( प्रदीपः ) भवतीति । यद्यपि लटोऽप्रयोगादप्रथमा-  
समानाधिकरण्याभावः प्रत्यक्षेण निश्चीयते तथापि प्रत्यक्षस्या-  
न्यथासिद्धत्वाल्लकाराप्रयोगनिमित्तत्वादभावग्राहिणो बाध्यत्वम्,  
अनन्यथासिद्धेन तु सामान्यतो दृष्टे नानुमानेन लटोऽप्रथमा-  
समानाधिकरण्यावगमो । “नह्यन्यथादेशस्य तदुपपद्यते  
इति भावः ॥” तद्यथेति । आशुसञ्चाराच्चक्रान्तिरुपपद्यते ।  
रूपसहचारिणस्तु स्पर्शस्यानेकदिकस्य युगपदग्रहणादनन्यथा-  
सिद्धानुमानेन प्रत्यक्षाभासो बाध्यते । तदुक्तं हरिणा—

‘स्पर्शप्रबन्धो हस्तेन यथा चक्रस्य सन्ततः ।  
न तथालातचक्रस्य विच्छिन्नं स्पृश्यते हि तद्’ इति ॥

( उद्ध्योतः ) तत्राद्ये आह—यद्यपीति । प्रत्यक्षस्तेनाग्नी-  
त्यादिग्रन्थेनापि भाष्ये तत्र बाधनिश्चयाभावः प्रतिपाद्यते इति  
बोध्यम् ॥ प्रत्यक्षेण तत्राभिसंबन्ध एव पुरुषेण कृतो गृहीतो न  
तु बाधः । प्रकृते तु विपरीतमित्यर्थात् । लकाराप्रयोगनिमित्तकत्वे-  
नान्यथासिद्धत्वादभावग्राहिणः प्रत्यक्षस्य बाध्यत्वमित्यन्वयः ॥  
सामान्यतो दृष्टेन कार्यकारणभिन्नलिङ्गकेन ॥ न ह्यन्यथेति ।

१ क्रियायामित्यादिः । ( र. ना. )

२ शत्रादिविषयतया विषयो यस्येत्यर्थः । यन्निष्ठोद्देश्यतानिरूपितविधेयता-  
ऽस्त्यविषयतावान् शत्रादित्येति यावत् । ( र. ना. )

३ क्रियान्तरं निमित्तं यस्मिन्निति व्युत्पत्त्या द्वितीयादिविशेषणम् । ( र. ना. )

४ लब्धेति । ज्ञातेत्यर्थः । ( र. ना. )

५ त्रयो दण्डाविष्टब्धाः परस्पराश्रयेण विधृता यत्रेति व्युत्पत्त्या योगरूढ्या  
श्रयणेन त्रिदण्डमित्यर्थः । ( र. ना. )

६ अन्यथासिद्धत्वे हेतुल्लकाराप्रयोगनिमित्तत्वमिति । ( र. ना. )

७ प्रत्यक्षेण बाध एव निश्चीयते न तु अभिसंबन्ध इति भावः । ( र. ना. )

पूर्वं न शतृशास्त्रवैयर्थ्यरूपानुकूलतर्कसहितमनुमानम् अन्यथासिद्ध-  
प्रत्यक्षात्प्रबलमिति भावः ॥ रूपसहचारिणस्त्विति । शुद्धभास्वर-  
रूपव्यापकस्येत्यर्थः । तमस्तु न तद्रूपवत् ॥ स्पर्शस्योद्भूतस्येति  
दृष्टव्यम् । तेन दीपप्रभायाः स्पर्शप्रभेहि अनेकदिकरूपस्य गुण-  
पदग्रहणेऽपि न दोषः ॥

( अनुमानसाधकस्यासिद्धसाधकभाष्यम् )

कस्यचित्स्त्वल्पमपि सकृदुक्ततोभिसंबन्धोऽत्यन्ताय-  
कृतो भवति । तद्यथा—वृक्षपर्णयोः—‘अयं वृक्षः,  
इदं पर्णम्’ इति । स तद्विदेशस्थमपि दृष्ट्वा जानाति  
‘वृक्षस्येदं पर्णम्’ इति ॥

( प्रदीपः ) कस्यचिदिति । न भूयोदर्शनेनैव सम्ब-  
न्धग्रहणम्, अपि तु सकृदर्शनेनापीत्यर्थः ॥ वृक्षपर्णयो-  
रिति । भाष्यकारवचनप्रामाण्याज्जातिरप्राणिनामिहैकव-  
द्भावो न कृतः ॥

( उद्घोतः ) व्याप्तिग्रहणाभावं समाधत्ते—भाष्ये—कस्य-  
चिदिति । तद्याचष्टे—न भूय इति । ननु ‘लट् अप्रथमान्तसामा-  
नाधिकरण्यवान्, तदनुवादेन विहितादेशस्यानित्वात्’ इत्यनुमानम् ।  
तत्र दृष्टान्ताभावेन कथं व्याप्तिग्रह इति चेन्न । यः स्थानी, स आदेश-  
समानधर्मेति सामान्यतो व्याप्त्यैव सहकारिविशेषवलाद्विशेषानु-  
मितिः ॥ अत्रापि शतृविधायकशास्त्रमेवानुकूलस्तर्क इत्याहुः ॥  
वृक्षपर्णयोर्जातित्वादेकवद्भावः स्यादत आह—भाष्यकारेति ।  
व्यक्तिप्राधान्यविवक्षणादिति भावः ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

किं पुनरयं पर्युदासो यदन्यत्रप्रथमासमानाधि-  
करणादिति, आहो स्वित् प्रसज्यप्रतिषेधः प्रथमा-  
समानाधिकरणेनेति ।

( प्रदीपः ) किं पुनरिति । यद्यपि प्रसज्यप्रतिषेधे वा-  
क्यमेवाद गौरवप्रसङ्गस्थापि लक्ष्यसिद्धये शास्त्रे कचिदसा-  
वकीकृत इति विचार्यते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये यदन्यत्रप्रथमासमानाधिकरणादिति ।  
तत्रावध्यवधिमतोः साजात्यादन्यत्किञ्चित्समानाधिकरणमेव गृह्यते ।  
तेनाप्रथमान्तेन समानाधिकरणस्य लट् इति फलति । यथाश्रुते तु  
कौर्वत इत्यादौ दोषापादनासंगतिः स्पष्टैव ।

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः ।

( ३०२६ पर्युदासे दूषणवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ लटः शतृशानचावप्रथमासमाना-  
धिकरणे इति चेत्प्रत्ययोत्तरपदयो-  
रुपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधि-  
करण इति चेत् प्रत्ययोत्तरपदयोरुपसंख्यानं कर्त-

व्यम् । कौर्वतः, पाचतः, कुर्वद्भक्तिः, पचतभक्तिः,  
कुर्वाणभक्तिः, पचमानभक्तिरिति ।

( प्रदीपः ) कौर्वत इति । कुर्वतो देवदत्तस्यापत्यमित्यत्र  
सापेक्षत्वात्तद्धितो नोत्पद्यते । पदान्तरनिरपेक्षे च पदान्तरेण  
सामानाधिकरण्याभावादादेशाप्रसङ्ग इति भावः । कुर्वद्भक्ति-  
रिति । षष्ठी समासः । सामानाधिकरणसमासे तु प्रसज्यप्रति-  
षेधेऽपि दोषः । स च वक्ष्यत एव ॥

( उद्घोतः ) नन्यत्रापि कुर्वतो देवदत्तस्येत्यादि पदान्तर-  
सामानाधिकरण्यमस्त्येवेत्यत आह—कुर्वत इति । वृत्तिषट्कालि-  
रिक्तविशेषापेक्षामपि सापेक्षमिति भावः ॥ पदान्तरेति । देवदत्त-  
स्येत्यादित्यर्थः ॥

( प्रसज्यप्रतिषेधाङ्गीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि प्रसज्यप्रतिषेधः प्रथमासमानाधि-  
करणे नेति ।

( ३०२७ प्रसज्यप्रतिषेधदूषणवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ प्रथमार्प्रतिषेधे उत्तरपदे आदे-  
शानुपपत्तिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रथमार्प्रतिषेधे उत्तरपदे आदेश-  
योरनुपपत्तिः कुर्वती चासौ भक्तिश्च कुर्वद्भक्तिः,  
पचद्भक्तिः, कुर्वाणभक्तिः, पचमानभक्तिरिति । ये  
चाप्येते सामानाधिकरणवृत्तयस्तद्धितास्तेषु शतृ-  
शानचौ न प्राप्नुतः । कुर्वत्तरः, पचत्तरः, कुर्वाण-  
तरः, पचमानतरः कुर्वद्रूपः, पचद्रूपः, कुर्वाणरूपः,  
पचमानरूपः, कुर्वत्कल्पः, पचत्कल्पः, कुर्वाणकल्पः,  
पचमानकल्प इति ।

( प्रदीपः ) कुर्वत्तर इति । अत्र देवदत्तादिना पदा-  
न्तरेण सामानाधिकरण्यादादेशाप्रसङ्गः । पूर्वस्मिन्नपि पक्षे  
एष दोषः ॥

( उद्घोतः ) देवदत्तादिना पदान्तरेणेति । प्रथमान्तेनेति  
शेषः पूर्वस्मिन्नपीति । सामानाधिकरणसमासरूपः कुर्वद्भक्तिरि-  
त्यादिः । कुर्वत्तर इत्यादिश्च ॥ कुर्वद्भक्तौ पुंवत्कर्मेधारयेति पुंवत् ।

( ३०२८ समाधानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति  
वचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । ‘प्रत्ययोत्तर-  
पदयोश्च शतृशानचौ भवतः’ इति वक्तव्यम् ।

( प्रदीपः ) सिद्धं त्विति । लक्षणशेषः कर्तव्य इत्यर्थः ।  
पृथगुत्तरपदग्रहणमन्तरङ्गानपि विधीन्व हिरङ्गो लुगवा-  
धत इति लुकि कृते प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधाद् प्रत्ययपरत्वार्थम् ॥

( उद्घोतः ) ननु लक्षणान्तरे ‘अपचरत्कल्पं देवदत्तः’ इत्यादौ



स्यादत आह—लक्षणशेष इति ॥ अन्तर्वर्तिसुपा प्रत्ययपरत्वेनैव सिद्धे किमुत्तरपदग्रहणेनेत्यत आह—पृथगिति ।

( ३०२९ समाधानदूषणप्रत्ययाप्रसिद्धिवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र प्रत्ययस्यादेशनिमित्तत्वाद-  
प्रसिद्धिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र प्रत्ययस्यादेशनिमित्तत्वादप्रसिद्धिः । आदेशनिमित्तः प्रत्ययः प्रत्ययनिमित्तश्चादेशः तदेतदितरेतराश्रयं भवति । इतरेतराश्रयाणि च न प्रकल्पन्ते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये आदेशनिमित्त इति । तस्मिन्निह प्रातिपदिकत्वे सुबन्तत्वे च तद्विरोधोत्पत्तेरिति भावः ।

( ३०३० समाधानदूषणोत्तरपदाप्रसिद्धिवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ उत्तरपदस्य च सुबन्तनिमित्तत्वा-  
च्छतृशानचोरप्रसिद्धिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उत्तरपदस्य च सुबन्तनिमित्तत्वाच्छतृशानचोरप्रसिद्धिः । उत्तरपदनिमित्तः सुपु सुबन्तनिमित्तं चोत्तरपदम् । तदेतदितरेतराश्रयं भवति । इतरेतराश्रयाणि च न प्रकल्पन्ते ।

( प्रदीपः ) उत्तरपदनिमित्त इति । सत्युत्तरपदे शतृशानचौ भवतः तयोश्च कृत्वात् सुबुत्पत्तिः, सुनिमित्तः समासः समासनिमित्तं चोत्तरपदमित्यर्थः ।

( उद्घोतः ) सुप उत्तरपदनिमित्तत्वम्, उत्तरपदस्य च सुबन्तनिमित्तत्वं दर्शयति—सत्युत्तरपद इति ।

( ३०३१ प्रत्ययप्रसिद्धिसमाधानवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ न वा लकारस्य कृत्वात् प्राति-  
पदिकत्वं तदाश्रयं प्रत्ययविधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा एष दोषः । किं कारणम् ? । लकारस्य कृत्वात् प्रातिपदिकत्वम् । 'लकारः कृत्' । कृत् प्रातिपदिकमिति प्रातिपदिकसंज्ञा । तदाश्रयं प्रत्ययविधानम् । प्रातिपदिकाश्रया स्वाद्युत्पत्तिर्भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) न वेति । लस्य कृत्वात् सुबुत्पत्तौ सलामणादिषु तरबादिषु चोत्पत्तेरुद्देशविधानमिति नास्तीतिरेतराश्रयदोष इत्यर्थः ।

( ३०३२ उत्तरपदप्रसिद्धिसमाधानवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ तिङादेशात् सुबुत्पत्तिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तिङादेशः क्रियतां सुबुत्पत्तिरिति । परत्वात्सुबुत्पत्तिर्भविष्यति ।

( ३०३३ वार्तिकशेषवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ तस्मादुत्तरपदप्रसिद्धिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्मादुत्तरपदस्य प्रसिद्धिर्भविष्यति ।

उत्तरपदे प्रसिद्धे 'उत्तरपद' इति शतशानचौ भविष्यतः ॥

( प्रदीपः ) उत्तरपदे इतरेतराश्रयं परिहरति—तिङादेशादिति ।

( उद्घोतः ) तिङादेशादिति । तिङरूपादेशादित्यर्थः । एवं च पचल इत्यत्र तिङो बाधित्वा सुपि समास उत्तरपदे शत्रादि तिङा बाधकमिति भावः ।

( समाधानदूषणभाष्यम् )

इहापि तर्हि तिङादेशात्सुबुत्पत्तिः स्यात्—पचति पठतीति ॥

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

अस्यत्र विशेषः, नित्योऽत्र तिङादेशः । उत्पत्तेऽपि सुपि प्राप्नोत्यनुत्पत्तेऽपि प्राप्नोति । नित्यत्वात् तिङादेशे कृते सुबुत्पत्तिर्न भविष्यति ॥

( दूषणभाष्यम् )

इहापि तर्हि नित्यत्वात्तिङादेशः स्यात् । कुर्वद्भक्तिः पचद्भक्तिः कुर्वाणभक्तिः पचमानभक्तिरिति ।

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

अस्यत्र विशेषः । शतृशानचौ तिङपवादौ तौ चात्र निमित्तवन्तौ । न चापवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते । "पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः" । "प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते" । न तावदत्र कदाचित् तिङ् भवति । अपवादौ शतृशानचौ प्रतीक्षते ॥

( उद्घोतः ) निमित्तवन्ताविति । उत्तरपदरूपनिमित्तस्य संपन्नत्वादपवादत्वेन शतृशानचावेवेति भावः ॥

( दूषणपरिहारदूषणभाष्यम् )

तदेतत् कसिद्धं भवति । यत्र सामान्यादुत्पत्तिः । यत्र हि विशेषाद् "अत इच्" इति इतरेतराश्रयमेव तत्र भवति । वीक्षमाणस्यापत्यं वैक्षमाणिरिति । च शतृशानचौ प्राप्नुतः पचतितरां जल्पतित पचतिरूपं जल्पतिरूपं पचतिकल्पं जल्पतिकल्पं पचति पठतीति ॥

( प्रदीपः ) वीक्षमाणस्येति । अत्राकृते शानच्यकारान्तत्वाभावाद्विद्योऽप्रसङ्ग इत्यर्थः । पचतितरामिति । तिङ्श्चेत्येतत् लकारान्तरार्थं स्यादपचतरामिति ॥ पचतीति । अत्रापि लस्य कृत्वात् सुप्युत्पत्तेः प्रत्यये विधीयमान आदेशः स्यादित्यर्थः । तिङां तु तिङादयोऽनकाशाः ।

( उद्घोतः ) ननु पचतीत्यादौ प्रत्ययोत्तरपदयोरभावात्कथमादेश-प्रसक्तिरत आह—अत्रापीति । सुवेच प्रत्यय इति भावः ॥ १२४ ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तदेतत्कथं कृत्वा सिद्धं भवति ? ।



( ३०३४ समाधानवार्तिकम् ॥ ११ ॥ )

॥ \* ॥ शतृशानचौ यदि लटो वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यदि लटः शतृशानचौ वा भवतः । व्यवस्थितविभाषा च । तेनेह च भविष्यतः—कौर्वतः पाचतः कुर्वद्भक्तिः पचद्भक्तिः कुर्वाणभक्तिः पचमानभक्तिः कुर्वत्तरः पचत्तरः कुर्वाणतरः पचमानतरः कुर्वद्रूपः पचद्रूपः कुर्वाणरूपः पचमानरूपः कुर्वत्कल्पः पचत्कल्पः कुर्वाणकल्पः पचमानकल्पः पचन्पठन्निति च लटः शतृशानचौ । इह च न भविष्यतः—पचतितरां जल्पतितरां पचतिरूपं जल्पतिरूपं पचतिकल्पं जल्पतिकल्पं पचति पठतीति च लटः शतृशानचौ ॥

( प्रदीपः ) तदेतदिति । व्यवस्थितविभाषाविज्ञानाच्च यथेष्टं प्रयोगसिद्धिः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि वावचनं कर्तव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । प्रकृतमनुवर्तते । क प्रकृतम् ? । “नन्वोर्विभाषा” इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि तदनुवर्तते “वर्तमाने लट्” इति लङ्पि विभाषा प्राप्नोति ॥

( समाधानभाष्यम् )

संबन्धमनुवर्तिष्यते । “नन्वोर्विभाषा । “पुरि लुङ्चास्ते” विभाषा । “वर्तमाने लट्” “पुरि लुङ्चास्ते” “विभाषा” । “लटः शतृशानचौ” विभाषा । “पुरि लुङ्चास्ते” इति निवृत्तम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

न तर्हीदानीमप्रथमासमानाधिकरण इति वक्तव्यम् ? ।

( प्रदीपः ) न तर्हीति । व्यवस्थितविभाषयैव सिद्धत्वा-  
नित्ययोरादेशयोरिति भावः ।

( समाधानभाष्यम् )

वक्तव्यं च । किं प्रयोजनम् ? । नित्यार्थम् । अप्रथमासमानाधिकरणे नित्यौ शतृशानचौ यथा स्याताम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

क तर्हीदानीं विभाषा ? ।

( समाधानभाष्यम् )

प्रथमासमानाधिकरणे पचन् पचतीति पचमानः पचते इति ॥ लटः शतृ ॥ १२४ ॥

( प्रदीपः ) नित्यार्थमिति । लटः शतृशानचा-  
विलेको योगः कियते तत्र विभाषेति वर्तते । ततोऽप्रथमा-  
समानाधिकरण इति द्वितीयो योगो नित्यार्थः । व्यवस्थित-  
विभाषाश्रयेण तु विस्पष्टा प्रतिपत्तिर्न स्यादिति तदर्थो द्वितीयो  
योगः ॥ १२४ ॥

( ५२१ शतृशानज्विधिसूत्रम् ॥ ३।२।३ आ. २ )

८९३ लक्षणहेत्वोः क्रियायाः

॥ ३ । २ । १२६ ॥

( ३०३५ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ लक्षणहेत्वोः क्रियायाः गुण  
उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लक्षणहेत्वोः क्रियाया गुण उपसंख्यानं  
कर्तव्यम् । तिष्ठन्मूत्रयति गच्छन्भक्षयतीति ।

( प्रदीपः ) लक्षण ॥ १२६ ॥ गुण इति ॥ गुणश-  
ब्देनात्र साधनमुच्यते । तिष्ठन् मूत्रयतीत्यादौ यदा स्थाना-  
दिना मूत्रादिक्रिया लक्ष्यते तदा सूत्रेणैवादेशसिद्धिः । यदा तु  
कारकं लक्ष्यते तदर्थमिदं वचनम् । बहुषु मूत्रयत्यु को देव-  
दत्त इत्युक्ते यस्तिष्ठन्मूत्रयतीति प्रतिवचनेन देवदत्तो लक्ष्यते ।  
अथ वा अशोचादिगुणो गृह्यते ॥

( उद्धोतः ) लक्षणहेत्वोः ॥ १२६ ॥ भाष्ये क्रियाया गुणे  
इति । क्रियायाः कारके इत्यर्थः । कारकनिरूपितं पदलक्षणत्वं  
धात्वर्थस्य तदर्थमिदं तदाह—गुणशब्देनेति ॥ यदास्थानादि-  
नेति । “कथमयं मूत्रयतीत्यादि प्रश्ने यदेदमुत्तरं तदा तथा सा  
लक्ष्या भवतीति बोध्यम् । यदात्विति । यदा क्रियाया कारकं  
लक्ष्यते तदा तदर्थमिदमित्यर्थः ॥ देवदत्तो लक्ष्यत इति । मूत्रण-  
समानकालिकस्थानक्रियेत्यर्थः ॥ गृह्यत इति । गुणशब्देनेत्यर्थः ।  
अत्र पक्षेऽशुचित्वादिगुणस्येदं लक्षणं न तु क्रियाया इति भावः ।  
अत्र पक्षे लक्षणहेत्वोः क्रियाया इति सूत्रे गुणे लक्ष्ये उपसंख्यानं  
कार्यमित्यर्थः ।

( ३०३६ शतृशानज्विधिवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ कर्तुश्च लक्षणयोः पर्यायेणाच-  
योगे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्तुश्च लक्षणयोः पर्यायेणाचयोग  
उपसंख्यानं कर्तव्यम् । योधीयान आस्ते स देव-  
दत्त इति । आसीनोधीते स देवदत्त इति ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

अचयोग इति किमर्थम् ? ।

( प्रत्युदाहरणभाष्यम् )

य आस्ते चाधीते च, स चैत्रः ।

( प्रदीपः ) कर्तुंश्चेति । यदा पूर्ववाक्ये गुणः साधनं गृह्यते तदा तेनैव सिद्धे पर्यायार्थः । यदा त्वशौचादेर्गुणस्य तत्र तत्र ग्रहणं तदा विध्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये कर्तुंश्चेति । कर्तुर्लक्षणभूतयोः क्रिययोर्वाचकाभ्यां पर्यायेणेत्यर्थः ॥

( ३०३७ शत्रुशानज्विधिवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तत्त्वाख्याने च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्त्वाख्याने चोपसंख्यानं कर्तव्यम् । शयाना वर्धते दूर्वा, आसीनं वर्धते विसमिति ॥

( प्रदीपः ) तत्त्वाख्यान इति । स्वभावाख्याने विनापि लक्ष्यलक्षणभावेनेत्यर्थः । नह्यासनं वृद्धेर्लक्षणं किं तर्हि ? स्वभावमात्रकथनम् आसीनं विसमिति ॥

( ३०३८ विकल्पवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सदादयश्च बहुलम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सदादयश्च बहुलमिति वक्तव्यम् । सन् ब्राह्मणः । अस्ति ब्राह्मणः । विद्यते ब्राह्मणः । विद्यमानो ब्राह्मण इति ॥

( प्रदीपः ) सदादयश्चेति । वाग्रहणस्यायं प्रपञ्चः ।

( उद्घोतः ) सदादयश्चेति । प्रथमासमानाधिकरणार्थमिदम् ॥ वाग्रहणस्यायमिति । लटः शत्रुशानचाविति विभक्त्युत्प्रेऽनुवर्तमानवाग्रहणस्य सदादयश्चेत्यादिबचनसमुदाय इत्यर्थः ॥

( ३०३९ विकल्पवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ इङ्जुहोत्योर्वावचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इङ्जुहोत्योर्वेति वक्तव्यम् । अधीते, अधीयानः । जुहोति, जुहुवत् ।

( प्रदीपः ) सच्छब्दो विद्यमानवाचीति सत्सदृशाः सदादिशब्देनोपात्ता नान्य इत्याह इङ्जुहोत्योर्वेति ॥

( ३०४० शत्रुशानज्विधिवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ माड्याक्रोशे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) माड्याक्रोश इति वक्तव्यम् । मा पचन् । मा पचमानः ॥

( प्रदीपः ) माड्याक्रोश इति । कुर्वि प्राप्तेऽस्यादेवादेशविधानालङ्घनीयते ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । “लक्षणहेत्वोः क्रियायाः” इत्येव सिद्धम् । इह तावत्तिष्ठन् मूत्रयतीति, तिष्ठतिक्रिया मूत्रयतिक्रियाया लक्षणम् । गच्छन्भक्षयतीति, गच्छतिक्रिया भक्षयतिक्रियाया लक्षणम् । योधी-

यान आस्ते स देवदत्त इति, अध्ययनक्रिया आसनक्रियाया लक्षणम् । य आसीनोधीते स देवदत्त इति आसिक्रियाऽध्ययनक्रियाया लक्षणम् ॥

( प्रदीपः ) तिष्ठतिक्रियेति । स्थितिक्रियालक्षिता तु मूत्रणक्रिया यस्तिष्ठन्मूत्रयति स देवदत्त इति सर्वनामपरामर्शे देवदत्तस्य लक्षणं तद्गतस्य वाऽशौचादेरिति भावः ॥

( उद्घोतः ) ननु क्रिययोरेव लक्ष्यलक्षणभावे ‘को देवदत्त’ इति प्रश्ने इदमुत्तरं न स्यादत आह—स्थितिक्रियेति ॥ सर्वनामपरामर्श इति । यत्तद्रूपसर्वनामपरामृष्टदेवदत्तस्य लक्षणमिति फलितम् । अन्यथा वचनान्तरारम्भेति तिष्ठतेः शत्रनापत्तिः । न हि तद्वाच्या क्रिया देवदत्तस्य लक्षणं किं तु तद्रूपलक्षितमूत्रणक्रियेति बोध्यम् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—‘अचयोग’ इति वक्ष्यामीति । इह मा भूत्—य आस्ते चाधीते च स चैव इति ।

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । नैतत् क्रियालक्षणम् । किं तर्हि ? कर्तुर्लक्षणमेतत्—शयाना वर्धते दूर्वा वेति शेतिक्रिया वृद्धिक्रियाया लक्षणं भवति । आसीनं वर्धते विसमिति आसिक्रिया वृद्धिक्रियाया लक्षणमिति ॥ \* “सदादयश्च बहुलम्” । \* “इङ्जुहोत्योर्वा” । \* “माड्याक्रोश” इत्येतद्वक्तव्यमेव” ॥ लक्षणहेत्वोः ॥ १२६ ॥

( प्रदीपः ) नैतदिति । समुचीयमानं क्रियाद्वयं परस्परस्यालक्षणं कर्तृविशेषस्य लक्षणमित्यर्थः ॥ शेतिक्रियेति । तत्त्वाख्यानमपि लक्षणं भवति । यथा चैतन्यलक्षणः पुरुष इति भावः ॥ १२६ ॥

( उद्घोतः ) समुचीयमानमिति । परस्परलक्षणतामनापन्नं समुचीयमानं सत्कर्तृविशेषस्य लक्षणमित्यन्वयः ॥ यथा चैतन्येति । तत्त्वरूपत्वात्पुरुषस्य यथा तत्र लक्षणत्वारोपेण शब्दप्रयोगस्तथाऽत्रापि तदारोपेण प्रत्यय इति भावः ॥ भाष्ये इति वक्तव्यमेवेति । लक्षणहेत्वोरित्यनेनासिद्धेः । यथास्थितसूत्रन्यासे सूत्रे वा ग्रहणानुवृत्तेरभावाच्चेत्यभिमानैः ॥ १२६ ॥

( ५२२ सप्तसंज्ञासूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ३ )

८९४ तौ सत् ॥ ३ । २ । १२७ ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

तौग्रहणं किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) तौ सत् ॥ १२७ ॥ तौग्रहणमिति । शत्रुशानचोरनुवर्तनादेव संज्ञा भविष्यतीति श्रवः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

शतृशानचौ प्रतिनिर्दिश्येते ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । प्रकृतौ शतृशानचावनु-  
वर्तिष्येते । क्व प्रकृतौ ? । “लटः शतृशानचावप्रथ-  
मासमानाधिकरणे” इति ।

( प्रदीपः ) शतृशानचाविति । असति तौग्रहणे प्र-  
त्ययविधिरयं स्याद् न तु संज्ञाविधिरिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) तौ सत् ॥ १२७ ॥ प्रत्ययविधिरिति ।  
सदित्यस्य प्रत्ययस्य विधिरित्यर्थः । भाष्ये प्रकृताविति । एवं च  
प्रत्ययविधौ शतृशानचावित्यस्यानन्वयापत्त्या संज्ञाविधिरेवेति भावः ।

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति ।

( ३०४१ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ तौ सदिति वचनमसंसर्गार्थम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) तौ ग्रहणं क्रियते । [ किमर्थम् ? ]  
असंसर्गार्थम् । असंसक्तयोरेतैर्विशेषैः शतृशानचोः  
सत्संज्ञा यथा स्यादिति ॥

( प्रदीपः ) तौ सदिति । तच्छब्देन शतृशानचो रूप-  
मात्रं परामृश्यत इति लट्स्थानिकत्वादिधर्मासंबद्धयोरपि संज्ञा-  
भवतीत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) धर्मासंबद्धयोरपीति । लटः सद्देश्यादिविहि-  
तयोरित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

ननु चैते विशेषा निर्वर्तन्ते ।

( प्रदीपः ) ननु चेति । अस्वरितत्वादनपेक्षणाचेति  
भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

यद्यप्येते विशेषा निर्वर्तन्ते । अयं तु खलु वर्तमानः  
कालोऽवश्यमुत्तरार्थानुवर्त्यः । तस्मिन्ननुवर्तमाने  
वर्तमानकालविहितयोरेव शतृशानचोः सत्संज्ञा  
स्यात् । भूतभविष्यत्कालविहितयोर्न स्यात् ॥

( प्रदीपः ) भूतेति । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्देति  
वचनाद् भूतेपि शतृशानचौ भवतः ।

( उद्ध्योतः ) ननु भूते शतृशानचोर्विध्यदर्शनादाह—वर्त-  
मानसामीप्ये इति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

किं पुनर्भूतभविष्यत्कालविहितयोः सत्संज्ञाव-  
चने प्रयोजनम् ? ।

( प्रदीपः ) किं पुनरिति । अतिदेशाद् भूते शतृशा-  
नचौ भविष्यतः । लटः सद्देति वचनाद्भविष्यत्यपीति प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) अतिदेशादिति । तेन प्रत्ययवत्संज्ञाप्यतिदेशे-  
नैव सिद्धा । तस्या अपि वर्तमानाधिकारे विहितत्वाद् लटः सद्देति  
वचनादेव भविष्यदर्शयोरपि सा सिद्धेत्यर्थः ॥ शतृशानचावित्यस्य  
सत्संज्ञा इति शेषः ॥

( ३०४२ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ प्रयोजनं पूरणगुणसुहितार्थ-  
सदिति ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ब्राह्मणस्य पक्ष्यन् । ब्राह्मणस्य पक्ष्य-  
माणः ॥

( प्रदीपः ) पूरणेति । वर्तमानवदित्यतिदेशाद्विधान-  
मेव भूते शतृशानचोः स्याद् न तु संज्ञा । प्रत्ययाधिकाराद्धि  
प्रत्यय एवातिदिश्यते न तु संज्ञा । तथा लटः सद्देति सत्-  
संज्ञकप्रतिरूपकविधानं स्यात् । यथा ‘पिष्टपिण्डाः सिंहाः  
क्रियन्ता’ मिति तदाकाराः क्रियन्ते । विहितयोस्तु तयोः सत्-  
संज्ञानिबन्धनकार्याप्रसङ्गः ॥

( उद्ध्योतः ) ननूकरीत्या सत्संज्ञासिद्धिरत आह—वर्त-  
मानवदित्यादि ॥ न तु संज्ञेति । अनधिकारादिति भावः ॥  
ननु लटः सद्देश्येनेन तच्छब्देन विधानात्तद्विहितयोः सा सिद्धेत्यत  
आह—तथा लट इति ॥ भाष्ये ब्राह्मणस्य पक्ष्यश्रुतिः । यद्यपि  
पूरणेति सूत्रे अत्रासौमर्थ्यात्समासो नेति भाष्ये उक्तम्, तथापि  
तत्रत्यसिद्धान्तोदाहरणस्य ब्राह्मणस्य द्वेक्ष्यन् इत्यस्योपलक्षणमिदम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ क्रियमाणेपि तौग्रहणे कथमेवासंसक्तयो-  
रेतैर्विशेषैः सत्संज्ञा लभ्या ? ।

( प्रदीपः ) अथेति । संनिहितस्यैव वस्तुनः सर्वनाम्ना  
परामर्शादिति प्रश्नः । यद्यप्यनुवृत्त्या प्रकृतयोः संज्ञासिद्धौ  
तौग्रहणं क्रियते तथापि ‘न प्रयोजनानुवर्ति’प्रमाणमपि तु  
प्रमाणानुवर्ति प्रयोजनमिति क्रियमाणमपि तौग्रहणं प्रयोजन-  
संपादनाय नालमिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) संनिहितस्यैवेति । संनिहितगुणविशिष्टस्यैव-  
त्यर्थः । तादृशस्यैव तत्र बुद्धिस्थत्वादिति भावः ॥ नालमिति ।  
वाच्यवृत्त्या तदर्थप्रतीतेरिति तात्पर्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

लभ्येत्याह । कथम् ? । ताविति शब्दतः । “सद्”  
इति योगे क्रियमाणे “तौ” ग्रहणं योगाङ्गमुपजा-  
यते । सति च योगाङ्गे योगविभागः करिष्यते ।  
“तौ” तावेतौ शतृशानचौ धातुमात्रात्परस्य प्रत्य-

१ ‘निवर्तेत्’ ॥

२ इतः पूर्वं ‘भूतभविष्यत्कालविहितयोः शतृशानचोः सत्संज्ञावचने  
प्रयोजनं “पूरणगुणसुहितार्थसद्व्ययतव्यसमानाधिकरणेन” इति स-

मासनिषेधो यथा स्यात्’ इति भाष्ये पाठो लेखकप्रमादात् उद्धृतो भवेत् ॥

३ ब्राह्मणस्य तण्डुलं पक्ष्यमित्यर्थः । तत्र ब्राह्मणस्य तण्डुलेन संबन्धो न तु  
पक्ष्यश्रित्यनेनेति सामर्थ्याभावः स्पष्टः । ( र. ना. )

यस्य भवतः । ततः “सत्” । सत्संज्ञौ भवतः शतृ-  
शानचाविति ॥

( प्रदीपः ) ताविति शब्दत इति । शब्देनैवाभिमतोः सति योगविभागे लभ्यत इत्यर्थः । तावेताविति । पूर्वसूत्रे तयोरादेशत्वादिहाप्यादेशयोरेव विधानमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) शब्देनैवेति । योगविभागबोधनद्वारा बोध्यत इत्यर्थः ॥ शब्दत इति भाष्ये आद्यादित्वात्तृतीयान्तात्तत्सिरिति भावः ॥ भाष्ये सदिति योग इति । सदित्येव सूत्रे इत्यर्थः ॥ योगाङ्गमिति । योगः सूत्रसमुदायरूपाष्टाध्यायी तदङ्गं सूत्रत्वेन ॥ तच्च योगविभागे सतीत्यर्थः ॥ ननु स्थानिनिर्देशाभावात्प्रत्ययाधिकाराच्च आदेशत्वं कथं, प्रत्ययस्येति च कथं लब्धमत आह—पूर्वसूत्रे इति । प्रत्ययप्रकरणाच्च प्रत्ययस्येति लब्धमिति भावः ॥ अनुवर्तमानप्रत्ययपदं षष्ठ्या विपरिणम्यत इति बोध्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इहापि तर्हि प्राप्तुतः कारको हारक इति ।

( प्रदीपः ) कारक इति । तृजादीनां विधानसामर्थ्याच्छ-  
तृशानचौ न भविष्यतः क्तिवादीनामपि लोपविधानसामर्थ्या-  
दिति यः प्रत्यय आदेशेन निवर्त्यते तस्य तदादेशापवादौ  
शतृशानचौ प्राप्तुत इत्यभिप्रायेण ण्वुलदाहृतः । एवं च नन्द-  
नाद्यण्युदाहार्यम् । युवोरनाकावितीत्यस्य तु तद्धितोऽव-  
काशः ॥

( उद्घोतः ) ननु धातोरित्यधिकारात्तृतीयधात्वधिकारविहिता-  
नामादेशेपि तत्त्वादीनामपि प्रसंगः कस्मान्नोक्तो आह—तृजादी-  
नामिति ॥ लोपविधानसामर्थ्यान्न भविष्यत इत्यनुषङ्गः ॥ ण्वुल-  
विधानं त्वादेशप्रवृत्तये एव स्यात् । न हि स कश्चित्प्रयोगे श्रूयते  
इत्यभिमानः ॥

( ३०४३ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अवधारणं लृटि विधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) “लृटः सत्त्वेत्येतन्नियमार्थं भविष्यति ।  
लृट एव धातुमात्रात्परस्य नान्यस्येति ॥

( नियमार्थत्वानुपपत्तिभाष्यम् )

कैमर्थक्यान्नियमो भवति । “विधेयं नास्ति” इति  
कृत्वा । इह चास्ति विधेयम् ॥ किम् ? । नित्यौ  
शतृशानचौ प्राप्तौ तौ विभाषाविधेयौ । तत्रापूर्वो  
विधिरस्तु नियमोऽस्त्विति अपूर्वं एव विधिः स्यान्न  
नियमः ॥

( ३०४४ नियमार्थत्वोपपत्तिवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ योगविभागतश्च विहितं सत् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एवं तर्हि योगविभागः करिष्यते—

“लृटः सत्” । लृटः सत्संज्ञकौ भवतः । किमर्थ-  
मिदम् ? । नियमार्थम् । लृट एव धातुमात्रात्परस्य  
नान्यस्येति ॥ ततो “वा” । वा च लृटः शतृशा-  
नचौ सत्संज्ञौ भवतः ॥ तत्रायमप्यर्थः—“सद्विधि-  
नित्यमप्रथमासमानाधिकरणे” इति वक्ष्यति, तन्न  
वक्तव्यं भवति ॥

( प्रदीपः ) तन्न वक्तव्यमिति । कथमिति चेदुच्यते ।  
तावित्यत्र योगे प्रथमासमानाधिकरणादीन् विशेषाननुवर्त्य शतृ-  
शानचौ विधीयेते तावेव च लृटः सदित्यनेन नियम्येते ।  
वेत्यनेन तु प्रथमासमानाधिकरणादौ लृट इव विकल्पेन  
विधीयेते ।

( उद्घोतः ) नियमं साधयति—भाष्ये—योगविभागत-  
श्चेति ॥ ताविति योगविभागेन यतः सत्संज्ञकं विहितमतो लृटः  
सदिति योगविभागेन नियम उपपद्यत इत्यर्थः ॥ तद्याचष्टे—एवं  
तर्हीत्यादि ॥ तावेवेति । तावित्यनेन पुनर्विहितौ सदित्यनेन च  
प्रकान्तत्वाविशेषात्सर्वेषामपि संज्ञा ॥ नन्वेवमपि द्विपोऽमित्र इत्यादि  
विहितशतृः संज्ञा न स्यादिति चेन्न । लृटः सदेति शापकात्तच्छब्देन  
शतृत्वशानचूत्वाभ्यामेव परामर्शौ न तु लृटस्थानिकत्वादिविशेष-  
स्याप्याश्रयणमित्याशयात् ॥ लृट इवेति । पूर्वविहितशतृशानच्-  
मात्रानुवादेन विकल्पोऽनेन विधीयत इत्यर्थः । एवं च लृट लृटो-  
रुभयोरपि प्रथमासमानाधिकरण्ये आदेशविकल्पसिद्धिरिति भावः ॥  
एवं च यथान्यासेऽप्ययं विकल्पः प्रथमासमानाधिकरण्यविषय एवेति  
ध्वनितम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ यावेतावुत्तरौ शत्रानौ किमेतौ लादेशौ,  
आहोस्विदलादेशौ ।

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः ? ॥

( प्रदीपः ) शत्रानाविति । ‘इङ्धार्योः शत्रक-  
च्छ्रिणि’ ‘पूङ्यजोः शानन्’ ‘ताच्छीत्यवयोवचन-  
शक्तिषु चानशि’ति प्रत्ययानां ग्रहणं तत्र लटोऽनुवृत्त्यनु-  
वृत्तिभ्यां पक्षद्वयसंभवः ॥

( ३०४५ लादेशपक्षे दूषणवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ उत्तरयोर्लादेशो वावचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उत्तरयोर्लादेशो वावचनं कर्तव्यम् ।  
पचमानः यजमानः । पचते यजत इत्यपि यथा  
स्यात् ॥

( प्रदीपः ) उत्तरयोरिति । लादेशेषु वासरूपवि-  
धिर्नास्तीत्युक्त्वादिति भावः ।

( उद्घोतः ) लादेशेष्विति । वासरूपन्यायस्य अनादेश-  
प्रत्ययविषयत्वादिति भावः ॥

१ अधिकृतं प्रथमान्तं प्रत्ययपदमित्यर्थः । इदं च प्रत्ययस्येत्यस्य लामे उपा-  
यान्तरं बोध्यम् । ( र. ना. )

२ अभिमानोक्तिबीजं तु ण्वुलविधानसकादेशश्रवणार्थमित्यस्य वक्तुं शक्य-

त्वमिति । ( र. ना. )

३ लृटि विधानमवधारणं नियामकं भविष्यतीत्यर्थः । अवधारणपदे कारणे  
सङ्गः । ( र. ना. )

( ३०४६ दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ साधनाभिधानं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) साधनाभिधानं च प्राप्नोति “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य” इति भावकर्मणोरपि प्राप्नुतः ॥

( प्रदीपः ) साधनाभिधानं चेति । तदानीष्टस्यापि साधनस्याभिधानं प्राप्नोति कर्तुरेव चेध्यते ॥

( उद्ध्योतः ) साधनाभिधानस्येष्टत्वादाह—अनिष्टस्यापीति ।

( ३०४७ दूषणवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ स्वरः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्वरश्च साध्यः । कतीह पचमानाः । ‘अदुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदासं भवती’त्येष स्वरः प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) स्वर इति । चित्करणं तु निग्नाना इत्यादौ सावकाशम् ।

( उद्ध्योतः ) निग्नाना इत्यादाविति । अदुपदेशात्परत्वाभावादिति भावः ॥ १२७ ॥

( ३०४८ दूषणवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ उपग्रहप्रतिषेधश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपग्रहस्य च प्रतिषेधो वक्तव्यः । कतीह निग्नानाः “तडानावात्मनेपदम्” इत्यात्मनेपदसंज्ञा प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) उपग्रहस्येति । आत्मनेपदसंज्ञाया इत्यर्थः । अन्यथा परस्मैपदिभ्यश्चानश् न स्यात् ॥ १२७ ॥

( अलादेशपक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

स्तां तर्हि अलादेशौ ।

( ३०४९ दूषणवार्तिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ अलादेशो षष्ठीप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अलादेशो षष्ठीप्रतिषेधो वक्तव्यः । सोमं पचमानः । नडमाग्रानः । अधीयन्पारायणम् । लप्रयोगे नेति प्रतिषेधो न प्राप्नोति ॥

( दूषणवारणभाष्यम् )

मा भूदेवम् तृन्नित्येवं भविष्यति । कथम् ? । तृन्निति नेदं प्रत्ययग्रहणम् किं तर्हि ? । प्रत्याहारग्रहणम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

क संनिविष्टानां प्रत्याहारः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

“लटः शट्” इत्यत आरभ्यातृनो नकारात् ।

( दूषणभाष्यम् )

यदि प्रत्याहारग्रहणं चोरस्य द्विषन् वृषलस्य द्विषन् अत्रापि प्राप्नोति ॥

( ३०५० समाधानवार्तिकम् ॥ १० ॥ )

॥ \* ॥ द्विषः शतुर्वावचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्विषः शतुर्वेति वक्तव्यम् । तच्चावश्यं वक्तव्यम् । प्रत्ययग्रहणे सति प्रतिषेधार्थम् । तदेव प्रत्याहारग्रहणे सति विध्यर्थं भविष्यतीति ॥ तौ सत् ॥ १२७ ॥

( अथ ताच्छीलिकप्रकरणम् )

( ५२३ तृन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ४ )

९०२ तृन् ॥ ३ । २ । १३५ ॥

( ३०५१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ तृन्विधावृत्तिविक्षु चानुपसर्गस्य ॥\*॥

( भाष्यम् ) तृन्विधौ ऋत्तिविक्षु चानुपसर्गस्येति वक्तव्यम् । होता पोता ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अनुपसर्गस्येति किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) तृन् ॥ १३५ ॥ तृन्विधाविति ॥ अताच्छील्यार्थमिदम् ॥

( उद्ध्योतः ) तृन् ॥ १३५ ॥ अताच्छील्यार्थमिति । अनुपसर्गस्येति विशेषं वक्तुमित्यन्ये ॥

( प्रत्युदाहरणभाष्यम् )

प्रशास्ता प्रतिहर्ता ॥

( प्रदीपः ) प्रशास्तेति । तृजेव भवति । तृन्स्तृचौ शास्तिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटाविलनेन । स्वरे च विशेषः । तृनि तादौ च निति कृत्यताविति गतेः प्रकृतिस्वरो भवति । तृचि कृतस्वरः ॥

( उद्ध्योतः ) तृन् भावे कथं प्रशास्तेत्यत आह—तृजेवेति । नन्वेवं प्रशास्तेति स्यादत आह—तृन्स्तृचाविति । शंसिक्शदादिभ्य इति हरदत्तोक्तपाठे तु वृद्धिनलोपौ दुर्लभौ ॥ नन्वत्र गतिसमासे उभेयथाप्यव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर एवेति कथं स्वरे विशेषोऽत आह—तादौ चेत्यादि ॥

( ३०५२ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ नयतेः शुक् च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नयतेः शुक्वक्तव्यः । तृन्श्च प्रत्ययो वक्तव्यः । नेष्टा ॥

( ३०५३ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ न वा धात्वन्यत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यः । किं कारणम् ? । धात्वन्यत्वात् । धात्वन्तरं नेषतिः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

कथं ज्ञायते ? ॥

( ३०५४ प्रत्याख्यानहेतुवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ नेषतुनेष्टादिति दर्शनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नेषतुनेष्टादिति हि प्रयोगो दृश्यते ।  
इन्द्रो वस्तेन नेषतु । गावो नेष्टात् ॥

( प्रदीपः ) नवेति । नयतेस्तु षुकि गुणो न स्यात् ।  
नेषतेस्तु कृत्विजि तृनि वक्ष्यमाणादनिङ्गचनात्सर्वोपसंख्यानं  
शेषादिङ्भावः ॥

( उद्ध्योतः ) षुकीति । प्रत्ययसंनियोगशिष्टतयाऽन्तरङ्गत्वा-  
दुपात्पूर्वमेव षुक् स्यादिति भावः ॥ ननु नेषतेरिद् दुर्वारोऽत  
आह—नेषतेस्त्विति ॥

( ३०५५ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ त्विषेर्देवतायामकारश्चोपधाया  
अनिद्वत्त्वं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) त्विषेर्देवतायां तन्वक्तव्यः । अकार-  
श्चोपधायाः । अनिद्वत्त्वं च वक्तव्यम् । त्वष्टा ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

किं पुनरिदं त्विषेरेवानिद्वत्त्वं ।

( समाधानभाष्यम् )

नेत्याह । यच्चानुक्रान्तं यच्चानुक्रंस्यते सर्वस्यैष  
शेषोऽनिद्वत्त्वं चेति ॥

( प्रदीपः ) नेत्याहेति । त्विषेः स्वत एवानिद्वत्त्वादिति  
भावः ॥

( उद्ध्योतः ) त्विषेरिति । तथा च तत्रानुपयोगात्सर्वशेष  
इति भावः ॥

( ३०५६ वार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ क्षदेश्च युक्ते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्षदेश्च युक्ते तन्वक्तव्यः । क्षत्ता ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये—क्षत्तेति । द्वाराधिकृतो रथयुतश्चे-  
त्याहुः ॥ १३५ ॥

( ३०५७ वार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ छन्दसि तृच ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) छन्दसि तृच तृच वक्तव्यः ॥ क्षतृभ्यः  
संगृहीतृभ्यः । क्षतृभ्यः संगृहीतृभ्यः ॥ तृन् ॥ १३५ ॥

( ५२४ क्लृप्तप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ५ )

१०६ ग्लजिस्थश्च क्लृः ॥ ३।२।३१९ ॥

( प्रत्ययस्य गित्त्वनिर्णयाधिकरणम् )

( ३०५८ कित्त्वे दूषणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्त्रोः कित्त्वे स्थ ईकारप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्त्रोः कित्त्वे स्थ ईकारस्य प्रतिषेधो  
वक्तव्यः । स्त्रास्त्रुरिति । “घुमास्था—” इतीत्वं  
प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) ग्लजि । क्लृरिति श्रवणात् कित्त्वं निश्चि  
त्याह—क्लृः कित्त्वे इति ॥

( अकिदङ्गीकारभाष्यम् )

एवं तर्ह्यकित्करिष्यते ॥

( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । गकारस्य चत्वेन निर्देशो  
व्याख्यास्यत इत्यर्थः ॥

( ३०५९ अकिदङ्गीकारे दूषणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अकिति गुणप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यद्यकित् क्रियते, गुणप्रतिषेधो व-  
क्तव्यः । जिष्णुरिति ।

( ३०६० दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ भुव इट् प्रतिषेधश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भुव इट्प्रतिषेधश्च वक्तव्यः ।

किं चान्यत् ? ।

गुणप्रतिषेधश्च । भूष्णुरिति ॥

( किदङ्गीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि कित् ।

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—स्त्रोः कित्त्वे ईकारप्रतिषेधः\* इति ।

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः ।

( २०६१ स्त्रुविधिवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ स्यादंशिभ्यां स्त्रुश्छन्दसि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्यादंशिभ्यां स्त्रुश्छन्दसि वक्तव्यः ।  
‘स्यास्त्रु जङ्गमम् दङ्क्षणवः पशवः’ इति । स इदानीं  
स्थः स्त्रुरविशेषेण विधास्यते ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

सिध्यति । सूत्रं तर्हि भिद्यते ॥

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ।

१ अयमर्थः ‘सिक्त्रुलम्’ इत्यत्रापि लिखित इति बोध्यम् ॥

२ अङ्गस्येगन्तत्वाभावाद्भूषणत्वाभावाच्चेति भावः । ( २. ना. )

३ पाणिन्युच्चारितकारसंगतये वक्ष्यमाणसिद्धान्तश्रयणमिति भावः ॥

( दूषणसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं स्त्रोः कित्वे स्थ ईकारप्रतिषेध इति ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि गित्करिष्यते ॥

( ३०६२ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ स्त्रोर्गित्त्वान्न स्थ ईकारः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्त्रोर्गित्वात् स्थ ईकारो न भविष्यति । किं कारणम् ? ।

( ३०६३ हेतुवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ किङ्तोरीत्वशासनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किङ्तोरीत्वं शिष्यते ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह तर्हि जिष्णुरिति गुणः प्राप्नोति ।

( ३०६४ समाधानवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ गुणाभावस्त्रिषु सार्यः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गुणाभावस्त्रिषु सर्तव्यः । गिति किति ङिति चेति ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तद्वकारग्रहणं कर्तव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । क्रियते न्यास एव । ककारे गकारश्चतुर्थभूतो निर्दिश्यते—किङङिति चेति ।

( प्रदीपः ) ककार इति । परभूत इत्यर्थः । एतच्च लक्ष्य-मूलाद्याख्यानाल्लभ्यते ।

( उद्घोतः ) ग्लाजि ॥ १३९ ॥ न कद्वयमुपलभ्यतेऽत आह—लक्ष्येति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह तर्हि भूष्णुरिति “अयुक्तः किति” इतीदृ प्रतिषेधो न प्राप्नोति ॥

( ३०६५ समाधानवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ अयुक्तोनिद्वत्वं गकोरितोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अयुक्तोनिद्वत्वं गकारककारयोरिति वक्तव्यम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तद्वकारग्रहणं कर्तव्यम् ॥

१ ‘न घातुलोप आर्षधातुके विवङ्ङिति च’ इत्येवं पाणिनेः संहितापाठे ककारद्वयसत्त्वेपि सूत्रविभागकर्तृपूर्वपक्षिणा ककारद्वयस्य ‘अनञि च’ इति द्वित्व-निष्पन्नत्वमवगम्य व्यञ्जपाठे द्वित्वाप्राप्त्या ककारद्वयस्यासंभवादेकककार एव पाठोऽङ्गीकृतः । तदभिप्रायेणेदमिति बोध्यम् ॥

२ पाणिनिना “झरो झरि” इति कृतं लोपमजावानः ‘एकककार एव पाणिनिना ‘अयुक्तः किति’ इति न्यासः कृतः’ इति जानानः आक्षेपा भूष्णुरित्यनेद प्रतिषेधाभासिमाक्षितवाच्यः ॥ सिद्धान्ती तु लोपेनैकककारपाठे उपलभ्य-

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । क्रियते न्यास एव । ककारे गकारश्चतुर्थभूतो निर्दिश्यते “अयुक्तः किति” इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्येवं चतुर्थस्यासिद्धत्वाद् “हृदि च” इत्युत्वं प्राप्नोति ॥

( समाधानभाष्यम् )

सौत्रो निर्देशः ॥ अथवाऽसंहिताया निर्देशः क-रिष्यते—अयुक्तः किति इति ॥

( प्रदीपः ) सौत्र इति । तेन असिद्धत्वाभावादुत्वाभावे विसर्जनीयो भवतीत्यर्थः ॥ अथवेति । संहितायामुत्त्वविधानात् । इह तु तदभावादवसानविषयत्वाद्विसर्जनीयो भवति ॥ १३९ ॥

( उद्घोतः ) तेनेति । निर्देशेनासिद्धत्वं बौध्यत इत्यर्थः ॥ तदभावादिति । असंहिताकृतार्थमात्राकालेन विच्छिदादवसान-विषयत्वमिति भावः ॥ ननु संहिताया अविवक्षायां विसर्गोपि कथं, तत्रापि संहिताधिकारादिति स्पष्टमष्टमे भाष्य इति चेन्न । पूर्वेण संहिताया एवावसानकार्यनिमित्तत्वादिति भावः ॥ १३९ ॥

स्त्रोर्गित्वात् स्थ ईकारः किङ्तोरीत्वशासनात् । गुणाभावस्त्रिषु सार्यः अयुक्तोनिद्वत्वं गकोरितोः ग्लाजिस्थश्च ॥ १३९ ॥

( ५२५ धिनुणप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ६ )

९०८ शमित्यष्टाभ्यो धिनुण्

॥ ३ । २ । १४१ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

धिनणयं वक्तव्यः । धिनुणि हि सति शमिनौ शमिनः तमिनौ तमिन इति “उगिदच्चां सर्वनाम-स्थान” इति नुम्प्रसज्येत ।

( धिनुण्वादिभाष्यम् )

नैष दोषः । झल्यग्रहणं तत्र चोदयिष्यति ।

( धिनण्वाद्याक्षेपभाष्यम् )

इह तर्हि शमिनितरा शमिनीतरा तमिनितरा त-मिनीतरा । ‘उगितो घादिषु नद्या अन्यतरस्यां ह्रस्वो भवती’त्यन्यतरस्यां ह्रस्वत्वं प्रसज्येत ।

मानेऽपि वास्तवमत्र ककारद्वयमिति जानात्येवेति बोध्यम् ॥

३ ‘असिद्धत्ववाचात्’ इत्यनुक्त्वा ‘असिद्धत्वाभावात्’ इति वदतः कैयटस्याशयस्तु—‘सौत्रो निर्देशः’ इत्यस्य ‘सौत्रं निपातनम्’ इत्यर्थेन नात्र ‘खरि च’ इत्यनेन चतुर्थम् यस्यासिद्धत्वमाशङ्क्यते किंत्वेनेन निपातनेनेति अस्य त्रैपादिकत्वाभावेन नैवासिद्धत्वम् । येन ‘हृदि च’ इत्युत्त्वमापद्येत इति ॥ इति दाधिमथानां रहस्यम् ॥

४ असंहिता कृतार्थमात्राधिककालेनेति पाठो भाति । ( र. ना. )

तस्माद् घिनणयं वक्तव्यः ।

( प्रदीपः ) शमित्य ॥ १४१ ॥ घिनणयमिति ।  
उकारे हि सति कार्यार्थत्वसंभवात्सोच्चारणार्थत्वं न स्यादिति  
भावः ॥

( उद्घोतः ) शमित्य ॥ १४१ ॥ उच्चारणार्थत्वमिति ।  
केवलोच्चारणार्थत्वमित्यर्थः ॥ शमिनीतरेति । ननु ह्रस्वाभावे  
तसिलादिष्विति पुंस्त्वं युक्तमिति कथं दीर्घप्रयोग इति चेन्न ।  
ताच्छीलिकानां प्रायेण रुढितुल्यताया भगवतोक्तत्वेन संज्ञात्वा-  
त्संज्ञापूर्ण्याश्चेति निषेधादित्याहुः ॥ १४१ ॥

( घिनुण्वादिभाष्यम् )

इष्यत एव ह्रस्वत्वम् ॥

( ३०६६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ घिनुणकर्मकाणाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) घिनुणकर्मकाणामिति वक्तव्यम् । इह  
मा भूत्—संपृणक्ति शाकमिति ॥

( ३०६७ वार्तिकप्रत्याख्यानम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उक्तं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किमुक्तम् ? । अनभिधानादिति ॥  
शमित्यष्टा ॥ १४१ ॥

( प्रदीपः ) इष्यत इति । विकल्पेनैव ह्रस्वत्वमिष्यते न  
तु नित्यमित्युक्तार उगित्कार्यार्थ इति स्थितम् ।

( ५२६ जुञ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ७ )

११३ निन्दहिंसक्लिशखादविनाशप-  
रिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषा-  
सूयो जुञ् ॥ ३ । २ । १४६ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं निन्दादिभ्यो जुञ्जिधीयते । न ण्वुलैव  
सिद्धम् । नह्यस्ति विशेषः । निन्दादिभ्यो ण्वुलो वा  
जुञो वा । तदेवरूपं स एव स्वरः ॥

( ३०६८ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ जुञमनेकाचः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) जुञमनेकाचः प्रयोजयन्ति । असूयकः ।

( प्रदीपः ) निन्द ॥ १४६ ॥ जुञमनेकाच इति ।  
जातौ बहुवचनम् । असूयशब्दस्यैकस्यैव प्रयोजकत्वात् ।

( उद्घोतः ) निन्दहिंस ॥ १४६ ॥ जातौ बहुवचन-  
मिति । तत्र बहुवचनस्य भगवता प्रत्याख्यानादेकव्यक्तिविषये  
जात्याश्रये फलाभावाच्चेदं विन्यम् ॥ प्रयोगबहुत्वाश्रयं बहुवचन-  
मिति परे ॥ १४६ ॥

१ तस्य उकारस्थैत्यर्थः । ( र. ना. )

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ ये ऽत्रैकाचः पठ्यन्ते । तेषां ग्रहणं किमर्थम् ।  
न तेषां ण्वुलैव सिद्धम् ।

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । अयं तच्छीलादिष्वर्थेषु तृन्विधी-  
यते स विशेषविहितः सामान्यविहितं ण्वुलं बाधेत ।

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

वाऽसरूपेण न्यायेन ण्वुलपि भविष्यति ।

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( ३०६९ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ निन्दादिभ्यो जुञ्ज्वचनमन्येभ्यो  
ण्वुलः प्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निन्दादिभ्यो जुञ्ज्वचनं क्रियते[कि-  
मर्थम्?]ज्ञापकार्थम् । किं ज्ञाप्यम् ? । एतज्  
ज्ञापयत्याचार्यः ‘तच्छीलादिषु वासरूपन्यायेना-  
न्येभ्यो ण्वुलं न भवतीति’ ।

( ३०७० वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ तृजादिप्रतिषेधार्थं वा एके ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा एके मन्यन्ते—एतज् ज्ञापय-  
त्याचार्यः ‘ताच्छीलिकेषु सर्वे एव तृजादयो वास-  
रूपेण न भवन्तीति’ निन्दहिंस ॥ १४६ ॥

( प्रदीपः ) तृजादिप्रतिषेधार्थं वेति । प्रत्ययसामान्यापेक्षं  
च ज्ञापकमाश्रीयते, न तु ण्वुलभावार्थमेव ॥ १४६ ॥

( युञ्प्रत्ययप्रकरणम् )

( ५२७ युञ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ८ )

१२७ जुचङ्क्रम्यदंक्रम्यसृष्टधिज्वलशु-  
चलषपतपदः ॥ ३ । २ । १५० ॥

( ३०७१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ पदिग्रहणमनर्थकमनुदात्तेतश्च  
हलादेरिति सिद्धत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पदिग्रहणमनर्थकम् । किं कारणम् ? ।

“अनुदात्तेतश्च हलादेः” इति सिद्धत्वात् । “अनु-  
दात्तेतश्च हलादेः” इत्येवात्र युच् सिद्धः ।

( प्रदीपः ) जुचङ्क ॥ १५० ॥ पदिग्रहणमिति ।  
न च सकर्मकार्थं पदिग्रहणमनभिधानाद् अनेन सकर्मकाद-  
विधानात् ॥ १५० ॥

( उद्घोतः ) जुचङ्क्रम्य ॥ १५० ॥ सकर्मकार्थमिति ।



अनुदात्तेतश्चेति सूत्रे चलनशब्दार्थादित्यतोऽकर्मकादित्यनुवर्तते ।  
तत्त्वं च सोपसर्गत्वेनान्तर्भावितव्यत्वेन वेति बोध्यम् ॥

(भाष्यम्) न सिध्यति । अयं पदेरुक्ञ् विधीयते—  
“लघपतपदस्याभूवृषहनक्रमगमंशृभ्य उक्ञ्” इति ।  
स विशेषविहितः सामान्यविहितं युचं बाधेत ॥  
वासरूपन्यायेन युजपि भविष्यति ॥

(३०७२ वार्तिकम् ॥ २ ॥)

॥ \* ॥ असरूपनिवृत्त्यर्थं तु ॥ \* ॥

(भाष्यम्) असरूपनिवृत्त्यर्थं तर्हि पदिग्रहणं  
क्रियते ।

एतज् ज्ञापयत्याचार्यः ताच्छीलिकेषु ताच्छी-  
लिका वासरूपेण न भवन्तीति ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

यद्येतज् ज्ञाप्यते “सूददीपदीक्षश्च” इति दीपि-  
ग्रहणमनर्थकम् । अयं दीपे रो विधीयते—“नमि-  
कम्पिस्म्यजसकमर्हिसदीपो र” इति । स विशेष-  
विहितः सामान्यविहितं युचं बाधिष्यते ॥

(उद्घोतः) सूददीपेति । युज्निषेधकम् ॥ १५० ॥

(समाधानभाष्यम्)

एवं तर्हि सिद्धे सति यद् दीपिग्रहणं करोति ।  
तज् ज्ञापयत्याचार्यः ‘भवति युचो रेण समावेश’  
इति ॥

(प्रश्नभाष्यम्)

किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ? ।

(समाधानभाष्यम्)

कम्प्रा कन्या कमना कन्येत्येतत्सिद्धं भवति ॥  
युचंक्रम्य ॥ १५० ॥

(५२८ आलुचप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ९ )

९३५ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्रा-

श्रद्धाभ्य आलुच् ॥३।२।१५८॥

(आक्षेपभाष्यम्)

किमर्थमालुजविधीयते, न लुशेवोच्यत ।

(प्रश्नभाष्यम्)

का रूपसिद्धिः ? । स्पृहयालुः दयालुः ।

(उत्तरभाष्यम्)

शपि कृते “अतो दीर्घा यजी”ति दीर्घो भवि-  
ष्यति ।

(प्रदीपः) स्पृहि ॥ १५८ ॥ शपि कृत इति ।  
तुरुस्तुशम्यम् इत्यतस्तत्र सार्वधातुक्रमग्रहणमनुवर्तते न तु  
तिङ्प्रहणमिति भावः ॥

(उद्घोतः) स्पृहिगृ ॥ १५८ ॥ ननु अतो दीर्घ-  
इत्यत्र तिङीत्यनुवृत्त्या कथमत्र दीर्घ इत्यत आह—तुरुस्तु इति ।  
अत एव ज्ञाजनोर्जेति दीर्घविधानस्याङ्गवृत्तपरिभाषाज्ञापकत्वं संग-  
च्छते ॥

(समाधानभाष्यम्)

एवं तर्हि । सिद्धे सति यदालुचं शास्ति, तज्  
ज्ञापयत्याचार्योऽन्येभ्योऽप्ययं भवतीति ।

किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ? ।

आलुचि शीङ्ग्रहणं चोदयिष्यति । तन्न कर्तव्यं  
भवति ।

(३०७३ वार्तिकम् ॥ १ ॥)

॥ \* ॥ आलुचि शीङ्ग्रहणम् ॥ \* ॥

(भाष्यम्) आलुचि शीङ्ग्रहणं कर्तव्यम् । श-  
यालुः ॥ स्पृहिगृहि ॥ १५८ ॥

(प्रदीपः) एवं तर्हीति । ननु लुशि सति लकारस्ये-  
त्संज्ञा प्राप्नोति, श्रद्धालुश्च न सिध्यति श्रद्धधुरिति प्राप्नोती-  
त्याहुः ॥ नैष दोषः । यादित्वादित्संज्ञा न भविष्यति । यकारश्च  
लुतनिर्दिष्टः । प्रयोजनाभावाद्वा । नह्यत्र लिट्स्वरप्रत्ययस्वर-  
योर्विशेषोस्ति । उभयत्रैकादेश उदात्तेनेत्युदात्तत्वस्य भा-  
वात् । श्रद्धालुशब्दस्याप्यनेकार्थत्वाद्वातुनामत्र विषये दध्वास्यर्थे  
वर्तमानस्य धेटो भविष्यति ॥ ननु शिदाश्रयोऽङ्गितीत्या-  
त्त्वप्रतिषेधः प्राप्नोति ॥ एवं तर्हि श्रद्धा आश्रद्धेत्याकारप्रक्षेपा-  
दावं भविष्यति । अथवा दधातेरेव संज्ञापूर्वको विधि-  
रनित्य इति द्विवचनं न प्रवर्तिष्यते ॥ १५८ ॥

(उद्घोतः) प्रयोजनाभावाद्धेति । नेत्संज्ञेति शेषः । उभयत्रै-  
कादेश इति । लिट्स्वरे प्रत्ययस्वरे चाकृते उकारेण गुणरूपे एकादेशे इ-  
त्यर्थः । एवं चेत्त्वे लकारोच्चारणवैयर्थ्येन सामर्थ्यानैत्वमिति भावः ॥  
न चैवमपि श्रद्धालुरिति स्यादत आह—श्रद्धालुशब्दस्यापीति सि-  
द्धिरिति शेषः । धेट इति । करणस्य शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । तस्य  
च भौवादिकत्वात् श्लोरभावेन द्वित्वाभाव इति भावः ॥ शिदाश्रय  
इति । शबाश्रय इति भावः ॥ अथ वेति । संज्ञापूर्वक-  
तया श्लोरभावेन द्वित्वं नेत्यर्थः । द्वित्वं तु न संज्ञापूर्वकं,  
विधेयकोटौ संज्ञापूर्वकस्यैव तेनानित्यत्वबोधनादित्याहुः ॥ भाष्या-  
नुक्तत्वेन संज्ञापूर्वक इत्यस्याप्रामाणिकत्वे तु इदं चिन्त्यम् ॥ परे  
तु अर्जेसन्वयिभ्यामिवात्रापि श्रद्धेति समुदायात्प्रत्यय इति न काचि-  
च्छङ्केत्याहुः ॥ दैयेर्यङ् लुङ्नास्त्वनभिधानादिति बोध्यम् ॥ १५८ ॥

१ श्रद्धेत्याकारप्रक्षेपसामर्थ्यात् शिल्प्यात्त्वं भविष्यतीति भावः । (र. ना.)  
२ अजस्रम्, अन्यथा, इत्यत्र यथा समुदायादेव प्रत्ययस्तथाऽत्रापीति  
भावः । (र. ना.)

३ ननु प्रकृतिग्रहणे यङ्गुणन्तस्यापि ग्रहणाद् दैयेर्यङ्गुणि अप्यालुच्  
स्यादत आह—दैयेरित्यादि । (र. ना.)

( ५२९ किकिन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. १० )

१४८ आहगमहनजनः किकिनौ

लिट् च ॥ ३ । २ । १७१ ॥

( भाष्यम् )

किमर्थं किकिनोः कित्त्वं क्रियते । न “असंयो-  
गाल्लिट् कित्” इत्येव सिद्धम् ।

( ३०७४ आक्षेपबाधकवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ किकिनोः कित्त्वमृकार-

गुणप्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किकिनोः कित्करणं क्रियते । [ किम-  
र्थम् ? ] ऋकारस्य गुणप्रतिषेधार्थम् । अयमृकारा-  
न्तानां लिटि गुणः प्रतिषेधविषये आरभ्यते “ऋ-  
च्छत्युताम्” इति । स यथेह भवति आतस्तरनुरा-  
तस्तरिति । एवमिहापि प्रसज्येत—मित्रावरुणौ  
ततुरिः, दूरे अध्वा जगुरिरिति । स पुनः कित्वेन  
बाध्यते ।( प्रदीपः ) आह ॥ १७ ॥ दकारो मुखमुखाथोऽसं-  
देहाथो वा । तकारे तु सति तादपि परस्पर इत्युकारस्य  
तपरत्वाद् ऋकारग्रहणं न स्यात् । ऋकारगुणनिषेधार्थाच्च  
किकिनोः किलाद् ऋकारनिर्देशावसायः ।( उद्घोतः ) आह ॥ १७१ ॥ ऋकारगुणनिषेधार्थादिति ।  
ऋधातोः किकिनोर्गुणनिषेधानिषेधयोः फले विशेषाभावः । आरि-  
रिति रूपमेव गुणे, तन्निषेधेऽपि अत आदेरिति दीर्घे यणि च तदेवेति  
भावः ॥ ऋकारनिर्देशेति । दीर्घग्रहणेनेत्यर्थः ॥ जगुरिरित्यादौ  
कित्त्वाहुणाभावे ओष्ठपूर्वत्वाभावेपि छान्दसत्वादुत्त्वम् ॥

( ३०७५ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उत्सर्गश्छन्दसि सदा-  
दिभ्यो दर्शनात् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) उत्सर्गश्छन्दसि किकिनौ वक्तव्यौ ।  
किं प्रयोजनम् ? । सदादिभ्यो दर्शनात् । सदादिभ्यो  
हि किकिनौ दृश्येते । सदिस्मिन्मिमनिविचीनां  
सेदिः, रेमिः, मेनिः, नेमिश्चक्रमिवाभवत् । विविचिं  
रत्नधातमम् ।

( ३०७६ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ भाषायां धाञ्कुसृ-

जनिनमिभ्यः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भाषायां धाञ्कुसृजनिनमिभ्यः कि-

किनौ वक्तव्यौ । धाञ्—दधिः । कृ—चक्रिः ।  
सृ—सस्त्रिः । जनि—जज्ञिः । नमि—नेमिः ।

( ३०७७ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सासहिवावहिचाचलिपाप-  
तीनां निपातनम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) सासहिवावहिचाचलिपापतीनां नि-  
पातनं कर्तव्यम् । वृषा सहमानं सासहिः । वावहिः  
चाचलिः पापतिः ॥

अपर आह—

( ३०७८ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ सहिवहिचलिपतिभ्यो यड-  
न्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तान्येवोदाहरणानि ॥ आहगम ॥ १७१ ॥

( प्रदीपः ) सासहीति । पापतीति । निपातनाद्यङि  
नीगभावः । विधौ तु भाष्यकारवचनप्राप्त्यात् । तेनाप्युक्तं  
तान्येवोदाहरणानीति ॥ अथ लिङ्गुदावे किकिनोः पर-  
स्मैपदसंज्ञा कस्माच्च भवति । तथा चात्मनेपदिभ्यो देङ्ङि-  
दिभ्यो न प्राप्तुतः । नैष दोषः । लादेशानां परस्मैपदसंज्ञा न  
तु लकारस्य ॥ भावकर्मकर्तृषु तर्हि लिङ्गुत् किकिनौ प्राप्तुतः ।  
एषोप्यदोषः । उत्पन्नयोः कार्यातिदेशात् । उत्पत्तिश्च कर्तरि  
कृदित्यनेनास्यैकवाक्यत्वात्कर्तरि तयोर्भवति । वर्तमानाधि-  
काराच्च वर्तमान इति भूतकालतापि विरोधान्नातिदिश्यते ।  
स्वरूपाबाधेन च कार्याप्यतिदिश्यन्ते इति कसुकानचावपि  
किकिनोर्न भवतः ॥ १७१ ॥( उद्घोतः ) भाष्यकारवचनेति । असादिबहुसहचरितस्यैव  
पतेस्तत्र ग्रहणमित्यन्यविकरणस्य तदभावः । यदा प्रसिद्धस्य पते-  
ग्रहणं न देवादिकस्य, तस्य वेदं रूपम् ॥ १७१ ॥

( ५३० कुकुनप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. ११ )

१५१ भियः कुकुनौ ॥ ३ । २ । १७४ ॥

( ३०७९ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भियः कुकन्नपि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भियः कुकन्नपि वक्तव्यः । भीरुकः ॥  
भियः कु ॥ १७४ ॥१ छन्दसि किकिनौ वक्तव्यौ इत्ययमुत्सर्गो विधिरित्यर्थः । तथाचाहगमह-  
नेत्यनुक्त्वा छन्दसि धातुमात्रात् किकिनौ वाच्याविति भावः । ( र. ना. )

२ किकिन्प्रत्ययवित्यर्थः । ( र. ना. )

३ लिटः स्वरूपाबाधेन यानि कार्याणि ताव्यतिदिश्यन्ते कसुकानचौ तु न  
तथेति तौ किकिनोर्न भवत इति भावः । ( र. ना. )

( ५३१ किप्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ० १२ )

९५५ अन्येभ्योपि दृश्यते ॥३।२।१७८॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते । न “किप् चान्येभ्योपि दृश्यते” इत्येव सिद्धम् ।

( ३०८० वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ किञ्चिधिरनुपपदार्थः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनुपपदार्थोऽयमारम्भः । पचेः पक् । भिदेः भित् । छिदेः छित् ।

( प्रदीपः ) अन्येभ्योपि ॥ १७८ ॥ किञ्चिधिरिति किप् चेत्यत्र सुप्युपसर्गेपीति च वर्तते इति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ योत्र सोपपदस्तस्य ग्रहणं किमर्थम् । न तेनैव सिद्धम् ।

( प्रदीपः ) अथेति । पूर्वसूत्रे ग्रावस्तुशब्द इत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) अन्येभ्योपि ॥ १७८ ॥ ग्रावस्तु इति । विद्युतोपि उपलक्षणम् ।

( समाधानभाष्यम् )

न सिध्यति । इह केचिद् “आ केः” इति सूत्रं पठन्ति । केचित् “प्राक् केः” इति । तत्र ये ‘आकेः’ इति पठन्ति तैः किञ्चिधिरिति भवति । तत्र तच्छीलादिष्वर्थेषु किञ्च यथा स्यात् ।

( प्रदीपः ) आकेरिति । अभिविधावाकारः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । य एवासावविशेषविहितः स तच्छीलादिषु भविष्यति । अन्यत्र च ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । अयं तच्छीलादिष्वर्थेषु तृन्विधीयते स विशेषविहितः सामान्यविहितं किं बाधेत ॥

( बाधकभाष्यम् )

वासरूपेण किञ्चपि भविष्यति ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । इदानीमेव ह्युक्तम्—‘तच्छीलादिष्वर्थेषु वासरूपेण तृजादयो न भवन्ति’ इति । किञ्चापि तृजादिः ॥

( ३०८१ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ वचिप्रच्छयायतस्तुकटप्रुजु-

श्रीणां दीर्घश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वचिप्रच्छयायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घत्वं च वक्तव्यम् । किञ्च ॥ वचि—वाक् ॥ प्रच्छि—

शब्दप्राट् । आयतस्तु—आयतस्तुः । कटप्रु—कटप्रुः । जु—जूः । श्रि—श्रीः ॥

( सुन्यन्तरवाक्यम् )

अपर आह—

\*वचिप्रच्छयोरसम्प्रसारणं चेति वक्तव्यम् ।

( प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । दीर्घवचनसामर्थ्यात्सम्प्रसारणं न भविष्यति । इदमिह सम्प्रधार्यम् । दीर्घत्वं क्रियतां सम्प्रसारणमिति । किमत्र कर्तव्यम् ? परत्वात्सम्प्रसारणम् । अन्तरङ्गं दीर्घत्वम् । का अन्तरङ्गता ? प्रत्ययोत्पत्तिसन्नियोगेन दीर्घत्वमुच्यते । उत्पन्ने प्रत्यये सम्प्रसारणम् । तत्रान्तरङ्गत्वादीर्घत्वे कृते सम्प्रसारणम् । सम्प्रसारणपूर्वत्वे कृते कार्यकृतत्वात्पुनर्दीर्घत्वं न स्यात् । तस्मात् सुष्ठुच्यते । दीर्घवचनसामर्थ्यात् सम्प्रसारणं न भवतीति ।

( प्रदीपः ) दीर्घवचनसामर्थ्यादिति । दीर्घश्रुत्याऽच्परिभाषोपस्थानाद्वचिप्रच्छयोरचो दीर्घत्वेन भाष्यं तत्र कृते सम्प्रसारणे पूर्वैकादेशे च दीर्घविधानमनर्थकं स्यादिति भावः ॥ न स्यादिति । संभावने लिङ् । पूर्वमेव प्रवृत्तत्वात् पुनर्दीर्घो न प्रवर्तते इत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) तत्र कृते इति । प्रत्ययसंनियोगशिष्टतयान्तरङ्गत्वादीर्घत्वे कृते इत्यर्थः ॥ ननु दीर्घत्वं न स्यादित्युक्तम्, अस्यानुवादत्वेन विधिलिङोऽसंभवादत् आह—संभावने इति । दीर्घत्वं संभवेदिति नेत्यर्थः । यद्यपि दीर्घवचनसामर्थ्याल्लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायवाधेन पुनर्दीर्घप्रवृत्तिरेव वक्तुं युक्ता तथापीष्टानुरोधात्सम्प्रसारणाभाव एव भाष्यकृतोक्तः ॥ भाष्ये कार्यकृतत्वादिति । विकारकृतलक्ष्यभेदस्तु नात्र न्याये आश्रीयते एतद्भाष्यप्रामाण्यात् ॥ वचिप्रच्छयोर्ह्यत्र वार्तिके सूत्रेणैव किपि सिद्धे दीर्घत्वार्थमेव ग्रहणमिति बोध्यम् ।

( ३०८२ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे चेति वक्तव्यम् । दिद्युत् । गमि । जगत् ॥ जुहोतेर्दीर्घश्च । जुहः ॥

( प्रदीपः ) दिद्युदिति । द्युतिस्वाप्योरित्यभ्यासस्य सम्प्रसारणम् ॥ जगदिति । गमः क्वाविति मलोपः ॥ जुहुरिति । दीर्घं समुच्चीयमाने दीर्घश्रुत्याऽच्परिभाषोपस्थानादचा च तदन्तर्विध्याश्रयणाद् जुहोतेरेवाजन्तलसंभवाद्भवति १७८

( उद्द्योतः ) चेन दीर्घसमुच्चये दिद्युदादेरपि स्यात् । असमुच्चये जुहूर्ने सिद्धयेदत् आह—दीर्घ इति । द्युतिगमिभ्यामन्वये वैयधिकरण्यापत्तिभिर्या ताभ्यामसंबन्धो दीर्घत्वेत्यर्थः ॥

( ३०८३ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

[ ॥ \* ॥ दृणातेर्ह्रस्वश्च द्वे च क्तिप् च ॥ \* ॥ ]

( भाष्यम् ) दृणातेर्ह्रस्वश्च द्वे च क्तिप्चेति वक्तव्यम् । ददत् ॥

( धात्वन्तरसाधनभाष्यम् )

जुहुर्जुहोतेर्ह्रस्वतेर्वा । ददत् दृणातेर्दीर्घतेर्वा ॥ जूः  
उचरतेर्जीर्यतेर्वा ।( उद्घोतः ) भाष्ये दीर्घतेर्वेति । एतद्भाष्यप्रामाण्यादेव  
दृणातुर्दिवादावपि बोध्यः ॥ जीर्यतेर्वेति । अत्र पक्षे उत्वं चेन  
विधेयम् ॥

( ३०८४ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ ध्यायतेः सम्प्रसारणं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ध्यायतेः सम्प्रसारणं च क्तिप्च वक्तव्यः ॥ धीः ॥

( धात्वन्तरसाधनभाष्यम् )

धीर्ध्यायतेर्दधातेर्वा ॥ अन्येभ्यो ॥ १७८ ॥

( उद्घोतः ) दधातेर्वेति । धुमास्थेतीस्त्वम् । ईत्त्वमवका-  
रादाविति वचनं तु भगवता प्रत्याख्यास्यते ॥ [ वस्तुतोऽस्मात्किवेव  
नेतीदमेकदेश्युक्तिरिति बोध्यम् । वस्तुतो दृशिसमुच्चयमपूर्वमीत्वं  
भगवदभिमतम्, पूर्वत्र पक्षेऽपूर्वत्ववदिति बोध्यम् ] ॥ ११८ ॥

( ५३२ डुप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. १३ )

१५७ विप्रसंभ्यो डुसंज्ञायाम्

॥ ३ । २ । १८० ॥

( ३०८५ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसं-  
ख्यानं धातुविधितुक्प्रति-  
षेधार्थम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानं  
कर्तव्यम् । किं प्रयोजनम् ? । धातुविधितुक्प्रति-  
षेधार्थम् । धातुविधेस्तुक्श्च प्रतिषेधो यथा स्यात् ।  
मितद्रुः मितद्रू मितद्रवः । “अचिश्रुधातुध्रुवाम्”इत्युवडादेशो मा भूत् । इह च मितद्र्वा । मितद्र्वे-  
“नोङ्धात्वोः” इति प्रतिषेधो मा भूत् ॥ तुग्विधि-  
मितद्रुः । “ह्रस्वस्य पिति कृति तुग्” इति तुङ् मा  
भूदिति ॥ विप्रसंभ्यो ॥ १८० ॥( प्रदीपः ) विप्रसम् ॥ १८० ॥ किं प्रयोजनमिति ।  
क्तिपा सिद्धिं मन्यमानस्य प्रश्नः ॥ १८० ॥

( ५३३ कर्तरि क्तप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । २ । ३ आ. १४ )

१६५ मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च

॥ ३ । २ । १८८ ॥

शीलितो रक्षितः क्षान्त आकुप्यो जुष्ट इत्यपि ।

रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ॥

दृष्टतुष्टौ तथाक्रान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ।

कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः ॥

न म्रियन्ते अमृताः ॥ मतिबुद्धि ॥ १८८ ॥

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरण-  
महाभाष्ये तृतीयस्याध्यायस्य द्वितीये पादे  
तृतीयमाहिकम् ॥ पादश्च समाप्तः ॥( प्रदीपः ) मतिबुद्धि ॥ १८८ ॥ कस्य मत्याद्यर्थेभ्यः  
परस्य भूतविषयतापि वर्तमानविषयतया तत्ककैण्डिन्य-  
न्यायेन बाध्यते ॥ ज्ञातमिति<sup>३</sup> तु भूतेषु भवति । तेनेत्यधि-  
कारान् तृतीयान्तादुपज्ञातेऽर्थेऽण्प्रत्ययविधानात् । वर्तमाने हि  
कस्य च वर्तमान इति षष्ठा भाव्यम् ॥ १८८ ॥इत्युपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते भाष्यप्रवीपे तृतीयस्या-  
ध्यायस्य द्वितीये पादे तृतीयमाहिकम् ॥( उद्घोतः ) मतिबुद्धि ॥ १८८ ॥ प्रत्ययविधानादिति ।  
तेन हि विधेयविषयेऽयं न्यायो न तु बाधविषय इति ज्ञाप्यते ।  
कालस्त्वनुवाद्य इति भावः ॥ तेन पूजितो यः सुरासुरैरेत्यपि  
सिद्धम् ॥ भाष्ये शीलित इत्यादि । अनुक्तसमुच्चयार्थेन चेनेषां  
मंग्रह इति भावः ॥ कष्टं भविष्यतीत्यर्थे कष्टशब्द इत्यर्थः ॥  
पूर्ववत् शीलितानुद्यतान्तवत् ॥ वर्तमाने इत्यर्थस्तदाह—न म्रि-  
यन्ते इति ॥ १८८ ॥इति श्रीशिवभट्टघृतसतीगर्भजनगेशभट्टविरचिते व्याकरणमहा-  
भाष्यप्रदीपोद्घोते तृतीयस्य द्वितीये पादे तृतीयमाहिकम् ॥

पादश्चायं द्वितीयः समाप्तः ॥

१ अयं कोष्ठकान्तर्गतो वार्तिकपाठो नैव काव्यपुलभ्यते ॥

२ अयं कोष्ठकान्तर्गतः पाठो नैकसिन्धुस्तके समुपलभ्यते ॥

३ 'मितेत्तु' ॥

|                    | प्राक्तनयोगः | अस्मिन् पादे सूत्रवार्तिकसंख्या चक्रमिदम् ॥ |            |            |            | सर्वयोगः |
|--------------------|--------------|---------------------------------------------|------------|------------|------------|----------|
|                    |              | १ माह्निके                                  | २ याह्निके | ३ याह्निके | समुदितयोगः |          |
| व्याख्यातसूत्राणि  |              |                                             |            |            |            | ५३३      |
| अव्याख्यातसूत्राणि |              |                                             |            |            |            | ४३२      |
| समुदितसूत्राणि     |              |                                             |            |            | १८८        | ९६५      |
| वार्तिकानि         |              |                                             |            |            |            |          |

श्रीदधिमती(श्री) जयति ॥

## तृतीयाध्यायस्य तृतीयपादे प्रथममाहिकम् ॥

( ५३४ उणादीनामपि त्वीकारसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ. १ )

९६६ उणादयो बहुलम् ॥ ३ । ३ । १ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

बहुलवचनं किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) उणादयो बहुलम् ॥ १ ॥ बहुलवचनमिति । उणादय इत्येव सूत्रमुणादीनां शास्त्रान्तरपठितानां साधुत्वाभ्यनुज्ञानार्थमस्त्विति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) उणादयो ॥ १ ॥ शास्त्रान्तरेति । व्याकरणान्तरेत्यर्थः ॥ साधुत्वेति । वर्तमानकाले तत्त्वार्थमिति भावः ॥

( ३०८६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तन्वीभ्यः प्रकृतिभ्य उणादयो दृश्यन्ते न सर्वाभ्यो दृश्यन्ते ।

( ३०८७ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रायेण खल्वपि ते समुच्चिता न सर्वे समुच्चिताः ।

( ३०८८ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कार्याणि खल्वपि सशेषाणि कृतानि न सर्वाणि लक्षणेन परिसमाप्तानि ।

( प्रदीपः ) बाहुलकमिति । प्रकृतेरिति जातावेकवचनम् । तनुशब्दोऽत्र वृत्तिविषये गुणमात्रवचनः प्रकृतीनां तानवं दृष्ट्वा बाहुलकं बहुलशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं बहुधादानमुक्तम् । तेनापठिताभ्योपि प्रकृतिभ्य उणादयो भवन्ति । यथा हृषेरुलच् शकेरपि भवति शङ्कुलेति । तथा तेषामुणादीनां प्रायेण समुच्चयनं कृतम्, न तु साकल्येनेति बहुलवचनादविहितानि अपि भवन्ति । यथा—अर्तेः फिडफिड्डौ भवतः ऋफिड ऋफिड्ड इति । सशेषाणि च कार्याणि उणादिषु विहितानि न तु निःशेषाणि । बहुलवचनात्त्वविहितान्यपि भवन्ति तेन षण्ड इत्यत्र सत्त्वाभावः सकारस्य वा षत्वं भवति ।

( उद्ध्योतः ) प्रकृतेरित्यस्य तन्वीभ्य इति व्याख्यानमननुगुणमत आह—जातावेति । ननु तनुशब्दस्य प्रकृतेरिति विशेषणतया कथं समासोऽत आह—तनुशब्द इति । तथा च गमकत्वात्समास इति भावः ॥ तानवमिति । व्याकरणान्तरे तासा-

मत्पत्वं दृष्ट्वा इत्यर्थः ॥ बाहुलकमिति । बहून्वर्थाह्वातीत्यर्थकबहुलशब्दाद्भावे तुजा सिद्धमिति बोध्यम् ॥ बहवोऽर्थाश्च प्रवृत्तिनिवृत्त्यादयो वृद्धेरुक्ताः ॥ बहुधादानमिति । बहुधाग्रहणरूपं प्रवृत्तिनिमित्तमित्यर्थः ॥ तेनापठिताभ्य इति । व्याकरणान्तरे पठिताभ्य इत्यर्थः ॥ भाष्ये उणादयो दृश्यन्ते इत्यादेर्व्याकरणान्तरे इति शेषः । तदाह—यथा हृषेरुलजित्यादि ॥ प्रायेण समुच्चयनमिति । व्याकरणान्तरे इत्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं पुनः कारणं तन्वीभ्यः प्रकृतिभ्य उणादयो दृश्यन्ते न सर्वाभ्यः ? । किं च कारणं प्रायेण समुच्चिता न सर्वे समुच्चिताः ? । किं च कारणं कार्याणि सशेषाणि कृतानि न सर्वाणि लक्षणेन परिसमाप्तानि ? ।

( प्रदीपः ) किं पुनरिति । यावत्प्रकृतयः यावन्तश्च प्रत्ययाः यावन्ति च कार्याणि तावन्त्येव भवन्त्विति प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु स्वतन्त्राणामृषीणामेवं न्यूनं शास्त्रं कृतमिति पर्यनुयोगोऽयुक्तोऽत आह तावत्येव भवत्विति प्रश्न इति ॥ ननु प्रकृतीनां निर्देशोऽत्रेत्यादि त्वया केन मानेन ज्ञातमिति भाष्याक्षरार्थः ॥

( ३०८९ समाधानवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नैगमाश्च रूढिभवाश्चौणादिकाः सुसाधवः कथं स्युः ।

( प्रदीपः ) नैगमेति । निगमश्छन्दस्तत्र भवा इत्यण्गयनादिभ्य इत्यण् ॥ रूढिः प्रसिद्धिस्तत्र भवाः संज्ञाशब्दा इत्यर्थः । ते सुष्ठु साधवो यथा स्युरित्येवमर्थमपरिपूर्णत्वं प्रकृत्यादीनामुच्यते । अपरिपूर्णानां हि पूर्णत्वं बहुलग्रहणेन कियत इति नैगमरूढिभवानां व्याकरणेस्मिन् व्युत्पादनादसंदिग्धं साधुत्वमवगम्यत इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) तदिति । नैगमरूढिभवमित्यर्थः । जातावेकवचनमिति । साधव इत्यनेन नान्वयः । ते सुष्ठुति पाठस्तु सम्यगेव ॥ तस्य चाशेषेण संग्रहोऽशक्यस्तस्य साधुत्वं च सर्वसंमतम्, अतो ज्ञायते—प्रकृतेस्तनुदृष्टेरित्यादीति भाष्यार्थः । सुसाधवः कथं स्युरिति भाष्यस्य—अतो बाहुलकमिति शेषः ॥ ते पाणिनिना बोधितसाधुत्वकाः । कथं स्युरित्यर्थः । पाणिनिना बोधितसाधुत्वमेव सुसाधुत्वम्, संप्रति प्रयोगार्हत्वात् । तदाह—अपरिपूर्णानामिति । सर्वाभ्यः प्रकृतिभ्यः सर्वप्रत्ययानां तत्तद्रूपेण विधानं तु ब्रह्मणापि दुरुपपादमिति भावः ॥

१ षडेः षलेति शेषः । ( र. ना. )

२ 'कचिद् प्रवृत्तिः', कचिदप्रवृत्तिः, कचिद् विभाषा, कचिदन्यदेव, विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुल्यं वदन्ति ॥

३ 'तद्' इत्येवं पाठो नागेशभट्टैरवबोधितः ॥

४ नैगमरूढिभवस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

( ३०९० वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ नाम च धातुजमाह निरुक्ते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नाम खल्वपि धातुजमेवमाहुर्निरुक्ताः ॥

( ३०९१ वार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ व्याकरणे शाकटस्य च लोकम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वैयाकरणानां च शाकटायन आह—  
‘धातुजं नामेति’ ॥

( प्रदीपः ) अन्यैरप्याचार्यैः शब्दानां प्रकृत्यादिविभागेन  
व्युत्पादनमभ्युपगतमित्याह—नामेति ॥ लोकमित्यप्य-  
मित्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु तेषामेवं व्युत्पादनं कैवैयाकरणैः कृतमि-  
त्याशङ्काह—भाष्ये नामं चेत्यादि । तद् व्याचष्टे—नाम खल्व-  
पीति । नाम धातुजमित्येवमाहुर्निरुक्ता इत्यक्षरार्थः । तदाह—अ-  
न्यैरित्यादिना । पाणिनेस्तु तान्यव्युत्पन्नान्येवेति भावः । इदं चाय-  
नैयीनीतिमुक्ते भाष्ये स्पष्टम् ॥ एवं च कृवापेत्युणादि सूत्राणि  
शाकटायनस्येति सूचितम् ॥ धातुजं नामेति । निरुक्ते आह—निरु-  
क्तकारः । शाकटायनश्च स्वकृते व्याकरणे आह—धातुजं नामेति  
भाष्येऽन्वयः ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

अथ यस्य विशेषपदार्थो न समुत्थितः कथं तत्र  
भवितव्यम् ।

( ३०९२ समाधानवार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ यत्र विशेषपदार्थसमुत्थं प्रत्ययतः

प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रकृतिं दृष्ट्वा प्रत्यय ऊहितव्यः । प्र-  
त्ययं च दृष्ट्वा प्रकृतिरूहितव्या ॥

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।

कार्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ उणा-  
दयो ॥ १ ॥

( प्रदीपः ) यन्नेति । पदमर्थः प्रयोजनं यस्य व्युत्पाद्य-  
त्वेन स पदार्थः प्रकृत्यादिविशेषश्चासौ पदार्थस्तस्माद्यत्र समु-  
त्थितं विशिष्टप्रकृतिप्रत्ययोत्पादनेन व्युत्पादितमित्यर्थः ॥ प्रकृ-  
तिमिति । प्रसिद्धामर्त्यादिकामित्यर्थः ॥ प्रत्यय इति ।  
किञ्चादिकः ॥ प्रत्ययं चेति । प्रत्ययत्वेन प्रसिद्धमित्यर्थः ॥  
तेन हृषेकलज्जिति प्रत्ययं दृष्ट्वा शक्ति प्रकृतिरूह्यते । तेन सिद्धे  
शङ्कतेति ॥

न सर्वत्र ऊहः कर्तव्यः । किं तर्हि साधुत्वेनाभिमतासु सं-  
ज्ञास्विति प्रदर्शयति—संज्ञास्विति ॥ १ ॥

( उद्ध्योतः ) पदार्थ इत्यत्रार्थशब्दः प्रयोजनवाचीत्याह—  
अर्थः प्रयोजनमिति ॥ विशेषश्चासाविति । उक्तप्रकृतिप्रत्यया-  
देवैत्र समुत्थितं विशिष्टाया उक्तायाः प्रकृतेरुक्तप्रत्ययोत्पादनेन न

व्युत्पादितमित्यर्थः ॥ संज्ञासु धातुरूपाणीत्यवतारयति—न सर्व-  
त्रेत्यादि । संज्ञासु प्रसिद्धसंज्ञाशब्देषु ॥ १ ॥

( भविष्यत्कालाधिकारः )

( ५३५ भविष्यति गम्यादीनां साधकसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ०२ )

९६८ भविष्यति गम्यादयः ॥ ३।२।३ ॥

( ३०९३ दूषणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भविष्यतीत्यनद्यतन

उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भविष्यतीत्यनद्यतन उपसंख्यानं क-  
र्तव्यम् । श्वो ग्रामं गमी ॥

किं पुनः कारणं न सिध्यति ? ।

लटायं निर्देशः क्रियते । लट् चानद्यतने लुटा  
बाध्यते । तेन लट् एव विषये एते प्रत्ययाः स्युः  
लुटो विषये न स्युः ।

( प्रदीपः ) भविष्यति ॥ ३ ॥ अनद्यतन इति ।  
भविष्यच्छब्दो भविष्यन्मात्रे वर्तते न तु तद्विशेषेऽनद्यतने तस्य  
लुङ्विषयत्वात् । ततश्च गम्यादयो भविष्यच्छब्दार्थेनवाख्याय-  
माना अनद्यतने न सिध्यन्तीति धार्तिकारम्भः ॥

( ३०९४ दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ इतरेतराश्रयं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इतरेतराश्रयं च भवति । का इतरे-  
तराश्रयता ? । भविष्यत्कालेन अयं निर्देशः क्रियते,  
निर्देशोत्तरकालाच्च भविष्यत्कालता । तदेतदि-  
तरेतराश्रयं भवति । इतरेतराश्रयाणि च न प्रक-  
ल्पन्ते ॥

( प्रदीपः ) इतरेतराश्रयं चेति । एतद्भूते इत्यत्र  
व्याख्यातं तत एवावधारणीयम् ।

( ३०९५ समाधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ उक्तं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किमुक्तम् ? । एकं तावदुक्तम्—\*न  
वाऽपवादस्य निमित्ताभावादनद्यतने हि तयोर्वि-  
धानम्\* इति ॥

( प्रदीपः ) न वेति । विशेषे यत्सामान्यमस्ति तदाश्र-  
येण गम्यादयः प्रयुज्यन्ते इत्यर्थः । विशेषविवक्षायां चापवाद-  
विप्रतिषेधाद्भूवे भवति श्वो गन्ता ग्राममिति । वासरूपवच-  
नाद्भूवि भवति । तेन गमिष्यति भविष्यतीत्यादयः प्रयोगा  
उपपद्यन्ते ।

( उद्ध्योतः ) भविष्यति ग ॥ ३ ॥ विशेष इति । सत्यपि  
वास्तवे विशेषे तस्याऽविवक्षितत्वात्सामान्यस्यैव विवक्षामाश्रित्य तदा-

अयो गिनिः । अनद्यतनाख्यस्तु विशेषः पश्चात् शब्दमहिम्ना गम्यते इति भावः ॥ विशेषवीति । प्रथमत एव विशेषविवक्षाया-मित्यर्थः ॥ अपवादोति । लटो हि द्वावपवादौ गिनिर्लुट् च ॥ नन्वेवं श्वो गमिष्यतीत्यादिप्रयोगानापत्तिर्गिनिना बाधदत्त आह— वासरूपेति । सामान्यविवक्षायामिति भावः ।

( शेषभाष्यम् )

अपरमप्युक्तम्—\*अव्ययनिर्देशात्सिद्धम्\*इति । अव्ययवता शब्देन निर्देशः कर्तव्यः । अवर्तमाने भूत इति ।

स तथा निर्देशः कर्तव्यः ।

न कर्तव्यः । अव्ययमेष भविष्यतिशब्दः । नैष भवतेर्लट् ॥

कथमव्ययसंज्ञा ? । “विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाता भवन्तीति निपातसंज्ञा” ‘निपातोव्ययम्’ इत्यव्ययसंज्ञा । अथापि भवतेर्लट्, एवमप्यव्ययमेव । कथम् ? । न व्येतीत्यव्ययमिति । क पुनर्न व्येति । एतौ कालविशेषौ भूतवर्तमानौ स्वभावतो भविष्यत्येव वर्तते ॥

यदि तर्हि नव्येतीत्यव्ययमिति ।

न वा तद्विधानस्यान्यत्राभावात्\* । न वा भविष्यदधिकारेणार्थः ॥ किं कारणम् ? । तद्विधानस्यान्यत्राभावात् । येऽपि ह्येते इत उत्तरं प्रत्ययाः शिष्यन्ते, एतेऽप्येतौ कालविशेषौ न वियन्ति भूतवर्तमानौ स्वभावतो भविष्यत्येव वर्तन्ते ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति ।

( ३०९६ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ भविष्यदधिकारस्य प्रयोजनं

यावत्पचति पुरापचतीत्यनप-

शब्दत्वाय ॥ \* ॥

भविष्यतिग ॥ ३ ॥

( प्रदीपः ) यावत्पचतीति । सति भविष्यदधिकारे भविष्यत्येव यावत्पुराशब्दयोगे लटः साधुत्वं भवति । भविष्यत्कालेन वर्तमानकालस्य बाधनाद् । असति भविष्यदधिकारे भूतेषां साधुत्वं लटः स्यात् । शब्दोपात्तकाले विशेषविधानाभावे वर्तमानकालस्य बाधो न स्यात् ॥ ३ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये पुरा पचतीत्यनपशब्दत्वायेति । भविष्यत्येवानपशब्दत्वं यथा स्याद्भूते तु नेत्येतदर्थमित्यर्थः । तदाह—

१ तयोर्विप्रतिषेधाल्लुडेवेति योजना ( र. ना. )

२ अस्य वार्तिकत्वे भाष्यं लेखकप्रमादाद्भुटितम् भाष्यत्वे वार्तिकं वेति सुभीतिः तु विचार्यम् ॥

३ शब्दोपात्तकालविशेषे विधानाभावे इति पाठः शोभनो भाति । ( र. ना. )

सतीति । भविष्यद्भूतयोरसाधुत्वप्राप्तौ भविष्यत्येवानेन साधुत्वं कियते न तु भूते । वर्तमानकाले साधुत्वामावे तु न मानम्, भाष्यादलाभात् । कालस्यानुवाच्यतया तत्कालेऽपि न्यायाप्राप्तेः । भविष्यत्कालेन वर्तमानकालस्य बाधनादिति कैयटश्चिन्त्यः ॥ भूतेपीति । भविष्यत्पदाभावे यावदिति सूत्रं यत्र विहितो लट् ततोऽन्यत्रापि यथा स्यादित्यर्थः स्यात् । एवं च भूतेषां साधुत्वं स्यादिति भावः ॥ दूषणान्तरमाह—शब्दोपात्तेति । अनुवाच्यविषये तत्कालौऽपि न्यायाभावादिदं चिन्त्यम् ॥ ३ ॥

( ५३५ लट्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. ३ )

९६९ यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥ ३।१।४ ॥

( ३०९७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यावत्पुरादिषु लङ्विधिर्लुटः

पूर्वविप्रतिषिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यावत्पुरादिषु लङ्विधिर्भवति लुटः पूर्वविप्रतिषेधेन । यावत्पुरानिपातयोर्लङ्भवतीत्यस्यावकाशः—यावद्भुङ्क्ते । पुराभुङ्क्ते । लुटोवकाशः श्वः कर्ता श्वोभ्येता । इहोभयं प्राप्नोति—यावत् श्वो भुङ्क्ते । पुरा श्वो भुङ्क्ते । लङ् भवति पूर्वविप्रतिषेधेन ॥

( उद्घोतः ) यावत्पुरा ॥ ४ ॥ यावत्पुरादि इति भाष्ये आदिना इत आरभ्य तुमुसूत्रपर्यन्तसूत्रसन्दर्भसंग्रहः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यः । “अनद्यतने लुङ्” इत्यत्र “यावत्पुरानिपातयोर्लङ्” इत्येतदनुवर्तिष्यते ॥ यावत्पुरा ॥ ४ ॥

( उद्घोतः ) लङित्येतदनुवर्तिष्यते इति । इत्यादिसूत्रसन्दर्भोपलक्षणमिदम् ॥ ४ ॥

( ५३६ लट्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ० ४ )

९७२ लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥ ३।१।७ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते । न लिप्स्यमानसिद्धिरपि लिप्सैव । तत्र किंवृत्ते लिप्सायामित्येव सिद्धम् ॥

( उद्घोतः ) लिप्स्यमान ॥ ७ ॥ भाष्ये न लिप्स्यमानसिद्धिरपि लिप्सैवेति । लिप्साव्याप्येवेत्यर्थः ॥ एवं च लिप्सायास्तत्रापि गम्यमानत्वमस्त्येवेत्याशयः ॥

४ इयं नागेशोक्तिरिव चिन्त्या स्वरूपेण कालस्य प्रमाणान्तरप्राप्तयाऽनुवाच्यत्वेऽपि प्रत्ययसंबन्धित्वेन तस्याप्राप्तत्वेन विधेयत्वसंभवादिति । ( र. ना. )

५ लुटः पूर्वविप्रतिषिद्धं पूर्वविप्रतिषेधोऽस्ति तेन यावत्पुरादिषु लङ्विधिरिति योजना । ( र. ना. )

६ अनद्यतने लुङित्यादि सूत्रसन्दर्भेत्यर्थः । ( र. ना. )



( समाधानभाष्यम् )

अकिंवृत्तार्थोयमारम्भः । यो भवतामोदनं ददाति स स्वर्गं लोकं गच्छति । यो भवतामोदनं दास्यति स स्वर्गं लोकं गमिष्यति ॥ लिप्स्यमा० ॥ ७ ॥

( प्रदीपः ) लिप्स्यमान ॥ ७ ॥ अकिंवृत्तार्थ इति । एवं तु किंवृत्तग्रहणं लिप्स्यमानसिद्धिरहितायां लिप्सायामकिंवृत्ते लङ्गतिवृत्त्यर्थम् ॥ ७ ॥

( उद्घोतः ) सिद्धिरहितायामिति । भवानयं ब्राह्मणानामब्रविष्यतीत्यादौ ॥ सिद्धिविषयोदाहरणं तु यो भक्तं ददाति स स्वर्गं गच्छतीत्यादौ ॥ ७ ॥

( ५३७ तुमुन्ण्वुलप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ. ५ )

१७५ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रिया-  
र्थायाम् ॥ ३ । २ । १० ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं क्रियायामुपपदे क्रियार्थायां ण्वुल्विधीयते, न अविशेषेण विहितः ण्वुल् । स क्रियायां चोपपदे क्रियार्थायामन्यत्र च भविष्यति ॥

( समाधानभाष्यम् )

ण्वुलि सकर्मकग्रहणं चोदितम् । अकर्मकार्थो-  
यमारम्भः । आसको व्रजति । शायको व्रजतीति ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

प्रत्याख्यातं तत् \*न वा धातुमात्रादर्शनाद्  
ण्वुलः\* इति ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

एवं तर्हि तृजादिषु वर्तमानकालोपादानं चोदि-  
तम् । अवर्तमानकालार्थोयमारम्भः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

तदपि प्रत्याख्यातम्—\*न वा कालमात्रे दर्शना-  
दन्येषाम्\* इति ॥

( प्रयोजनान्तरभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—“अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्य-  
योः” इत्यत्र षष्ठ्याः प्रतिषेध उक्तः । स यथा स्यात् ।

( प्रदीपः ) तुमुन् ॥ १० ॥ अकेनोरिति । सति भ-  
विष्यत्काले ण्वुल्विधौ तदनुवादेन षष्ठीनिषेधो विधातुं शक्यते  
नान्यथेति भावः ॥

( उद्घोतः ) तुमुन्ण्वु ॥ १० ॥ भाष्ये—इत्यत्र षष्ठ्या  
इति । अत्र सूत्रे, अकस्य भविष्यतीत्यन्वाख्यानवार्तिके चेत्यर्थः ॥  
ननु सामान्यण्वुल्येवायं निषेधोऽस्त्वत आह—सतीति । तदनु-  
वादेन विहितो हि तदर्थको भवतीत्यर्थः ।

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । य एवासावविशे-  
षेण विहितः स यदा भविष्यति तदास्य प्रतिषेधो  
भविष्यति ।

( उद्घोतः ) भाष्ये य एवासाविति । भविष्यत्क्रियावाचकप्रकृ-  
तिकत्वमेव ण्वुलि भविष्यत्त्वमिति भावः ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

एवं तर्हि भविष्यदधिकारविहितस्य प्रतिषेधो  
यथा स्यात् । इह माभूत्—अङ्ग यजतां लप्स्यन्तेऽस्य  
याजकाः—य एनं याजयिष्यन्तीति ।

( प्रदीपः ) लप्स्यन्तेऽस्येति । याजकशब्दो भविष्यति  
वर्तते यस्मात्ते तं याजयिष्यन्ति न तु ते याजितवन्तः तत्र  
भविष्यदधिकारविधानाभावादस्येति षष्ठी न प्रतिषिध्यते—  
अस्य याजका इति । एतद्व्याचष्टे—य एनमिति ।

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैष भविष्यत्कालः ॥ कस्तर्हि ? भूतकालः ॥

कथं तर्हि भविष्यत्कालता गम्यते ? ।

“धातुसंबन्धे प्रत्ययाः” इति ॥

( प्रदीपः ) कस्तर्हि ? भूतकाल इति । शब्दशक्ति-  
स्वाभाव्यायाजकशब्दस्य भूतकालविषयत्वमिति भावः ॥ धा-  
तुसंबन्ध इति । याजकत्वस्यैव भविष्यत्त्वं प्रतीयत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) धातुसंबन्ध इति । लप्स्यन्त इति धात्वर्थ-  
संबन्धोत्रेति भावः । न च धातुसंबन्ध इत्यनेनापि कालान्तरे  
प्रत्यया विधीयन्त इत्यस्यापि भविष्यत्कालत्वमस्त्येवेति वाच्यम् ।  
धातुसंबन्धे इत्यादिना तत्प्रत्याख्यानप्रकारसरणेनादोषात् ॥ या-  
जका इत्यस्य तथा व्यवहरिष्यमाणा इत्यर्थात् । तदाह—याज-  
कत्वस्यैवेति । तद्व्यवहारस्यैवेत्यर्थः ।

( आक्षेपभाष्यम् )

यस्तर्हि न धातुसंबन्धः । इमेऽस्य याजकाः ।  
इमेऽस्य लावका इति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये यस्तर्हीति । तत्र लक्षणायां न प्रमाण-  
मिति तत्र शब्दार्थ एव भविष्यत्त्वमिति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

एषोपि भूतकालः ॥

कथं तर्हि भविष्यत्कालता गम्यते ? ।

संबन्धात् । स च तावत्तैरयाजितो भवति ।  
तस्य च तावत्तैर्यवा अतूना भवन्ति । उच्यते च ॥

( प्रदीपः ) संबन्धादिति । भावियाजकत्वादिकमारोप्य  
तथाभिधानादित्यर्थः ।

( उद्घोतः ) तत्रापि प्रकरणादक्षणेत्युत्तरम् ॥ संबन्धशब्देन  
प्रकरणमुच्यत इत्याह—स च तावदिति ॥ भावियाजकत्वादि-

कमारोप्येति । तद्व्यवहारमित्यर्थः ॥ ओदनं भोजको व्रजतीत्यादौ च भविष्यत्वेनैव धात्वर्थप्रतीतेर्निषेधसिद्धिरिति भावः ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—अयं क्रियायामुपपदे क्रिया-  
र्यायां तुमुन् विधीयते । स विशेषविहितः सामा-  
न्यविहितं ण्वुलं बाधेत ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । भावे तुमुन्विधीयते  
कर्तरि ण्वुल् । तत्र कः प्रसङ्गो यद्भावे विहितस्तु-  
मुन्कर्तरि विहितं ण्वुलं बाधेत ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

लट् तर्हि बाधेत ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

वासरूपेण ण्वुलपि भविष्यति ॥

( ३०९८ वार्तिकावतरणसमाधानभाष्यम् ॥ १ ॥ )

अत उत्तरं पठति—

( ३०९९ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

\* ॥ ण्वुलः क्रियार्थोपपदस्य पुनर्वि-  
धानं तृजादिप्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ण्वुलः क्रियार्थोपपदस्य पुनर्विधानं  
क्रियते । [ किमर्थम् ? ] ज्ञापकार्थम् ॥ किं ज्ञाप्यम् ? ।  
एतज् ज्ञापयत्याचार्यः—‘क्रियायामुपपदे क्रियार्था-  
यां वासरूपेण तृजादयो न भवन्ति’ इति । ण्वुलपि  
तृजादिः ॥ तुमन्ण्वुलौ ॥ १० ॥

( प्रदीपः ) तृजादिप्रतिषेधार्थमिति । तेन कर्ता  
व्रजति विक्षिपो व्रजतीत्यादि न प्रयुज्यत इत्यर्थः ॥ १० ॥

( उद्घोतः ) कर्ता व्रजतीति । करिष्यामीति व्रजतीत्यर्थे  
इत्यर्थः ॥ १० ॥

( ५३८ भावार्थकप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. ६ )

९७६ भाववचनाश्च ॥ ३ । २ । ११ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते, न अविशेषेण भावे ये प्रत्य-  
या विहितास्ते क्रियायामुपपदे क्रियार्थायाम् अन्य-  
त्र च भविष्यन्ति ॥

( समाधानवार्तिकावतरणभाष्यम् ॥ )

अत उत्तरं पठति—

( ४००० वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भाववचनानां यथाविहितानां  
प्रतिपदविध्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भाववचनानां च यथाविहितानां प्र-  
तिपदविध्यर्थोऽयमारम्भः ।

इदानीमेव ह्युक्तं क्रियार्थायां वाऽसरूपेण तृजा-  
दयो न भवन्तीति । भाववचनाश्चापि तृजादयः ॥

( प्रदीपः ) भावव ॥ ११ ॥ प्रतिपदविध्यर्थमिति ।  
ज्ञापकेन निराकृतानां पुनः प्रतिपदं साक्षाद्विधानार्थो योग  
इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाववचनाश्च ॥ ११ ॥ ज्ञापकेनेति । यद्यपि  
तुमल्लङ्घ्यो भावोऽसत्त्वभूतः, घञादिवाच्यस्तु सत्त्वभूत इति तुमर्थे  
से से इति सूत्रे भाष्यकैयट्योरुक्तत्वेन तेषां कथं तुमा लटा वा  
बाधः । तथापि अवान्तरविशेषाविवक्षया भाष्यं बोध्यम् । एकदे-  
श्युक्तिर्वा इदं भाष्यम् ॥

अस्ति प्रयोजनमेतत् ।

किं तर्हीति ।

( ४००१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यथाविहिता इति तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यथाविहिता इति तु वक्तव्यम् । किं  
प्रयोजनम् ? । [ इह ] याभ्यः प्रकृतिभ्यो येन विशे-  
षेण भावे प्रत्यया विहितास्ताभ्यः प्रकृतिभ्यस्तेनैव  
विशेषेण क्रियायामुपपदे क्रियार्थायां यथा स्युः ।  
व्यतिकरो मा भूदिति ।

( प्रदीपः ) यथाविहिता इति । येन प्रकारेण विहिता  
यथाविहिता इत्यसमस्तं पदद्वयम् । अथ वा यथाविहितं  
विधानं येषां ते यथाविहिता इति बहुव्रीहिः । अव्ययीभावे तु  
यथाविहितमिति स्यात् ।

( उद्घोतः ) यथाविहिता इति । सादृश्यद्योतकत्वान्ना-  
व्ययीभावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । इह भावे प्रत्यया भवन्तीतीयता-  
सिद्धम् । सोऽयमेवं सिद्धे सति यद्वचनग्रहणं क-  
रोति । तस्यैतत्प्रयोजनम्—वाचका यथा स्युरिति ।  
यदि च याभ्यः प्रकृतिभ्यः येन विशेषेण भावे प्रत्य-  
या विहितास्ताभ्यः प्रकृतिभ्यस्तेन विशेषेण क्रिया-  
यामुपपदे क्रियार्थायामपि भवन्ति ततोऽमी वाचकाः  
कृताः स्युः । अथ हि धातुमात्राद् वा स्युः, प्रत्य-

यमात्रं वा स्यात्, ततो नामी वाचकाः कृताः स्युः ॥  
भाचवचनाश्च ॥ ११ ॥

( प्रदीपः ) वचनग्रहणमिति । वचनग्रहणेन लोकप्र-  
सिद्धं वाचकत्वमवगम्यत इत्यसामञ्जसं न भवति ॥ ११ ॥

( उद्द्योतः ) लोकप्रसिद्धमिति । यथाविधानं विहितानामेव  
तथा वाचकत्वमिति भावः ॥ ११ ॥

( ५३९ अण्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. ७ )

९७७ अण् कर्मणि च ॥ ३ । २ । १२ ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते, न 'अविशेषेण "कर्मण्यण्"  
इत्यण्विहितः । स क्रियायामुपपदे क्रियार्था-  
याम्' अन्यत्र च भविष्यति ।

( ४००२ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अणः पुनर्वचनमपवादविषये-  
ऽनिवृत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अणः पुनर्वचनं क्रियते अपवादवि-  
षयेऽनिवृत्तिर्यथा स्यात् । गोदायो व्रजति कम्बल-  
दायो व्रजतीति ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

किमुच्यते—अपवादविषये अनिवृत्त्यर्थमिति,  
न पुनरुत्सर्गविषये प्रतिपदविध्यर्थं स्यात् ॥

इदानीमेव ह्युक्तम्—क्रियायामुपपदे क्रियार्थायां  
वासरूपेण तुजादयो न भवन्तीति । अण् चापि  
तुजादिः ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्ह्युभयमनेन क्रियते । अपवादविषये चानि-  
वृत्तिः । उत्सर्गविषये च प्रतिपदविधिः ॥

कथं पुनरेकेन यत्नेनोभयं लभ्यम् ? ।

लभ्यमित्याह । कथम् ? । कर्मग्रहणसामर्थ्यात् ॥  
कथं पुनरन्तरेण कर्मग्रहणं कर्मण्यण् लभ्यः ? ॥

( प्रदीपः ) अण् कर्म ॥ १२ ॥ कथं पुनरिति । अपू-  
र्वविधानात्प्रतिप्रसवस्य लाघवादुत्सर्गविषय एव ण्वुलं बाधि-  
त्वाण् स्यात् । काण्डलावो व्रजतीति । तथा चापवादविषये न  
स्यादिति प्रश्नः ॥

( उद्द्योतः ) अण् कर्म ॥ १२ ॥ प्रतिप्रसवस्य लाघवा-  
दिति । काण्डलावादौ वासरूपेण ण्वुला बाधितस्याप्यणः प्रात्या  
तुजादयो वासरूपेण न भवन्तीति निषेधनिवृत्तिमात्रेण प्रतिप्रसवत्वं,  
सिद्धानुवादेन च तन्निषेधनिवृत्तिः । अत एवापूर्वविध्यपेक्षया लाघ-  
वम् । अपवादकादिविषये तु परत्वाण्ण्वुलेख स्यात्, नत्वण् ॥ न  
च परत्वाद्वादीनामपि बाधकः, अपूर्वविधित्वापत्तेरिति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

वचनग्रहणमपि प्रकृतमनुवर्तते ।

( प्रदीपः ) वचनग्रहणमपीति । ततश्च वचनग्रहणा-  
त्कर्मण्येवोपपदेऽपि सिद्धे पुनः कर्मग्रहणं कर्ममात्रपरिग्रहार्थमि-  
त्यपवादविषयेऽप्यण् सिद्धो भवतीत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) ततश्चेति । अण्वचनो वाचको भवतीत्यर्थं कर्म-  
ण्युपपद एव तस्य वाचकत्वमिति भावः ॥ कर्ममात्रेति । एवं च  
तत्सामर्थ्यात्परत्वेनापवादकादिविषयेऽपि प्रतिप्रसवविधित्वमस्येति  
भावः ॥

अस्ति प्रयोजनमेतत् ।

किं तर्हीति ।

( ४००३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अपर्यायेणेति तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अपर्यायेणेति तु वक्तव्यम् । कदाचिद्वि-  
कर्मणि स्यात् कदाचित् क्रियायामुपपदे क्रियार्था-  
यामिति ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । चेन्न संनियोगः करिष्यते—'अण्  
कर्मणि च' ॥ किं च ? । अन्यत्=क्रियायामुपपदे  
क्रियार्थायामिति ॥

( प्रदीपः ) कदाचिदिति । वचनं तु भविष्यति काले-  
पवादबाधनार्थं स्यादिति भावः ॥

( उद्द्योतः ) ननु क्रियाथोपपदेविधानार्थम्, 'अण्' इत्येवास्तु  
कर्मग्रहणं व्यर्थं केवलकर्मोपपदे सामान्यद्वारेण 'कर्मण्य' इत्यनेनैव  
सिद्धेरत आह—वचनं त्विति । कर्मग्रहणं त्वित्यर्थः ॥ भविष्यति  
काले क्रियाथोपपदेऽस्त्यपि कम्बलदाय इत्यादौ कादिबाधनार्थमेव  
स्यादिति भावः ॥

( दूषणभाष्यम् )

एवमपि प्रत्येकमुपपदसंज्ञा न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) एवमपीति । ततश्च काण्डलावो व्रजतीति केव-  
लस्य कर्मण उपपदसंज्ञाया अभावात्समासो न प्राप्नोतीति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

चेन्नैव संनियोगः करिष्यते । "प्रत्येकं च वाक्य-  
परिसमाप्तिर्दृष्टेति प्रत्येकमुपपदसंज्ञा भविष्यति ॥  
अण् कर्मणि" ॥ १२ ॥

( प्रदीपः ) प्रत्येकं चेति । कर्मणि क्रियायामिति पृथक् स-  
मीनिर्देशात्प्रत्येकमुपपदसंज्ञा भवति निमित्तसद्भावादित्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये चेन्नैवेति । उपपदसंज्ञयोरपि समुच्चय  
इति भावः ॥ युक्त्यन्तरमाह—प्रत्येकं चेति । तथाचष्टे—  
कर्मणीति ॥ १२ ॥

( ५४० लट्प्रविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ भा० ८ )

१७८ लट् शेषे च ॥ ३ । २ । १३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

शेषग्रहणं किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) लट् शेषे च ॥ १३ ॥ शेषग्रहणमिति । क्रियायां क्रियार्थायामिति निवर्तिष्यत इति भावः ॥

( उद्घोतः ) लट् शे ॥ १३ ॥ क्रियायामिति । तन्निवृत्तौ भवति सिद्धिरिति भावः ॥

( ४००४ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ लटि शेषवचनं क्रियायां  
प्रतिपदविध्यर्थम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) लटि शेषवचनं क्रियते क्रियायां  
प्रतिपदविध्यर्थया स्यात् ॥

( ४००५ हेतुवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अविशेषेण विधाने लटो-  
ऽभावः प्रतिषिद्धत्वात् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) अविशेषेण हि विधाने सति लटोऽ-  
भावः स्यात् । करिष्यामीति व्रजति ॥ किं कार-  
णम् ? । प्रतिषिद्धत्वात् । इदानीमेव हुक्तं क्रियाया-  
मुपपदे क्रियार्थायां वासरूपेण तृजादयो न भव-  
न्तीति । लट्चापि तृजादिः ॥

अस्ति प्रयोजनमेतत् । किं तर्हीति ।

( प्रदीपः ) लट्तीति । अयं भावः । लटिसेतावत्युच्य-  
माने करिष्यतीत्यादावेव स्यात् करिष्यामीति व्रजतीत्यादां  
ण्वुला बाधितत्वाच्च स्यात् । शेषग्रहणात् क्रियायां क्रियार्थाया-  
मित्यस्य संनिधिरनुमीयते इति तत्रापि लट् सिध्यति शेषे च  
विषये ॥( उद्घोतः ) ण्वुला बाधितत्वादिति । वासरूपन्यायाभा-  
वस्य ज्ञापनात् । वासरूपन्यायेन लटिणि हरदत्तस्तु चिन्त्य एव ॥  
शेषग्रहणादिति । तत्सामर्थ्याद्योगविभाग इति भावः । सूत्रपाठस्तु  
‘च’रहित इति तात्पर्यम् । अन्यथा शेषवचनं क्रियार्थक्रियायां  
प्रतिपदविध्यर्थमिति भाष्योसंगतिः । चकारसहितस्यायमर्थो न  
शेषग्रहणस्येति स्पष्टमेव ॥

( पूर्वपक्षभाष्यम् )

साधीयस्तु खलु शेषग्रहणेन क्रियार्थोपपदादल्-  
ण्निर्भज्यते । किं कारणम् । अक्रियार्थोपपदत्वात् ।१ क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे लट्प्रविधिः प्रतिपदविध्यर्थयास्यादित्यर्थः ।  
( र. ना. )२ चकारसाहित्येऽपि शेषग्रहणस्य प्राधान्येनैतदर्थकत्वाच्च तदभाष्यासं-  
गतिरिति वचम् । ( र. ना. )शेष इत्युच्यते । शेषश्च कः । यदन्यत् क्रियायाः क्रि-  
यार्थायाः ।( प्रदीपः ) साधीयस्त्विति । विपर्ययसाधनं प्रत्युत  
शेषग्रहणमिति भावः ॥( उद्घोतः ) ननु तत्सामर्थ्यात्क्रियोपपदेनेत्येव कल्पना स्या  
दिति मत्वा शङ्कते—साधीयस्त्वित्यादि । भाष्ये निर्भज्यते ।  
विभज्यत इत्यर्थः ॥ अक्रियार्थोपपदत्वादिति । क्रियार्थोपपदभि-  
न्नोपपदार्थकत्वादित्यर्थः ॥

( पूर्वोक्तसमाधानवार्तिकाशयप्रदर्शकसमाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि—

( ४००६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ लटि शेषवचनं क्रियायां  
प्रतिपदविध्यर्थम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) लटि शेषवचनं क्रियते क्रियायां प्र-  
तिपदविध्यर्थया स्यात् । लट् शेषे च । करिष्यति  
हरिष्यतीति । क च । क्रियायामुपपदे क्रियार्था-  
यामिति ॥( प्रदीपः ) एवं तर्हीति । चशब्दसहिताच्छेषग्रहणात्  
क्रियायामुपपदे लट् सिध्यतीति वार्तिककारस्याशय इत्यर्थः ।( उद्घोतः ) स्वाशयं प्रकटयति—एवं तर्हीति । च घटितः  
पाठः कर्तव्य इति भावः ॥ वार्तिककारस्येति । तेन वार्तिककृ-  
त्कृतोऽयं चशब्दघटितो न्यास इति सूचितम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

स तर्हि चकारः कर्तव्यः ॥

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यः । कथम् ? । इह ‘लट् भवति’ इती-  
यता सिद्धम् । सोयमेवं सिद्धे सति यत् शेषग्रहणं  
करोति तस्यैतत्प्रयोजनम्—योगाङ्गं यथा विज्ञा-  
येत । सति च योगाङ्गे योगविभागः करिष्यते—  
“लट्” लट् भवति क्रियायामुपपदे क्रियार्थाया-  
मिति । ततः “शेषे” । शेषे च लट् भवति इति ॥  
लट् शेषे च ॥ १३ ॥( प्रदीपः ) इदानीं योगविभागाश्रयणेन चकारं प्रत्याख्या-  
तुमाह—स तर्हीति ॥ १३ ॥

( उद्घोतः ) चकारं वार्तिककृदुक्तम् ॥ १३ ॥

३ क्रियार्थोपपदभिन्नोपपदाद् विधीयमानत्वेनेत्यादौ शेषः । ( र. ना. )

४ शेषग्रहणसामर्थ्यादित्यर्थः । ( र. ना. )

५ शेषग्रहणस्येति शेषः । ( र. ना. )

( ५४१ लटः सदादेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. ९ )

९८९ लटः सद्वा ॥ ३ । २ । १४ ॥

( ४००७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सद्विधिर्नित्यमप्रथमा-

समानाधिकरणे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सद्विधिरप्रथमासमानाधिकरणे नित्यमिति वक्तव्यम् । पक्ष्यन्तं पश्य पक्ष्यमाणं पश्य । क तर्हीदानीं विभाषा ? ।

प्रथमासमानाधिकरणे । पक्ष्यन्पक्ष्यति । पक्ष्यमाणः पक्ष्यते ॥

( प्रदीपः ) लटः सद्वा ॥ १४ ॥ सद्विधिरिति । अप्रथमासमानाधिकरणग्रहणमुपलक्षणं सूत्रोपात्तानामर्थानामिति संबोधनं लक्षणं हेतुश्च क्रियाया गृह्यते ॥ १४ ॥

( उद्ध्योतः ) लटः सद्वा ॥ १४ ॥ सूत्रोपात्तानामिति । इदं च वृत्त्यादिव्यवहारात्प्रयोगबलाच्चावसेयम् ॥ १४ ॥

( ५४२ लुङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. १० )

९९० अनद्यतने लुट् ॥ ३ । २ । १५ ॥

( ४००८ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ योगविभागः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) योगविभागः कर्तव्यः—“अनद्यतने” । अनद्यतने लटः सत्संज्ञौ भवतः । श्वोऽग्नीनाद्यासमानेन । श्वः सोमेन यक्ष्यमाणेन । ततः “लुट्” । लुट् च भवत्यनद्यतने । श्वः कर्ता । श्वोध्येता ।

केन विहितस्यानद्यतने लटः सत्संज्ञाबुध्येते ॥ एतदेव ज्ञापयति—“भवत्यनद्यतने लुट्” इति । यद्यमनद्यतने लटः सत्संज्ञौ शास्ति ॥ एवं च कृत्वा सोप्यदोषो भवति । यदुक्तं “भविष्यतीत्यनद्यतन उपसंख्यानम्” इति ।

( प्रदीपः ) अनद्य ॥ १५ ॥ एवं चेति । भविष्यच्छब्दस्यानद्यतनेपि वर्तनात्तन्त्रेण एकशेषेण वा द्वयोर्भविष्यच्छब्दयोर्निर्देशादिति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) अनद्यतने ॥ १५ ॥ अनद्यतनेपीति । लुट्-शेषे इति सूत्रेण केवलं भविष्यति ज्ञापकेन अनद्यतने भविष्यतीत्यर्थः ॥ तत्रान्यतरनिर्देशेऽन्यतरस्मिन्नस्यादत्त आह—तन्त्रेणेति । एकशेषेणेति । विभक्त्यन्तैकशेषेणेत्यर्थः ॥ एतच्च ज्ञापकं सद्विधयलट एवेति तिङ्विषयलटोऽनद्यतनेऽसाधुत्वमेवेति केचित् । सामान्यत एव ज्ञापकमित्यन्ये ॥

( ४००९ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥\*॥ परिदेवने श्वस्तनीभविष्यन्त्यर्थे ॥\*॥

( भाष्यम् ) परिदेवने श्वस्तनीभविष्यन्त्या अर्थे

इति वक्तव्यम् । इयं तु कदा गन्ता यैवं पादौ निदधाति । अयं तु कदाध्येता य एवमनभियुक्त इति । ( प्रदीपः ) भविष्यन्त्यर्थ इति । भविष्यन्तीशब्देन पूर्वाचार्यसंज्ञया लङ्बुध्यते ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये परिदेवनमनुशोचनम् ॥ श्वस्तनीति लटः संज्ञा । भविष्यन्त्यर्थे लङ्बुध्यते भविष्यत्सामान्ये इत्यर्थः ॥ यैवमिति । विलम्बितम् ॥ अनभियुक्तः । अभ्यासहीनः ॥ अनद्यतनविषयमेतत्प्रयोगद्वयम् ॥ १५ ॥

( ४०१० वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कालप्रकर्षात्तूपमानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कालप्रकर्षात्तूपमानं भविष्यति । गन्तेवेयं गन्ता नेयं गमिष्यति । अध्येतेवायमध्येता नायमध्येष्यते ॥

न वै तिङन्तेनोपमानमस्ति ।

( भाष्यम् ) एवं तर्ह्यनद्यतन इवानद्यतन इति ॥ अनद्यतने ॥ १५ ॥

( प्रदीपः ) अनद्यतन इति । प्रयोगदर्शनवशाच्च गौणेऽनद्यतने प्रत्ययो भवति ।

( घञ्प्रत्ययाधिकारः )

( ५४३ घञ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. ११ )

९९१ पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥ ३ । २ । १६ ॥

( ४०११ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्पृश उपतापे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्पृश उपतापे इति वक्तव्यम् । इह मा भूत्—कम्बलस्पर्श इति । पदरु ॥ १६ ॥

( प्रदीपः ) पदरुज ॥ १६ ॥ स्पृश उपताप इति । उपतापो रोगः । स्पर्शो नाम व्याधिविशेषः ॥ अन्यत्र पचाद्यञ् भवति । खरे विशेषः ॥ १६ ॥

( उद्ध्योतः ) पदरुज ॥ १६ ॥ स्पर्शो नामेत्युदाहरणम् ॥ अन्यत्र व्याध्यतिरिक्ते ॥ १६ ॥

( ५४३ घञ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. १२ )

९९२ सू स्थिरे ॥ ३ । २ । १७ ॥

( ४०१२ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ व्याधिमत्स्यबलेषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम् । अतिसारो व्याधिः । विसारो मत्स्यः । बले—शालसारः । खदिरसारः ॥ सूस्थिरे ॥ १७ ॥

( प्रदीपः ) सृष्टिरे ॥ १७ ॥ स्थिरः कालान्तरस्य प्रापकोऽर्थ उच्यते ॥ व्याधीति । अस्थिरार्थं वचनम् ॥ १७ ॥

( उद्घोतः ) सृष्टिरे ॥ १७ ॥ कालान्तरस्य प्रापक इति । प्राप्तिमानित्यर्थः । कालान्तरस्यापीति यावत् ॥ अस्थिरार्थमिति । विसारो मत्स्य इत्यत्रैकदेशस्य कालान्तरप्राप्त्याऽस्थिरत्वम् ॥ बलं दृढोऽशः ॥ सारो बलमित्यपि शरीरे दृढशुकांशस्यैव बलपदार्थत्वादुपपन्नम् न्याय्यस्यापि दृढत्वादेव तत्रापि सारशब्दः सिद्धः । एवं श्रेष्ठेऽपि ॥ खदिरसारौ कैयटोक्तस्थिरत्वाभावश्चिन्त्यः । तस्मात्सूत्रस्यैव विषयपरिगणनमिदम् । त्रिष्वेकरूपास्थिरत्वस्य कैयटोक्तस्थिरत्वप्रतिद्वन्द्विनो निरूपयितुमशक्यत्वाच्चेत्यने ॥ १७ ॥

( ५४४ अधिकारसूत्रम् घञ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३१३ ॥ आ. १३ )

९९३ भावे ॥ ३ । २ । १८ ॥

( ५४५ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भावे सर्वलिङ्गो निर्देशः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भावे सर्वलिङ्गो निर्देशः कर्तव्यः—भूतौ, भवने, भावे, इति ॥ किं प्रयोजनम् ? । सर्वलिङ्गे भावे एते प्रत्यया यथा स्युरिति ॥

किं पुनः कारणं न सिध्यति ? ।

पुलिङ्गेनायं निर्देशः क्रियते, एकवचनान्तेन च ! तेन पुलिङ्गे एव भावे एकवचने चैते प्रत्ययाः स्युः । स्त्रीनपुंसकयोर्द्विवचनबहुवचनयोश्च न स्युः ॥

( प्रदीपः ) भावे ॥ १८ ॥ सर्वलिङ्ग इति । लिङ्गस्योपलक्षणार्थत्वात्सर्वसंख्य इत्यपि बोद्धव्यम् ॥ पुलिङ्गेनेति । तत्तश्च शब्देन योऽर्थः प्रतिपाद्यते यद्विङ्गसंख्यायुक्तस्यैवाभिधायकेन भाव्यमिति स्त्रियां भाव इति सामानाधिकरण्येन संबन्धस्यासंभवात् क्रियामकर्तरि कारके किन्प्रत्ययः स्यात् । भावे तु पुंसि । एवं नपुंसके भावे क इत्यत्राकर्तरि च कारके इत्यस्य निवृत्तत्वाज्जुप्तके कर्तरि क्तः स्यात् । भावे तु पुंसि । द्वित्वबहुत्वयोश्च पाकौ पाका इत्यादौ प्रत्यया न स्युरित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भावे ॥ १८ ॥ ततश्च शब्देनेति । भाव इति शब्देनेत्यर्थः ॥ योऽर्थः । सिद्धावस्थः ॥ नन्वेवं स्त्रियां क्तिञ्जितिसूत्रासंगतिरत आह—स्त्रियां भाव इति ॥ नन्वेवमपि नपुंसके भाव इत्यसंगतं स्यात्तत्रार्थान्तरानुवृत्त्यभावादत आह—एवमिति ॥ कर्तरिति । कर्तरि कृदित्यनेन लब्ध इत्यर्थः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

नात्र निर्देशस्तत्रम् ॥

( प्रदीपः ) नात्रेति । सत्त्वभूतौ विना लिङ्गं संख्यां च न निर्देशं शक्यत इति तयोः शब्देनोपादानम् । शब्दसंस्कारमात्रमेव तु तदुपादाने प्रयोजनमित्यर्थः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

कथं पुनस्तेनैव च नाम निर्देशः क्रियते । तच्चातन्त्रं स्यात् । तत्कारी च भवांस्तद् द्वेषी च ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

नान्तरीयकत्वादत्र पुलिङ्गेन निर्देशः क्रियते, एकवचनेन च । अवश्यं कया चिद्विभक्त्या केन चिलिङ्गेन निर्देशः कर्तव्यः । तद्यथा कश्चिदन्नार्थी शालिकलापं सतुषं सपलालमाहरति, नान्तरीयकत्वात् । स यावदादेयं तावदादाय तुषपलालान्युत्सृजति । तथा कश्चिन्मांसार्थी मत्स्यान्सशकैलान्सकण्टकानाहरति, नान्तरीयकत्वात् । स यावदादेयं तावदादाय शकलकण्टकान्युत्सृजति । एवमिहापि नान्तरीयकत्वात्पुलिङ्गेन निर्देशः क्रियते एकवचनान्तेन च । न ह्यत्र निर्देशस्तत्रम् । कया चिद्विभक्त्या केनचिच्च लिङ्गेन निर्देशः कर्तव्यः ॥

( प्रदीपः ) नान्तरीयकत्वादिति । अन्तरशब्दो गहादिषु पठ्यते, स च विनार्थे वर्तते । अन्तरे भवं अन्तरीयं तत्र नञ्समासे कृते पृषोदरादिवाङ्माध्यकारवचनप्रामाण्याद्वा नलोपाभावः । ततः स्वार्थे कन्प्रत्ययः ॥ तुषपलालानीति । तुषसहितानि पलालानीत्युत्तरपदलोपी समासः । द्वन्द्वे तु जातिरप्राणिनामित्येकवद्भाषप्रसङ्गः ॥ एवं शकलकण्टकानीति बोद्धव्यम् । कण्टकशब्दश्चोभयलिङ्गः ॥ एवमिहापीति । प्रयोगमूलत्वाद्वाङ्माध्यकारणस्मृतेः प्रयोगे च सर्वलिङ्गसंख्ये भावे प्रत्ययानां दर्शनादिह च लिङ्गसंख्ययोरविवक्षेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) लिङ्गसंख्ययोरान्तरीयकत्वमुपपादयति—सत्त्वेति । प्रातिपदिकमात्रं निर्दिश्यतामिति वदन्तं प्रत्याह—शब्देति । न केवला प्रकृतिरिति निषेधादिति भावः ॥

भाष्ये कयाचिद्विभक्त्येति । सङ्ख्येत्येत्यर्थः ॥ विनार्थे इति । एवं च यद्विना यत्र भवति तन्नान्तरीयकमित्यर्थः ॥ भाष्यकारवचनप्रामाण्याद्वेति । वा शब्दो हेतौ । ततो हेतोः पृषोदरादित्वमित्यर्थः ॥ न लोपाभाव इति । निषेधार्थकोऽननुबन्धको नशब्दो नारत्येवेति भावः ॥ ननु कण्टकस्य पुंस्त्वात्कण्टकानीत्यनुपपन्नमत आह—कण्टकशब्दश्चेति । अर्द्धेर्चादित्वादिति भावः ॥ प्रयोगमूलत्वादिति । अनुवाद्यगतत्वादविवक्षेति तत्त्वम् । नह्यत्रेति भाष्यस्यात्रानुवादे इत्यर्थः ॥

( आक्षेपबाधकयुक्त्यन्तरभाष्यम् )

अथ वा कृभ्रस्तयः क्रियासामान्यवाचिनः, क्रियाविशेषवाचिनः पचादयः । यच्चात्र पचतेर्भवति भवति, न तद् भवतेः पचतिर्भवति । यच्च भवतेः पचतिर्भवति, न तत् पचतेर्भवतिर्भवति ॥

किंच पचनेर्भवतिर्भवति ? ।

सामान्यम् ॥

किं च भवतेः पचतिर्भवति ? ।

विशेषः ॥

तद्यथा—उपाध्यायस्य शिष्यो मातुलस्य भागि-  
नेयं गत्वाह—‘उपाध्यायं भवानभिवादयताम्’ इति ।  
स गत्वा मातुलमभिवादयते । तथा—मातुलस्य  
भागिनेय उपाध्यायस्य शिष्यं गत्वाह—‘मातुलं  
भवानभिवादयताम्’ इति । स गत्वा उपाध्यायम-  
भिवादयते ॥ एवमिहापि पचतेर्भवतौ यत्तन्निर्दि-  
श्यते ॥ भावे ॥ १८ ॥

( प्रदीपः ) अथ वेति । पाकादिषु क्रियाविशेषेषु भिन्न-  
लिङ्गसंख्यानुगतेष्वपि भावशब्दवाच्यं सामान्यं शैवलेयादि-  
ष्विव गोत्वं विद्यते, तच्चैकं पुंस्त्वानुगतं चेति तदाश्रित्य प्रत्यया  
विधायन्त इत्यर्थः ॥ यच्चात्रेति । भावः सामान्यमेव पचा-  
दयो विशेषा एवेत्यर्थः ॥ भूतिर्भवनमित्यपि पाकादिवत्कर्त्रादि-  
भेदाद्भावविशेष एव भावसामान्यानुगत इति द्रष्टव्यः ॥ तद्य-  
थेति । यथैकस्मिन्वस्तुनि मातुलत्वमुपाध्यायत्वं च भिन्नसं-  
बन्धाश्रयं परस्परमबाधेन व्यवस्थितं तथा पाकादिषु विशेष-  
रूपता भावशब्दस्य वाच्यं च सामान्यम् ॥ तदुक्तं हरिणा—  
आचार्यो मातुलश्चेति यथैको व्यपदिश्यते ।  
संबन्धिभेदादर्थार्त्ता स विधिः पक्तिभावयोरिति ॥

भवतौ यदिति । भवतौ धातौ वाच्यत्वेनावस्थितं य-  
त्सामान्यं पचादिधातुवाच्यविशेषसमवेतं, तत्प्रत्ययार्थत्वेन  
निर्दिश्यत इत्यर्थः ॥ तत्र पाक इत्यादौ प्रकृतिभागः साध्य-  
रूपमर्थमाह । प्रत्ययभागस्तु सत्त्वरूपताम् । तदुक्तं हरिणा—  
आख्यातशब्दे भागाभ्यां साध्यसाधनवर्तिता ।  
प्रकल्पिता यथा शास्त्रे स घञादिष्वपि क्रमः ॥  
साध्यत्वेन क्रिया तत्र धातुरूपनिबन्धना ।  
सत्त्वभावस्तु यस्तस्याः स घञादिनिबन्धनः ॥  
इति ॥ १८ ॥

( उद्द्योतः ) किञ्चिदधिकं वक्तुं विवक्षायामपि न दोष इत्याह  
—अथ वेति । भाष्ये ऋस्त्योर्हन्तार्थं ग्रहणम् । घञ्समभि-  
व्याहारे साध्यत्वेन भासमानं भुवोर्थे इति तस्य सामान्यावचिन्तनम् ॥  
भिन्नलिङ्गेति । पाकः पक्तिः पचनमित्येवमिति भावः । भिन्नलि-  
ङ्गसङ्ख्यानुगतेषु तद्विशिष्टेषु ॥ सामान्यं सत्त्वभावरूपसिद्धत्वा-  
ख्यम् ॥ तच्चैकं पुंस्त्वानुगतं चेति । अत एव पक्तिर्भाव इत्याद्यु-  
पपद्यते । धर्मपरस्यापि धर्मधर्मिणोरभेदात्सामानाधिकरण्यम् ॥ त-

दाश्रित्येति । एवं च लिङ्गसङ्ख्ययोर्विवक्षायामपि न दोषः । न  
चैवं पक्तिरित्यादौ पुंस्त्वापत्तिः । तादृशविशेषगतसामान्यस्य भा-  
वशब्दवाच्यस्य सिद्धत्वरूपस्य पुंस्त्वैकत्वयोः सत्त्वेपि तदाश्रयविशे-  
षस्य नानालिङ्गत्वात्स्त्रीत्वाद्युपपत्तिरिति भावः ॥ सामान्यमिति ।  
तद्गतसिद्धत्वाख्यो धर्म इत्यर्थः । विशेषा इति । तदाश्रया  
व्यक्त्य इत्यर्थः ॥ ताश्च भावविहितकृतप्रत्ययान्तवाच्या अनेकलिङ्गा  
इति भावः ॥ कर्त्रादिभेदादिति । कृयादिभेदादित्यपि बोध्यम् ॥  
कञ्चित् कथ्यते तथैव पाठः । सामान्यानुगत इति । सिद्धत्वरूप-  
सामान्यानुगत इत्यर्थः ॥ स विधिरिति । प्रकार इत्यर्थः । यथा  
एकस्यैवाचार्यत्वं मातुलत्वं संबन्धिभेदात्तथा एकस्मिन्नेव पाकादिषु  
साध्यत्वविशिष्ट तत्तत्क्रियात्वरूपविशेषरूपता, भावशब्दवाच्यं सा-  
मान्यं चेत्यर्थः ॥ तच्च तत्र यथा निरूपकभेदाद्भिन्नम् । एवं प्रकृ-  
तेऽपि वाचकभेदात् कारकनिरूपितं साध्यत्वम्, क्रियान्तरनिरूपितं  
च सिद्धत्वमिति बोध्यम् ॥

वाच्यत्वेनेति । अनेकार्थत्वाद्भातुनां सिद्धत्वमपि घञन्तभूधा-  
तोरर्थे इति भावः ॥ यत्सामान्यमिति । साध्यत्वविशिष्ट तत्तत्क्रि-  
यात्वरूपविशेषसत्त्वेपि यत्सिद्धत्वाख्यं सामान्यं पच्यार्थगतं घञन्तं  
भवति वाच्यं तत्प्रत्ययार्थत्वेन निर्दिश्यत इत्यर्थः ॥ न च तस्यैक-  
त्वात्पुंस्त्वाच्च त्रिकीर्षा इत्यादौ टाबादिर्न स्यादिति वाच्यम् । तस्य  
भावस्य सिद्धत्वरूपस्यैकत्वपुंस्त्वविशिष्टस्य विशेषणत्वेन लिङ्गावनि-  
यामकत्वात् । विशेषणत्वेन भासमानेनापि तेन स्वाश्रयस्य लिङ्गाद्य-  
योग्यतापत्नीयते इति न दोषः ॥ सत्त्वरूपतामिति । एवं च सिद्ध-  
त्वसाध्यत्वोभयधर्मविशिष्टो धात्वर्थः पाकादिपदार्थे इति भावः ॥  
आख्यातशब्दे । पचतीत्यादौ ॥ भागाभ्यां प्रकृतिप्रत्ययाभ्याम् ॥  
साध्यसाधने क्रियाकारके बोध्यते इत्यर्थः ॥ १८ ॥

( ५४५ अधिकारसूत्रम् घञप्रत्ययविधिसूत्रं च ॥ ३१३१ आ. १४ )

९९४ अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्

॥ ३ । ३ । १९ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कारकग्रहणं किमर्थम् ? ॥

( प्रदीपः ) अकर्तरि ॥ १९ ॥ कारकग्रहणं किम-  
र्थमिति । अकर्तरीति पृथुशसपक्षे कर्तृसदृशस्य कारकस्य  
ग्रहणं विज्ञास्यते । प्रसज्यप्रतिषेधेपि वाक्यभेदेन संज्ञायां घञ्  
भवति, कर्तरि न भवतीति विधिप्रतिषेधयोर्विधानाद् भावे च  
पूर्वसूत्रेण विहितत्वात् संज्ञायां घञ् धात्वर्थसंबन्धिनि कारके  
एव सामर्थ्याद्विज्ञास्यत इति प्रश्नः ॥

( उद्द्योतः ) अकर्तेरि च ॥ १९ ॥ विधिप्रतिषेधयोरिति ।

१ भावशब्दवाच्यं सामान्यं निर्दिश्यत इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ चित्रगवीवत्सादिष्विवेत्यर्थः । ( र. ना. )

३ यथैक एवार्थात्मा संबन्धिभेदाद् आचार्यो मातुलश्चेति व्यपदिश्यते स  
विधिः प्रकारः पक्तिभावयोरिति योजना । ( र. ना. )

४ सामान्यमिति शेषः । ( र. ना. )

५ धर्मपरस्यापि भावशब्दस्य धर्मिवाचिना पक्तिशब्देन सामानाधिकरण्यं  
पक्तिर्भाव इति धर्मधर्मिणोरभेदादिति योजना । ( र. ना. )

६ आचार्यत्वं मातुलत्वचेत्यर्थः । निरूपकभेदात्, शिष्यभागिनेयरूपसं-  
बन्धिभेदादित्यर्थः । ( र. ना. )

एकविषयत्वे विकल्पापत्तेस्तदितरकारकविषयता विधेरिति भावः ॥  
ननु भावविषयत्वमेव स्यादत आह—भावे चेति ॥

( ४०१३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कारकग्रहणमनादेशे स्वार्थ-  
विज्ञानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कारकग्रहणं क्रियते । [ किं कार-  
णम् ? ] अनादेशे स्वार्थविज्ञानात् । अनादेशे अनि-  
र्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्तीति—तद्यथा, “गु-  
त्तिज्जिक्कल्लयः सन्” “यावादिभ्यः कन्” इति । ए-  
वमिमेऽपि<sup>१</sup> प्रत्ययाः स्वार्थे स्युः । स्वार्थे मा भूव-  
न्कारके यथा स्युरित्येवमर्थमिदमुच्यते ॥

( प्रदीपः ) स्वार्थ इति । साध्यमानरूपस्वार्थ इत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) ननु स्वार्थेऽस्य विधानमपि “भावे” इत्येव  
सिद्धमत आह साध्यमानेति । अकर्तरिति तु सामान्यप्राप्तक-  
र्त्र्थसंबन्धार्थं स्यादिति भावः ॥

( नियमार्थत्वप्रयोजनभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । विहितः प्रत्ययः स्वार्थे  
“भावे” वञ्चति ॥

( प्रदीपः ) विहित इति । भावे भेदमबुध्यमान आह ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये विहित इति । एवं च सामर्थ्यात्कारक  
एव भविष्यतीति भावः ॥

( नियमखण्डनभाष्यम् )

तेनातिप्रसक्तमिति कृत्वा नियमोऽयं विज्ञायते—  
अकर्तरि संज्ञायामेवेति ॥

( उद्ध्योतः ) इतर आह—तेनेति । अकर्तरि संज्ञायामेवेति  
सामान्यतः कर्तरि कृत् इति सूत्रप्राप्तकर्तरि न, किं तु भावे तत्र  
च संज्ञायामेवेत्यर्थः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

अस्ति चेदानीं कश्चित्संज्ञाभूतो भावो यदर्थो  
विधिः स्यात् ॥

( उद्ध्योतः ) संज्ञाभूत इति । संज्ञात्वं प्राप्त इत्यर्थः ॥  
भावः । भावप्रत्ययान्त इत्यर्थः ॥ यदर्थो विधिरिति । नियमवि-  
धिरित्यर्थः ॥

( उत्तरभाष्यम् )

अस्तीत्याह । आवाहो विवाह इति ॥

( प्रदीपः ) आवाह इति कन्याया आनयनमुच्यते ।  
विवाहस्तु नयनम् ॥

( नियमखण्डनभाष्यम् )

कैमर्थक्यान्नियमो भवति । विधेयं नास्तीति  
कृत्वा । इह चास्ति विधेयम् ॥ किम् ? । अकर्तरि च

कारके संज्ञायां घञ्विधेयः । तत्रापूर्वो विधिरस्तु  
नियमोऽस्त्विति । अपूर्वं एव विधिर्भविष्यति न  
नियमः ॥

( प्रदीपः ) तत्रापूर्वं इति । अन्यथा भावे संज्ञाया-  
मिति एकमेव योगं कुर्यात् । योगविभागात्तु विध्यर्थत्वमस्येत्यर्थः ॥

( उद्ध्योतः ) योगविभागास्त्विति । अकर्तरिग्रहणाच्चेत्यपि  
बोध्यम् । नियमपक्षे तस्यापि वैयर्थ्यादित्याहुः ॥

( समाधानभाष्यम् )

तदेव तर्हि प्रयोजनं स्वार्थे मा भूवञ्चति ॥

( दूषणस्मारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं विहितः प्रत्ययः स्वार्थे “भावे” वञ्चि-  
तीति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

अन्यः स भावो बाह्यः प्रकृत्यर्थात् ॥ अनेनेदानी-  
मभ्यन्तरे भावे स्यात् ॥

( प्रदीपः ) अन्य इति । सत्वभावमापन्न इत्यर्थः ॥  
अनेनेति । साध्यमानरूपो धातुवाच्य आभ्यन्तरः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

कः पुनरनयोर्भावयोर्विशेषः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

उक्तो भावभेदो भाष्ये ॥

( प्रदीपः ) उक्त इति । सार्वधातुके यगित्यत्र  
भावभेदः प्रतिपादितः ॥

( उद्ध्योतः ) उक्तो भावभेदो भाष्ये इति शङ्कितविरि-  
क्तस्य छात्रस्य वाक्यमित्येके । भगवत एवेत्यन्ये ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । “नञिवयुक्तमन्य-  
सदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः” । नञ्युक्तमिव-  
युक्तं चान्यस्मिन्सदृशे कार्ये विज्ञायते तथा ह्यर्थो  
गम्यते । तद्यथा—“अब्राह्मणमानय” इत्युक्ते ब्राह्म-  
णसदृशं पुरुषमानयति । नासौ लोष्टमानीय कृती  
भवति । एवमिहापि “अकर्तरि” इति कर्तृप्रतिषेधा-  
दन्यस्मिन्नकर्तरि कर्तृसदृशे कार्ये विज्ञास्यते ।

किं चान्यदकर्तृ कर्तृसदृशम् ? ।

कारकम् ॥

( उद्ध्योतः ) भाष्ये नञिवयुक्तमिति । प्रसज्यप्रतिषेधा-  
त्पर्युदासो न्याय्य इति भावः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

उत्तरार्थं तर्हि कारकग्रहणं कर्तव्यम्—“परिमा-  
णाख्यायां सर्वेभ्यः” कारके यथा स्यात् । इह मा  
भूत्—एका तिलोच्छ्रितः, द्वे श्रुती इति । \* “घञ-

१ कर्तो तत्पदार्थः । ( र. ना. )

२ ‘मिहापि’ ॥

३ कर्तरिकृदितीत्यादिः । ( र. ना. )



नुक्रमणमजविविषये अवचने हि स्त्रीप्रत्ययानामप्य-  
पवादविज्ञानम्”\* इति वक्ष्यति । तन्न वक्तव्यं  
भवति ॥

( प्रदीपः ) उत्तरार्थमिति । तेन परिमाणाख्यायां  
सर्वेभ्य इत्यनेन घञ् कारके भवति, न तु भावः इति एका-  
तिलोच्छ्रितः द्वे श्रुती इत्यत्र भावे घञः प्रसङ्गादेतदर्थं घञनु-  
क्रमणमित्यादि न वक्तव्यं भवति ॥ १९ ॥

( उद्ध्योतः ) घञनुक्रमणमित्यादीति । परिमाणाख्याया-  
मित्यादि घञ्विधानमजपेरिव बाधकं न तु स्त्रीप्रत्ययानामित्यर्थकं  
हि तद्वार्तिकमिति भावः ॥ ननु परिमाणाख्यायामित्यत्र कारके  
इत्यनुवृत्तावपि कर्मणि क्तिनं बाधित्वा घञ् मा भूत् इत्यर्थं तदावश्य-  
कमिति चेन्न । परिमाणाख्यायां भाव एव क्तिनं मन्यते अभिधान-  
स्वाभाव्यादिति न दोषः ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । अत्राप्यकर्तरीत्येवा-  
नुवर्तिष्यते ॥

( ४०१४ संज्ञाग्रहणप्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ संज्ञाग्रहणानर्थक्यं च सर्वत्र  
घञो दर्शनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) संज्ञाग्रहणं चानर्थकम् । किं कार-  
णम् ? सर्वत्र घञो दर्शनात् । असंज्ञायामपि घञ्  
दृश्यते—‘को भवता लाभो लब्धः’ ‘को भवता  
दायो दत्तः’ इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि संज्ञाग्रहणं न क्रियते, अतिप्रसङ्गो भवति  
—कृतः कट इत्यत्र ‘कारः कटः’ इति प्राप्नोति ॥

( ४०१५ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अतिप्रसङ्ग इति चेदभिधानल-  
क्षणत्वात् प्रत्ययस्य सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अतिप्रसङ्ग इति चेत् । तन्न । किं  
कारणम् ? अभिधानलक्षणत्वात्प्रत्ययस्य सिद्धम् ।  
अभिधानलक्षणाः कृत्तद्धितसमासाः । अनभि-  
धानाद् न भविष्यन्ति ॥ अकर्तरि च ॥ १९ ॥

( ५४६ घञ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. १५ )

९९५ परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः

॥ ३ । ३ । २० ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

सर्वग्रहणं किमर्थम् ।

१ वार्तिकतत्पदार्थः । ( र. ना. )

( आक्षेपनिरासभाष्यम् )

सर्वेभ्यो घातुभ्यो घञ् यथा स्यात् । अजपोरपि  
विषये—एकस्तण्डुलनिचायः । द्वौ शूर्पनिष्पावौ ॥

( प्रदीपः ) परिमाणा ॥ २० ॥ अजपोरपीति ।

अन्यथा पुरस्तादपवादा इति न्यायेनाचमेव घञ् बाधेत  
नापमिति भावः । द्वौ शूर्पनिष्पावाविति । यद्यप्यत्र नि-  
रभ्योः पूर्व्वोरिति घञ् सिध्यति तथापि सर्वापवादार्थं सर्वप्र-  
हणोपादानादनेनैव भवितुमर्हतीत्युपन्यासः ॥

( ३०१६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ सर्वग्रहणमनर्थकं परिमाणा-  
ख्यायामिति सिद्धत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सर्वग्रहणमनर्थकम् । किं कारणम् ? ।  
परिमाणाख्यायामिति सिद्धत्वात् । परिमाणा-  
ख्यायामित्येव घञ् सिद्धः अजपोरपि विषये, नार्थः  
सर्वग्रहणेन ॥

( प्रदीपः ) सर्वग्रहणमिति । बाध्यमात्रापेक्षायां समु-  
दायापेक्षायां वा पुरस्तादपवादस्यायो नास्तीति भावः ॥

( आनर्थक्यनिराकरणभाष्यम् )

अस्त्यन्यदेतस्य वचने प्रयोजनम् । किम् ? । एकः  
पाको द्वौ पाकौ त्रयः पाका इति ।

( प्रदीपः ) एकः पाक इति । कर्मण्यपि घञ् भव-  
तीति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) परिमाणाख्यायां स ॥ २० ॥ परिमाणं  
परिच्छित्तिः । तस्या आख्यानं कथनं तत्रेत्यर्थः । परिच्छित्तिश्च प्रत्य-  
यार्थस्येति भावः । सा चैकादिशब्दैरुदाहरणेषु स्पष्टैव । पुनर्विधा-  
नादेवाजवविषये भवतीत्यत आह—अन्यथेति ॥ उपादानादने-  
नैवेति । परिमाणाख्यायामित्यनेनैवेत्यर्थः । निरभ्योः पूर्व्वोरिति  
च न कार्यमिति भावः ॥ निचायनिष्पावौ कर्मणि वञ्चन्तौ । तण्डु-  
लशब्देन शूर्पशब्देन च तत्पुरुषः ॥ निचीयते सः । भावसाधनो  
वा निचायो राशिः । अत्र राशेरकत्वेन परिच्छेदः । निष्पूयते  
तुषाद्यपनयनेन स निष्पावस्तण्डुलराशिः । अत्रापि संख्यया परि-  
च्छेदः ॥ निचाये ग्रहवृ इति अप्रसक्तिः ॥ बाध्यमात्रापेक्षा-  
यामिति । सामान्यचिन्तायामिदम् ॥ बाध्यविशेषचिन्तायामपि  
प्रकारविशेषमाह—समुदायापेक्षायां वेति ॥ ननु भावे इत्यने-  
नैव सिद्धमत आह—कर्मण्यपीति । परिमाणज्ञापनार्थं भाष्ये  
एकादिपदोपादानम् ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

न पूर्व्वोणाप्येतत् सिद्धम् ।

( आनर्थक्यपरिहारभाष्यम् )

न सिध्यति । “संज्ञायाम्” इति पूर्व्वो योगः । न  
चैषा संज्ञा ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

प्रत्याख्यायते संज्ञाग्रहणम् । अथापि क्रियते ।

एवमपि न दोषः । अजपावपि संज्ञायामेव । यथा-  
जातीयक उत्सर्गः तथाजातीयकेनापवादेनापि भ-  
वितव्यम् ।

( उद्घोतः ) भाष्ये—अथापीति । एवं च पाकादिशब्दा-  
नामसंज्ञात्वात् अकर्तृरिति चेत्तत्र न सिद्धमित्यर्थः । एवं चासं-  
ज्ञार्थ परिमाणाख्यायामित्यस्य चारितार्थात् अजपोविषये घञर्थ  
सर्वग्रहणमावश्यकमिति भावः ॥ समाधत्ते—अजपावपीति ।  
एवं च तण्डुलनिचाय इत्यादावप्यसंज्ञात्वादपोऽप्राप्तौ परिमा-  
णाख्यायामित्येव घञ्सिद्ध इति नार्थः सर्वग्रहणेनेत्यर्थः ॥ अजपोः  
संज्ञाविषयत्वे युक्तिमाह—यथाजातीयक इति । अन्यथाऽसंज्ञायां  
तयोश्चारितार्थ्येन घञपवादत्वमेव न स्यादिति भावः ॥

( आनर्थक्यपरिहारभाष्यम् )

उत्तरार्थं तर्हि—“इच्छ” । सर्वेभ्योपि यथा  
स्यात् ॥

( आनर्थक्यभाष्यम् )

ननु चायमिह एकै एव वण्ठरण्डाकल्पः । वण्ठो  
मृतभार्यः

( आनर्थक्यपरिहारभाष्यम् )

सर्वेषु साधनेषु यथा स्यात् । उपेत्याधीयते त-  
स्मादित्युपाध्यायः । अस्मिन्नधीयते इत्यध्यायः ।  
“अध्यायन्यायोद्यावसंहाराधारावायाश्च” इत्येत-  
न्निपातनं न कर्तव्यं भवति ॥

( प्रदीपः ) सर्वेष्विति । सर्वेभ्य इति तादर्थ्ये चतुर्थी  
तेनायमर्थो गृह्यत इति भावः । तेनाधिकरणे घं बाधित्वा  
घञ् भवति ॥

( उद्घोतः ) ननु धातुविशेषणात्सर्वेभ्य इति पञ्चम्यन्ता-  
त्सर्वेष्विति कथं लभ्यतेऽत आह—सर्वेभ्य इति ॥ तादर्थ्यं  
इति ॥ नन्वपादानेऽकर्तृरिति कारके इत्युक्तेः सिद्धमत आह—  
तेनाधिकरणेति । अपादानं तु दृष्टान्तार्थमिति भावः । तदुदा-  
हरणम्, अधीयतेऽस्मिन्नित्यध्याय इति । स्वाध्यायकाल इत्यर्थः ।

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । क्रियते न्यास एव ॥

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

उत्तरार्थमेव तर्हि वक्तव्यम्—“कर्मव्यतिहारे णच्  
स्त्रियाम्” इति सर्वेभ्यो यथा स्यात् ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये णच् स्त्रियामिति सर्वेभ्य इति ॥  
व्यावचोरीत्यादौ युजादिविषयेपीत्यर्थः ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । वक्ष्यत्येतत्—\*कर्म-  
व्यतिहारे स्त्रीग्रहणं व्यतिपाकार्थम्\* । \*पृथक्ग्रहणं  
बाधक बाधनार्थम्\* । \*व्यावचोरी व्यावचर्त्यर्थ-

म्\* । \*तत्र व्यतीक्षादिषु दोषः\* । सिद्धं तु प्रकृते  
स्त्रीग्रहणे णज्ग्रहणं णिज्ग्रहणं चेति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये कर्मव्यतिहारे इत्यादि । तत्र णिज्-  
विधायके सूत्रे स्त्रीग्रहणं व्यतिपाको वर्तत इत्यत्र णजभावार्थम् ॥  
स्त्रियां क्तिन्नित्यतः पृथक्ग्रहणं तु व्यावचोरीत्यादौ ण्यासिति  
युजादीनां बाधकानां बाधनार्थम् । न च व्यतीक्षादिषु गुरोश्च  
हल इत्यस्यापि बाधप्रसङ्गः ॥ स्त्रियां क्तिनित्यधिकारे एव कर्म-  
व्यतिहारे णच् ततो णिच इति न्यासेन सिद्धेरिति तद्वार्तिकार्थः ॥

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

उत्तरार्थमेव तर्हि—“अभिविधौ भाव इनुण्”  
सर्वेभ्यो यथा स्यात् । साराविणम् ॥

( उद्घोतः ) इनुण् सर्वेभ्य इति । साराविणमित्यादौ भाव-  
त्कादिविषयेऽपीत्यर्थः ॥

( आनर्थक्यसाधकभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । वक्ष्यत्येतत्—“अ-  
भिविधौ भावग्रहणं नपुंसके कादिनिवृत्त्यर्थम् ।  
पृथक् तु ग्रहणं बाधकबाधनार्थं न तु ल्युट्” इति ।

( उद्घोतः ) अभिविधाविति ॥ शब्दशक्तिसंभावाद्भावे  
ष्वेनुण्सिद्धौ भावग्रहणं वासरूपन्यायेन पक्षप्राप्तकादिनिवृत्त्य-  
र्थम् ॥ नपुंसके भाव इत्यनन्तरमेव वक्तव्ये पृथक्ग्रहणं तु क्तस्य  
बाधकानां खल्वर्थानामपि बाधनार्थं पूर्वविप्रतिषेधेनेति भावः ॥  
क्तवत् ल्युटो बाधस्तु नेष्यते इत्याह—न तु ल्युट् इतीति ।  
एतद्वार्तिकार्थः ॥

( आनर्थक्यबाधकभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—प्रकृत्याश्रयो योऽपवाद-  
स्तस्य बाधनं यथा स्याद् अर्थाश्रयो योऽपवादस्तस्य  
बाधनं मा भूदिति । एका तिलोच्छ्रुतिः । द्वे श्रुती  
इति ॥ \*घञनुक्रमणमजब्विषये । अवचने हि स्त्री  
प्रत्ययानामप्यपवादविज्ञानम्\* इति चोदयिष्यति ।  
तन्न वक्तव्यं भवति ॥

( प्रदीपः ) प्रकृत्याश्रय इति । सर्वेभ्य इति पञ्चमी-  
निर्देशादयमर्थो लभ्यत इति भावः ॥ अर्थाश्रय इति ।  
स्त्रियामित्यर्थं निर्दिश्य क्तिनो विधानादर्थ्याश्रयत्वम् ॥ एकेति ।  
ननु कारकानुवृत्त्याऽत्र भावे घञ् न भविष्यति ॥ नैतदस्ति ।  
उभयाधिकारात् ।

( उद्घोतः ) उभयाधिकारादिति । परिमाणाख्यायां भावेऽ-  
पीष्टेरिति भावः ॥ उदाहरणयोर्भावे क्तिन् । पूर्वसूत्रस्य भाष्यस्वरसात् ॥

( ४०१७ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ घञनुक्रमणमजब्विषये ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) घञनुक्रमणमजब्विषय इति वक्त-  
व्यम् ।

( ४०१८ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अवचने हि स्त्रीप्रत्ययानामप्य-  
पवादविज्ञानम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) अनुच्यमाने ह्यतस्मिन् स्त्रीप्रत्यया-  
नामप्यपवादोऽयं विज्ञायेत—एका तिलोच्छ्रुतिः,  
द्वे श्रुती इति ।

( ४०१९ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ दारजारौ कर्तरि णिलुक् च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) दारजारौ कर्तरि वक्तव्यौ । णिलुक्  
च वक्तव्यः । दारयन्तीति दाराः । जरयन्तीति  
जाराः ॥( प्रदीपः ) दारजाराविति । णिलोपे सति तस्य स्था-  
निवत्त्वाद् घञाश्रया वृद्धिर्न स्यादिति णिलुग् विधीयते । तस्य  
हि अपरनिमित्तकत्वात् किलुगुपधात्वेति प्रतिषेधात् वा  
स्थानिवत्त्वाभावाज् जारशब्दः सिध्यति ।( उद्ध्योतः ) घञाश्रयेति । प्याश्रयायां तु जनीजृषृक्स्विति  
मित्रेण जारशब्दे ह्रस्वापत्तिरिति भावः ॥ ननु जृणातिरपि क्रयादौ  
पठ्यते । अत एव तद्व्यावृत्तये जनीजृषृति गणसूत्रे षकारोच्चारणम् ।  
एवं च तस्या मित्रेण तस्मात् घञि णिलोपेनापि सिद्धं जार इतीति  
चेन्न । मितो जर इति रूपव्यावृत्त्यर्थत्वात् । दारयतेर्यघपि पचा-  
यचा सिद्धं तथाप्यच्कावशक्ताविति स्वरव्यावृत्तये इदम् ॥

( ४०२० वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ करणे वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) करणे वा वक्तव्यौ । दीर्यन्ते तैर्दाराः ।  
जीर्यन्ति तैर्जाराः ॥ परिमाणा ॥ २० ॥( प्रदीपः ) करणे वेति । अपयन्तयोरेव हणतिजीर्यस्योः  
रणे घे प्राप्ते घञेवोच्यत इत्यर्थः ॥ २० ॥( उद्ध्योतः ) करणे घ इति । पुंसि संज्ञायां घ इत्यनेन  
मुपलक्षणं ल्युटोऽपि ॥ २० ॥

१४७ घञप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. १६ )

११६ इडश्च ॥ ३ । ३ । २१ ॥

( ४०२१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ इडश्चेत्यपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं  
तदन्ताच्च वा डीप् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) इडश्चेत्यत्रापादाने स्त्रियामुपसंख्या-  
। कर्तव्यं तदन्ताच्च वा डीप् वक्तव्यः । उपेत्याधी-  
यतेऽस्या उपाध्यायी उपाध्याया ॥( प्रदीपः ) इडश्च ॥ २१ ॥ प्रकृत्याश्रयस्यैवाचो घञा  
बाधकेन भाष्यम् । न त्वर्थाश्रयस्यापि क्तिन इति मत्वाह—  
इडश्चेति ।( उद्ध्योतः ) इडश्च ॥ २१ ॥ ननु सूत्रेणैव सिद्धमत  
आह—प्रकृत्येति ॥ सजातीयत्वादित्यर्थः । तथाच स्त्रियां क्तिनो  
बाधनार्थमिदमिति भावः ॥

( ४०२२ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ शृवायुवर्णनिवृत्तेषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) शृ इत्येतस्माद्वायुवर्णनिवृत्तेषु घञ्  
वक्तव्यः । शारो वायुः । शारो वर्णः । गौरिवाकृत-  
नीशारः प्रायेण शिशिरे कुशः ॥ इडश्च ॥ २१ ॥( प्रदीपः ) शृवार्यविति । ऋदोरविति प्राप्ते वच-  
नम् ॥ आर इति । कर्मणि घञ् ॥ अकृतनीशार इति ।  
अकृताच्छादन इत्यर्थः ॥ २१ ॥( उद्ध्योतः ) कर्मणीति । हरदत्तस्तु करणे इत्याह ॥  
नित्रियतेऽनेनेति निवृत्तमाच्छादनं बाहुलकात्करणे क्तः । तदाह—  
अकृताच्छादनेति ॥ २१ ॥

( ५४८ ग्रहेर्घञप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. १७ )

१०११ समि मुष्टौ ॥ ३ । ३ । ३६ ॥

( ४०२३ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ समि मुष्टावित्यनर्थकं वचनं परि-  
माणाख्यायामिति सिद्धत्वात् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) समि मुष्टाविति वचनमनर्थकम् ।  
किं कारणम् ? । परिमाणाख्यायामिति सिद्धत्वात् ।  
“परिमाणाख्यायाम्” इत्येवात्र घञ् सिद्धः ॥( प्रदीपः ) समि मुष्टौ ॥ ३६ ॥ परिमाणवाचिमुष्टि-  
शब्दाश्रयेण पूर्वः पक्षः ।

( ४०२४ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अपरिमाणार्थं तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अपरिमाणार्थोऽयमारम्भः । मल्लस्य  
संग्राहः । मुष्टिकस्य संग्राह इति ॥

( प्रदीपः ) अङ्गुलिसंनिवेशवाच्याश्रयणेन तु परिहारः ॥ ३६ ॥

( उद्ध्योतः ) समि० ॥ ३६ ॥ अङ्गुलीति । दृढमुष्टिता  
तेनान्वाख्यायते ॥ मुष्टिकस्येति भाष्ये मुष्टौ कुशल इत्यर्थे आकर्षा-  
दित्वात्कन् ॥

( ४०२५ निपातनपरिसंख्यावार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ उद्ग्राभनिग्राभौ च च्छन्दसि

स्रुगुद्यमननिपातनयोरर्थयोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उद्ग्राभो निग्राभ इति इमौ शब्दौ  
छन्दसि वक्तव्यौ स्रुगुद्यमननिपातनयोरर्थयोः ।

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्मदेवा अवीवृधन् ॥  
ससि मुष्टौ ॥ ३६ ॥

( उद्घोतः ) निपातनमधः पातनम् ॥ ३६ ॥

( ५४९ णच्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ. १८ )

१०१८ कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्  
॥ ३ । ३ । ४३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

स्त्रीग्रहणं किमर्थम् ।

( ४०२६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कर्मव्यतिहारे स्त्रीग्रहणं  
व्यतिपाकार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्मव्यतिहारे स्त्रीग्रहणं क्रियते व्य-  
तिपाकार्थम् । इह मा भूत्—व्यतिपाको वर्तते ।

( उद्घोतः ) कर्मव्य ॥ ४३ ॥ भाष्ये व्यतिपाकार्थ-  
मिति ॥ पुल्लिङ्गे भावे मा भूदित्यर्थमित्यर्थः ॥ अकर्तृकारके तु  
नानभिधानादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ किमर्थं पृथग्ग्रहणम् ।

( ४०२७ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ पृथग्ग्रहणं बाधकबाधनार्थं व्या-  
वचोरीव्यावचर्च्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) पृथग्ग्रहणं क्रियते [ किं प्रयोजनम् ? ]  
बाधकबाधनार्थं, ये तस्य बाधकास्तद्बाधनार्थम् ।  
किं प्रयोजनम् ।

व्यावचोरी व्यावचर्च्यर्थम् । व्यावचोरी वर्तते ।  
व्यावचर्ची वर्तते ।

( प्रदीपः ) कर्म ॥ ४३ ॥ पृथग्ग्रहणमिति । प्रक-  
रणोत्कर्षात् किनो बाधकानामप्यनेन बाधनमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) प्रकरणोत्कर्षादिति ॥ स्त्रियां क्तिञ्जिते तदपेक्ष-  
येति भावः ॥ बाधकानामिति । व्यावचोरीत्यादौ ण्यासेति ।  
युजादीनामित्यर्थः ॥ अत्रेदं बोध्यम् । क्तिनोऽपवादः । अत एव  
पक्षे वासरूपविधिना सोऽपि ॥ अन्येषां तदपवादानां तु पृथक्-  
पाठेन पूर्वविप्रतिषेधकत्पनया बाधकः । अत एव व्यतीक्षाया  
असिद्धिः शङ्किता भाष्ये ॥ विप्रतिषेधविषये वासरूपाप्रवृत्तेः ॥

( ४०२८ दूषणवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र व्यतीक्षादिषु दोषः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र व्यतीक्षादिषु दोषो भवति ।  
व्यतीक्षा वर्तते । व्यतीहा वर्तते ॥

( प्रदीपः ) व्यतीक्षादिष्विति । अप्रत्ययाद् “गु-  
रोश्च हल”-इति अकारस्यापि बाधप्रसङ्गादित्यर्थः ॥

( ४०२९ दूषणोद्धारवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु प्रकृते स्त्रीग्रहणे णज्-  
ग्रहणं णिज्ग्रहणं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् । प्रकृत एव  
स्त्रीग्रहणेऽयं योगः कर्तव्यः—“स्त्रियां क्तिन्” ।  
ततः “कर्मव्यतिहारे णच्” । ततो “णिचः” ॥  
कर्मव्यति ॥ ४३ ॥

( प्रदीपः ) सिद्धं त्विति । यथेवं व्यावकुष्टिरिति क्तिन् न  
प्राप्नोति । व्यात्युक्षी च न सिध्यति । नैष दोषः । कृत्यल्युटो  
बहुलमिति बहुलवचनाद्यथेष्टलाभप्रयोजनात् ॥ ४३ ॥

( उद्घोतः ) णिचग्रहणं चेति । इदं व्यावचोरीत्यादौ  
बाधकबाधनार्थम् ॥ व्यावकुष्टिरिति । स्पष्टश्चायं प्रयोगो वास-  
रूपपक्षे ॥ व्यात्युक्षीति । च भाषकाव्ये ॥ क्तिञ्जेति । व्याधि-  
कारे वासरूपविधेरभावात् व्यात्युक्ष्यामपवादविप्रतिषेधेन गुरोश्च-  
त्यप्रत्ययप्रसङ्गादिति भावः ॥ एवं च वासरूपसूत्रस्य प्रयोगानुष्ठान-  
रूपभाष्यविरोधात् सिद्धं त्वित्याद्येतत्सूत्रस्य वार्तिकमेवातिकर्तृदेश्यु-  
क्तिरिति भावः ॥ व्यावचोरीव्यतीक्षे बहुलग्रहणात्साध्ये इति तात्प-  
र्यम् । उत्तरं तु स्त्रियामित्यकरणप्रयुक्तलाघवाद्बहुलकस्य तवा-  
प्यावश्यकत्वाच्च वार्तिकोक्तमेव युक्तमिति ॥ ४३ ॥

( ५५० इनुण्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. १९ )

१०१९ अभिविधौ भाव इनुण्

॥ ३ । ३ । ४४ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

भावग्रहणं किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) अभिविधौ ॥ ४४ ॥ भावे कारक इति  
द्वयेऽपि प्रकृते शब्दशक्तिस्वाभाव्याद्भाव इवेतुण् भविष्यतीति  
मत्वाह—भावग्रहणमिति ॥

( उद्घोतः ) अभिविधौ भाव ॥ ४४ ॥ द्वयेपि प्रकृत  
इति । प्रकरण इत्यर्थः । द्वयोरपि प्रकृते इति पाठान्तरम् ॥  
भावे इवेति ॥ णज्वदिति भावः ॥

( ४०३० समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अभिविधौ भावग्रहणं नपुंसके  
क्तादिनिवृत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अभिविधौ भावग्रहणं क्रियते नपुं-  
सके क्तादिनिवृत्त्यर्थम् । नपुंसकलिङ्गे भावे क्ता-  
दयो मा भूवदिति ।

( प्रदीपः ) नपुंसक इति । मध्येपवादाः पूर्वान्विधीन् बाधन्त इति इनुण् घञमेव बाधेत न तु क्तादीन् । भावग्रहणा-  
त्त्वधिकविधानार्थात्तानपि बाधत इति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) मध्येपवादा इति ॥ बाध्यसामान्यन्वितयेदं सिद्धमिति वासरूपन्यायेन पक्षे प्राप्तयोरपि तयोर्बाधनार्थं भाव-  
ग्रहणमिति भाष्याभिप्रायवर्णनमुचितम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ किमर्थं पृथग्रहणं क्रियते ।

( प्रदीपः ) अथेति । नपुंसके भाव इत्यस्यानन्तरमिदं वक्तव्यमिति भावः ॥

( ४०३१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ पृथग्रहणं बाधकबाधनार्थम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) पृथग्रहणं क्रियते बाधकबाधना-  
र्थम् । ये तस्य बाधकास्तद्बाधनार्थम् ॥

( प्रदीपः ) पृथग्रहणमिति । वासरूपो स्त्रियामिति वचनात्पक्षे क्तादयः स्युरिति प्रकरणोत्कर्षेण वासरूपविधिर्बा-  
ध्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

( उद्ध्योतः ) वासरूप इति ॥ रुचधिकार एव वासरूप-  
निषेध इति प्राक् प्रतिपादनादिति भावः ॥ भाष्ये ये तस्येति ।  
क्तस्य बाधकाः खलुर्था इत्यर्थ उज्जितः । कैयटोक्तार्थे नाक्षरस्वार-  
स्यम् ॥ भावग्रहणफलादविशेषश्च ॥ अत्राप्येवंकरणात्पूर्वविप्रतिषेध-  
कल्पनेति तात्पर्यम् ॥

( ४०३२ वार्तिकशेषः ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ नतु ल्युटः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ल्युटो बाधनं नेष्यते, संकूटनमि-  
त्येव भवति ॥ अभिविधौ ॥ ४४ ॥

( उद्ध्योतः ) संकूटनमित्येवेति । संकूटनमिति भवत्येवे-  
त्यन्वयः ॥ अत एव पुंयोगादिति सूत्रस्यः साकूटनमिति भाष्य-  
प्रयोगः संगच्छते ॥ ४४ ॥

( ५५१ इवर्णान्तादचप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१आ.२० )

१०३१ एरच् ॥ ३।३।५६ ॥

( ४०३३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ अज्विधौ भयस्योपसंख्यानम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) अज्विधौ भयस्योपसंख्यानं कर्त-  
व्यम् । भयम् ॥

( उपालम्भभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते भयस्येति ।

भयादीनामिति वक्तव्यम् । इहापि यथा स्यात्-  
भयं, वर्षम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

किं प्रयोजनम् ? ।

( ४०३४ वार्तिकशेषः ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ नपुंसके क्तादिनिवृत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नपुंसकलिङ्गे भावे क्तादयो मा भूव-  
न्निति ॥

( प्रदीपः ) एरच् ॥ ४६ ॥ वर्षमिति । वर्षणमित्यपि  
भवति । वृषभो वर्षणादिति भाष्यकारवचनात् ॥

( उद्ध्योतः ) एरच् ॥ ५६ ॥ भाष्यकारवचनादिति ।  
ततो बाहुलकाद्युडपीति भावः ॥

( ४०३५ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ।  
कल्पः अर्थः मन्त्र इति ॥

( प्रदीपः ) कल्प इति । ण्यन्तेभ्योऽचि प्रतिषिद्धे घञेव  
भवति । एरजण्यन्तानामिति तु वचनमनार्थम् ॥

( ४०३६ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ जवसवौ छन्दसि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) जवसवौ छन्दसि वक्तव्यौ । ऊर्वो-  
रस्तु मे जवः । अयं मे पञ्चौदनः सवः ॥ एरच्  
॥ ५६ ॥

( प्रदीपः ) जवसवाविति । अपि प्राप्तेऽज्विधिः ।  
स्वरे विशेषः ॥ ५६ ॥

( उद्ध्योतः ) स्वरे इति । अपि आद्युदात्तम् । अन्यन्तोदात्त-  
मित्यर्थः ॥ ५६ ॥

( ५५२ अप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१आ.२१ )

१०३३ ग्रहवृट्निश्चिगमश्च ॥ ३।३।५८ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं निष्पूर्वाच्चिनोतेरब् विधीयते । नाचैव  
सिद्धम् । न ह्यस्ति विशेषो निष्पूर्वाच्चिनोतेरपो वा,  
अचो वा, तदेव रूपम्, स एवास्य स्वरः ॥

( उद्ध्योतः ) ग्रह वृ० ॥ ५८ ॥ भाष्ये स एव च स्वर  
इति ॥ थाथघञ् इति सूत्रेणेति भावः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

न सिध्यति । हस्तादाने चौरस्तेये इति घञ् प्रा-  
प्नोति तद्बाधनार्थम् ।

( समाधानभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( ३०३७ प्रयोजननिराकरणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अब्बिधौ निश्चिग्रहणमनर्थकं  
स्तेयस्य घञ्बिधौ प्रतिषेधात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अब्बिधौ निश्चिग्रहणमनर्थकम् । किं  
कारणम् ? । स्तेयस्य घञ्बिधौ प्रतिषेधात् । स्तेयस्य  
घञ्बिधौ प्रतिषेध उच्यते । निष्पूर्वश्चिनोतिः स्तेये  
वर्तते ॥

( उद्ध्योतः ) स्तेये वर्तते इति ॥ हस्तादानविषये  
इति भावः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

अस्तेयार्थं तर्हीदं वक्तव्यं निष्पूर्वाच्चिनोतेरस्तेये  
अब्ब यथा स्यात् ॥

( ४०३८ प्रयोजननिरासवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अस्तेयार्थमिति चेन्नानिष्टत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अस्तेयार्थमिति चेत् । तन्न । किं  
कारणम् ? । अनिष्टत्वात् । नहि निष्पूर्वाच्चिनोतेर-  
स्तेये अविष्यते । किं तर्हि ? । घञेवेष्यते ॥

( उद्ध्योतः ) किं तर्हि घञेवेति । हस्तादानविषये इत्यर्थः ॥  
प्रकृतसूत्रे निश्चिग्रहणं स्तेयार्थं चेत् घञोऽप्राप्तेरचैव सिद्धम् ।  
अस्तेयार्थं चेत् । तन्न निष्पूर्वाच्चनेतिः पूर्वविप्रतिषेधेन घञ् एषेष्टे-  
रिति भाष्यार्थः ॥ घञ्चेति पाठे च शब्द एवार्थो द्रष्टव्यः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

एवं तर्हि सिद्धे सति यन्निष्पूर्वाच्चिनोतेरपं शास्ति  
तज्ज्ञापयत्याचार्यः यत्तद् “अन्तः थायघञ्काज-  
विन्नकाणाम्” इति, तन्निष्पूर्वाच्चिनोतेर्न भवतीति ॥  
किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ? । निश्चयः । एष स्वरः  
सिद्धो भवति ॥

( प्रदीपः ) ग्रहवृ ॥ ५८ ॥ एष स्वर इति । मध्यो-  
दात्तत्वं कृत्स्वरेण भवति ।

( उद्ध्योतः ) कृत्स्वरेणेति । गतिकारकोपपदादिति  
बिहितेन ॥ ५८ ॥

( ४०३९ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ वशिरण्योश्चोपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वशिरण्योश्चोपसंख्यानं कर्तव्यम् ।  
सवशं सैन्धवम् । धनंजयं रणे रणे ॥

( प्रदीपः ) वशिरण्योरिति । घञि प्राप्ते वचनम् ॥  
वशनं वशः । रणन्त्यस्मिन्निति रणः ॥

( ४०४० कविधिवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्य-  
धिहनियुध्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) घञर्थे को विधेयः । किं प्रयोजनम् ? ।

१ विशेषितमित्यर्थः । निपातनानामनुवर्तयितुमशक्यत्वात्तद्विशेषितं हन

स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम् । स्था—प्रतिष्ठन्ते-  
स्मिन्धान्यानीति प्रस्थः । प्रस्थे हिमवतः शृङ्गे ।  
स्था । स्ना—प्रस्नान्ति अस्मिन्निति प्रस्नः । स्ना ।  
पा—प्रपिबन्त्यस्यामिति प्रपा । पा । व्यधि—आ-  
विध्यन्ति तेनाविधः । व्यधि । हनि—विघ्नन्ति त-  
स्मिन्मनांसि विघ्नः । हनि । युधि—आयुध्यन्ते ते-  
नायुधम् ॥ ग्रहवृह ॥ ५८ ॥

( प्रदीपः ) घञर्थे इति । भावः कर्तृवर्जितं च कारकं  
घञर्थः ॥ ५८ ॥

( ५५३ हनेः कप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २२ )

१०५८ स्तम्बे क च ॥ ३ । ३ । ८३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कस्मादयं को विधीयते ।

( समाधानभाष्यम् )

हन्तेरित्याह ।

( प्रश्नभाष्यम् )

तद्धन्तिग्रहणं कर्तव्यम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् ? ।

प्रकृतमनुवर्तते । क प्रकृतम् ? । “हनश्च घञः”  
इति ।

( समाधानबाधकभाष्यम् )

तद्वै अनेकेन निपातनेन व्यवच्छिन्नं न शक्यम-  
नुवर्तयितुम् ।

( उद्ध्योतः ) स्तम्बे क ॥ ८७ ॥ अनेकेनेति । घनान्तर्धन-  
प्रवणप्रवाणोद्धनापधनरूपेणेत्यर्थः ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

नैतानि निपातनानि । हन्तेरेते आदेशाः ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

यद्यादेशाः । घनस्वरो न सिध्यति—“घनः”  
इति ।

( प्रदीपः ) स्तम्बे क च ॥ ८३ ॥ घनस्वर इति ।  
अन्तोदात्तत्वं न सिध्यति अपस्वरेणाद्युदात्तत्वप्रसङ्गादित्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) अपस्वरेणाद्युदात्तेति । निपातने तु निपातना-  
त्किञ्चोन्त इति सिद्धिरिति भावः ॥

( निपातनाङ्गीकारभाष्यम् )

सन्तु तर्हि निपातनानि ।

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तम् ‘तद्वै अनेकेन निपातनेन व्यवच्छिन्नं  
न शक्यमनुवर्तयितुमिति’ ।

इत्यनुवर्तयितुमशक्यमित्यर्थः । ( र. ना. )

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

संबन्धमनुवर्तिष्यते ।

( आदेशपक्षस्वीकारभाष्यम् )

अथ वा पुनः सन्तु आदेशाः ॥

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तम् 'स्वरो न सिध्यती'ति ।

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । अकारान्ता आदेशाः ॥

अकारान्ता इति । तत्रातो लोपे कृते उदात्तनिवृत्ति-  
स्वरेणाप उदात्तत्वं भवतीति भावः ।( उद्घोतः ) तत्रातो लोप इति ॥ प्रत्ययसन्नियोगशिष्ट-  
तया विधानात् आर्धधातुक इति लोप इति भावः ॥ आदेशाश्च  
स्थानिस्वरेणान्तरतम्यादन्तोदात्ता इति तात्पर्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ यदा इषीकया स्तम्बो हन्यते कथं तत्र  
भवितव्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

केचित्तावदाहुः—स्तम्बेति भवितव्यम् ॥

( प्रदीपः ) स्तम्बेति । कप्रत्यये रूपं तस्य सर्वापवादत्वा-  
दिति भावः ।( उद्घोतः ) तस्य सर्वापवादत्वादिति ॥ यद्यपि पुंस्यं  
चरितार्थस्तथापि बहुलग्रहणादिति भावः ॥अपर आहुः—स्तम्बहेतिरिति भवितव्यम् । ऊ-  
तियूतिजूतिसातिहेति कीर्तयश्चेति निपातनादिति ॥अपर आहुः—स्तम्बहननीति भवितव्यमिति ।  
वक्ष्येत्येतत्—“अजब्भ्यां स्त्रीखलनाः स्त्रियाः खल-  
नौ विप्रतिषेधेन” इति ॥ स्तम्बे क च ॥ ८३ ॥स्तम्बहेतिरिति । निपातनस्य सर्वापवादत्वादिति  
भावः ॥ ८३ ॥( उद्घोतः ) भाष्ये—अजब्भ्यामिति । हेतिरिति निपा-  
तनमप्रकरणे चरितार्थमिति भावः ॥ निपातितहेतिशब्दः शस्त्ररूढ  
इत्यन्ये ॥ ८३ ॥

( ५५४ नङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २३ सू. )

१०६५ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो

नङ् ॥ ३ । ३ । ९० ॥

( ४०४१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यजादिभ्यो नस्य ङित्वे

संप्रसारणप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यजादिभ्यो नस्य ङित्वे संप्रसारण-  
प्रतिषेधो वक्तव्यः । प्रश्न इति ॥

१ तथाच धातुस्वरेणान्तोदात्तत्वेऽन्तोलेपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेणापि उदात्तत्व-

( ङकारप्रत्याख्यानभाष्यम् )

एवं तर्हि अङित्करिष्यते ।

( ४०४२ दूषणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अङिति गुणप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यद्यङिद् गुणस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः—  
'विश्न' इति ॥

( दूषणभाष्यम् )

सूत्रं च भिद्यते ।

( समाधानभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ।

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तं यजादिभ्यो नस्य ङित्वे संप्रसारण-  
प्रतिषेध इति ।

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । निपातनादेतत् सिद्धम् ॥ किं निपा-  
तनम् ? 'प्रश्ने चासन्नकाले' इति ॥ यजयाच ॥ ९० ॥

( स्वधिकारोक्तप्रत्ययाः )

( ५५५ क्तिन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २४ )

१०७९ स्त्रियां क्तिन् ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

( ४०४३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्त्रियां क्तिन्नावादिभ्यश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्त्रियां क्तिनित्यत्र “आवादिभ्यश्च”  
इति वक्तव्यम् । आतिः । राद्धिः । दीप्तिः ॥

( ४०४४ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ निष्ठायां वा सेटोऽकार-

वचनात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा निष्ठायां सेटः अकारो भव-  
तीति वक्तव्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि निष्ठायां सेटोऽकारो भवतीत्युच्यते । क्तिन्ना  
ध्वंसेति न सिध्यति । क्तिन्नाः ध्वस्तिरिति प्राप्नोति ।

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

किं पुनरिदं परिगणनं त्रय एवावादयः । आहो-  
स्विदुदाहरणमात्रम् । किं चातः ।

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

यदि परिगणनम्, भेदो भवति । अथोदाहरण-  
मात्रम्, नास्ति भेदः ।

मिति भावः । ( २. ना. )

( समाधावभाष्यम् )

स्त्रिः ध्वस्तिरित्येव भवितव्यम् ॥ स्त्रियां किन् ॥ ९४ ॥

( प्रदीपः ) स्त्रियां किन् ॥ ९४ ॥ स्त्रिरिति । सं-  
सेति नैव भवतीति भावः ॥ ९४ ॥

( उद्घोतः ) स्त्रियां किन् ॥ ९४ ॥ किन्नावादिभ्यः  
इतिवचनं गुरोश्च हल इत्येतत्प्राप्तियोग्यविषयम् । निष्ठायां वा  
सेटोऽकारवचनादित्यनेन समानयोगक्षेमत्वादित्याहुः ॥ एवं च  
निष्ठायामनित्यत्त्वं प्राप्तिसिद्धिषया आवादय इति फलितम् ॥ ९४ ॥

( ५५६ किन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २५ )

१०८० स्थागापापचो भावे ॥ ३३१५ ॥

( ४०४५ भाक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्थादिभ्यः सर्वापवादप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्थादिभ्यः सर्वापवादः किन्प्राप्नोति  
स यथैवाहुं बाधते एवं ण्वुलिनावपि बाधेत—‘कां  
त्वं स्थायिकां कां त्वं स्थायिम् ॥

( प्रदीपः ) स्थागापा ॥ ९५ ॥ स्थादिभ्य इति ।  
बाध्यमात्रापेक्षायां बाध्यसमुदायापेक्षायां वा पुरस्तादपवा-  
दन्यायो नास्तीति भावः ॥ ण्वुलिनाविति । विभाषाख्या-  
नपरिप्रश्नयोरित्यनेन विहितं ॥

( उद्घोतः ) स्थागापा ॥ ९५ ॥ बाध्यमात्रेति ॥  
बाध्यसामान्यचिन्तेयम् ॥ बाध्यसमुदायेति विशेषचिन्तायामपि  
प्रकारविशेषः ॥ ९५ ॥

( ४०४६ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु अङ्गविधाने स्थादि-  
प्रतिषेधात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् । अङ्गविधाने  
एव स्थादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः । प्रतिषिद्धे तस्मिन्  
क्तिनेव भविष्यति ॥

( दूषणभाष्यम् )

सिध्यति । सूत्रं तर्हि भिद्यते ॥

( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ॥

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तं स्थादिभ्यः सर्वापवादप्रसङ्ग इति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । “पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधी-  
न्वाधन्ते नोत्तरान्” इत्येवमयं स्त्रियां किन्नङ्गं बा-  
धिष्यते । ण्वुलिञौ न बाधिष्यते ॥

( प्रदीपः ) पुरस्तादिति । अनन्तरबाधेन लब्धावकाशे  
विधिः परत्वादुत्तरेण बाध्यत इत्यर्थः ॥

( ४०४७ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ श्रुयजिषिस्तुभ्यः करणे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) श्रुयजिषिस्तुभ्यः करणे किन्वक्तव्यः ।  
श्रुयतेऽनयेति श्रुतिः । इज्यतेऽनयेति इष्टिः । इष्य-  
तेऽनयेति इष्टिः । स्तूयतेऽनयेति स्तुतिः ॥

( प्रदीपः ) श्रुयजीति । ल्युङ्वाधनार्थं वचनम् ॥ ९५ ॥

( ४०४८ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निर्वक्तव्यः ।  
ग्लानिः । ग्लानिः । ज्यानिः । हानिः ॥ स्थागापा  
॥ ९५ ॥

( ५५७ क्यप्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २६ )

१०८३ व्रजयजोर्भावे क्यप्

॥ ३ । ३ । ९८ ॥

( ४०४९ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ क्यन्विधिरधिकरणे च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्यन्विधिरधिकरणे चेति वक्तव्यम् ।  
समजन्ति तस्यां समज्या ॥ व्रजयजो ॥ ९८ ॥

( प्रदीपः ) व्रजयजो ॥ ९८ ॥ क्यन्विधिरिति ।  
उत्तरसूत्रे इति भावः ॥ ९८ ॥

( उद्घोतः ) व्रजयजो ॥ ९८ ॥ उच्चेति । भ्रंशे तदि-  
षयोदाहरणदानादिति भावः ॥ ९८ ॥

( ५५८ शक्वप्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २७ )

१०८५ कृजः श च ॥ ३ । ३ । १०० ॥

( ४०५० वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कृजः श चेति वावचनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कृजः श चेति वावचनं कर्तव्यम् ॥  
किं प्रयोजनम् ? । किन्नपि यथा स्यात् । कृतिः ॥  
कृजः श ॥ १०० ॥

( प्रदीपः ) कृजः श च ॥ १०० ॥ चकारेणानन्तरस्य  
क्यप् एव समुच्चयो न तु व्यवहितस्य क्तिन इति मत्वाह—  
वावचनमिति । तेन क्रिया कृत्वा कृतिरिति रूपत्रय-  
सिद्धिः ॥ १०० ॥

( उद्घोतः ) कृजः श च ॥ १०० ॥ वावचनमिति ।  
इदमेव ज्ञापयति वर्णगौरवादपि योगविभागे गरीयानि[ती]ति  
भावः ॥ १०० ॥



( ५५९ शप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २८ )

१०८६ इच्छा ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

किं निपात्यते ? ।

( समाधानभाष्यम् )

इषेः शे यगभावः ।

( उद्घोतः ) इच्छा ॥ १०१ ॥ शे यगभाव इति । भावा-  
र्थकत्वाद्यकः प्राप्तिः ॥ १०१ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अत्यल्पमिदमुच्यते इच्छेति ।

( ४०५१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ इच्छापरिचर्यापरिसर्यामृगयाटा-  
द्यानामुपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इच्छापरिचर्यापरिसर्यामृगयाऽटा-  
द्यानामुपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥

( ४०५२ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ जागर्तेरकारो वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [ जागर्तेरकारो वा वक्तव्यः । ] जा-  
गर्या । जागरा ॥ इच्छा ॥ १०१ ॥

( ५६० अङ्गप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. २९ )

१०८९ विद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

( ४०५३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भिदा विदारणे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भिदा विदारण इति वक्तव्यम् । भि-  
त्तिरन्या ॥

( ४०५४ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

[ ॥ \* ॥ छिदा द्वैधीकरणे ॥ \* ॥ ]

( भाष्यम् ) छिदा द्वैधीकरण इति वक्तव्यम् ।  
भित्तिरन्या ।

( ४०५५ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ आरा शरुयाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आरा शरुयामिति वक्तव्यम् । आ-  
र्तिरन्या ।

( प्रदीपः ) विद्भिदादि ॥ आर्तिरिति । आङोऽर्तेश्च उ-  
पसर्गादिति धाताविति वृद्धिरेकादेशः ।

( ४०५६ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ धारा प्रपाते ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) धारा प्रपात इति वक्तव्यम् । धृति-  
रन्या ।

( ४०५७ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ गुहा गिर्योषधयोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गुहा गिर्योषधोरिति वक्तव्यम् ।  
गूढिरन्या । विद्भिदा ॥ १०४ ॥

( प्रदीपः ) गुहा गिर्योषधोरिति । गिरिशब्दोऽत्र  
गिर्यवयवे वर्तते ॥ १०४ ॥

( उद्घोतः ) विद्भिदादि ॥ १०४ ॥ ननु गुहा न गिरिरत  
आह—गिरिशब्द इति ॥ १०४ ॥

( ५६१ युष्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ० ३० )

१०९२ ण्यासश्रन्थो युच् ॥ ३ । ३ । १०७ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थश्चकारः ॥

( समाधानभाष्यम् )

स्वरार्थः । चितोन्त उदात्तो भवतीत्यन्तोदात्तत्वं  
यथा स्यात् ।

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । उदात्त इति वर्तते “भुवीरा  
उदात्तः” इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्युदात्त इति वर्तते—“व्रजयजोर्भावे क्यप्”  
किमर्थः पकारः ॥

( समाधानभाष्यम् )

तुगर्थः । ह्रस्वस्य पिति कृतीति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

उदात्त इत्येव हि वर्तते ॥

एवमपि कुत एतत्तदन्तस्योदात्तत्वं भविष्यति,  
न पुनरादेरिति ।

( उद्घोतः ) ण्यास० ॥ १०७ ॥ भाष्ये न पुनरादे-  
रिति । एवं च पाक्षिकानिष्टप्रसङ्ग इति भावः ॥ यत्तु प्रथमाति-  
क्रमे कारणाभावादादेरेव स्यादिति । तत्र । तत्रायस्यात्र शास्त्रेऽ-  
नङ्गीकारात् ॥ अत एवाद्युदात्तश्चेति सार्थकम् । अत एव तित्स्व-  
रितिमिति तव्यादावन्तस्वरितसिद्धिरिति बोध्यम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

उदात्त इत्यनुवर्तनसामर्थ्यात् यस्य अप्राप्तः स्वर-  
स्तस्य भवति । कस्य चाप्राप्तः । अन्तैस्य ॥

( उद्घोतः ) अन्तस्थेति । आदेस्त्वाद्युदात्तश्चेलनेन सिद्धे-  
रिति भावः ॥

( प्रयोजनान्तरभाष्यम् )

सामान्यग्रहणाविघातार्थस्तिर्हि ।

क सामान्यग्रहणाविघातार्थेनार्थः ? ।

युवोरनाकाविति ।

( प्रदीपः ) ण्यासश्रन्थो ॥ १०७ ॥ युवोरिति ।  
अन्यथा निरनुबन्धकत्वादस्यैव ग्रहणं स्यात् न तु ल्युडादीनामिति  
भावः ॥

( प्रयोजनान्तरनिरासभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । वक्ष्येत्येतत्—\*सिद्धं  
तु युवोरनुनासिकवचनादिति ॥

( प्रदीपः ) अनुनासिकवचनादिति । तत्र ल्युडादी-  
नामपि अनुनासिकत्वप्रतिज्ञानसामर्थ्याद् ग्रहणं भविष्यती-  
त्यर्थः ॥ १०७ ॥

( उद्घोतः ) प्रतिज्ञानसामर्थ्यादिति । इदं च चित्त्वेऽपि तदनु-  
बन्धकपरिभाषया ल्युटोऽग्रहणशङ्कावारणाय आवश्यकमिति भावः १०७

( ४०५८ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ युच्प्रकरणे घट्टिवन्दिदिभ्य  
उपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) युच्प्रकरणे घट्टिवन्दिदिभ्य उप-  
संख्यानं कर्तव्यम् । घट्टना । वन्दना । वेदना ॥

( ४०५९ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ इषेरनिच्छार्थस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इषेरनिच्छार्थस्येति वक्तव्यम् । अ-  
न्विष्यते अन्वेषणा ॥

( ४०६० वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ परेर्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) परेर्वेति वक्तव्यम् । अन्यां परीष्टिं  
चर । अन्यां पर्येषणां चर ॥ ण्यासश्रन्थो ॥ १०७ ॥

( ५६२ ण्वुल्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. ३१ )

१०९३ रोगाख्यायां ण्वुल्बहुलम्

॥ ३ । ३ । १०८ ॥

( ४०६१ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः । का  
नामासिका अन्येष्वीहमानेषु । का नाम शायिका  
अन्येष्वधीयानेषु ।

( प्रदीपः ) रोगाख्या ॥ १०८ ॥ धात्वर्थनिर्देश  
इति । क्रियानिर्देश इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) रोगाख्यायाम् ॥ १०८ ॥ धातुकृतोर्थः साध-  
नमिति भ्रमं वारयति—क्रियेति । भावाधिकारेऽपि कारक-  
निवृत्त्यर्थमिदम् ॥

( ४०६२ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ इकृशितपौ धातुनिर्देशे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) इकृशितपावित्येतौ प्रत्ययौ धातुनि-  
र्देशे वक्तव्यौ । पचेर्ब्रूहि पचतेर्ब्रूहि ।

( प्रदीपः ) इकृशितपाविति । बहुलवचनाच्च क्वचिन्न  
भवति । शितपः शितकरणादकर्तृवाचिन्यपि तस्मिन् शबादयो  
भवन्ति । यगपि क्वचिद्भवति, यथा बिभाषा लीयतेरिति ।  
अत्र हि लीलीङोर्यका शितपि निर्देशः कृतः । इयनि तु लीड  
एव ग्रहणं स्याद्, न तु लिनातेः ।

( उद्घोतः ) इकृशितपौ ॥ क्वचिन्नेति । भुवो वुगि-  
त्यादौ ॥ शितकरणादिति । शितकरणस्य पिवाद्यादेशविधानेन  
चारिताभ्यादिदं चिन्त्यम् । तस्मान्निर्देशैरेव विकरणः साध्यः ॥  
भाष्ये पचेरिति । कर्मणः शेषत्वविवक्षया षष्ठी ॥ धात्वर्थनिर्देशे-  
प्येतौ बाहुलकात् । अतः पचेक्षतेर्नाशब्दम् । आहौ प्रभूता-  
दिभ्यः ॥ गच्छतौ परदारादिभ्य इति प्रयोगाः सङ्गच्छन्ते ॥

( ४०६३ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ वर्णात्कारः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वर्णात्कारप्रत्ययो वक्तव्यः । अकारः ॥

१ धातुरूपस्य कृतः कृदन्तस्थेत्यर्थः । ( र. ना. )

२ चिन्त्यमिति ॥ शबादय इत्यादिपदेन पिवाद्यादेशानामपि संग्रहात्  
न्यूनता प्रदीपे । 'न हि घटाद्योन्मीलितेन चक्षुःपटं न पश्यति' इति  
न्यायेन शितकरणसामर्थ्याद् 'भवते रः' इत्यादौ शप इव 'पिबतेः' इत्यादौ पि-  
वाद्यादेशानामपि कारणे का नो हानिः । किं च इकृशितपौ नैव कर्तृवाचकौ  
'अकर्तृरिति' इत्युपादानात् ॥ नापि भाववाचकौ 'धात्वर्थनिर्देशे' इत्यनुवृत्तावपि  
'धातुनिर्देशे' इत्युपादानात् । किं तु धातुघटकात्पूर्वविशिष्टधातुस्वरूपपर-  
तायामेव भवति इति 'पचेर्ब्रूहि' इत्यस्य 'पच्धातोर्ब्रूहि' इत्यर्थे 'रूपाणि' इति  
शेषः ॥ एवं च 'भवते रः' इत्यत्र भवतिशब्दो भूधातुपर एवेति भावकर्मकर्तृ-

प्रत्यये बभूवे अनुबभूवे बभूव इत्यादिस्थले सर्वत्रैवाकारः सिद्धो भवतीति बोध्यम् ॥

३ निर्देशैरेव विकरणसाधनवत् पिवाद्यादेशसाधने का तव हानिः न हि  
'निर्देशौर्बिकरणा एव साध्या न पिवाद्यादेशाः' इति प्रमुवाक्यमस्ति ॥  
तस्मात् शितकरणात् तन्निमित्तकार्थजन्यं विकरणरूपमादेशरूपं च साधनीय-  
मिति प्रदीपाशयः सम्यगेव ॥ नागेशभट्टस्तु—

"तन्वीनेभ्योऽण्युत्तमत्वं प्रायः रूपापयितुं नवः ।

तदाशयमनुद्भव खण्डने यतते मृषा" ॥ इति

रीतिमनुसरतीति दाधिसमा ॥

(प्रदीपः) वर्णादिति । वर्णवाचिनो वर्णानुकरणादित्यर्थः । बहुलग्रहणात् क्वचिन्न भवति अस्य ज्ञाविति यथा । तथा क्वचिद्वर्णसमुदायानुकरणादपि—एवकार इति । कारप्रत्ययस्य ककारस्येत्संज्ञा प्रयोजनाभावाच्च भवति ॥ ननु करणं कारः अस्य कारः अकार इत्येवं सिध्यति ॥ नैतदस्ति । एवं हि विज्ञायमानेऽकारकरणमित्यादि न सिध्येत् ॥ कारप्रत्ययस्य कृदतिङ्गिलिधकाराद्भालविहितत्वेऽपि कृत्संज्ञा । ततस्तदन्तस्य प्रातिपदिकत्वादिभक्त्युत्पत्तिः ॥

(उद्द्योतः) कृत्संज्ञेति । बाहुलकादित्यन्ये ॥

(४०६४ वार्तिकम् ॥ ४ ॥)

॥ \* ॥ रादिफः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) रादिफो वक्तव्यः । रेफः ॥

(४०६५ वार्तिकम् ॥ ५ ॥)

॥ \* ॥ मत्वर्थान्छः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) मत्वर्थान्छो वक्तव्यः । एवं मत्वर्थीयः ॥

(प्रदीपः) एवं मत्वर्थीय इति । अकारलोपस्त्वत्राभवेऽपि भाष्यकारवचनाद्बहुलग्रहणाद्वा ॥

(उद्द्योतः) एवं मत्वर्थीय इति ॥ प्रातिपदिकत्वादिभक्त्युत्पत्तिरित्यनुषङ्गः ॥ आर्षधातुत्वाभावादतो लोपाप्राप्तेः, स्वादि-त्वाभावेनाभत्वाद्यस्येति लोपाप्राप्तेश्चाह—भाष्यकारेति ॥ बहुलग्रहणादिति सारम् ॥ तदाश्रये भाष्यकारवचनं हेतुः ॥ बहु-मीहेः स्वार्थिकोऽर्थः छः । षष्ठीतत्पुरुषाद् गद्वादित्वाच्छेन कश्चिद् साधयति ॥ १०८ ॥

(४०६६ वार्तिकम् ॥ ६ ॥)

॥ \* ॥ इणजादिभ्यः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) इणजादिभ्यो वक्तव्यः । आजिः । आतिः । आदिः ॥

(४०६७ वार्तिकम् ॥ ७ ॥)

॥ \* ॥ इञ् वपादिभ्यः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) इञ् वपादिभ्यो वक्तव्यः । वापिः । वासिः । वादिः ॥

(४०६८ वार्तिकम् ॥ ८ ॥)

॥ \* ॥ इक् कृष्यादिभ्यः ॥ \* ॥

(भाष्यम्) इक् कृष्यादिभ्यो वक्तव्यः । कृषिः । किरिः । गिरिः ॥

(४०६९ वार्तिकम् ॥ ९ ॥)

॥ \* ॥ संपदादिभ्यः क्तिप् ॥ \* ॥

(भाष्यम्) संपदादिभ्यः क्तिप् वक्तव्यः । संपत् । विपत् । प्रतिपत् । आपत् । परिषत् । रोगाख्या १०८

(प्रदीपः) संपदादिभ्य इति । क्तिप् बहुलवचनाद्भवति संपत्तिरिति ॥ १०८ ॥

(५६३ इष्टार्थविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ. ३२ )

१०९८ कृत्यल्युटो बहुलम् ॥३।३।१३॥

(४०७० वार्तिकम् ॥ १ ॥)

॥ \* ॥ कृतो बहुलं पादहारकाद्यर्थम् ॥ \* ॥

(भाष्यम्) कृतो बहुलमिति वक्तव्यम् । [किमर्थम्?] पादहारकाद्यर्थम् । पादाभ्यां ह्रियते पादहारकः । गले चोप्यते गलेचोपकः । श्वोऽग्नीनाधायमानेन । श्वः सोमेन यक्ष्यमाणेन ॥ कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ ११३ ॥

(प्रदीपः) कृत्य ॥ ११३ ॥ कृत इति । कृत्यग्रहणमपनीय कृद्ग्रहणं व्यापकत्वात्कर्तव्यं तस्मिन् कृते ल्युट्ग्रहणं न कर्तव्यं तस्यापि कृत्वात् ॥ श्वोऽग्नीनिति । अनद्यतनेपि लङ् भवति ॥ ११३ ॥

(५६४ वप्रत्ययान्तनिपातनसूत्रम् ॥३।३।१ आ० ३३ )

११०४ गोचरसंचरवह्व्रजव्यजापण-  
निगमाश्च ॥ ३ । ३ । ११९ ॥

(४०७१ वार्तिकम् ॥ १ ॥)

॥ \* ॥ गोचरादीनामग्रहणं प्रायवचनाद् यथा कषो निकष इति ॥ \* ॥

(भाष्यम्) गोचरादीनां ग्रहणं शक्यमकर्तुम् ॥ घञ् कस्मान्न भवति ? ।

प्रायवचनाद् । यथा कषः निकष इति । प्रायवचनाद् घञ् न भवति ॥ गोचरसंचर ॥ ११९ ॥

(प्रदीपः) गोचरसंचर ॥ ११९ ॥ प्रायवचनादिति । हलश्चेत्यत्र प्रायग्रहणानुवर्तनाद् घञः क्वचिदभावाद् घ एव भवतीत्यर्थः ॥ ११९ ॥

१ बहुलग्रहणात्क्वचिन्न भवति यथा 'रदाभ्याम्' 'रषाभ्याम्' 'रपरः' इत्यादिषु ॥ तत्र 'उरण् रपरः' इत्यत्र 'र' इत्यत्र प्रत्याहारत्वस्यैव कैयटेन वर्णितत्वात् वर्णग्रहणाभावेन नैव इफप्रत्ययापत्तिरिति वाच्यम् । तत्र प्रत्याहारत्वे मुनिप्रयासमतः ॥ अत एव 'ल्लकारस्य रपरत्वं प्राप्नोति' इत्यनिष्टतामोषकं

'प्राप्नोति' इति पदं संगच्छते । 'अग्रे 'रेफबाधनार्थं भविष्यति' इत्युक्त्या स्पष्टमेव वर्णपरताया एव प्रत्यायनादिति प्रपञ्चितं द्वाचिन्मध्यां सिद्धान्तकौमुदीव्याख्याधाम् ॥

( ५६५ घञप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ. ३४ )

११०६ हलश्च ॥ ३।३।१२१ ॥

( ४०७२ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ घञ्विधाववहाराधारावायानामुप-  
संख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) घञ्विधौ अवहाराधारावायानामु-  
पसंख्यानं कर्तव्यम् । अवह्रियन्ते अस्मिन्नवहारः ।  
आध्रियन्तेऽस्मिन्नाधारः । एत्येतस्मिन्वयन्त्यावा-  
वायः ॥ हलश्च ॥ १२१ ॥

( प्रदीपः ) हलश्च ॥ १२१ ॥ अध्यायसूत्रे आधारवा-  
यशब्दौ वार्तिके दर्शनादभियुक्तैः प्रक्षिप्तौ ॥ १२१ ॥

( उद्घोतः ) हलश्च ॥ १२१ ॥ भाष्येति । एत्येति ।  
आलोच्यप्रदर्शनमिदम् ॥ वेज आत्वे आतो युगिति युक् ॥ १२१ ॥

( ५६६ घञप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ० ३५ )

११०८ उदङ्कोनुदके ॥ ३।३।१२३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते । न 'हलश्च' इत्येव सिद्धम् ।

( समाधानभाष्यम् )

अनुदक इति वक्ष्यामीति । इह मा भूत्—उद-  
कोदञ्चनः ॥

( ४०७३ प्रत्याख्यानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ उदङ्कोनुदकग्रहणानर्थक्यं च

प्रायवचनाद्यथा गोदोहनः

प्रसाधन इति ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उदङ्कोनुदकग्रहणं चानर्थकम् ॥ घञ्  
कस्मान्न भवति ? ।

प्रायवचनाद् घञ् न भवति । यथा गोदोहनः  
प्रसाधन इति ॥ उदङ्कोऽनु ॥ १२३ ॥

( प्रदीपः ) उदङ्को ॥ १२३ ॥ प्रायवचनादिति ।  
घञ्वदुषोपि न भवतीति ल्युडेव भवति ॥ १२३ ॥

( उद्घोतः ) उदङ्को ॥ १२३ ॥ घञ्वत् घोऽपीति ।  
सूत्रेऽनुदक इति प्रतिषेधसामर्थ्यात्प्रत्याख्याने प्रायग्रहणादिति  
भावः ॥ १२३ ॥

( ५६७ घप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ. ३६ )

१११० खनो घ च ॥ ३।३।१२५ ॥

( ४०७४ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ खनो डडरेकेकवकाः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) डो वक्तव्यः—आखः ॥ डरो वक्तव्यः—

आखरः । इको वक्तव्यः—आखनिकः ॥ इकवको  
वक्तव्यः—आखनिकवकः ॥ खनो घ च ॥ १२५ ॥

( खलर्थप्रकरणम् )

( ५६८ खलप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ. ३७ )

११११ ईषहुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु

खल् ॥ ३।३।१२६ ॥

( ४०७५ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अजब्भ्यां स्त्रीखलनाः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अजब्भ्यां स्त्रीखलना भवन्ति विप्र-  
तिषेधेन । अजपोरवकाशः—चयः । लवः ॥ स्त्री-  
प्रत्ययानामवकाशः—कृतिः । हृतिः ॥ इहोभयं  
प्राप्नोति—चितिः स्तुतिः ॥

खलोवकाशः—ईषद्भेदः । सुभेदः ॥ अजपोः स  
एव ॥ इहोभयं प्राप्नोति—ईषच्चयः । सुचयः । ईष-  
लवः । सुलवः ॥

अनस्यावकाशः—इधमप्रवञ्चनः । अजपोः स  
एव ॥ इहोभयं प्राप्नोति—पलाशचयनः । अखिल-  
वनः ॥ स्त्रीखलना भवन्ति विप्रतिषेधेन ॥

( ४०७६ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ स्त्रियाः खलनौ विप्रतिषेधेन ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्त्रियाः खलनौ भवतो विप्रतिषेधेन ।  
स्त्रीप्रत्ययानामवकाशः—कृतिः । हृतिः । खलोव-  
काशः—ईषद्भेदः । सुभेदः । इहोभयं प्राप्नोति—  
ईषद्भेदा । सुभेदा ॥

अनस्यावकाशः—इधमप्रवञ्चनः ॥ स्त्रीप्रत्ययानां  
स एव ॥ इहोभयं प्राप्नोति—सकुधानी । तिल-  
पीडनी ॥ खलनौ भवतो विप्रतिषेधेन ॥ ईषहुः-  
सुषु ॥ १२६ ॥

( ५६९ खलप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।३।१ आ. ३८ )

१११२ कर्तृकर्मणोश्च भूकृजोः

॥ ३।३।१२७ ॥

( ४०७७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ खल् कर्तृकर्मणोश्च व्यर्थयोः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) खल् कर्तृकर्मणोः व्यर्थयोरिति वक्त-  
व्यम् । अनाद्येन भवता ईषदाद्येन शक्यं भवि-  
तुम् ईषदाद्यंभवं भवता । दुराद्यंभवम् । स्वाद्यं-  
भवम् ॥

( प्रदीपः ) कर्तृ ॥ १२७ ॥ व्यर्थयोरिति । तेनाभूत-

तद्भावादन्वयत्र खलु न भवति—आद्येन सुभूयत इति । अत्र गतित्वात् सुशब्दस्य धातोः प्राक् प्रयोगः । स्वाद्यंभवं भवतेत्यादौ खलुः खित्करणसामर्थ्याद्धातोरनन्तरं कर्तृकर्मणी प्रयुज्येते ॥

( उद्घोतः ) कर्तृकर्मणोः ॥ १२७ ॥ खलु न भवतीत्यस्योदाहरणमाह—आद्येन सुभूयत इति ॥ खित्करणसामर्थ्यादिति । नचकूलमुद्रज इत्यादिवद्वयवहितेऽपि कृदग्रहणपरिभाषया मुम् प्रवर्तकत्वेन तच्चरितार्थमिति वाच्यम् । भाष्यप्रयोगेणैव व्यवसायकल्पनादिति तत्त्वम् ॥ बहुलग्रहणेनेत्यन्ये ॥

( ४०७८ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥\*॥ कर्तृकर्मग्रहणं चोपपदसंज्ञार्थम् ॥\*॥

( भाष्यम् ) कर्तृकर्मग्रहणं चोपपदसंज्ञार्थं द्रष्टव्यम् । तद् द्वेष्यं विजानीयाद् ‘अभिधेययोरिति’ । तदाचार्यः सुहृद् भूत्वान्वाचष्टे—‘कर्तृकर्मग्रहणं चोपपदसंज्ञार्थमिति’ ॥ कर्तृकर्म ॥ १२७ ॥

( प्रदीपः ) तदाचार्य इति । एतच्च खित्करणादनव्ययस्य मुमर्थाद्भवति । चकारस्य सन्नियोगार्थत्वाद्बहुस्त्वोप्युपपदान्याश्रीयन्ते ॥ १२७ ॥

( उद्घोतः ) दुःस्त्वोप्युपपदानीति ॥ समासस्तु पर्यायेणेति बोध्यम् ॥ १२७ ॥

( ५७० युचप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । १ आ० ३९ )

१११५ अन्येभ्योपि दृश्यते

॥ ३ । ३ । १३० ॥

( ४०७९ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भाषायां शासियुधिदृशिधृ-  
षिभ्यो युच् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भाषायां शासियुधिदृशिधृषिभ्यो युज्वक्तव्यः । दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्यधर्षणः ॥

( ४०८० वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ मृषेश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) मृषेश्चेति वक्तव्यम् । दुर्मर्षणः ।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरण-  
महाभाष्ये तृतीयस्याध्यायस्य तृतीये  
पादे प्रथममाहिकम् ॥

( प्रदीपः ) अन्येभ्यो ॥ १३० ॥ भाषायामिति । छन्दसीत्यधिकाराद् भाषायां न प्राप्नोतीति वचनम् ॥ १३० ॥

इत्युपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते महाभाष्यप्रदीपे तृतीय-  
स्याध्यायस्य तृतीये पादे प्रथममाहिकम् ॥

( उद्घोतः ) अन्येभ्यो ॥ १३० ॥ छन्दसीत्यधिकारादिति छन्दसि गत्यर्थेभ्य इत्यतः ॥ १३० ॥

इति श्रीशिवभट्टसुतोपाध्यायोपनामकसतीगर्भजनगोशभट्टकृते  
भाष्यप्रदीपोद्घोते तृतीयस्य तृतीये पादे प्रथममाहिकम् ॥

## तृतीयाध्यायस्य तृतीये पादे द्वितीयमाहिकम् ॥

( ५७१ अतिदेशसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १ )

१११६ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा  
॥ ३ । ३ । १३१ ॥

( प्रदीपः ) वर्तमान ॥ १३१ ॥ समीपमेव सामीप्यमिति स्वार्थे ध्यञं वर्णयन्ति ॥ अन्ये—समीपस्य भावः सामीप्यम् वर्तमानस्य सामीप्यं वर्तमानसामीप्यमिति व्याचक्षते ॥ ननु भूतभविष्यतोरनेन प्रत्ययानामतिदेशात्तयोरेव सामीप्यसंबन्धो न वर्तमानस्येति समासाप्रसङ्गः ॥ नैष दोषः । पारम्पर्येण संबन्धसद्भावात् ॥ अथास्मिन् पक्षे ‘गुणेन ने’ति षष्ठीसमासप्रतिषेधः कस्मान्न भवति ॥ अत्र केचिदाहुः—शौक्त्यादीनां रूपादिविशेषाणां समासप्रतिषेध इति ॥ अन्येत्वाहुः—अयमेव निर्देशो ज्ञापयति अनित्यः समासप्रतिषेध इति ॥ अपरे श्रुवते—गुणशब्दस्य संबन्धिशब्दत्वाद् गुणाक्षिप्तस्य गुणिन एव समासप्रतिषेधः । न च वर्तमानः सामीप्यस्य गुणी । भूतभविष्यतोस्तद्गुणत्वात् ।

( उद्घोतः ) वर्तमानसामीप्ये ॥ १३१ ॥ समीपमेवेति । कालप्रकरणात्कालेन सामानाधिकरण्यार्थमिति भावः । अत्रापि पक्षे षष्ठीसमास एव ॥ समासाप्रसङ्ग इति । भूतभविष्यत्रिरूपितं वर्तमानस्य यत्सामीप्यं तत्र वर्तमानवत्प्रत्ययातिदेशोऽनर्थकः ॥ ये हि वर्तमाने प्रत्ययास्ते समीपभूतेऽपि तस्मिन् सिद्धा एवातो वर्तमाननिरूपितं भूतभविष्यतोर्थत्वासामीप्यं तत्रेत्यर्थः स्वीकार्यः । तथाच वर्तमानपदेन समासाप्रसङ्ग इति भावः ॥ सामीप्यसंबन्ध इति । तृतीयातत्पुरुषः । सामीप्यनिरूपितः संबन्ध इत्यर्थः । सामीप्येनाश्रयतारूपः साक्षात्संबन्धस्तयोरेवेत्यर्थः ॥ पारम्पर्येणेति । तत्र समीपद्वारा सामीप्येन संबन्ध इति भावः ॥ प्रतियोगितासंबन्धेनान्वयः । वर्तमानकालप्रतियोगिकसामीप्ये सतीत्यर्थः इत्यन्ये ॥ भूतादौ वर्तमानसामीप्ये सति वर्तमानवत्प्रत्यया इति वाच्योर्थः ॥ एवं च तत्समीपे भूतादौ फलतीति बोध्यम् ॥ तद्वृत्ति-त्वात् । सामीप्यगुणित्वादित्यर्थः । तद्वृत्तित्वादिति पाठे बहुव्रीहिः । अयमेव युक्तः पाठः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

वत्करणं किमर्थम् ? ।

( प्रदीपः ) वत्करणमिति । वर्तमान इत्येतावतैव वर्तमानसहचरितानां प्रत्ययानां सिद्धत्वादिति प्रश्नः ॥

( उद्घोतः ) वर्तमान इति प्रथमान्तेन वर्तमाने ये प्रत्यया इत्यर्थः । कथं लभ्यतेऽत आह—सहचरितानामिति । लक्षणयेति भावः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

‘वर्तमानसामीप्ये वर्तमाने वा’ इतीयत्युच्यमाने-वर्तमाने ये प्रत्यया विहितास्ते वा वर्तमानसामीप्ये धातुमात्रात्स्युः । वत्करणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति ॥

( प्रदीपः ) धातुमात्रादिति । वर्तमानग्रहणेन साहचर्यात्प्रत्ययानां रूपमात्रमेव लक्ष्येत ततश्च संकरोपि स्यात् । यस्माद्धातोर्वर्तमाने यः प्रत्ययो विहितः स विशेषानुपादानाद्वात्वन्तरादपि स्यादित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) रूपमात्रमिति । न तूपाधिविशिष्टमित्यर्थः ॥

( भाष्यम् ) यदि च याभ्यः प्रकृतिभ्यो येन विशेषणेन वर्तमाने प्रत्यया विहितास्ताभ्यः प्रकृतिभ्यस्तेनैव विशेषणेन वर्तमानसामीप्ये भवन्ति । ततोमी वर्तमानवत्कृताः स्युः ॥ अथ हि प्रकृतिमात्राद्वा स्युः प्रत्ययमात्रं वा स्यात् । नामी वर्तमानवत्कृताः स्युः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह ‘वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा’ इति उक्त्वा लडेवोदाह्रियते । यदि पुनर्वा लड्भवतीत्येवोच्येत ।

( प्रदीपः ) लडेवेति । वृत्तिष्विति भावः ।

( समाधानवार्तिकावतरणभाष्यम् )

अत उत्तरं पठति—

( ४०८१ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वचनं शत्राद्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वचनं क्रियते ॥ [ किं प्रयोजनम् ? ] शत्राद्यर्थम् । शत्राद्यर्थो-यमारम्भः । एषोस्मि पचन् । एषोस्मि पचमान इति ॥

( प्रदीपः ) शत्राद्यर्थमिति । लटः शत्रुशानचाविल्यनेन वर्तमानाधिकाराद्वर्तमानकालविहितस्यैव लटः शत्रुशानचौ भवतः न तु कालान्तरविहितस्येति भावः ।

( उद्घोतः ) वत्करणे तु वर्तमानेयं यथा भवन्ति तथा सामीप्येपि भवतीत्यर्थान्न दोष इति भावः ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । लडादेशौ शत्रुशानचौ । सत्र ‘वा लड्भवति’ इत्येव सिद्धम् ॥

( प्रदीपः ) लडादेशाविति । लण्मात्रादेशौ । वर्तमानग्रहणस्य तत्रानपेक्षणादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) लण्मात्रेति । मात्रशब्दः कात्स्न्ये ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

यौ तर्ह्यलडादेशौ एषोस्मि पचमानः एषोस्मि यजमान इति ॥

यौ चापि लडादेशौ, तावपि प्रयोजयतः ॥ वर्तमानविहितस्य लटः शत्रुशानचावुच्येते अविशेषविहितश्चायं योगः ॥

शत्राद्यर्थमिति खल्वप्युच्यते बहवश्च शत्रादयः । एषोस्मि अलंकरिष्णुः । एषोस्मि प्रजनिष्णुः ॥ वर्तमानसा ॥ १३१ ॥

( प्रदीपः ) यौ तर्हीति । पूङ्ग्यजोः शानन् । ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्च ॥ इङ्धार्यादिभ्यः शत्रुप्रत्यय इत्यर्थः ॥ वर्तमानविहितस्येति । लट्स इत्यादिविहितलणिनवृत्त्यर्थमवश्यं तत्र वर्तमानग्रहणमपेक्षणीयमिति भावः ॥ अविशेषविहित इति । वर्तमानलक्षणाद्विशेषादन्यस्मिन्विशेषे विहित इत्यर्थः ॥ १३१ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये यौ तर्हीति । शत्रानावित्यर्थः ॥ नन्वयमपि वर्तमानसमीपभूतभविष्यतोर्विधीयमानः कथमविशेषविहित इत्यत आह—वर्तमानलक्षणादिति ॥ भाष्येऽयं योग इति । एतद्योगविहित इत्यर्थः ॥

प्रयोजनान्तरमप्याह—भाष्ये शत्राद्यर्थमिति । इष्णुजादयोऽपि वर्तमान एव विधीयन्ते इति भावः ॥ सूर्यः शत्रुर्नजिडः चानश्च सर्वकालत्वमुक्तं भूत इति सूत्रे भाष्ये इति चानशुक्तिः कैयटे चिन्त्या ॥ १३१ ॥

( ५७२ अतिदेशसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. २ )

१११७ आशंसायां भूतवच्च

॥ ३ । ३ । १३२ ॥

( सूत्रप्रयोजनभाष्यम् )

आशंसा नाम भविष्यत्काला ॥

( प्रदीपः ) आशंसायाम् ॥ १३२ ॥ आशंसेति । आशंसा अभिमतार्थवाञ्छा । सा वर्तमानापि विषयस्य भविष्यत्वाद्भविष्यत्कालेत्युच्यते । इह चाशंसाऽतिदेशस्य विषयभावेनोपात्ता । आशंसायां विषय आशास्यमानक्रियावचनाद्वा-तोर्भूतवद्वर्तमानवच्च प्रत्यया भवन्तीत्यर्थः संपद्यते ॥

( उद्घोतः ) आशंसायां ॥ १३२ ॥ सूत्रप्रयोजनं दर्शयति—भाष्ये—आशंसानामेति । आशंसायां भविष्यत्कालत्वं

१ वर्तमान इति प्रथमान्तेन वर्तमाने ये प्रत्यया इत्यर्थ इत्युद्घोतदर्शनेन प्रथमात्पाठ एवात्र प्रतीयते । ( र. ना. )

२ सुनो यस्मैसंयोग इति सूत्रेण सुनो विहितस्य शत्रुरित्यर्थः । ( र. ना. )

३ यौ तर्ह्यलडादेशौ, इति भाष्ये वर्तमानकालविहितावित्याशयः, वर्तमानकालविहितलडादेशशत्राद्यर्थोऽयमारम्भ इत्युपक्रमात् । तथा च सर्वकालविहितस्य चानश उक्तिश्चित्येति भावः । ( र. ना. )

कथमत आह—आशंसेति ॥ ननु भविष्यन्त्यामाशंसायामेव प्रत्ययः कस्माद्वैत्यत आह—इह चेति । एवं च कालस्य सर्वत्र लकार-प्रकृत्यर्थे एवान्वयस्य कृत्तत्वाच्चाशंसायां तदन्वय इति भावः ॥

( ४०८२ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ आशंसायां भूतवदतिदेशे  
लङ्घितोः प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आशंसायां भूतवदतिदेशे लङ्घितोः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

( ४०८३ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वापवादस्य निमित्ताभावादन-  
द्यतने हि तयोर्विधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यः । किं कारणम् ? । अपवादस्य निमित्ताभावात् । नात्रापवादस्य निमित्तमस्ति । कथम् ? । अनद्यतने हि तयोर्विधानम् । अनद्यतने हि तौ विधीयेते लङ्घितौ । न चात्रान-द्यतनः कालो विवक्षितः । कस्तर्हि ? । भूतकाल-सामान्यम् ॥

( प्रदीपः ) नवेति । अत्र सूत्रे भूतमात्रमुच्यते न तु तद्वि-शेषोनद्यतनस्य सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेश इति न्याया-लङ्घितौ न भवत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) अपवादस्येति भाष्यस्य अपवादस्य निमित्तमु-पादायातिदेशाभावात् इत्यर्थः । तदाह—नात्रापवादस्येति । निमित्तमुपात्तमस्तीत्यर्थः ॥ ततः किमत आह—न चात्रेति ॥

( ४०८४ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ आशंसासंभावनयोरविशेषात्त-  
द्विधानस्याप्राप्तिः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आशंसासंभावनमित्यविशिष्टावेता-वर्थौ ॥

आशंसासंभावनयोरविशेषात् ॥ तद्विधानस्या-प्राप्तिः ।

आशंसायां ये विधीयन्ते, ते संभावनेऽपि प्राप्नु-वन्ति । ये च संभावने विधीयन्ते, ते आशंसायामपि प्राप्नुवन्ति ॥

किं तर्ह्युच्यते—अप्राप्तिरिति ।

न साधीयः प्राप्तिर्भवति । इष्टा व्यवस्था न प्रक-ल्पेत । न सर्वे सर्वत्रेण्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) आशंसासंभावनयोरिति । यद्यविशेषः कथं द्वन्द्वनिर्देश इति चेत् ॥ शब्दस्वरूपाभिधायित्वाददोषः ।

आशंसासंभावनयोरर्थभेदाभावादविशेष इत्यर्थः ॥ आशंसा अनागतवस्तुवाञ्छा संभावनामपि भाविवस्तुप्रेक्षणमिति भावः ।

( उद्घोतः ) कथं द्वन्द्वेति । विरूपाणामपि समानार्थाना-मित्येकशेषारम्भादिति भावः ॥ शब्देति । तस्य भिन्नत्वाद्भि-न्नार्थत्वमिति भावः ॥ उत्प्रेक्षणमिति । तदपीच्छाविशेष एवेत्य-भिमानः ।

( ४०८५ समाधानवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ न वा संभावनावयवत्वादाशं-  
सायाः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा एष दोषः । किं कारणम् ? । संभावनावयवत्वादाशंसायाः । संभावनावयवा-त्मिका आशंसा ॥ आशंसा नाम प्रधारितोर्थः । अभिनीतश्चानभिनीतश्च ॥ संभावनं नाम प्रधारि-तोर्थः । अभिनीत एव ॥

( प्रदीपः ) नवेति । अवयवशब्दः पृथग्भाववाची सं-भावनात् पृथगेवाशंसेत्यर्थः ॥ प्रधारितोर्थ इति । इदं मे भूयादिति मनसा विषयीकृतोर्थः । आशंसाविषयत्वादाशंसाश-ब्देनात्रोक्तः ॥ अभिनीत इति । कारणयोग्यतावशाच्छक्य-प्राप्तिरित्यर्थः । ततोऽन्योन्यमभिनीत इत्यर्थः ॥ अन्ये त्वप्र-धारित इति पठन्ति अनिर्धारितोवश्यंभावितया अनिश्चित इत्यर्थः । संभावनं चासति विधुरप्रत्ययोपनिपाते भवितव्य-मनेनार्थेनेति ज्ञानमित्यनयोर्भेदः ॥

( उद्घोतः ) नन्वाशंसायाः संभावनावयवत्वं बाधितमत आह—अवयवशब्द इति ॥ प्राप्यत्वेन निश्चयविषयत्वरूपप्रधा-रितत्वस्याशंसाविषयेऽसंभवादाह—मनसेति । संकल्पात्मके-नेत्यर्थः ॥ अनेनेच्छारूपताऽऽशंसाया उक्ता ॥ आशंसायाः प्रधारि-तार्थत्वासंभवादाह—आशंसाविषयत्वादिति ॥ अनिश्चित इति । अत एवेच्छाविषयः ॥ अनेनेच्छारूपता तस्या उक्ता ॥ विधुर-प्रत्ययो विपरीतकारणम् ॥ तेन संभावितस्यार्थस्य शक्यप्राप्तित्वं सूचितम् ॥ संभावनं नामाप्रधारित इति पाठे एककोट्यंशे उत्क-टत्वेऽपि अन्याशेऽनुत्कटज्ञानसत्त्वादनिश्चयरूपज्ञानविषयः तेन ज्ञान-रूपतोऽक्ता ॥ प्रधारितोर्थ इति पाठे अंशेऽवश्यभावित्वेन निश्चित इत्यर्थः ॥ अभिनीत एवेति । शक्यप्राप्तिमित्यर्थः ॥ ज्ञानमिति । ज्ञानेच्छयोश्च भेदः स्पष्ट एवेत्यर्थः ॥

( ४०८६ समाधानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थासंदेहो बालमर्थत्वात्संभा-  
वनस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा अर्थासंदेह एव पुनरस्य ।

१ भूतसामान्ये विधीयमानो यो लुब्धकतदपवादस्य लङ्घितो वत्यर्थः । ( र. ना. )

२ तत्रविधानं यत्वेति व्यवकरणबहुव्रीहिः । तत्पदार्थ आशंसासंभावना वा । अप्राप्तिः, इष्टायाः प्राप्तेरभाव इत्यर्थः । ( र. ना. )

३ अभिसानोक्तिविजं तु तस्योत्कटैककोटिकज्ञानरूपत्वम् इति । ( र. ना. )

४ अवयवशब्दाद् योतेरभिग्राहार्थकाल्पचाद्यच्च । अवयौति पृथग् भवतीत्य-वयवः । ( र. ना. )

५ 'आप्यत्वेन' ॥

किं कारणम् ? । अलमर्थत्वात्संभावनस्य । संभावने आलमर्थं गम्यते । आशंसायां पुनरनालमर्थम् ॥

( उद्घोतः ) तयोर्भेदे एकदेशयुक्तयुक्त्यन्तरमाह—भाष्ये अर्थासंदेहोवेति । तयोरर्थाविशेषेणालमर्थानालमर्थकृतो भेद इति भावः ॥

( अर्थासंदेहभाष्यम् )

आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—‘संभावनेऽपि नालमर्थं गम्यते’ इति । यद्यं “संभावनेऽलमिति चेत्” इत्याह । तस्मात्सुष्ठूच्यते—\*न वा संभावनावयवत्वादाशंसाया\* इति ॥ आशंसायां भूत ॥ १३२ ॥

( प्रदीपः ) यद्यमिति । यदि संभावने नियमेनालमर्थो गम्येत तदा व्यभिचाराभावादलमिति विशेषणं नोपाददीतेत्यर्थः ॥ १३२ ॥

( उद्घोतः ) तदूच्यति—आचार्येति ॥ नालमर्थमिति । नियमेनालमर्थं न गम्यते इत्यर्थः ॥ १३२ ॥

( ५७३ लङ् विधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. ३ )

१११८ क्षिप्रवचने लट् ॥ ३।३।१३३ ॥

( ४०८७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ क्षिप्रवचने लट् आशंसावचने लिङ्प्रतिषेधेन ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्षिप्रवचने लट् आशंसावचने लिङ् भवति विप्रतिषेधेन । क्षिप्रवचने लट् भवतीत्यस्य अवकाशः—उपाध्यायश्चेदागतः क्षिप्रमध्येष्यामहे । आशंसावचने लिङ् भवतीत्यस्यावकाशः । उपाध्यायश्चेदागतः आशंसे युक्तोधीयीय । इहोभयं प्राप्नोति—उपाध्यायश्चेदागतः आशंसे क्षिप्रमधीयीय । लिङ् भवति विप्रतिषेधेन ॥

( ४०८८ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अनिष्पन्ने निष्पन्नशब्दः शिष्योऽनिष्पन्नत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनिष्पन्ने निष्पन्नशब्दः शिष्यः शासितव्यः । किं कारणम् ? । अनिष्पन्नत्वात् । देवश्चेद् वृष्टो निष्पन्नाः शालयः । तत्र भवितव्यं संपत्स्यन्ते शालय इति ॥

१ ‘वृष्टश्चेदेव’ इति पाठः कैयटेन दृष्टो भवेत् ॥

२ ‘प्रत्युच्यते’ इत्यर्थः ॥

३ न कृत इति ॥ एवं च ‘सिध्यतेरपारलौकिके’ ‘अत्यतिष्ठोः’ इत्यत्र श्यनः ‘भवते र’ इत्यत्र श्यः ‘चिनोति’ इत्यत्र ‘श्रोः’ इत्यादीनां बहुनामुपलभ्यमानानां विकरणानामनुपपत्तिः स्यात् ॥ तस्मात् कर्तृवाचित्वाभावेऽपि

( प्रदीपः ) क्षिप्रवच ॥ १३३ ॥ अनिष्पन्न इति । अनाशंसार्थमिदम् । वृष्टश्चेदित्यादि वस्तुस्वरूपकथनम् ।

( उद्घोतः ) क्षिप्रवचने ॥ १३३ ॥ भाष्ये अनिष्पन्न इति ॥ भविष्यति भूतप्रत्ययो वक्तव्य इत्यर्थः ॥ अनाशंसार्थमिति । आशंसायां पूर्वेण भूतवदतिदेशाद्भविष्यत्यपि क्तः सिद्ध इति भावः ॥ आशंसाभावं दर्शयति—भाष्ये—देवश्चेद् वृष्ट इति ॥ तदेवाह—वस्तुस्वरूपेति । न त्वस्याशंसाविषयतेति भावः ॥ वृष्टौ जातायामेवं वादो लोकस्य ।

( ४०८९ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु भविष्यत्प्रतिषेधात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । भविष्यत्प्रतिषेधात् । यल्लोको भविष्यद्वाचिनः शब्दस्य प्रयोगं न मृष्यति ॥ कश्चिदाह—देवश्चेद् वृष्टः संपत्स्यन्ते शालय इति । स उच्यते—‘मैवं वोचः’, ‘संपन्नाः शालयः’ इत्येवं ब्रूहि ॥

( प्रदीपः ) सिद्धं त्विति । अप्शालिबीजसंयोग एव निष्पत्तिः शालीनाम् तत्रैव निष्पत्तेर्वर्तनादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये यल्लोक इति । यल्लोको भविष्यत्प्रयोगं न मृष्यति तस्मान्न मुख्या निष्पत्तिर्निष्पत्तेरर्थः । किं त्वन्यत्प्रेत्यर्थः ॥ तमेवाह—अप्शालीति । अयमेव निष्पत्तिपदार्थोऽभितस्तस्येति भावः ॥ शालीनामिति । पूर्वान्वयि । तत्रैवेति । अप्शालिबीजसंयोगरूपनिष्पत्तावेवात्र प्रायो निष्पूर्वकपदेर्वर्तमानत्वात्तद्वाचकत्वादित्यर्थः ॥ निष्पत्तेरित्युपलक्षणं संपदेरपि । निष्पत्तेरिति पाठेऽप्ययमेवार्थः । इति पानिर्देशाद् इयंस्तु कर्तृव्यकत्वाभावात् कृतः ॥ यद्वा सत्कार्यवादे तत्रैव निष्पत्तेर्वर्तमानत्वम् । आर्थव्याख्यानमेव युक्तम् ॥

( ४०९० वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ हेतुभूतकालसंप्रेक्षितत्वाद्वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हेतुभूतकालसंप्रेक्षितत्वाद्वा पुनः सिद्धमेतत् । हेतुभूतकालं वर्षम् । वर्षकाला च क्रिया ।

( प्रदीपः ) हेतुभूतकालसंप्रेक्षितत्वाद्देति । कारणसंबन्धो कालः कार्यस्य व्यवस्थाप्यते कारणान्तरापेक्षाभावात्प्रतिपादनायेत्यर्थः । हेतुभूतस्य वर्षादर्थः कालः स एव कार्ये संप्रेक्षितः कारणस्यैव कार्यरूपतया विवक्षितत्वात् । कार्यकारणयोरभेदाध्यवसायादित्यर्थः । भाष्यकारस्त्वेतदेव च वस्त्वन्यथा व्याचष्टे—हेतुभूतकालवर्षमिति । हेतुभूतस्य

शित्करणसामर्थ्याच्छब्दादयो विकरणाः पिवादथ आदेशाश्च निरावायाः ॥ प्रदीपे निष्पत्तिशब्दः क्तिन्नन्त एवासंशयं निश्चयः । इति दाधिमथाः ॥

४ अप्शालिबीजसंयोग एव निष्पत्तिरिति कैयटस्य व्याख्याद्वयम्—अथैव निष्पत्तिपदार्थ इति, सत्कार्यवादेऽन्यत्राप्येव निष्पत्तिपदार्थ इति—तत्राद्यव्याख्यानमेव युक्तम् । सत्कार्यवादेऽन्यत्स्थलेऽभिव्यक्त्यरूपनिष्पत्तिपदार्थस्वीकारादिति भावः । ( र. ना. )



हेतुत्वं प्राप्तस्य मेघादेर्यः कालः स एव वर्षस्य । वर्षस्य च यः कालः स एव निष्पत्तिक्रियाया इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये हेतुभूतेति । हेतुभूतस्य कारणत्वं प्राप्तस्य कारणस्य कालं कार्ये आरोप्य प्रयोग इत्यर्थः । तदारोपफलमाह—कारणान्तरेति । तेन चावश्यभावित्वं फलति । कारणस्यैवेति । अपामप्युपादानकारणत्वादिति भावः ॥ अन्यथेति । वृष्टेः—प्रागपि मेघोत्पत्त्यनन्तरमीदृशप्रयोगस्य दर्शनात्तत्र च वृष्टेरपि वास्तवभूतत्वाभावात्तदुपपत्तिमपि दर्शयितुमिति भावः ॥ मेघादेरिति । मेघाद्युत्पत्तेरित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि तर्हि निष्पन्नोर्थः, किं निष्पन्नकार्याणि न क्रियन्ते ? ॥ कानि ? । भोजनादीनि ॥

( उद्घोतः ) तत्रैवपक्षे शङ्कते—भाष्ये—यदि तर्हीति ॥

( समाधानभाष्यम् )

अन्यदिदानीमेतदुच्यते—‘किं निष्पन्नकार्याणि न क्रियन्ते’ इति । यत्तु तन्निष्पन्नोर्थो न निष्पन्न इति । स निष्पन्नोर्थः, अवश्यं स्वस्वपि कोष्ठगतेष्वपि शालिषु अवहननादीनि प्रतीक्ष्याणि ॥ एवमिहापि निष्पन्नोर्थः । अवश्यं तु जननादीनि प्रतीक्ष्याणि ॥

( प्रदीपः ) जननादीनीति । जननमभिव्यक्तिः । एतदुक्तं भवति—विद्यमानोपपत्त्योऽनभिव्यक्तोर्थक्रियां न करोति । न चैतावता तस्यासत्त्वम् । कारणसामग्र्या कार्योत्पादानुमानात् स्थूलेन तु रूपेणाभिव्यक्तोर्थक्रियां संपादयति ॥

( उद्घोतः ) अभिव्यक्तिरिति । स्थूलरूपेणाभिव्यक्तिरित्यर्थः । निष्पत्तिस्त्वत्रापूशालिबीजसंयोग एव । तत्रापि कार्यसत्त्वादिति भावः । तद्दर्शयति—एतदिति ॥ कारणसामग्र्येति ॥ तनु कार्यसमपिगम्यं सामग्रीत्वम् । तथैव कार्यानुमाने इतरेतरा-य इति चेन्न वृद्धपरम्परया सामग्रीत्वग्रहात् । तेनावश्यभावेन कार्योत्पत्तावनुमितायां तत्र कारणकालारोपेण भूतप्रयोगेऽपि स्थूलरूपेणाभिव्यक्तिरूपमुख्यजननोत्तरमेव क्रियाकारित्वमिति भावः ॥

( ४०९१ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ अस्यर्थानां भवन्त्यर्थे सर्वा विभक्तयः कर्तुर्विद्यमानत्वात् ॥\*

( भाष्यम् ) अस्यर्थानां भवन्त्यर्थे सर्वा विभक्तयः शासितव्याः । कूपोस्ति कूपो भविष्यति कूपो भविता कूपोभूत् कूप आसीत् कूपो बभूवेति ।

( प्रश्नभाष्यम् )

कथं पुनर्ज्ञायते भवन्त्या एषोर्थे इति ? ।

कर्तुर्विद्यमानत्वात् । कर्तात्र विद्यते ॥

कथं पुनर्ज्ञायते कर्तात्र विद्यत इति ? ।

कूपोनेन कदाचिद् दृष्टः । न चास्य कंचिदप्यपयं पश्यति । स तु तत्र बुद्ध्या नित्यां सत्तामध्यवस्यति कूपोत्रास्तीति ।

( प्रदीपः ) अस्यर्थानामिति । सत्तावाचिनमित्यर्थः ॥ भवन्तीशब्दो लटः पूर्वाचार्यसंज्ञा ॥ कर्तुर्विद्यमानत्वादिति । ततश्च सत्ताया वर्तमानत्वं न तु भूतभविष्यद्रूपत्वमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) नन्वस्यर्थानामित्युक्तम् । नह्यस्तिः केषां चिदात्तामर्थोऽत आह—सत्तेति अस्तेरर्थो येषामित्यर्थ इति भावः ॥ कर्तुर्विद्यमानत्वेऽपि क्रियायाः कालत्रययोगदर्शनादाह—ततश्च सत्ताया इति । कर्तुंसत्तयोः समनिर्धेतत्वादिति भावः ॥

( ४०९२ समाधानवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु यथास्वकालं समु-  
चारणात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । यथास्वकालमेता विभक्तयः स्वेषु स्वेषु कालेषु प्रयुज्यन्त इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं पुनर्ज्ञायते यथास्वकालमेता विभक्तयः स्वेषु स्वेषु कालेषु प्रयुज्यन्त इति ? ।

( ४०९३ वार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ अवात्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यन्न वा भाष्यन्ते ॥

( ४०९४ वार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ असिद्धविपर्यासश्च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) असिद्धश्च विपर्यासः । न हीह कश्चित् ‘कूपोस्ति’ इति प्रयोक्तव्ये कूपोभूदिति प्रयुङ्क्ते ॥

किं पुनः कारणं ‘न वा भाष्यन्ते’ ‘असिद्धश्च विपर्यासः’ । इह हि किञ्चिदिन्द्रियकर्म किञ्चिद् बुद्धिकर्म । इन्द्रियकर्म समासादनम्, बुद्धिकर्म व्यवसायः । एवं हि कश्चित्पाटलिपुत्रं जिगमिषुराह—‘योयमध्वा गन्तव्यः आपाटलिपुत्रात्’ । एतस्मिन्कूपो भविष्यति । अनद्यतने कूपो भवितेति । समासाद्य कूपोस्तीति समासाद्यातिक्रम्य कूपोभूदिति । समासाद्यातिक्रम्योषित्वा कूप आसीदिति । समासाद्यातिक्रम्योषित्वा विस्मृत्य कूपो बभूवेति । तद्यदेन्द्रियकर्म तदैता विभक्तयः । यदा

१ सिद्धं तु भविष्यत्यतिषेधात्, हेतुभूतकालसंभेदित्वाद्वा, इति द्वयोः पक्षयोरप्यपक्ष इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ अपूशालिबीजसंयोगसत्त्वेऽपि निष्पन्नाः शालय इति प्रयोगरूपकार्यसत्त्वादिति भावः । ( र. ना. )

३ तथा चेति पाठो भाति । ( र. ना. )

४ समानकालसामानाधिकरण्यादिति फलितार्थः । ( र. ना. )

५ कूपमिति शेषः । एवमग्रेऽपि । ( र. ना. )

६ विवक्षितमिति शेषः । एवमग्रे बुद्धिकर्मेत्यत्रापि । ( र. ना. )

हि बुद्धिकर्म तदा वर्तमाना भविष्यति ॥ क्षिप्रव-  
चने ॥ १३३ ॥

( प्रदीपः ) अवात्वादिति । अविकल्पितत्वादित्यर्थः ॥  
एतदेवाह—यत्र वा भाष्यन्त इति । एतदुक्तं भवति—यदि  
वचनेन वर्तमाने लडादयो विधीयेरन् तदा लोके विकल्पेन प्रयु-  
ज्येरन् । कूपोऽभूदिति प्रयोक्तव्ये कूपो भविष्यतीत्यपि प्रयुज्येत ॥

तदेव दर्शयति—असिद्धविपर्यासश्चेति ॥ इह किं  
चिदिति । इन्द्रियव्यापारकालस्य कूपसत्त्वं प्रति भेदकत्वे-  
नाश्रयणात् तस्यापि तत्कालत्वमित्यर्थः ॥ तदुक्तं हरिणा—

सत्तामिन्द्रियसंबन्धात्सैव सत्ता विशिष्यते ।  
भेदेन व्यवहारो हि वस्त्वन्तरनिबन्धनः ॥  
अस्तित्वं वस्तुमात्रस्य बुद्ध्या तु परिगृह्यते ।  
यः समासादनाद्भेदः स तत्र न विवक्षितः ।  
इति ॥ १३३ ॥

( उद्ध्योतः ) अविकल्पितत्वादिति । प्रयोगे इत्यर्थः ॥  
यत्र वेति । प्रयोगे इति शेषः ॥ वचनेन । अस्त्यर्थानामिति  
वार्तिकेन । असिद्धविपर्यास इति । भाष्येऽपि लोके इति  
शेषः । चो हेतौ । यतः शिष्टलोकानामसिद्धो विपर्यासो विपरीतः  
प्रयोगोऽतो न विकल्पेन प्रयुज्यन्तेन्यैः अतोत्र यथाकालमेव प्रख्या-  
इत्यर्थः ॥ किं पुनः कारणमिति ॥ किं पुनः कारणं वा न भा-  
ष्यन्ते । किं च कारणं शिष्टानां विपर्यासासिद्धिरिति भावः । वास्त-  
वकालभेदस्याभावाच्चनेनैव साधने प्राप्तेऽपि विपर्यासादिकमिति  
भावः ॥ इन्द्रियव्यापारः । तत्प्राप्तिः । इन्द्रियपदेनात्र कर्मेन्द्रियम् ॥

सतां वस्तुनाम् । इन्द्रियसंबन्धात्तत्कृतप्राप्तिसंबन्धात् । एकैव  
सत्ता कालभेदमापद्यते ॥ वस्त्वन्तरम् इन्द्रियव्यापारः । तदे-  
वाह—यः समासादनादिति । तत्र बुद्धिकर्मव्यवसायविषये ॥  
वर्तमानेति । वर्तमानार्थिकेत्यर्थः ॥ १३३ ॥

( ५७४ लङ्लुटोर्निषेधविधिसूत्रम् ॥ ३।३।२ आ. ४ )

१११९ नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्ध-  
सामीप्ययोः ॥ ३ । ३ । १३५ ॥

( भाष्येऽपि भाष्यम् )

किमर्थसिमौ द्वौ प्रतिषेधावुच्येते । न 'अद्यत-  
नवत्' इत्येवोच्येते ।

( ४०९५ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ नानद्यतनवत्प्रतिषेधे लङ्लुटोः  
प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नानद्यतनवत् प्रतिषेधे लङ्लुटोः  
प्रतिषेधो द्रष्टव्यः ।

( ४०९६ हेतुवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अद्यतनवद्वचने हि विधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अद्यतनवद्वचने हि सति विधान-  
मिदं विज्ञायेत ॥

तत्र को दोषः ? ।

( ४०९७ दोषदर्शकवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र लङ्घिप्रसङ्गः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र लङ्घिः प्रसज्येत ॥

( ४०९८ दोषान्तरवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ लङ्लुटोश्चायथाकालम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लङ्लुटोश्चायथाकालं प्रयोगः प्रस-  
ज्येत । लुङोऽपि विषये लट् स्यात् । लट्श्च विषये  
लुङ् यथा स्यात् । अद्य पुनरयं द्वौ प्रतिषेधावुक्त्वा  
तूष्णीमास्ते । यथाप्राप्तमेवाद्यतने भविष्यति ॥ ना-  
नद्यतनम् ॥ १३५ ॥

( प्रदीपः ) नानद्यतनम् ॥ १३५ ॥ तत्र लङ्घिप्र-  
सङ्ग इति । अपूर्वविधानेऽद्यतने लटो दृष्टत्वाद्भूतभविष्यदन-  
द्यतने प्रसङ्गः ॥ लङ्लुटोश्चेति । ननु वत्करणत्वाद्देश्य-  
ार्थसंक्रो न भविष्यति । नैतदस्ति । अप्राप्तप्रापणार्थत्वादति-  
देशस्य भूतभविष्यच्छब्दोपादानेन लङ्लुटोर्विधानेऽप्यद्यतने  
दृष्टत्वमात्रेणायथाकालमपि प्रसङ्ग उच्यते । वत्करणं तु तदा  
विस्पष्टार्थमेव स्यात् । प्रतिषेधोपादाने तु वत्करणमनद्यतनवि-  
शेषविहितानामपि प्रतिषेधार्थम् । अन्यथा वत्करणमनर्थकं  
स्याद् 'नानद्यतन' इत्येव ब्रूयात् । तेन 'परोक्षे लिट्' 'हश-  
श्वतोर्लङ् च' 'लट् स्मे' 'पुरि लुङ् चास्मे' इत्येतत्सूत्र-  
विहिता अपि प्रत्ययाः प्रतिषिध्यन्ते ॥ १३५ ॥

( उद्ध्योतः ) नानद्यतनम् ॥ १३५ ॥ अपूर्वेति । अद्यतनशब्दो-  
पादानेन कस्यापि विध्यभावोऽत्र दृष्टत्वमात्रेणातिदेशो वाच्यः ।  
तथा च भूतादिरूपेऽद्यतने लङ्घि स्यादिति भावः ॥ भाष्ये लङ्लुटो-  
रिति । भविष्यत्यद्यतने लुङ्, भूताद्यतने लट् स्यादिति भावः ॥  
अप्राप्तेति । लङ्लुटौ भूतभविष्यतोरद्यतने दृष्टौ तत्राद्यतनवदित्युच्य-  
माने तस्मिन्नेवाद्यतने तयोरतिदेशोऽनर्थक इति कश्चिदंशस्याच्यः  
तत्राद्यतनांशस्यानेनातिदेशो भूतानद्यतने लुङ्, भविष्यति तत्र लङ्घि  
प्रयोगसिद्धावपि अद्यतनवदिति विरुध्यते । तस्माद्भूताद्यंशपरित्यागे-  
नातिदेशो आश्रीयमाणेऽयथाकालप्रसङ्ग इति भावः । भाष्ये यथा  
प्राप्तमेवेति । स्वरेष विधायकैः स्वेषु कालेषु भवतीति न संकर-  
प्रसङ्ग इत्यर्थः ॥ तेन परोक्षे इति । परं त्वन्मानं चिन्त्यम् ।  
भाष्ये लङ्लुटोरिवोपक्रमे उक्तेरिति दिक् ॥ १३५ ॥

( ५७५ लुटो निषेधसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. ५ )

११२० भविष्यति मर्यादावचनेऽवर-  
स्मिन् ॥ ३ । ३ । १३६ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते । न 'नानद्यतनवद्' इत्येव  
सिद्धम् ? ।

( ४०९९ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्नि-  
त्यक्रियाप्रबन्धार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अक्रियाप्रबन्धार्थोऽयमारम्भः ॥

( प्रदीपः ) भविष्यति म ॥ १३६ ॥ अक्रियाप्रबन्धार्थ-  
मिति । एतच्च उपलक्षणं तेन असामीप्यार्थं चेति द्रष्टव्यम् ।  
वचनसामर्थ्याच्च क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोरिति निवृत्तम् ।

( आक्षेपभाष्यम् )

किमुच्यते अक्रियाप्रबन्धार्थ इति, न पुनः क्रिया-  
प्रबन्धार्थोऽपि स्यात् ? ।

( ५००० वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ क्रियाप्रबन्धार्थमिति चेद्  
वचनानर्थक्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) क्रियाप्रबन्धार्थमिति चेद् वचनम-  
नर्थकं भवति । सिद्धं क्रियाप्रबन्धे पूर्वणैव ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—'अनहोरात्राणाम्' इति  
वक्ष्यामि इति । इह मा भूद्—योयं त्रिशद्रात्र आ-  
गामी तस्य योवरः पञ्चदशरात्र इति ।

( प्रदीपः ) अनहोरात्राणामिति । उत्तरसूत्रस्य प्रयो-  
जनमेतत् स्यादिति भावः ।

( उद्ध्योतः ) भविष्यति ॥ १३६ ॥ उत्तरसूत्रे सप्रयो-  
जनमेतदिति पाठः ॥ त्रिशद्रात्र इति । संख्यापूर्वं रात्रं क्रीब-  
मिति त्वस्मादेव भाष्यप्रयोगाल्लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्ये-  
त्युक्तेश्चानित्यमिति भावः ॥

( ५००१ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अहोरात्रप्रतिषेधार्थमिति चेन्ना-  
निष्टत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अहोरात्रप्रतिषेधार्थमिति चेत् ॥  
तन्न । किं कारणम् ? अनिष्टत्वात् । अत्रापि 'नान-  
द्यतनवत्' इत्येवेत्येते ॥

( प्रदीपः ) अनिष्टत्वादिति । क्रियाप्रबन्धसामीप्ययो-  
रहोरात्रविभागेऽप्यनद्यतने प्रतिषेध इत्यर्थः ॥

१ नेषामन्येन कालेन विभागे इत्यर्थः । ( र. ना. )

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनं भविष्यतीति वक्ष्यामीति । इह  
मा भूत्—योयमध्वा गत आपाटलिपुत्रात्तस्य यद-  
वरं साकेतादिति ।

( समाधानभाष्यम् )

नानिष्टत्वात् । अत्रापि 'नानद्यतनवदित्येवेत्येते ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनं मर्यादावचन इति वक्ष्या-  
मीति । इह मा भूत्—योयमध्वा अपरिमाणो ग-  
न्तव्यः तस्य यदवरं साकेतादिति ।

नानिष्टत्वात् । अत्रापि नानद्यतनवदित्येवेत्येते ।

( प्रदीपः ) मर्यादावचन इति । नियमार्थमेतत् स्या-  
न्मर्यादावचन एवेति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) योयमध्वाऽपरिमाण इति । अपरिमाण इति  
छेदः ॥ नियमार्थमिति । क्रियाप्रबन्धविषय इति भावः ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् । अवरस्मिन्निति वक्ष्या-  
मीति । इह मा भूत्—योयमध्वा आपाटलिपुत्रा-  
द्गन्तव्यस्तस्य यत्परं साकेतादिति ।

नानिष्टत्वात् । अत्रापि नानद्यतनवदित्येवेत्येते ।  
तस्मात्सुष्ठूच्यते भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन्नि-  
त्यक्रियाप्रबन्धार्थम् । क्रियाप्रबन्धार्थमिति चेद्वच-  
नानर्थक्यमिति ॥ भविष्यति म ॥ १३६ ॥

( प्रदीपः ) अत्रापि । विधिनियमसंभवे विधेर्ज्याय-  
त्वात् ॥ १३६ ॥

( उद्ध्योतः ) विधीति । अक्रियाप्रबन्धादाविति भावः १३६

( ५७६ लुटो निषेधविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. ६ )

११२१ कालविभागे चानहोरात्राणाम्  
॥ ३ । ३ । १३७ ॥

( ५००२ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अनहोरात्राणामिति तद्विभागे  
प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनहोरात्राणामिति चेत्तद्विभागे  
प्रतिषेधो वक्तव्यः । योयं त्रिशद्रात्र आगामी तस्य  
योवरोर्धमास इति ।

( ५००३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ तैश्च विभागे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तैश्च विभागे प्रतिषेधो वक्तव्यः ।  
योयं मास आगामी तस्य योवरः पञ्चदशरात्रः ॥

२ अन्यकालस्येति शेषः । ( र. ना. )

तद् द्वेष्यं विजानीयात्—अहोरात्राणामेवाहो-  
रात्रैर्विभागे प्रतिषेधो भवतीति । तदाचार्यः सुहृ-  
द्भूत्वान्वाचष्टे अनहोरात्राणामिति तेषां विभागे  
तैश्च विभाग इति ॥ कालवि ॥ १३७ ॥

( प्रदीपः ) कालविभा ॥ १३७ ॥ तद्विभाग इति ।  
अनहोरात्राणामिति संबन्धसामान्ये षष्ठी, न कर्मणि नापि कर्त-  
रि ॥ तेन यदाहोरात्राणामन्येन कालेन विभागोन्यस्य वा अहो-  
रात्रैरहोरात्राणां वाऽहोरात्रैः सर्वथा प्रतिषेध इत्यर्थः ॥ १३७ ॥

( उद्घोतः ) कालवि ॥ १३७ ॥ द्वन्द्वश्च प्राणीत्यादिवत्  
अहोरात्राणामहोरात्रविभागे एव स्यादतो वार्तिकम्—अनहोरा-  
त्राणामिति । तद्याचष्टे—संबन्धसामान्ये इति ॥ १३७ ॥

( ५७७ लुटो विकल्पविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. ७ )

११२२ परस्मिन्विभाषा ॥ ३।३।१३८ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कस्मिन्परस्मिन् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

कालविभागे ।

कुत एतत् ? ।

योगविभागकरणसामर्थ्यात् ॥ परस्मि ॥ १३८ ॥

( प्रदीपः ) परस्मिन् ॥ १३८ ॥ योगविभागकरण-  
सामर्थ्यादिति । इह भविष्यति मर्यादावचनेपरस्मि-  
न्नहोरात्राणामित्येकयोगे कर्तव्ये पृथग्योगकरणं परस्मि-  
न्विभाषेत्यत्र कालविभागग्रहणसंबन्धार्थमेवेत्यर्थः ॥ १३८ ॥

( उद्घोतः ) परस्मिन् विभाषा ॥ १३८ ॥ एकयोग  
इति । सामर्थ्यात्कालविभागविषय एव निषेधः ॥ न हि देश-  
विभागस्याहोरात्रैः संबन्धोक्ति इति भावः ॥ पृथग्योगेति । काल-  
विभागग्रहणसामर्थ्याच्चैत्यपि बोध्यम् ॥ १३८ ॥

( ५७८ लङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. ८ )

११२४ लिङ्गिमित्ते लङ् क्रियातिपत्तौ

॥ ३ । ३ । १३९ ॥

( ५००४ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ साधनातिपत्तावपि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) साधनातिपत्तावित्यपि वक्तव्यम् ।  
इहापि यथा स्यात् । अभोक्ष्यत भवान्मांसेन यदि  
मत्समीप आसिष्यतेति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ॥

१ तत्र यथा प्राण्यङ्गानां तैः सहैव तूर्याङ्गानां तैः सहैवैकवद्भावो नान्यैः  
सह तत्रैतरेतरयोग एव द्वन्द्व एवमिहापि अहोरात्राणां तैरेव विभागे स्यादिति  
भावः । ( र. ना. )

( सिद्धान्तिभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । नान्तरेण साधनं क्रियायाः प्रवृ-  
त्तिरस्तीति । साधनातिपत्तिश्चेत् क्रियातिपत्तिरपि  
भवति । तत्र क्रियातिपत्तावित्येव सिद्धम् ॥ लि-  
ङ्गिमित्ते ॥ १३९ ॥

( प्रदीपः ) लिङ्गिमि ॥ १३९ ॥ साधनातिपत्ता-  
विति । साधनं मांसादि तस्यातिपत्तौ क्रियानिष्पत्तावपि लङ्  
भवतीति भावः ॥ अभोक्ष्यतेति । मांसस्यात्रानिष्पत्तिः ।  
भोजनक्रियायास्तु निष्पत्तिरेव ॥ साधनातिपत्तिश्चेदिति ।  
करणमेदाङ्गिचैव भोजनक्रिया । तेन मांसातिपत्तौ मांसभोज-  
नक्रियातिपत्तिरेवेत्यर्थः ॥ १३९ ॥

( उद्घोतः ) लिङ्गिमित्ते ॥ १३९ ॥ कुतश्चिन्निमित्तात्कि-  
याया अनिष्पत्तिः क्रियातिपत्तिः । साधनातिपत्तिः साधनविशेष-  
विशिष्टक्रियातिपत्तिरित्यर्थः ॥ १३९ ॥

( ५७९ लङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ० ९ )

११२५ भूते च ॥ ३ । ३ । १४० ॥

( ५००५ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ भूते लङ् उताप्यादिषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भूते लङ् उताप्यादिषु द्रष्टव्यः ।  
उताप्यैष्यत । अप्यप्यैष्यत ॥ भूते ॥ १४० ॥

( प्रदीपः ) भूते च ॥ १४० ॥ भूत इति । वक्ष्यमा-  
णसूत्रार्थपर्यालोचनलभ्यं चतत् । उताप्योरित्यारभ्य यल्लिङ्गि-  
मित्तं तत्र भूते क्रियातिपत्तौ अनेन लङ्प्रत्ययः प्राक् तैतो  
विकल्प इत्यर्थः ॥ १४० ॥

( ५८० लङ्विकल्पाधिकारसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १० )

११२६ वोताप्योः ॥ ३ । ३ । १४१ ॥

( ५००६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ विभाषा गर्हाप्रभृतौ प्रागुतापि-  
भ्याम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विभाषा गर्हाप्रभृतौ प्रागुतापिभ्या-  
मिति वक्तव्यम् । “वोताप्योरिति” इति ह्युच्यमाने  
संदेहः स्यात्—प्राग्वोतापिभ्यां, सह वेति । तदा-  
चार्यः सुहृद्भूत्वान्वाचष्टे—विभाषा गर्हाप्रभृतौ  
प्रागुतापिभ्यामिति ॥ वोताप्योः ॥ १४१ ॥

( प्रदीपः ) वोताप्योः ॥ १४१ ॥ विभाषेति । ग-  
र्हायां लङ्पि जात्वोरित्यनेन लङ्प्रधानाल्लिङ्गिमित्ताभाषा-

१ लङ् भवतीति नञ्परहितः पाठः साधुः । ( र. ना. )

२ उताप्योः समर्थयोरित्यतः प्राग् विभाषाकथमीत्यादावित्यर्थः । ( र. ना. )

द्विभाषा कथमि लिङ् चेत्यतः प्रभृति प्रागुताप्योः समर्थयोरित्यतः सूत्राद् गल्लिङ्मितं तत्र लङ् विकल्पः । मर्यादायां ह्यत्राङ्नाभिविधावित्यर्थः । गर्हाप्रभृताविति । गर्हादिविशिष्टे प्रकृत्यर्थ इत्यर्थः ॥ १४१ ॥

( उद्द्योतः ) वोताप्ये ॥ १४१ ॥ भाष्ये विभाषागर्हाप्रभृताविति । गर्हाविशिष्टप्रकृत्यर्थविषयविभाषापदवदितविभाषाकथमिलङ् चेति सूत्रप्रभृतीत्यर्थः ॥ अनन्तरसूत्रत्यागे बीजमाह—गर्हायां लङपीति ॥ १४१ ॥

( ५८१ लङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. ११ )

११२७ गर्हायां लङपिजात्वोः

॥ ३ । ३ । १४२ ॥

( ४००७ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ गर्हायां लङ्विधानानर्थक्यं क्रिया-  
ऽसमाप्तेर्विवक्षितत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) गर्हायां लङ्विधानमनर्थकम् । किं कारणम् ? । क्रियाया असमाप्तेर्विवक्षितत्वात् । क्रियाया अत्रासमाप्तिर्विवक्षिता । एष एव च नाम न्याय्यो वर्तमानः कालः यत्र क्रिया अपरिसमाप्ता भवति । तत्र “वर्तमाने लङ्” इत्येव सिद्धम् ।

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि “वर्तमाने लङ्” इत्येवमत्र लङ् भवति ॥

शतृशानचावपि तर्हि प्राप्नुतः ।

( दृष्टापत्तिभाष्यम् )

इष्येते च शतृशानचौ—अपि मां याजयन्तं पश्य । अपि मां याजयमानं पश्य ॥ गर्हायां ल ॥ १४२ ॥

( प्रदीपः ) गर्हायाम् ॥ १४२ ॥ इष्येते इति । तौ च सूत्रारम्भे सत्यवर्तमानकालविहितत्वाद्भट्टो न प्राप्नुत इति दोषवानेव सूत्रारम्भ इत्यर्थः ॥ १४२ ॥

( उद्द्योतः ) गर्हायां लङपि ॥ १४२ ॥ मां याजयन्तमिति । ताच्छीत्यप्रतिपादनेन गर्हा यदनेन क्रियते, तत्सर्वं याजनार्थमिति सर्वदा याजयन्नेवासाविति क्रियायाः समाप्तिरविवक्षितेति भावः ॥ १४२ ॥

( ५८२ लिङ् लट् लङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १२ )

११३० अनवकृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेपि

॥ ३ । ३ । १४५ ॥

( ५००८ अकिंवृत्तग्रहणानर्थक्यवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ किंवृत्तस्यानधिकारादुत्तरत्रा-

किंवृत्तग्रहणानर्थक्यम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किंवृत्तस्यानधिकारादुत्तरत्राकिंवृत्त-

ग्रहणमनर्थकम् । निवृत्तं ‘किंवृत्ते’ इति, तस्मिन्निवृत्ते अविशेषेण किंवृत्ते चाकिंवृत्ते च भविष्यति ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम्—उपपदसंज्ञां वक्ष्यामीति ।

( प्रश्नभाष्यम् )

उपपदसंज्ञावचने किं प्रयोजनम् ? ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

“उपपदमतिङ्” इति समासो यथा स्यात् ।

( प्रदीपः ) अनव ॥ १४५ ॥ इदं तर्हीति । अकिंवृत्तशब्देन किंवृत्तादन्यत्पदं पयुदासाश्रयणेन गृह्यते तस्योपपदसंज्ञार्थमकिंवृत्तग्रहणं तेन किंवृत्ताकिंवृत्तयोरुपपदसंज्ञा सिध्यतीति भावः ॥

( उद्द्योतः ) अनवकृ ॥ १४५ ॥ ननु किंवृत्तेनेल्लभात्कममुपपदत्वमत आह—अकिं वृत्तेति ॥

( प्रयोजनप्रत्याख्यानभाष्यम् )

अतिङितिप्रतिषेधः प्राप्नोति ।

( प्रदीपः ) अतिङितिप्रतिषेध इति । न विद्यते तिङ्-स्मिन् समासे सोऽतिङिति बहुव्रीहिसमासाश्रयणादिति भावः ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

यदा तर्हि लटः सत्संज्ञौ तदोपपदसंज्ञा भविष्यति ।

( प्रदीपः ) उपपदसंज्ञेति । उपपदसंज्ञाकार्यं समास इत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) उपपदसंज्ञायां अन्यदापि भावात्तदा भविष्यतीत्यनुपपन्नमत आह—उपपदसंज्ञाकार्यमिति ॥ १४५ ॥

( प्रयोजननिराकरणभाष्यम् )

भविष्यदधिकारविहितस्य लटः सत्संज्ञावुच्येते अविशेषविहितश्चायम् ॥ अनवकृत्स्य ॥ १४५ ॥

( प्रदीपः ) भविष्यदधिकारविहितस्येति । लटः सत्संज्ञा भविष्यतीत्यधिकाराद्भविष्यतीत्येवं विहितस्य लट् शेषे चेत्यस्य लट् आनन्तर्याद्वा शतृशानचौ ॥ अविशेषेति । कालमात्रे विधानादयं लट् यद्यपि भविष्यति भवति तथापि भविष्यदधिकारविहितो न भवतीति शतृशानचावस्य न भवतः ॥ १४५ ॥

( ५८३ लिङ्विधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १३ )

११३२ जातुयदोर्लिङ् ॥ ३।३।१४७ ॥

( ५००९ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ जातुयदोर्लिङ्विधाने यदायद्योरुपसंख्यानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) जातुयदोर्लिङ्विधाने यदायद्योरुपसंख्यानं कर्तव्यम् । यदा भवद्विधः क्षत्रियं याज-

येत् । यदि भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत् ॥ जातु-  
यदोर्लि ॥ १४७ ॥

( ५८४ लृट्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १४ )

११३६ शेषे लृडयदौ ॥ ३ । ३ । १५१ ॥

( ५०१० आदिग्रहणानर्थक्यवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ चित्रीकरणे यदिप्रतिषेधानर्थक्य-  
मर्थान्यत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) चित्रीकरणे यदि प्रतिषेधोनर्थकः ।  
किं कारणम् ? । अर्थान्यत्वात्, नहि यदावुपपदे  
चित्रीकरणं गम्यते । किं तर्हि ? । संभावनम् ॥  
शेषे लृड ॥ १५१ ॥

( प्रदीपः ) शेषे लृड ॥ १५१ ॥ नहि यदाविति । आ-  
श्रयं यदि स भुञ्जीतेत्यत्र संभावनं तात्पर्येण प्रतीयत इति तन्नि-  
मित्त एव लिङ् भविष्यति । संभावनेऽलमिति । चेदिल-  
नेनेत्यर्थः । संभावने हि यदिशब्दः प्रयुज्यते ॥ १५१ ॥

( उद्ध्योतः ) शेषे लृड ॥ १५१ ॥ संभावनं तात्पर्येणेति ।  
यदि शब्दस्य संभावनार्थत्वेन संभावनं प्रतीयते इत्यर्थः ॥ तदे-  
वाह—संभावने हि यदि शब्द इति । भाष्ये न हि यदाविति ।  
चित्रीकरणं त्वाश्रयपदगम्यम् ॥ ननु अन्यो नाम पर्वतमारोक्ष्यतीला-  
दावुदाहरण इव तत्समभिव्याहारं विनापि गम्यमिति भावः ॥ १५१ ॥

( ५८५ लिङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १५ )

११४१ हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥ ३ । ३ । १५६ ॥

( ५०११ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हेतुहेतुमतोर्लिङ् वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हेतुहेतुमतोर्लिङ् इति वक्तव्यम् । दक्षि-  
णेन चेद्यायात्, न शकटं पर्याभवेत् । दक्षिणेन चे-  
द्यास्यति, न शकटं पर्याभविष्यति ।

( ५०१२ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ भविष्यदधिकारे च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) भविष्यदधिकारे इति वक्तव्यम् । इह  
मा भूत्—वर्षतीति धावति । हन्तीति पलायत इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथेदानीं शतृशानचावत्र कस्मान्न भवतः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

देवत्रातो गलो ग्राह इति योगे च सद्विधिः ।

मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः ॥

हेतुहेतुमतो ॥ १५६ ॥

( प्रदीपः ) हेतु ॥ १५६ ॥ देवत्रात इति । व्यवस्थि-  
तविभाषाश्रयणादिति भावः । तेन देवत्रात इति संज्ञायां  
भवति, न तु देवत्राण इति ॥ गलशब्दः प्राण्यङ्गे भवति, न  
तु गर इति । विषे तु गर इति न तु गल इति ॥ जलचरे  
ग्राह एव, ज्योतिषि ग्राह एव । इतिशब्दप्रयोगे च तत्संज्ञो  
न प्रवर्तते ॥ गवाक्ष इति । वातायने नित्यमेवावङ् भवति ॥  
संशितव्रत इति । व्रतविषये इत्यतेर्नित्यमित्वं भवति ॥ मिथ  
इति । परस्परेण देवत्राणादिभिरेकस्मिन्विषये न विकल्प्य-  
न्तइत्यर्थः । एषु च नुदविदोन्दत्रेति वा नत्वमचि विभा-  
षेति लवं विभाषाग्रह इति प्रत्ययः लक्षणहेत्वोः क्रि-  
याया इति शतृशानचौ नन्वोर्विभाषेत्यतो विभाषानुवर्त-  
नाद्विकल्पितौ । अवङ्स्फोटायनस्येति विभाषाऽवङ् शा-  
च्छोरन्यतरस्यामित्येते विधयः ॥ १५६ ॥

( उद्ध्योतः ) हेतुहेतुमतो ॥ १५६ ॥ लक्षणहेत्वोरिति  
क्रियालक्षणे हेतौ च वर्तमानाद्धातोः कर्तरि शत्रानात्रित्यर्थः सूत्रस्य ।  
किं च लक्षणरहादेस्तदद्योत्येवैषि स्योतकसमुच्चयस्य दृष्टत्वादिति श-  
ब्देन तदद्योतनेपि शत्रादिप्राप्तिरिति भावः ॥ १५६ ॥

( ५८६ लिङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १६ )

११४२ इच्छार्थेषु लिङ् लोटौ

॥ ३ । ३ । १५७ ॥

( ५०१३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ इच्छार्थेषु लिङ् लोटौ कामप्रवेदने  
चेत् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कामप्रवेदनं चेद्वक्तव्यम् । इह मा भूत्—इच्छन् कटं करोतीति ॥ इच्छा-  
र्थेषु ॥ १५७ ॥

( उद्ध्योतः ) इच्छार्थेषु ॥ १५७ ॥ कामप्रवेदनमिति ।  
प्रयोज्यः स्वाभिप्रायाविष्करणमित्यर्थः ॥ १५७ ॥

( ५८७ लिङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १७ )

११४६ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसं-  
प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ॥ ३ । ३ । १६१ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

विध्यधीष्टयोः को विशेषः ? ।

( प्रदीपः ) विधिनिमन्त्रणा ॥ १६१ ॥ विध्यधीष्ट-  
योरिति । उभयोरपि नियोगरूपत्वादिति प्रश्नः ॥

( उद्ध्योतः ) विधिनिमन्त्रणा ॥ १६१ ॥ नियोगेति । नियोगः  
प्रवर्तना प्रवर्तकनिष्ठः प्रवृत्त्यनुकूलो व्यापारः । एतदेव प्रेषणम् ॥

## ( समाधानभाष्यम् )

विधिर्नाम प्रेषणम् । अधीष्टं नाम सत्कारपूर्विका व्यापारणा ॥

( प्रदीपः ) प्रेषणमिति । मृत्पादेः कस्याश्चित् क्रियायां नियोजनमित्यर्थः ॥ अधीष्टं नामेति । गुर्वादेस्तु पूज्यस्य व्यापारणमधीष्टमित्यर्थः ॥ प्रपञ्चार्थं न्यायव्युत्पादनार्थं वायंभेदमाश्रित्य भेदेनोपादानं विधिनिमन्त्रणादीनां कृतम् । विधिरूपता हि सर्वत्रान्वयिनी विद्यते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये व्यापारणेति । प्रवर्तनेत्यर्थः । एतेन नियोग इष्टसाधनताज्ञानमिति परास्तम् ॥ हेतुमति चेति सूत्रस्थ-  
लिङ् णिचोः पर्यायत्वशङ्कापरभाष्यविरोधापत्तेरित्याहुः ॥ न्याये-  
ति । शब्दशक्तिविषयेत्यर्थः ॥ अयं भावः—निमन्त्रणादिशब्दानां प्रयोजकनिष्ठव्यापारवाचकत्वस्य सर्वसंमततया विधिशब्दस्यापि प्र-  
योजकनिष्ठव्यापारवाचित्वं न विष्टसाधनत्वादिवोधकत्वमिति ॥ स चान्न प्रयुज्यमानलिङ्गदिरूपः । स च प्रेरणात्वेन लिङ्गशक्यः । प्रेरणात्वं चाखण्डोपाधिः । एकैकस्यैव रूपभेदेन वाच्यवाचकत्वे उपपद्यते । स च लोके पुरुषनिष्ठः ॥ वेदे ईश्वरनिष्ठः । वेदस्या-  
कर्तृकत्ववादिनां मते शब्दनिष्ठः ॥ शब्दरूपत्वाच्च स शाब्दीभाव-  
नेत्युच्यते इति मञ्जूषायां विस्तरः ॥ विधिरूपतेति । प्रेरणेत्यर्थः ॥

## ( आक्षेपभाष्यम् )

अथ निमन्त्रणानमन्त्रणयोः को विशेषः ? ।

## ( समाधानभाष्यम् )

संनिहितेन निमन्त्रणं भवति । असंनिहितेनाम-  
न्त्रणम् ॥

( प्रदीपः ) संनिहितेनेति । धात्वर्थेनासनादिना । यथा इह भवनासीत इति सञ्ज्ञितमासनम्, तर्दनु परमार्थं च निमन्त्रयते ॥ असञ्ज्ञितेनेति । यथा इह भवान् भुञ्जीत इति भोजनमसञ्ज्ञितं तदर्थमामन्त्रयते ॥

## ( समाधानबाधकभाष्यम् )

नैषोस्ति विशेषः । असंनिहितेनापि निमन्त्रणं भवति । संनिहितेन चामन्त्रणम् ॥

१ तथा चोक्तम्—

‘अस्ति प्रवर्तनारूपमनुस्यूतं चतुर्थविधि ।  
तत्रैव लिङ् विधातव्यः किं भेदस्य विवक्षया ॥  
न्यायव्युत्पादनार्थं वा प्रपञ्चार्थमथापि वा ।  
विध्यादीनामुपादानं चतुर्थमादितः कृतम्’ इति ॥

२ विधिश्रुत्यर्थः । ( र. ना. )

३ वस्तुतस्तु प्रेरणादिरूपविधिवाचकत्वालिङ्गदेर्विधित्वव्यवहारः, तथाच नैकस्य वाच्यत्ववाचकत्वे विरुद्धे कल्पनीये इति वयम् । ( र. ना. )

४ आसनमनु परमार्थं बोधनीयं वास्तवं वस्तु, भोजनादिकं निमन्त्रयते बोध्य-  
ते इत्यर्थः । ( र. ना. )

५ भोक्तेति ॥

‘श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकल्याणि दातुमिः’ इत्यादिमन्त्रादिरन्त्युपदर्शितः ॥

## ( सिद्धान्तिसमाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि यन्नियोगतः कर्तव्यं तन्नमन्त्रणम् ॥

किं पुनस्तत् ? ।

हव्यं कव्यं च । ‘ब्राह्मणेन सिद्धं भुज्यताम्’ इत्युक्ते अधर्मः प्रत्याख्यातुः ॥ आमन्त्रणे कामचारः ।

( प्रदीपः ) यन्नियोगत इति । अवश्यकर्तव्यं नित्यं नैमित्तिकं च तन्नमन्त्रणमिति निमन्त्रणविषयत्वात्तदेव निमन्त्र-  
णम् ॥ अधर्म इति । यदान्यो ब्राह्मणो भोक्ता न लभ्यते तर्दा दौहित्रादिर्मोजयितव्यः । तस्य च प्रत्याख्याने अधर्मः इति स्मार्तः समाचारः ॥ आमन्त्रण इति । काम्यकर्मणि काम-  
नया प्रवृत्तिर्नान्यथा ॥

( उद्घोतः ) यन्नियोगतः कर्तव्यं श्राद्धादि ॥ तस्य निम-  
न्त्रणत्वाभावादाह—निमन्त्रणविषयत्वादिति ॥ भाष्ये ब्राह्मणे-  
नेति । सिद्धं हव्यं कव्यं वा भुज्यतामिति ब्राह्मणेनोक्तेश्चाद्  
ब्राह्मणं प्रति तत्र प्रत्याख्यातुर्ब्राह्मणस्याधर्म इत्यर्थः । ब्राह्मणेनेत्यु-  
क्तेरन्यैदीयनिमन्त्रणप्रत्याख्याने, ब्राह्मणकृतेऽपि हव्यकव्यातिरिक्त-  
विषयार्मन्त्रणे प्रत्याख्याने नाधर्म इति लभ्यते ॥ यदान्य इत्या-  
दिव्याख्याने कैयटकृते बीजं भाष्यानुग्रहश्च चिन्त्यः ॥ सामान्यत  
एव ब्राह्मणस्य श्राद्धादिनिमन्त्रणप्रत्याख्यानेऽधर्मः स्मृतिष्वपि सर्वत्रे  
इति बोध्यम् ॥ काम्यकर्मणीति । यत्र भोजनाद्यननुष्ठानेऽपि न  
प्रत्यवायस्तद्विषया प्रवर्तनाऽऽमन्त्रणमिति तात्पर्यम् ॥

## ( आक्षेपभाष्यम् )

कथं पुनरिदं विज्ञायते, निमन्त्रणादीनामर्थ इति ।  
आहो स्विन्नमन्त्रणादिषु गम्यमानेष्विति । कश्चात्र  
विशेषः ? ।

( प्रदीपः ) कथमिति । किमिह विध्यादयः प्रत्ययस्या-  
भिधेयत्वेन निर्दिष्टाः उत विषयभावेनेति प्रश्नः ॥

( उद्घोतः ) उत विषयेति । लिङ्गदयस्तु चोतका इति भावः ॥

६ तदेति ।

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकल्पयोः ।

अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्धिरनुष्ठितः ॥

मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।

दौहित्रं विदूषति बन्धुमुत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ इति मन्वादिस्मृतेः ॥

७ क्षत्रियादिनिमन्त्रणेत्यर्थः । ( र. ना. )

८ ब्राह्मणकृतस्यापि हव्यकव्यातिरिक्तविषयामन्त्रणस्य प्रत्याख्याने इत्यर्थः ।  
( र. ना. )

९ चिन्त्य इति ॥ प्रागर्शितस्मृतिषु प्रथमकल्पासु कल्पपदकथनरूपस्य बी-  
जस्यैव चिन्त्या चिन्ताकाङ्क्षासमाप्तिः करणेयेति दाधिमन्थाः ॥

१० ताः स्मृतयो विशेषपरतया संकोचनीयाः, अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेय इत्यादि  
स्मृतिबलादिति वयम् । ( र. ना. )

११ निमन्त्रणादिनामर्थं लिङ्गितं योजना । ( र. ना. )

१२ अवारूपत्वेऽपि तत्सञ्ज्ञौ प्रतीपमानत्वं तद्विषयत्वम् । ( र. ना. )



( ५०१४ प्रथमाक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ निमन्त्रणादीनामर्थं चेदामन्त्रयै  
निमन्त्रयै भवन्तमिति प्रत्ययानुपपत्तिः  
प्रकृत्यभिहितत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) निमन्त्रणादीनामर्थं चेदामन्त्रयै निमन्त्रयै भवन्तमिति प्रत्ययो नोपपद्यते । किं कारणम् ? । प्रकृत्यभिहितत्वात् । प्रकृत्याऽभिहितः सोऽर्थ इति कृत्वा प्रत्ययो न प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) निमन्त्रणादीनामिति । आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वाद्विधिरपि गृह्यते ॥ प्रकृत्यभिहितत्वादिति । प्रकृत्या योर्थो नाभिधीयते तत्रैव प्रत्ययेन भाव्यं न तु प्रकृत्यभिहितेयं । उक्तार्थानामप्रयोग इति न्यायात् । विषयपक्षाश्रये तु प्रकृत्यभिहितेष्वपि विध्यादिषु तत्सत्तामात्राश्रयः प्रत्ययः सिध्यति ॥

( उद्घोतः ) विध्यादीनामर्थं इति वक्तुमुचितमत आह—आदिशब्दस्येति । प्रेरयै भवन्तमित्यादि तदुदाहरणं बोध्यम् ॥ निमन्त्रणादीनामिति भाष्यस्य निमन्त्रणादिपदानामित्यर्थः । भाष्ये निमन्त्रयै इत्याद्युपलक्षणं निमन्त्रयेदित्यादेरपि ॥

( ५०१५ द्वितीयाक्षेपवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ द्विवचनबहुवचनाप्रसिद्धिश्चै-  
कार्थत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) द्विवचनबहुवचनयोश्चाप्रसिद्धिः । किं कारणम् ? । एकार्थत्वात् । एकोयमर्थो विमन्त्रणं नाम तस्यैकत्वादेकवचनमेव प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) द्विवचनेति । नाप्राप्तेषु कर्त्रादिषु विध्याद्योर्था निर्दिश्यमानास्तेषां बाधकाः प्रसज्यन्तीति कर्त्रादिगतायाः संख्याया अभिधानं न प्राप्नोतीति भावः ॥

( उद्घोतः ) ननु निमन्त्रणस्यैकत्वेऽपि कर्त्रादिसंख्याश्रये द्विवचनबहुवचने भविष्यत इत्यत आह—नाप्राप्तेष्विति । एवं च कर्त्राद्यप्रतीत्यापत्तिरपि दूषणान्तरं बोध्यम् ॥ कर्त्रादिगतायाः संख्याया इति । क्रियायामारोपिताया इति शेषः । वस्तुतः प्रवर्तकनिष्ठप्रेरणायाः प्रयोज्यकर्तृकत्वाभावात्तद्वैतसंख्यारोपे न मानम्, वाच्यत्वे च तस्या एव विशेष्यत्वम् । सा चैकैवेति द्विवचनाद्यनापत्तिः । धात्वर्थस्य कर्तृद्वित्वादिना द्वित्वादावपि तस्य विशेषणत्वात् द्विवचनादिनियामकता । कर्त्रादिबाधस्तु न युक्त इत्यग्रे स्पुटं भविष्यति ॥ अत एव भाष्ये द्विवचनाद्यसिद्धावेकार्थत्वादित्येव हेतुरुक्तः ॥ विवृतं चैकोयमर्थो निमन्त्रणं नाम तस्यैकत्वादिति । अनेकविषयकमपि निमन्त्रणमेकमेवेति तदर्थः ॥ एतेन 'विशेष्य-

गतसंख्यैकवचनादि बोध्येति सूचितम् । अत एवात्र पक्षे भावकर्त्रादीनां बोधानापत्तिरिति दूषणं नोक्तम् ।

( द्योत्यत्वपक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि निमन्त्रणादिषु गम्यमानेष्विति ॥

( द्योत्यत्वे दूषणभाष्यम् )

इहापि [ तर्हि ] प्राप्नोति-देवदत्तो भवन्तमामन्त्रयते, देवदत्तो भवन्तं निमन्त्रयते इति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये इहापि प्राप्नोतीति । लडादयस्तेभ्यो न स्युः । अनेन लिङा बाधितत्वादिति भावः ॥

( ५०१६ समाधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु द्वितीयाकाङ्क्षस्य प्रकृते  
प्रत्ययार्थं प्रत्ययविधानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । “द्वितीयाकाङ्क्षस्य धातोः प्रकृते प्रत्ययार्थं प्रत्ययो भवति” इति वक्तव्यम् ॥ के पुनः प्रकृता अर्थाः ? । भावकर्मकर्तारः ॥

( प्रदीपः ) सिद्धं त्विति । द्वितीयं विध्यादिकमर्थं यदा धात्वर्थमाकाङ्क्षति तदा लिङ्प्रत्ययः, यदा च धात्वर्थं संपाद्ये नियोज्यो नियुज्यते तदा द्वितीयाकाङ्क्षित्वम् । इह तु देवदत्तो भवन्तमामन्त्रयत इति नास्ति धात्वर्थस्य द्वितीयाकाङ्क्षित्वमिति लिङ् न भवति ।

( उद्घोतः ) धोतकतापक्षीयदूषणमुद्धर्तुमाह—सिद्धं त्विति । द्वितीयाकाङ्क्षधातोः प्रकृते प्रत्ययार्थं कर्त्रादौ लिङित्यर्थः ॥ कर्त्रादीनामपि द्योत्यत्वपक्षे प्रत्ययार्थं इत्यस्य प्रत्ययद्योत्य इत्यर्थः ॥ नन्वेवं पश्य मृगो भावतीत्यादावपि लिङ् स्यादत आह—द्वितीयं विध्यादिकमिति । द्वितीयशब्देन विध्यादिरेव गृह्यते इति भावः ॥ नियोज्यः प्रेर्यः । नियुज्यते प्रेर्यते । प्रेरणाविषयधात्वर्थं यदा धातोर्लक्षणा तदा प्रकृतेयं प्रत्यय इति भावः । प्रकृते प्रत्ययार्थं इत्यनेनामन्त्रणादीनामर्थं इति पक्षेपि तदत्यागः सूचितः, विरोधाभावात् । कर्त्रादयो द्योत्या इति पक्षस्य झुक्कमोरिति सूत्रस्य भाष्यसंमततया बाधे मानाभावाच्च । अत एव वाचकत्वपक्षे द्विवचनाद्यसिद्धिरिति बाधसिद्धिर्नोक्ता ॥ भावकर्मकर्त्रर्थकलस्यैवात्मनेपदपरस्यैव पदविभागेन तद्विधानात् । शुभदस्य लक्ष्यसामानाधिकरण्याभावेन प्रथमपुरुषाद्यसिद्धिश्च नोक्ता । अनियमश्च नोक्त इति दिङ् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

एवमपि भवेत्सिद्धम्—‘प्राप्नोतु भवानामन्त्रणम्’—‘अनुभवतु भवानामन्त्रणम्’ इति यत्र द्वितीय आकाङ्क्ष्यते । इदं तु न सिध्यति—निमन्त्रयै, आमन्त्रयै इति ॥

१ प्रयोज्यकर्तृगतेत्यर्थः । ( र. ना. )

२ प्रेरणा इति शेषः । ( र. ना. )

३ प्रवर्तककर्तृगतद्वित्वादिनेत्यर्थः । तस्य, प्रवर्तककर्तृगतद्वित्वस्य, धात्वर्थ-

प्रेरणाविशेषणत्वादित्यर्थः । ( र. ना. )

४ उद्घोतकृता नोपलब्धः, त्यक्तो वा ॥

५ धात्वर्थं आकाङ्क्षतीति प्रथमास्तपादः शोभनो भवति ।



( प्रदीपः ) प्राप्नोत्विति । धात्वर्थस्य प्राप्यादेर्भिन्नमामन्त्रणं प्रत्याकाङ्क्षा विद्यत इति भावः ॥ आमन्त्रयै इति । आमन्त्रणस्य धात्वर्थत्वात्तस्य चैकत्वाद् भेदपूर्विकाया आकाङ्क्षाया आमन्त्रणं प्रत्यभाव इति भावः ॥

( उद्द्योतः ) भिन्नमामन्त्रणं प्रतीति । धात्वर्थातिरिक्तं प्रेरणारूपव्यापारं प्रतीत्यर्थः । प्राप्नोतु भवानित्यादेरङ्गीकरोतु भवान्=आमन्त्रणाङ्गीकारविषयाप्रेरणेत्यर्थः ॥ ननु पाकं पचतीतिवत् प्रवर्तनविशेषरूपामन्त्रणस्यापि तद्विशेषामन्त्रणान्तरविषयकाङ्क्षित आह—भेदपूर्विकाया इति । तत्र सामान्यविशेषतयाऽभेदान्वयो, न तु तथा प्रकृते इति भावः ॥ आमन्त्रणं प्रतीति । धात्वर्थव्यापारातिरेकेण प्रेरणां प्रतीत्यर्थः । अत्रेदं तत्त्वम्—स्वविषया प्रेरणा तु नात्र प्रत्ययार्थः, स्वेच्छयैव तत्प्रवृत्तिसिद्धेः, प्रवृत्तेः स्वप्रवृत्तेः स्वप्रेरणानपेक्षत्वेन तस्यास्तदर्थत्वाभावात् ॥ इदमेवाभिप्रेत्य 'उत्तमपुरुषो विधिशक्तिप्रतिबन्धकः' इति न्यायविदः ॥ अत एव भगवतोत्तमपुरुषविषये एव शङ्कितम् ॥

( समाधानभाष्यम् )

अत्रापि द्वितीय आकाङ्क्षयते । कः ? । निमन्त्रिरेव । निमन्त्रयै निमन्त्रणम्, आमन्त्रयै आमन्त्रणमिति ॥

( प्रदीपः ) निमन्त्रयै निमन्त्रणमिति । प्रकृतिवाच्यं निमन्त्रणं विशिष्टकर्मकमन्यत् तद्विषयं त्ववश्यकर्तव्यतालक्षणं निमन्त्रणमन्यदिति भिन्नत्वादस्त्वेव द्वितीयाकाङ्क्षित्वम् । तदयमर्थः—त्वत्कर्मकं भोजनादिषु निमन्त्रणं ममानुष्ठेयम् । ततो भोजनादिषु त्वां निमन्त्रयै इति । अत्र चामन्त्रयै आमन्त्रणम्, निमन्त्रयै निमन्त्रणमिति प्रकृत्यर्थव्यतिरिक्तमामन्त्रणसङ्गावप्रदर्शनायामन्त्रणनिमन्त्रणशब्दौ प्रयुक्तौ नत्वयं लौकिकः प्रयोगः, लोटैव प्रकृत्यर्थव्यतिरिक्तस्यामन्त्रणादेर्गमितत्वात् । तदयमर्थः—आमन्त्रयै आमन्त्रणमिति आमन्त्रयै इत्यत्र लोटि प्रयुज्यमाने आमन्त्रणं धात्वर्थविषयमाकाङ्क्षमाणमस्ति ॥

( उद्द्योतः ) विशिष्टकर्मकमिति । संबोध्यकर्मकमित्यर्थः ॥ त्ववश्यकर्तव्यतालक्षणम् अवश्यानुष्ठेयत्वलक्षणम् ॥ ततो भोजादिष्विति । तद्बोधनार्थं च निमन्त्रयै इत्यादिप्रयोग इति भावः ॥ एवं 'निमन्त्रयै निमन्त्रणम्' इत्यादौ निमन्त्रणादिपदप्रयोगोऽयुक्तो, तदर्थप्रत्यायनादत आह—नत्वयं लौकिक इत्यादि ॥ मनेकार्थत्वात् निमन्त्रणामन्त्रणशब्दावर्हत्वार्थकौ । अर्हत्वं प्रकर्तव्यतालक्षणं कैयटोक्तम् । एवं च । 'अर्हं कृत्यलृचश्च' । लिङ् लोटोत्तमपुरुषविषय इत्युक्तं भवतीति बोध्यम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

कथं पुनर्निमन्त्रिणाम निमन्त्रणमाकाङ्क्षेत् ॥

१ यावतेति येनेति हेत्वर्थकं प्रत्ययाभेदविबक्षितः । यावता इषिरिषिणा युज्यते इत्यादि ततोऽत्रापि द्वितीय आकाङ्क्षयते इति योजना । ( र. ना. )

२ प्रयोग इत्यर्थः । ( र. ना. )

( उद्द्योतः ) भाष्ये कथं पुनरिति । धर्मिणो हि धर्माकाङ्क्षा न तु धर्मस्येति प्रश्नः ॥

( समाधानभाष्यम् )

दृष्टश्च भावेन भावयोगः । तद्यथा । इषिरिषिणा युज्यते, स्त्रीत्वं च स्त्रीत्वेन । यावता चात्रापि द्वितीय आकाङ्क्षयते ॥

( प्रदीपः ) इषिरिति । एषितुमिच्छति इति कालसाधनभेदादिच्छयोर्भेदाश्रयो योगः ॥ स्त्रीत्वमिति । कुमारीत्यादौ स्त्रीत्वं द्रव्यस्य विशेषणम् । यदा तु तदेव प्राधान्येनाश्रीयते तदा तस्य स्त्रीत्वादिना योगः स्त्रीत्वं स्त्रीतेति ।

( उद्द्योतः ) स्त्रीत्वं च स्त्रीत्वेनेत्यस्य स्त्रीताशब्द उदाहरणम् ॥ प्रवर्तनाविषय एककर्तृकः पाक इति बोधः । अहं पाचयेयमित्यादौ पाकप्रवर्तनाऽवश्यानुष्ठेयतेति बोधः ॥ भाष्ये यावता चात्रेति । यैद्यत्वेत्यर्थः ॥

( वाचकत्वपक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि निमन्त्रणादीनामर्थ इति ।

( दूषणसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं निमन्त्रणादीनामर्थं चेदामन्त्रयै निमन्त्रयै भवन्तमिति प्रत्ययानुपपत्तिः प्रकृत्यभिहितत्वादिति ।

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

नैष दोषः । योसौ द्वितीय आकाङ्क्षयते स एव मम प्रत्ययार्थो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) स एव ममेति । निमन्त्रयै भवन्तमित्यवश्यकर्तव्यं भवता भोजनादेषु मया निमन्त्रणमिति । निमन्त्रणस्यावश्यकर्तव्यतालक्षणं निमन्त्रणमिति प्रकृतिप्रत्ययार्थयोर्भेद इत्यर्थः ।

( वाचकत्वपक्षे द्वितीयदूषणसारणभाष्यम् )

अयं तर्हि दोषः—'द्विवचनबहुवचनाप्रसिद्धिरेकार्थत्वादिति ॥

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

एषोप्यदोषः ।

( ५०१७ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सुपां कर्मादयोप्यर्थाः संख्या चैव तथा तिङाम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुपां संख्या चैवार्थः कर्मादयश्च ॥

१ पचेदित्यदिति शेषः । ( र. ना. )

२ इदं चिन्त्यम् । मनुक्तव्याख्याया एव भाष्यसरणिसिद्धत्वात् । ( र. ना. )

५ अवश्यकर्तव्यतालक्षणो निमन्त्रणपदार्थः । ( र. ना. )

( ५०१८ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ प्रसिद्धो नियमस्तत्र ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रसिद्धस्तत्र नियमः ।

( ५०१९ वार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ नियमः प्रकृतेषु वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथवा प्रकृतानर्थानपेक्ष्य नियमः ॥  
के च प्रकृताः ? । एकत्वादयः । एकस्मिन्नेवैकवचनं  
न द्वयोर्न बहुषु । द्वयोरेव द्विवचनं नैकस्मिन्न बहुषु ।  
बहुष्वेव बहुवचनं नैकस्मिन्न द्वयोरिति ॥ विधि-  
नि० ॥ १६१ ॥

( प्रदीपः ) सुपामिति । विध्यादिभिर्विरोधाभावात् लः  
कर्मणि चेत्यत्र बहुवचननिर्देशात्सर्वलकारसंग्रहार्थाद्वा उभ-  
यानुप्रहाच्च कर्त्रादयो न बाध्यन्त इति कर्तृकर्मगतद्विलबहुव-  
चनबन्धनानि द्विवचनबहुवचनानि भवन्तीत्यर्थः ॥ १६१ ॥

( उद्घोतः ) बहुवचनेति । अत एव सर्वलकारान्ते लः  
कर्मणीलकारि । इदं चिन्त्यम् । एतावत्त्र ल इति तत्पञ्चस्य-  
भाष्यस्वग्रन्थाभ्यां ल इत्यस्यैकवचनान्तताया एव लाभात् । सुपां  
कर्मादय इत्यस्यार्थं भावः । धात्वर्थक्रियाया इव प्रेरणायाः स्वत  
एकत्वेऽपि प्रेर्यगतसंख्यायाः स्वनिष्ठधात्वर्थे इव स्वविषयप्रेरणाया-  
मप्यारोपाद् द्विवचनादीनि । वस्तुतो यावताचात्रेत्यादिग्रन्थ एक-  
देशिनः । एतेन प्रत्ययार्थे व्यापारे संख्यान्वयेषु प्रत्ययानां प्रकृ-  
त्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वमिति व्युत्पत्तिभङ्ग इत्यपास्तम् । एक-  
देश्युक्तिर्वेनाक्षतेः ॥ नन्वेवमपि नियमेन न स्यादधिकार्थस्यापि  
भानादत आह—प्रसिद्ध इत्यादि । तत्र अर्थे ॥ अत्र द्योतकता-  
पक्षो युक्तः । पचेत्यादार्थेपि तत्प्रतीतिश्च संख्या कालकारकाणामि-  
वास्या अपि चोत्पत्ताया एवौचित्याच्च । एवं च प्रवर्तनाविषयः पाकः  
इत्येव बोध इति बोध्यम् ॥ १६१ ॥

( ५८८ कृत्यलिङ्गप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १८ )

११४८ प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च

॥ ३ । ३ । १६३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं प्रैषादिष्वर्थेषु कृत्या विधीयन्ते, न अवि-  
शेषेण विहिताः कृत्याः ते प्रैषादिषु भविष्यन्ति,  
अन्यत्र च ॥

( ५०२० वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ प्रैषादिषु कृत्यानां वचनं  
नियमार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रैषादिषु कृत्यानां वचनं क्रियते ॥ किं  
प्रयोजनम् ? । नियमार्थम् । नियमार्थोयमारम्भः ।  
प्रैषादिष्वेव कृत्या यथा स्युरिति ॥

( ५०२१ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ प्रैषादिषु कृत्यानां वचनं नियमार्थ-  
मिति चेत् तदनिष्टम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रैषादिषु कृत्यानां वचनं नियमार्थ-  
मिति चेत्तदनिष्टं प्राप्नोति । न हि प्रैषादिष्वर्थेष्वेव  
कृत्या इष्यन्ते । किं तर्हि ? । अविशेषेण । बुसो-  
पेन्ध्यं तृणोपेन्ध्यम् । घनघात्यम् ॥

( ५०२२ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ विध्यर्थं तु स्त्रियाः प्रागिति  
वचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विध्यर्थं तु प्रैषादिषु कृत्यानां वच-  
नम् । अयं प्रैषादिष्वर्थेषु लङ्घिधीयते स विशेषवि-  
हितः सामान्यविहितान् कृत्यान्वाधेत ॥

( कृत्याधकभाष्यम् )

वासरूपेण कृत्या अपि भविष्यन्ति ॥

( कृत्याधकभाष्यम् )

न स्युः । किं कारणम् ? । स्त्रियाः प्रागिति वच-  
नात् । प्राक् स्त्रियां वाऽसरूपः ॥ प्रैषातिसर्गः ॥ १६३ ॥

( प्रदीपः ) प्रैषाति ॥ १६३ ॥ बुसोपेन्ध्यमिति ।  
अग्निस्तोकं बुसेन ज्वलनीयमिति वस्तुस्वरूपकथनं, न तु प्रैषा-  
दिप्रतिपत्तिः । घनघात्यमिति । घनेन लोहादिना घाल-  
मिति कठिनत्वादित्यर्थः ॥ १६३ ॥

( उद्घोतः ) प्रैषा ॥ १६३ ॥ भाष्ये स्त्रियाः प्रागिति । इदमपि  
वापकं कृत्याधकारादूर्ध्वं कविद्राऽसरूपविध्यभावस्येत्यर्थः ॥ १६३ ॥

१ तत्र सुपतिङ्प्रत्ययेषु नियमः प्रसिद्ध इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ इदं बहुवचननिर्देशविशेषणम् । ( र. ना. )

३ लिङ्गा विध्यादीनां कर्त्रादीनां चातुप्रहाद् बोधनरूपाधेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ अपिना आमन्त्र्यै इत्यादिसंग्रहः । तत्प्रतीतिः, प्रेरणाप्रतीतिश्चेत्यर्थः । ( र. ना. )

५ अग्नेः स्तोकावयवरूपं वस्तु बुसेन ज्वलनीयमित्यर्थः । ( र. ना. )

( ५८९ तुमुन्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ३ । २ आ. १९ )

११५२ कालसमयवेलासु तुमुन्

॥ ३ । ३ । १६७ ॥

( ५०२३ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ प्रथमान्तेषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रथमान्तेष्विति वक्तव्यम् ॥ किं प्रयो-  
जनम् ? । इह मा भूत्—काले भुङ्क्ते ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । प्रैषादिष्विति वर्तते । तच्चावश्यं  
प्रैषादिग्रहणमनुवर्त्यम् । प्रथमान्तेष्विति ह्युच्यमानेइहापि प्रसज्येत 'कालः पचति भूतानि' 'कालः  
संहरति प्रजाः' इति ॥ कालसमय ॥ १६७ ॥इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहा-  
भाष्ये तृतीयस्याध्यायस्य तृतीये पादे द्वितीय-  
माहिकम् ॥ पादश्च तृतीयः समाप्तः ॥इति श्रीमन्महामहोपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते भाष्यप्रदीपे  
तृतीयस्य अध्यायस्य तृतीये पादे द्वितीयमाहिकम् ॥

पादश्च तृतीयः समाप्तः ॥

इति श्रीशिवभट्टसुतसतीगर्भजनागेशभट्टकृते भाष्यप्रदीपो-  
द्घोते तृतीयाध्यायस्य तृतीये पादे द्वितीयमाहिकम् ॥

पादश्च तृतीयः समाप्तः ॥

—&gt;0&lt;—

|                    | प्राक्तनयोगः | सूत्रवार्तिकसंख्याचक्रम्<br>अस्मिन् पादे सूत्रवार्तिक |              |                   | सर्वयोगः |
|--------------------|--------------|-------------------------------------------------------|--------------|-------------------|----------|
|                    |              | १ म<br>आहिके                                          | २ य<br>आहिके | आहिकद्वय-<br>योगः |          |
| व्याख्यातसूत्राणि  |              |                                                       |              |                   | ५८८      |
| अव्याख्यातसूत्राणि |              |                                                       |              |                   | ५७३      |
| समुदितसूत्राणि     |              |                                                       |              | १७६               | ११६१     |
| वार्तिकानि         |              |                                                       |              |                   |          |

श्रीदधिमती(श्री) जयति ॥

## तृतीयाध्यायस्य चतुर्थपादे प्रथममाहिकम् ॥

( ५९० कालान्तरे प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ. १ )

११६२ धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ॥ ३।४।१ ॥

( प्रदीपः ) धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ॥ १ ॥ संबन्धस्य अनेकाधिष्ठानत्वात्सामर्थ्याद् वृत्तावपि संख्याविशेषो द्वित्वमवगम्यते । धात्वोः संबन्धो धातुसंबन्धः । धात्वर्थश्चात्रोपचाराद्वातुशब्देनोच्यते । न हि स्वार्थे गुणीभूतयोर्धात्वोः परस्परेण संबन्धोपपत्तिः । धात्वर्थयोस्तु विशेषणविशेष्यभावलक्षणसंबन्धोपपत्तिः । तत्र धातुसंबन्धे कालान्तरविहितानां प्रत्ययानामन्यस्मिन् काले साधुत्वाभ्यनुज्ञानार्थमिदं सूत्रम् ।

( उद्घोतः ) धातुसंबन्धे ॥ १ ॥ 'धातोः संबन्धे' इत्यर्थेऽन्यावर्तकमेतत् । धातोः कारकसंबन्धस्य कारकाणां वा धातुसंबन्धस्य सार्वत्रिकत्वात् । धात्वोः संबन्ध इत्यर्थे तु समासो दुरुपपादः । वृत्तौ सङ्ख्याविशेषस्याभावादत आह—संबन्धस्येति । द्वित्वमवगम्यते इति । वस्तुतो द्वित्वाबोधेऽपि धातुत्वेनैव धातुद्वयबोध इति बोध्यम् ॥ गुणीभूतयोरिति । स्वार्थे प्रतिपादनव्यग्रयोरित्यर्थः । नन्वर्थद्वारकसंबन्धो धात्वोरेवाश्रीयताम् । कर्मत्वसम्मानकर्तृकात्वादिवदिति चेत् । न । गोमानासीदित्यादौ प्रवृत्त्यनापत्तेः । जन्मप्रयुज्यमानयोरर्थद्वारकोपि संबन्धो वक्तुं शक्य इति भावः ॥ अर्थयोश्च कः संबन्ध इत्यत आह—विशेषणेति । स च प्रत्ययार्थद्वारको वाक्यार्थ इति बोध्यम् ॥ अन्यस्मिन्काले इति । उपपदोपाधिप्रकृत्यर्थानां तु न बाधः । वर्तमानसामीप्य इत्यत्राभ्य कालान्यत्वस्यैव प्रतिपादनादिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

प्रत्यय इति वर्तमाने पुनः प्रत्ययग्रहणं किमर्थम् ।

( प्रदीपः ) प्रत्यय इति वर्तमान इति । यद्यपि स्वरूपपदार्थकः प्रत्ययशब्दः प्रकृतः । तथापीह संज्ञिनिर्देशाभावात्संज्ञिपदार्थको विज्ञास्यत इति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

अधातुप्रत्ययानामपि धातुसंबन्धे साधुत्वं यथा स्यात् । गोमानासीत् । गोमान्भवितेति ॥

( प्रदीपः ) अधातुप्रत्ययानामपीति । अन्यथा प्रकृतानामेव धातुप्रत्ययानां ग्रहणं स्यात् । प्रत्ययग्रहणात् सर्वत्रत्यपरिग्रहार्थात्तद्विधानामपि कालभेदे साधुत्वं भवति । गोमानासीदिति । तदस्यास्त्यसिन्निति मतुप्प्रत्ययो वर्त-

मानस्यतविशिष्टप्रकृत्यर्थयुक्तेऽर्थे विहितः । धातुसंबन्धे तु प्रकृत्यर्थस्य भूतभविष्यत्त्वेऽपि साधुर्भवति ॥

( उद्घोतः ) प्रकृतानामिति । प्रकरणादिति भावः ॥ वर्तमानस्येति । न च तदस्यास्तीत्यत्र संख्यावद्वर्तमानकालोप्यविवक्षित इति वाच्यम् । दण्डिनमानयेत्युक्तेऽतीतदण्डस्याप्यानयनापत्तेः । अहं च तत्रैव भाष्येऽत्र च स्पष्टम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

इह पश्यामः भूतकालो भविष्यत्कालेनाभिसंबन्धमानो भविष्यत्कालः संपद्यते । कस्मान्न भविष्यत्कालो भूतकालेनाभिसंबन्धमानो भूतकालः संपद्यते ।

( प्रदीपः ) इह पश्याम इति । अग्निष्टोमयाज्यस्य पुत्रो जनितेति कालभेदे साधुत्वाभ्यनुज्ञानाय सूत्रम् । तत्र विज्ञेयानुपादानायथा भूतकालपरित्यागेन जनितेत्येतत्संबन्धाद्गिनिर्भविष्यति काले भवति तथा जनितेति लुप्तप्रत्ययो भविष्यत्कालेत्यागेनाग्निष्टोमयाजीत्येतत्संबन्धाद् भूते कस्मान्न भवतीति प्रश्नः ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये भूतकाल इत्यादयो बहुव्रीहयः ॥

( ५०२४ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ धातुसंबन्धे प्रत्ययस्य यथाकालविधानात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( आष्यम् ) धातुसंबन्धे यथाकालविहिता एवैते प्रत्ययाः स्वेषु स्वेषु कालेषु प्रयुज्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) यथाकालविधानादिति । सूत्रप्रत्याख्यानेन उत्तरम् । अग्निष्टोमयाजीति भूत एव गिनिर्विधीयते । जनितेत्येतत्संबन्धात् भविष्यपदेशप्रतिपत्तिर्यथास्य सूत्रस्य शाटकं वयेतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भाविष्यपदेशेति । भाविष्यवहारेत्यर्थः ॥ अग्निष्टोमयाजीत्युत्तरम् । इति व्यवहरिष्यमाण इति शेषः । इति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं तर्हि कालान्यत्वं गम्यते ॥

( प्रदीपः ) इतरोऽगृहीताभिप्राय आह—कथं तर्हितीति । पुत्रोऽस्य जनिता स चाग्निष्टोमेन यष्टेति तत्र यदि भूते गिनिर्विधीयते तदा यागस्य भविष्यत्तावगमो न प्राप्नोतीति प्रश्नः ।

( उद्घोतः ) यष्टेतीति । इत्यर्थः प्रतीयत इति शेषः ।

१ अनेकाधिष्ठानत्वात्, द्वित्वादित्यर्थः । ( र. ना. )

२ सामर्थ्यादवगम्यते इत्युक्त्याऽर्थापत्तिलभ्यत्वं द्वित्वे बोध्यते । तेन वृत्तावप्येकैकत्वसंख्यामानमेवेति सिद्धान्तविरोधो न । ( र. ना. )

३ शब्दविशिष्टेऽर्थे शब्दानां शक्तिरिति शब्दिकनये शब्दरूपयोर्धात्वोः स्वार्थो बोधिरित्यत्वेन परस्परान्वये आकाङ्क्षाविरह इति भावः । ( र. ना. )

( ५०२५ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उपपदस्य तु कालान्यत्वम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उपपदस्यैतत्कालान्यत्वम् ॥

( प्रदीपः ) उपपदस्येति । भाविष्यपदेशविज्ञानाद्विशेषणस्य कालान्यत्वं वाक्यार्थवशादस्यपि सूत्रारम्भे प्रतीयत इत्यर्थः । विशेष्याया आख्यातादिपदवाच्यायाः क्रियायाः प्राधान्यात् स्वकाल एवावस्थानं, विशेषणभूतायास्तु क्रियाया उपलक्षणभावेनोपादानाद्भाविभूतव्यपदेशविषयताप्रतिपादनात्कालान्यत्वावगम इत्यर्थः ॥

( उद्द्योतः ) भाविष्यपदेशादिति । भाविष्यवहारविषयादग्निष्टोमयाज्यादिपदादित्यर्थः ॥ वाक्यार्थवशादिति । जनितेत्येतत्समभिव्याहारात्तत्प्रतीतेस्तस्य वाक्यार्थत्वमित्यर्थः । व्यवहारस्य भाविष्यत्वं विषयभाविष्यत्वंकृतमिति भावः ॥ 'वैपरीत्यनिवारणाय मूलयुक्तिं दर्शयति—विशेष्याया इति । भाष्ये उपपदस्येत्यस्य गुणभूतस्येत्यर्थः । सूत्रारम्भे तु नायं न्यायः । न्यायेन वचनसंकोचे मानाभावात् । धात्वोः संबन्धे ताभ्यां धातुभ्यां ये प्रत्ययास्तेऽन्यत्रापि काले भवन्तीति वाक्यार्थादित्याशयः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कुतो नु खल्वेतत्—अग्निष्टोमयाजीत्येतदुपपदं भवति, न पुनर्जनितेति ? ।

( प्रदीपः ) इतरो यथोक्तमभिप्रायमबुद्ध्वा समीपे श्रूयमाणमुपपदमित्यवगम्य चोदयति—कुत इति । ततश्चाग्निष्टोमयाज्यस्य पुत्रो जात इत्ययमपि वाक्यार्थः कस्माच्च भवतीति प्रश्नः ।

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्ह्यस्यादिभिर्योगे । अस्यादिविषयाः प्रत्ययाः साधव इति वक्ष्यामि ।

( प्रश्नभाष्यम् )

के पुनरस्यादयः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

अस्तिभूजनयः ॥

( प्रदीपः ) आचार्यदेशीय आह—एवं तर्हीति । धात्वधिकाराद्धातुग्रहणे सिद्धे धातुसंबन्ध इति पुनर्धातुग्रहणं धातुविशेषपरिग्रहार्थं । तेनास्तिभूजनिर्बन्ध एव प्रत्ययानां कालान्तरे साधुलमन्वाख्यायत इति सूत्रारम्भे सति विपर्ययो न भवतीत्यर्थः ॥ अस्यादिविषया इति । अस्यादिविशेषणाय प्रयुक्ता इत्यर्थः ।

( उद्द्योतः ) सूत्रारम्भ इति । तथा च सूत्रस्य 'धातोर्-यादेः संबन्धे सति धातोः प्रत्ययाः कालान्तरे' इत्यर्थ इति भावः ॥

नन्वस्यादि प्रकृतिकत्वाभावात्कथं तद्विषयत्वमत आह—अस्यादिविशेषणायेति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

एवमपि यदास्यादीनामेवास्यादिभिर्योगस्तदा न ज्ञायते कः कस्य कालमनुवर्तते इति ।

भाविष्यमासीत् । पुत्रो जनिष्यमाण आसीत् ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि वाक्यमेवैतदेवंविषयं प्रयुज्यते । अग्निष्टोमयाजीत्येतत्तस्मिन्भविता । कस्मिन्योस्य पुत्रो जनिता । कदा । यदानेनाग्निष्टोमेनेष्टं भवति ॥ धातुसंबन्धे ॥ १ ॥

( प्रदीपः ) आचार्यः पूर्वोक्तेनाभिप्रायेण सूत्रप्रत्याख्याने नैव वाक्यार्थं स्थापयति—एवं तर्हीति । अवश्यं च स्वकाल एव प्रत्ययविधिरेष्टव्यः । भाविष्यमासीदित्यत्र भाविष्यब्दस्य भूतकालत्वे भाव्यासीच्छब्दयोः पर्यायत्वाद् युगपत्प्रयोगो न स्यात् ॥ १ ॥

( उद्द्योतः ) पूर्वोक्तेनेति । गुणप्रधानभावरूपन्यायाश्रयणाभिप्रायेणेत्यर्थः ॥ भाविष्यब्दस्येति । यदि यत्कालं भावितया व्यवहृतं तदासीदिति हि तदर्थं उचितः । न तु अतीतमासीदिति । तथा सति पर्यायत्वापत्तिरिति भावः ॥ इत्येतत्तस्मिन्निति । इत्येतत्पदं तस्मिन्भवितेत्यर्थः । एवं प्रत्याख्याते सूत्रे वसन्ददर्शेत्यादौ वर्तमानत्वमारोप्य शता । तत्फलं तु तत्समानकालत्वस्य दर्शने लाभः । शतसूत्रे क्रिययोः समानकालत्वप्रतीतेः । यद्वा दर्शनकालिकं वासत्य वर्तमानत्वमाश्रित्य प्रत्ययः । एवमेव । ननु चोत्पत्तैव वचनलोपं चोदिताः स्य इति सरूपसूत्रस्य भाष्यप्रयोगोपपत्तिः । गोमानासीदित्यत्र देवदत्तस्य विद्यमानत्वेऽपि गोमैद्रूपस्यातीतत्वाद्भूतं प्रत्ययः । तत्रार्थाद्भवामप्यतीतत्वप्रतीतिरिति दिक् ॥

( ५९१ कालान्तरे लोड्विधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. २ )

११६३ क्रियासमभिहारे लोड लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥ ३।४।२ ॥

( ५०२६ वार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हिस्वयोः परस्मैपदात्मनेपदग्रहणं लादेशप्रतिषेधार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हिस्वयोः परस्मैपदात्मनेपदग्रहणं कर्तव्यम् । हिः परस्मैपदानां यथा स्यात्स्व आत्मनेपदानामिति ॥ किं प्रयोजनम् ? । लादेशप्रतिषेधार्थम् । लादेशौ हिस्वौ मा भूतामिति ॥

१ अस्त्वस्य श्राटकं वयेतिवदिति भावः । ( र. ना. )

२ वाक्यार्थवशात्प्रतीयते इति संबन्धः । ( र. ना. )

३ अप्रधानीभूताया इत्यर्थः । अन्यथोपलक्षणत्वविशेषणत्वयोरेकत्रासम्भवाद-

संगतिः स्यादिति भावः । ( र. ना. )

४ वर्तमानकालस्यैव मत्तपो विहितत्वात्कथं गोमद्रूपस्यातीतत्वमिति किं न्यम् । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) क्रियासम ॥ २ ॥ हिस्वयोरिति । सामान्यविहितानां तिङां शतृशानज्भ्यामिव हिस्वाभ्यां बाधः प्राप्नोतीति स्थानिनिर्देशार्थं परस्मैपदात्मनेपदग्रहणं कर्तव्यमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) क्रियासममि ॥ २ ॥ भाष्ये हिस्वयोरिति । तद्विधायके इत्यर्थः ॥ ननु परत्वात्तिङ्गु कृतेषु तेषामेवैतौ भविष्यत इत्यत आह—सामान्येति ।

( प्रश्नभाष्यम् )

किं च स्यात्—यदि लादेशौ हिस्वौ स्याताम् ।

( समाधानभाष्यम् )

तिङन्तं पदमिति पदसंज्ञा न स्यात् ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

मा भूदेवम् । सुबन्तं पदमिति पदसंज्ञा भविष्यति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं स्वाद्युत्पत्तिः ।

( ५०२७ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ लकारस्य कृत्वात्प्रातिपदिकत्वं तदाश्रयं प्रत्ययविधानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लकारः कृत् तस्य कृत्वात् कृत्प्रातिपदिकमिति प्रातिपदिकसंज्ञा तदाश्रया प्रातिपदिकाश्रया स्वाद्युत्पत्तिरपि भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) लकारः कृदिति । तत्र स्थानिवद्भावाद् हिस्वयोरपि कृत्वात्तदन्तस्य प्रातिपदिकत्वाद् स्वाद्युत्पत्तिर्भवतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) लस्य कृत्वेऽपि हिस्वयोः किमायातमित्यत आह—तत्रेति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यदि स्वाद्युत्पत्तिः, सुपां श्रवणं प्राप्नोति ।

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

अव्ययादिति सुबलुक् भविष्यति ॥

कथमव्ययत्वम् ? ।

विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाता भवन्तीति निपातसंज्ञा । निपातोऽव्ययमिति अव्ययसंज्ञा ॥

( प्रदीपः ) विभक्तीति । विभक्तिसंज्ञकहिस्वसदृशत्वाद-नयोर्हिस्वयोरव्ययत्वमित्यर्थः ॥

१ 'स भवान् लुनीहि लुनीहि लुनाति' इत्येवमेव प्रयोगोऽभिप्रेतः । तत्रैव 'निघातो न प्राप्नोति' इति संगच्छते ॥ मध्ये 'इत्येवायम्' इत्यस्य प्रयोगे वास्तविके तु अयमित्यन्तिङन्तत्वे निघातः सिध्यत्येवेति न प्राप्नोतीत्यसंगतं स्यात् ॥ अनुप्रयोगशब्दस्य व्यवहिताव्यवहितसाधारणे शक्तिरिति दर्शयितुमेव भाष्यकृता मध्ये 'इत्येवायम्' इति प्रयुक्तम् ॥ इति दाधिमथाः ॥

२ लुनीहीत्यस्योक्तत्वात् सुबन्तत्वेन पदत्वेऽपि तिङन्तत्वाभावेन तिङन्तोद्देशकनिघातो न स्यादिति भगवदभिप्रेतम्-अनुप्रयुज्यमानस्य तिङन्तत्वे न किञ्चिद् बाधकं नापि सिद्धान्ते तस्य निपातत्वमिदं तिङन्तपरत्वाद्वाचित्वादादि-चिन्त्या दाधि-

( उद्घोतः ) अव्ययत्वमिति । तदन्तस्य विभक्त्यन्तप्रतिरूपकत्वादव्ययत्वमिति भावः ॥

( दूषणभाष्यम् )

इह तर्हि 'स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति' "तिङ्तिङः" इति निघातो न प्राप्नोति ।

( ५०२८ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ समसंख्यार्थं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) समसंख्यार्थं च हिस्वयोः परस्मैपदात्मनेपदग्रहणं कर्तव्यम् । हिः परस्मैपदानां यथा स्यात् । स्व आत्मनेपदानाम् । व्यतिकरो मा भूदिति ।

( प्रदीपः ) व्यतिकरो मा भूदिति । यदि लकारस्यैव स्थाने हिस्वौ विधीयेयातां तदा लः परस्मैपदमिति द्वयोरपि परस्मैपदसंज्ञा स्यात् । ततश्च द्वावपि परस्मैपदिभ्य एव स्यातामित्यर्थं व्यतिकरः स्यादित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) हिस्वयोरित्यस्य हिस्वौत्तयोरित्यर्थः ॥ ननु व्यतिकरो नामात्मनेपदिभ्योऽपि हिः, परस्मैपदिभ्योऽपि स्व इत्याकारः । स चानुपपन्नः आत्मनेपदसंज्ञाऽभावेन लादेशत्वेन परस्मैपदसंज्ञासत्त्वेन चात्मनेपदिभ्यो विधानानुपपत्तेरत आह—यदीति ॥

( ५०२९ प्रथमवार्तिकोक्तदूषणवारकवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ न वा तध्वमोरादेशवचनं ज्ञापकं पदादेशस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा हिस्वयोः परस्मैपदात्मनेपदग्रहणं कर्तव्यम् ॥ किं कारणम् ? । तध्वमोरादेशवचनं ज्ञापकं पदादेशस्य । यद्यं "वा च तध्वमोः" इत्याह तज्ज्ञापयत्याचार्यः—'पदादेशौ हिस्वौ' इति ॥

( प्रदीपः ) न वेति । यदि लस्यैव हिस्वौ स्यातां तदा तध्वमोर्लोदस्थानिकयोरभावाद्वा च तध्वमोरिति स्थानित्वेनोपादानमनुपपन्नं स्यादिति तध्वमोः स्थानित्वेनोपादानाच्छेदशब्देन लोडादेशानां परस्मैपदात्मनेपदानां स्थानित्वमवसीयत इत्यर्थः ॥ पदादेशस्येति । पदशब्देन पदसंज्ञानिमित्तानि तिङ उच्यन्ते । अथ वा सर्वे सर्वपदादेशा इति न्यायात्तिङन्तस्य हिस्वान्तादेशप्रवृत्तिः ॥

( उद्घोतः ) ननु तिङो हिस्वौ, न च तावन्मात्रं पदं तद-

मथाः । ( र. ना. )

३ 'हिस्वान्तयोः' इत्यर्थकरणे बीजं चिन्त्यम् । 'लः परस्मैपदम्' इत्यनेन नैव लादेशान्तानां परस्मैपदसंज्ञा क्रियते । तथा सति क्राम्यति अवधीत इत्यादिषु कस्य परस्मैपदत्वम्, कस्य चाङ्गत्वमिति भूयानुपपन्नः स्यात् ॥

४ प्रदीपे हिस्वयोरव्ययत्वमित्युक्तं तच्च सङ्गतं तयोः केवलयोरप्रयोगेण तन्मात्रयोरव्ययत्वानुपपत्तेरन्तदन्तपरत्वेनोद्घोते व्याख्यातमिति अतएवात्र ननु तिङो हिस्वौ न च तावन्मात्रं पदमित्युद्घोतग्रन्थोऽपि सङ्गच्छत इति चिन्त्या दाधिमथाः । ( र. ना. )

न्तस्य पदत्वादिति पदादेशस्येत्युक्तमत आह—पदशब्देनेति ॥  
निमित्तानीति । निमित्तशब्दो नित्यनपुंसक इति भावः ॥ केचित्तु  
नामैकदेशग्रहणेन परस्मैपदात्मनेपदे पदशब्देन भाष्ये उच्येते  
इत्याहुः ।

( ५०३० आक्षेपवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र पदादेशो पित्वाटोः

प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तत्र पदादेशो पित्त्वस्याटश्च प्रतिषेधो  
वक्तव्यः । पित्त्वस्य तावत्—स भवान्लुनीहि लु-  
नीहीत्येवायं लुनाति । आटः खल्वपि—सोहं लु-  
नीहि लुनीहीत्येवं लुनामि ।

( प्रदीपः ) पित्त्वस्येति । तिप्सिबुमिपां स्थाने विधीय-  
मानो हिः स्थानिवद्भावात्पित्त्वात् ततश्च डित्त्वाभावाल्लुनीही-  
तीत्वं न त्यात् । अनुदात्तत्वं च हेः प्रसज्येत लुनीहि लुनीहि  
स भवानित्यादौ, परस्य लुनीहिशब्दस्य तस्य 'परमात्रेडि-  
तम्' 'अनुदात्तं चे'त्यनुदात्तत्वं भवति ॥

( उद्धोतः ) स्थानिवद्भावादिति । न च सार्वधातुकमपि-  
दित्यतिदेशान् डित्त्वं स्यात् परत्वादिति वाच्यम् । एतद्विषयेऽपि  
स्थानिवद्भावप्रवृत्त्यातिदेशिकपित्त्वमादायापिदिति निषेधप्रवृत्तेः । अ-  
न्यथा एतु अकरवमित्यादौ गुणानापत्तिरिति दिक् ॥ स भवानित्या-  
दाविति । आदिखण्डे इति शेषः । तद्ध्वनयन्नाह—परस्येति ।

( पित्त्वप्रतिषेधानावश्यकत्वभाष्यम् )

पित्त्वस्य तावन्न वक्तव्यः । पित्त्वप्रतिषेधे योग-  
विभागः करिष्यते । इह “सेहिं” सेहिंभवति ।  
ततः “अपिच्च” अपिच्च भवति यावान् हिनामेति ।

( प्रदीपः ) यावानिति । योगविभागकरणसामर्थ्यादा-  
नन्तर्यं नापेक्ष्यत इत्यर्थः ॥

( उद्धोतः ) नन्वनन्तरस्येति न्यायात् यावानित्यसंगतमत  
आह—योगविभागेति ।

( आटप्रतिषेधानावश्यकत्वभाष्यम् )

आटश्चापि प्रतिषेधो न वक्तव्यः । आटि कृते  
साट्कस्यादेशो भविष्यति । इदमिह संप्रधार्यम् ।  
आट् क्रियताम्, आदेश इति । किमत्र कर्तव्यम् ? ।  
परत्वादाडागमः ॥

नित्य आदेशः । कृतेप्याटि प्राप्नोत्यकृतेपि प्रा-  
प्नोति ॥

आडपि नित्यः । कृतेप्यादेशो प्राप्नोत्यकृतेपि ॥

अनित्य आट् । अन्यस्य कृतेप्यादेशो प्राप्नोत्यन्य-  
स्याकृतेपि प्राप्नोति “शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन्वि-  
धिरनित्यो भवति” ॥

आदेशोप्यनित्यः । अन्यस्य कृते आटि प्राप्नोति  
अन्यस्याकृते प्राप्नोति । “शब्दान्तरस्य च प्राप्नुव-  
न्विधिरनित्यो भवति” । उभयोरनित्ययोः परत्वा-  
दाडागमः ॥ आटि कृते साट्कस्यादेशो भविष्यति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इदं तर्हि भुङ्क्ष्व भुङ्क्ष्व इत्येवं भुनजै इति “श्र-  
सोरलोपः” इत्यकारलोपो न प्राप्नोति ।

( प्रदीपः ) भुङ्क्ष्व भुङ्क्ष्वेति । परत्वादाटि कृते उत्त-  
मस्य पित्त्वे स्वादेशः स्थानिवद्भावात्पित्त्वादिति डित्त्वाभावा-  
लोपाप्रसङ्गः ॥

( उद्धोतः ) भाष्ये भुङ्क्ष्वेत्यस्यानुप्रयोगे ‘भुनजै’ इति पाठः ॥  
पित्त्वेन स्वादेश इति पाठः कैयटे ॥

( आक्षेपपरिहारस्वरूपभाष्यम् )

समसंख्यार्थत्वं चाप्यपरिहृतमेव ।

( प्रदीपः ) समसंख्यार्थत्वमिति । सर्वेषां तिङां द्वा-  
वपि पर्यायेण स्यातामित्यर्थः ।

( उद्धोतः ) सर्वेषां तिङामिति । तिङादेशत्वे ज्ञापितेऽप्ययं  
दोष इत्यर्थः ॥

( ५०३१ समाधानवार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु लोणमध्यमपुरुषस्यैक-  
वचनस्य क्रियासमभिहारे  
द्विर्वचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् ॥ कथम् ? । लोणमध्यम-  
पुरुषैकवचनस्य क्रियासमभिहारे द्वे भवतः । इति  
वक्तव्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

केन विहितस्य क्रियासमभिहारे लोणमध्यमपुरु-  
षैकवचनस्य द्विर्वचनमुच्यते ? ।

( समाधानभाष्यम् )

एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो ‘भवति क्रियासमभि-  
हारे लोट्’ इति । यदयं क्रियासमभिहारे लोणम-  
ध्यमपुरुषैकवचनस्य द्विर्वचनं शास्ति ॥

( प्रदीपः ) एतदेवेति । वृद्धकुमारीवरन्यायेन कि-  
यासमभिहारविषयो लोटुमीयत इत्यर्थः ।

( उद्धोतः ) वृद्धकुमारीति । एतद्भाष्यवार्तिकस्वरसात्  
क्रियासमभिहार इति वार्तिकं लोटन्तविषयकमेव द्रष्टव्यम् ।  
अन्यथा तस्येतीभिन्नवचनत्वे गौरवं स्यात् इत्याहुः ।

( ज्ञापकत्वनिरासभाष्यम् )

कुतो न खल्वेतत्—ज्ञापकादत्र लोट् भविष्यति ।  
न पुनर्य एवासावविशेषविहितः स यदा क्रियास-  
मभिहारे भवति तदा तस्य द्विर्वचनं भवतीति ॥

१ आहुतस्य पिबेति विहितस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

२ वृद्धकुमार्या वरसयोगमन्त रागमिधानासम्भवाद्भरसयोगोऽनुमीयते तथेहापि

क्रियासमभिहारलोडमन्तरा तदन्तस्य वचनेन द्विर्वचनासम्भवात्तदर्थे लोट्-  
विधानमनुमीयते इति भावः । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) कुतो न्विति । ज्ञापकं विधयति ॥ विध्या-  
विषयस्य लोटो विद्यमानत्वात् क्रियासमभिहारविषयस्य  
तस्यैवादेशयोर्द्विवचनार्थं ग्रहणं स्यादित्यर्थः ॥

( दूषणान्तरभाष्यम् )

लोपमध्यमपुरुषैकवचन एव खल्वपि सिद्धं  
स्यात् । इमौ चान्यौ हिस्वौ सर्वेषां पुरुषाणां सर्वेषां  
वचनानामिष्येते ।

( प्रदीपः ) सर्वेषामिति । प्रसङ्ग इति शेषः ॥

( उद्ध्योतः ) दोषान्तरमप्याह—भाष्ये लोटमध्यमेति ।  
ननु सर्वेषां स्थाने इत्यर्थेऽसंभवः परस्मैपदादिग्रहणाभावादत आह—  
प्रसङ्ग इति शेष इति ।

( दूषणभाष्यम् )

सूत्रं च भिद्यते ।

( उद्ध्योतः ) दोषान्तरमप्याह—भाष्ये सूत्रं चेति ।

( समाधानभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ।

( आक्षेपसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं हिस्वयोः परस्मैपदात्मनेपदग्रहणं  
लादेशप्रतिषेधार्थं समसंख्यार्थं चेति ।

( समाधानभाष्यम् )

नैष दोषः ।

( ५०३२ वार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥ \* ॥ योगविभागात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) योगविभागः करिष्यते—“क्रियास-  
मभिहारे लोट्” क्रियासमभिहारे लोट् भवति ।  
ततो “लोडो हिस्वौ” लोटो हिस्वौ भवतः । लोटि-  
त्येवानुवर्तते लोटौ यौ हिस्वाविति ॥ कथम् “वा  
च तध्वमोः” इति ? । वा च तध्वंभाविनो लोट  
इत्येवमेतद् विज्ञायते ॥ क्रियासमभिहारे ॥ २ ॥

( प्रदीपः ) लोटौ याविति । लोडदेशौ यौ हिस्वौ दृष्टौ  
तत्तुल्याचनेन हिस्वौ भवत इत्यर्थः । तेन तदीयकार्यातिदेशा-  
त्परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञे हिस्वयोर्भवतः । तेन परस्मैपदिभ्यो  
हिरात्मनेपदिभ्यस्तु स्त्रो भवति । हिशब्दस्य कर्ता वाच्यः,  
स्वशब्दस्य भावकर्मकर्तारः । तिङ्त्वं च भवतीति तिङ्ङितिङ्  
इत्यादि कार्यं भवति ॥ पुरुषैकवचनसंज्ञे तु सामर्थ्यान्न भवतः ॥  
यदि हि ते अपि स्यातां हिस्वयोरनेन विधानमनर्थकं स्याद्  
वचनान्तरेण तयोः सिद्धत्वात् ॥ तध्वंभाविन इति । मु-  
ख्यार्थासंभवे गौणो कल्पनाश्रीयते । ततश्च तध्वंभाविलालोडेव  
तध्वंशब्दाभ्यामुच्यत इति भावः ।

( उद्ध्योतः ) लोडादेशामिति । लोटित्यस्य च लोट्बुद्धि-

त्यर्थः ॥ स्यान्निवत्त्वेनेव लोट्बुद्धिर्मातिदेशस्य सिद्धेः पुनर्लोड्बुद्धि-  
वचनं लोट्स्थानिकहिस्ववदतिदेशार्थमिति भावः ॥ अतिदेशफल-  
माह—तेनेति ॥ वचनान्तरेणेति । पुरुषादिसंज्ञायां शुभ्रंत्सामा-  
नाधिकरण्ये एकत्वे च भाव्यं तत्र च व्यर्थं स्थयोर्विधिरिति भावः ॥ २ ॥

( ५९२ अनुप्रयोगविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. ३ )

११६५ यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्

॥ ३ । ४ । ४ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

अनुप्रयोगो यथा स्यात् ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । हिस्वान्तमव्यक्तपदार्थकम्  
तेनापरिसमाप्तोर्थ इति कृत्वा अनुप्रयोगो भवि-  
ष्यति ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनम् ‘यथाविधीति वक्ष्यामीति ॥

( प्रदीपः ) यथावि ॥ ४ ॥ हिस्वान्तमिति । संख्या-  
कालपुरुषाणामनभिव्यक्तत्वात् ॥

( उद्ध्योतः ) यथाविध्य ॥ ४ ॥ ननु क्रियारूपार्थप्रतीतेः  
कथमनभिव्यक्तपदार्थकत्वमत आह—संख्येति ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । “समुच्चये सामा-  
न्यवचनस्य” इति वक्ष्यति । तत्रान्तरेण वचनं यथा  
विध्यनुप्रयोगो भविष्यति ॥ यथाविध्य ॥ ४ ॥

( प्रदीपः ) एतदपीति । समुच्चय एव धात्वन्तरस्यानु-  
प्रयोग इति नियमात् क्रियासमभिहारे यथाविध्यनुप्रयोगो भ-  
विष्यति ॥ ननु समुच्चये सामान्यवचनस्यैवेति नियमः स्यात् ।  
ततश्च धात्वन्तरस्यापि लोटप्रकृतिसमानार्थस्य क्रियासमभिहारे-  
ऽनुप्रयोगः स्यात् । नैतदस्ति—नह्येकस्या आकृतेश्चरितः  
प्रयोगो द्वितीयस्याश्च तृतीयस्याश्च भवतीति न्याया-  
लोदप्रकृतिरेवानुप्रयोक्ष्यते । पूर्वव्यवहितप्रयोगनिवृत्तिरपि नेष्टा,  
यतस्तदर्थो योगः स्यात् ॥ ४ ॥

( उद्ध्योतः ) नह्येकस्या इति । एतेन ‘समुच्चय एव सामा-  
न्यवचनस्येति नियमेऽपि प्रकृतेन पर्यायव्यावृत्तिरित्यपास्तम् ॥  
समुच्चयविषये सामान्यवचनस्येति वचनाश्रयायैवापि प्रकृतविषये  
तत्रायवाधे मानाभावादिनापि वचनं सिद्धमिति भाष्याक्षरार्थः ॥  
नेष्टेति । अत एव लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनातीति भाष्ये व्यव-  
हितप्रयोगः संगच्छते । तेनानुप्रयोगशब्दार्थव्यभिचार उक्तः ॥

१ प्रथमान्तमनुवर्तमानं लोट् पदं लोडादेशपरं तद्वृत्तातिदिश्यत इति  
भावः । ( र. ना. )

२ शुभ्रंत्सामानाधिकरण्येनैकत्वेन च भाव्यमिति शोभनः पाठो भाति ।  
( र. ना. )

३ नह्येकस्या इति न्यायवाच्येऽपीत्यर्थः । ( र. ना. )



पूर्वप्रयोगस्तु यदि नेष्टस्तदानभिधानाद्वारणीयः ॥ यद्वेष्ट एव स  
इत्याहुः ॥ ४ ॥

( ५९३ अनुप्रयोगविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. ४ )

**११६६ समुच्चये सामान्यवचनस्य**

**॥ ३ । ४ । ५ ॥**

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

अनुप्रयोगो यथा स्यात् ।

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । हिस्वान्तमनभिन्नकपदा-  
र्थकं तेनापरिसमाप्तोर्थ इति कृत्वानुप्रयोगो भवि-  
ष्यति ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

इदं तर्हि प्रयोजनं सामान्यवचनस्येति चक्ष्या-  
मीति ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

एतदपि नास्ति प्रयोजनम् । सामान्यवचनस्यानु-  
प्रयोगोऽस्तु विशेषवचनस्येति । सामान्यवचनस्यैवा-  
नुप्रयोगो भविष्यति । लघुत्वात् ॥ समुच्चये सा ॥ ५ ॥

( प्रदीपः ) समुच्चये ॥ ५ ॥ लघुत्वादिति । एतच्च लाघवं  
क्वचिदेव विषये शिष्टप्रयोगदर्शनादाद्रियते, न सर्वत्र, अन्यथा  
तरुद्रुमादीनामेव प्रयोगः स्यान्न वनस्पत्यादिशब्दानाम् ॥ ५ ॥

( उद्द्योतः ) समुच्चये सामा ॥ ५ ॥ भाष्ये लघुत्वादिति ।  
सर्वविशेषानुगतैकसामान्यवाचकानुप्रयोगे सामान्यस्य संनिहितवि-  
शेषपर्यवसानात्सर्वेषां कालाद्यभिव्यक्तौ सिद्धायां विशेषवाचकाना-  
धातुप्रयोगे गौरवादिति भावः ॥ क्वचिदेवेति ॥ अपर्यायविषये  
इत्यर्थः । एवं च तरुद्रुमवनस्पत्यादिषु पर्यायेषु लाघवगौरवानाद-  
रात् न दोषः ॥ इहत्वपर्यायत्वं स्पष्टमेवेत्याहुः ॥ ५ ॥

( ५९४ लेङ्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. ५ )

**११६९ उपसंवादाशङ्कयोश्च ॥ ३ । ४ । ८ ॥**

( ५०३३ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

**॥ \* ॥ उपसंवादाशङ्कयोर्वचनानर्थक्यं  
लिङ्गर्थत्वात् ॥ \* ॥**

( भाष्यम् ) उपसंवादाशङ्कयोर्वचनमनर्थकम् । किं

कारणम् ? । लिङ्गर्थत्वात् । “लिङ्गर्थे लेट्” इत्येव  
सिद्धम् ॥ कः पुनर्लिङ्गर्थः ? । केचित्तावदाहुः—  
“हेतुहेतुमतोर्लिङ्ग” इति । अपर आहुः—वक्तव्य  
एवैतस्मिन्विशेषे लिङ् । प्रयुज्यते हि लोके ‘यदि मे  
भवानिदं कुर्याद्, अहमपि त इदं दद्यामिति ॥ उप-  
संवादा ॥ ८ ॥

( प्रदीपः ) उपसंवा ॥ ८ ॥ उपसंवादेति । नित्या-  
र्थमिदमिति चेच्छन्दसि नित्योत्र लेट् दृश्यत इत्यत्र प्रमाणा-  
भावः । व्यवस्थितविभाषया वा नित्यं लेट् भविष्यति ॥ हेतु-  
हेतुमतोरिति । उपसंवादः कर्तव्ये पणवन्धः । यदि मे भवा-  
निदं कुर्यात् अहमपि ते इदं दद्यामिति । तत्र करणं हेतुर्दानं  
हेतुम् ॥ आशङ्क्यापि कारणात्कार्योत्प्रेक्षेति हेतुहेतुमद्भावः ॥  
अपर इति । करणमवधिर्दानमवधिमदित्यवधिमद्भाव उप-  
संवादे प्रतीयते न तु हेतुहेतुमद्भावः । आशङ्क्यायामपि नि-  
श्चितो हेतुहेतुमद्भावो नास्तीति भावः । लिङ्प्रयोगसिद्धये अ-  
वश्यवक्तव्यो लिङ् न तु सूत्रप्रत्याख्यानार्थैव ॥ ८ ॥

( उद्द्योतः ) उपसंवादा ॥ ८ ॥ इदं नित्यं लेट् विधानार्थं  
तदाह—नित्यार्थमिति । पूर्वसूत्रे हि लिङ्गर्थे लेट् इत्यत्रान्यतरसां  
ग्रहणमनुवर्तत इति भावः ॥ व्यवस्थितेति । वेदे आपाद्यरूपा-  
भावात्सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वाददोष इत्यन्ये । करणं  
हेतुरिति । तदुत्तरकालत्वादानस्येति भावः ॥ करणमवधिरिति ।  
तदनुदानस्य तत्करणाभावेऽपि बहुशो दृष्टत्वात्तत्करणे सत्यपि बहु-  
शस्तदानाभावाच्च व्यक्तिविशेषयोः सत्यपि पूर्ववार्तिकोत्तरवर्तित्वे  
नियमघटितकारणत्वस्य नैतच्छब्दतो भानम् । किं त्ववधिवधिम-  
द्भावस्येति भावः ॥ भाष्ये इदमेवाशङ्क्या अप्युदाहरणम् ।  
संभावनापरत्वेन तद्व्याख्यानस्य संभवात् ॥ संभावनेव चात्राशङ्का  
तदाह—आशङ्क्यायामपीति । अकारणवादकार्योत्प्रेक्षाया अपि दर्श-  
नादित्यपि बोध्यम् ॥ लिङ्प्रयोगेति । लोकेपीत्यर्थः । एवं च  
अनयोरपि लिङ्गर्थत्वाल्लिङ्गर्थे लेट् इत्येव सिद्धे इदं न कार्यमिति  
भावः ॥ ८ ॥

( अथाव्ययसंज्ञककृतप्रकरणम् )

( ५९५ सेप्रभृतिप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ० ६ )

**११७० तुमर्थे सेसेनसेअसेनक्सेकसेन-  
ध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्त-  
वैतवेङ्गुतवेनः ॥ ३ । ४ । ९ ॥**

( आक्षेपभाष्यम् )

तुमर्थे इत्युच्यते कस्तुमर्थो नाम ।

१ एतच्च लाघवं क्वचिदेव विषये आद्रियते शिष्टप्रयोगदर्शनात् सर्वत्रैति  
मोचना । ( र. ना. )

२ तरुद्रुमस्तु क्वचिदेवेति भाष्यस्थपदस्य शिष्टप्रयोगविषय एवेत्यर्थः । वनस्प-  
त्यादिशब्दानां तरुद्रुमादिपर्यायत्वं तु न किन्तु विशेषवाचित्वमेव । अत एव

‘वानस्पत्यः कलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद् वनस्पतिरि’त्यमरः । ( र. ना. )

३ तदाशङ्क्याहेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ इदं कुर्याद् इदं दद्यामिति शब्दत इत्यर्थः । ( र. ना. )

५ अकारणादिति पाठः साधुः । ( र. ना. )

( समाधानभाष्यम् )

कर्ता तुमर्थः ।

( समाधाननिरासभाष्यम् )

यद्येवं नार्थस्तुमर्थग्रहणेन । येनैव खल्वपि हेतुना कर्तरि तुमुन्भवति तेनैव हेतुना सयाद्योपि भविष्यन्ति ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

एवं तर्हि सिद्धे सति यत्तुमर्थग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः 'अस्त्यन्यः कर्तुस्तुमुनोर्थः' इति ॥ कः पुनरसौ ? भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कुतो नु खल्वेतद् । भावे तुमुन् भविष्यति, न पुनः कर्मादिषु कारकेषु स्यादिति ॥

( प्रदीपः ) तुमर्थे सेसे ॥ ९ ॥ कुतोन्विति । कियया कर्मादीनामाक्षेपात्रिध्वेव तुमुन् स्यादिति भावः ॥

( उद्घोतः ) तुमर्थे ॥ ९ ॥ ननु कर्मादिपदानुपादानात्कथं तेषु प्रसक्तिरत आह—क्रिययेति ॥

( समाधानभाष्यम् )

ज्ञापकात्तावदयं कर्तुरपकृत्यते । न चान्यसिद्धर्थे भौदिश्यते । "अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्तीति स्वार्थे भविष्यति । तद्यथा । "शुसिज्जिक्कः सन्" "यावादिभ्यः कन्" इति । सोऽसौ स्वार्थे भवन् भावे भविष्यति । किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्—"अव्ययकृतो भावे भवन्ति" इत्येतन्न वक्तव्यं भवति ॥ तुमर्थे से ॥ ९ ॥

( प्रदीपः ) न वक्तव्यमिति । तुमर्थग्रहणानुवृत्त्या क्त्वादीनां भावे सिद्धत्वात्साध्यमानरूपश्च भावः क्त्वादीनामर्थः । स एव च धात्वर्थः । घञादीनां तु धात्वर्थव्यतिरिक्तः सिद्धरूपो वाच्यः ॥ ९ ॥

( उद्घोतः ) ननु अव्ययकृतो भावे इत्येतत्सत्त्वे घञादिवत्सिद्धे भावे तुमुनादयः स्युः । स्वार्थे विधाने तु साध्ये भावे इति विशेषोऽत आह—साध्यमानेति । वार्तिकेपि भावशब्देन साध्यभावग्रहणमिति भावः । तुमर्थे इत्यनुवादाच्च तुमोऽपि भावे सिद्धिरिति बोध्यम् ॥ ९ ॥

( ५९६ क्त्वाप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. ७ )

११८० उदीचां माडो व्यतीहारे

॥ ३ । ४ । १९ ॥

( 'नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम्' इति परिभाषाज्ञापनाधिकरणम् )

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं मेडः सानुबन्धकस्यात्वभूतस्य ग्रहणं

क्रियते । न 'उदीचां मेडः' इत्येवोच्येत । तत्रायमप्यर्थः—'उदीचां मेडः' इति व्यतीहारग्रहणं न कर्तव्यं भवति । किं कारणम् । तद्विषयो हि सः । व्यतीहारविषय एव मयतिः ॥

( समाधानभाष्यम् )

एवं तर्हि सिद्धे सति यन्मेडः सानुबन्धकस्यात्वभूतस्य ग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यः "नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वं भवति" इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

\*तत्रासरूपसर्वादेशदापप्रतिषेधेषु "पृथक्त्वनिर्देशोऽनाकारान्तत्वात्" इत्युक्तम्, तन्न वक्तव्यं भवति ॥

( प्रदीपः ) उदीचाम् ॥ १९ ॥ नानुबन्धकृतमिति । एतच्च ज्ञापनमनुबन्धानामेकान्तत्वे उपयुज्यते । अनेकान्तत्वे खत एव एजन्तत्वाज्ज्ञापनप्रयोजनाभावः ॥ पृथक्त्वनिर्देशोऽनाकारान्तत्वादित्येतद् दापप्रतिषेधग्रहणेनैव संबध्यते । दाधाइवदावित्यत्र दपोपि पृथक् प्रतिषेधो वक्तव्यः अनाकारान्तत्वाद्भाष्यत्वाभावादित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) उदीचां माडो ॥ १९ ॥ नानुबन्धेति । तेनानुबन्धविशिष्टस्याप्यात्वमिति भावः ॥ एकान्तत्वे इति । अयमेव पक्षो न्याय्य इति तस्य लोप इति सूत्रे भाष्ये ॥ १९ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं पुनरिदमुच्यते, न "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इत्येव सिद्धम् ।

( समाधानभाष्यम् )

अपूर्वकालार्थोयमारम्भः । पूर्वं ह्यसौ याचते पञ्चादपमयते ॥ उदीचां माडो व्यतीहारे ॥ १९ ॥

( प्रदीपः ) अपमयत इति । वस्त्रादिकं परिवर्तयतीत्यर्थः ॥ १९ ॥

( ५९७ क्त्वाप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. ८ )

११८२ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले

॥ ३ । ४ । २१ ॥

( प्रदीपः ) समान ॥ २१ ॥ समानशब्द एकवाची शक्तिरिति तत्राभावेदविषयया क्रिययोरेककर्तृकत्वम् ॥

( उद्घोतः ) समानकर्तृकयोः ॥ २१ ॥ ननु कर्तृशब्देन शक्तिरभिधानात्तस्याश्च क्रियाद्वयविषयाया भेदाद्वैककर्तृकत्वं युक्तं

१ आदिश्यते, उपदिश्यत इत्यर्थः । तुमुधिति शेषः । ( र. ना. )

२ साध्यत्वेन क्रिया तत्र धातुरूपनिबन्धना । सिद्धभावस्तु यस्तस्याः च घञादिनिबन्धन इत्यभिप्रेत्युक्तोक्तिरिति भावः । ( र. ना. )

३ माऽतु मेडो निष्पन्नो व्यतीहारेऽन्योऽन्यतिहार इति माड इति निर्देशो व्यतीहारग्रहणं कर्तव्यं भवति । ( र. ना. )

४ पृथक्त्वनिर्देश इत्यस्य पृथक्त्वेन निर्देशः कर्तव्यः प्रतिषेधार्थमित्यर्थः लोकारेणमर्थः फलति । ( र. ना. )

क्रिययोरत आह—शक्तीति ॥ शक्तिमद्वैकत्वस्य शक्त्योरारोपणै-  
ककर्तृकत्वोपपत्तिरिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह कस्मान्न भवति पूर्वं भुङ्क्ते पश्चाद् व्रजतीति ॥

( समाधानभाष्यम् )

स्वशब्देनोक्तत्वात् न भवति ॥

( प्रदीपः ) स्वशब्देनेति । पौर्वकाल्ये द्योत्ये क्त्वादिवि-  
धीयते न तु विषय इति भावः । पूर्वशब्दस्यात्र क्रियापौर्वका-  
ल्यवाचित्वादप्रादिसूत्रेणापि न भवति । अप्रादीनां साधनपौर्व-  
काल्यविषयाणां तत्र ग्रहणात् ।

( उद्धोतः ) भाष्ये स्वशब्देनेति । नात्र धातोः पूर्वकाल-  
विशिष्टक्रियावृत्तिता, किं तु स्वार्थमात्रवृत्तिरेति भावः ॥ पूर्वकालश्च  
क्त्वाद्योत्यस्तदाह—पौर्वकाल्ये द्योत्य इति । न तूक्तार्थानामिति  
न्यायस्य विषयोऽयं द्योतकस्थले प्रायशस्तदप्रवृत्तेः । तद्ध्वनयन्—  
वक्ष्यति—इह कस्मान्न भवति आस्यते भोक्तुमिति । अन्यथा  
तत्र तुमुनासिक्तियानिष्ठपूर्वकालस्य द्योतितत्वात्तदसंगतिः स्पष्टेति  
दिक् ॥ भाष्ये स्वशब्देनेति । पूर्वशब्देनेत्यर्थः ॥ नन्वत्र विभा-  
षाग्रे इति सूत्रेण भवत्येव क्त्वाऽत आह—पूर्वशब्दस्येति । तत्र  
ग्रहणादिति । अत्र चेदमेव भाष्यं मानम् ।

( आक्षेपभाष्यम् )

न तर्हीदानीमिदं भवति—पूर्वं भुक्त्वा ततो  
व्रजतीति ।

( समाधानभाष्यम् )

नैतत् क्रियापौर्वकाल्यम् । किं तर्हि ? । कर्तृपौर्व-  
काल्यमेतत् । पूर्वं ह्यसौ भुक्त्वान्येभ्यो भोक्तृभ्यः  
ततः पश्चाद् व्रजति अन्येभ्यो व्रजितृभ्यः ।

( प्रदीपः ) नैतदिति । द्विविधात्र भुजेः पूर्वकालता  
व्रजिक्रियापेक्षा तस्यां क्त्वाप्रत्ययः । भोक्त्रान्तरसाध्यभुजिक्रि-  
यापेक्षा च तां पूर्वशब्द उपपादते । ततश्चाप्रादिसूत्रेणात्र  
क्त्वाणमुलौ भवत इति भावः । कर्तृपौर्वकाल्यं च क्रियाद्वारक-  
मेव बोद्धव्यम् । क्रियाविषयत्वात् कालव्यवहारस्य ।

( उद्धोतः ) भोक्त्रन्तरेति । कर्तृपौर्वकाल्यमित्यस्य कर्त्र-  
न्तरसाध्यस्वजातीयक्रियापेक्षपौर्वकाल्यमित्यर्थः इति भावस्तद्ध्वन-  
यन्नाह—कर्तृपौर्वेति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इह कस्मान्न भवति । आस्यते भोक्तुमिति ॥ कुतः  
कस्मान्न भवति ? । किमासेः आहो स्विद् भुजेः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

भुजेः कस्मान्न भवति,

( समाधानभाष्यम् )

अपूर्वकालत्वात् ।

१ विषये इति । वाच्य इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ कस्माद्धातोः कस्मात्कारणान्न भवतीत्यर्थः । ( र. ना. )

( आक्षेपभाष्यम् )

आसेस्ताहिं कस्मान्न भवति ।

( समाधानभाष्यम् )

यस्मादत्र लङ् भवति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

एतदत्र प्रष्टव्यं लङ्त्र कथं भवतीति ।

( समाधानभाष्यम् )

लट् चात्र वासरूपेण भविष्यति ।

( प्रदीपः ) आस्यत इति । आसेः पूर्वकालत्वाद्वाच्य-  
च प्रतिपाद्यत्वात् आसित्वा भोक्तुमिति प्राप्नोतीति भावः ॥

लट्चात्रेति । वासरूपोन्नियामित्यत्र स्त्रियाः प्रागिति पक्षो  
नाश्रितः । किं तर्हि ? रुचधिकारे वासरूपविधिर्नैति । यदा  
त्वासेः क्त्वा भवति तदा भुजेः तुमुश्च भवति अनभिधानात् ।  
न ह्यासित्वा भोक्तुमित्यायभिधानमस्ति । तस्माल्लङादय एव  
भुजेर्भवन्ति आसित्वा भुङ्क्ते इति ॥

( उद्धोतः ) पूर्वकालत्वादिति । तत्र भोजनफलकं पूर्व-  
कालमासनमिति बोध इति भावः । तुमुन्समभिव्याहारे समभि-  
व्याहृतक्रियायां पूर्वकालत्वं तुमुद्योत्यं प्रतीयते । एवं च तत्र क्त्वा  
स्यादिति तात्पर्यम् । एवं च यत्र धातोः पूर्वकालविशिष्टक्रियावाच-  
कत्वं तत्र क्त्वा । तदाह—भाष्ये लट्चात्र वासरूपेणेति । अन्य-  
थास्य पूर्वकालार्थक्त्वाभावेन कथं वाऽसरूपेण सः, समानार्थत्वे हि  
तत्सूत्रप्रवृत्तेः । एवं च भुक्त्वा व्रजतीत्यादौ पूर्वकालभोजनकर्तृकं  
व्रजनमिति बोधः ॥ ननु रुचधिकारात्परतोऽपि वाऽसरूपविधेरभा-  
वात्कथमत्र तेन लङित्यत आह—वासरूप इति । तद्ध्वं वाऽस-  
रूपविध्यभावस्तु काचित्क इति भावः ॥ ननु वाऽसरूपेण लटः  
सिद्धावपि कदाचित्तुमुत्रपि स्यादत आह—यदा त्विति ॥ न  
हीति । तुमुन्नन्तार्थस्य स्वार्थफलकक्रियां प्रति विशेषणत्वनियमात्  
क्त्वान्तार्थस्य च स्वोत्तरकालक्रियां प्रति विशेषणत्वनियमात् । न  
चैतदुभयं युगपत्संभवतीति भावः ॥

( ५०३४ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ समानकर्तृकयोरिति बहुष्वप्राप्तिः

[ द्विवचननिर्देशात् ] ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) समानकर्तृकयोरिति बहुषु क्त्वा न  
प्राप्नोति । स्नात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजतीति ॥

किं पुनः कारणं न सिध्यति ? ।

द्विवचननिर्देशात् ।

द्विवचनेनायं निर्देशः क्रियते । तेन द्वयोरेव  
पौर्वकाल्ये स्याद् बहूनां न स्यात् ॥

( ५०३५ समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ सिद्धं तु क्रियाप्रधानत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सिद्धमेतत् । कथम् ? । क्रियाप्रधान-

३ तुमुन्नन्तसमभिव्याहार इत्यर्थः । ( र. ना. )

४ आसनक्रियायामित्यर्थः । ( र. ना. )

त्वात् । क्रियाप्रधानोयं निर्देशः । नात्र निर्देशस्त-  
न्त्रम् ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

कथं पुनस्तेनैव निर्देशः क्रियते तच्चातन्त्रं स्यात् ।  
तत्कारी च भवान् तद्वेषी च ॥

( उत्तरभाष्यम् )

नान्तरीयकत्वाद् द्विवचनेन निर्देशः क्रियते ।  
अवश्यं कयाचिद्विभक्त्या केनचिद्वचनेन निर्देशः  
कर्तव्यः । तद्यथा—कश्चिदन्नार्थी शालिकलापं सतुषं  
सपलालमाहरति नान्तरीयकत्वात्, स यावदा-  
देयं तावदादाय तुषपलालान्युत्सृजति । तथा—  
कश्चित् मांसार्थी मत्स्यान् सशकलान् सकण्टका-  
नाहरति नान्तरीयकत्वात्स यावदादेयं तावदादाय  
शकलकण्टकान्युत्सृजति । एवमिहापि नान्तरीय-  
कत्वाद् द्विवचनेन निर्देशः क्रियते । न ह्यत्र निर्देश-  
स्तन्त्रम् ॥

( प्रदीपः ) क्रियाप्रधानत्वादिति । समानकर्तृकक्रि-  
यान्तरापेक्षपौर्वकाल्यक्रियाप्रतिपादनपरत्वाच्चिर्देशस्य नान्तरी-  
यकत्वादुपात्तं द्वित्वमत्राविवक्षितमित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) समानकर्तृकेति । समानकर्तृकक्रियान्तरापेक्षं  
पौर्वकाल्यं यस्यास्तत्प्रतिपादनपरत्वादित्यर्थः ॥ निर्धारणे षष्ठी । तत्र  
द्विवचनबहुवचनान्यतरावश्यकत्वेनैकतरोपादनेऽन्यत्र न स्यादिति  
साधुत्वार्थमेव तत् न तु विवक्षितमिति तात्पर्यम् । 'इमौ चेद् व्या-  
धितौ स्यातां देयं स्यादिदमौषधम्' इत्यादी लोके द्वित्वस्याप्यविवे-  
क्षादर्शनात् ॥

( समाधानैवाधकभाष्यम् )

एवमपि लोकविज्ञानान्न सिध्यति । तद्यथा—  
लोके ब्राह्मणानां पूर्वं आनीयतामित्युक्ते सर्वपूर्वं आ-  
नीयते एवमिहापि सर्वपूर्वायाः क्रियायाः प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) लोकविज्ञानादिति । अमीषां ब्राह्मणानां  
पूर्वमानवेत्युक्ते पक्षौ यः सर्वेषामादिः स एवानीयते तथेहापि  
ज्ञात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजतीति ज्ञानस्यैव पूर्वत्वात् ज्ञातेरेव  
प्रत्ययेन भाष्यं न तु भुजिपिबतिभ्यामित्यर्थः ।

( ५०३६ समाधानवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अनन्त्यवचनात्तु सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) समानकर्तृकयोरनन्त्यस्येति वक्तव्यम् ॥

( भाष्यभाष्यम् )

सिध्यति सूत्रं तर्हि भिद्यते ॥

( समाधानभाष्यम् )

यथान्यासमेवास्तु ।

( दूषणस्मरणभाष्यम् )

ननु चोक्तं \*समानकर्तृकयोरिति बहुव्यप्राप्तिः\*  
इति ।

( परिहारस्मरणभाष्यम् )

परिहृतमेतत्—\*सिद्धं तु क्रियाप्रधानत्वाद्\*  
इति ॥

( परिहारासंभवभाष्यम् )

ननु चोक्तम्—'एवमपि लोकविज्ञानान्न सिध्य-  
तीति' इति ।

( परिहारसंभवभाष्यम् )

नैष दोषः । सर्वेषामत्र व्रजिक्रियां प्रति पौर्वका-  
ल्यम् । ज्ञात्वा व्रजति भुक्त्वा व्रजति पीत्वा व्रज-  
तीति । एवं च कृत्वा प्रयोगोऽप्यनियतो भवति ।  
ज्ञात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजति । पीत्वा भुक्त्वा  
ज्ञात्वा व्रजति ॥

( प्रदीपः ) सर्वेषामिति । आख्यातवाच्यायाः क्रियाया  
विशेष्यत्वात्प्राधान्यात्तां प्रति सर्वासां विशेषणत्वात्परस्परैणा-  
सम्बन्धः । यथोक्तम्—गुणानां च परार्थत्वादसंबन्धः  
समत्वादिति ।

( उद्घोतः ) गुणानां चेति । प्रधानक्रियान्वये संभवति  
गुणभूतक्रियान्वयोऽनुचित इति भावः ॥ प्रत्येकानन्तर्यविवक्षाया-  
मिष्टासिद्धिमप्याह—भाष्ये एवं च कृत्वेति । तेन प्रत्येकानन्तर्य-  
विवक्षायां क्त्वा न साधुरित्याहुः ॥ २१ ॥

( ५०३७ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ व्यादाय स्वपितीत्युपसंख्यानम-  
पूर्वकालत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) व्यादाय स्वपितीत्युपसंख्यानं कर्त-  
व्यम् । किं पुनः कारणं न सिध्यति । अपूर्वकाल-  
त्वात् । पूर्वं ह्यसौ स्वपिति पश्चाद्व्याददाति ।

( ५०३८ समाधानवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ न वा स्वप्नस्यापरकालत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यम् । किं कारणम् । स्व-  
प्नस्यापरकालत्वात् । अपरकालः स्वप्नः अवश्यमसौ  
व्यादाय मुहूर्तमपि स्वपिति ॥ समानकर्तृक ॥ २१ ॥

( प्रदीपः ) अपरकाल इति । यद्यपि स्वप्नज्ञानां  
व्यादानात् पूर्वकालता तथापि व्यादानानन्तरभाविस्वप्नक्रिया-  
पेक्षं व्यादानस्य पूर्वकालत्वमस्तीत्यर्थः ॥ २१ ॥

१ ओष्ठस्पर्शद्विवचननिर्देशो न विवक्षित इत्यर्थः । ( र. गा. )

२ समानकर्तृकयोरित्येत्यर्थः । ( र. गा. )

३ एकस्यापि व्याधित्वे औषधदानादिति भावः । ( र. गा. )

४ पूर्वकाले इत्यपहायानन्त्यस्येति वक्तव्यमित्यर्थः । अनन्त्यस्येति च पञ्च-  
मर्थं षष्ठी । ( र. गा. )

५ केषांचिदिति शेषः । ( र. गा. )

( ५९७ क्त्वाणमुल्लप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ. ९ )

## ११८५ विभाषाग्रे प्रथमपूर्वेषु

॥ ३।४।२४ ॥

( प्रदीपः ) विभाषाग्रे ॥ २४ ॥ इहाप्रादयः साधनपौर्वकाल्यविषया गृह्यन्ते न तु क्रियापौर्वकाल्यविषयाः । तेषां हि क्रियापौर्वकाल्यविषयत्वे तैरेव पौर्वकाल्यस्योक्तत्वात् क्त्वाणमुलोर्गतार्थत्वादुत्पत्त्या न भाष्यम् । न चैतत् सूत्रारम्भादुक्तेः पौर्वकाल्ये तयोस्तत्तिरिति शक्यते वक्तुम् । अस्य साधनपौर्वकाल्यविषयाप्राद्युपपदत्वे चरितार्थत्वाद् भाष्यकारेण च समानादिसूत्रे पूर्वशब्देन क्रियापौर्वकाल्ये उक्ते क्त्वाप्रत्ययस्यानुत्पत्तेः प्रतिपादितत्वात् । यदि चात्र अप्रादयः क्रियापौर्वकाल्यविषया गृह्यन्त तदा अप्राप्तविभाषैव निःसंदेहा स्यादिति किमियं प्राप्ते विभाषेति संशयो नैवोपपद्येत । यस्मादाभीक्ष्ण्ये णमुल्लचेति क्त्वाणमुल्लो क्रियापौर्वकाल्ये एव विधीयेत । तच्चेदप्रादिसिद्ध्यते तदाभीक्ष्ण्यग्रहणानुवृत्तावप्यप्राप्तविभाषैव स्यात् । आभीक्ष्ण्यं च द्विवचनमनन्तरेण क्त्वाणमुल्लभ्यां न बोध्यत इति तद्योतनायापि तयोर्विधानं नोपपद्यते । तस्मात्साधनपौर्वकाल्यविषया इहाप्रादय इति स्थितम् । यद्यपि देशविशेषवचनोपशब्दोऽस्ति प्रभोरग्रे भुङ्क्ते इति तथापि पूर्वप्रथमसाहचर्यात्कालविशेषवृत्तिरेव गृह्यते ॥

( उद्योतः ) विभाषाग्रे ॥ २४ ॥ साधनेति । साधनान्तरजन्यसजातीयक्रियापेक्षपौर्वकाल्यविषया इत्यर्थः ॥ न तु क्रियेति । एककर्तृकभिरक्रियानिरूपितपौर्वकाल्यविषया इत्यर्थः ॥ साधनपौर्वकाल्यविषयाणामेव ग्रहणे प्रमाणमाह—तेषां हीति । पूर्वादीनामित्यर्थः ॥ मानान्तरमप्याह—भाष्यकारेण चेति । प्रकृतसूत्रभाष्यपर्यालोचनयाऽप्येवमेवेत्याह—यदि चेति ॥ निःसंदेहा । संदेहान्निष्क्रान्तेति समासः ॥ संशयानुपपत्तिं दर्शयति—यस्मादिति । तदाभीक्ष्ण्येति । उक्तार्थत्वेन क्त्वाणमुल्लोरप्राप्तेरिति भावः ॥ ननु पौर्वकाल्योक्तावपि आभीक्ष्ण्यप्रतिपादनाय तयोः प्राप्तिरत आह—आभीक्ष्ण्यं चेति । एवं चावश्यकद्विवचनेनैव तद्योतनसंभवेनास्य तत्राप्यप्राप्तिरिति भावः ॥ तयोर्विधानं तयोः प्राप्तिः ॥ पूर्वप्रथमेति । यद्यपि पूर्वशब्दो देशवाच्यपि तथापि प्रथमसाहचर्यं नियामकमिति बोध्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमयं प्राप्ते विभाषा आहोस्विदप्राप्ते ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

कथं च प्राप्ते, कथं चाप्राप्ते ।

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

आभीक्ष्ण्यं हातं वा नित्ये प्राप्ते अन्यत्र वा अप्राप्ते ॥ किं चातः ? ।

( प्राप्तविभाषायां दूषणम् )

यदि प्राप्ते । आभीक्ष्ण्येऽनिष्टा विभाषा प्राप्नोति । अन्यत्र चेष्टा न सिध्यति ।

( प्रदीपः ) अनिष्टाविभाषेति । आभीक्ष्ण्ये नित्यौ क्त्वाणमुल्लौ इष्येते अग्रे भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजतीति । लडादयस्तु नैवेष्यन्ते अग्रे भुङ्क्ते भुङ्क्ते ततो व्रजतीति भावः ॥ अन्यत्र चेति । आभीक्ष्ण्यग्रहणानुवृत्तौ सत्यामनाभीक्ष्ण्ये क्त्वाणमुल्लौ न स्यातामित्यर्थः ॥

( अप्राप्तविभाषायां दूषणभाष्यम् )

अथाप्राप्ते—

( ५०३९ अप्राप्तविभाषायां दूषणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ अग्रादिष्वप्राप्तविधेः समासप्रतिषेधः ॥ \* ॥

अग्रादिषु अप्राप्तविधेः समासस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

( प्रदीपः ) अप्राप्तविधेरिति । अप्राप्तविभाषायामप्रादीनां प्रत्ययोत्पत्तिं प्रति निमित्तत्वात्निमित्तस्य चोपपदसंज्ञाविधानादुपपदसमासः प्रतिषेध्यः । प्राप्तविभाषायां त्वप्रादीनां पक्षे प्रत्ययनिवृत्तौ निमित्तत्वं ननु प्रत्ययोत्पत्तौ प्रत्यययोराभीक्ष्ण्ये णमुल्लचेत्यनेनाविशेषेण विहितत्वादिति भावः ॥

( उद्योतः ) निमित्तस्य चेति । उपपदमिति महसंज्ञया प्रत्ययनिमित्तस्योपपदत्वम्, न हि अभावस्योपपदत्वमिति वक्तुं शक्यमिति भावः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

स तर्हि प्रतिषेधो वक्तव्यः ।

( समाधानभाष्यम् )

न वक्तव्यः ।

( ५०४० भाष्यवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उक्तं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उक्तमेतत् । अमैवाव्ययेनेत्यत्र एवकारकरणस्य प्रयोजनम्—‘अमैवाव्ययेन यत्तुल्यविधानमुपपदं तत्र समासो यथा स्याद्, अमा चान्येन च यत्तुल्यविधानमुपपदं तत्र मा भूदिति ॥ विभाषाग्रे ॥ २४ ॥

( प्रदीपः ) न वक्तव्य इति । अप्राप्तविभाषालमनेन ब्रह्मयति ॥ पूर्वविप्रतिषेधाच्चाप्रादिष्वामीक्ष्ये नित्याभ्यां क्त्वाणमुल्लभ्यां भाव्यमित्युभयत्र विभाषा चेयं न भवति ॥ ननु च णमुल्लप्राप्ते क्त्वाप्रत्यये तु समानादिसूत्रेण प्राप्ते सत्यारम्भादुभयत्र विभाषेयं युक्ता ॥ नेतदस्ति । समानादिसूत्रे विहितं क्त्वां प्रति विभाषाग्रहणमनर्थकमेव, चाऽसरूप इत्यनेनैव पक्षे लडादीनां सिद्धत्वाद् ॥ कः पुनरस्य क्त्वः समानादि-

सूत्रविहिताद्विशेष इति चेद् । णमुल्पहितत्वमेव विशेषः । णमुल्सहितकत्वाविधौ विभाषाश्रुतिरिहोपादीयमाना ज्ञापकार्था संपद्यते—कत्वाणमुलौ यत्र सह विधीयेते तत्र वासरूपविधिर्न भवतीति । तेनाभीक्ष्ण्ये पौर्वकाल्ये लडादयो न भवन्तीति । तत्र यदि केवलो णमुल् विधीयेत विभाषाश्रुतिरभिमतमर्थं ज्ञापयितुं न क्षमेतेति कत्वोप्यनुवादः कर्तव्यः ॥ २४ ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये न वक्तव्य इत्युक्ते अवचने हेतुमाह—  
उक्तं चेति । चो हेतौ । यत उक्तम् अतो न वक्तव्य इत्यर्थः । उक्तं चेति पाठेपि वाशब्दोत्र चाथं एव बोध्यः । अवचने वैकल्पिकहेत्वन्तरानुक्तेः ॥ नन्वननुवृत्तावपि आभीक्ष्ण्ये परत्वादिदमेवोचितमित्युभयत्रविभाषात्वमुचितमित्यत आह—पूर्वविप्रतिषेधादिति ॥ ननु चेति । साधनपौर्वकाल्यविषये क्रियापौर्वकाल्यस्यापि सत्त्वादिति भावः ॥ वाऽसरूपेण लडादीनां सिद्धत्वादिभाषाग्रहणं किमर्थमिति शङ्कायामपि ज्ञापकार्थमित्युत्तरं बोध्यम् ॥ वासरूपन्यायेन लडादिसिद्धेर्व्यर्थमेतदिति शङ्कते—कः पुनरिति । वक्ष्यमाणरीत्या ज्ञापकार्थेत्युत्तरम् । एवं च प्रकृतसूत्रविषये लडादिसिद्ध्यर्थं विभाषाग्रहणम् ॥ ज्ञापनफलं तु पूर्वसूत्रे, यदि तु णमुल्विषये वाऽसरूपो नास्तीत्येव ज्ञाप्यते तदोत्तरसूत्रविषयेपि कत्वालडादयो न स्युः ॥ तदध्वनयन्नाह—तत्र यदीति । आभीक्ष्ण्य इति सूत्रे इत्यर्थः ॥ अभिमतमर्थं यत्र सह विधीयेते इत्येवरूपमित्यर्थः ॥ २४ ॥

( ५९८ णमुल्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ० १० )

११८७ स्वादुमि णमुल् ॥ ३।४।२६ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं स्वादुमि मकारान्तनिपातनं क्रियते । न, खमुं प्रकृतः सोऽनुवर्तिष्यते ? ।

( ५०४१ प्रयोजनवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ स्वादुमि मान्तनिपातनमीकाराभावार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्वादुमि मान्तनिपातनं क्रियते ईकाराभावार्थम् । ईकारो मा भूदिति । स्वाद्वीं कृत्वा यवागूं भुङ्क्ते । स्वादुंकारं यवागूं भुङ्क्ते इति ॥

( ५०४२ प्रयोजनान्तरवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ ऋयन्तस्य च मकारान्तार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) ऋयन्तस्य च मकारान्तत्वं यथा स्यात् । अस्वादु स्वादु कृत्वा भुङ्क्ते स्वादुंकारं भुङ्क्ते ॥

( प्रदीपः ) स्वादुमि ॥ २६ ॥ ईकाराभावार्थमिति ।

मान्तत्वे भाविप्रत्ययविषये निपात्यमाने विहर्तैनिमित्तत्वाद्भोतोगुणवचनादिति ङीष् न भवतीत्यर्थः ॥ ऋयन्तस्य चेति । खमुज्यपि सर्वत्र मुम् न सिध्यति । अनव्ययस्येत्यधिकारादिति भावः ॥ यदेवं मान्तत्वमेव निपात्यतां प्रत्ययस्तु खमुज्वेव विधेयः । नैतदस्ति । अव्ययार्थमेव मान्तनिपातनं स्यादिति ङीष् स्यादेव । णमुलि तु मान्तत्वमपूर्वं विधीयमानमीकाराभावार्थं ऋयन्तस्य च मकारान्तार्थं विज्ञायते । अवश्यं चोत्तरार्थो णमुल् विधेय इति लाघवाभावादिहैव विहितः ॥

( उद्घोतः ) स्वादुमि ॥ २६ ॥ भाविप्रत्ययविषयेति । णमुलविषयेत्यर्थः । स्वादुमीत्यनूय प्रत्ययविधानात्प्रत्यये भाविनिसति पूर्वमेव निपात्यते इति भावः । भावप्रत्ययविषयेति पाठेप्ययमेवार्थः । यत्तु एवं पाठं दृष्ट्वा भावप्रत्ययमात्रविषयं निपातनं तेन कत्वायोगेपीति ॥ तत्र, 'स्वाद्वीं' कृत्वा यवागूं भुङ्क्ते 'अस्वादु स्वादु' कृत्वा भुङ्क्ते इति भाष्यप्रयोगविरोधात् । स्वाद्वीं कृत्वेति कत्वादुंकारमित्यत्रापीकारः स्यात्तदभावाय निपातनमित्यर्थो भाष्यस्य ॥ विहर्तेति । उकारान्तत्वाभावादित्यर्थः । अव्ययार्थमेवेति । अपूर्वविधानात्प्रतिप्रसवस्य लघुत्वादिति भावः ॥

( ५०४३ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ आच तुमुनः समानाधिकरणे ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आच तुमुनः प्रत्ययाः समानाधिकरणे भवन्तीति वक्तव्यम् ॥ केन ? । अनुप्रयोगेण ॥ किं प्रयोजनम् ? । स्वादुंकारं यवागूं भुज्यते देवदत्तेनेति देवदत्ते तृतीया यथा स्यात् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं च कारणं न स्यात् ? ।

( कारणप्रदर्शनभाष्यम् )

णमुलाभिहितः कर्तेति ॥

( प्रदीपः ) आच तुमुन इति । पूर्वोक्तवाक्यार्थापेक्षया समुच्चयप्रतिपादनार्थश्चशब्दः । न केवलं स्वादुमि मान्तनिपातनमपि तु इदमपि वक्तव्यमित्यर्थः । शकधृषादिसूत्रविहितस्तुमुन् गृह्यते अभिविधौ चायमाकारः ॥ णमुलेति । असत्यस्मिन्वचने कर्तरि कृदिति णमुला कर्तरि भाव्यमिति भावः ॥

( उद्घोतः ) आच तुमुन् इत्यत्र चकारः किमपेक्ष इत्यत आह—पूर्वोक्तेति । मान्तनिपातनम् इत्यस्य वक्तव्यम् इति शेषः ॥ अभिविधौ चेति । एवं च तुमुं वृत्तधातुसंबन्धाधिकारविहिता अव्ययकृत इत्यर्थः । तुमुन्त्वसामान्यातुमुन्त्वुलावित्यस्यापि ग्रहणं बोध्यम् ॥ अत एवाग्रे भोक्तुमोदनः पचयत इत्युदाहरणं संगच्छते ॥ भाष्ये समानाधिकरण इति । स्वान्वयिसमभिव्याहृताख्यातवाच्यकारक इत्यर्थः । भाष्ये अनुप्रयोगशब्देनेदमेवोच्यते । समानाधिकरणे कारके वर्तमानाद्धातोरित्यर्थस्तेन तस्य धात्वर्थं प्रति

१ आभीक्ष्ण्ये इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ खिदन्तोत्तरपदत्वादाद्विप्रदिति सुस्थादिति भावः । ( र. ना. )

३ निपातने मान्तत्वे उदन्तत्वाभावेन वीत इति ङीष् नेति भावः । ( र. ना. )

४ तुमुन्नतपदस्य विहितान्तेन कर्मधारयः । ( र. ना. )

५ स्वान्वयित्वमाख्यातविशेषणम् । ( र. ना. )

६ तुमुन्नतस्य तिङन्तभात्वर्थं प्रतीत्यर्थः । ( र. ना. )

विशेषणत्वमेवेति न बोधे वैषम्यम् ॥ ननु सत्यन्यस्मिन्कारके कर्तव्यं कस्मादभिधीयतेऽत आह—असत्यस्मिन्निति ॥

( तृतीयासाधकभाष्यम् )

ननु च भुजिप्रत्ययेन अनभिहितः कर्तेति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति तृतीया ।

( प्रदीपः ) अनभिहिताश्रय इति । अनभिहित इति पयुदास आश्रीयते न तु प्रसज्यप्रतिषेध इति भावः ॥

( उद्ध्योतः ) नन्वभिहिते प्रतिषेधात्कथमनभिहिताश्रयो विधिरत आह—पयुदास इति ॥

( द्वितीयापत्तिभाष्यम् )

यदि सत्यभिधाने चानभिधाने च कुतश्चिदनभिधानमिति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भवति तृतीया । यवाग्वां द्वितीया प्राप्नोति । किं कारणम् । णमुलानभिहितं कर्मेति ॥

( द्वितीयाबाधकभाष्यम् )

यदि पुनरयं कर्मणि विज्ञायेत ।

( प्रदीपः ) यदि पुनरिति । अव्ययकृतः कर्मणीति वचनं यदि क्रियत इति भावः ॥

( द्वितीयानुपपत्तिभाष्यम् )

नैवं शक्यम् । इह हि स्वादुंकारं यवागूं भुङ्क्ते देवदत्त इति यवाग्वां द्वितीया न स्यात् । किं कारणम् । णमुलाभिहितं कर्मेति ।

( द्वितीयोपपत्तिभाष्यम् )

ननु च भुजिप्रत्ययेनानभिहितं कर्मेति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति द्वितीया ।

( तृतीयोपपत्तिभाष्यम् )

यदि सत्यभिधाने चानभिधाने च कुतश्चिदनभिधानमिति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति द्वितीया देवदत्ते तृतीया प्राप्नोति । किं कारणम् ? । णमुलानभिहितः कर्तेति ।

( प्रश्नभाष्यम् )

अथानेन क्त्वायामर्थः । पक्त्वौदनो भुज्यते देवदत्तेनेति ॥

( प्रदीपः ) अथानेनेति । आचतुमुन इत्यनेन वचनेनेत्यर्थः । अनेकप्रयोजनत्वमस्य वचनस्य प्रश्नद्वारेण दर्शयति ।

( उत्तरभाष्यम् )

बाढमर्थः । देवदत्ते तृतीया यथा स्यात् । किं च कारणं न स्यात् ? । क्त्वयाभिहितः कर्तेति ॥

( तृतीयासाधकभाष्यम् )

ननु च भुजिप्रत्ययेनाऽनभिहितः कर्तेति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति तृतीया ॥

( द्वितीयापत्तिभाष्यम् )

यदि सत्यभिधाने चानभिधाने च कुतश्चिदनभिधानमिति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति तृतीया । ओदने द्वितीया प्राप्नोति ॥ किं कारणम् ? । क्त्वयानभिहितं कर्मेति ॥

( द्वितीयापत्तिवारणभाष्यम् )

यदि पुनरयं कर्मणि विज्ञायेत ॥

( द्वितीयानुपपत्तिभाष्यम् )

नैवं शक्यम् । इह हि पक्त्वा ओदनं भुङ्क्ते देवदत्त इति ओदने द्वितीया न स्यात् ॥

किं च कारणं न स्यात् ? ।

क्त्वयाऽभिहितं कर्मेति ॥

( द्वितीयोपपत्तिभाष्यम् )

ननु च भुजिप्रत्ययेन अनभिहितं कर्मेति कृत्वा अनभिहिताश्रया विभक्तिर्भविष्यति द्वितीया ॥

( तृतीयापत्तिभाष्यम् )

यदि सत्यभिधाने चानभिधाने च कुतश्चिदनभिधानमिति कृत्वाऽनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति द्वितीया । देवदत्ते तृतीया प्राप्नोति किं कारणम् ? । क्त्वयानभिहितः कर्तेति ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

अथानेन तुमुन्यर्थः । भोक्तुमोदनः पच्यते देवदत्तेनेति ॥

( उत्तरभाष्यम् )

बाढमर्थः । देवदत्ते तृतीया यथा स्यात् ॥

किं च कारणं न स्यात् ? । तुमुनाभिहितः कर्तेति ॥

( तृतीयोपपत्तिभाष्यम् )

ननु च पचिप्रत्ययेनानभिहितः कर्तेति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति तृतीया ॥

( द्वितीयापत्तिभाष्यम् )

यदि सत्यभिधाने चानभिधाने च कुतश्चिदनभिधानमिति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति तृतीया । ओदने द्वितीया प्राप्नोति । किं कारणम् ? । तुमुनानभिहितं कर्मेति कृत्वा ॥

( द्वितीयावारणभाष्यम् )

यदि पुनरयं कर्मणि विज्ञायेत ॥

१ णमुल कर्मणि विज्ञायेतेत्यर्थः । तथा च णमुलाऽभिहितं कर्मेति द्वितीया न प्राप्नोतीति भावः । ( र. ना. )

२ भावे इत्यपहारेति भावः ।। ( र. ना. )

३ स्वादुंकारं पवागूंभुज्यते देवदत्तेनेत्येति भावः । ( र. ना. )

४ 'एवम्' इत्यादौ पूरणीयम् ॥

५ 'अव्ययकृतः कर्मणि' इत्यङ्गीक्रियेतेति भावः ॥

६ 'एवम्' इत्यादौ पूरणीयम् ॥

७ 'एवम्' इत्यादौ पूरणीयम् ॥

८ 'अव्ययकृतः कर्मणि' इत्यङ्गीकारेणेति भावः ॥



( द्वितीयानुपपत्तिभाष्यम् )

नैवं शक्यम् । इह हि भोक्तुमोदनं पचति देवदत्त इति ओदने द्वितीया न स्यात् ।

किं च कारणं न स्यात् ? । तुमुनाभिहितं कर्मेति ॥

( द्वितीयोपपत्तिभाष्यम् )

ननु च पचिप्रत्ययेनानभिहितं कर्मेति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भवति द्वितीया ॥

( तृतीयापत्तिभाष्यम् )

यदि सत्यभिधाने चानभिधाने च कुतश्चिदनभिधानमिति कृत्वा अनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति द्वितीया । देवदत्ते तृतीया प्राप्नोति । किं कारणम् ? । तुमुनानभिहितः कर्तेति ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

अथ अनेनेहार्थः । पक्त्वौदनं ग्रामो गम्यते देवदत्तेनेति ।

( प्रदीपः ) पक्त्वौदनमिति । भिन्नधात्वर्थविषयकमेवेति वचनस्यास्य दर्शयितुं प्रयोजनमुपन्यासः ।

( उद्ध्योतः ) भिन्नधात्वर्थेति । पाके ओदनो, गमने ग्राम, इत्यर्थः । अस्य वचनस्य प्रयोजनं दर्शयितुमित्यन्वयः ।

( अभ्युपगम भाष्यम् )

बाढमर्थः । देवदत्ते तृतीया यथा स्यात् ।

किं च कारणं न स्यात् ? ।

क्त्वयाभिहितः कर्तेति ॥

( तृतीयोपपत्तिभाष्यम् )

ननु च गमिप्रत्ययेनानभिहितः कर्तेति कृत्वाऽनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति तृतीया ।

( द्वितीयापत्तिवारणभाष्यम् )

यदि सत्यभिधाने चानभिधाने च कुतश्चिदनभिधानमिति कृत्वाऽनभिहिताश्रयो विधिर्भविष्यति तृतीया ॥ यदुक्तमोदने द्वितीया प्राप्नोतीति स इह दोषो न जायते ।

( उद्ध्योतः ) भाष्ये स इह दोषो न जायत इति । ननु अनभिहिताश्रया तृतीया सिद्धा द्वितीयाप्राप्तिरूपो दोषश्च न तत्किमत्र प्रयोजनमिति प्रयोजनं दर्शयितुमुपन्यास इति कैयटासंगतिरिति चेद् ॥ अत्र वदन्ति—दर्शयितुमिति कैयटस्य विचारयितुमित्यर्थः ॥ स दोष इह न जायते तस्मान्नार्थ एतदुदाहरणविषये इति भाष्यार्थः । यदि प्रवर्तते तदा एतत्प्रयोगाभावरूपमनिष्टं च स्यात् । तस्मात्समानैशब्द एकपर्याय इति तात्पर्यम् ॥

१ भोक्तुमोदनं पचति देवदत्त इत्यत्रेति शेषः । ( र. ना. )

२ ओदनः पच्यते देवदत्तेनेत्यत्र यदि ओदने द्वितीया प्रवर्तते तदैतत्प्रयोगाभावरूपमनिष्टं च स्यादिति योजनम् । ( र. ना. )

३ प्रकृतवार्तिकस्य समानाधिकरणपदद्वयकसमानशब्द इत्यर्थः । ( र. ना. )

४ त्वदुक्तरीत्या गत्यर्थकर्मत्वाभावादिति भावः । ( र. ना. )

( प्रश्नभाष्यम् )

तत्तर्हि वक्तव्यम्\*आच तुमुनः समानाधिकरणे\* इति ॥

( उत्तरभाष्यम् )

न वक्तव्यम् । अव्ययकृतो भावे भवन्तीति भावे भविष्यन्ति ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

किं वक्तव्यमेतत् ।

( उत्तरभाष्यम् )

नहि । कथमनुच्यमानं गंस्यते । “तुमर्थे” इति वर्तते ॥

तुमर्थश्च कः ।

भावः ॥ स्वादुमि ॥ २६ ॥

( प्रदीपः ) अव्ययकृत इति । यद्येवं पक्त्वौदनं भुङ्क्ते देवदत्तः पक्त्वौदनो भुज्यते देवदत्तेनेति क्त्वाप्रत्ययेन कर्तृकर्मणोरनभिधानत्वाकापेक्षया तृतीयाद्वितीये कस्मान्न भवतः उच्यते आख्यातादिपदवाच्या क्रिया विशेष्यत्वात् प्रधानम् । विशेषणभूता त्वप्रधानम् । तत्क्रियासाधन्योरपि शक्त्योस्तद्द्वारको गुणप्रधानभावः । तत्र प्रधानशक्त्यभिधाने गुणक्रियाशक्तिरभिहितवत्प्रकाशते । प्रधानानुरोधाद् गुणानां तन्मुखप्रेक्षित्वात् पृथक्त्वाद्विरुद्धस्वकार्यारम्भाभावात् ।

( उद्ध्योतः ) आख्यातादिपदवाच्येति । अत्रेदं तत्त्वम्—उपात्तकारकाणां प्रधानान्वये संभवति न गुणे शाब्दान्वयः । अर्थत एव तदीयकारकाकाङ्क्षाशान्तौ तत्रान्वये मानाभावात् ॥ तद्द्वारक इति । क्रियाद्वारकः ॥ गुणक्रियानिरूपिता शक्तिरपि गुणभूतेति भावः ॥ नन्वार्थान्वयेपि तत्क्रियानिरूपिता शक्तिस्तत्रास्त्येव । अन्यथा ग्रामाय गन्तुमिच्छतीत्यादि न स्यात् । एवं च द्वितीयादिकं स्यादेवात आह—तत्र प्रवर्ततेति । अत्र प्रधानशब्देन सर्वतः प्रधानमाख्यातवाच्यक्रियैव । तच्छक्तेरेव वस्तुस्वभावमाहात्म्येन स्वसमानाधिकरणेतरशक्त्यभिभावकत्वात् । अत एव क्षुधं प्रतिहन्तुं शक्यमित्यपि भवतीति पस्पशायां कैयटेनोक्तं संगच्छते । तत्र शक्यमित्यस्यापि नामत्वेनेतरक्रियां प्रति गुणत्वेन स्वसमानाधिकरणेतरशक्त्यभिभावे सामर्थ्याभावात् इति दिक् ॥ अन्ये तु समानाधिकरणे इत्यस्यानुप्रयोगेणेत्येव व्याख्यानात् । अयमपि प्रयोगश्चिन्त्य एव । तद्वचनवादिमतेऽसिद्धेः । न च तदाख्यातान्तानुप्रयोगविषयम्, क्षुदुपहन्तुं शक्यमिति भाष्यप्रयोगासिद्ध्यापत्तेः । तुमुना कर्मणोऽनभिधानाद् द्वितीयापत्तेरित्याहुः । पृथक्त्वादिति । भिन्नत्वाद्विरुद्धं यत्तत् कार्यं तदारम्भकत्वाभावादित्यर्थः ॥ एतेन यदा

५ ‘प्रधानेतरयोर्वैयर्थ्यं द्रव्यस्य क्रिययोः पृथक् ।

शक्तिर्गुणाश्रया तत्र प्रधानमनुरूप्यते ॥

प्रधानविषया शक्तिः प्रत्ययेनाभिधीयते ।

यदा, गुणे तदा तद्वदुक्तापि प्रतीयते ॥ इति

कारिके अत्र स्तरेण्ये ॥

६ स्वसमानाधिकरणमितरशक्तिविशेषणम् । ( र. ना. )



यत्र शाब्दोन्वयस्तदा तद्विभक्तेः साधुत्वे ओदनं पक्त्वा भुज्यते, पक्त्वौदनो भुज्यते इत्युभयमपि साध्विति परास्तम् ॥ प्रकृतसूत्रस्य भाष्यवार्तिकयोरनुक्तिर्भवप्रस्तत्वापत्तेरित्यलम् । यत्तु हरदत्तेन वयं तु ब्रूमः—सकृच्छ्रुतस्य युगपदुभाभ्यां संबन्धाभावादेकैव प्रधानेन शाब्दोन्वयः । इतरेण तु संनिधानादर्थ इति गुणनिरूपिता शक्तिस्तत्र नास्त्येवेति उक्तम् । तत्र, ग्रामाय गन्तुमिच्छतीति सन्सूत्रस्य भाष्यप्रयोगविरोधापत्तेः । ग्रामस्य गतिकर्मत्वाभावेन चतुर्थ्यप्राप्तेः । मम तु शाब्दान्वयाभावेपि तन्निरूपितकर्मत्वस्य सत्त्वेन परत्वाद् गत्यर्थकर्मणीत्यस्य प्रवृत्त्या न दोषः । एवं ग्रामाय गत्वा इच्छतीत्यपि साध्विति दिक् ॥ २६ ॥

( ५९९ णमुलप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ० ११ )

११९३ वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ ३ । ४ । ३२ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याग्रहणं शक्यमकर्तुम् ।

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

कथं गोष्पदप्रं वृष्टो देव इति ॥

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

प्रातः पूरणकर्मा । तस्मादेष कः ॥

( अस्मिष्टापत्तिभाष्यम् )

यदि कः, विभक्तीनां श्रवणं प्राप्नोति ॥

( दृष्टापत्तिभाष्यम् )

श्रूयन्त एवात्र विभक्तयः । तद्यथा—एकेन गोष्पदप्रेणेति ॥ वर्षप्रमा ॥ ३२ ॥

( प्रदीपः ) वर्ष ॥ ३२ ॥ तस्मादेष क इति । गोष्पदं प्रातीत्यालोऽनुपसर्गे क इति कप्रत्ययः । क्रियाविशेषणत्वाच्च कर्मस्वनपुंसकत्वे । गोष्पदप्रं कल्पं गोष्पदप्रन्तरमित्यादिप्रयोगसिद्ध्यर्थमूलोपो न विधेयः । एषां प्रयोगाणां भाष्यकारेणानभ्युपगमात् । अनभ्युपगमस्तु ऊलोपप्रत्याख्यानान्यथानुपपत्त्या विज्ञायते ॥ गोष्पदपूरमित्यादेरपि घञा सिद्धत्वाद् णमुलकस्माच्च प्रत्याख्यायते । खरे दोषप्रसङ्गात् । तथा हि—यदि करणे घञं विधाय षष्ठीतत्पुरुषः क्रियते । तदा थाथादिसूत्रेणान्तोदात्तत्वं भवति । भावे तु घञि बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः । णमुलि तु लिट्स्वरेणौकार उदात्तः । गोष्पदपूरन्तरमित्यादि च सिद्ध्यति । गोष्पदप्रमित्यत्र तु नास्ति स्वरभेदः । कप्रत्यये थाथादिस्वरेणान्तोदात्तत्वाद् णमुलि ऊलोपे कृते पूर्वस्योदात्तभाजोऽभावाद् कृत्स्वरेणान्तोदात्तत्वाद् ॥ ३२ ॥

१ उक्तिसंभवाभावेन प्रस्तत्वापत्तेरित्यर्थः । ( र. ना. )

२ वर्षणेत्यादिः । ( र. ना. )

३ ननु हिंसागन्तुमर्थस्य हन्तेः सत्त्वादेनेनार्थाद्वये प्रत्ययो विधीयते वक्ष्यमा-

( उद्ध्योतः ) वर्षप्रमाणे ॥ ३२ ॥ गोष्पदं प्रातीति पूरयतीत्यर्थः ॥ नन्वसात्कल्पपि वृत्तौ प्रमित्यनुस्वारश्रवणं न स्यात् णमुलन्तात् भवतीत्यत आह—गोष्पदप्रमिति ॥ करणे इति । तथा सति वृषधात्वर्थेन सामानाधिकरण्यं भवति ॥ बहुव्रीहौ इति । गोष्पदस्य पूरणं यत्र क्रियायामित्यर्थः ॥ लिट्स्वरेणौकार इति । तत उपपदसमासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॥ कृत्स्वरेणेति प्रत्ययस्वरेण प्रत्ययस्योदात्तत्वे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणेत्यर्थः ॥ ३२ ॥

( ६०० णमुलप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. १२ )

११९८ करणे हनः ॥ ३ । ४ । ३७ ॥

( ५०४४ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हनः करणेऽनर्थकं वचनं हिंसार्थेभ्यो णमुल्विधानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हनः करणे वचनमनर्थकम् । किं कारणम् ? । हिंसार्थेभ्यो णमुल्विधानात् । हिंसार्थेभ्यो णमुल्विधीयते । तेनैव सिद्धम् ॥

( प्रदीपः ) करणे ॥ ३७ ॥ बाहुल्येन हन्ति हिंसार्थो दृश्यत इति मत्वाह—हन इति ॥

( उद्ध्योतः ) करणे ह ॥ ३७ ॥ बाहुल्येनेति । अन्ये तु हन्ति हिंसार्थ एव । पद्व्यादौ हिंसारोप इत्याहुः ॥

( ५०४५ आक्षेपवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थवत्त्वहिंसार्थस्य विधानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अर्थवत्त्वं हन्तेर्णमुल्वचनम् । कोर्थः ? । अहिंसार्थस्य विधानात् । अहिंसार्थस्य हन्तेर्णमुल्वयथा स्यात् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अस्ति पुनरयं क्वचिद्धन्तिरहिंसार्थः यदर्थो विधिः स्यात् ॥

( समाधानभाष्यम् )

अस्तीत्याह । पाण्युपधातं वेदिं हन्ति ॥

( ५०४६ प्रयोजनान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ नित्यसमासार्थं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) नित्यसमासार्थश्च हिंसार्थादपि हन्तेरनेन विधिरेषितव्यः ।

( आक्षेपभाष्यम् )

कथं पुनरिच्छतापि हिंसार्थाद्धन्तेरनेन विधिर्लभ्यः । अनेनास्तु तेन वेति तेन स्याद्विप्रतिषेधेन ॥

येन तु केवलहिंसायामेवेति हनः करण इति वार्तिकमसङ्गतमत आह बाहुल्येनेति प्राप्तेर्येनेत्यर्थः । ( र. ना. )

४ 'विधानम्' ॥

५ प्राणवियोगानुकूलव्यापारो हि हिंसा सा च वेद्यः नास्तीति भावः ॥

(समाधानभाष्यम्)

हन्तेः पूर्वविप्रतिषेधो वार्तिकेनैव स्थापितः । यदयं नित्यसमासार्थं चेत्साह । तज्ज्ञापयत्याचार्यः-  
हिंसार्थादपि हन्तेरनेन विधिर्भवतीति ॥ करणे  
हन्तः ॥ ३७ ॥

(प्रदीपः) हन्तेः पूर्वविप्रतिषेध इति । यद्येवं  
हिंसार्थानामित्यत्र दण्डोपघातं गाः कालयतीति उदाहरणं  
नोपपद्यते । नैष दोषः—यत्र एक एव धात्वर्थः सामान्यविशे-  
षभावेन भिद्यमानो विशेष्यभावमनुभवति सोऽस्य विषयः ।  
कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोग इति वचनादन्यत्र भिन्न-  
धात्वर्थसंबन्धे तु हिंसार्थानामित्यनेनैव णमुल् भवति ॥ ३७ ॥

(उद्घोतः) भाष्ये पाण्युपघातमिति । पाणिना वेदिं  
हन्तीत्यर्थः । हिंसा च प्राणिविषयेति भावः ॥ सामान्येति ।  
यत्रानुप्रयोगणमुलन्तयोः सामान्यविशेषभावान्वयस्तत्रेदमेव ।  
यत्र भेदसंबन्धेनान्वयस्तत्र तेनैवेति भावः ॥ हिंसार्थानामिति ।  
णमुलि तृतीयाप्रभृतीन्यन्तरस्यामिति वैकल्पिकः समासः ॥ ३७ ॥

(३०१ णमुल्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. १३)

१२०२ अधिकरणे बन्धः ॥ ३।४।४१ ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

इह कस्मान्न भवति ग्रामे बन्ध इति ॥

(प्रदीपः) अधिक ॥ ४१ ॥ ग्रामे बन्ध इति ।  
णमुलि सति ग्रामबन्धं बद्ध इति प्राप्नोति ॥ ४१ ॥

(उद्घोतः) अधिकरणे ॥ ४१ ॥ ग्रामे बन्ध इति ।  
यद्यपीदं वासरूपन्यायेन घञा सिद्धम् तथापि अनिष्टमपि प्राप्नोती-  
त्याह—ग्रामबन्धमित्यादिना । ग्रामे बद्ध इति त्वपपाठः ।  
कर्मणि कस्य विषये भावविषयणमुलोऽप्राप्तेः । यद्यप्ययं साध्यो  
भावः स च सिद्धस्वभावः । तथापि संज्ञात्वाभावात्प्रश्नः ॥

(समाधानभाष्यम्)

एवं वक्ष्यामि “अधिकरणे बन्धः संज्ञायाम्”  
ततः “कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिबहोः” इति ।

(आक्षेपभाष्यम्)

कथमङ्गालिकाबन्धं बद्धः । चण्डालिकाबन्धं  
बद्धः ? ।

(समाधानभाष्यम्)

“उपमाने कर्मणि च” इत्येवं भविष्यति ॥ अधि-  
करणे ॥ ४१ ॥

(उद्घोतः) उपमाने इति । एवमनधिकरणविषये तेनैव  
साध्यमिति भावः ॥ ४१ ॥

(६०२ क्त्वाणमुल्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ. १४)

१२२१ तिर्यच्यपवर्गे ॥ ३ । ४ । ६० ॥

(उद्घोतः) तिर्यच्य ॥ ६० ॥ तिर्यक्शब्दोऽनुजुवाची ।  
अपवर्गः समाप्तिस्तद्वाची च ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

अयुक्तोऽयं निर्देशः । तिरश्चीति भवितव्यम् ॥

(समाधानभाष्यम्)

सौत्रो निर्देशः ॥ तिर्यच्य ॥ ६० ॥

(प्रदीपः) तिर्य ॥ ६० ॥ सौत्रो निर्देश इति ।  
अनुक्रियमाणरूपविनाशप्रसङ्गस्तु न परिहारः । न हि प्रयोज-  
नानुवर्ति प्रमाणम् ॥ ६० ॥

(उद्घोतः) न हीति । सौत्रत्वेन शास्त्राप्रवृत्तौ तु तदि-  
नाशप्रसङ्गो बीजमित्यन्यदिति भावः ॥ ६० ॥

(६०३ क्त्वाणमुल्प्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ. १५)

१२२३ नाधार्थप्रत्यये च्चयर्थे ॥ ३।४।६२ ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

अर्थग्रहणं किमर्थम् ? ॥

(समाधानभाष्यम्)

नाधाप्रत्यय इतीयत्युच्यमाने इहैव स्यात्—  
द्विधाकृत्य । इह च न स्यात्—द्वैधं कृत्य । अर्थ-  
ग्रहणे पुनः क्रियमाणेन दोषो भवति । नाधाप्रत्यये  
च सिद्धं भवति । यश्चान्वस्तेन समानार्थः ।

(प्रदीपः) नाधा ॥ ६२ ॥ द्वैधं कृत्येति । यदा  
द्विज्योश्च धमुञ्जित्यादौ प्रत्ययपक्षस्तदैतदर्थग्रहणस्य प्रयो-  
जनम् । आदेशपक्षे तु स्थानिवद्भावात् धाप्रहणेन प्रहणात्सि-  
ध्यति । तथा च धमुञ्जन्तात् स्वार्थेऽददर्शनमिति ङप्र-  
त्यय उदाहार्यो द्वैधकृत्येति ॥ नार्थमप्यर्थग्रहणं कर्तव्यमन्यथा  
निरनुबन्धकपरिभाषया नाजो ग्रहणं न स्यात् ॥ ६२ ॥

(उद्घोतः) नाधार्थ ॥ ६२ ॥ तथा चेति । तदा चेत्यर्थः ।  
द्वैधकृत्येतीति । ज्ञानेन समासे विभक्तिलोपः । एतद्भाष्यस्वर-  
सात्प्रत्ययपक्ष एव तत्र न्याय्य इति तत्रवम् ॥ नार्थमपीति ।  
निरनुबन्धकमादाय रूपाणां सिद्धेरनिष्टाभावाच्च तदर्थत्वं निवृत्त्यम् ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

अथ प्रत्ययग्रहणं किमर्थम् ? ।

(समाधानभाष्यम्)

इह हि मा भूत्—हिरक् कृत्वा पृथक् कृत्वा ॥  
नाधार्थ ॥ ६२ ॥

(उद्घोतः) हिरगिति । नार्थत्वात्प्राप्तिः ॥ ६२ ॥

( ६०४ स्वानुमुलप्रत्ययविधिसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ. १६ )

१२२५ अन्वच्यानुलोम्ये ॥ ३।४।६४ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अयुक्तोऽयं निर्देशः । अनूचीति भवितव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

सौत्रोऽयं निर्देशः ॥ अन्वच्या ॥ ६४ ॥

( अव्ययकृतः समाप्ताः )

( अथ कृतादीनां शक्तिबोधकप्रकरणम् )

( ६०५ कृतप्रत्ययशक्तिबोधकसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ. १७ )

१२२८ कर्तरि कृत् ॥ ३।४।६७ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ।

( प्रदीपः ) कर्त ॥ ६७ ॥ किमर्थमिति । वक्ष्यमाणो-  
भिप्रायः ॥

( ५०४७ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ कर्तरि कृद्वचनमनादेशे स्वार्थ-  
विज्ञानात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) कर्तरि कृतो भवन्तीत्युच्यते । [ किं  
कारणम् ? ] अनानादेशे स्वार्थविज्ञानात् । अनिर्दि-  
ष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति । तद्यथा—“गुप्तिज-  
किङ्क्षः सन्” “यावादिभ्यः कञ्चि”ति । एवमिमे  
प्रत्ययाः कृतः स्वार्थे स्युः । स्वार्थे मा भूवन् । कर्तरि  
यथा स्युः ॥ एवमर्थमिदमुच्यते ॥

( प्रदीपः ) अनानादेश इति । यत्र वचनेनार्थो नादिश्यते  
तत्र प्रत्यासत्त्या प्रकृत्यर्थ एव प्रत्ययो भवति ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् ॥ यमिच्छति स्वार्थे, आह तं  
भावे घञ् भवतीति ॥

( प्रदीपः ) यमिच्छतीति । असलस्मिन् सूत्रे घञिले-  
तावत् सूत्रं कर्तव्यम् । धातोर्घञ् भवतीति । तत्रानिर्दिष्टत्वा-  
द्भावे घञ् भविष्यति । ततः पदसजविशरूपश इति द्वितीयं  
सूत्रं कर्तव्यम् । ततश्च भाव इति न कर्तव्यम् । किममाणं तु  
नियमार्थं भविष्यति घञेव भावे नान्य इति । ततो धात्वर्था-  
क्षिते कर्तरि कृद्वचिष्यति नार्थः सूत्रेणेत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) कर्तरि कृत् ॥ ६७ ॥ ननु भावे इति सूत्रं  
धातुमात्राद् घञ् विषये आवश्यकमत आह—घञिलेतावदिति ।

भावपदोपादानं विनापि अन्वप्रत्ययवत्स्वाये विधानेनैव भावे सिद्ध-  
मिति भावः ॥ ततः पदरुजेति । कर्तृर्थमिदम् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

कर्मणि तर्हि मा भूवन्निति ।

( प्रदीपः ) कर्मणीति । तस्यापि धात्वर्थेनाक्षेपादिति  
भावः ॥

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

कर्मण्यपि यमिच्छत्याह तं “धः कर्मणि घृन्”  
इति ।

( प्रदीपः ) कर्मणि घृन्निति । घृन्नेव कर्मणि नान्य इति  
नियमो विज्ञास्यते । यद्येवं कर्मणो नियमात्प्रत्ययो न नियत-  
इति कारकान्तरेपि घृन् प्राप्नोति । नैष दोषः । एकमिदं वाक्यं  
धः कर्मणि घृन्निति । तेन च कर्मणि विधायमानः कथं कार-  
कान्तरे स्यात् । अथवा द्वितीयो नियमः करिष्यते कर्मणि  
एव घृन्निति ॥

( उद्घोतः ) घृन्प्राप्नोतीति ॥ धः घृन्निलेकं वाक्यं विध्य-  
थम् । ततः कर्मणीति नियमार्थमिति भावः ॥ परेहरति—एक-  
मिदं वाक्यमिति ॥ कथं कारकान्तरे इति । एकवाक्येपि  
विशेषणोपादानं नियमफलमित्यर्थः । ननु एवं विधित्वमेव स्यात्  
विशेषणोपादानात्कर्मण्येवेत्येव स्यात् तु घृन्नेवेतीत्यत्र चेराह—अथ  
वेति । आवृत्त्येति भावः ॥ धात्वर्थाक्षितकर्मण्यपि सिद्धे नियमार्थ-  
मिति तार्त्पर्यम् ॥ एवं करणाधिकरणयोरित्यत्रापि बोध्यम् ॥

( प्रयोजनभाष्यम् )

करणाधिकरणयोस्तर्हि मा भूवन्निति ।

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

करणाधिकरणयोरपि यमिच्छत्याह तं “ल्युट्  
करणाधिकरणयोर्भवति” इति ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

संप्रदानापादानयोस्तर्हि मा भूवन्निति ।

( प्रयोजननिरासभाष्यम् )

संप्रदानापादानयोरपि यमिच्छत्याह तं “दाश-  
गोप्तौ संप्रदाने” “भीमादयोपादाने” इति । य इदा-  
नीमतोन्यः प्रत्ययः शेषः सोन्तरेण वचनं कर्तर्येव  
भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) य इदानीमिति । ननु कर्तरि भुवः  
खिण्णुच् लुकञौ कर्तरि चर्षिदेवतयोरिति कर्तुरपि  
नियमः प्राप्नोति । नैष दोषः । उभयत्र करणनिवृत्त्या कर्तृश्रुति-  
विध्यैव न नियमार्थाः ।

( प्रयोजनभाष्यम् )

तदेव तर्हि प्रयोजनम् । स्वार्थे मा भूवन्निति ।

१ अर्थानिर्देशे इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ बोधकतासंबन्धेन घृन्प्रत्ययविशेषणस्य कर्मणीत्यस्योपादानं नियमफलं  
नियमः कर्मातिरिक्तार्थव्यावृत्तिः फलं यस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

३ कर्मणीत्यस्य नियमत्वाङ्गीकारेऽपीति शेषः । ( र. ना. )

४ अनेनैव प्रकारेण कर्मणीत्यस्य नियमार्थत्वोपपत्तौ नावृत्तिः कार्येति  
भावः । ( र. ना. )

५ उभयत्र कर्तृपदाभावे हि करणे इत्यनुवृत्त्या तत्रैव प्रत्ययाः स्युरतोऽप्राप्ताः  
कर्तरि प्रत्यया आत्मा तत्र विधीयन्ते इति न नियमविधिः । ( र. ना. )

( प्रयोजननिरासस्मारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं स्वार्थं यमिच्छत्याह तं भावे घञभव-  
तीति ।

( प्रयोजननिरासासंभवभाष्यम् )

अन्यः स भावो बाह्यः प्रकृत्यर्थात् । अनेनेदानी-  
माभ्यन्तरे भावे स्युः । तत्र मा भूवन्निति कर्तृग्रह-  
णम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कः पुनरेतयोर्भावयोर्विशेषः ।

( समाधानभाष्यम् )

उक्तो भावभेदो भाष्ये ।

( प्रदीपः ) उक्त इति । सार्वधातुके यमित्यत्र  
बाह्यान्तरयोर्भावयोर्विशेषो दर्शितः ।( उद्घोतः ) सार्वधातुके यमित्यत्रेति । नन्वाभ्यन्तरेपि  
भावे न भविष्यन्ति ॥ तुमर्थे से इति तुमर्थग्रहणेनाभ्यन्तरे भावे  
क्षयादीनां नियमादिति चेन्न । सति ह्यस्मिन्तत्र तुमर्थग्रहणेन भाव-  
ग्रहणम्, असति त्वस्मिन् विधित्वसंपत्तये तुमर्थग्रहणेन कर्तुरेव  
ग्रहणं स्यात् तुमुनोऽप्युक्तन्यायेन कर्तव्येव प्रसक्तेरित्याशयः ॥ लः  
कर्मणि च भावे चेति भावग्रहणे तु न नियमः शक्यो विज्ञातुम् ।  
अकर्मकेभ्य इति विशेषणाय तदावश्यकत्वात् ।

( काकुप्रश्नभाष्यम् )

अस्ति प्रयोजनमेतत् ।

( समाधानभाष्यम् )

किं तर्हीति ।

( ५०४८ आक्षेपवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ तत्र ख्युनादिप्रतिषेधो नाना-  
वाक्यत्वात् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) तत्र ख्युनादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ।  
ख्युनादयः कर्तरि मा भूवन्निति ॥( उद्घोतः ) भाष्ये ख्युनादयः कर्तरीति । अयं भावः—  
स्वस्वविधायकैर्विहितानां प्रत्ययानां पश्चादनेनार्थादेशनमिति पक्षे  
यथा तुजादीनामर्थ आदिश्यते एवं ख्युनादीनामप्यति दिश्येता-  
विशेषात् । ततश्च तेप्यनेन कर्तरि स्युः । तत्तद्वाक्ये उपादाना-  
त्करणादिषु चेति । करणादिरर्थो विशेषविहितत्वादिति । कार्यशब्दा-  
बादेऽर्थस्यापि शास्त्रमात्रगम्यत्वेन विधेयत्वमिति भावः ॥

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

ननु च करणे ख्युनादयो विधीयन्ते तेन कर्तरि  
न भविष्यन्ति ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

तेन च करणे स्युरनेन च कर्तरि ।

( आक्षेपबाधकभाष्यम् )

ननु चापवादत्वात् ख्युनादयो बाधकाः स्युः ॥

( प्रदीपः ) ननु चेति । ख्युनादिषु करणादिरर्थो विशेष-  
विहितत्वात्कर्तुर्बाधको भविष्यतीति भावः ॥( उद्घोतः ) भाष्ये ननु चापवादत्वादिति । ख्युनादि-  
शास्त्रोपात्ताः करणादय इत्यर्थः ॥

( आक्षेपसाधकभाष्यम् )

न स्युः ॥ किं कारणम् ? । नानावाक्यत्वाद् ।  
नानावाक्यं तच्चेदं च । समाने वाक्ये चापवादैह-  
त्सर्गा बाध्यन्ते । नानावाक्यत्वाद्वाचनं न प्राप्नोति ।( प्रदीपः ) नाना वाक्यत्वादिति । इह ब्राह्मणेभ्यो  
दधि दीयतां तर्कं कौण्डिन्यायेत्यभिन्नकालत्वादेकं वाक्यं विशि-  
ष्टस्य दानस्य प्रतिपादकमिति तत्रेण दधि बाध्यते । यदा तु  
कालभेदेन वाक्यद्वयमुच्चार्यते पूर्वाह्ने ब्राह्मणभोजनप्रकरणे दधि  
ब्राह्मणेभ्यो दीयतामिति, अपराह्ने तु तर्कं कौण्डिन्यायं दीयता-  
मिति । तदा तत्रेण दधि न बाध्यते । तथेहापि कालभेदेन  
वाक्यद्वयोच्चारणाद् बाध्यबाधकभावो नास्तीत्यर्थः । यत्त्वगा-  
दिवाक्ये यद्येकं वाक्यं तच्चेदं च ततस्तच्छेषः । अथ  
नानावाक्यं तदा तदपवाद इत्युक्तम् । तदसंभवाश्रयेण ।  
यदा कस्येति इगपेक्षावयवावयविसंबन्धे षष्ठी तदा स्थानषष्ठ्यभा-  
वादलोऽन्यस्येत्यस्यानुपस्थानं तदेव चापवादत्वम् । ख्युना-  
दयस्तु कृत्वादानेन कर्तरि स्युः । करणादिश्रुत्या च करणादिषु ।  
तत्रानेकस्यार्थस्य युगपदभिधानासंभवात् पर्यायः स्यात् ।  
कदाचित्कर्तरि कदाचित्करणादिषु ॥( उद्घोतः ) इहापि कालभेदेनेति । पूर्वं करणे विधानं  
तदा तु न कर्त्रर्थोपस्थितिरिति बाधाभावः । विधानोत्तरं पश्चादुप-  
स्थितस्य कथं बाधः, तत्प्राप्तिकाले तस्य नाप्राप्त्यभावात् । यथा-  
ऽपराह्ने तत्कदानेन पूर्वाह्णदधिदानस्य न बाध इति भावः ॥ नन्वि-  
को गुणवृद्धी इति सूत्रे नानावाक्यत्वमङ्गीकृत्य कथमपवादत्वोक्ति-  
रत आह—यत्त्विति ॥ तदसंभवाश्रयेणेति । अलोऽन्यस्येत्यस्यो-  
पस्थित्यसंभवाभिप्रायेणेत्यर्थः । तदेवाह—यदेति । कृत्वादाने-  
नेति । विधुत्तरकालं अर्थसमर्पकेणेत्यर्थः ॥ तत्रानेकस्येति । कर्तृ-  
करणयोः स्वातंत्र्यास्वातंत्र्याभ्यां भिन्नकक्षत्वादिति भावः ।

( ५०४९ समावेशवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ तद्वच्च कृत्येष्वेवकारकरणम्

[ तच्च भव्याद्यर्थम् ] ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एवं च कृत्येष्वेवकारः क्रियते “तयोरेव  
कृत्यक्तखलर्था” इति “भावे चाकर्मकेभ्य” इति ।

किं प्रयोजनम् ? ।

तच्च भव्याद्यर्थम् । भव्यादिषु समावेशः सिद्धो

भवति । गेयो माणवकः सास्त्राम् ॥ गेयानि माणवकेन सामानीति ॥

( प्रदीपः ) तद्वच्चेति । योऽयमर्थः उक्तः तेन तुल्यमेवकारकरणमित्यर्थः ॥ तथाहि—कृत्वात्कर्तरि कृत्यादयः प्राप्ता एवकारेण कर्तुरपकृष्यन्ते भावकर्मणोरेव यथा स्युरित्येवमर्थमित्यर्थः ॥ भावे चाकर्मकेभ्य इत्यनेनाधिकारसहितं वाक्यं दर्शयति ॥

किं प्रयोजनमिति । एवकारेणान्यत्र समावेशज्ञापनेन किं प्रयोजनमिति प्रश्नः ॥

तच्च भव्याद्यर्थमिति । भव्यगेयादिसूत्रे वाग्रहणं न कर्तव्यम् । तदन्तरेणापि भव्यादयः कर्तरि भवन्तीत्यनेन समावेशज्ञापनादेवकारकरणाद्भावकर्मणी न बाधित्येते इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) योऽयमिति । अबाधकारणनानावाक्यत्वरूप इत्यर्थः ॥ तेन तुल्यमिति । तस्यापि तद्वोधकत्वादिति भावः ॥ इत्येवमर्थमिति । यदि बाध्यबाधकभावः स्यात्तदा भावकर्मभ्यां कर्तुर्बाधसंभवात्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव । तस्मादेवकारेण ज्ञाप्यतेऽर्थस्यान्तरं न बाधकमितीति भावः ॥ ननु भावे चेत्याद्यंशोच्चारणं किमर्थमत आह—भावे चेत्यादि ॥ ननु कृत्यादीनां कर्तव्यप्रवृत्तिरेवकारप्रयोजनमिति ज्ञातत्वात्प्रश्नानुपपत्तिरत आह—एवेति ॥ वाग्रहणेन तत्सिद्धमत आह—भव्येति । कर्तरि भवन्तीति । कर्तरि कृदिति शास्त्रादिति भावः ॥ इति हेतोर्न कर्तव्यमित्यन्वयः ॥ नन्वेवमपि कर्त्रा भावकर्मणोर्बाधः स्यादत आह—अनेनेति । अनेन कर्त्रा ॥ समावेशेति । करणव्युत्पत्त्या समावेशज्ञापकादेवकारकरणादित्यर्थः ॥

( ५०५० असमावेशवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ ऋषिदेवतयोस्तु कृद्भिः समावेशवचनं ज्ञापकमसमावेशस्य ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यद्यं “कर्तरि चर्षिदेवतयोः” इति सिद्धे सति समावेशार्थं चकारं शास्त्रि तज्ज्ञापयत्याचार्यः—“न भवति समावेशः” इति ॥

( प्रदीपः ) इदानीं तत्र ख्युनादिप्रतिषेध इत्यस्य परिहारमाह—ऋषिदेवतयोरिति । कृद्भिरिति जातौ बहुवचनम् । अत्र च यथासंख्यं वार्तिककारस्यानभिमतम् । यथासंख्ये हि चशब्दस्य ज्ञापकत्वं न स्यात् समावेशाभावात् ॥

( उद्घोतः ) प्रत्ययस्यैकत्वादर्थयोरपि द्वित्वाद्बहुवचनमनुपपन्नमत आह—जाताविति । जातिविवक्षायामेकवचनस्य व्यक्तिविवक्षायां बहुवचनस्य साधनेन भाष्ये । जात्याख्यायामिति सूत्रप्रत्याख्यानादिदं चिन्त्यम् । प्रयोगभेदेनार्थबाहुल्याद्बहुवचनमिति वक्तुं युक्तम् ॥ भाष्ये कृद्भिरित्यस्य कृदर्थकर्तृकरणयोरित्यर्थः ॥ ननु तत्र ऋषौ करणे देवतायां कर्तरीत्यन्वयात्समावेश एव नास्त्येत आह—अत्र च यथासंख्यमिति । तत्सत्त्वे हि तथा संबन्धार्थमेव

चस्य सार्धकत्वात्सति प्रयोजने ज्ञापकं न स्यादिति भावः ॥ भाष्ये समावेशवचनमिति । समावेशबोधकचकारवचनमित्यर्थः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं तर्हि कृत्येष्वेवकारः क्रियते ? ।

( ५०५१ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ एवकारकरणं च चार्थं तच्च

भव्याद्यर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एवकारकरणं च चार्थं द्रष्टव्यम् । तयोर्भावकर्मणोः कृत्या भवन्ति भव्यादीनां कर्तरि च ॥ किं प्रयोजनम् ।

तच्च भव्याद्यर्थं, भव्यादिषु समावेशः सिद्धो भवति । गेयो माणवकः सास्त्रां गेयानि माणवकेन सामानीति ।

( प्रदीपः ) भव्याद्यर्थमिति । भव्यगेयेति सूत्रं न कर्तव्यं भवतीत्यर्थः । अन्ये तु कृत्यादयोऽनभिधानात्कर्तरि न भविष्यन्तीति भावः ॥

( उद्घोतः ) सूत्रं नेति । भव्यादीनां कर्तरि चेति भाष्यस्वरसेन सूत्राभावस्यैव लाभादिति भावः । ननु तत्सूत्राभावे पूर्वोक्तरीत्यान्येपि कृत्याः कर्तरि स्युरत आह—अन्ये त्विति ॥

( असमावेशवार्तिकनिरासभाष्यम् )

यत्तावदुच्यते—\*ऋषिदेवतयोः कृद्भिः समावेशवचनं ज्ञापकमसमावेशस्य\* इति ॥ नैतज्ज्ञापकसाध्यम्—‘अपवादैरुत्सर्गा बाध्यन्ते’ इति ॥ एष एव न्यायः—यदुतापवादैरुत्सर्गा बाध्येरन् ॥

( प्रदीपः ) इदानीं भाष्यकारो वार्तिकदूषणमाह—यत्तावदिति ॥

( उद्घोतः ) यत्तावदिति । कुदुत्पत्तिवाक्यानामेवार्थं शेषः । तथा च समानकालतयाऽनिर्दिष्टार्थेषु चरितार्थस्यास्य विशेषार्थनिर्देशेन बाध इति भावः । यद्वा तेषामर्थार्थे निराकाङ्क्षत्वात्स्वतन्त्रपक्षितरेव । तृजादिविधौ तु तेषामर्थार्थाकाङ्क्षासत्त्वात्कर्तरीत्यस्याप्यर्थवत्याकाङ्क्षासत्त्वेनोभयाकाङ्क्षया तत्रैवान्वयः । न ख्युनादिषु साक्षादर्थनिर्देशेन तेषां निराकाङ्क्षत्वात् इति तत्त्वम् ॥

( दूषणसारकभाष्यम् )

ननु चोक्तम् नानावाक्यत्वाद् बाधनं न प्राप्नोति इति ॥ न विदेशस्थमिति कृत्वातो नानावाक्यं भवति ।

( समाधानभाष्यम् )

विदेशस्थमपि सदेकं वाक्यं भवति । तद्यथा द्वितीयेऽध्याये लुगुच्यते, तस्य चतुर्थपष्ठयोरलुगुच्यतेऽपवादः ॥

( प्रदीपः ) न विदेशस्थमिति । न कालभेदान्नाना-  
वाक्यत्वं भवति । शास्त्रे विदेशस्थानामप्यवान्तरवाक्यानामा-  
काङ्क्षावशादेकवाक्यत्वदर्शनात् । देशग्रहणं चात्र कालस्योप-  
लक्षणम् । शब्दक्रमस्य कालकृतत्वात् ॥ चतुर्थषष्ठयोरिति ।  
चतुर्थे=गोत्रेऽलुगचीति । षष्ठे तु अलुगुत्तरपदे इति ।  
तदुक्तं हरिणा—

अनेकाख्यातयोगेपि वाक्यं न्यायापवादयोः ।  
एकमेवेत्यते कैश्चिद्विन्नरूपमिव स्थितम् ॥  
नियमः प्रतिषेधश्च विशेषश्च तथा सति ।  
द्वितीये यो लुगाख्यातस्तच्छेषमलुक्तं विदुरिति ॥  
( उद्घोतः ) अनेकाख्यातयोगः यण् भवति दीर्घो भवती-  
त्यादिरूपः ॥ न्याय उत्सर्गः ॥ विधिज्ञेय इति पाठे नियमप्रति-  
षेधौ विधिशेषावेव न तु स्वतन्त्रावित्यर्थः । तदुदाहरणमाह—  
द्वितीये इति । विशेषश्च तथेति पाठे विशेषोपवादः । एतच्चिर्तयं  
विधेयकवाक्यतापन्नमित्यर्थः ॥

( पूर्ववार्तिकदूषणभाष्यम् )  
यदप्युच्यते एवकारकरणं च चार्थे इति ॥ कथं  
पुनरन्यो नामान्यस्यार्थे विद्यते । कथमेवकारश्चार्थे  
वर्तते । स एष एवकारः स्वार्थे वर्तते ।

( आक्षेपभाष्यम् )  
किं प्रयोजनम् ।  
( समाधानभाष्यम् )  
ज्ञापकार्थम् ।  
( अनुयोगभाष्यम् )  
किं ज्ञाप्यते ? ।  
( समाधानभाष्यम् )  
एतज् ज्ञापयत्याचार्यः इत उत्तरं समावेशो भ-  
वति' इति ॥

( अनुयोगभाष्यम् )  
किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम् ।  
( समाधानभाष्यम् )  
तच्च भव्याद्यर्थम् ।  
भव्यादिषु समावेशः सिद्धो भवति । नेयो मा-  
णवकः साक्षां नेयानि माणवकेन सामानीति ॥  
( आक्षेपभाष्यम् )  
यद्येतज्ज्ञाप्यते इहापि समावेशः प्राप्नोति—दाश-  
गोमौ संप्रदाने भीमादयोपादान इति ।

( समाधानभाष्यम् )  
अत्रापि सिद्धं भवति । यद्यम् “आदिकर्मणि  
क्तः कर्तरि च” इति सिद्धे समावेशे, समावेशार्थं

चकारं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यः ‘प्रागमुतः समा-  
वेशो भवति’ इति ॥

( प्रदीपः ) कथमिति । एवकारस्य लौकिके प्रयोगे न  
कचित् चार्थवृत्तित्वं दृश्यत इति भावः ॥ उत्तरमिति ।  
कर्तरि कृदित्यस्मादुत्तरमित्यर्थः ॥ तच्चेति । भव्यगेयादिसूत्रे  
वेति न कर्तव्यं भवतीत्यर्थः ॥ यद्यमिति । आदिकर्मणि  
क्तः कर्तरीत्येतावदस्तु नार्थश्चशब्देन । समावेशोप्येवकार-  
ज्ञापितो भविष्यति । कृतस्तु चशब्दो ज्ञापयति आदिकर्मणी-  
त्यस्मात् सूत्रात् परेषु योगेषु समावेशो न भवतीति ।

( उद्घोतः ) न कर्तव्यं भवतीति । नन्वचार्थे वृत्तिमाश्रित्य  
सूत्रमेव न कार्यम् । अतिप्रसङ्गस्त्वनभिधानाद्वारणीय इति प्राप्तुं  
युक्तं, अनभिधानेन प्रत्याख्यानास्याप्युक्तत्वादित्याहुः । एवं च  
स्वार्थे कृतां व्यावृत्तये सूत्रं कार्यम् । ख्युनादिषु करणरूपार्थेन  
वाधान्न दोषः ॥

( अनुयोगभाष्यम् )  
किं पुनरयं प्रत्ययनियमः धातोः परः अकारः  
अकशब्दो वा नियोगतः कर्तारं भुवन् कृतसंज्ञश्च  
प्रत्ययसंज्ञश्चेति ॥

( प्रदीपः ) किं पुनरिति । सिद्धे शब्दार्थसंबन्धे  
इति यदुक्तं तत् स्मारयितुं विचार्यते ॥ प्रत्ययनियम इति ।  
धातोः परः कृतप्रत्ययः कर्तरि वर्ततामिति कर्तृलक्षणार्थे कृतप्रत्ययो  
नियम्यते ॥ नियोगत इति । कर्तरि कृदित्यस्मादाचार्य-  
नियोगादित्यर्थः ॥ कार्यशब्दाभ्युपगमे चास्य पक्षस्य संभवः ॥

( उद्घोतः ) तत्र किमिदमपूर्वतयार्थं बोधयत्प्रत्ययभिरतरार्थस्यो  
व्यावर्तयति, किंवा तत्रार्थे लोके प्रयुज्यमानस्यैव कृदादिसंज्ञा  
प्रतिपादयतीति संदिश्य तत्र द्वितीयस्य सिद्धान्तत्वकरणेनापि ख्युना-  
दीनां तत्र प्रतिषेध इति वार्तिकं प्रत्याख्यातुमुपक्रमते—भाष्ये—  
किं पुनरिति ॥ कृतप्रत्ययो नियम्यत इति । एतावानेव सूत्र-  
व्यापारः ॥ कर्तारं भुवन्कृतसंज्ञ इत्यादि तु सकलशास्त्रैकवाक्यता-  
लाभार्थं कथनमिति बोध्यम् ॥ ननु सिद्धशब्दान्वाख्याने कथमाचार्य-  
नियोगादर्थविशेषे प्रवृत्तिरित्यत आह—कार्यशब्देति ॥ तत्राप्यपक्षे  
‘कृतप्रत्ययः कर्तरि वर्ततामिति’ उक्तस्यार्थान्यत्रावृत्त्या प्रत्ययनियमः ॥

( भाष्यम् ) आहोस्वित्संज्ञानियमो धातोः परः  
अकारः अकशब्दो वा स्वभावतः कर्तारं भुवन्  
कृतसंज्ञश्च भवति प्रत्ययसंज्ञश्चेति ॥

( तटस्थस्य विशेषजिज्ञासाभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः ।

( प्रदीपः ) आहोस्विति । नित्यशब्दार्थसंबन्धा-  
भ्युपगमनिबन्धनार्थं पक्षः । यः स्वभावतः कर्तरि वर्तते स  
एव कृतसंज्ञो नान्य इति कृतसंज्ञा नियम्यते ॥ यद्येवं ख्युना-  
दीनां कृतसंज्ञा न प्राप्नोति ॥ नैष दोषः—एतत्सूत्रव्यापारो

१ विधिशेषस्तथा सतीति पाठ इत्यर्थः । ( र. ना. )

२ नियमप्रतिषेधापवाद्वचनम् ॥ ( र. ना. )

३ एवकारस्य चार्थे वृत्तिमाश्रित्य भव्यगेयेति सूत्रमेव न कार्यमित्यर्थः । ( र. ना. )

४ अन्येषामपि कृत्यानां भव्यगेयादिवत् कर्तरि प्रसङ्गस्त्वित्यर्थः । ( र. ना. )

५ कर्तरि कृदिति सूत्रमित्यर्थः । ( र. ना. )

६ अकारमात्रोऽत्राक्षरवटकाक्षरादिरीत्यर्थः । ( र. ना. )

नियम्यते । करणे ख्युञ्जित्वादावप्ययमेव विचारः—किमय-  
मर्थः करणे ख्युन्वर्ततामिति । उत—यत् स्वभावतो वर्तते  
तस्य साधुत्वमिति । कृतसंज्ञा तु प्रतिप्रत्ययमधिक्रियमाणा  
ख्युनादिषु प्रवर्तत एव ॥

( उद्ध्योतः ) द्वितीये तु अर्थस्य लोकत एव सिद्धत्वात्तद्विध्य-  
संभवेन कृतसंज्ञाया अप्यधिकारेण सिद्धत्वेन कर्तारं ब्रुवन्नेव कृतप्र-  
त्ययसंज्ञको नान्यादृश इति तत्तच्छास्त्रैकवाक्यतया संज्ञानियम इति  
भावः ॥ ख्युन्नादीनामिति । करणादिषु वर्तमानानामिति शेषः ॥  
एतत्सूत्रव्यापार इति । एतत्सूत्रविषय इत्यर्थः ॥ कृतसंज्ञा त्विति ।  
प्रत्ययसंज्ञाया अप्युपलक्षणम् । प्रतिपदमुपस्थानवैयर्थ्येन सर्वत्र  
प्रवर्तत प्रवेत्यर्थः ॥

( ५०५२ संज्ञानियमवादिनः प्रत्ययनियमे दूषण-  
वार्तिकम् ॥ ६ ॥ )

॥\*॥ तत्र प्रत्ययनियमेऽनिष्टप्रसङ्गः ॥\*॥

( भाष्यम् ) तत्र प्रत्ययनियमे सति अनिष्टं प्राप्नो-  
ति । काष्ठभिदब्राह्मणः । वलभिदब्राह्मणः । एषोपि  
नियोगतः कर्तारं ब्रुवन् कृतसंज्ञश्च स्यात् प्रत्ययसंज्ञ-  
श्चेति ।

( प्रदीपः ) काष्ठभिदब्राह्मण इति । अनित्यशब्दा-  
भ्युपगमे काष्ठभेद इत्यत्राप्यणू प्रत्ययो वचनादेव कर्तारमाचष्टे ।  
उत्पादशब्दपक्षे चाकाराणां विशेषाभावादब्राह्मणशब्दाकार-  
स्यापि कर्तरि नियोगत्वं प्राप्नोति । आचार्यनियोगाच्च कर्तारं  
ब्रुवतः कृतप्रत्ययसंज्ञाप्रसङ्गः । तत्र कृतसंज्ञायां सत्यां स्वाद्यु-  
त्पत्तिप्रसङ्गः, प्रत्ययसंज्ञायां च सत्यां तन्निबन्धनाङ्गसंज्ञाश्रय  
आर्धधातुकनिमित्तो गुणः प्राप्नोति ॥ ननु नायं धातोर्विहितः  
ततो दोषाभावः ॥ नैतदस्ति—लक्षणवशाच्छब्दार्थसंबन्ध-  
व्यवस्थानुविधाने कुतोऽयं नियमः—अयं धातोर्विहितो नाय-  
मिति । काष्ठशब्दो हि कर्मोपपदं भिदिर्धातुः तस्माच्च परोऽकार  
इति तस्य कर्तरि स्यादेव नियोगः । यदा हि स्ववाक्यैर्विहितानां  
प्रत्ययानामनेनार्थविशेषे नियोगः क्रियते, तदा विशेषाभावाद-  
स्यापि नियोगः प्राप्नोति ॥ क्तिपो लुप्तत्वाद्भातुरेव कर्त्रर्थं निगुक्त  
इत्यकारस्य कर्तार्यो न भविष्यतीति चेत् । यावर्कादिष्विव  
सर्वाभिधानमस्तु । लौकिकार्थानपेक्षायां हि धातोः परस्य कृ-  
त्प्रत्ययसंज्ञाकर्तृनियोगप्रसङ्गः ॥

( उद्ध्योतः ) वचनादेवेति । कर्तरि कृदिति वचनादेवेत्यर्थः ॥  
नन्वेवमप्येतत्प्रकरणविहितानामेव नियोगेन कर्त्रर्थकत्वमाख्यायते,  
नत्वन्येषामपीत्यत आह—उत्पाद्येति । धातोः परोऽकाराः कर्तर्येव  
वर्तन्त इत्यर्थादिति भावः ॥ अर्थविधानं च प्रयोगे दृश्यमानानामे-  
वेति नानुबन्धा भेदका इति तात्पर्यम् । अत एव भाष्ये अकारोऽक-

शब्दो वा नियोगत इत्युक्तम् । नियोगो नियमः । नियोगत्व-  
मिति पाठे नियोगविषयत्वमित्यर्थः ॥ [ धातोः परस्य कृतप्रत्य-  
येति । सर्वसंग्रहप्रदर्शकम् ॥ कृतप्रत्ययसंज्ञेति । प्रकृतसूत्रे विद्य-  
मानानुवर्तमानकृतप्रत्ययपदाम्भ्यामित्यर्थः ॥ ] गुण इति । द्वितीये  
निमित्तसप्तमीति किवाश्रयो निषेधो नेति भावः ॥ ननु नायं धा-  
तोरिति । धातोरित्येव विहितस्यैवार्धधातुकत्वादित्यर्थः ॥ ननु कार्य-  
शब्देऽपि यत्ते कृतसंज्ञकास्तच्छास्त्रैर्निष्पन्नास्ते कर्तर्येव वर्तन्त इत्यर्थः ।  
एवं च कथमस्याकारस्य नियोगेन कर्त्रर्थकत्वमित्यत आह—काष्ठ-  
शब्दो हीति । एवं च स्वरूपे विशेषाभावेन सादृश्यादस्मिन्नपि  
तत्त्वबुद्धिरस्त्येवेति धातोर्विहितत्वबुद्धिरप्यस्तीत्यार्धधातुकत्वमस्त्येवेति  
भावः । नन्वेकवाक्यतयैवार्धविधानान्न दोष इत्यत आह—यदा  
हीति ॥ प्रत्ययानामिति । प्रयोगे दृश्यमानरूपाणामित्यर्थः ॥  
धातुरेवेति । किप्सहचरितो धातुरेवेत्यर्थः ॥ सर्वाभिधानमिति ।  
सर्वैरभिधानमित्यर्थः ॥ एवं कृदादिसंज्ञा अपि विहितानामेव पश्चा-  
त्क्रियन्ते इति लौकिकार्थानपेक्षया शास्त्रेणैवार्धविधाने धातोः पर-  
त्वात्स्यादेव प्रत्ययत्वादीत्याह—लौकिकेति ॥

( ५०५३ वार्तिकम् ॥ ७ ॥ )

॥ \* ॥ संज्ञानियमे सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) संज्ञानियमे सति सिद्धं भवति ।

( प्रदीपः ) संज्ञानियमे सिद्धमिति । नलत्राकारो  
लौकिके प्रयोगे कर्तारं ब्रवीति प्रतिषेधवाचित्वादिति कृतप्रत्यय-  
संज्ञयोरप्रवृत्तिरित्यर्थः ।

( उद्ध्योतः ) न ह्यत्रेति । एवं च ख्युनोपि लोके कर्तर्यवृत्ते-  
स्तत्रैतस्यानुपस्थानमिति न कर्त्रर्थकत्वप्रसङ्ग इति तत्प्रतिषेधो व्यर्थ  
इति भावः ॥

( प्रत्ययनियमवादिभाष्यम् )

यदि संज्ञानियमः ।

( ५०५४ दूषणवार्तिकम् ॥ ८ ॥ )

॥ \* ॥ विभक्तादिषु दोषः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विभक्ता भ्रातरः पीता गाव इति न  
सिद्ध्यति ॥ प्रत्ययनियमे पुनः सति परिगणिताभ्यः  
प्रकृतिभ्यः परः को नियोगतः कर्तारमाह । न चेमा-  
स्तत्र परिगण्यन्ते प्रकृतयः ॥

( प्रदीपः ) प्रत्ययनियमवाद्याह—यदीति । अत्र हि कः  
स्वभावतः कर्तारमाह भ्रातृभिर्गोभिश्च सामानाधिकरण्यात् ।  
तत्तत्र कर्तरि साधुत्वं प्राप्नोतीत्यसाधुत्वं मन्यते । क्रियाकारक-  
संबन्धेन विभक्तादीनां कर्तरि वृत्तिरनभिमतैति दोषोपन्यासः ।  
प्रकारान्तरेण साधुत्वं दर्शयिष्यते । प्रत्ययनियमवादिनस्त्वयम-  
दोषः । गत्यर्थार्कर्मकेत्यत्र परिगणिताभ्यः प्रकृतिभ्यः परः

१ करणे इति शेषः । ( र. ना. )

२ अत्राह्मणवटकाकारस्य कृतप्रत्ययार्धधातुकत्वे किप्प्रत्ययमकृतिभूतस्य  
स्वपूर्वस्य भिदरेकत्वे गुणप्रसङ्गोऽत्राह्मणाद्याकारास्तपूर्वसमुदायस्य कुदन्तत्वेन मा-  
तिपदिकत्वे सुबन्तत्वापत्तिश्च दोषः । ( र. ना. )

३ शब्दानित्यत्वपक्षे । ( र. ना. )

४ यथा यावदशब्दाद् यदर्थप्रतीतिस्तदर्थस्यैवकजन्तादपि एवमिहापि किबन्त-  
बोध्यार्थस्याह्मणवटकाकारान्तादभिदरेकत्वात्तादित्यर्थः । ( र. ना. )

५ अयं कोष्ठकान्तर्गतः पाठो लौकिकेति इति प्रतीकोत्तरं अवेदिति बोध्यम् ।



क्तः कर्तरि नियुज्यते । नहि तत्र भजिपिबती परिगणिता-  
वित्यर्थः ।

( उद्घोतः ) ननु साधुत्वमिष्टमेवेति साधुत्वं प्राप्नोतीत्य-  
सङ्गतमत आह—असाधुत्वं मन्यते इति । एवं च इति न  
सिध्यतीत्यत्र इत्येतेषु क्तस्य कर्तरि असाधुत्वं न सिध्यतीत्यर्थे इति  
भावः ॥ असाधुत्वे बीजमाह—क्रियाकारकसंबन्धेनेति । धन-  
कर्मकविभागकर्तार इत्यर्थे इति भावः ॥ प्रकारान्तरेण । मत्वर्थ-  
संबन्धित्वेन बोधे इत्यर्थः ॥ क्तः कर्तरि नियुज्यत इति । शालेण  
बोध्यत इत्यर्थः ॥

( ५०५५ संज्ञानियमवादिवातिकम् ॥ ९ ॥ )

॥ \* ॥ विभक्तादिषु चाप्राप्तिः प्रकृतेः  
प्रत्ययपरवचनात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विभक्तादिषु च प्रत्ययनियमस्याप्रा-  
प्तिः । किं कारणम् ? । प्रकृतेः प्रत्ययपरवचनात् ।  
परिगणिताभ्यः प्रकृतिभ्यः परः क्तः स्वभावतः  
कर्तारमाह । न चेमास्तत्र परिगण्यन्ते ॥

( प्रदीपः ) संज्ञानियमवाद्याह—विभक्तादिषु चेति ।  
ममापि गत्यर्थाकर्मकेति सूत्रं न दण्डवारितम् । तत्र गत्य-  
र्थादिभ्य एव क्तः स्वभावतः कर्तारं ब्रुवन् कृतप्रत्ययसंज्ञो भव-  
तीति भजिपिबतीभ्यां क्तस्य कर्तरि साधुत्वाप्रसङ्गः ॥ प्रकृते-  
रिति । गत्यादिकाया इत्यर्थः । प्रत्ययपरवचनादिति ।  
क्तप्रत्ययस्य कर्तरि वर्तमानस्य साधुत्वेन प्रतिपादनादित्यर्थः ॥  
तदेवं स्थितमेतद्—स्वभावतस्तेषु तेष्वर्थेषु वर्तमानानां प्रत्यय-  
संज्ञाविधानद्वारेण साधुत्वमन्वाख्यायते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये—प्रकृतेः प्रत्ययेति । प्रकृतिविशेषाद्  
गत्यादेः परस्य क्तप्रत्ययस्य कर्तरि साधुत्ववचनादित्यर्थः । तदाह—  
क्तप्रत्ययस्येति ।

( आक्षेपभाष्यम् )

न तर्हीदानीमयं साधुर्भवति ? ।

( प्रदीपः ) इदानीं भाष्यकारः प्रश्नपूर्वकं प्रयोगसमर्थनं  
करोति—न तर्हीति ॥

( समाधानभाष्यम् )

भवति साधुर्न तु कर्तरि ।

( प्रदीपः ) न तु कर्तरीति । तयोरेवेति वचनात्कर्म-  
ण्येव साधुरित्यर्थः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

कथं तर्हि कर्तृत्वं गम्यते ।

१ गम्यादेरिति पाठो भाति । गत्यादिकाया इत्यर्थ इत्यत्र कैयटेऽपि गत्यादि-  
काया इति पाठः शोभनः । ( र. ना. )

२ वचनाभावादिति । 'अप्रत्यये तथैवेष्टः' इति वार्तिकार्थभूतस्य 'वि-  
नापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदलोपो वक्तव्यः' इत्यस्य विसरणमूलकमिदमिति  
चिन्त्यमेवेति बोध्यम् ॥ प्रदीपकर्तृत्वाशय एवं वर्णनीयः नित्यशब्दवादे गम्य-  
धानार्थकपदस्य कार्यशब्दवादे लोपकल्पनमिति ॥ इति दाधिमथाः ॥ वस्तुतस्तु  
अप्रत्यये इति वचनं सङ्केतितेषु रूढेषु पदद्वयात्मकेषु भीमसेनसत्यभामादिष्वेव

( समाधानभाष्यम् )

अकारो मत्वर्थीयः । विभक्तमेषामस्तीति विभक्ताः  
पीतमेषामस्तीति पीता इति ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

अथ वा उत्तरपदलोपोत्र द्रष्टव्यः—विभक्तयनाः  
विभक्ताः पीतोदकाः पीता इति ॥ कर्तरि कृत् ॥ ६७ ॥

( प्रदीपः ) विभक्तमिति । धनमिति भावः ॥ पीत-  
मिति । उदकमित्यर्थः । आकृतिगणश्च अर्शआदिः ॥ अथ  
वेति । गम्यमानार्थस्य शब्दस्याप्रयोग एव लोपोऽभिमतः ।  
विभक्ता भ्रातर इत्यत्र च धनस्य यद्विभक्तत्वं तद् भ्रातृषूपच-  
र्यते । पीता गाव इत्यत्राप्युदकस्य पीतत्वं गोध्वारोप्यते ॥ ६७ ॥

( उद्घोतः ) भवति साधुर्न तु कर्तरीति भाष्याद् यत्र  
कर्मणि स्वरसतो विधानं तत्रेति लभ्यत इत्याशयेनाह—धनमिति  
भाव इति । एतेनेदं भाष्यं सकर्मकभ्योपि भावे क्ते साधकमुप-  
न्यस्यन्तः परास्ताः ॥ उत्तरपदलोपविधायकवचनभावादाह—  
गम्यमानेति ॥ ६७ ॥

( ६०६ लकारशक्तिबोधकसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. १८ )

१२३० लः कर्मणि च भावे चाकर्म-

केभ्यः ॥ ३ । ४ । ६९ ॥

( प्रदीपः ) लः कर्मणि ॥ ६९ ॥ केचिदिति प्रथमां  
व्याचक्षते ॥ अपरे षष्ठीं लस्य य आदेश इति । तत्र लकारो  
द्विविधः तिङ्भाव्यतिङ्भावीति । तत्र तिङ्भाविनः कृतसंज्ञा-  
निषेधात् कर्तरि कृदित्यस्यानुपस्थानात् स्वार्थे भावे विधानं  
प्राप्नोति । अतिङ्भाविनस्तु कर्तरि कृदिति वचनात्कर्तर्येव  
साधुत्वं प्राप्नोतीति वचनम् ॥

( उद्घोतः ) लः कर्मणि ॥ ६९ ॥ केचिदिति । उच्चार-  
णार्थकारेण सूत्रे लस्येति षष्ठ्येकवचनवत्प्रथमैकवचनं जातौ । एता-  
वांश्च लो यदुत परस्मैपदमिति भाष्ये परस्मैपदादिशब्दानां तद्वि-  
षये लक्षणेति तद्भावः ॥ अपरे इति । लस्य प्रयोगासमवायेत्वात्त-  
स्यार्थकथनं व्यर्थम् । भाष्ये लक्षणाप्रसङ्गश्चेति तद्भावः ॥ वर्तमाने  
लङित्यादौ प्रतिज्ञाप्रापितथोक्तत्वं यथा लकारस्य तथात्रापि भवि-  
ष्यतीति । आद्यमतमेव युक्तम् ॥ अन्येपि वौक्यैकदेशन्यायेन प्रयो-  
गस्य लक्षणया समत्वात् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थमिदमुच्यते ।

( प्रदीपः ) किमर्थमिति । वक्ष्यमाणोभिप्रायः ॥

प्रवर्तते न तु बौगिकेषु पश्यशाहिकस्थस्य सिद्धे शब्दार्थसम्बन्ध इति भाष्येऽ-  
न्यतः सिद्धः सिद्धः पूर्वपदलोपोऽत्र द्रष्टव्य इति प्रतीकस्थस्य प्रदीपग्रन्थस्य  
तादृशतात्पर्यदर्शनाच्चिन्तनमेव चिन्त्यम् । ( र. ना. )

१ 'ल एतेषु साधनेषु यथा स्यात्' इति वक्ष्यमाणभाष्यात् ॥

२ परस्मैपदं तत्पदार्थः । ( र. ना. )

५ लस्य य आदेश इत्यस्य स्थाने ल इतीत्यादिः । ( र. ना. )



(समाधानभाष्यम्)

ल एतेषु साधनेषु यथा स्यात् । कर्तरि कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य इति ।

(प्रदीपः) ल एतेष्विति । लकार इत्यर्थः । अथवा लस्य य आदेश इति भावः ॥

(समाधानबाधकभाष्यम्)

नैतदस्ति प्रयोजनम् । “भावकर्मणोः” आत्मनेपदं विधीयते, “शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्” । एतावांश्च लकारः=यदुत परस्मैपदम्, आत्मनेपदं च । स चायमेवं विहितः ॥

(प्रदीपः) भावकर्मणोरिति । असत्यस्मिन् सूत्रे भावकर्मणोरात्मनेपदविधानात् शेषात्कर्तरि च परस्मैपदविधानाल्लकारस्य भावकर्मकर्तारोऽर्थो अनुमास्यन्ते । लकारस्य प्रयोगासमवायाद्वा लादेशानामेवैतैऽर्था भविष्यन्तीत्यर्थः ॥ एतावानिति । नन्वाम्बुविषयोपि लो विद्यते । नैष दोषः । तस्य लुकापहारात् । अनुप्रयोगलकारेण भावादीनां प्रतिपाद्यत्वात् ।

(उद्घोतः) ननु भावादिव्हात्मनेपदादिविधानेपि लां किमायातमत आह—असतीत्यादि ॥ भावकर्मणोरात्मनेपदेति । भावकर्मणोर्लस्यात्मनेपदमिति तदर्थः ॥ आदेशानामेवेति । लस्य स्थाने भावकर्मणोरात्मनेपदमित्यर्थ इति भावः ॥ तस्य लुकेति । एतद्विषयनिष्कर्षमग्रे वक्ष्यति ॥ अनुप्रयोगेति । एवं च स निरर्थक एव संख्याप्रतिपत्तये तदनुसरणस्यावश्यकत्वादिति भावः ॥ स चायमेवं विहित इति । सोऽयं लकार एवं लः कर्मणि चेति सूत्रसत्त्वे यथा विहितस्तथा विहित इत्यर्थः । अतोपि ल इत्यस्य षष्ठ्यन्तत्वपक्षोऽयुक्तः । तथा सति ते चेमे इति वदेत् भाष्ये ॥

(समाधानवार्तिकावतरणभाष्यम्)

अत उत्तरं पठति—

(५०५६ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥)

॥ \* ॥ लग्नहणं सकर्मकनिवृत्त्यर्थम् ॥ \* ॥

(भाष्यम्) लग्नहणं क्रियते [किं प्रयोजनम्?] सकर्मकनिवृत्त्यर्थम् । सकर्मकाणां भावे लो मा भूदिति ॥

(प्रदीपः) लग्नहणमिति । यदीदं नारभ्येत तदा यथा भावे विधीयमाना घनादयः सकर्मकेभ्यो भवन्ति ओदनस्य पाकः सूत्रस्य कृतिरिति, तथा भावकर्मणोरित्यनेन भावे आत्मनेपदं सकर्मकेभ्योपि स्यात् । ततश्च पच्यते यवागूं देवदत्तेनेत्यपि स्यात् ॥

(उद्घोतः) इत्यपि स्यादिति । लकारेण कर्तृकर्मणोरनभिधानादिति भावः ॥

(सूत्रप्रत्याख्यानभाष्यम्)

यदि पुनस्तत्रैवाकर्मकग्रहणं क्रियेत ॥

१ आम् विषयो लकार इत्यर्थः । तदनुसरणस्य, अनुप्रयोगलकारानुसरणस्येत्यर्थः । (र. ना.)

२ ‘क्रियते’ ॥

(प्रदीपः) यदि पुनरिति । भावकर्मणोरकर्मकादित्येवं करिष्यते सामर्थ्याच्चाकर्मकग्रहणं भावार्थं भविष्यति । अकर्मकाणां कर्मासंभवात् ॥

(सूत्रारम्भभाष्यम्)

तत्तत्राकर्मकग्रहणं कर्तव्यम् ॥

(प्रदीपः) सूत्रारम्भवाद्याह—तत्रेति ॥

(सूत्रप्रत्याख्यानभाष्यम्)

ननु चेहापि क्रियते “भावे चाकर्मकेभ्य” इति ॥

(प्रदीपः) सूत्रप्रत्याख्यानवाद्याह—ननु चेति । त्वयापीति शेषः ॥

(सूत्रारम्भभाष्यम्)

परार्थमेतद् भविष्यति “तयोरेव कृत्यकखलर्थाः” भावे चाकर्मकेभ्य इति ॥

(प्रदीपः) आरम्भवाद्याह—परार्थमिति ॥

(सूत्रप्रत्याख्यानभाष्यम्)

एवमपि यावदिह लग्नहणं तावत् तत्राकर्मकग्रहणम् ॥ इह वा लग्नहणं क्रियते । तत्र वाऽकर्मकग्रहणम् । कोन्वत्र विशेषः ? ।

(प्रदीपः) सूत्रप्रत्याख्यानवाद्याह—यावदिहेति । कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य इत्येतदत्र प्रदेशे द्वाभ्यामपि वक्तव्यम् । त्वया तु ल इत्येतत्पदमत्र कर्तव्यम् । मया भावकर्मणोरित्यत्र अकर्मकग्रहणमिति पदेन पदस्य साम्यम् । मात्रालाघवं तत्र न विवक्षितम् ॥

(उद्घोतः) इत्येतदत्र प्रदेशे इति । तयोरेवेति सूत्रार्थमित्यर्थः ॥ पदेनेति । पदसमुदायात्मके सूत्रे भगवान्मात्रालाघवं नादियत इति भावः । वस्तुतस्तु अत्र लग्नहणे कर्मभावाम्यां कर्तृरूपाधीवाधाय चद्वयं कार्यम् । उत्तरसूत्रे च तयोरिति वाच्यम् । मम तु ‘कर्मणि कृत्यकखलर्था भावेऽकर्मकेभ्य’ इत्येवेति मात्रालाघवमप्यस्येवेति बोध्यम् । भाष्ये सूत्रानुसारेण च षडितो न्वासः । कैयटे च तथैव न्यासो दर्शितः ॥

(सूत्रारम्भभाष्यम्)

अयमस्ति विशेषः—इह लग्नहणे क्रियमाणे आनः कर्तरि सिद्धो भवति । तत्र पुनरकर्मकग्रहणे क्रियमाणे आनः कर्तरि न प्राप्नोति ॥

(प्रदीपः) आरम्भवाद्याह—अयमस्तीति । आन इति । आत्मनेपदसंज्ञत्वाद्भावकर्मणोरिति वचनाद्भावकर्मभाषियात्त्वमेव स्यात्तु कर्तृभावित्वमिति शयान इत्यादौ कर्तर्यानो न स्यात् । सूत्रारम्भे तु कर्तर्यप्यानः सिध्यतीत्यर्थः ॥

(सूत्रप्रत्याख्यानभाष्यम्)

तत्राप्यकर्मकग्रहणे क्रियमाणे आनः कर्तरि सि-

१ सूत्रारम्भवादिना ॥

२ मया प्रत्याख्यानवादिना ॥

द्धो भवति । कथम् ? । “भावकर्मणोः” इत्यतो यद-  
न्यदात्मनेपदानुक्रमणम्, तत्सर्वं कर्त्रर्थम् ॥

( प्रदीपः ) प्रत्याख्यानवाद्याह—तत्रापीति । अनुदा-  
त्तञ्जित इत्यादिभिः सूत्रैः कर्तर्यात्मनेपदविधानार्थैरानः कर्तरि  
शयान इत्यादौ भविष्यतीत्यर्थः ॥

( ५०५७ प्रत्याख्यानवादिवातिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ विप्रतिषेधाद्धानः कर्तरि ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) विप्रतिषेधाद्धानः आनः कर्तरि भवि-  
ष्यति ॥ तत्र “भावकर्मणोः” इत्येतदस्तु, “कर्तरि  
कृद्” इति । “कर्तरि कृद्” इत्येतद्भविष्यति विप्र-  
तिषेधेन ॥

( प्रदीपः ) विप्रतिषेधाद्वेति । भावकर्मणोरित्यस्य  
तद्वकाशः यत्र कृतसंज्ञाया अभावात्कर्तरि कृदिति न प्रव-  
र्तते आस्यते पच्यत इति । कर्तरि कृदित्यस्य तृजादयोव-  
काशाः । आनस्य तुभ्यप्रसङ्गे कर्तरि कृदिति परत्वात्कर्तार्यो  
भविष्यतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) तृजादय इति । तेषामात्मनेपदादिसंज्ञाभावा-  
दिति भावः ॥ परत्वात्कर्तार्य इति । इदं कार्यशब्दवादे । एवं हि  
भावकर्मणोर्न स्यादिति त्वये भाष्ये एव स्पष्टम् ॥

( ५०५८ आरम्भवादिवातिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सर्वप्रसङ्गस्तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सर्वेभ्यस्तु धातुभ्य आनः कर्तरि  
प्राप्नोति । परस्मैपदिभ्योपि ॥

( प्रदीपः ) आरम्भवाद्याह—सर्वप्रसङ्ग इति । परस्मै-  
पदिभ्यो धातुभ्य आनः कर्तरि प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) सर्वप्रसङ्ग इति । विप्रतिषेधवादे दूषणम् ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

नैष दोषः । “अनुदात्तञ्जित” इत्येष योगो निय-  
मार्थो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) प्रत्याख्यानवाद्याह—नैष दोष इति । अ-  
नुदात्तञ्जित आत्मनेपदं नान्यस्यादिति नियमादानः कर्तरि  
परस्मैपदिभ्यो न भविष्यतीत्यर्थः ।

( आरम्भवादिभाष्यम् )

यद्येष योगो नियमार्थः, विधिर्न प्रकल्पते—आस्ते  
शेते इति । अथ विध्यर्थः, आनस्य नियमो न प्राप्नो-  
ति—आसीनः शयान इति । तथा “नेर्विश” इत्येव-  
माद्यनुक्रमणं यदि नियमार्थम्,—विधिर्न प्रकल्पते ।  
अथ विध्यर्थम्,—आनस्य नियमो न प्राप्नोति ।

( प्रदीपः ) आरम्भवाद्याह—यदीति । भावकर्मणोरा-  
त्मनेपदविधानात्तद्वोनुदात्तञ्जितो न प्राप्नुवन्ति । अनुदात्त-

ञ्जित इत्यनेन आन एव धातुविशेषे नियम्यत इत्यर्थे कृत्वादे-  
कस्य वाक्यस्य विधिनियमावेकेन सूत्रेण न प्रकल्पेत इत्यर्थः ।

( उद्घोतः ) तद्वोनुदात्तेति । कर्तरितीति शेषः । एवं नेर्विश  
इत्यादीनां नियमत्वे कर्तरि तद् न स्यात् । विधित्वे केवलादप्यान-  
स्यादिति बोध्यम् ॥

( प्रत्याख्यानभाष्यम् )

अस्तु तर्हि नियमार्थम् ।

( दूषणस्मारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं ‘विधिर्न प्रकल्पते’ इति ।

( दूषणोद्धारभाष्यम् )

विधिश्च प्रकृतः । कथम् ? । “भावकर्मणोः” इ-  
त्यत्र “अनुदात्तञ्जितः” इत्येतदनुवर्तिष्यते ॥

( प्रदीपः ) प्रत्याख्यानवाद्याह—अस्तु तर्हि । भा-  
वकर्मणोरित्यत्रेति । अनुदात्तञ्जित आत्मनेपदमित्यने-  
नैकेन वाक्येन आनस्य नियमः क्रियते । भावकर्मणोरित्यत्र  
त्वनुवृत्त्या द्वितीयेन वाक्येन तत्रां विधिः क्रियत इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) तत्रां विधिरिति । कर्तेरिति शेषः ।

( आक्षेपभाष्यम् )

यद्यनुवर्तते । एवमपि “अनुदात्तञ्जितः” एव  
भावकर्मणोरात्मनेपदं प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) एवमपीति । भावकर्मणोरित्यस्यानुदा-  
त्तञ्जित इत्यनेनैकवाक्यता स्यामनुवृत्तौ स्यात् । ततश्चास्ते  
गुरुणा अतिशय्यते गुरुरित्यादौ आत्मनेपदं स्यात् । भूयते  
गम्यते शेते आस्ते इत्यादौ तु नैव स्यादित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) भावकर्मणोरिति । तथा च आसादिभ्यः  
कर्तरि न स्यादन्येभ्यो भावकर्मणोर्न स्यादित्यर्थः ।

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

एवं तर्हि योगविभागः करिष्यते—“अनुदात्त-  
ञ्जित आत्मनेपदम्” भवति ॥ ततो “भावकर्मणोः” ॥  
ततः “कर्तरि” कर्तरि चात्मनेपदं भवति । अनु-  
दात्तञ्जित इत्येव । आस्ते शेते । भावकर्मणोरिति  
निवृत्तम् ॥ ततः “कर्मव्यतिहारे” कर्तरीत्येवानु-  
वर्तते । “अनुदात्तञ्जितः” इत्यपि निवृत्तम् ।

( उद्घोतः ) भाष्ये भावकर्मणोस्ततः कर्तेरिति । योग-  
विभागसामर्थ्याद् भावकर्मणोरित्यत्रासंबद्धमेवानुदात्तञ्जितदूषण-  
कर्तरीत्यत्र संबध्यत इति भावः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

यदप्युच्यते—तथा “नेर्विश” इत्येवमाद्यनुक्रमणं  
यदि नियमार्थं, विधिर्न प्रकल्पते । अथ विध्यर्थं  
मानस्य नियमो न प्राप्नोतीति ॥ अस्तु विध्यर्थम् ॥

१ अनुदात्तञ्जितो धातुभ्यः तद्वः कर्तरि न प्राप्नुवन्तीति योजना । ( र. ना. )

२ भावकर्मणोरात्मनेपदमनुदात्तञ्जित इत्यर्थे च नियमे भूगम्योरनुदात्ते-

स्ताद्यभावेन ततो भावकर्मणोस्तादृशं न स्यादेवं शोभादिभ्यः कर्तरि च न  
स्यात् । ( र. ना. )

( दूषणस्वारणभाष्यम् )

ननु चोक्तमानस्य नियमो न प्राप्नोतीति ।

( दूषणवारणभाष्यम् )

नैष दोषः । यथैवात्राप्राप्तास्तडो भवन्त्येवमानोपि भविष्यति ।

( प्रदीपः ) यथैवात्रेति । अनुदात्तङित इत्यनेनानस्य नियमादप्राप्तिः । तडोपि भावकर्मणोर्विधीयमानाः निविशत इत्यादौ कर्तरि न प्राप्नुवन्ति । तत्राविशेषात्रेर्विश इत्यादिभिः सूत्रैस्तडानाः कर्तरि विधास्यन्त इत्यर्थः ॥

( ५०५९ सूत्रारम्भवादिवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ सर्वत्राप्रसङ्गस्तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सर्वेषु च साधनेष्वानो न प्राप्नोति । \*“विप्रतिषेधाद्वाः कर्तरि”\* इति भावकर्मणोर्न स्यात् । कर्तयेव स्यात् ॥ इह पुनर्लङ्ग्रहणे क्रियमाणे “कर्तरि कृद्” इत्येतदस्तु, “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इति, “लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः” इत्येतद्भविष्यति विप्रतिषेधेन ॥

( प्रदीपः ) सर्वत्राप्रसङ्गस्त्विति । असत्यस्मिन् सूत्रे भवदुक्तेन विप्रतिषेधेनानः कर्तरि कृदिति कर्तयेव स्यात् न तु भावकर्मणोः । ततश्च भूयमानं गम्यमानमित्यादिप्रयोगो न स्यादित्यर्थः ॥ इह पुनरिति । यदि ल इति षष्ठो तदास्य तिङ्भावी लकारोवकाशः । आनभाविनस्तु लकारस्य परलादनेनार्थव्यवस्था ॥

( उद्घोतः ) तदास्तेति ॥ लः कर्मणि चेत्येत्यर्थः । षष्ठ्यन्तत्वं न भाष्यसंमतमित्युक्तम् । वक्ष्यते च ॥

( ५०६० दूषणवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ सर्वप्रसङ्गस्तु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लादेशः सर्वेषु साधनेषु प्राप्नोति । शतृकसू च भावकर्मणोरपि प्राप्नुतः ।

( दूषणवारणभाष्यम् )

नैष दोषः । “शेषात्परस्मैपदं कर्तरि” इत्येवं तौ कर्तारं ह्रियेते ॥ लः कर्मणि च ॥ ६९ ॥

( प्रदीपः ) शेषादिति । कर्तयेव परस्मैपदमित्येवं नियमात् शतृकसू भावकर्मणोर्न भविष्यत इति भावः । ल इत्यादेशापेक्षषष्ठीनिर्देशपक्षे आम इति विधीयमानस्य लुकोप्यमर्थनिर्देशः । अभावस्याप्यादेशत्वात् । तथा च अचः परस्मिन्निवृत्त्यत्र लोपस्याप्यजादेशस्य स्यानिवृद्धावः प्रदर्शितः । लुकोऽभावरूपत्वात्कथमर्थभिधानमिति चेत् । प्रतिज्ञाप्रापितं किवादीनामिव प्रयोगेऽश्रवणेपि लुकोर्थवत्त्वमनुप्रयोगात् तदर्थभिधानव्यक्तिरित्यदोषः ॥ ६९ ॥

१ कर्तरि कृदित्यनेनेत्यर्थः । ( र. ना. )

२ ल इत्यस्य षष्ठ्यन्तत्वपक्षे प्रतिज्ञाप्रापितमर्थवत्त्वं लुकोऽभावरूपस्यापि

( उद्घोतः ) शेषादेव परस्मैपदमिति नियमे तदवस्यो दोष इत्यत आह—कर्तयेवेति । लक्ष्यानुसारादिति भावः ॥ लुकोऽप्यमिति । नन्वनुप्रयोगस्थलादेशैरेव भावाद्यभिव्यक्तौ किमस्यार्थदेशेनेति चेत् । न, एवं ह्याभिव्यक्तस्य कर्तरि कृदिति कर्तयेवकत्वमेव स्यात् एवं हि विरोधादन्यवान्निप्रत्ययपरोनुप्रयोगो न स्यादिति भावः ॥ लोपस्याप्यजेति ॥ पठ्यतीत्यादौ ॥ प्रतिज्ञेति । अनेन प्रथमान्तत्वमेव युक्तमिति सूचयति—\*लङ्ग्रहणं सकर्मकनिवृत्त्यर्थमिति भाष्याच्च । षष्ठ्यन्तत्वे ल इति ग्रहणमिति स्यात् समासेऽपि विभक्तिलोपेऽकारश्रवणानापत्तिः । अलोपे विसर्गश्रवणापत्तिः । अन्यदपि प्रथमान्तत्वसाधकं प्रायुक्तम् ॥ ६९ ॥

( ६०७ अधिकारसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. १९ )

१२३८ लस्य ॥ ३ । ४ । ७७ ॥

( ५०६१ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ लादेशे सर्वप्रसङ्गोऽविशेषात् ॥\*॥

( भाष्यम् ) लादेशे सर्वस्य प्रसङ्गः । सर्वस्य लकारस्यादेशः प्राप्नोति । अस्यापि प्राप्नोति । लुनाति लभते । किं कारणम् ? । अविशेषात् । न हि कश्चिद्विशेष उपादीयते—एवंजातीयस्य लकारस्यादेशो भवतीति । अनुपादीयमाने विशेषे सर्वप्रसङ्गः ॥

( ५०६२ आक्षेपपरिहारवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थवद्ग्रहणात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अर्थवतो लकारस्य ग्रहणम् । न चैषोर्थवान् ॥

( प्रदीपः ) लस्य ॥ ७७ ॥ अर्थवद्ग्रहणादिति । लडादय एव भावार्थाभिधायिनः स्थानित्वेन गृह्यन्त इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) लस्य ॥ ७७ ॥ भावार्थाभिधायिन इति । शास्त्रप्रतिज्ञातार्थवत इति भावः ।

( ५०६३ आक्षेपपरिहारानुपपत्तिवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अर्थवद्ग्रहणात्सिद्धमिति चेन्न वर्णग्रहणेषु ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अर्थवद्ग्रहणात्सिद्धमिति चेत् ॥ तन्न । किं कारणम् ? । वर्णग्रहणमिदम् । न चैतद्वर्णग्रहणेषु भवति “अर्थवद्ग्रहणे नानर्थक्यस्य” इति ॥

( प्रदीपः ) न वर्णग्रहणेष्विति । लस्येव लकारेऽकार उच्चारणार्थः । ततश्च वर्णमात्रस्यायं निर्देशः । वर्णनिर्देशेषु विद्यमानाप्यर्थवत्ता शब्देन नाश्रिता वर्णरूपमात्रस्याश्रयणात् । तथा च यस्येति लोपोऽनर्थकस्यापि भवति दैवदत्तिरिति ॥

( उद्घोतः ) अकार उच्चारणार्थ इति । अन्यथा लिङादीनां

स्वीकार्यं प्रथमान्तत्वपक्षे तु नेत्यनेन युक्त इति भावः ।

३ विभक्तिलोपाभावे इत्यर्थः । ( र. ना. )

तिङो न स्युः । ततश्च परस्मैपदानां णलियाद्यसंगतं स्यादिति भावः ।

( ५०६४ आक्षेपोपसंहारवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ तस्माद्विशिष्टग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्माद्विशिष्टस्य लकारस्य ग्रहणं कर्तव्यम् ॥

( प्रदीपः ) तस्मादिति । भावाद्यर्थाभिधायिनो लस्येति वक्तव्यमित्यर्थः ।

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । धातोरिति वर्तते ।

( प्रदीपः ) धातोरिति वर्तते इति । विहितविशेषणं च धातुग्रहणमाश्रीयत इत्यभिचिह्नमत इत्यत्रापि न भवति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

एवमपि शाला माला मल्ल इत्यत्रापि प्राप्नोति ।

( प्रदीपः ) शालेति । शामामल्लिभ्य औणादिको ल-प्रत्ययः ॥

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ।

( आक्षेपभाष्यम् )

एवमपि नन्दन इत्यत्रापि प्राप्नोति ।

( परिहारभाष्यम् )

इत्संज्ञात्र बाधेका भविष्यति ।

( प्रदीपः ) इत्संज्ञात्रेति । तस्यां च सत्यां लोपे च कृते स्थान्यभावादतिवधित्वाच्च स्थानिवद्भावाभावादेशो न भविष्यतीत्यर्थः ।

( उद्घोतः ) विहितविशेषणमिति । न चैवं शालादिषु प्राप्नोतीति भाष्यासंगतिः । समुदायस्य ततो विधानेऽपि निर्दिष्टस्व लकारस्य वर्णस्य ततोऽविधानादिति वाच्यम् । समुदायविधानेऽव्यवधानस्यापि सत्त्वमित्यभिमानेन ॥ एवमपीत्यादिभाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वेनाक्षतेः ॥ एतेन ल्युट् धातोर्विहितो न तु लकार इति परास्तम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

इहापि तर्हि बाधेत—पचति पठतीति ।

( प्रदीपः ) इहापीति । ततश्चात्राप्यादेशा न स्युरित्यर्थः ॥

( समाधानभाष्यम् )

इत्कार्याभावादत्रेत्संज्ञा न भविष्यति ।

( समाधानबाधकभाष्यम् )

इदमस्तीत्कार्यम् । “लिति” प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तं भवति इत्येष स्वरौ यथा स्यात् ।

( समाधानसाधकभाष्यम् )

लितित्युच्यते । न चात्र लितं पद्यामः ॥

अथापि कथंचिद्वचनादनुवर्तनाद्वा इत्संज्ञकानामादेशः स्यात् । एवमपि न दोषः । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति न लादेशेषु लितकृतं भवतीति । यद्यं णलं लितं करोति ॥

( प्रदीपः ) लितित्युच्यते इति । ल इदमेति बहुव्रीहिराश्रितः । अत्र च लस्य लोपे कृते न कश्चिन्नकार इत्संज्ञकः प्रत्ययोस्तीत्यर्थः । अथापीति । ल एवेद्विदित्येवं तत्पुरुषो यथाश्रीयेत तथापि लस्येति स्थानित्वेनाश्रयणात्सत्यामपि इत्संज्ञायां लोपो न क्रियते ॥ अनुवर्तनाद्वेति । भावादीनामनुवृत्त्या भावकर्मकर्तृवाचिनो लस्यादेशः । न च लोपे सति भावाद्यर्थाभिधायित्वं संभवतीयकृतलोपानामेव लकाराणामादेशाः करिष्यन्ते । ज्ञापकात् लितस्वरो न भविष्यतीत्यर्थः ।

( उद्घोतः ) अथापि कथंचिदिति । अस्य ‘लितस्वरार्थमिदं स्या’दिति शेषः ॥ तदेवाह—ल एवेदिति । तत्रेत्संज्ञासामर्थ्याद्धो-पात्पूर्वं लोपेऽपि स्थानिवत्त्वाद्वा स्वर इति भावः ॥ तत्पुरुषत्वे णुलादौ कथं स्वर इति चिन्त्यम् ॥ इत्संज्ञकलस्य परत्वाभावात्तदव्यवहित-पूर्वस्य तदनिष्टे च । तस्माद्बहुव्रीहिरेव । अथापि कथंचिदिति भाष्यस्य व्यपदेशिवद्भावेनेत्याशय उचितः । वचनादित्यस्य—इत्संज्ञे यद्यप्यादेशा न स्युस्तथापि’ इत्यादिः तदाह—तथापि लस्येति । एवं चेत्संज्ञायामप्यादेशसिद्धिर्भावादिविहितलस्य, ल्युटि तु दोषः ॥

( पूर्वोक्ताक्षेपपरिहारभाष्यम् )

अथाप्युणादयो व्युत्पाद्यन्ते । एवमपि न दोषः । क्रियते विशिष्टग्रहणं लस्येति ॥

( प्रदीपः ) क्रियते इति । अनुनासिको लकारः स्थानित्वेनोपात्त इत्यर्थः । अथ वा ल् अस्य लस्येत्येवं निर्देशः कृतः । अस्येति सर्वनाम्ना भावाद्यर्थाभिधायी परामृश्यते ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये एवमपीति । एवं चात्र प्रयोजनाभावादिस्त्वाभावेन लादेशस्वराभावो सिद्धौ ल्युटि तु इत्संज्ञया लोपेन च बाधान्न दोष इति भावः ॥ ल् अस्येति । अत्र पक्षे ल् इति लुप्त-पक्षीकम् ॥ अस्येति समानाधिकरणं तस्य विशेषणम् । वस्तुतो धातोरित्यनुवृत्त्या धातुविहितलकारस्य वर्णस्य तत्र ग्रहणम्, अकारस्योच्चारणार्थत्वात् । शालादौ तु न व्यञ्जनमात्रं धातोर्विहितम्, कित्वकारविशिष्ट इति भाष्यार्थः ॥

( ५०६५ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ लादेशो वर्णविधेः पूर्वविप्रति-  
षिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लादेशो वर्णविधेर्भवति पूर्वविप्रति-  
षेधेन । लादेशस्यावकाशः—पचतु पठतु । वर्ण-  
विधेरवकाशः—दध्यत्र मध्वत्र । इहोभयं प्राप्नोति—

१ इत्संज्ञकलकारसंबन्धिनं प्रत्ययावशिष्टभागम् । ( र. ना. )

२ लकारेत्संज्ञक इति समस्तपाठः साधुः । ( र. ना. )

३ न तु लोपार्थे, वचनादनुवर्तनाद्वा लोपाभावादिति भावः । ( र. ना. )

४ ल्युटो लकारस्य तिबाद्यादेशापत्तिरूप इति भावः । ( र. ना. )

५ ल् इति च लुप्तपक्षीकमिति भावः । ( र. ना. )

६ लादेशादेशस्य एकरित्येत्यर्थः । ( र. ना. )

पचत्वत्र पठत्वत्रेति । लादेशो भवति पूर्वविप्रति-  
षेधेन ॥

( प्रदीपः ) पचत्वत्रेति । वाक्यस्य विभज्यान्वाख्यानं  
क्रियत इत्येवमुपन्यासः ॥

( प्रश्नभाष्यम् )

स तर्हि पूर्वविप्रतिषेधो वक्तव्यः ।

( उत्तरभाष्यम् )

न वक्तव्यः । उक्तं वा\* । किमुक्तम् ? । \*लादेशो  
वर्णविधेरन्तरङ्ग\*इति ॥ लस्य ॥ ७७ ॥

( प्रदीपः ) लादेशो वर्णविधेरिति । विप्रतिषेध-  
सूत्रे बहिरङ्गपरिभाषाया इदं प्रयोजनमित्यर्थः ॥ ७७ ॥

( उद्द्योतः ) भाष्ये लादेशो वर्णविधेरिति । लादेशादेश  
इत्यर्थः ॥ ननु वर्णविधिलादेशयोर्युगपत्प्राप्त्यभावेन विप्रतिषेधा-  
संगतिरत आह—वाक्यस्येति ॥ ७७ ॥

( ६०८ टेरेत्वादेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. २० )

१२४० टित आत्मनेपदानां टेरे

॥ ३ । ४ । ७९ ॥

( ५०६७ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ टित एत्वे आत्मनेपदेष्वान-  
प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) टित एत्वे आत्मनेपदेष्वानस्य प्रति-  
षेधो वक्तव्यः । पचमानः । यजमानः । टित इत्येत्वं  
प्राप्नोति ॥

( ५०६८ वार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उक्तं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किमुक्तम् ? । \*ज्ञापकं वा सातुबन्ध-  
कस्यादेशवचनमित्कार्याभावस्य\*इति ॥

( उद्द्योतः ) लिट् आत्म ॥ ७९ ॥ भाष्ये ज्ञापकं वेति ।  
गाङ्गलिटीति सूत्रे इदमुक्तम् ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

इदस्त्युक्तम् । एवं किल तदुक्तं स्यात् ।

उद्द्योतः ) नैतदिति । एतदुक्तमत्र नास्तीत्यर्थः ॥ तदुक्तं  
लात्र स्यादित्यन्वयः ॥

१ सातुबन्धकस्य लकारस्य य आदेशस्तत्रातुबन्धप्रयुक्तं कार्यं न भवति  
इति लटः शतृशानचाविल्यत्रसातुबन्धस्य स्थानित्वेन शानचष्टित्वप्रयुक्तत्वं ने-  
र्थः । ( र. ना. )

२ वक्ष्यमाणरीत्याश्रयण इत्यर्थः । ( र. ना. )

३ प्रकृते तत्र नाविल्यात्मनेपदं शानच् एव तत्र न टित्पूर्वोक्तज्ञापकादिति

( उक्तसमाधानासञ्जनार्थं सामानाधिकरण्यान्वयप्रदर्शक-  
भाष्यम् )

यद्येवं विज्ञायते—टित् आत्मनेपदं टिदात्मने-  
पदं टिदात्मनेपदानामिति । तच्चै न ।

( वैयधिकरण्यान्वयाङ्गीकारभाष्यम् )

टितो लकारस्य यान्यात्मनेपदानीत्येवमेतद्वि-  
ज्ञायते ॥

( सामानाधिकरण्यान्वये दूषणभाष्यम् )

अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम् । टित् आत्मनेपदं  
टिदात्मनेपदं टिदात्मनेपदानामिति हि विज्ञायमाने  
अकुर्वि इत्यत्रापि प्रसज्येत ॥

( प्रदीपः ) टित आत्म ॥ ७९ ॥ यद्येवमिति । यदि  
टित इत्येकवचनं बहुवचनप्रसङ्गे व्यत्ययेन क्रियेतेत्यर्थः । अथ  
वा केचिद्विद्वान् इत्येव पठन्ति तदाश्रयेणैतदुक्तम् । अकुर्वीति ।  
लङः स्थाने उत्तमैकवचनमिदं ॥

( उद्द्योतः ) ननु भिन्नैकवचनानां कथं समानाधिकरण्येन  
संबन्धोत आह—यदि टित इति । टिदात्मनेपदानामिति भाष्यस्य  
तदर्थकं यदि विज्ञायत इत्यर्थः । भाष्यप्रामाण्यात्तादृश एवाद्या-  
यीपाठ इत्यन्ये ।

( प्रसक्त्यनुपपत्तिभाष्यम् )

नैष टित् । कस्तर्हि ? । ठित् । स चावश्यं ठित्  
कर्तव्यः । आदिर्मा भूदिति ।

( उद्द्योतः ) भाष्ये आदिर्मा भूदिति । त्रिभावात्रादि परेषु  
लस्याप्रवृत्तेरिति भावः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

कथम् 'इटोत्' इति ॥

( उत्तरभाष्यम् )

'इटोत्' इति वक्ष्यामीति ॥

( ठित्करणावश्यकत्वभाष्यम् )

तच्चावश्यं वक्तव्यम् । पर्यवपाद्यस्य मा भूत्—  
लविषीष्ट ।

( प्रदीपः ) पर्यवपाद्यस्येति । पर्यवपादो रूपान्तरा-  
पतिः । तत्र साधुरागमः पर्यवपाद्यः । तत्र साधुरिति यत् ।

( उद्द्योतः ) तत्र साधुरागम इति । योगरूढिरिति भावः ॥

( ठित्करणदूषणभाष्यम् )

इह तर्हि 'इपमूर्जमहमित' आदीति "आऽतो  
लोप इटि च" इत्याकारलोपो न प्राप्नोति । तस्मा-  
द्विदेषः ॥

समाधानं सामानाधिकरण्यान्वये स्यात्तच्च सामानाधिकरण्यान्वयविज्ञानं प्रकृते  
नास्तीत्यर्थः । ( र. ना. )

४ टित इत्यस्य पठयेकवचनान्तत्वमात्मनेपदस्य तद्वबहुवचनान्तत्वमिति  
भावः । ( र. ना. )

५ आगमस्येद इत्यर्थः । व्युत्पत्तिस्तु कैयटे द्रष्टव्या । ( र. ना. )

(प्रदीपः) आदीति । दाओ लङ् उत्तमैकवचनम् । शपः श्रुः, द्विवचनप्रसङ्गे छन्दसि वेति वक्तव्यमिति द्विवचनाभावः । यदि ठिदिद् स्यात्तदा आतो लोप इटि चेत्याकारलोपो न स्यात् । अत्र च छन्दस्सुभयथेत्यार्धधातुकत्वमिदं एष्टव्यम् । आर्धधातुक इत्यालोपविधानात् ॥

(उद्घोतः) नन्वेवमिदं आर्धधातुकत्वाभावादालोपो न स्यादत आह—अत्र चेति ॥

(आक्षेपभाष्यम्)

आदिस्तर्हि कस्मान्न भवति ।

(समाधानभाष्यम्)

सप्तदशादेशाः स्थानेयोगत्वं प्रयोजयन्ति तानेको नोत्सहते विहन्तुमिति कृत्वा आदिर्न भविष्यति ॥

(प्रदीपः) सप्तदशेति । लस्येलेका षष्ठी सा यद्यवयवावयविसंबन्धे स्यात् तदा इट एवानुग्रहः स्यात् न तिवादीनाम् । तस्माद् भूयसां स्थान्यादेशसंबन्धस्य प्रयोजकत्वाल्लस्येति स्थानेयोगा षष्ठीत्यादेश एवेङ् भवति, न लागमः ॥

(उद्घोतः) स्थान्यादेशसंबन्धस्येति । स्थान्यादेशसंबन्धं प्रति भूयसां प्रयोजकत्वात्स्थानषष्ठीलन्वयः ॥ टकारस्तु इटोदित्यत्र विशेषणार्थः ॥

(प्रश्नभाष्यम्)

पर्यवपाद्यस्य तर्हि कस्मान्न भवति—लविषीष्टेति ?

(समाधानभाष्यम्)

असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षण इति ।

(प्रदीपः) असिद्धमिति । बलाद्यार्धधातुकापेक्षणादङ्गापेक्षत्वाच्च बहिरङ्ग इडागमः । इटोदित्यद्भावस्तु लिङ्संबन्धीपेक्षणादन्तरङ्गः । तत्र कर्तव्ये आगमस्यासिद्धत्वादङ्गाभावाः ।

(उद्घोतः) बलाद्यार्धधातुकेति । अनेन प्रकृतिप्रत्ययोभयापेक्षत्वमागमस्य दर्शयति ॥

(समाधानभाष्यम्)

इदं तर्ह्युक्तम्—प्रकृतानामात्मनेपदानामेत्वं भवतीति । के च प्रकृताः ? तादयः ॥

(प्रदीपः) प्रकृतानामिति । तिबाद्य इहावुवर्तन्ते तैरात्मनेपदानि विशेष्यन्ते । अथ वा प्रकरणस्य विशेषस्मृतिहेतुत्वात्प्रकृतान्येवात्मनेपदानीहात्मनेपदशब्देनोच्यन्ते ।

(उद्घोतः) भाष्ये इदं तर्ह्युक्तमिति । इदमपि गाङ्गुलिटीत्यत्रैवोक्तम् ॥ तैरात्मने इति । तिवादीनां मध्ये यान्यात्मनेपदानीत्यर्थः ॥ न च तन्मध्ये शानज्जनिविष्ट इति भावः । अनुवृत्तिविनापीष्टसिद्धिमाह—अथ वेति ॥

(भाष्यम्)

आने मुग्गज्ञापकं त्वेत्वे, टित्तडामिशिसीरिचः ।

डारौरःसु, टिट्टितः, प्रकृते तद्, गुणे कथम् ॥ टित आत्मने ॥ ७९ ॥

(प्रदीपः) ज्ञापकमाह—आनेमुगिति । यद्येत्वमानस्य स्याद् आनयिमुगिति वक्तव्यं स्यादित्यर्थः ॥ टित्तडामिति । टितः स्थाने ये तडः तेषामेत्वं न लानस्यापि । अथाध्येतेत्यादौ डारौरसामेत्वं कस्मान्न भवतीत्याह—इशिसीरिच इति । लिटस्तज्ञयोरेशिरेच, यासः से इत्येताभ्यां सूत्राभ्यां लाघवाय इश् सिरिच् इत्येते आदेशा विधेयाः । एत्वस्यानेन सिद्धत्वात् । ज्ञापनाय तु सयादयो विहिता लादेशादेशानामित्वाभावस्य ॥ टिट्टित इति । अकुर्वीत्यत्र परिहारः । अटितो लङः स्थाने टिट्टिद् कृत इत्येत्वं न भवति ॥ प्रकृतेतदिति । तदेत्वं प्रकृते तड्यात्मनेपदे भवति न लाने ॥ गुणे कथमिति । श्लोकपूरणायैतदुक्तम् । एत पे इत्यत्र पचावेदम् इत्याद्गुणेकृते कथमेत्वं न भवतीति चोद्यम् । परिहारस्तु वक्ष्यते—बहिरङ्ग आद्गुण इति ॥ ७९ ॥

(उद्घोतः) भाष्ये एकदेश्याह—आने मुगिति । आनमीति । प्रयोगे दृश्यमानरूपस्यैवानुकरणं न्याय्यमिति भावः ॥ वस्तुतस्तु अलादेशे शानन्चानशादिसंबन्धानेपि मुकुसिद्धये तथा निर्देश आवश्यकः पवमानो यजमानः इति भावकर्मणोरप्रवृत्तये न ते लादेशा इति ज्ञापकासंगत्यरुचेर्वक्ष्यति—प्रकृते तदिति ॥ ज्ञापनाय तु सयादय इति ॥ ननु परत्वादेत्वे पुनः प्रसङ्गविज्ञानेन ङादिषु लक्ष्ये लक्षणस्येति न्यायेनैत्वाप्रवृत्तौ किमर्थमिदं स्पष्टं च ङाविधायकभाष्ये एतदिति चेन्न । एकदेश्युक्तिर्वेनाक्षतेः ॥ ज्ञापकस्य फलाभावाच्चास्यास्तस्वम् ॥ एधन्त इत्यादौ परत्वाद्वाणीदाङ्गमिति वा पूर्वमन्तादेशे पूर्वरूपे सर्वेसर्वपदादेशा इति न्यायेनान्तस्यादेशादेशत्वेन ज्ञापकेन नैत्वापत्तिरित्यन्ये ॥ श्लोकेति ॥ श्लोकपूरणायान्यसूत्रविषयपूर्वपक्षोत्र दर्शित इति भावः । तद्ध्वनयन्नाह—एत पे इत्यत्रेति । अनेनास्य श्लोकस्यैकदेश्युक्तित्वं स्फुटीकृतम् ॥ ७९ ॥

( ६०९ लिटः परस्मैपदानामादेशविधिसूत्रम्  
॥ ३ । ४ । १ भा. २१ )

१२४३ परस्मैपदानां णलतुसुस्थल-

थुसणल्वमाः ॥ ३ । ४ । ८२ ॥

( ५०६९ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥\*॥ णलः शित्करणं सर्वादेशार्थम् ॥\*॥

(भाष्यम्) णल् शित्कर्तव्यः । किं प्रयोजनम् । सर्वादेशार्थम् ? । 'शित्सर्वस्य' इति सर्वादेशो यथा स्यात् ॥ अक्रियमाणे हि शकारे "अलोन्त्यस्य" विधयो भवन्तीत्यन्यस्य प्रसज्येत ॥

१ अत एव 'उभे अभ्यस्तम्' इति नाभ्यस्तसंज्ञेति 'श्राभ्यस्तयो रातः' इत्यस्य न प्राप्तिरिति भावः ॥

२ 'येति सार्व' इति काशीमुद्रितपाठः ॥

३ अकुर्वीत्यत्रान्तोऽङ्कितविति सहकारेणधातोरादावेदेत्याति भावः । (र. ना.)

४ ताम् आदेशान् एक आगम इदं विहन्तुं स्थाने योगत्वप्रयोजकत्वाद् व्यावर्तयितुमित्यर्थः । ( र. ना. )

५ पूर्वोक्तज्ञापकस्वीकारे एधन्ते इत्यत्रैवानुपपत्तिरिति भावः । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) परस्मै ॥ ८२ ॥ णल इति । क पुनरस्य शकारः क्रियते । यथादौ णकारस्य अनादित्वादित्संज्ञा न प्राप्नोति । मध्ये शस्येत्संज्ञाया अभावः । अन्ते तु लस्येत्संज्ञाया अप्रसङ्गः । एवं तर्हि लश्विधातव्यः । लश्वुत्तमोवेति करिष्यते । योगविभागश्चेति मन्यते । अथ वा णलुशित्त्विति-देशः कर्तव्यः ॥ अक्रियमाणेहीति । नानुबन्धकृतमने-काल्त्वमित्यन्यस्य स्यादित्यर्थः । एतच्च प्राग्लादेशाद्वा-त्वधिकार इति पक्षमाश्रित्योच्यते । धात्वधिकारे तु सत्यादेः परस्येत्यादेः प्राप्नोति ।

( उद्घोतः ) परस्मैपदानाम् ॥ ८२ ॥ मध्ये शस्येति । अनादित्वादिति शेषः ॥ प्रथमपुरुषे पपाचेत्यादौ वृद्धिसिद्धये आह—योगविभागश्चेति ॥ धात्वधिकारे ल्विति । परविशेषणपक्षे इदम् ॥ विहितविशेषणे तु तदप्रवृत्त्यान्यस्यैव प्राप्नोतीति यथाश्रुतमेव भाष्यं रमणीयमिति दिक् ॥

( ५०७० समाधानवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उक्तं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) किमुक्तम् ? । \* अनित्त्वात् सिद्धम्\* इति । णकारः क्रियते । तस्य अनित्त्वात्सिद्धमिति ॥

( उद्घोतः ) भाष्ये अनित्त्वादिति । वाक्यार्थबोधे सति प्रत्ययत्वज्ञाने इत्संज्ञासमकालमेव सर्वदेशेतेति तदानेकालत्वस्या-क्षतिरित्यर्थः ॥ तस्यानित्त्वादिति ॥ वाक्यार्थबोधे धात्वानिश्चयस्य नानुबन्धकृतमित्यस्य प्राप्तिरिति भावः । यदि तु भाव्यनुबन्धत्वं गृहीत्वा तत्प्रवृत्तिस्तदा डावत् ण अलिति प्रत्येकानेकालत्वात्सर्व-देशत्वम् ॥ निरूपितं चेदं लुटः प्रथमस्येति सूत्रेणाभिः ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

क एष परिहारोऽन्याय्यः ? । शकारमसि चोदि-तः । णकारं करिष्यामि शकारं न करिष्यामीति । णकारो वात्र क्रियेत शकारो वा । कोन्वत्र विशेषः ? ।

( समाधानभाष्यम् )

[ अयमस्ति विशेषः ] अवश्यमत्र णकारो वृद्धयर्थः कर्तव्यः णितीति वृद्धिर्यथा स्यात् ।

( उद्घोतः ) क एष परिहारोऽन्याय्य इति । अन्याय्य एषः परिहारः क उच्यते इत्यर्थः ॥

( णकारवैयर्थ्यभाष्यम् )

नार्थो वृद्धयर्थेन णकारेण । णित्वे योगविभागः

१ लशित्वेकं सूत्रम् । लशणित्त्वादिति तदर्थः । उत्तमो लश् वा णित्त्वादिति द्वितीयसूत्रार्थ इति भावः । ( र. ना. )

२ उत्तमे पुरुषे वैकल्पिकणिप्त्वेन सिद्धिः । ( र. ना. )

३ णलोविधानकाले प्रत्ययत्वाभावेन णस्येत्त्वाभावेऽनेकालत्वात् सर्वदेशो भविष्यतीति भावः । ( र. ना. )

४ 'कथमेव' ॥

५ त्वं णकारं प्रत्याख्याय मया शकारं चोदितोऽसि, एवं च णकारं करिष्यामि

करिष्यते—इदमस्ति “गोतो णित्” । ततः “अल्” अल् च णिद्धवति । ततः “उत्तमो वा” इति ।

( शित्करणप्रत्याख्यानभाष्यम् )

एवं तर्हि लकारः क्रियते । तस्य अनित्त्वात्सिद्धम् ।

( उद्घोतः ) एवं तर्हि लकार इति । ल इति लणिति वा-देशः कार्य इति भावः ॥

( शित्त्ववादिकर्तृकाक्षेपभाष्यम् )

एवमपि क एष परिहारोऽन्याय्यः । शकारमसि चोदितः लकारं करिष्यामि शकारं न करिष्यामीति । लकारो वा क्रियेत शकारो वा कोन्वत्र विशेषः ।

( लकारस्य न्याय्यताभाष्यम् )

अयमस्ति विशेषः । अवश्यमत्र स्वार्थो लकार इत्कर्तव्यः । “लिति” प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं भवतीत्येष स्वरो यथा स्यात् ।

( लकारवैयर्थ्यभाष्यम् )

नैतदस्ति प्रयोजनम् । धातुस्वरे कृते द्विवचनं तत्रान्तर्यतोन्तोदात्तस्यान्तोदात्त आदेशो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) धातुस्वर इति । प्रत्ययस्य पित्वादनुदात्तत्वाद् धातुस्वरः प्रवर्तते ॥

( उद्घोतः ) धातुस्वरः प्रवर्तते इति प्रवृत्तः सतिशिष्टस्वरेण न निवर्तते इत्यर्थः ॥ भाष्ये अन्तोदात्त आदेश इति ॥ स्थाने द्विवचनमिति भावः ॥

( भाष्येपभाष्यम् )

कथं पुनरयमन्तोदात्तः स्यात् । यदैकाच् ।

( प्रदीपः ) यदैकाजिति । योनेकाच् जजागरेति तत्र धातुस्वरे कृते शिष्टस्यानुदात्तत्वे प्रथमैकाचो द्विवचनं सर्वानुदात्तं सिध्यतीत्येकाजैव धातुर्निरूप्यते ॥

( उद्घोतः ) सर्वानुदात्तम् । अनुदात्ताभ्यासमपीत्यर्थः ॥ निरूप्यत इति । विचारविषयीक्रियत इत्यर्थः ॥ भाष्ये कथं पुनरयमिति । द्विवचनप्रकृतिरित्यर्थः ॥ यदैकाजिति । यदैकाजि-णादिः प्रकृतिरित्यर्थः ॥ धातोरन्तोदात्त इत्यर्थ इति भावः ॥

( समाधानभाष्यम् )

व्यपदेशिवद्भावेन ।

( प्रदीपः ) व्यपदेशिवद्भावेनेति । आद्यन्तवदेकस्मिन्नित्यनेनेत्यर्थः ॥

शकारं न करिष्यामि इत्यन्याय्य एष परिहारः क उच्यते, णकारो वाऽत्र क्रियेत शकारो वा कोन्वत्र विशेष इत्याक्षेपप्रत्ययस्य योजना । ( र. ना. )

१ 'क्रियते' ॥

२ इयं निमित्तसप्तमी । णित्वार्थमिति फलितार्थः । ( र. ना. )

३ अनैकाच्ये धातोरन्यस्याच उदात्तो भविष्यति यस्त्वेकाजिणादिधातुस्वारे-कारस्यान्तत्वाभावेनोदात्तत्वं न स्यादिति भावः । ( र. ना. )

( उद्घोतः ) व्यपदेशिवदिति । तेनातिदेशेनान्तत्वातिदेशा-  
स्वरसिद्धिरित्यर्थः ॥ अस्यान्तवत्पुनरतया कैयटोक्ते व्याख्याने  
धीजं चिन्त्यम् ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

यथैव तर्हि व्यपदेशिवद्भावेनान्तोदात्तः । एव-  
माद्युदात्तोऽपि । तत्रान्तर्यत आद्युदात्तस्य आद्युदात्त  
आदेशः प्रसज्येत ।

( प्रदीपः ) यथैवेति । कार्यातिदेशं मन्यते ॥

( उद्घोतः ) इतरोन्तोदात्तत्वव्यवहार एवानेन व्यपदेशि-  
वद्भावेनोक्त इति मत्वाऽऽह—भाष्ये यथैवेति । अन्तोदात्तत्वादि-  
धर्मातिदेश एव कैयटे कार्यातिदेशपदेनोक्तः ॥

( समाधानभाष्यम् )

सत्यमेवमेतत् । न त्विदं लक्षणमस्ति—धातो-  
रादिरुदात्तो भवतीति । इदं पुनरस्ति—धातोरन्त  
उदात्तो भवतीति । सोऽयं, लक्षणेनान्तोदात्तः, तत्रा-  
न्तर्यतोऽन्तोदात्तस्यान्तोदात्त आदेशो भविष्यति ।

( प्रदीपः ) न त्विदमिति । शास्त्रातिदेश इति भावः ।

( उद्घोतः ) न त्विदमिति । एवं चानेनान्तत्वातिदेशे शास्त्रे-  
णान्तत्वप्रयुक्तोदात्तत्वे तद्व्यवहारसिद्धिः । आद्युदात्तविधायकशास्त्रा-  
भावात् न तद्व्यवहार इति भावः ॥ शास्त्रातिदेश इत्यस्य शास्त्रप्रवृत्तौ  
निमित्तस्यान्तत्वस्यानेनातिदेश इत्यर्थः ॥ भाष्ये सोऽयमिति ।  
प्रकृतिभूतो धातुरित्यर्थः ॥ अन्तोदात्तः—तथा व्यवहारविषयः ॥

( समाधानवाचकभाष्यम् )

एतदप्यादेशे नास्ति—आदेशस्यान्त उदात्तो भव-  
तीति । प्रकृतितोऽनेन स्वरो लभ्यः । प्रकृतिश्चास्य  
यथैवान्तोदात्ता, एवमाद्युदात्ताऽपि ॥

( प्रदीपः ) एतदपीति । स्थानिवदिति कार्यातिदेशः  
प्राधान्यादिति भावः ॥ प्रकृतित इति । स्थानिन इत्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) तद्वृष्यति—भाष्ये एतदपीति । अन्तोदात्त  
आदेश इति वचनं नास्तीत्यर्थः ॥ स्थानिवदिति न धर्मातिदेशक-  
मित्याह—स्थानिवदिति कार्यातिदेश इति ॥ भाष्ये प्रकृतित  
इति । आदेशे प्रकृतिसादृश्यबोधकात्स्थानेन्तरतमसूत्रादित्यर्थः ॥  
सादृश्यं च तद्वृत्तिधर्मवत्त्वम् । स च यथा व्यपदेशिवद्भावेनान्तो-  
दात्तत्वांस्तथाऽऽद्युदात्तत्ववानपीति भावः ॥

( द्विःप्रयोगपक्षेऽपि शित्करणदूषणापादकभाष्यम् )

द्विःप्रयोगे खल्वपि द्विवचने उभयोरन्तोदात्तत्वं  
प्रसज्येत ।

१ लक्षणस्य प्रत्यक्षत्वेन ततो निर्वाहभाव एव ज्ञापकन्यायसिद्ध्या आद्यु-  
मानिक्याः परिभाषाया लक्ष्यसिद्धर्थमुपन्यास उचित इति कैयटाशय इति  
वयम् । ( र. ना. )

२ 'खल्वपि' इति भाष्ये पाठः ॥

३ अनेकेषामुदात्तानामिति शेषस्तथाचान्तोदात्तमादाय पूर्वस्य निघाते सिद्धो-  
ऽन्तोदात्त इति । ( र. ना. )

४ कुतोऽनुखल्वस्यमुदात्तमादायादेरुदात्तत्वं नाद्युदात्तमादायान्तस्यमुदात्ता-

( प्रदीपः ) द्विःप्रयोग इति । षाष्टिकं द्विवचनं द्विःप्र-  
योगः, न तु स्थाने द्विवचनमिति निर्णयः ॥

( उद्घोतः ) स्थाने द्विवचनपक्ष एवासङ्गत इत्याह—द्विः-  
प्रयोगे चापीति । तदाह—निर्णय इति ॥

( शित्ववादिमतेन दूषणोद्धारभाष्यम् )

अनुदात्तं पदमेकवर्जमिति नास्ति यौगपद्येन  
संभेदः ।

( शित्ववादिमते दूषणस्थापनपूर्वकं लकारसार्थक्योपसंहार-  
भाष्यम् )

पर्यायैः प्रसज्येत । तस्मात्स्वरार्थो लकारः कर्त-  
व्यः ॥ लकारः क्रियते, तस्यानित्त्वान्नसिद्धम् ॥

( प्रदीपः ) लकार इति । ततश्च लं उत्तमो वेति क-  
र्तव्यं योगविभागश्च कार्यः ॥

( उद्घोतः ) योगविभागश्चेति । णकाराभाव इदम् ॥

( ५०७२ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ अकारस्य शित्करणं सर्वा-  
देशार्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अकारः शित्कर्तव्यः । किं प्रयोज-  
नम् ? । सर्वादेशार्थम् । “शित्सर्वस्येति” सर्वादेशो  
यथा स्यात् । अक्रियमाणे हि शकारे “अलोऽन्त्यस्य”  
विधयो भवन्तीत्यन्त्यस्य प्रसज्येत ॥

( आक्षेपवाचकभाष्यम् )

ननु च अकारस्य अकारवचने प्रयोजनं नास्तीति  
कृत्वा अन्तरेण शकारं सर्वादेशो भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) अकारस्येति । यस्य स्थाने विधीयते तस्ये-  
त्यर्थः । एतदपि प्राग्लादेशाद्भावात् अधिकार इति पक्षाश्रये-  
गोच्यते । धात्वधिकारे ह्यदेः परस्येत्यादेरकारे सति रूपं  
सिद्धम् ॥

( उद्घोतः ) धात्वधिकार इति ॥ परविशेषण इदम् ।  
विहितविशेषणपक्षे त्वन्त्यादेश एव प्राप्नोति । अत एव नित्यं क्ति  
इत्यादौ न दोष इति बोध्यम् ॥

( आक्षेपसाम्यभाष्यम् )

अस्यन्यदकारस्य अकारवचने प्रयोजनम् ।  
किम् ? ।

( ५०७२ वार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ अकारवचनं समसंख्यार्थम् ॥ \* ॥  
( भाष्यम् ) संख्यातानुदेशो यथा स्यात् ।

त्वमेव च विनिगमकाभावे पर्यायापत्ताविष्टो व्यवस्थितस्वर इत्यापेक्षादौ न  
स्यादिति भावः । ( र. ना. )

५ त्वं मित्रोः स्थाने ल इत्ययमादेशो णित् स्यात् उत्तमस्तु वा णिदिति  
तदर्थः । ( र. ना. )

६ यप्रत्ययादेशस्य अकारस्येत्यर्थः । ( र. ना. )

७ धातोरित्यस्य परविशेषणत्वे तु भववावेत्यादौ कर्ता न स्यात् । ज्ञापा  
व्यवधानात् इति भावः । ( र. ना. )



( ५०७३ वार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ तस्माच्छित्करणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) तस्माच्छकारः कर्तव्यः ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

स तर्हि शकारः कर्तव्यः ।

( सिद्धान्तभाष्यम् )

न कर्तव्यः । क्रियते न्यास एव । प्रश्लिष्टनिर्देशोऽयम् । अ अ इति । सोऽसौ अनेकाल् । अनेकाल् शित्सर्वस्येति सर्वादेशो भविष्यति ॥ परस्मै० ॥ ८२ ॥

( प्रदीपः ) अ अ इति । अकारद्वयसमुदायस्य आदेशत्वमित्यर्थः ॥ ८२ ॥

( उद्घोतः ) अकारद्वयेति । एवं 'ण अलिति' अत्रापि प्रैशेपो बोध्यः ॥ ८२ ॥

( ६१० अतिदेशसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. २२ )

१२४६ लोटो लङ् ॥ ३ । ४ । ८५ ॥

( प्रदीपः ) लोटो ल । लोट इत्युपमेये षष्ठीनिर्देशादुपमानं षष्ठ्यन्तं विज्ञायते, तेन लङे यत्कार्यं तल्लोटोऽतिदिश्यते, न तु लङि यत्कार्यं तत्-इत्युदात्तं लोटि न भवतः ।

( उद्घोतः ) लोटो ल ॥ ८५ ॥ असादतिदेशलोटि अडाटावपि प्राप्तु इत्यत आह—लोट इति ॥

( ५०७४ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ लङ्दतिदेशे जुस्भावप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लङ्दतिदेशे जुस्भावस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः । यान्तु वान्तु । लङः शाकटायनस्येति जुस्भावः प्राप्नोति ॥

( ५०७५ समाधानवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ उत्त्ववचनात्सिद्धम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) उत्त्वमत्र बाधकं भविष्यति ॥

( प्रदीपः ) उत्त्ववचनादिति । नाप्राप्ते लङ्बद्धभावे उत्त्वमारब्धं तस्य बाधकमित्यर्थः ।

( समाधानबाधकभाष्यम् )

अनवकाशा हि विधयो बाधका भवन्ति । सावकाशं चोत्त्वम् । कोऽवकाशः पञ्चतु-पठतु ॥

( समाधानसाधकभाष्यम् )

अत्रापीकारलोपः प्राप्नोति । तद्यथैवोत्त्वमीकारलोपं बाधते । एवं जुस्भावमपि बाधेत ।

( प्रदीपः ) अत्रापीति । लङ्बद्धभावादितश्चेत्यनेनेत्यर्थः ॥ ८५ ॥

( समाधानबाधकभाष्यम् )

न बाधते । किं कारणम् ? । येन नाप्राप्ते तस्य बाधनं भवति । न चाप्राप्ते इकारलोपे उत्त्वमारब्धते । जुस्भावे पुनः प्राप्ते चाप्राप्ते च ॥ अथ वा पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्वाधन्ते इत्येवमिदमुत्त्वमिकारलोपं बाधते जुस्भावं न बाधते ॥

( उद्घोतः ) ननु शिविषये परस्माज्जुसा इत्येवमित्यस्य बाधात्र तस्यापि एतद्विषये सर्वत्र प्राप्तिः । जुसा इकारापहारे तदभावादि-तश्चेत्यस्याऽप्राप्तिः । इकारलोपे द्वेरभावाज्जुसोऽप्राप्तिरिति योगपद्यामंभवात् । स्थानिवत्त्वं तु आदेशप्रवृत्त्युत्तरं न तत्समकालम् । एवं सत्यन्यतरविषयत्वे मानाभावात् । विनिगमनाविरहेणोभयबाधकं सादत आह भाष्ये अथवा पुरस्तादपवादा इति ॥

( समाधानान्तरभाष्यम् )

एवं तर्हि वक्ष्यति तत्र लङ्ग्रहणस्य प्रयोजनम् । लङ्वे यो लङ् तत्र यथा स्यात् । लङ्वद्भावेन यो लङ् तत्र मा भूदिति ॥ लोटो लङ् ॥ ८५ ॥

( उद्घोतः ) तत्र लङ्ग्रहणस्येति । तत्र=लङः शाकटायनस्येति सूत्रे इत्यर्थः ॥ ८५ ॥

( ६११ आदेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ० २३ )

१२४८ सेह्यपिच्च ॥ ३ । ४ । ८७ ॥

( ६१२ आदेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. २४ )

१२५० मेर्निः ॥ ३ । ४ । ८९ ॥

( ५०७६ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ हिन्योरुत्वप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) हिन्योरुत्वस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः ।

लुनीहि । लुनानि । “एरुः” इत्युत्वं प्राप्नोति ॥

( ५०७७ आक्षेपपरिहारवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वोच्चारणसामर्थ्यात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यः । किं कारणम् ? उच्चारणसामर्थ्यात् । उच्चारणसामर्थ्यादत्रोत्वं न भविष्यति । अलघीयश्चैव हि इकारोच्चारणमुकारोच्चारणात् । इकारं चोच्चारयति । उकारं च नोच्चारयति । तस्यैतत्प्रयोजनम्—उत्वं मा भूदिति ॥ सेह्यपिच्च ॥ मेर्निः ॥ ८९ ॥

१ 'छित्' ॥

२ 'शित्' ॥

३ इत्संज्ञायोग्यत्वमनवधत्वमिति पक्षे इति भावः । इत्संज्ञकत्वमनुबन्धत्व-

मिति पक्षे तु अनेकात्त्वादेव सिद्धिरिति भावः । ( र. ना. )

४ आत्ताद्यातोरेव लङो श्लेऽनुबन्धनादिति भावः । ( र. ना. )

( प्रदीपः ) सेह्यं ॥ ८७ ॥ अलघीय इति । उकारे सति प्रक्रियायां लाघवं भवति । इकारे तु सति लक्षणान्तरेणोत्वे प्रक्रियागौरवं स्यात् । न चेकारोच्चारणे लाघवं भवति । तस्मादिकारोच्चारणमुत्वस्य बाधकमेवेत्यर्थः ॥ ८७ ॥ ८९ ॥

( उद्ध्योतः ) सेह्यं ॥ ८७ ॥ भाष्ये अलघीयश्चैव हीति । मात्राकृतलाघवाभाव इत्यर्थः ॥ प्रक्रियालाघवं तूकारोच्चारणेऽस्त्येवेति भावः ॥ उत्त्वस्य बाधकमेवेति ॥ उत्त्वग्रहणमिकारलोपस्याप्युपलक्षणम् ॥ ८७ ॥ ८९ ॥

( ६१३ आदेशविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. २५ )

१२५४ एत ऐ ॥ ३ । ४ । ९३ ॥

( ५०७८ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ एत ऐत्वे आद्गुणप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एत ऐत्वे आद्गुणस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः । पचावेदम् । पचामेदम् । आद्गुणे कृते “एत ऐ” इत्यैत्वं प्राप्नोति ॥

( ५०७९ आक्षेपबाधकवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यः । किं कारणम् ? । बहिरङ्गलक्षणत्वात् । बहिरङ्गलक्षण आद्गुणः । अन्तरङ्गमैत्वम् । असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ एत ऐ ॥ ९३ ॥

( ६१४ आगमविधिसूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. २६ )

१२६३ लिङः सीयुट् ॥ ३ । ४ । १०२ ॥

( ५०८० आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यासुडादेः सीयुट् प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) यासुडादेः सीयुट् प्रतिषेधो वक्तव्यः । चिनुयुः । सुनुयुः । “लिङः सीयुट्” इति सीयुट् प्राप्नोति ॥

( प्रदीपः ) लिङः ॥ १०२ ॥ यथैव कृषीष्ट कृषीष्टा इत्येवमादौ सुटि कृते विरोधाभावाद्वाध्यबाधकभावाभावात्सीयुट् भवति । एवं यासुड्यपि कृते तस्य लिङ्भक्तत्वात्तादेः सीयुट्प्रसङ्ग इति मत्वाऽऽह—यासुडादेरिति ।

( उद्ध्योतः ) लिङः सी ॥ १०२ ॥ नन्वपवादतया यासुडा बाधात्कथं तद्विषये सीयुडत आह—यथैवेति ।

( ५०८१ आक्षेपपरिहारवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ न वा वाक्यापकर्षात् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यः । किं कारणम् ? ।

वाक्यापकर्षात् । वाक्यापकर्षाद् यासुट् सीयुट् बाधिस्यते ।

( प्रदीपः ) न वेति । लिङः सीयुडित्यस्य वाक्यस्य यासुड्विधिवाक्ये नापकर्षः बाधनमित्यर्थः । विनापि विरोधेन सामान्यविधिर्विशेषविधिना बाध्यते, तन्नेणेव दधीति भावः ।

( उद्ध्योतः ) विनापीति । अत एव पूर्वमपि सीयुट् न । अपवादविषये उत्सर्गाप्रवृत्तेरिति भावः ॥

( ५०८२ वार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ सुट्तिथोस्त्वपकर्षविज्ञानम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) सुटोपीदानीं तिथोरपकर्षो विज्ञायेत । कृषीष्ट । कृषीष्टाः । हृषीष्ट । हृषीष्टाः ।

( उद्ध्योतः ) भाष्ये सुटोऽपीति । कर्तरि षष्ठी । कर्मणोऽनुपादानात् उभयप्राप्त्यभावः ॥ सुट्कर्तृकः सीयुटो बाधः स्यादित्यर्थः ॥

( ५०८३ आक्षेपवार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ अनादेश्व सुट्चनम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अनादेश्व सुट्कृतव्यः । कृषीयास्तां कृषीयास्थाम् । तकारथकारादेर्लिङ् इति सुण् न प्राप्नोति ।

( प्रदीपः ) अनादेश्वेति । तिथोरिति सप्तमीं मन्यते, ततस्तदादिविधिसद्भावात्तकारथकारादेरेव लिङादेशस्य सुट् स्यात्, कृषीष्टा इत्यादाविति भावः ॥

( ५०८४ आक्षेपपरिहारवार्तिकम् ॥ ५ ॥ )

॥ \* ॥ न वा तिथोः प्रधानभावात्तद्विशेषणं लिङ्ग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) न वा वक्तव्यम् । किं कारणम् ? । तिथोः प्रधानभावात् । तिथावत्र प्रधानं तयोर्विशेषणं लिङ्ग्रहणम् । नैवं विज्ञायते । तकारथकारादेर्लिङ् इति । कथं तर्हि ? तकारथकारयोः सुट् भवति । तौ चेह्लिङ् इति ॥ लिङः सीयुट् ॥ १०२ ॥

( प्रदीपः ) न वेति । चोद्यद्वयमपि परिहृतम् । सुट्स्वकारथकारावागमिनौ, सीयुट्स्तु समुदाय इति कार्यभेदाद् बाध्यबाधकभावाभावः ॥ तिथोरिति च षष्ठीनिर्देशात्तदादिविध्यभावाद्नाद्योरपि तिथोः सुट् भवति ॥ १०२ ॥

( उद्ध्योतः ) कार्यभेदादिति । प्रथमद्विवचनस्य द्वितीयद्विवचनेन कार्यभेदेऽपि बाधदर्शनाच्चिन्त्यमिदम् ॥ तस्मादपकर्षो विज्ञायेतेत्युत्तर भाष्ये तस्माद्यासुडादेः सीयुट् प्रतिषेधो वक्तव्य इति शेषस्तदेव च वचनं ज्ञापकमत्र प्रकरणे तद्व्यबाधकभावाभावेति सुटा सीयुटो न बाध इति भाव इत्युच्यते ॥ १०२ ॥

( ६१५ आगमविधिसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ० २७ )

१२६४ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च

॥ ३।४।१०३ ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमर्थं यासुटो ङित्वमुच्यते ।

( ५०८५ आक्षेपपरिहारवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ यासुटो ङिच्चनं पिदर्थम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [ यासुटो ङित्वं क्रियते । किं प्रयोजनम् ? । पिदर्थम् ] पिति वचनानि प्रयोजयन्ति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ किमर्थमुदात्तवचनं क्रियते ।

( ५०८६ परिहारवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ उदात्तवचनं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) [ उदात्त इति उच्यते । किं प्रयोजनम् ] किम् । पिदर्थमेव ।

( ५०८७ परिहारान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ आगमानुदात्तार्थं वा ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) अथ वा एतज्ज्ञापयत्याचार्यः—आगमा अनुदात्ता भवन्तीति ॥

( ज्ञापकत्वानुपपत्तिभाष्यम् )

असत्यन्यस्मिन्प्रयोजने ज्ञापकं भवति । उक्तं चैतद्—‘यासुटो ङिच्चनं पिदर्थमुदात्तवचनं चेति ॥

( ज्ञापकत्वोपपादकभाष्यम् )

शक्यमनेन वक्तुम् । यासुट् परस्मैपदेषु भवति, अपिच लिङ् भवतीति । सोऽमेवं लघीयसा न्यासेन सिद्धे सति यद्गरीयांसं यत्नमारभते तज्ज्ञापयत्याचार्यः ‘आगमा अनुदात्ता भवन्ति’ इति ॥ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ॥ १०३ ॥

( उद्घोतः ) यासुट् प ॥ १०३ ॥ आगमा अनुदात्ता इति भाष्ये अनुदात्तं पदमित्येकवाक्यतापत्रोदात्तादिविधिविशिष्टकालेऽसंनिहितानामपि तेन निषातप्रवृत्तिर्ज्ञाप्यत इत्यर्थः ॥ विस्तरेण चैतदाद्युदात्तश्चैत्यत्र निरूपितम् ॥ प्रकृतसूत्रे शब्देन्दुशेखरे च १०३

१ पिति तिबादौ लादेशे प्राप्तानि यानि वचनानि सार्वधातुकार्धधातुकयो-  
रित्यादीनि तानि यासुटो ङिच्चनं प्रयोजयन्ति इति योजना । ( र. ना. )

२ किमिदमाकारग्रहणं जुसि नियमार्थमिति योजना । ( र. ना. )

३ नियम इति शेषः । ( र. ना. )

४ नियमसूत्राणां निषेधमुखेन प्रवृत्तिरिति भाष्येणैवम् । ( र. ना. )

( ६१६ नियमसूत्रम् ॥ ३।४।१ आ. २८ )

१२७१ आतः ॥ ३।४।११० ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किमिदं जुस्याकारग्रहणं नियमार्थम् । आहो  
स्वित्प्रापकम् ॥

( प्रत्याक्षेपभाष्यम् )

कथं च नियमार्थं स्यात् । कथं वा प्रापकम् ।

( प्रत्याक्षेपसमाधानभाष्यम् )

यदि सिज्ग्रहणमनुवर्तते । ततो नियमार्थम् ॥

अथ निवृत्तम् । ततः प्रापकम् ॥

( विशेषजिज्ञासाभाष्यम् )

कश्चात्र विशेषः ।

( ५०८८ नियमपक्षदूषणवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ जुस्याकारग्रहणं नियमार्थमिति  
चेत् सिज्जलुक्ग्रहणम् ॥ \* ॥( भाष्यम् ) जुसि आकारग्रहणं नियमार्थमिति  
चेत् सिज्जलुक्ग्रहणं कर्तव्यम् । आतः सिज्जलुगन्ता-  
दिति वक्तव्यम् । इह मा भूत्—अकार्षुः । अहार्षुः ॥( प्रदीपः ) आतः ॥ ११० ॥ अकार्षुरिति । अत्र नां-  
कारान्तात्सिज्विहितः । नापि परः, रेफेण व्यवधानादिति जुस्  
न स्यात् ॥ ननु यद्यकार्षुरित्यादावपि नियमः स्यात्, तदा पूर्व-  
सूत्रेण सिज्जन्ताख्यविधानमनवकाशं स्यात् ॥ नैष दोषः । अ-  
गुरस्थुरित्यादेरवकाशस्य संभवात्, विषयविभागश्च न लभ्यते ।  
यतोऽकार्षुरिति जुस् भवति । अभूवन्नित्यत्र तु न भवति ॥  
यद्येवं पूर्वसूत्रे सिज्जग्रहणमकृत्वा आतः सिच इति वक्तव्यं  
स्यात् । नैतदस्ति । उत्तरत्रात इत्यस्यानुवृत्त्यर्थो योगविभागः  
स्यात् । अथ वा योगविभागोऽस्य नियमार्थत्वाय स्यात् ।  
अस्य हि नियमार्थत्वे उत्तरत्र लङ्ग्रहणं न कर्तव्यं भवति ॥( उद्घोतः ) आतः ॥ ११० ॥ भाष्ये इह मा भूत् अकार्ष-  
ुरिति । नियमेन व्यवच्छेदो मा भूदित्यर्थः ॥ ननु सिचः परस्य  
ज्ञेर्जुस् चेदाकारपरसिचः परस्यैवेति न दोष इत्यत आह—अत्रेति ।  
नियमः स्यादिति । नियमेन व्यवच्छेदः स्यादित्यर्थः ॥ अगुरिति ।  
योगविभागानर्थक्यं त्वनुपदमेव परिहरिष्यति ॥ अत एव दूषणान्त-  
रमाह—विषयविभागश्चेति । अभूवन्निति ॥ अत्र प्रत्ययलक्षणे न  
सिचस्य बोध्या । योगविभागः स्यादिति । लङः शाकटायनस्ये-५ विषयविभागश्चेत्यत्र न भवतीत्यन्तवाक्यस्य अतः सिज्जलुक्ग्रहणं कर्त-  
व्यमिति शेषः । ( र. ना. )

६ यद्येवं विषयविभागभावस्तदा पूर्वसूत्रे इत्यादि योजना । ( र. ना. )

७ जुसोच्चावृत्तिरित्यर्थः । ( र. ना. )

त्यत्र सिच् पदासंसृष्ट्यात इत्यस्यानुवृत्त्यर्थो योगविभाग इत्यर्थः ॥  
नन्वातः सिच् इत्युच्यमानेपि स्वरितलङ्कासङ्गादात इत्येवानुवर्तिष्यते,  
न तु सिच् इति, उत्तरत्र लङ्ग्रहणाच्चात आह—अथवेति ॥  
नियमार्थत्वायेति । तत्फलं तु अभूवन्नित्यस्य व्यावृत्तिः ॥ नियमपक्षे  
योगविभागप्रयुक्तगौरवेऽपि लाघवान्तरं दर्शयति—अस्य हीति ॥

( विध्यर्थत्वपक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि प्रापकम् ।

( ५०८९ विध्यर्थत्वपक्षदूषणवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ प्रापकमिति चेत्प्रत्ययलक्षण-  
प्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) प्रापकमिति चेत्प्रत्ययलक्षणस्य प्रति-  
षेधो वक्तव्यः । अभूवन्निति प्रत्ययलक्षणेन जुस्-  
भावः प्राप्नोति ॥

( ५०९० दूषणान्तरवार्तिकम् ॥ ३ ॥ )

॥ \* ॥ एवकारकरणं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) एवकारकरणं च कर्तव्यम् । लङः  
शाकटायनस्यैवेति ॥ नियमार्थं पुनः सति नार्थं  
एवकारकरणेन ।

( आक्षेपभाष्यम् )

ननु च प्रापकेऽपि सति सिद्धे विधिरारम्भमाणो-  
न्तरेणैवकारं नियमार्थो भविष्यति ॥

( समाधानभाष्यम् )

इष्टतोऽवधारणार्थस्तर्ह्येवकारः कर्तव्यः—यथैवं  
विज्ञायते ‘लङः शाकटायनस्यैव’ इति । मैवं विज्ञायि  
‘लङ एव शाकटायनस्य’ इति ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

किं च स्यात् ।

( समाधानभाष्यम् )

लुङः शाकटायनस्य न स्यात् । अदुः । अयुः ।  
अधुः । अस्थुः ॥

( ५०९१ गौरववार्तिकम् ॥ ४ ॥ )

॥ \* ॥ लङ्ग्रहणं च ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) लङ्ग्रहणं च कर्तव्यम्—‘लङः शाक-  
टायनस्यैव’ इति । नियमार्थं पुनः सति नार्थो लङ्ग्रह-  
णेन । ‘आतो ङित’ इति वर्तते । न चान्य आका-  
रादनन्तरं ङिदस्ति अन्यदतो लङः ॥

( प्रदीपः ) एवकारकरणं चेति । यदा सिज्ग्रहणमिह  
नानुवर्तते तदाऽनेनैव लङादेशस्य क्षेत्रात् उत्तरस्यायुरित्यादौ  
जुसि सिद्धे लङः शाकटायनस्यैवेति नियमार्थं एवकारः

कर्तव्यः । अन्येषां मतेन अयानिलादि यथा स्यात् । यदा तु  
सिज्ग्रहणानुवृत्त्या नियमार्थमिदं तदा लङः शाकटायन-  
स्यैवेव पक्षे विध्यर्थं कर्तव्यं नार्थं एवकारेणेत्यर्थः ॥ मैवं वि-  
ज्ञायीति । लङ एव शाकटायनस्येति विज्ञायमाने लुङः शा-  
कटायनस्य न स्यात् । ततश्च लुङि विकल्पः प्रसज्येत । लङि  
तु नित्यः स्यादित्यर्थः ॥

( उद्घोतः ) ततश्च लुङीति । शाकटायनमते लङ एवा-  
न्यस्य तन्मते नेत्यर्थे लुङि शाकटायनमते निषेधः, अन्यस्य मते जुसि-  
त्यर्थो द्विकल्पः फलितः ॥ लङि तु शाकटायनमतेऽन्यमते च प्राप्त्या  
नित्यत्वं फलतीति भावः ॥ भाष्ये लङ्ग्रहणं चेति । असति लङ्-  
ग्रहणे लुङ्यपि विकल्पः स्यात् ॥ न चात इति योगविभागालुङि  
नित्य इति वाच्यम् । लुङि विकल्पो लङि नित्य इति वैपरीत्यस्यापि  
संभवादिति भावः ॥

( नियमार्थत्वपक्षाङ्गीकारभाष्यम् )

अस्तु तर्हि नियमार्थम् ॥

( दूषणसारणभाष्यम् )

ननु चोक्तं \*जुस्याकारग्रहणं नियमार्थमिति चेत्  
सिज्जुङ्ग्रहणम्\* इति ।

( दूषणपरिहारभाष्यम् )

नैष दोषः । तुल्यजातीयस्य नियमः । कश्च तुल्य-  
जातीयः ? । यो द्वाभ्यामनन्तरः, आतश्च सिचश्च ।

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ तदेवकारकरणं नैव कर्तव्यम् ।

( सिद्धान्तसमाधानभाष्यम् )

कर्तव्यं च । किं प्रयोजनम् ? । उत्तरार्थम् । “लिट्  
च” “लिङाशिषि” आर्धधातुकमेव यथा स्यात् ।  
इतरथा हि वचनादार्धधातुकसंज्ञा स्यात् । तिङ्-  
ग्रहणेन च ग्रहणात्सार्वधातुकसंज्ञा ॥

( आक्षेपभाष्यम् )

अथ तल्लङ्ग्रहणं नैव कर्तव्यम् ।

( समाधानभाष्यम् )

कर्तव्यं च । किं प्रयोजनम् ? । लङेव यो लङ्  
तत्र यथा स्यात् । लङ्ङावेन यो लङ् तत्र मा भू-  
दिति ॥ आतः ॥ ११० ॥

( प्रदीपः ) तुल्यजातीयस्येति । सिज्जुङ्कं विना आतः  
सिचश्चानन्तरो झिर्न भवतीति सिज्जुङ्गन्तस्याकारान्तस्येह ग्रह-  
णमिति नियमेन सिज्जुङ्गन्तमेव निवर्त्यते । उत्तरार्थमिति ।  
अन्यथैकसंज्ञाधिकारादन्यत्र संज्ञासमावेशस्य दृष्ट्वालिङि ला-  
देशानां सार्वधातुकसंज्ञाऽपि स्यात् । ततस्तन्निमित्तविकरणप्र-  
सङ्गः । आर्धधातुकसंज्ञा चेडाद्यर्था स्यात् ॥ ११० ॥

( उद्द्योतः ) एवं चात इति सूत्रं सिच इत्यनुवृत्त्या निय-  
मार्थम्, उत्तरसूत्रं तु विध्यर्थम् ॥ शाकटायनस्यैवेत्येवकार उत्तरार्थः ।  
लघुग्रहणं लघुद्भावेन लघोऽग्रहणार्थमिति बोध्यम् ॥ एवं च धातो-  
रिति सूत्रस्य भाष्यं प्रोक्त्या, एतत्सूत्रस्य भाष्यविरोधात् इति बो-  
ध्यम् ॥ ११० ॥

( ६१७ आर्धधातुकसंज्ञासूत्रम् ॥ ३ । ४ । १ आ. २९ )

१२७१ आर्धधातुकं शेषः ॥ ३।४।११४ ॥

( ५०९२ आक्षेपवार्तिकम् ॥ १ ॥ )

॥ \* ॥ आर्धधातुकसंज्ञायां धातु-  
ग्रहणम् ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) आर्धधातुकसंज्ञायां धातुग्रहणं कर्त-  
व्यम् । धातोः परस्यार्धधातुकसंज्ञा यथा स्वात्  
इह मा भूत्—वृक्षत्वं वृक्षतेति ।

( ५०९३ आक्षेपवार्तिकम् ॥ २ ॥ )

॥ \* ॥ क्रियमाणे चापि धातुग्रहणे,  
स्वादिप्रतिषेधः ॥ \* ॥

( भाष्यम् ) स्वादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः । इह मा  
भूत्—लूभ्यां लूभिरिति ।

( आक्षेपपरिहारभाष्यम् )

अनुकान्तापेक्षं शेषग्रहणम् ।

( प्रदीपः ) आर्धधा ॥ ११४ ॥ अनुकान्तापेक्ष-  
मिति । ये प्रत्ययास्तिङ्शित्त्वजितास्ते आर्धधातुकसंज्ञा भवन्ति  
न त्वनुकंसमाना इत्यर्थः ॥

( परिहारानुपपत्तिभाष्यम् )

एवमपि अशिकाभ्यति जायुकाभ्यतीति प्राप्नोति ।  
तस्माद्धातुग्रहणं कर्तव्यम् ।

१ सत्यार्धधातुकत्वेऽपि लोप प्रसङ्गः । ( र. ना. )

( आक्षेपभाष्यम् )

तर्हि धातुग्रहणं कर्तव्यम् ? ।

( समाधानभाष्यम् )

न कर्तव्यम् । आतृतीयपरिसमाप्तेर्धात्वधिकारः  
प्रकृतोऽनुवर्तते । क प्रकृतः ? । “धातोरेकाचो हला-  
देः” इति ।

( उद्द्योतः ) आर्धधातु ॥ ११४ ॥ भाष्ये धातोरेकाच  
इति । धातोरिति पृथक् सूत्रं तु प्रत्याख्यातमेव ॥

( समाधानसंगतिभाष्यम् )

एवमपि श्रीकाम्यति भूकाम्यतीति प्राप्नोति ।

( समाधानसंगतिभाष्यम् )

तद्विधानात् सिद्धम् । विहितविशेषणं धातुग्रहणं  
‘धातोर्यो विहितः’ इति । ‘धातोरेव विहितः’ सं-  
कीर्त्य धातोरित्येवं यो विहित इति ॥ आर्धधातु-  
कम् ॥ ११४ ॥

( प्रदीपः ) धातोरिति । धातोरित्येवं धातुशब्दसुधार्य  
ये विहिता इत्यर्थः ॥ ११४ ॥

( उद्द्योतः ) धातोरित्येवमिति ॥ व्याख्यानादिति भावः ११४

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहा-  
भाष्ये तृतीयाध्यायस्य चतुर्थे पादे प्रथममाहिक-  
कम् ॥ पादश्चाध्यायश्च समाप्तस्तृतीयः ॥

इति श्रीमन्महामहोपाध्यायजैयटपुत्रकैयटकृते भाष्यप्रदीपे  
तृतीयाध्यायस्य चतुर्थे पादे प्रथममाहिकम् ॥

पादोऽध्यायश्च समाप्तः तृतीयः ॥

इति श्रीकालोपनामकशिवभट्टसुतसतीगर्भजनगोशभट्टविरचिते  
व्याकरणमहाभाष्यप्रदीपोद्द्योते तृतीयस्याध्यायस्य चतुर्थे पादे  
प्रथममाहिकम् ॥ पादश्चाध्यायश्च समाप्तः ॥

२ अत्र सत्त्वे गुणप्रसङ्गः । ( र. ना. )

